हिन्दी समिति ग्रन्थमाला—१४

जीव-जगत

लेखक
सुरेश सिंह

प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग
उत्तर प्रदेश

प्रथम संस्करण

१९५८

मूल्य

चौदह रुपया

मुद्रक

पं० पृथ्वीनाथ भार्गव,

भार्गव भूषण प्रेस गायघाट वाराणसी

पूज्य श्री सम्पूर्णानन्द जी

को

सादर समर्पित

—सुरेश सिंह

प्रदेशीय सरकार द्वारा प्रकाशन का कार्य आरम्भ करने का यह आशय नही है कि व्यवसाय के रूप में यह कार्य हाथ में लिया गया है। हम केवल ऐसे ही ग्रन्थ प्रकाशित करना चाहते हैं जिनका प्रकाशन कतिपय कारणों स अन्य स्थानों स नही हो पाता। हमारा विश्वास है कि इस प्रयास को सभी क्षेत्रों से सहायता प्राप्त होगी और भारती के भण्डार को परिपूर्ण करने मे उत्तर प्रदेश का शासन भी किंचित् योगदान देने में समर्थ होगा।

भगवती शरण सिंह
सचिव, हिन्दी समिति

पूज्य श्री सम्पूर्णानन्द जी

को

सादर समर्पित

—सुरेश सिंह

भूमिका

हमारी पृथ्वी को सूर्य से अपना सम्बन्ध विच्छेद किये हुए यद्यपि दो अरब वर्षों से भी अधिक हो चुका है लेकिन उससे अलग होकर एक स्वतन्त्र ग्रह बन जाने पर भी अभी तक वह उसके स्नेहपाश से मुक्त नहीं हो सकी है और आज भी वह निरन्तर उसी की परिक्रमा करती चली जा रही है।

इस लम्बे समय के आदि काल में पृथ्वी पर कहीं जीवन का कोई चिह्न तक नहीं था और लगभग एक अरब वर्षों तक इस पर प्राणहीन पदार्थों का ही सर्जन-भंजन चलता रहा लेकिन इसके बाद न जाने कहाँ से इस पर जीवन की एक सूक्ष्म कणिका का प्रादुर्भाव हुआ जो संसार की सबसे आश्चर्यमयी घटना थी।

जीवन के उस प्राणबिन्दु का अद्भुत सृष्टिकार्य तब से प्रत्येक जीव में तथा नयी नयी परीक्षाओं में निरन्तर विकसित होता चला आ रहा है और उसमें योजना करने की, संचालन करने की और परिस्थितियों के अनुकूल अपने में शोधन करने की जो एक अद्भुत शक्ति प्रच्छन्न भाव से छिपी है उसके विषय में बहुत सोचने पर भी कुछ ओर-छोर नहीं मिलता।

हमारी इस पृथ्वी का उद्भव किस प्रकार हुआ, इसके बारे में संसार में अनेक मत-मतान्तर हैं लेकिन यदि हम इस विषय की पौराणिक कथाओं को छोड़कर केवल वैज्ञानिकों के ही मतों को देखते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि वे लोग भी अभी तक किसी एक निश्चित निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सके हैं। फिर भी उनके अन्तिम निर्णय का सारांश यहाँ दिया जा रहा है।

सबसे पहले फ्रांस के वैज्ञानिक बफटन (Bufton) ने १७४९ ई० में यह बताया कि एक बहुत बड़ा ज्योतिःपिण्ड एक दिन सूर्य से टकरा गया, जिसके फलस्वरूप बड़े-बड़े [illegible] सूर्य से बाहर हो गये, जो धीरे-धीरे समय बीतने

पर ठंडे होकर हमारे ग्रह-उपग्रह बन गये। इसके कुछ समय बाद एक दूसरा सिद्धान्त संसार के सामने आया जिसमें कहा गया था कि यह पिण्ड या नक्षत्र सूर्य से भिड़ा तो नहीं किन्तु उसके बहुत पास होकर गुजरा और उसके आकर्षण से सूर्य के वाष्पपुंज में बड़े जोर की लहरें उठीं जो उसकी परिधि से बाहर निकल गयीं। यही बाहर निकला हुआ भाग कई हिस्सों में विभक्त हो गया और धीरे-धीरे ये टुकड़े ही ठंडे होकर हमारी पृथ्वी और अन्य ग्रह-उपग्रह बने।

उसके बाद सन् १७५५ ई० में जर्मनी के प्रसिद्ध विद्वान् काट और सन् १७९६ में प्रसिद्ध गणितज्ञ लापलास ने एक नये सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जिसमें कहा गया था कि सूर्य के चारों ओर आकाशगंगा की तरह एक वाष्पीय घेरा फैला हुआ था जो सम्भवतः सूर्य में होनेवाले भीषण विस्फोट के कारण था। इसी वाष्पीय पिंड से कुछ भाग घूमते घूमते सूर्य से बाहर निकल पड़े जो सूर्य के आकर्षण के कारण उसके चारों ओर परिक्रमा लगाने लगे। ये ही कुछ समय बाद ठंडे होकर हमारी पृथ्वी तथा अन्य ग्रह-उपग्रह बने।

इधर १९५१ ई० में प्रसिद्ध विद्वान् जेरार्ड पी० कूपर ने एक नया सिद्धान्त संसार के सम्मुख रखा है जिसे प्रायः सभी विद्वानों ने स्वीकार कर लिया है। इस सिद्धान्त के अनुसार शून्य में फैले हुए सब तारे धूल और गैस से भरे हुए हैं। ये गुरुत्वाकर्षण की शक्ति के कारण घनत्व प्राप्त करके अन्तरिक्ष में चक्कर लगा रहे हैं। इतनी तेज गति से चक्कर काटने के कारण इनमें इतनी उष्णता बढ़ गयी है कि ये चमकते हुए तारों की स्थिति में पहुँच गये हैं।

हमारा सूर्य भी इसी स्थिति में था और वह भी आकाश में बड़ी तेजी से चक्कर लगा रहा था। उसके चारों ओर वाष्पीय बादल और धूल का एक घेरा पड़ा हुआ था। यह घेरा जब धीरे-धीरे घनत्व प्राप्त करने लगा तो उसमें से अनेक समूह बाहर निकलकर उसके चारों ओर परिक्रमा करने लगे। ये ही हमारे ग्रह और उपग्रह हैं और इन्हीं में से एक हमारी पृथ्वी भी है जो आकार में सूर्य से बहुत छोटी होने के कारण उससे पहले ही ठंडी होने लगी है।

सूर्य से अलग होने पर पहले हमारी पृथ्वी भी उसी की तरह एक ज्वलित वाष्प-पुंज के रूप में थी किन्तु धीरे धीरे लाखों करोड़ों वर्षों के बीत जाने पर इसका धरातल ठंडा हुआ और इसकी ऊपरी सतह पर एक कड़ी पपड़ी सी पड़ गयी। ऊपर से ठंडी

हो जाने पर भी पृथ्वी का भीतरी भाग ज्वाला से धधकता ही रहा जो कभी-कभी लावा के रूप में इस पपड़ी को फोड़कर बाहर निकल पड़ता था। ऊपर आकर जहाँ-जहाँ यह गला हुआ पदार्थ जमकर ठंढा हो गया वह स्थान हमारी पृथ्वी का स्थल भाग बना और जहाँ वह धरातल को फोड़कर फिर पृथ्वी में समा गया वहाँ का भाग नीचा और गहरा हो गया। आगे चलकर इसी भाग में जल भर गया और ये ही हमारे समुद्र बने।

पृथ्वी का भीतरी भाग ज्यों-ज्यों ठंढा होकर सिकुड़ता गया त्यों-त्यों उसकी ऊपरी सतह में भी सिकुड़न पड़ती गयी, जिन्हें आज भी हम अपने पहाड़ों और घाटियों के रूप में देख सकते हैं।

इधर पृथ्वी धीरे-धीरे ठंढी हो रही थी और उधर उससे निकलकर वाष्प के बादलों ने उसके वायुमंडल को इस तरह आच्छादित कर लिया था कि उसको भेद कर सूर्य की किरणों का पृथ्वी तक पहुँचना असम्भव हो गया था। ऊपर से बादल जो जल बरसाते थे वह पृथ्वी पर पहुँचने से पहले ही भाप बनकर फिर ऊपर की ओर लौट जाता था और पृथ्वी तक जल की एक बूंद भी न पहुँचती थी। उस समय पृथ्वी का धरातल प्रज्वलित तथा अन्धकारपूर्ण था जिसे रह-रहकर ज्वालामुखी और भूकम्प कँपाते रहते थे।

लेकिन करोड़ों वर्षों के बाद पृथ्वी इतनी ठंढी हो गयी कि वहाँ तक वर्षा के जल का पहुँचना संभव हो गया और फिर काफी समय तक पृथ्वी पर छाये हुए बादलों ने घनघोर वर्षा करके धरातल को और भी ठंढा कर दिया। वर्षा के जल ने एकत्र होकर समुद्रों का रूप धारण कर लिया जिन्होंने हमारी पृथ्वी का तीन चौथाई भाग घेर लिया।

इस अनवरत मूसलाधार वर्षा से पृथ्वी के चारों ओर छाये हुए बादल छँट गये और पृथ्वी पर सूर्य की पहली किरण पहुँची। सूर्य के प्रकाश से जहाँ सारी पृथ्वी आलोकित हो उठी वहीं उस पर जीवों के उत्पन्न होने की सम्भावना भी हो गयी, क्योंकि बिना सूर्य के प्रकाश के किसी भी प्रकार के जीवन की कल्पना हो ही नहीं सकती।

जीवन के उस प्रारम्भिक काल में पृथ्वी का स्थल-भाग एकदम नंगा, गरम और ज्वालामुखियों से भरा रहा होगा। इसीलिए जीवन की पहली किरण समुद्रों में ही फूटी। पृथ्वी पर जीवन का प्रादुर्भाव किस प्रकार हुआ उसका तो कुछ ठीक पता

नहीं सकता पर इतना तो सभी विद्वान् मानते हैं कि जीवन के अंकुर सर्वप्रथम प्रोटोप्लाज्म (Protoplasm) अथवा जीवद्रव में ही दृष्टिगोचर हुए, जो एक प्रकार के चिपचिपे पारभासी (Translucent) पदार्थ में पाये जाते थे और जिनका देखना केवल अणुवीक्षण यंत्र द्वारा ही सम्भव था। इसी जीवद्रव अथवा उसके पुंजीभूत सूक्ष्म जीवकोशों से चींटी से लेकर हाथी तक के शरीर का निर्माण हुआ है, जिन्हें हम जीवन तथा प्राण की नींव-शिला कह सकते हैं।

संसार के सब जीव इन्हीं सूक्ष्म जीवकोशों के मिलने से बने हैं जो वास्तव में प्रोटोप्लाज्म अथवा जीवद्रव के छोटे छोटे पुंज कहे जा सकते हैं। ये जीवकोश बहुत ही छोटे गोल या अण्डाकार होते हैं जिनके भीतर एक जीवबिन्दु (Nuclius) रहता है। इस जीवबिन्दु के भीतर भी अनेक सूक्ष्म परमाणु रहते हैं जिनके चारों ओर बहुत छोटे छोटे अणु तेजी से चक्कर लगाते रहते हैं। ऐसी विलक्षण है प्रत्येक जीवकोश की रचना जिसके भीतर से सृष्टि से होती हुई, प्राण की धारा निरन्तर प्रवाहित हो रही है।

यहाँ तक तो जीव-जन्तु और वनस्पति की अलग-अलग शाखा नहीं फूटी थी और दोनों ही एक प्रकार के एककोश-प्राणी थे लेकिन उन्हीं में से कुछ ने अपने चारों ओर सैलूलोस (Cellulose) का आवरण चढ़ा लिया और अपने भीतर पर्ण-हरित या क्लोरोफिल (Chlorophyll) नामक हरा पदार्थ पैदा किया। इस हरे पदार्थ में यह गुण था कि वह जिस प्राणी के भीतर रहता था उसके लिए सूर्य के प्रकाश की शक्ति का उपयोग करके कार्बन डायाक्साइड (Carbon Di oxide) को हवा और पानी की खुराक में परिवर्तित कर देता था और ये ही दोनों वस्तुएँ प्रत्येक जीवित प्राणी के लिए आवश्यक होती हैं।

ये पर्णहरित (Chlorophyll) वाले हरे रंग के एककोश प्राणी जो आगे विकसित होकर पेड़-पौधे बने, हमारे वृक्षों के पूर्वज हैं। इस प्रकार जिन जीवकोशों ने अपने में पर्ण-हरित उत्पन्न करके हरा रंग धारण किया उनसे तो हमारी वनस्पति का विकास हुआ लेकिन जिन जीव-कोशों ने अपने शरीर के चारों ओर सैलूलोस का आवरण धारण करके अपने भीतर पर्णहरित नहीं उत्पन्न किया उनका शरीर विकसित होकर इधर-उधर चलने फिरने के योग्य तो बन गया लेकिन शरीर के भीतर पर्णहरित न होने के कारण वे वृक्षों की तरह गैस और पानी को खाने लिए हवा

और पानी में परिवर्तित न कर सके और जीवन धारण करने के लिए उन्होंने अपने पड़ोसी हरे जीवकोषों को ही खाना शुरू किया। इन्हीं जीवकोषों से सारे संसार के जीव-जन्तुओं का विकास हुआ और इन्हीं को हम पृथ्वी के समस्त प्राणियों का पूर्वज कह सकते हैं।

जीवों का यह प्रारम्भिक रूप एक कोश में ही सीमित था और ये एककोशीय जीव ही पशुओं और वनस्पतियों के पूर्वज थे। ये जीव बढ़कर दो भागों में विभाजित हो जाते थे और प्रत्येक भाग एक स्वतन्त्र जीव बन जाता था। कुछ समय बाद उनके भी दो भाग होकर दो स्वतन्त्र जीवों में परिणत हो जाते थे। इस प्रकार इन जीवों का परिवर्धन काफी समय तक चलता रहा लेकिन उसके बाद ये एककोशीय जीव आपस में मिलकर एक संयुक्त-कोशीय जीव का रूप ग्रहण करने लगे जिनमें दो भागों में विभक्त होकर स्वतन्त्र जीव बन जाने की क्षमता न रह गयी।

इन संयुक्त-कोशीय जीवों में भी धीरे-धीरे परिवर्तन होने लगा और उनके शरीर के भिन्न-भिन्न कोशों को शरीर का अलग-अलग कार्य मिला। उनकी शरीर-रचना में भी धीरे-धीरे काफी परिवर्तन हुआ और वह एक नली के समान बन गया। इन नली के समान शरीरवाले प्रारम्भिक जीवों के एक ओर इनका मुखछिद्र रहता था जिसमें होकर इनके शरीर के भीतर भोजन पहुँचता था, जो इनके शरीर के सभी कोशों का पोषण करता था। इनके शरीर में धीरे-धीरे स्नायुमंडल का भी विकास हुआ जो उनके शरीर के एक भाग से दूसरे भाग तक संदेश पहुँचाने लगा और फिर जब इन जीवों के आकार में वृद्धि हुई तो इनके शरीर में रक्तवाहिनी नलियों का जाल फैल गया जिनसे उनके शरीर के समस्त कोशों का पोषण होने लगा।

यह निश्चय रूप से नहीं कहा जा सकता कि ये प्रारम्भिक जीव समुद्रों में कितनी शताब्दियों तक अपना विकास करते रहे; क्योंकि इन कोमल शरीरवाले जीवों ने अपने पथराए चिह्न (Fossil) नहीं छोड़े हैं जिनसे हम उनके समय का ठीक-ठीक पता लगा सकें। हमें जो सबसे पुराना फासिल मिला है वह ५० करोड़ वर्ष पुराना है। उससे ज्ञात होता है कि उस समय तक प्रायः सभी अमेरुदंडीय जीवों का विकास हो चुका था लेकिन मेरुदंडीय जीवों का प्रादुर्भाव अभी भविष्य के गर्भ में ही था।

उस आदि काल में पृथ्वी एकदम सुनसान थी। उस समय उसके स्थल भाग पर जीवों की कौन कहे, किसी प्रकार की वनस्पति भी नहीं थी। सारा भूमंडल नंगे

पहाड़ों और चट्टानों से भरा था जिसे रह-रहकर भूकम्प कँपाया करते थे। लेकिन समुद्रों की ऐसी दशा नहीं थी। वहाँ असंख्य जीव भर गये थे जो जीवन के संघर्ष और विकास की ओर अग्रसर हो रहे थे। समुद्रों में छोटे-छोटे पौधों का भी उद्भव हो गया था जो इन जीवों की जीवन रक्षा के मुख्य साधन थे।

समुद्र के ये सब जीव एक ही आकार-प्रकार के नहीं थे वरन् उनके स्वरूप में बहुत भेद था। इन सब जीवों में ट्रिलोबाइट (Trilobite) सबसे अधिक विकसित थे जिनका उस समय समुद्रों में आधिपत्य कायम था। ये उस समय के समस्त जीवों से इसलिए विकसित कहे जाते हैं कि उनका शरीर पानी में रहने के लिए औरों से अधिक उपयुक्त था और वे काफी संख्या में सन्तानों की उत्पत्ति करते थे जिनमें से आगे चल कर नयी नयी जातियों का जन्म होना सम्भव हुआ। इस प्रकार इन ट्रिलोबाइटों ने समुद्रों में लगभग बीस करोड़ वर्षों तक अपना राज्य कायम रखा।

ट्रिलोबाइट

लेकिन इसके बाद इन जीवों का सदा के लिए नाश हो गया और उन्हीं में से एक अन्य जीव ने अपना विकास करके समुद्री पनबिछिया (Water Scorpion) का स्वरूप ग्रहण किया। वे ट्रिलोबाइटों के स्थान पर समुद्रों के अधिकारी बन बैठे। ये मांसाहारी जीव थे जो बढ़कर आठ-नौ फुट तक के होने लगे और अन्य जीवों के अधिक विकसित होने के कारण इनका राज्यकाल भी लगभग बीस करोड़ वर्षों तक चला। लेकिन समय के परिवर्तन के साथ इसके आगे ये भी न चल सके और इनको भी एक दिन संसार से सदा के लिए विदा होना पड़ा।

समुद्री पनबिछिया

ट्रिलोबाइट तथा पनबिछिया तो सदा के लिए संसार से चले गये लेकिन जीवों के विकास का क्रम इसी प्रकार अबाध गति से चलता रहा। मीठे पानी के जलाशयों

के कीचड़ से भरी हुई तह पर एक प्रकार के जीव अपना स्वतन्त्र विकास कर रहे थे जिन पर जीव-जगत का भविष्य बहुत कुछ निर्भर करता था। ये जीव छोटे, चपटे और भद्दे आकार के थे और उनके मुख-छिद्र की जगह नीचे की ओर एक गिगाफ जैसा काटा था। वे इसी के द्वारा कीचड़ से अपनी खूराक चूस लेते थे। लेकिन प्रकृति की ओर से उनको दो ऐसी अद्भुत वस्तुएँ मिली थीं जिनके कारण भविष्य में संसार के राज्य का सेहरा उन्हीं के सिर बँधना था। पहली वस्तु जो उन्हें मिली थी वह उनके शरीर का कड़ा खोल थी और दूसरी वस्तु जो उससे भी अधिक उपयोगी थी वह उनका मस्तिष्क था। इन दोनों की सहायता से वे पनविछिया आदि मांसभक्षी जीवों से अपनी रक्षा करने में समर्थ हो गये। इन जीवों को आस्ट्राकोडर्म (Astra-coderm) कहा जाता है जिसका अर्थ होता है कवचधारी-मत्स्य (Shell Skinned Fish)। इनके अगले भाग में कवच की तरह प्लेट होते थे लेकिन उनके पीछे का हिस्सा शल्कों से भरा रहता था।

साढ़े सात करोड़ वर्ष तक इन कवचधारी मछलियों ने भी समुद्रों पर अपना आधिपत्य कायम रखा लेकिन इसके पश्चात् इन्हीं की एक शाखा से हमारी मछलियों का विकास हुआ जो आस्ट्राकोडर्म या कवचधारी मत्स्यों से कहीं ज्यादा विकसित थीं।

आस्ट्राकोडर्म या कवचधारी मत्स्य

इन विकसित मछलियों के शरीर में मेरुदंड का विकास हुआ जो जीव-जगत में एक बहुत बड़ा परिवर्तन था। इसी मेरुदंड के विकास से जीव-जगत का दूसरा अध्याय प्रारम्भ होता है क्योंकि इसके विकास के कारण जीवों की शरीर-रचना में आमूल परिवर्तन हो गया था।

मेरुदंड के अतिरिक्त इन मछलियों के शरीर के भीतर हड्डियों के कंकाल का विकास हुआ जो इनके शरीर के ऊपर की मांसपेशियों के लिए एक सहारा बन गया। उनके शरीर पर सुफनों या पक्षों (Fins) का भी विकास हुआ और उनका शरीर और अधिक सूच्याकार हो गया जिससे उन्हें पानी में इधर-उधर तैरने में बहुत सुविधा हो गयी। इस सहूलियत से उन्हें अपनी रक्षा करने में बड़ी सहायता मिली। अब इन

जातों को कीचड़ से भरी हुई तलहटी में रहने की जरूरत न रह गयी और वे अपने भोजन के लिए पानी में स्वतन्त्रता से इधर उधर आने जाने लगे। उनके सुफ्ने जहां उनके शरीर का सन्तुलन कायम रखते थे वहीं वे उन्हें पानी में तेजी से तैरने में भी सहायता पहुंचाते थे। धीरे धीरे उनके शरीर का भारी कवच भी गायब हो गया क्योंकि उसकी अब उन्हें विशेष आवश्यकता नहीं रह गयी थी।

इन मछलियों की संख्या दिन-दूना रात चौगुना बढ़ने लगी और शीघ्र ही उनसे मीठे पानी के जलाशय भर गये। अन्त में स्थानाभाव के कारण इन्हें समुद्रों की शरण लेनी पड़ी जहां इनको रहने के लिए काफी स्थान मिल गया। वहां इनकी अनेकों जातियां विकसित हुई। इस प्रकार लगभग ५ करोड़ वर्षों तक समुद्रों में इन्हीं का एकछत्र राज्य रहा।

गये जिनमें हवा भरकर या निकालकर वे आज भी पानी में ऊपर-नीचे आती-जाती हैं। इन्हीं मछलियों से हमारी आजकल की कड़ी-हड्डीवाली या दृढ़ास्थि-मछलियाँ विकसित हुई हैं जिनकी लगभग बीस हजार जातियां हमारे मीठे पानी के जलाशयों और समुद्रों में फैली हुई हैं।

मछलियों का काल, जैसा ऊपर बता आया हूं, लगभग पांच करोड़ वर्षों का माना जाता है। इसके प्रथम चरण में ही खुश्की पर वनस्पति का विकास होना प्रारम्भ हो गया था। स्थल पर के ये प्रारम्भिक पौधे बिना पत्तियों और जड़ों के थे और वे धीरे-धीरे पृथ्वी पर फैल रहे थे। कुछ समय बाद इनमें भी विकास के चिह्न दिखाई पड़ने लगे और मछलियों का युग समाप्त होते-होते इनकी ऊँचाई ४०-५० फुट तक पहुँच गयी जिन्होंने धीरे-धीरे फैलकर पृथ्वी का काफी भाग घेर लिया।

खुश्की पर वानस्पतिक भोजन की इतनी प्रचुरता देखकर पानी के जीव धीरे-धीरे सूखे की ओर बढ़ने लगे। उनमें से जिन्होंने पहले-पहल स्थल पर आने का साहस किया उन्हें हम उभयचर (Amphibious) के नाम से पुकारते हैं। उभयचर, जैसा उनके नाम से स्पष्ट है, जल और स्थल दोनों स्थानों पर रहने योग्य जीव थे। उनका प्रारम्भिक जीवन तो पानी में बीतता था लेकिन अपने शरीर में फेफड़े का विकास करने के कारण वे खुली हवा में साँस लेनेवाले जीव थे। ये जीव पानी में भी काफी देर तक रह लेते थे और तैरने में तो बहुत उस्ताद थे। इन्होंने अपने पैरों का बहुत अधिक विकास किया जिससे ये खुश्की पर भी आसानी से चलने-फिरने लगे और इन्हीं पैरों की मदद से इन्हें संकटकाल आने पर एक जलाशय के सूखने पर दूसरे जलाशय में जाने की सहूलियत हो गयी। इन उभयचरों ने अपने कान का भी अद्भुत विकास किया जिससे उन्हें दूर से ही शत्रुओं की आहट मिल जाती थी और उनसे वे अपनी रक्षा करने में समर्थ हो जाते थे।

भोजन की अधिकता और शत्रुओं की कमी के कारण इन उभयचरों ने अपना अधिक समय स्थल पर ही बिताना उचित समझा लेकिन उन्हें अण्डे देने के लिए पानी की ही शरण लेनी पड़ती थी, क्योंकि उनके नरम अण्डों को नमी कायम रखने के लिए जल का सहारा आवश्यक था। वे साँस लेने में बहुत कुशल नहीं थे और हवा को अपने मुख के निचले हिस्से से उसी तरह भीतर की ओर ठेल देते थे जैसे मछलियाँ पानी को गलफड़ों के ऊपर ठेल देती हैं। इनकी रक्तवाहिनी शिराएँ भी इतनी विकसित नहीं

हो पायी थी, फिर भी उन्हें उस समय के अन्य जीवों की अपेक्षा अधिक सहूलियत तो प्राप्त थी ही। ये उभयचर पानी के निकट वाले जंगलों में काफी संख्या में बढ़ने लगे और लगभग दस करोड़ वर्षों तक पृथ्वी पर इन्हीं का बाहुल्य रहा। लेकिन उसके पश्चात् ये भी परिवर्तनशील संसार के साथ न चल सके और इनका भी संसार से लोप हो गया। आज हम इनके वंशजों में से मेढक आदि कुछ जीवों को ही देख सकते हैं।

इसी बीच जीवों की एक और शाखा अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रही थी जिसने धीरे-धीरे अपने को समय के परिवर्तन के अनुकूल बना लिया और सारी पृथ्वी पर देखते-देखते उन्हीं का राज्य कायम हो गया। ये थे हमारे सरीसृप, जिन्होंने सबसे पहले स्थल पर अपना राज्य स्थापित किया। उभयचरों की भाँति इन सरीसृपों को अण्डे देने के लिए पानी के भीतर नहीं जाना पड़ता था क्योंकि इन्होंने उभयचरों के नरम खोलवाले अंडों की जगह कड़े खोलवाले अण्डे देने का विकास कर लिया था जो जमीन पर ही फूटते थे। इस सहूलियत के बाद इनका पानी से और भी कम सम्बन्ध रह गया और कुछ भीमकाय सरीसृपों को छोड़कर, जो अपने भारी शरीर को सँभालने के लिए मजबूरन पानी की शरण लेते थे, ज्यादा संख्या उन्हीं की हो गयी जो खुश्की अथवा कीचड़ में अपना समय बिताते थे। ये अपने अण्डे खुश्की पर देने लगे जहाँ शत्रुओं की कमी थी और अपना पेट भरने के लिए भी खुश्की का सहारा लेने लगे जहाँ वानस्पतिक भोजन भरा पड़ा था। इन दोनों सुविधाओं के कारण इन जीवों की संख्या तो दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ती ही गयी, साथ ही साथ उनका आकार-प्रकार और उनकी भिन्न-भिन्न जातियों की भी उत्तरोत्तर वृद्धि होती गयी। इसका फल यह हुआ कि देखते ही देखते जल, थल और आकाश पर इन सरीसृपों का निष्कंटक राज्य स्थापित हो गया।

इन जीवों को केवल खुश्की पर अण्डे देने की सुविधा ही प्रकृति से नहीं मिली बल्कि उनके विश्राम के लिए अन्य साधन भी उन्हें प्राप्त हुए। इनके पैर उभयचरों की तरह बाहर की ओर फैले न रहकर इनके शरीर में सटे होने लगे जो इनके भारी शरीर के बोझ को सँभालने के लिए बहुत उपयुक्त साबित हुए। इतना ही नहीं, ये गलफड़े के बजाय अपनी पसलियों की सहायता से साँस लेने में सफल हो गये और इनके शरीर में रक्त-संचार की व्यवस्था भी और पूर्ण हो गयी।

इस प्रकार खुश्की का विशाल निरापद स्थान, प्रचुर मात्रा में भोजन तथा शत्रुओं का अभाव इन सरीसृपों की संख्या बढ़ाने में विशेष रूप से सहायक हुआ और धीरे-धीरे

उन्होंने सारे भूमंडल को घेर लिया। उनसे होड़ लेनेवाला कोई भी जीव पृथ्वी पर न रह गया और वे सारे संसार के स्वामी बन गये। अपना अधिक समय स्थल पर बिताने के कारण इन प्राणियों के पैर सुदृढ़ और खुश्की पर चलने के योग्य हो गये लेकिन इनमें से कुछ ने अपने पैर साँपों की तरह खो दिये तो कुछ के पैर पानी में तैरने के लिए पतवारनुमा हो गये और कुछ ने अपने शरीर पर एक प्रकार की झिल्ली का ऐसा विकास किया जिसकी सहायता से वे पक्षियों की तरह आकाश में उड़ने लगे।

लेकिन आकाश में उड़नेवाले ये सरीसृप, जिनकी जाँघ से लेकर हाथ की उँगलियों तक एक मजबूत झिल्ली का विकास हुआ था, हमारी चिड़ियों के पूर्वज नहीं थे। चिड़ियों के पूर्वज तो दूसरे ही सरीसृप थे जिनको प्रत्नपुंखीय या आर्कियोप्टेरिक्स (Archaeopteryx) कहा जाता है। ये यद्यपि अपना जीवन अन्य सरीसृपों के समान ही बिताते थे लेकिन इनकी विशेषता यह थी कि इनके शरीर पर पर थे।

उस समय के भीमकाय सरीसृपों में डाइनासोर (Dinosourus) सबसे प्रसिद्ध थे जिनकी एक नहीं अनेक जातियाँ थीं। इनमें डिप्लोडोकस (Diplodocus) नाम के डाइनासोर की लंबाई लगभग ९० फुट तक पहुँच गयी थी। यह शाकाहारी जीव था जिसकी दुम और गरदन तो बहुत लम्बी और पतली थी लेकिन जिसका मस्तिष्क मुरगी के अण्डे से बड़ा नहीं था।

दूसरा प्रसिद्ध डाइनासोर ब्राकियोसोरस (Brachiosaurus) था जो वजन में सबसे भारी था। इसका वजन लगभग ५० टन होता था। यदि वह आज जीवित होता तो सड़क पर खड़े होकर हमारे घर की दूसरी मंजिल तक पहुँचने में उसे जरा भी कठिनाई न होती। ये दोनों जीव पानी या कीचड़ में रहते थे जहाँ उन्हें अपने भारी शरीर को इधर-उधर ले जाने में ज्यादा कठिनाई नहीं पड़ती थी।
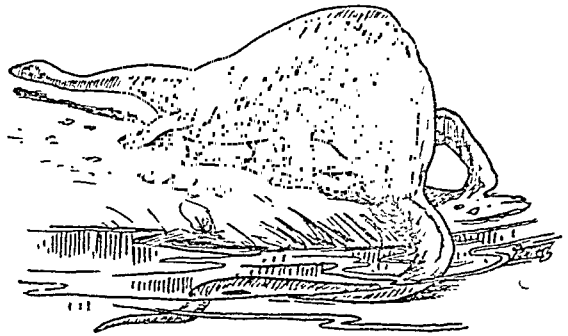
डाइनासोर

नीमरा प्रसिद्ध डाइनासोर टाइरनासारस (Tyrannosaurus) कहलाता था। यह लगभग २० फुट ऊँचा भयंकर मांसाहारी सरीसृप था जिसके मुँह में ६ इंच लम्बे नुकीले दाँत थे। इनमें से कुछ डाइनासोर ऐसे भी थे जिनके माथे पर नोकीले सींग थे तो कुछ की गरदन पर बड़े स्पैटों का कवच था। कुछ की दुम पर सींगनुमा तेज अस्त्र होते थे तो कुछ का सारा शरीर बड़े बड़े बड़े शल्कों से ढका रहता था।

इस प्रकार ये भारी डीलडौल वाले सरीसृप हमारी पृथ्वी पर लगभग १० करोड़ वर्षों तक राज्य करते रहे लेकिन धीरे-धीरे फिर ऐसा समय आया जब सारे संसार की जलवायु में बड़े-बड़े परिवर्तन होने लगे। पृथ्वी के दलदलीवाले भाग धीरे धीरे सूख गये और अतल से पहाड़ों की ऊँची-ऊँची चोटियाँ उठ कर आकाश को छूने लगीं। उत्तर की ओर से फिर बर्फीली हवाएँ चलने लगीं और उनके प्रकोप से सारे पेड़ पौधे नष्ट हो गये।

मौसम का यह महान परिवर्तन सरीसृपों के बहुत ही प्रतिकूल सिद्ध हुआ। गरम और नम जगहों में रहनेवाले ये भीमकाय जीव, जो अपना अधिक समय कीचड़ों में ही बिताते थे सूखे तथा पथरीले पहाड़ी स्थानों पर रहने में किसी प्रकार समर्थ न हो सके। इस मौसमी परिवर्तन के साथ वे अपने में परिवर्तन न कर सके अतः उन्हें संसार के रंग-मंच से सदा के लिए इस प्रकार उठ जाना पड़ा कि उनका कोई नामलेवा न रह गया।

आर्किआप्टेरिक्स

सरीसृपों के उस युग में जहाँ एक ओर डाइनासोर जैसे जीव अपने शरीर को भारी भरकम करने का विकास कर रहे थे, वहीं दूसरी ओर प्रतनपुत्तीय (आर्कियोप्टेरिक्स) नाम का एक प्रारम्भिक सरीसृप अपने शरीर को हल्का करके और परों का विकास करके आकाश में उड़ने की तैयारी कर रहा था। परिस्थितियों के अनुकूल होने के कारण उसे सफलता मिल गयी और उसकी एक नयी शाखा से आगे चलकर हमारी चिड़ियों का विकास हुआ जिनकी विशेषता उनके शरीर पर के पर थे। इन्हीं मुलायम परों के कारण चिड़ियों के शरीर का तापमान एक जैसा कायम रहने लगा और उन्हें सरीसृपों

की भाँति अपने शरीर के तापमान को ऊँचा रखने के लिए सूरज की गर्मी पर अवलम्बित रहने की आवश्यकता न रह गयी। वे इन्हीं परों की सहायता से हवा में उड़ने लगीं और उन्हें अपनी रक्षा और भोजन के लिए आकाश-जैसा एक विशाल सुरक्षित क्षेत्र प्राप्त हो गया।

जिस प्रकार एक प्रारम्भिक सरीसृप से पक्षियों की एक शाखा निकली, उसी प्रकार एक दूसरे प्रारम्भिक सरीसृप से कुछ छोटे जीव दूसरी ही दिशा में अपना विकास करने लगे। ये जीव चूहे के बराबर छोटे और चार पैरों वाले प्रारम्भिक जीव थे जिनका मुख्य भोजन मांस था। ये जीव गर्म खूनवाले प्राणी (Hot Blood Animal) कहलाते थे क्योंकि इनके शरीर का तापमान अन्य मेरुदंडी जीवों की तरह अपने आस-पास के पानी और हवा के तापमान के साथ-साथ न घट बढ़ कर सब अवस्था में एक-जैसा ही कायम रहता था। यही इन जीवों की एक खास विशेषता थी। इतना ही नहीं, इन जीवों के शरीर पर बालों का भी विकास हो गया था जो उन्हें सर्दी से बचाने में बहुत सहायक होते थे।

इन जीवों की बनावट कीचड़ में रहने योग्य नहीं थी, इसी लिए दलदल के युग में तो इनकी वृद्धि नहीं हुई लेकिन जैसे ही दलदल सूखे और संसार को हिम-युग ने घेर लिया वैसे ही इन छोटे जीवों के लिए भी विकास करने का स्वर्णयुग आ गया। अभी तक संसार में कहीं भोजन की कमी न थी और काहिल से काहिल जीवों को भी प्रचुर मात्रा में भोजन मिल जाता था लेकिन हिम-युग से आवृत हो जाने पर जब बर्फीली आँधियों से गरम प्रान्तों तक की वनस्पति नष्ट हो गयी और बड़े-बड़े काहिल सरीसृप भूख से तड़प-तड़पकर मर गये तो इन नये जीवों ने अनुकूल अवसर पाकर बहुत तेजी से अपना विकास किया। आगे चलकर इन्हीं जीवों का पृथ्वी पर राज्य स्थापित हुआ और ये ही जीव स्तनप्राणियों के नाम से प्रसिद्ध हुए।
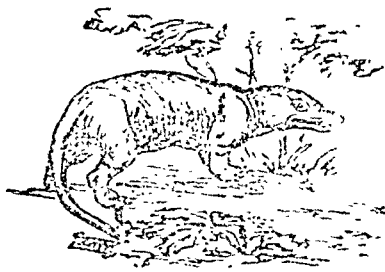
प्रारंभिक स्तनपायी जीव

ये प्रारंभिक स्तनपायी जीव कई बातों में अन्य जीवों से अधिक विकसित थे।

ये गरम खूनवाले जीव थे जिनके शरीर पर बाल घने थे और जिनका मस्तिष्क भी अन्य जीवों से अधिक विकसित था। इन सब गुणों के अलावा इन जीवों ने अपने में एक विकास यह भी किया कि ये अपने भ्रूण को अपने शरीर के भीतर ही रखने लगे और अण्डे के स्थान पर बच्चे जनने लगे। डक-बिल्ड प्लैटिपस तथा एकिडना को

एकिडना तथा डकबिल्ड प्लैटिपस

छोड़कर बाकी सब स्तनप्राणी अण्डे की जगह बच्चे जनते हैं। ये जीव अपने स्तनों से अपने शिशुओं को दूध पिलाते थे जिससे इनको स्तनपायी जीव कहा जाने लगा। यह एक ऐसी सुविधा थी जिसके कारण इनको इधर-उधर आने-जाने में बहुत आसानी हो गयी और इन्हें चिड़िया की तरह अपने बच्चों के भोजन की तलाश में इधर-उधर दौड़ धूप करने से छुट्टी मिल गयी।

सरीसृपों का शासनकाल समाप्त हो जाने पर पृथ्वी पर स्तनप्राणियों का राज्य आरम्भ हुआ। संसार की आबोहवा में बदलाव हो जाने के कारण मैदानों और पहाड़ों पर नये-नये किस्म के पेड़-पौधे उगने लगे थे जो गरम जलवायु के अनुकूल थे। चारों ओर की भूमि भी घास से ढक गयी थी और सब तरफ फिर वानस्पतिक भोजन की बहुतायत हो गयी थी लेकिन यह शाकाहारी भोजन इन प्रारम्भिक स्तनप्राणियों के लिए बेकार ही था क्योंकि वे सब मांसाहारी जीव थे। प्रारम्भ में तो ये अपना पेट कीड़े-मकोड़े आदि से भर लेने लगे जो उस समय चारों ओर काफी संख्या में फैले हुए थे। लेकिन यह क्रम अधिक दिन तक तो चलनेवाला था नहीं, इसमें कुछ ही समय में इनमें से कुछ ने विवश होकर शाक पात से अपना पेट भरना आरम्भ कर दिया और इस प्रकार ये शाकाहारी तथा मांसाहारी इन दो श्रेणियों में विभक्त हो गये। मांसाहारी श्रेणी के जीव शाकाहार से अपना पेट भरने में असमर्थ थे अतः ये शाकाहारियों के मांस से उस कमी को पूरा करने लगे और इस प्रकार एक के विनाश में दूसरे की रक्षा का क्रम चलने लगा जो प्रकृति के सन्तुलन में बहुत सहायक हुआ।

स्तनपायी जीव, जिनकी एक शाखा से मनुष्य भी है, आज भी सारे भूमंडल पर अपना राज्य कायम किये हुए हैं। इनको विद्वानों ने दस वर्गों में विभाजित किया है जिनमें अधिक संख्या उन्हीं की है जो स्थल पर रहते हैं। इनमें कुछ ऐसे भी

हैं जो अपना सारा समय जल में विताते हैं और कुछ ने आकाश में चिड़ियों की तरह उड़ने का अभ्यास कर लिया है लेकिन इनमें सबसे विकसित तो मनुष्य ही है जिसने अपने मस्तिष्क का अद्‌भुत विकास करके जल-थल-आकाश तीनों को अपने अधीन कर लिया है।

अन्य स्तनप्राणियों के वारे में हम इस पुस्तक में आगे पढ़ेंगे ही लेकिन मानव के विकास की कथा यहाँ संक्षेप में देना अनुचित न होगा, क्योंकि यह केवल अपने मस्तिष्क के विकसित हो जाने के कारण ही आज भूमंडल का स्वामी नहीं बन बैठा है वरन् उसे इस पद पर पहुँचने के लिए घोर संघर्ष भी करना पड़ा है।

पृथ्वी पर स्तनप्राणियों का आधिपत्य कायम हो जाने के वाद भी कुछ समय तक यह अनिश्चित ही रहा कि उसकी कौन-सी शाखा के हाथ में संसार का शासन-सूत्र रहेगा। जिस प्रकार भोजन की सहूलियत के कारण भीमकाय सरीसृपों का विकास हुआ था उसी प्रकार स्तनप्राणियों में भी मम्मथ (Mammoth) आदि कुछ विशाल शरीरवाले जीव ज़रूर विकसित हुए लेकिन स्तनप्राणियों की जिस शाखा से मनुष्यों का विकास हुआ वे बहुत छोटे कद के जीव थे। इन जीवों का शरीर छोटा और लम्वा था और उनके पैर भी छोटे ही छोटे थे। ये छोटे कद के जीव तेज़ भागने और पेड़ों पर चलने में वहुत उस्ताद थे। धीरे-धीरे इन्हीं जीवों से विकसित होकर लेमूर (Lemur), बन्दर, वनमानुष तथा मनुष्यों की शाखाएँ निकलीं जिनके विकास और अनवरत संघर्ष में लगभग पाँच करोड़ वर्ष लग गये।

हमारे ये पूर्वज अकारण ही पृथ्वी के स्वामी नहीं बन गये वल्कि उनमें अन्य जीवों की अपेक्षा कुछ ऐसी विशेषताएँ थीं जो उनकी उन्नति में वहुत सहायक हुईं। पहले तो उनके चारों पैरों में से अगले दोनों पैर धीरे-धीरे हाथों में बदले गये जिनके सहारे वे पेड़ों की डालियों को पकड़कर उन पर आसानी से चढ़ने उतरने लगे। उनके हाथ, और विशेषकर उनकी उँगलियाँ, उनके सबसे आवश्यक अंग बने जिनकी सहायता से वे इतनी शीघ्रता से अपनी उन्नति करने में समर्थ हो सके।

पेड़ों पर अधिक समय विताने के कारण इन जीवों की दृष्टि भी बहुत विकसित हुई क्योंकि एक डाल पर से दूसरी डाल पर कूदकर जाते समय यदि इनकी निगाह ज़रा भी चूकती तो ये पेड़ के नीचे ही दिखाई देते। लेकिन इन सबके अलावा इनको इस पद पर पहुँचाने में जिसने सबसे अधिक इनकी सहायता की वह था इनका

अद्भुत मस्तिष्क, जिसके द्वारा वे धीरे-धीरे सब पशुओ से अधिक बुद्धिमान होकर उनके स्वामी बन गये।

जिस समय ये जीव अपने विकास के लिए घोर संघर्ष कर रहे थे उसी समय उत्तर की ओर से बर्फ पिघलकर दक्षिण की ओर बढने लगी और एक बार फिर सारी पृथ्वी का हिम-युग ने घेर लिया। बडे बडे जंगल बर्फीली हवाओ के कारण सूख गये और सारे जीवधारियों के सम्मुख बडा सकट उपस्थित हो गया। पेडो पर रहनेवाले जीवो के सामने तो और भी कठिन समस्या उत्पन्न हो गयी क्योकि सर्दी के कारण सारे पेड सूखने जा रहे थे। ऐसे आपत्काल में जो जीव पेडों पर से उतरकर जमीन पर चलने में समर्थ हुआ वही अपने को उस हिमयुग में बचा पाया और वह प्राणी था "मनुष्य" जो भविष्य मे सारी पृथ्वी का स्वामी होने जा रहा था। उसने पृथ्वी पर सीधे खडे होकर अपनी जान ही नही बचायी बल्कि सारी वसुन्धरा को अपने अधीन भी कर लिया।

मनुष्य अन्य जीवो से अधिक बलवान क्यो हो गया इसका उत्तर देना कठिन नही है। उसने अपने मस्तिष्क मे सारे जीव-जन्तुओ को ही नही, प्रकृति को भी अपनी दासी बना लिया है। उसके न तो शेर की तरह पजे हैं और न साँपो की तरह विष-दत ही लेकिन आज वह किसी जीव से नही डरता। वह पख न रहते हुए भी आकाश में चिडियो की तरह उडता है और बिना गुफनो के ही मछलियो की तरह पानी के भीतर आ जा सकता है। वह अपने बुद्धि-बल से नित्य नये-नये आविष्कार करता है जिसके कारण आज उसे प्रकृति के ऊपर निर्भर रहने की आवश्यकता नही रह गयी है। अब उसमें अपनी नयी दुनिया अपने हाथो बनाने की क्षमता आ गयी है और वह शीघ्र ही चद्रलोक मे अपना उपनिवेश बनाने जा रहा है।

पेडो से उतरकर पृथ्वी पर आने के समय से लेकर लगभग ७ करोड वर्ष पूर्व तक मनुष्य को अपना अस्तित्व कायम रखने के लिए बहुत संघर्ष करना पडा। इस लम्बे काल मे पृथ्वी पर चार बार हिमयुग आया और लगभग सारी पृथ्वी हिम से आच्छादित हो गयी। लेकिन मनुष्य ने किसी न किसी प्रकार हर बार शीत के इन आक्रमणो से अपनी रक्षा कर ली। उसने हिमयुग में फल-फूल के अभाव में मास खाना प्रारम्भ किया और अन्य जीवो का शिकार करने के लिए लाठी और पत्थरों का सहारा लिया।

इस नये जीवन में उसे जंगलों पर निर्भर रहने की आवश्यकता न रह गयी और वह जंगलों को छोड़कर मैदानों में चला आया, जहाँ उसे बारहसिंघे, भैंसे, सुअर आदि जानवर काफी संख्या में मिल जाते थे। उसने अपनी लाठी में नोकीले पत्थर लगाकर बरछे का स्वरूप दिया जिससे उसे शिकार करने में और भी ज्यादा सहूलियत हो गयी। इसी समय उसने एक महत्वपूर्ण कार्य यह किया कि आग को अपने वश में कर लिया जो उसकी उन्नति में विशेष रूप से सहायक सिद्ध हुई और जिससे उसे अपनी रक्षा का एक बड़ा साधन मिल गया। इस काल को हम मानव का पूर्वप्रस्तर-काल (Old Stone Age) कहते हैं और इसका समय २५,००० ईसवी पूर्व से १५,००० ईसवी पूर्व तक मानते हैं।

इस पूर्व-प्रस्तर-काल में मनुष्य अपनी जंगली अवस्था में ही था और वह गरोह बांध कर जंगलों में इधर-उधर शिकार करता फिरता था। उसने अपने कार्यों का आपस में बँटवारा कर लिया था जिससे कुछ के जिम्मे शिकार करने का भार पड़ गया था, तो कुछ मारे हुए शिकार की खाल वगैरह साफ किया करते थे। उनमें कुछ ऐसे भी थे जिन्होंने अपने रहने के लिए झोपड़ियाँ आदि बनाने का काम पसन्द किया था और कुछ अपने गरोह की रक्षा के लिये सदैव युद्ध के लिए तत्पर रहते थे। इस प्रकार कार्य-विभाजन हो जाने से प्रत्येक गरोह में भिन्न-भिन्न कार्यों के लिए अलग-अलग लोग नियुक्त हो गये जिससे आगे चल कर उनमें जात-पात की शुरूआत होने लगी। फिर भी इस काल में हम "मानव" को एक शिकारी के रूप में ही देखते हैं।

इसके पश्चात् नवीन-प्रस्तर-काल (New Stone Age) प्रारम्भ होता है। मनुष्य ने इस काल में अपनी और अधिक उन्नति कर ली थी और उसने बीज बोकर खेती करना सीख लिया था। इसीलिए इस काल का मानव हमें कृषक के रूप में दिखाई पड़ता है। खेती के कारण उसे इधर-उधर घूमना छोड़कर एक स्थान पर बस जाना पड़ा और इस प्रकार ग्रामों के निर्माण का श्रीगणेश हुआ।

इस नवीन प्रस्तर काल में मनुष्य ने अपना शिकारी बाना उतारकर किसान का रूप धारण किया और जानवरों का शिकार करने की जगह वह उनको पालतू करने लगा। ये पालतू पशु उसकी रक्षा, भोजन तथा सवारी के काम आने लगे और उनसे उसे बहुत सहूलियत हो गयी। इस अवस्था पर पहुँचकर उसने आराम की साँस ली क्योंकि अब उसे न तो शत्रुओं का उतना डर सताता था और न भूखे मरने की ही आशंका रह गयी थी। अब वह अपने अवकाश का समय बर्तन, ऊनी कपड़े

तथा चित्रादि बनाने में बिताने लगा। उसने आग की मदद से खाना पकाना भी सीख लिया और धीरे-धीरे अपनी बुद्धि के सहारे और भी अनेक आविष्कार किये जो उसकी उन्नति में सहायक हुए। यह काल १५,००० ई० पू० से ३,००० ई० पू० तक का माना जाता है।

मनुष्य में अपनी रक्षा के लिए समूह बांधकर रहने की भावना पहले से ही थी और वह प्रारम्भ से ही हमें एक सामाजिक प्राणी के रूप में मिलता है। समाज में रहने की भावना ने ही आज उसको इस उच्च पद पर पहुँचा दिया है और इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि यदि वह समाज न बनाता तो उसकी रक्षा कदापि न हो पाती। इसी से यह कथन निर्मूल नहीं है कि समाज ने मानव को बनाया है, मानव ने समाज को नहीं।

नवीन-प्रस्तर-काल के बाद ताम्र-काल (Bronze Age) प्रारम्भ हुआ, जिसमें मनुष्य ने और भी अधिक उन्नति की। उसने पत्थर के स्थान पर कांसे के हथियार बनाने का मार्ग ढूँढ निकाला और अब वह पक्के मकान और पुल आदि बनाकर बड़े-बड़े गाँवों को नगरों में परिवर्तित करने लगा। उसने अपनी उन्नति के लिए अनेक नये-नये आविष्कार किये जिनमें पहिये का आविष्कार सबसे महत्त्वपूर्ण था। इस आविष्कार ने उसकी उन्नति में चार चाँद लगा दिये क्योंकि उसकी मदद से वह गाड़ी आदि बनाने लगा जिससे उसे यातायात की सुविधा हो गयी।

इसी समय मनुष्य ने उन्नति की ओर एक और बड़ा कदम बढ़ाया। उसने लिपि और वर्णमाला का निर्माण किया जिससे उसका ज्ञान आनेवाली पीढ़ी के लिए सुरक्षित रहने लगा। इसके कुछ समय बाद अर्थात् आज से लगभग तीन, सवा तीन हजार वर्ष पहले उसने लोहे का पता लगाया जो उसके हथियारों के लिए कांसे से अधिक कठोर और उपयुक्त था और जिसके मिलने में भी उतनी कठिनाई नहीं होती थी। इस आविष्कार के बाद से ही वर्तमान-लौहकाल प्रारम्भ होता है जो अभी तक चला जा रहा है। इस प्रकार जीवधारियों का यह लम्बा मार्ग समाप्त होता है जिसके एक छोर पर जीवाणु (अमीबा) तथा दूसरे छोर पर मनुष्य खड़ा है।

उस एक-कोशीय-जीव के उद्भव तथा क्रमिक विकास द्वारा किस प्रकार बड़े-बड़े नगर बस गये इसका संक्षिप्त वर्णन ऊपर दिया जा चुका है। जीवों का यह लम्बा इतिहास वैसे तो क्रमबद्ध-सा जान पड़ता है लेकिन इस शृंखला की कड़ियाँ बीच-बीच में ऐसी टूटी हैं कि उनके जुड़ने में लाखों वर्ष लग गये हैं। लेकिन

यह विशृंखलता हमें इसलिए नहीं खटकती कि हम लोग इतने लम्बे समय की महमा कल्पना ही नहीं कर पाते। हमको एक लाख और दस लाख वर्षों में कोई विशेष अन्तर नहीं जान पड़ता। लेकिन यदि हम इस प्रकार के समय-विभाजन के लिए घड़ी के डायल की मदद लें तो हमें इसे समझने में बहुत आसानी हो जावेगी।

थोड़ी देर के लिए मान लीजिए कि वह ममय जब से पृथ्वी पर जीवों का प्रादुर्भाव हुआ हमारी घड़ी के डायल के रूप में हमारे सामने है जो बारह घंटों की तरह बारह हिस्सों में विभाजित कर दिया गया है। अब हम जीवधारियों के विकास का ममय निर्धारित करने चल रहे हैं। घड़ी में बारह से छः बजे तक के समय में अर्थात् आधे समय में जीवों का कैसे विकास हुआ इसका कुछ हाल अभी तक जाना नहीं जा सका है। उस समय जीवों का क्या स्वरूप था और उनके विकास की क्या अवस्था थी, यह सब एकदम अन्धकार के गर्भ में है। इस काल को जीव का प्रारम्भिक काल (Proterozoic Age) कहा जाता है।

इसके बाद ६ से ७ बजे तक का समय जीव का पूर्व-आदि-काल (Early Palaeozoic Age) कहलाता है, जो जीव-जन्तुओं के प्रादुर्भाव का प्रथम अध्याय कहा जा सकता है। इस समय तक पशुओं का पृथ्वी पर कहीं नाम-निशान भी नहीं था।

फिर ७ बजे से ९ बजे तक का समय अन्तिम-आदि-काल (Later Palaeozoic Age) के नाम से पुकारा जाता है। इस काल में कुछ प्राणियों में रीढ़ की हड्डी का विकास हो गया था। मछलियाँ समुद्रों में घूमने-फिरने लगी थीं और धीरे-धीरे भूमि पर भी जीवों का आक्रमण शुरू हो गया था। उभयचरों के लिए यह समय बहुत अनुकूल था। इस काल के समाप्त होते-होते कुछ सरीसृप भी पृथ्वी पर दिखाई पड़ने लगे थे। लेकिन उस समय पृथ्वी की क्या अवस्था रही होगी जरा इसकी तो कल्पना कीजिए। सारा समुद्री-तट दलदलों से भरा रहा होगा और स्थान-स्थान पर ज्वालामुखी के उद्गारों से सारा वायुमंडल भाप से आच्छादित हो गया होगा। रह रहकर तूफान और भूकम्प पृथ्वी को कँपाते रहे होंगे और अनवरत मूसलाधार वर्षा से पृथ्वी ओत-प्रोत हो गयी होगी। ऐसे समय में कुछ जीवधारी पानी से निकलकर सूखे पर जरूर आने लगे होंगे लेकिन पानी से ज्यादा दूर जाने का साहस उनमें न रहा होगा। वे किनारे ही घूम-फिरकर फिर पानी में लौट जाते रहे होंगे और उन्होंने अपना सम्बन्ध पानी से न छोड़ा होगा।

इसके बाद मध्य-जीव-काल (Mesozoic Age) आता है जिसका समय ९ से ११ बजे तक का माना गया है। इस काल को हम सरीसृपों का स्वर्णकाल कह सकते हैं क्योंकि इस काल में सरीसृपों ने सारी पृथ्वी पर अपना आधिपत्य कायम कर लिया था। बड़े-बड़े भीमकाय डाइनासोर (Dinosourus) सारी पृथ्वी पर स्वच्छन्द घूमा करते थे और चमगादड़ की तरह परवाले टेरोडेक्टल या पक्षांगुष्ठ (Pterodactyls) आकाश में इधर-उधर उड़ा करते थे। यही नहीं, इस काल की समाप्ति तक कुछ पशुओं के अनुरूप सरीसृप भी कहीं-कहीं दिखाई पड़ने लगे थे जिनसे विकसित होकर हमारे आजकल के सरीसृपों का वंश चला है। इस काल के समाप्त होते-होते हमारी पृथ्वी पर से उन स्थूलकाय सरीसृपों का भी नाश हो गया जिनके चलने से भूमि काँपती थी।
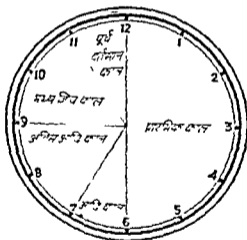
इसके बाद ११ बजे से १२ बजे का जो अन्तिम समय रह गया है, वही हमारा वर्तमान-काल (Cainozoic Age) है। इस काल में पृथ्वी पर स्तनधारियों का जन्म हो गया था और इसी समय में अर्थात् सुई के बारह तक पहुँचने से पहले मनुष्यों का भी जन्म और विकास हो गया जिसने अपने बुद्धिबल से सारी पृथ्वी को अपने अधीन कर लिया है।

यह तो हम पहले ही बता आये हैं कि जब हमारी पृथ्वी ने सूर्य से अलग होकर अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित की तो वह गैसीय अवस्था में थी। लेकिन धीरे-धीरे उसका शरीर ठोस होने लगा और उस पर इतिहास के अनेक चिह्न अंकित होने लगे।

आदिकाल में पृथ्वी पर जीवन का कोई चिह्न नहीं था। कहीं ज्वालामुखी तप्त वाष्प का फुफकार छोड़ रहा था तो कहीं भूकम्प उसे रह रह कर कँपा रहे थे। लगभग एक अरब वर्षों तक प्राणहीन पदार्थों की यह उथल-पुथल चलती रही लेकिन जब अशान्त आदिकाल की यह उलट पलट कुछ कम हुई तो उस विराट् जीवहीनता के बीच प्राण और मन का प्रादुर्भाव हुआ।

प्राणलोक में यह प्रारम्भिक जीवाणु, एककोशीय जीव के रूप में दिखाई पड़ा। इसके बाद संघबद्ध होकर ये अनेक कोशीय जीवों के रूप में विकसित हुए। वैसे तो इन जीवों का प्रत्येक कोश सम्पूर्ण और स्वतन्त्र है और उनमें से प्रत्येक की अपनी एक अलग सत्ता और शक्ति है, फिर भी जब तक ये संयुक्त होकर किसी की देह का निर्माण करते हैं तब तक उससे पृथक न होकर उसी के संरक्षण में लगे रहते हैं।

यहाँ हम संक्षेप में जड़ और जीव का भेद समझ लें तो हमें आगे बहुत आसानी हो जायगी। जीवों का शरीर, कोश तथा कोश-समूह का एक संकलन है जिनकी एक निश्चित आकृति होती है। अमीबा (Amoeba) आदि कुछ जीव इसके अपवाद अवश्य हैं लेकिन ये प्रारम्भिक जीव हैं और इनकी संख्या थोड़ी ही है।

जीव अपनी वृद्धि के लिए भोजन करते हैं और मल को त्याग देते हैं। वे साँस लेते हैं और खाद्य पदार्थ तथा प्राण-वायु की हलकी आँच में जलने से शक्ति प्राप्त करते हैं जिससे उनमें गति होती है।

जीव सन्तानोत्पत्ति कर सकते हैं और उनकी वृद्धावस्था हो जाने पर मृत्यु होती है।

सजीवों के जो लक्षण ऊपर दिये गये हैं उनसे युक्त होने पर भी हम उन्हें दो मुख्य भागों में विभक्त कर सकते हैं। १. जीव-जन्तु (Animals) तथा २. पेड़-पौधे (Plants)।

इन दोनों अर्थात् जीव-जन्तुओं तथा पेड़-पौधों की आकृति में तो भिन्नता है ही, इनकी आन्तरिक रचना में भी बहुत अन्तर रहता है। पेड़-पौधों में जीव-जन्तुओं की तरह मस्तिष्क तथा हृदय आदि अंग नहीं होते और उनकी गति भी बहुत सीमित

रहती है। वे जीव जन्तुओं की तरह एक स्थान से दूसरे स्थान तक नहीं आ-जा सकते और एक ही स्थान पर रहकर बढ़ते रहते हैं।

जीव जन्तु ठोस और द्रव पदार्थ को भोजन के रूप में ग्रहण करते हैं किन्तु पेड़-पौधे ठोस भोजन नहीं ग्रहण कर सकते।

जीव-जन्तु और पेड़-पौधों के कोशों में बहुत भेद रहता है। जीव-जन्तुओं के कोशों में भित्ति का अभाव रहता है और उनमें पर्णहरित (Chlorophyll) नहीं होता लेकिन पेड़-पौधों के कोशों में सेल्यूलोस (Cellulose) नामक पदार्थ से निर्मित एक कोश भित्ति होती है और उनमें पर्णहरित रहता है जो उनके हरे रंग के लिए उत्तरदायी है।

अणुवीक्षण यन्त्र की सहायता से हम इन आश्चर्यजनक जीव-कोशों को देख सकते हैं जिनकी समष्टि से एक एक देह निर्मित हुई है। ये कोश, देहरूपी गृह की एक-एक ईंटें हैं जो एक-दूसरे से चारों ओर से जुटी रहती हैं। प्रत्येक कोश के चारों ओर कोश भित्ति रहती है जो कोश के भीतर की वस्तुओं की रक्षा करती हुई एक कोश को दूसरे से अलग रखती है। प्रत्येक कोश के भीतर जीवन-रस भरा रहता है।

प्रत्येक कोश वास्तव में जीवधारियों के शरीर की इकाई है जो एक दूसरे के सहयोग से काम करते हैं। इनमें भिन्न भिन्न कार्यों के लिए भिन्न भिन्न कोश तो होते ही हैं साथ ही साथ भिन्न भिन्न कोशों या वर्गों के कोश-समूह भी विशेष ढंग के होते हैं।

जीवन-मूल या जीवन-रस जो प्रत्येक कोश में भरा रहता है एक प्रकार का गाढ़ा और चिपचिपा सा पदार्थ है जिसमें ९० प्रतिशत पानी और शेष भाग में प्रोटीन, गंधक तथा फास्फोरस आदि पदार्थ रहते हैं। यदि कोश का पानी का भाग निकाल दिया जाता है तो उसकी जीवन क्रियाएँ समाप्त हो जाती हैं। इससे यह स्पष्ट है कि पानी प्रत्येक प्रकार के जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक वस्तु है।

कोशों के विभाजन का ढंग भी कम आश्चर्यजनक नहीं होता। जब इन कोशों की वृद्धि हो जाती है तो वे दो कोशों में विभाजित हो जाते हैं और अपनी अलग-अलग स्वतन्त्र सत्ता कायम कर लेते हैं। इस प्रकार इनकी संख्या बढ़ती रहती है। यह कोश विभाजन दो प्रकार का होता है। एक परोक्ष कोश विभाजन कहलाता है और दूसरा प्रत्यक्ष कोश विभाजन।

परोक्ष कोश-विभाजन में अमीवा की तरह जीव का शरीर बढ़कर दो हिस्सों में बँट जाता है और दोनों सम भाग दो स्वतन्त्र जीव हो जाते हैं लेकिन प्रत्यक्ष कोश-विभाजन में किसी जीव का कोई विशिष्ट कोश जो संतानोत्पादक-कोश कहलाता है उसके शरीर से निकल पड़ता है और धीरे-धीरे बढ़कर नये जीव की सृष्टि करता है। यह अलैंगिक-सन्तानोत्पत्ति भी कहलाती है।

लेकिन जब नर और मादा के शरीर से दो प्रकार के सन्तानोत्पादक-कोश निकलकर अथवा मादा के शरीर के भीतर मिलकर एक संयुक्त-कोश बनाते हैं और यह संयुक्त-कोश जब वृद्धि के उपरान्त एक नये जीव के रूप में परिवर्तित हो जाता है तो हम उसे लैंगिक-संतानोत्पत्ति कहते हैं। प्राय: सभी स्तनप्राणियों की संतानोत्पत्ति इसी प्रकार की होती है।

यह तो हुआ कोश-विभाजन तथा जीवों की संतानोत्पत्ति का संक्षिप्त विवरण। अब उनके वर्गीकरण के बारे में भी कुछ जान लेना आवश्यक है। जीवों के अध्ययन में सुगमता लाने के लिए वैज्ञानिकों ने बड़े परिश्रम से उनका वर्गीकरण किया है। जीवों का वर्गीकरण करते समय उनकी शरीर-रचना, उनका व्यवहार तथा उनके विशेष गुणों को ध्यान में रखकर ही उन्होंने इस जीव-जगत को अनेक विभागों Phylums में बाँटा है। ये विभाग फिर श्रेणियों Classes में विभक्त किये गये हैं, और श्रेणियाँ भी वर्गों Orders में बाँटी गयी हैं। वर्ग फिर परिवारों Families में और परिवार वंशों Genuses में विभक्त किये गये हैं। वंशों को भी सुविधा के लिए जातियों Species में बाँटा गया है और कहीं-कहीं वर्गों और परिवारों की अधिकता देखकर उन्हें समुदायों Divisions और समूहों Groups के अन्तर्गत रखना पड़ा है अत: जीव-विज्ञान के अध्ययन के समय हमें विभाग, श्रेणी, वर्ग, परिवार, वंश तथा जाति के वही अर्थ समझने चाहिए जो क्रम से ऊपर समझाये गये हैं।

इस प्रकार के वर्गीकरण से दो लाभ हैं। इससे पहले तो हमें जीवों के अध्ययन में आसानी हो जाती है, दूसरे प्रत्येक जीव का एक निश्चित वैज्ञानिक नाम तै हो जाता है जो सब देशों और सब भाषाओं के लिए एक समान रहता है। संसार के सब वैज्ञानिक उसी नाम को प्रयोग में लाते हैं। हम बिल्ली को बिल्ली कहते हैं। अंग्रेजी में उसे (Cat) कैट कहा जाता है। संस्कृत में वह मार्जारी, फ्रांसीसी में शा

और जर्मन भाषा में काट्से कहलाती है लेकिन जीव-जगत के वर्गीकरण में उसका नाम फेलिस डोमेस्टिकस Felis domesticus ही रहेगा और इसी वैज्ञानिक या लैटिन नाम को हम सब भाषाओं में घरेलू बिल्ली के लिए इस्तेमाल करेंगे। नीचे इसका वंश-वृक्ष दिया जा रहा है जिससे हम उसके बारे में सब बातें एक नजर में जान सकते हैं—

जीव जगत

(ANIMAL KINGDOM)

उप जगत Sub Kingdom	मेरुदण्डीय Vertebrata
विभाग Phylum	मेरुपृष्ठीय Chordeta
श्रेणी Class	स्तनप्राणी Mammalia
वर्ग Order	मांसभक्षी Carnivora
परिवार Family	बिल्ली Felidae
वंश Genus	बिल्ली Felis
जाति Species	घरेलू-बिल्ली Felis domesticus

इस प्रकार हमारी घरेलू बिल्ली, इस विशाल जीव-जगत के, मेरुदण्डीय-उपजगत के, मेरुपृष्ठीय विभाग के, स्तनप्राणी-श्रेणी के, मांसभक्षी वर्ग के, बिल्ली परिवार के बिल्ली-वंश की घरलू-जाति की बिल्ली हुई। और उसका नाम हुआ घरेलू बिल्ली अर्थात फेलिस डोमेस्टिकस।

इसी प्रकार सारे जीव-जगत के प्रत्येक प्राणी का अलग-अलग वैज्ञानिक नाम है और प्रत्येक का इसी प्रकार वंश-वृक्ष बन सकता है लेकिन स्थानाभाव से उसका देना यहाँ संभव नहीं है फिर भी हमारा जीव जगत मोटे तौर पर किस प्रकार विभागों और श्रेणियों में विभाजित किया गया है वह नीचे दिया जा रहा है।

सारे जीव जगत को विद्वानों ने दो उप-जगतों में विभक्त किया है—

१ अमेरुदण्डीय उप जगत।

२ मेरुदण्डीय उप जगत।

पहले अमेरुदण्डीय उप-जगत लिया गया है, उसके बाद मेरुदण्डीय उप जगत।

१. अमेरुदंडीय उप-जगत

(SUB KINGDOM INVERTEBRATA)

१. प्रजीव विभाग

इस विभाग में कामरूपी या अमीबा आदि उन एक-कोशीय जीवों को रखा गया है, जो पानी में अथवा अन्य जीवों के शरीर में परोपजीवी होकर रहते हैं। इनकी लगभग १०,००० जातियाँ संसार में पायी जाती हैं।

२. छिद्रिष्ठ जीव विभाग

इस विभाग में सब प्रकार के स्पंज एकत्र किये गये हैं, जिनके शरीर में पानी के आयात-निर्यात के लिए अनेक छिद्र रहते हैं। इनकी लगभग २५,००० जातियाँ समुद्रों में पायी जाती हैं।

३. सुषिरान्त्रीय जीव विभाग

इस विभाग में हाइड्रा, प्रवाल, अनिलपुष्प आदि वे बहुकोशीय समुद्री जीव हैं जिनके अनेक कोश मिलकर उनके एक-एक अंग का निर्माण करते हैं। इनकी लगभग ७,००० जातियाँ समुद्रों में पायी जाती हैं।

कृमि-समूह (Group Vermes) यह समूह तीन विभागों में बाँटा गया है।

४. गंडूपदजीव विभाग

इस विभाग में जोंक (जलौका) आदि जीव है जिनकी लगभग ४,००० जातियाँ सारी पृथ्वी पर पायी जाती हैं।

५. चिपिट-कृमि विभाग

इस विभाग में कद्दूदाना आदि जीव हैं, जिनकी लगभग ४,५०० जातियां संसारभर में पायी जाती हैं।

६. सूत्र-कृमि विभाग

इस विभाग में सब प्रकार के सूत्र-कृमि इकट्ठा किये गये हैं जिनकी पृथ्वी पर लगभग १,६०० जातियाँ पायी जाती हैं।

७. कंटकित-त्वचजीव विभाग

इस विभाग में तारामछली, जलसाही आदि जीव रखे गये हैं जिनके शरीर की

काटेदार खाल होती है और जो प्राय समुद्र के ही निवासी हैं। इनकी लगभग १० ००० जातिया समुद्रो में पायी जाती हैं।

८ कोशस्थजीव विभाग

इस विभाग म सीपी घोघे और शख आदि जीव हैं जिनका कोमल शरीर कडे खोल के अन्दर सुरक्षित रहता है। इनकी लगभग ६१ ००० जातियाँ सारे ससार म पायी जाती हैं।

९ सन्धिपादजीव विभाग

इस बडे विभाग म सब प्रकार के कीट पतग और शतपदी सहस्रपदी बिच्छू तथा मकडिया एकत्र की गयी हैं। इनकी ससारभर में लगभग ५ ७५,००० जातिया का अभी तक पता चल सका है।

२ मेरुदडीय उप-जगत

(SUB KINGDOM VERTEBRATA)

१ मेरुपृष्ठीय जीव विभाग

इस विभाग म एस जीव इकट्ठे किय गये हैं जिनके शरीर में मेरुदड (रीढ की हड्डी) या नाटाकाड रहता है। यह विभाग निम्न लिखित पाच श्रेणियो में विभाजित किया गया है।

(क) मत्स्य श्रेणी (कोमलास्थि तथा दृढास्थिमत्स्य श्रेणिया)

इन दोनो श्रेणियो में क्रमश कोमलास्थि तथा दृढास्थि मछलियाँ एकत्र की गयी हैं जिनसे हम सभी परिचित हैं। इनकी लगभग २० ००० हजार जातियाँ सारे ससार में पायी जाती हैं।

(ख) उभयचर श्रेणी

इस श्रेणी में मेढक आदि उभयचर हैं जो जल और थल दोनो में रह सकते हैं। इनकी लगभग १८०० जातियाँ ससारभर में पायी जाती हैं।

(ग) सरीसृप श्रेणी

इस श्रेणी में साँप कछुए मगर छिपकली आदि रेंगनेवाले जीव रखे गये हैं जिनकी लगभग ५ ००० जातियाँ पृथ्वी पर पायी जाती हैं।

(घ) पक्षि-श्रेणी

इस श्रेणी में सब प्रकार के पक्षी रखे गये हैं, जो आकाश में उड़ने के कारण अन्य सब जीवों से भिन्न हैं। इनकी लगभग २०,००० जातियां सारे संसार में फैली हुई हैं।

(ङ) स्तनप्राणी-श्रेणी

यह अंतिम श्रेणी स्तनपायी जीवों की है, जिसमें सब तरह के जानवरों को इकट्ठा किया गया है। इनकी लगभग ७,००० जातियां हमारी पृथ्वी पर पायी जाती हैं।

इस प्रकार हमारा यह जीव-जगत असंख्य जीवों से परिपूर्ण है जिनके संवेदनशील जीवकोशों के समूह, उनकी देह-क्रिया का ऐसा आश्चर्यजनक कर्तव्य विभाग कर रहे हैं कि सहसा उन पर विश्वास नहीं होता। शरीर के पाकयंत्र के जीवकोश एक तरह का काम करते हैं, तो मस्तिष्क के जीवकोश दूसरी तरह का। लेकिन फिर भी सब जीवकोश एक ही जाति के हैं। किसकी आज्ञा से इनके कार्य का विभाजन किया गया है और किस अज्ञात शक्ति की प्रेरणा से देहरूपी यंत्र को सुचारु रूप से चलाने के लिए इनका ऐसा अद्भुत सामंजस्य सम्भव हुआ है, बहुत सोचने पर भी इसका कुछ कूल-किनारा नहीं मिलता। फिर भी इस जड़ जगत में क्षुद्रतम जीवकोश को वाहन बनाकर चैतन्य का जो सूक्ष्म प्रकाश आलोकित हुआ है वह उस महाज्योति के अंश के सिवा और कुछ नहीं है, जो सृष्टि के आदि में भी वर्तमान था। उसी महा चैतन्य के रहस्योद्-घाटन के प्रयत्न में आज का वैज्ञानिक लगा हुआ है। देखें उसे कब सफलता मिलती है।

कालाकांकर, उत्तर प्रदेश

सुरेशसिंह

सूची

जीव-जगत

(ANIMAL KINGDOM)

पृष्ठ

भाग २—मेरुदंडीय उपजगत

Sub-Kingdom Vertebrata

अजगर परिवार	Famil
अजगर	Ind
मटिहा साँप	Ear
नाग परिवार	Family
नाग	Col
नागराज	Kin
नागिन	Indi.
करायत	Kara
घोड़-करायत	Banc
धामिन	Rat
पनिहा साँप	Water
चीतल	Chitt
दुबोइया परिवार	Family
दुबोइया	Russe
फुरसा	Phoor
३. पक्षि-श्रेणी	(Class A
पुराहनव समूह	Divisio
नतहनव समूह	Divisio
मंजुल वर्ग	*Order* (
पनडुब्बी परिवार	Family (
छोटी पनडुब्बी	Little
बड़ी पनडुब्बी	Great
समुद्रकाक वर्ग	*Order Pro*
समुद्र-काक परिवार	Family Pr
तूफानी समुद्र-काक	Stormy l
महाबक वर्ग	*Order Cicon*
महाबक उपवर्ग	Sub-order (
महाबक परिवार	Family Cic
लगलग	White N
जाँघिल	Painted S

रंगीन चित्रों की सूची

वर्गीकरण

जीव–जगत में वर्णित जीवों का वर्गीकरण करते समय जो शब्द प्रयुक्त हुए हैं, वे पाठकों की सुविधा के लिए क्रमानुसार नीचे दिये जा रहे हैं:

जगत—Kingdom
उप–जगत—Sūb Kingdom
विभाग—Phylum
श्रेणी—Class
वर्ग—Order
परिवार—Family
वंश—Genus
जाति—Species

ये श्रेणी, वर्ग, परिवार, वंश तथा जाति भी कभी-कभी जीवों की अधिक संख्या हो जाने पर आसानी के लिए उप-श्रेणी, उप-वर्ग, उप-परिवार, उप-वंश तथा उप-जातियों में बाँट दिये जाते हैं जिससे पाठकों को उनका वंश-वृक्ष समझने में कठिनाई न हो। यही नहीं कहीं-कहीं उप-वर्गो के बड़े हो जाने पर सुविधा के लिए उन्हें पहले समूहों (Sections) में विभक्त करके तब परिवारों (Families) में बाँटा गया है।

आशा है, पाठक इस पुस्तक को पढ़ते समय ऊपर के शब्दों का वही अर्थ लगायेंगे जो उनके वर्गीकरण के क्रम में एक विशेष अर्थ के लिए प्रयुक्त हुए हैं।

जीव-जगत

भाग १

अमेरुदंडीय उपजगत

SUB KINGDOM INVERTEBRATA

खंड १

प्रजीव विभाग

(PHYLUM PROTOZOA)

जीव क्या है, उसके जीवन का आधार क्या है, और उसकी रचना किन पदार्थों से हुई है, इन जटिल प्रश्नों का पूर्णरूप से समाधान यद्यपि अभी नहीं हो सका है, फिर भी विश्व ने इस ओर काफी प्रगति कर ली है और धीरे-धीरे इस संबंध में हम काफी बातें जानने लगे हैं।

हमें विज्ञान की सहायता से यह ज्ञात हुआ है कि जीवन केवल प्रथमावलास (Protoplasm) में रहता है जो एक गाढ़ा-गाढ़ा-सा, वर्णरहित पारभासी (Translucent) पदार्थ है और जो केवल नमी ही में रह सकता है।

हमें विज्ञान से यह भी मालूम हुआ है कि संसार के समस्त प्राणी एक या असंख्य जीवकोशों (Cells) के समूह हैं जो अपने कतिपय गुणों के कारण जीव कहलाते हैं और जड़ पदार्थों से पृथक माने जाते हैं।

इसलिए जीवों के बारे में कुछ जानने से पहले हमें जड़ और जीव के भेद को भली भाँति समझ लेना चाहिए।

जीवों में कुछ ऐसे विशिष्ट गुण होते हैं जो जड़ या निर्जीव पदार्थों में नहीं होते और इन्हीं गुणों के कारण हम उनको जीव या चेतन प्राणी कहते हैं। ये निम्न प्रकार हैं—

१. प्रचलन २. उद्दीप्यता ३. श्वसन ४. पोषण ५. वृद्धि ६. उत्सर्जन ७. प्रजनन।

प्रत्येक जीव पर वाह्य प्रभाव का असर होता है और उसके कारण उसमें थोड़ा या बहुत परिवर्तन दिखाई पड़ता है जो उसमें उद्दीप्यता (Irritability) का गुण स्पष्ट करता है। ये प्रभाव गर्मी, सर्दी, प्रकाश तथा अन्य उद्दीपनों के द्वारा हो सकते हैं।

सभी जीव गतिशील होते हैं अर्थात् चलने-फिरने में समर्थ होते हैं, लेकिन जड़ पदार्थ इससे सर्वथा वंचित रहते हैं। जीवों के इस प्रचलन (Locomotion) के गुण को हम भली भाँति जानते हैं।

सब जीवित प्राणी सांस लेते हैं। वे प्राणवायु (Oxygen) को अपने में खींचते हैं और कार्बन डाई आक्साइड को बाहर निकाल देते हैं। उनका यह श्वसन-क्रिया (respiration) उनका एक प्रसिद्ध गुण है।

सभी चेतन प्राणियों को अपना जीवन बनाये रखने के लिए आहार की आवश्यकता पड़ती है और वे भिन्न भिन्न प्रकार के भोजनों से अपना पेट भरते हैं जिससे उनके शरीर का पोषण होता है। इस पोषण (Nutrition) के बारे में हम सब भली भाँति जानते हैं जो जीवधारियों का एक मुख्य गुण है।

सभी सजीव प्राणियों में अपनी वृद्धि की क्षमता होती है और उनका शरीर प्रौढ़ावस्था प्राप्त होने तक बढ़ता है। उनकी इस वृद्धि (growth) को हम सब स्पष्ट रूप से देख सकते हैं।

सभी जीव जिस प्रकार प्राणवायु (Oxygen) को अपने में खींचकर गंदी वायु को बाहर निकाल देते हैं उसी प्रकार वे भोजन खाकर और पानी पीकर मल-मूत्र भी त्यागते हैं। उनके इस गुण को हम उत्सर्जन (excretion) कहते हैं।

अन्त में जीवों का प्रजनन (reproduction) गुण आता है जो उनका महत्वपूर्ण गुण है। इस गुण के फलस्वरूप प्रत्येक प्राणी अपनी आकृति की सन्तान उत्पन्न करके अपनी वंशवृद्धि कर सकता है, लेकिन जड़ पदार्थ ऐसा नहीं कर सकते।

संसार में सबसे निम्नतर जीव प्रजीव (Protozoa) या एककोशीय प्राणी हैं जिनके शरीर की बनावट संसार के सभी प्राणियों से सरल और निम्नकोटि की कही जा सकती है।

इन निम्न जीवों को हम जीवधारियों का प्रारम्भिक स्वरूप कह सकते हैं। विकासवाद की सीढ़ी पर जहाँ मनुष्य सबसे ऊँचे सिरे पर है वहाँ इन प्राणियों को हम सबसे निचली सीढ़ी पर रख सकते हैं।

ये एककोशीय प्राणी पानी में रहनेवाले बहुत ही सूक्ष्म जीव हैं जिन्हें बिना किसी अणुवीक्षण यन्त्र के नहीं देखा जा सकता। हाँ, जब ये करोड़ों की संख्या में एक साथ रहते हैं तो हमें पानी के रंग में कुछ तब्दीली जरूर दिखाई पड़ती है। यदि

इनका रंग हरा हुआ तो पानी हरछौंह-सा दिखता है और यदि ये रंगीन न हुए तो ऐसा जान पड़ता है जैसे किसी ने पानी में थोड़ा दूध मिला दिया हो।

यदि हम किसी गढ़े के एक बूंद पानी को खुर्दबीन के नीचे रखकर देखें तो हमें दूसरी ही दुनिया दिखाई पड़ने लगती है। उसी एक बूंद जल में असंख्य जीव निर्भय इधर-उधर तैरते दिखाई पड़ते हैं जिन्हें हम विना अणुवीक्षण यंत्र के नहीं देख सकते।

ये प्रजीव इतने निम्नतर होते हुए भी किसी जीवधारी से हीन नहीं कहे जा सकते। यद्यपि इनके भोजन करने, साँस लेने, चलने-फिरने तथा जीवन की अन्य क्रियाओं के लिए अलग-अलग अंग नहीं होते, फिर भी प्रकृति ने इनको खाना खाने, मल त्याग करने और संतान-वृद्धि करने की सहूलियत दे रखी है। यही नहीं, ये दुश्मनों से अपनी रक्षा करने की भी क्षमता रखते हैं।

जैसा ऊपर बता आया हूँ, ये एककोशीय प्राणी पानी या नम जगह में ही रह सकते हैं। नमी सूखते ही इनका अन्त हो जाता है, लेकिन संसार से इनका अन्त होना संभव नहीं क्योंकि ये सभी जलाशयों, नम जगहों और यहाँ तक कि अन्य विकसित प्राणियों के शरीर में भी पाये जाते हैं।

इनकी कितनी जातियाँ पृथ्वी पर हैं, इसका ठीक-ठीक पता अभी तक नहीं चल सका है। तो भी इनकी २५,००० से अधिक जातियों का अभी तक पता चला है। ये जीव वैसे तो विद्वानों द्वारा चार मुख्य श्रेणियों में बाँटे गये हैं, लेकिन यहाँ इनमें से केवल एक कूटपाद श्रेणी (Class Rhizopoda) का वर्णन दिया जा रहा है जिसमें के प्रसिद्ध प्रजीव अमीवा के वर्णन से हम इस विभाग के सब जीवों के बारे में जान सकेंगे क्योंकि उनकी आदतें एक दूसरे से बहुत कुछ मिलती जुलती होती हैं।

कूटपाद श्रेणी

(CLASS RHIZOPODA)

प्रजीवों की इस श्रेणी में वे सब प्रजीव एकत्र किये गये हैं जिनकी यह विशेषता है कि वे कूटपादों के द्वारा अपने जीवन के महत्त्वपूर्ण कार्य करते हैं। भोजन के पचाने और चलने-फिरने में तो इनके कूटपाद प्रमुख भाग लेते हैं।

चलने के समय ये प्रजीव अपने अंग से एक या एक से अधिक उँगली के आकार के हिस्से को, जो कूटपाद कहलाता है, आगे की ओर बढ़ाते रहते हैं और उसमें

प्रथमावलास के सतत प्रवाह के कारण ये कूटपाद (Pesudopodia) उभरते चले आते हैं और उन्हीं के सहारे ये जीव आगे की ओर खिसकते जाते हैं।

इस श्रेणी के प्रसिद्ध जीव कामरूपी अमीबा (Amoeba) या जीव-पंक से हम भली भाँति परिचित हैं। यहाँ इसी का वर्णन दिया जा रहा है।

कामरूपी अमीबा

(AMOEBA)

अमीबा या कामरूपी जीवधारियों में सबसे छोटा जीव है। यह एक इंच के सौवें हिस्से के बराबर का सूक्ष्म प्राणी है। यह तालाबों की कीचड़ और तह में डूबी हुई सड़ी-गली वनस्पति में पाया जाता है। कुछ विद्वान इसका स्थान खुले हुए साफ़ पानी में भी बताते हैं। यह इतना छोटा जीव है जिसे हम बिना खुर्दबीन के नहीं देख सकते।

अमीबा

यह प्रथमावलास (Protoplasm) का एक छोटा-सा रूप है जो बनावट और शकल में अण्डे की सफ़ेदी की तरह होता है। इसके बारे में आश्चर्यजनक बात यह है कि उसकी शकल सदा बदलती रहती है, जिसकी वजह से यह अपनी जगह से खिसकता रहता है और इसी से इसे कामरूपी भी कहा जाता है। कामरूपी वैसे तो शुरू में गोल रहता है लेकिन कुछ समय बाद इसमें से भद्दी उँगली की शकल के हिस्से जिसे कूटपाद (Pesudopodia) कहते हैं, इसके हाशिए से निकलने लगते हैं जो धीरे धीरे बढ़ते और फैलते जाते हैं। इसका नतीजा

यह होता है कि इसका शरीर छोटा होता जाता है। फिर कुछ देर बाद इसका शरीर भी बढ़ने लगता है और वह बढ़कर कूटपादों के बढ़ाव तक पहुँच जाता है जिससे इसकी शकल फिर गोल हो जाती है। इसके बाद फिर नये कूटपाद इसके शरीर से निकलते हैं और यही क्रम फिर चलता है जिससे अमीबा अपने स्थान से खूराक की तलाश में आगे खिसकने में समर्थ हो जाता है।

अमीबा की बनावट इतनी सरल नहीं होती जितनी हम लोग ख्याल करते हैं। इसके शरीर के बीच में एक पारभासी हिस्सा रहता है जो इसके जीवित रहने पर स्पष्ट दिखाई पड़ता है। यही इसका जीवन-केन्द्र है, जिसमें इसके जीवन तथा इसके शरीर की सारी शक्ति संचित रहती है। इसके नाश से अमीबा की मृत्यु हो जाती है। इसी जीवन-केन्द्र से इसके प्रत्येक कार्य का संचालन होता रहता है । इस जीवन-केन्द्र के चारों ओर के भाग को भोजन और मलत्याग करने का काम मिला है।

अमीबा मुख्यतया भोजन की तलाश में ही इधर-उधर खिसकता रहता है। वह वनस्पतियों के सड़े-गले कणों को, जो बहुत ही सूक्ष्म कणों की शकल में पानी में फैले रहते हैं, अपने कूटपादों से चारों ओर से इस तरह घेर लेता है कि वे इसके शरीर में सोख लिये जाते हैं। शरीर में दाखिल होने के बाद भोजन का फुजला इसके शरीर की ऊपरी सतह तक पहुँच जाता है जो अन्त में इसके आगे खिसक जाने पर इसके शरीर से अलग होकर वहीं रह जाता है। भोजन और मलत्याग का सबसे पुराना तरीका यही है ।

अमीबा में भोजन के चुनाव की एक अद्भुत शक्ति होती है जिससे वह वैसा ही पदार्थ अपने में दाखिल होने देता है जो उसके लिए लाभदायक है। इससे हम उसके **स्वाद के ज्ञान का** आभास पाते हैं।

इसकी वृद्धि का ढंग रोचक होन पर भी सरल ही है। यह अन्य विकसित प्राणियों की तरह अण्डे बच्चे देकर अपनी संतान-वृद्धि नहीं करता, बल्कि एक अमीबा जब बढ़कर एक खास कद का हो जाता है तो वह बीच में पतला होने लगता है और धीरे-धीरे बीच का हिस्सा इतना पतला हो जाता है कि वहीं से इसका शरीर टूटकर दो हिस्सों में बँट जाता है। इस प्रकार एक अमीबा ही दो हिस्सों में बँटकर दो अलग अमीबा बन जाते हैं। ये नये अमीबा समय पाकर बढ़ कर पुराने हो जाते हैं और उनमें भी समय आने पर इसी तरह विभाजन होता है। इस तरह इनकी वृद्धि का क्रम बराबर चलता रहता है।

हैं और जिन्हें विना खुर्दवीन के देखना सम्भव नहीं होता। इन छिद्रों से भीतर की ओर पतली-पतली नालियां जाती हैं जो भीतर जाल की तरह फैली रहती हैं। आगे चलकर ये गोलाकार कोष्ठों में खत्म हो जाती हैं, जो सतह से कुछ और भीतर रहते हैं। इन कोष्ठों में भीतर की ओर एक हिस्सा कुप्पी की तरह वड़ा रहता है जिसमें होकर स्पंज अपने भीतर पानी खींच लेता है और उसमें से अपनी खूराक खींच कर उसे सतह पर के सूराखों से वाहर निकाल देता है। इन वड़े सूराखों में होकर जाने के लिए भीतर की ओर से उसी तरह पतली-पतली नालियों का जाल फैला रहता है जो आपस में मिल कर पतली होती जाती हैं और अन्त में सतह के पास पहुँच कर ऊपर के वड़े सूराखों में मिल जाती हैं। इस तरह ये स्पंज भी वरावर अपने भीतर पानी खींचते और वाहर की ओर फेंकते हैं, जिससे इन्हें केवल अपनी खूराक ही नहीं मिलती वल्कि आक्सीजन भी मिलता है। यह आक्सीजन या प्राणवायु इनको जिन्दा रखने के लिए भोजन से भी ज्यादा आवश्यक है।

स्पंज की संतान-वृद्धि का तरीका भी सरल ही है। साल में एक खास समय आने पर इनमें कीट और डिम्वकोश पैदा हो जाते हैं। फिर एक स्पंज का वीजकीट लहरों द्वारा किसी दूसरे स्पंज के पास पहुँच जाता है और पानी के साथ भीतर चला जाता है। वहाँ यदि वह डिंवकोश से मिल गया तो डिम्व में एक प्रकार का परिवर्तन होने लगता है और वह पहले दो, फिर चार और फिर आठ और इसी तरह अनेकों भागों में विभाजित होता रहता है। यहाँ तक कि वह एक गोल शकल में वदल जाता है।

इस नवजात गोलाकार पदार्थ में चार किलिया निकल आते हैं और उनके हरकत करने से यह गोलाई में घूमने लगते हैं। कुछ समय वाद यह स्पंज के वड़े सूराख से होकर वाहर निकल आता है और कुछ घंटे तक पानी में तैरने के वाद पानी की तह में वैठ जाता है और धीरे-धीरे वढ़कर नया स्पंज वन जाता है।

कुछ स्पंजों की वृद्धि दूसरे तरीके से भी होती है। समय आने पर इनके शरीर में एक हिस्सा वढ़ने लगता है और वढ़ते-वढ़ते वह स्पंज से टूट कर अपना अलग अस्तित्व कायम कर लेता है और वहकर किसी दूसरी जगह पर वैठ जाता है, जहाँ वढ़कर वह एक नया स्पंज वन जाता है।

स्पंजों के वहुत कम दुश्मन होते हैं क्योंकि इनके रवड़ जैसे शरीर को दूसरे

जीव पहले तो खाना पसन्द ही नहीं करते, फिर ये खतरा देखकर अपने शरीर से एक प्रकार की तेज गंध भी छोड़ते हैं जो इन्हें दुश्मनो से बचाती है।

छिद्रिष्ठ जीव विभाग को वैसे तो तीन वर्गों में बांटा गया है, लेकिन यहाँ केवल एक वर्ग (Order Euceratosa) का वर्णन दिया जा रहा है जिसमें हमारे नहाने वाले स्पंज आते हैं।

स्पंज वर्ग

(ORDER EUCERATOSA)

इस वर्ग मे वे स्पंज रखे गये हैं जो नहाने के अलावा मनुष्यों के अन्य कामों में भी इस्तेमाल होते हैं।

इन स्पंजो के शरीर के भीतर कड़े रेशों का एक जाल सा रहता है। ये सब हमारे काम के होते हैं और इनका नहाने, चित्रकारी, सफाई तथा दूसरी तरह के सैकड़ो कामों मे प्रयोग होता रहता है।

इनके दुश्मनो की सख्या बहुत कम होती है क्योंकि इनके अस्वादिष्ठ शरीर को कोई खाना नही पसन्द करता। फिर भी कुछ समुद्री जीव इनके शरीर को अपने छिपने का स्थान बनाने में नहीं चूकते। कुछ केकड़े तो अपने शरीर पर स्पंजो को चिपकने का अवसर इसलिए देते हैं कि उनके कारण उन्हें कोई देख न सके और वे अपने दुश्मनो से तो बच ही जायें, साथ ही साथ अपना शिकार भी आसानी से पकड़ लिया करें।

स्पंज

(SPONGE)

पहले स्पंज के विषय में लोगो की तरह-तरह की धारणा थी। कुछ लोग इन्हें पौधे समझते थे तो कुछ इन्हें पौधो और जानवरो के बीच की चीज बताते थे। कुछ का ख्याल था कि ये सब पथराये हुए समुद्री फेन हैं और कुछ ने इनके छिद्रो में कीडो को देखकर यह अनुमान लगाया था कि ये इन कीडो के रहने के घर हैं, जिन्हें कीडो ने

बड़े परिश्रम से बनाया है, पर उन्नीसवीं सदी के शुरू में डा० रार्बट ग्राण्ट ने इन स्पंजों का असली पता लगाया और तब से हम सब यह जानने लगे कि ये भी हमारे जीवधारियों में से एक हैं।

स्पंज वैसे देखने में बहुत शान्त और काहिल से जानवर जान पड़ते हैं, लेकिन इनके शरीर की भीतरी मशीन दिनरात काम में लगी रहती है। इनके शरीर की ऊपरी सतह पर बहुत से छिद्र रहते हैं जिनके द्वारा इनके शरीर के भीतर बराबर पानी
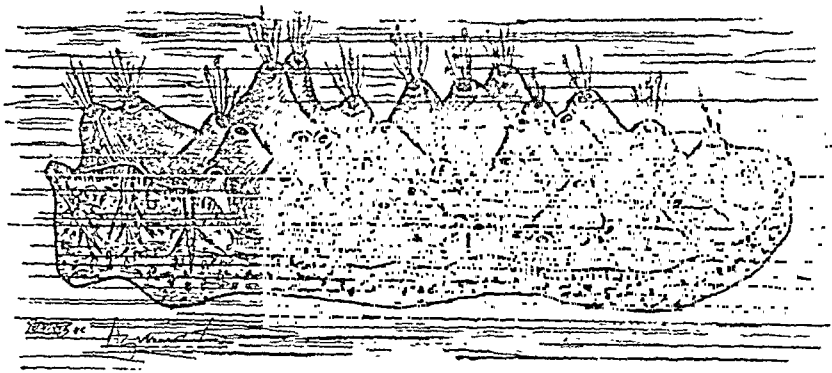
स्पंज

आता जाता रहता है। पानी में से ये अपनी खूराक और प्राणवायु सोखकर उसे बाहर फेंका करते हैं। इस प्रकार एक औसत दर्जे का स्पंज प्रतिदिन ४० गैलन पानी अपने भीतर खींचकर बाहर निकालता है (१ गैलन=लगभग ५ सेर)।

नहाने के स्पंज अधिकतर भूमध्यसागर और भारत के पश्चिमी समुद्रों में पाये जाते हैं। ये केवल नहाने के ही नहीं बल्कि चित्रकारी, डाक्टरी तथा अनेक वस्तुओं की सफाई आदि के लिए बहुत उपयोगी होते हैं। इनके बारे में अन्य बातें पहले ही दी जा चुकी हैं। अतः उनको फिर दुहराने की आवश्यकता नहीं रह जाती।

नहाने के जीवित स्पंज देखने में पशुओं की कच्ची कलेजी के टुकड़े से लगते हैं। ये राखीमायल पीले या कलछौंह भूरे रंग के होते हैं और इनके भीतर सींग जैसे कड़े रेशों का जाल-सा फैला रहता है जिसे हम उनकी ठठरी या कंकाल कह सकते हैं।

जैसा बताया जा चुका है, स्पंज बहुत निरीह जन्तु हैं और ये समुद्र में भीतर चट्टानों या तहों पर चिपके रहते हैं। अतः उनको पकड़ने में ज्यादा दिक्कत नहीं उठानी पड़ती। इन्हें या तो बंसियों से फँसाया जाता है या पनडुब्बे तह तक जाकर इनको चाकुओं से काट लेते हैं और फिर इन्हें पानी से बाहर फेंका या टाँग दिया जाता है। पानी से बाहर निकलने पर ये मर जाते हैं और इनके भीतर का जीवद्रव तथा रेशों का कच्चा भीतरी कङ्काल सूख जाता है जो पीट कर निकाल दिया जाता है। फिर इन स्पंजों को, जो वास्तव में स्पंज की बाहरी ठठरियाँ हैं [illegible] कर लिया जाता है और वे बाजार में बिकने के लिए

खंड ३

सुषिरान्त्रीय जीव विभाग

(PHYLUM COLENTERATA)

इस विभाग के अन्तर्गत हाइड्रा, रावणछत्र, प्रवाल तथा अनिलपुष्प आदि जीव एकत्र किये गये हैं, जिनमें से कुछ तो मीठे पानी के तथा अधिकांश समुद्र के निवासी हैं। इन जीवों के वाह्य स्वरूप में वहुत भेद रहते हुए भी इनकी भीतरी वनावट में एक प्रकार की समता रहती है। इसी कारण इन सवको एक ही विभाग में रखा गया है।

हाइड्रा (Hydra) मीठे पानी के तथा प्रवाल (Corals) समुद्र के निवासी हैं। लेकिन अनिलपुष्पों (Sea Anemones) को समुद्री तट तथा उसी के आस-पास के जलाशय ही पसन्द आते हैं जहाँ वे पानी के भीतर सुन्दर पुष्पवाटिका की तरह फैले रहते हैं। रावणछत्र छत्रिक (Jelly Fish) का हाल सवसे निराला है। उसे एक जगह जमकर रहना पसन्द नहीं आता इसलिए वह पानी के साथ-साथ इधर-उधर वहा करता है।

इन प्राणियों में दो वातें समान रूप से पायी जाती हैं। एक तो इनके शरीर की वनावट थैली की शकल की होती है जिसमें एक ही ओर मुँह खुला रहता है। दूसरे इनके शरीर की खाल दो तहों की होती है जैसे दुहरे कपड़े की थैली हो। वाहर की तह वहिःस्तर (Epidermis) और भीतर की तह अन्तःस्तर (Endoderm) कहलाती है। इन दोनों तहों के वीच में एक प्रकार का पारदर्शी लसलसा पदार्थ रहता है जिसे मध्यश्लेप (Mesoglosa) कहते हैं।

उपर्युक्त दोनों विशेपताओं के अलावा इनमें से थोड़े से जीवों को छोड़ कर प्रायः सभी जीवों के दंशकोश (Sting Cell) होते हैं जो सूच्यंग (Nemotocysts) कहलाते हैं।

जैसा बताया जा चुका है स्पंज बहुत निरीह जन्तु हैं और वे समुद्र के भीतर चट्टानों या तहों पर चिपके रहते हैं। अतः उनको पकड़ने में ज्यादा दिक्कत नहीं उठाना पड़ती। इन्हें या तो कटियों से फँसाया जाता है या पनडुब्बे तह तक जाकर इनको चाकुओं से काट लेते हैं और फिर इन्हें पानी से बाहर फेंका या टाँग दिया जाता है। पानी से बाहर निकलने पर ये मर जाते हैं और इनके भीतर का जीव-पंक तथा रेशों का कच्चा भीतरी कंकाल सूख जाता है जो पीट कर निकाल दिया जाता है। फिर इन स्पंजों को जो वास्तव में स्पंज की बाहरी ठठरियाँ हैं, खूब अच्छी तरह धोकर साफ कर लिया जाता है और वे बाजार में बिकने के लिए भेज दिये जाते हैं।

हाइड्रा (Hydra) की भी अनेक जातियाँ हैं, जिनमें से कुछ हमारे देश में तथा कुछ अन्य देशों में पायी जाती हैं। हमारे देश में पाये जाने वाले हाइड्रा को हाइड्रा-वल्गेरिस (Hydra vulgaris) कहते हैं, जो भूरे या बादामी रंग का होता है। यहाँ उसी का वर्णन दिया जा रहा है।

हाइड्रा

(FRESH WATER HYDRA)

हाइड्रा ताल-तलैयों, झीलों तथा अन्य जलाशयों का निवासी है, जहाँ वह पानी के पौधों या खर-पतवार में चिपका हुआ मिलता है।
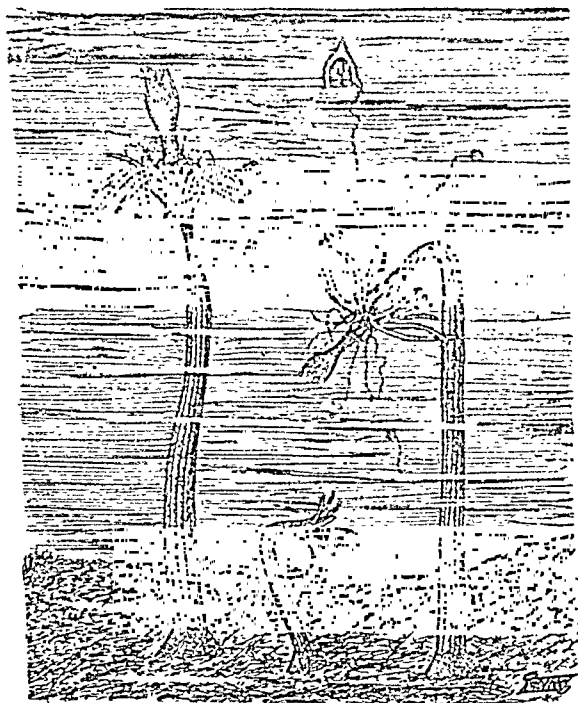
हाइड्रा

इसका शरीर एक पतली नली के समान होता है जो एक सिरे पर बन्द और दूसरे

इन्हीं के द्वारा वे गत्रुओ के तथा अपने शिकार के शरीर में अपना विषैला डक गडा कर विष भर देते हैं। इन कोगो की बनावट अडाकार होती है और ये बाहरी तह के पास ही रहते हैं। इनमें तरल विष भरा रहता है और उसी में इनका लम्बा डक भी लिपटा हुआ छिपा रहता है लेकिन उनको छूते ही वह कुछ सिकुड जाता है और भीतर का लिपटा हुआ डक तीर की तरह बाहर निकल कर छनेवाले के शरीर में गड जाता है। यह डक पोला रहता है और जैसे ही वह किसी के शरीर में घुसता है उसमें से होकर भीतर का जहर उसके शरीर में पहुँच जाता है। डक मारा जाने वाला अगर बडा हुआ तो उसके उस स्थान पर थोडी ही तकलीफ होती है लेकिन यदि वह काफी छोटा हुआ तो उसकी मृत्यु ही हो जाती है। ये छोटे-छोटे जीवो को इन्हीं डको से मारकर अपना पेट भरते हैं और अपने ऊपर आक्रमण होने पर इन्हीं डको से अपनी रक्षा करते हैं।

इन जीवो के प्रजनन का ढग भी अनोखा होता है। कभी इनके शरीर में एक प्रकार का उभार-सा हो जाता है जो बढते-बढते नया जीव बन कर अलग हो जाता है और कभी इनके शरीर से शुक्रकोश निकल कर पानी में फैल जाते हैं जो इनके शरीर के अण्डकोगो में प्रवेश करके फलित हो जाते हैं। फिर धीरे धीरे ये फलित कोश बढकर नये जीव बन जाते हैं। इसके अलावा इन जीवो के यदि दो खड कर दिये जाते हैं तो वे दोनो खड भी अलग-अलग स्वतत्र जीव हो जाते हैं।

यह विभाग निम्नलिखित तीन वर्गों में विभाजित किया गया है—

१ जलीयक श्रेणी— Class Hydrozoa

२ छत्रिक श्रेणी – Class Scyphozoa

३ पुष्पजीव श्रेणी—Class Anthozoa

जलीयक श्रेणी

(CLASS HYDROZOA)

इस श्रेणी के प्राणी बहुत छोटे होते हैं जो सामान्यत पोखर तथा अन्य जलाशयो के निवासी हैं। ये प्राय पानी के पौधो से चिपके हुए रहते हैं और जल की सतह के पास ही रहते हैं। इनमें हाइड्रा सबसे प्रसिद्ध है।

हाइड्रा (Hydra) की भी अनेक जातियां हैं, जिनमें से कुछ हमारे देश में तथा कुछ अन्य देशों में पायी जाती हैं। हमारे देश में पाये जाने वाले हाइड्रा को हाइड्रा-वल्गैरिस (Hydra vulgaris) कहते हैं, जो भूरे या बादामी रंग का होता है। यहां उसी का वर्णन दिया जा रहा है।

हाइड्रा

(FRESH WATER HYDRA)

हाइड्रा ताल-तलैयों, झीलों तथा अन्य जलाशयों का निवासी है, जहां वह पानी के पौधों या खर-पतवार में चिपका हुआ मिलता है।
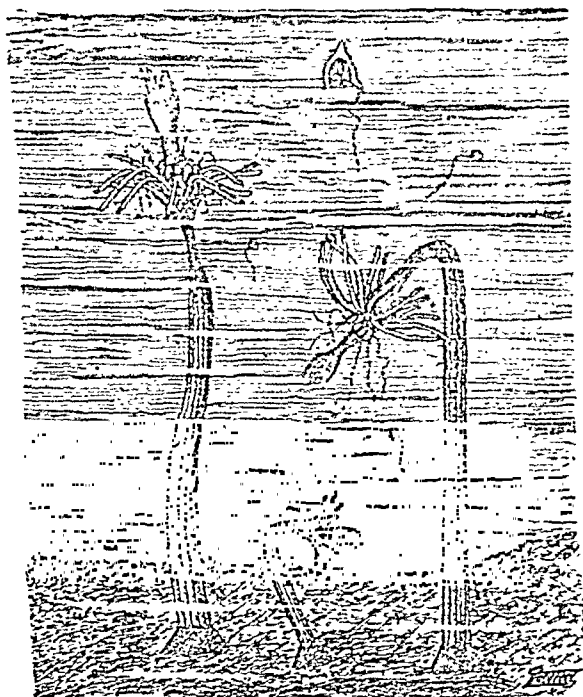
हाइड्रा

इसका शरीर एक पतली नली के समान होता है जो एक सिरे पर बन्द और दूसरे

सिरे पर खुली रहती है। वह भाग इसका पाद कहलाता है जिसके सहारे यह किसी पौधे से चिपका रहता है। इसके दूसरे सिरे पर कुछ उभार-सा रहता है जिसके बीच इसका मुखछिद्र रहता है। मुखछिद्र के चारो ओर ६ से १० तक मूँछनुमा पतले अंगक (Tenticles) रहते हैं जो इसकी स्पर्शेन्द्रियाँ हैं।

हाइड्रा की लम्बाई अधिक से अधिक एक इंच की रहती है जिसमें इसके अंगक शामिल नही हैं क्योकि वे आवश्यकतानुसार घटते-बढ़ते रहते हैं। इन्ही अंगकों में हाइड्रा के सूच्यग (Nemotocysts) रहते हैं जिनके द्वारा यह अपने शिकार के शरीर में विष भरकर उसे अचेत कर देता है।

हाइड्रा ज्यादातर पानी की सतह के पास ही रहता है क्योकि वहा उसे प्रचुर मात्रा में प्राणवायु तथा प्रकाश मिलता है। जल के पेंदे पर तो हाइड्रा सीधा खड़ा रह सकता है, लेकिन सतह पर उसे उलटा टँगा रहना पड़ता है।

वैसे तो हाइड्रा अपने निचले भाग की सहायता से किसी वस्तु से चिपका रहता है, लेकिन कभी-कभी तो इसे भोजन या उपयुक्त स्थान के लिए चलने फिरने का कष्ट करना ही पड़ता है। इसके लिए पहले वह एक ओर इतना झुक जाता है कि उसके अंगक तल को छूने लगते हैं। तल को छूकर ये वही चिपक जाते हैं और तब हाइड्रा का चिपका हुआ भाग तल को छोड़कर चिपके हुए अंगको के निकट जाकर चिपक जाता है। अब अंगक तल को छोड़ देते हैं जिससे हाइड्रा फिर सीधा हो जाता है। वह फिर उसी ओर झुकता है और इसी प्रकार करते-करते वह धीरे धीरे एक ओर खिसकता जाता है।

हाइड्रा मासभक्षी जीव है जिसका मुख्य भोजन जल के छोटे कीड़े और कीड़ो तथा मछलियो के अण्डे-बच्चे हैं। शिकार करते समय हाइड्रा अपने निचले भाग को किसी जल पौधे में चिपका कर उलटा लटक जाता है और अपने अंगकों (Tentacles) को फैला कर पानी मे बहने देता है। फिर जैसे ही कोई कीड़ा उसके अंगक के निकट आता है वैसे ही उसके शरीर मे सूच्यग द्वारा विष भर कर उसे अचेत कर दिया जाता है। चेतना खो देने पर वह असहाय हो जाता है और अंगकों द्वारा हाइड्रा के मुख में पहुँचा दिया जाता है।

हाइड्रा की सतान-वृद्धि के कई तरीके हैं। कभी-कभी तो भोजन प्रचुर मात्रा में मिलने पर और ताप के उपयुक्त होने पर, उसके शरीर पर एक प्रकार का

छत्रिक (जेलीफिश पृ० १८)

उभार-सा हो जाता है, जो वढ़ कर एक शाखा का रूप ग्रहण कर लेता है। धीरे-धीरे यह शाखा वढ़कर हाइड्रा के अनुरूप हो जाती है और उसके सिरे पर अंगक भी निकल आते हैं। कुछ समय और वीतने पर यह हाइड्रा के शरीर से अलग होकर एक स्वतन्त्र हाइड्रा वन जाती है, और कभी ऐसा होता है कि हाइड्रा का शरीर वीच से टूटकर दो खंडों में विभक्त हो जाता है। फिर प्रत्येक भाग में आवश्यक अंगों की पूर्ति हो जाती है और दोनों स्वतन्त्र हाइड्रा वन जाते हैं।

इसके अलावा हाइड्रा की वंशवृद्धि कभी-कभी मैथुन द्वारा भी होती है। जैसा पहले वताया जा चुका है, हाइड्रा उभयलिंगी जीव है जिसके शरीर में शुक्र तथा अंड-कोशाएँ दोनों ही रहती हैं। समय आने पर इसके वृषण (testes) का शिखर फूट जाता है और शुक्र कोशाएँ जल में फैल जाती हैं। इन शुक्रकोशाओं को हाइड्रा की अंडकोशाएँ अपनी ओर आकर्षित करती हैं और दोनों के सम्पर्क में आने से नये हाइड्रा का जन्म होता है।

छत्रिक श्रेणी

(CLASS SCYPHOZOA)

छत्रिक श्रेणी में सव प्रकार के छत्रिकों को एकत्र किया गया है जो एक इंच से कई फुट तक के होते हैं। ये वैसे तो समुद्र के किनारे छिछले जल में चट्टानों आदि से चिपके हुए पाये जाते हैं, लेकिन कभी-कभी इनकी कुछ जातियाँ सौ दो सौ फुट गहरे समुद्रों में भी पायी जाती हैं। ये छत्ते के आकार के होते हैं और इनका कोमल अंग सफेद या हलके भूरे रंग का रहता है।

इनकी वैसे तो अनेक जातियाँ हैं, लेकिन यहाँ अपने देश में पाये जानेवाले प्रसिद्ध छत्रिक का वर्णन दिया जा रहा है।

छत्रिक

(JELLY FISH)

छत्रिक को यह नाम उसके छाते जैसे शरीर के कारण मिला है जो सर्वथा उपयुक्त ही है।

इनके मुंह के पास चार [illegible] रहती हैं, जो बहुत से डंकों और सूत्रांगों से पूर्ण होती हैं। इन्हीं की सहायता से छत्रिक अपने शिकार को अपने वश में कर लेते हैं।

छत्रिक अपने शरीर को सिकोड़ कर और फिर फैला कर आगे की ओर खिसकते हैं और इसी समय अपनी खुराक भी जमा करते जाते हैं क्योंकि उनके खिसकते समय बहुत से पानी के निम्नतर जीव उनके चिपचिपे शरीर से चिपक जाते हैं जो धीरे-धीरे इनके मुंह तक पहुंचा दिये जाते हैं।

छत्रिक की संतान-वृद्धि का ढंग भी कम रोचक नहीं है। उनके [illegible] भी हाइड्रा की तरह प्रौढ़ हो जाने पर फट जाते हैं और इसी पानी में शुक्रकोशाएँ तैरने लगती हैं जहां अंडकोशाएँ तैरती रहती हैं। दोनों के मिल जाने पर नये छत्रिक का बनना आरम्भ हो जाता है। पहले यह डिम्बकीट (Larva) का रूप ग्रहण करके पानी में तैरता रहता है और फिर कुछ समय बाद पानी की तह पर बैठ जाता है। वहां धीरे-धीरे इसमें परिवर्तन होने लगता है और थोड़े ही दिनों बाद उसके नीचे का हिस्सा पतला हो जाने से ऊपर का मुख स्पष्ट दिखाई पड़ने लगता है। थोड़ा समय और बीतने पर, जब यह जीव आध इंच का हो जाता है तो, इसके शरीर में कई दरारें पड़ जाती हैं जो समय पाकर टूट-टूट कर नये छत्रिक बन जाते और अपना स्वतन्त्र जीवन बिताने के लिए समुद्र में फैल जाते हैं।

पुष्पजीव श्रेणी

(CLASS ANTHOZOA)

पुष्पजीव श्रेणी के अन्तर्गत सब प्रकार के अनिलपुष्प (Sea Anemones) तथा प्रवाल (Corals) आते हैं जो समुद्र के निवासी हैं।

अनिलपुष्पों को हमने भले ही न देखा हो, लेकिन ऐसा कौन है जो मूंगे या प्रवाल से अपरिचित हो। ये जीव वृक्षों के अनुरूप होते हैं जो देखने में बहुत सुहावने लगते हैं। प्रवाल के शरीर में पेड़ों की सी डालियां रहती हैं जो पत्थर-सी कड़ी और कठोर होती हैं। इनके आरपार एक छेद रहता है। जब डालियों को काटकर मूंगे की गुरियाँ बनायी जाती हैं तो बीच के इस छेद में ही तागा पिरो कर इन्हें मालाकार गुह लिया जाता है।

छत्रिक समुद्र का निवासी है जिसका शरीर बहुत नर्म और चिपचिपा-सा रहता है। इसके शरीर मे ९९ प्रतिशत पानी का अंश रहता है। इसी कारण पानी से बाहर निकाल देने से थोडी देर मे पानी का अंश सूख जाता है और इसका थोडा-सा

छत्रिक

हिस्सा ही बच रहता है। यही कारण है कि छत्रिक के पथराये कंकाल (Fossils) नही मिलते क्योकि इसके कोमल शरीर का कोई चिह्न ही पत्थरो पर नही बन सकता।

छत्रिक का शरीर सफेद पारदर्शी रहता है जिस पर ऊपर की तह के किनारे पर महीन बाल जैसे रहते हैं। ये छत्रिक के अंगक या स्पर्शेन्द्रियाँ हैं। इसके अलावा छत्रिक के नीचे की ओर, शरीर के बीच मे, चार अर्द्ध चन्द्राकार अवयव होते हैं जो इसके पारदर्शी शरीर के कारण ऊपर से ही दिखाई पडते हैं। ये ही इनके बीज कोश या अंडकोश हैं जो इनके आमाशय की थैली के बीच मे रहते हैं।

छत्रिक के आमाशय का मुख उसके शरीर की निचली सतह पर उभरा-उभरा सा रहता है और वही से शरीर के किनारे तक भोजन की नलियाँ फैली रहती हैं। छत्रिक के शरीर के किनारे के पास इसकी ज्ञानेन्द्रियो के स्थल रहते हैं जिनका कुछ हिस्सा रंगीन होता है।

इसके मुख के पास चार झालरें-सी रहती हैं, जो बहुत से डंकों और सूच्यंगों से पूर्ण होती हैं। इन्हीं की सहायता से छत्रिक अपने शिकार को अपने वश में कर लेते हैं।

छत्रिक अपने शरीर को सिकोड़ कर और फिर फैला कर आगे की ओर खिसकते हैं और इसी समय अपनी खूराक भी जमा करते जाते हैं क्योंकि उनके खिसकते समय बहुत से पानी के निम्नतर जीव उनके चिपचिपे शरीर में चिपक जाते हैं जो धीरे-धीरे इनके मुंह तक पहुँचा दिये जाते हैं।

छत्रिक की संतान-वृद्धि का ढंग भी कम रोचक नहीं है। इसके वृषण भी हाइड्रा की तरह प्रौढ़ हो जाने पर फूट जाते हैं और उसी पानी में शुक्रकोशाएँ तैरने लगती हैं जहाँ अंडकोशाएँ तैरती रहती हैं। दोनों के मिल जाने पर नये छत्रिक का बनना आरम्भ हो जाता है। पहले यह डिम्बकीट (Larva) का रूप ग्रहण करके पानी में तैरता रहता है और फिर कुछ समय बाद पानी की तह पर बैठ जाता है। वहाँ धीरे-धीरे इसमें परिवर्तन होने लगता है और थोड़े ही दिनों बाद उसके नीचे का हिस्सा पतला हो जाने से ऊपर का मुख स्पष्ट दिखाई पड़ने लगता है। थोड़ा समय और बीतने पर, जब यह जीव आध इंच का हो जाता है तो, इसके शरीर में कई घरारे पड़ जाते हैं जो समय पाकर टूट-टूट कर नये छत्रिक बन जाते और अपना स्वतन्त्र जीवन बिताने के लिए समुद्र में फैल जाते हैं।

पुष्पजीव श्रेणी

(CLASS ANTHOZOA)

पुष्पजीव श्रेणी के अन्तर्गत सब प्रकार के अनिलपुष्प (Sea Anemones) तथा प्रवाल (Corals) आते हैं जो समुद्र के निवासी हैं।

अनिलपुष्पों को हमने भले ही न देखा हो, लेकिन ऐसा कौन है जो मूँगे या प्रवाल से अपरिचित हो। ये जीव वृक्षों के अनुरूप होते हैं जो देखने में बहुत सुहावने लगते हैं। प्रवाल के शरीर में पेड़ों की सी डालियाँ रहती हैं जो पत्थर-सी कड़ी और कठोर होती हैं। इनके आरपार एक छेद रहता है। जब डालियों को काटकर मूँगे की गुरियाँ बनायी जाती हैं तो बीच के इस छेद में ही तागा पिरो कर इन्हें मालाकार गुह लिया जाता है।

अनिल्पुष्प रंगीन फूलों की तरह छिछले समुद्रों में फैले रहते हैं। इन जीवों में प्रवाल आदि कुडमित होकर अनेक जीवों का एक समूह बना देते हैं जो बढ़कर प्रवाल चट्टानों (Coral Reef) का रूप ग्रहण कर लेते हैं।

यहां प्रवाल तथा अनिल्पुष्प दोनों का वर्णन दिया जा रहा है।

प्रवाल

(CORAL)

मूंगों की वैसे तो अनेक जातियां हैं और उनकी शक्ल-सूरत भी भिन्न भिन्न रहती है, लेकिन उनके शरीर की बनावट में ज्यादा भेद नहीं रहता। मूंगे के वर्तुलाकार शरीर के ऊपरी हिस्से पर सिताक की तरह मुख-छिद्र होता है जिसके चारों ओर पतले-पतले उंगलियों की शक्ल के अंगक (Tentacles) रहते हैं जो इसकी स्पर्शेन्द्रियां या हाथ हैं। मुखछिद्र के नीचे एक नली रहती है जो आमाशय तक चली जाती है।

प्रवाल

मूंगा समुद्र का निवासी है जो मीठे पानी में कभी नहीं दिखाई पड़ता। इसका आमाशय छत्रिक के आमाशय से बड़ा होता है और उसकी दीवार में परदों की तरह झिल्लियां लटकी रहती हैं जिससे इसका आमाशय कई कोष्ठकों में बंट जाता है।

मूंगे की संतान वृद्धि का तरीका भी सरल ही है। उभयलिंगी जीव होने के कारण इसके बीजकोश इन्हीं झिल्लियों पर उग आते हैं, जो प्रौढ़ होने पर समुद्र में गिरकर फैल जाते हैं। वहाँ
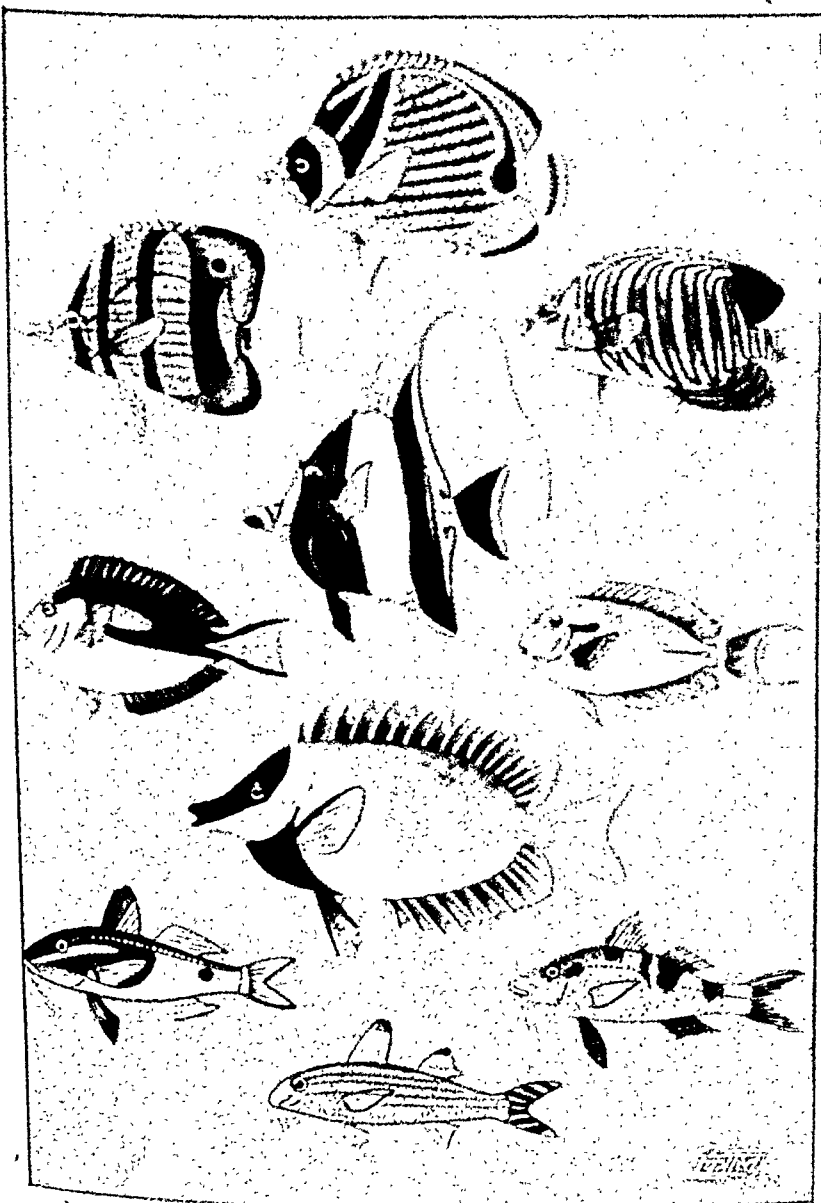
प्रवाल द्वीप की मछलियाँ (पृ० २१)

इसी प्रकार शुक्रकीट भी मूँगों के शरीर से गिरकर तैरते रहते हैं। दोनों के मिलकर एकाकार हो जाने पर नये मूँगे का जन्म हो जाता है।

पहले तो यह नया जीव डिम्बकीट (Larva) की शकल धारण करता है, जो रोयेंदार रहता है लेकिन कुछ देर तैरने के पश्चात् यह पानी की सतह पर बैठ जाता है जहाँ कुछ दिनों में ही बढ़कर यह मूँगे की शकल-सूरत का हो जाता है।

कभी-कभी इसके शरीर के भीतर ही रज और शुक्रकीटों का मिलन होता है और वहीं डिम्बकीट का जन्म होता है। फिर बाहर कई परिवर्तनों के बाद यह नवजात शिशुकीट मूँगे का आकार-प्रकार ग्रहण कर लेता है।

लेकिन चट्टान बनानेवाले मूँगे की वृद्धि का ढंग इन दोनों से भिन्न रहता है। इसके शरीर में वृद्धि का समय आने पर कई जगह उभार से दिखाई पड़ने लगते हैं जो कुछ समय बीतने पर बढ़कर नये मूँगे का आकार-प्रकार तो ग्रहण कर लेते हैं, लेकिन इसके शरीर से अलग नहीं होते। इस प्रकार ये नये कुड्म मूँगे के शरीर में लगे रहकर भी अपना अलग अस्तित्व बनाये रखते हैं। कुछ समय बीत जाने पर ये नये कुड्म भी पुराने हो जाते हैं और इनके शरीर में भी इसी प्रकार उभार होकर नय कुड्म निकल आते हैं। यह क्रम इसी प्रकार चलता रहता है और एक जीव से असंख्य जीव पैदा होकर आपस में मिले रहने के कारण दिन प्रति दिन बढ़ते ही जाते हैं। कुछ काल बीत जाने पर ये बड़ी-बड़ी चट्टानों और द्वीपों की शकल ग्रहण कर लेते हैं और उन्हें हम प्रवाल द्वीप (Coral Island) के नाम से पुकारने लगते हैं।

मूँगे की ये चट्टानें बहुत सुन्दर और रंग-बिरंगी होती हैं और उनके आस-पास रहनेवाली मछलियाँ भी तितलियों की तरह रंगीन रहती हैं। समुद्र के भीतर जहाँ मूँगे की चट्टानें पायी जाती हैं वहाँ का दृश्य किसी परीलोक से कम सुन्दर नहीं लगता।

अन्त में हमें अपने लाल मूँगों के बारे में भी कुछ जान लेना चाहिए जिन्हें हमने मोती की तरह अपने रत्नों में सम्मिलित कर लिया है। ये लाल मूँगे समुद्र की तह में पेड़ की शकल में फैले रहते हैं और संसार में केवल आड्रियाटिक तथा भूमध्य-सागर में ही पाये जाते हैं। इनकी डालियों के टुकड़े काट काटकर सुडौल बना लिया जाता है और फिर उन्हें तागे में पिरोकर माला बना ली जाती है।

अनिलपुष्प

(SEA ANEMONES)

अनिलपुष्प को प्रवाल का भाई-बन्धु कह सकते हैं। यह भी समुद्र का निवासी है और अक्सर ऐसे उजाड़ समुद्री तटों के आस-पास छिछले जलों में पाया जाता है जो पहाड़ियों या चट्टानों से भरे रहते हैं। ये काफी संख्या में एक स्थान पर रहते हैं और अपने रंगीन और सुन्दर शरीर के कारण ही ये समुद्री-फूल या अनिलपुष्प कहलाते

अनिल पुष्प

हैं। ये जिस स्थान पर छिछले पानी में रहते हैं, वहाँ पानी के भीतर सुन्दर फुलवारी-सी लगी जान पड़ती है।

अनिलपुष्प के शरीर की रचना बहुत कुछ प्रवाल से मिलती-जुलती रहती है। इसका भी शरीर लम्बा और बेलनाकार रहता है जिसके एक सिरे पर इसका मुख-छिद्र रहता है। मुखछिद्र के चारों ओर पतले अंगक (Tentacles) रहते हैं जो इसकी स्पर्शेन्द्रियाँ तथा हाथ हैं। इन्हीं के सहारे ये जल के कीड़े-मकोड़ों को पकड़ कर अपने मुख छिद्र तक पहुँचा देते हैं। इसके भी मुख-छिद्र से आमाशय तक एक नली चली जाती है।

अनिलपुष्प वैसे तो वहुत भोले-भाले और निरीह से जान पड़ते है लेकिन निकट जाने पर ये छत्रिक की तरह डंक मारने से नहीं चूकते। अक्सर देखा गया है कि एक प्रकार का केकड़ा (Hermit Crab) जो किसी मुरदा शंख को अपनी खोल बना लेता है, शंख के ऊपर अनिलपुष्प को वैठने की जगह दे देता है। इससे केकड़े को यह लाभ होता है कि अनिलपुष्प के डंक के डर से दुश्मन उसके निकट नहीं आते और अनिलपुष्प भी विना हाथ-पाँव डुलाये समुद्र का चक्कर लगाया करता है।

अनिलपुष्प की संतान-वृद्धि का ढंग भी प्रवाल ही जैसा सरल है। अनुकूल समय आ जाने पर इसके आमाशय की झिल्लियों पर वीजकोश उभर आते हैं जो परिपक्व होकर समुद्र में गिरकर फैल जाते हैं। इसी तरह शुक्रकीट भी परिपक्व होने पर अनिलपुष्पों के शरीर से स्खलित होकर समुद्र में फैले रहते हैं जो वीजकोशों से मिलकर उर्वरित हो जाते हैं और नये अनिलपुष्प का जन्म हो जाता है। ये शीघ्र ही प्रवाल की भाँति डिम्बकीट का स्वरूप ग्रहण कर लेते हैं। फिर दो एक परिवर्तनों के वाद ये अनिलपुष्प वन जाते हैं।

खंड ४

कृमि समूह

(GROUP VERMES)

प्राय सभी छोटे साँप के शरीर जैसे लम्बे और रेंगनेवाले जीवों को कृमि के नाम से पुकारा जाता है, लेकिन ससार मे सभी कृमि पतले और लम्बे शरीरवाले जीव नही हैं और न सभी रेंगनेवाले कृमि ही हैं।

कृमि की २०,००० से भी अधिक जातियां हैं, जिनमें से केंचुआ आदि कुछ ऐसे हैं जो जमीन पोली करके मनुष्यो के बाग-बगीचो को बहुत फायदा पहुँचाते हैं। साथ ही साथ मलसर्प (Round Worm) और कद्दूदाना (Tape Worm) की तरह कुछ ऐसे भी हैं जो हजारो मनुष्यो की जान प्रतिवर्ष ले लिया करते हैं।

कृमि का शरीर लम्बाई लिये जरूर होता है, लेकिन इन सबकी शक्ल-सूरत में आपस में बहुत भेद रहता है। कुछ केंचुए की तरह पतले, गोल और लम्बे होते हैं, तो कुछ जोंक की तरह चपटे, और कुछ की शक्ल एकदम फीते की तरह रहती है, लेकिन इनमें से शायद ही कोई ऐसा हो जिसे छूने में घिन न लगती हो।

ये वैसे तो ६ विभागो में विभक्त किये गये हैं, लेकिन यहाँ केवल तीन विभागों का ही वर्णन दिया जा रहा है जिनके प्राणी हमारे बहुत परिचित हैं। वे तीनो विभाग इस प्रकार हैं—

१ गडूपद विभाग—Phylum Annelida

२ चिपिट-कृमि विभाग—Phylum Platyhelmenthes

३ सूत्र-कृमि विभाग—Phylum Nemathelminthes

१ गडूपद विभाग मे हमारा प्रसिद्ध केंचुआ (Earth Worm) तथा सब प्रकार की जोंकें ((Leeches) आ जाती हैं।

२. चिपिट कृमि विभाग में हमारा परिचित कद्दूदाना (Tape Worm) नाम का कृमि रखा गया है।

३. सूत्र कृमि विभाग में हमारा चिरपरिचित [illegible] (Round Worm) रखा गया है जो हमारी अंतड़ियों को अपना निवास बनाकर हमारे स्वास्थ्य को नष्ट कर डालता है।

गंडूपद विभाग

(PHYLUM ANNELIDA)

इस विभाग के जीवों का आकार लम्बा होता है और इनकी शरीर-रचना में कुछ ऐसी समानताएँ होती हैं कि उन्हें एक ही स्थान पर एकत्र करना आवश्यक हो गया है।

ये सब प्राणी सुपिरान्त्रीय जीवों की तरह द्विस्तरीय अर्थात् दो तहोंवाले न होकर त्रिस्तरीय होते हैं। इनके शरीर में एक बाहरी स्तर (Ectoderm) और एक भीतरी स्तर तो होता ही है, लेकिन इन दोनों के बीच में एक और स्तर भी रहता है जो मध्यस्तर (Mesoderm) कहलाता है।

ये जीव भी सुपिरान्त्रीय जीवों की तरह दो खंड कर दिये जाने पर दो स्वतन्त्र जीव बन जाते हैं। लेकिन इन जीवों के शरीर में केवल एक ही ऐसा स्थान होता है जहाँ से काटे जाने पर ये दो स्वतन्त्र जीव बन सकते हैं।

यह विभाग वैसे तो चार श्रेणियों में विभाजित किया गया है लेकिन यहाँ निम्नलिखित दो श्रेणियों का ही वर्णन किया जा रहा है:—

१. जलौका श्रेणी—Class Hirudinea

२. भूमि-कृमि श्रेणी—Class Oligochaeta

जलौका श्रेणी में सब प्रकार की जोंकें एकत्र की गयी हैं और भूमि-कृमि श्रेणी में सब प्रकार के केंचुए रखे गये हैं।

जलौका श्रेणी

(CLASS HIRUDINEA)

इस श्रेणी के जीव जल तथा स्थल के निवासी हैं। इनका शरीर छोटा लम्बा और चपटा होता है। इनके शरीर में ३४ खंड रहते हैं और प्रत्येक खंड पर २ से ५ तक घेरे में दिखाई पड़ते हैं। शरीर के अगले भाग पर के कुछ खंड मिलकर इसके चूषक (Sucker) का निर्माण करते हैं जिसके भीतर इनका मुख रहता है। शरीर के पिछले भाग पर भी एक चूषक होता है जो मुख चूषक से बड़ा होता है। यह सात खंडों के मिलने से बनता है। इन्हीं चूषकों से ये जीव चलते फिरते हैं और इन्हीं से ये किसी वस्तु से चिपकते हैं। ये उभयलिंगी होते हैं।

इन जीवों को जोंक या जलौका कहा जाता है। ये मीठे और खारे पानी में सामान्य रूप से रह लेती हैं और इनकी कुछ जातियाँ नम भूमि पर भी रहने योग्य हो गयी हैं। ये अपने चूषकों से रक्त चूसने के लिए प्रसिद्ध हैं।

यहाँ अपने देश की प्रसिद्ध जोंक (Hirudinari granulosa) का वर्णन किया जा रहा है।

जोंक

(LEECH)

जोंकों से हम सभी परिचित हैं क्योंकि ये समुद्रों के अलावा हमारे यहाँ के तालों, पोखरों तथा नम जगहों में पायी जाती हैं।

जोंक

हमारे यहाँ पायी जानेवाली प्रसिद्ध जोंक ताल और पोखरों में काफी संख्या में पायी जाती हैं। ये अक्सर आदमियों और पशुओं को चिपट जाती हैं और धीरे धीरे

शरीर का खून चूसने लगती है। वैसे तो यह ३-४ इंच लम्बी होती है, लेकिन खून पी लेने पर मोटी और बड़ी हो जाती है। इसका शरीर लम्बा और चपटा होता है जिसके दोनों सिरों पर चूपक रहते हैं। इसके बदन का रंग गाढ़ा हरा, या जैतूनी रहता है जिस पर बहुत महीन बिंदियाँ और चिह्न पड़े रहते हैं।

जोंक का सारा शरीर धरारों से भरा रहता है, जैसे बहुत से छल्लों को जोड़ कर इसका बदन गढ़ा गया हो। शरीर के दोनों सिरों पर कटोरीनुमा खून चूसने के चूपक रहते हैं और सिर की ओर के चूपक के पीछे कई जोड़ें आँखों की रहती हैं। इनका मुख्य भोजन दूसरे जीवों का रक्त है। वैसे ये पानी के छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़ों से भी अपना पेट भरती हैं और भूखी रहने पर या भोजन न मिलने पर एक दूसरे को निगलने में भी नहीं चूकतीं।

जोंक पानी में मछली या साँप की तरह खूब अच्छी तरह तैर लेती है, लेकिन सूखे पर चलने में इसे कुछ दिक्कत होती है। इसे जब खुश्की पर चलना होता है तो यह अपने दोनों चूपकों से पृथ्वी को पकड़ कर आगे की ओर सरक जाती है।

जोंक से हमारे यहाँ शरीर का खराब खून चूसने का काम बहुत दिनों से लिया जा रहा है। शरीर में जहाँ का खून निकलवाना होता है वहाँ कई जोंकों को लगा दिया जाता है जो धीरे-धीरे खून पीकर मोटी हो जाती हैं और पेट भर जाने पर अपने आप शरीर को छोड़ देती हैं।

जोंक उभयलिंगी होती है जिसके शरीर में समय आने पर शुक्र और बीजकीट परिपक्व होकर कोशों में भर जाते हैं। इसके पश्चात् एक जोंक दूसरी जोंक के शरीर पर अपना शुक्रकीट गिराती है जो उसके बीजकोशों के बीजकीटों से मिलकर उर्वरित हो जाते हैं। इस प्रकार दोनों जोंकें एक साथ ही अण्डों से भर जाती हैं और समय आने पर अण्डे देती हैं।

जोंक के अंडे फूटकर बच्चे निकलने में ४-५ हफ्ते लग जाते हैं। अंडे से पतले तागे जैसे बच्चे बाहर निकलते हैं जो छोटे होने पर भी शकल-सूरत में जोंक ही से दीख पड़ते हैं। ये बच्चे ४-५ वर्ष में कहीं जाकर पूरी तरह से जोंक बन पाते हैं। उसके बाद भी जोंकें १०-१२ वर्ष तक जीती देखी गयी हैं।

भूमि-कृमि श्रेणी

(CLASS OLIGOCHAETA)

इस श्रेणी मे सब प्रकार के केंचुए रखे गये है जिनकी लगभग १,८०० जातियाँ सपूर्ण ससार मे फैली हुई है।

इन जीवा का शरीर लम्बा, पतला, गोल तथा दोनो सिरा पर कुछ नोकीला-सा होता है जो प्राय १०० स १२० खडो में बँटा रहता है। इन जीवो के न तो सिर होता है और न पैर केवल अगले सिरे के प्रथम खड में एक मुख-छिद्र भर रहता है। ये सब जीव उभयलिंगी होते है।

यहाँ अपने यहा के प्रसिद्ध केंचुए फेरीटिमा पास्थ्यूमा (Pheretima posthuma) का वर्णन किया जा रहा है।

केंचुआ

(EARTH WORM)

केंचुए की अनेक जातिया है पर हम लोग जिससे परिचित है वह हमारा फेरीटिमा नाम का प्रसिद्ध केंचुआ है जिसे हम बरसात मे अक्सर देखते हैं।

केंचुआ

केंचुए अपने को जमीन में गाड लेते है जहाँ उनकी मुख्य खुराक सड़ी-गली पत्तियाँ बासी रहती है। इन्हे वे मिट्टी के साथ निगल जाते हैं। मिट्टी में मिली हुई खुराक

उनके वदन में जज्ब हो जाती है जिसकी मिट्टी को वे मल की तरह त्याग देते हैं। आपने अक्सर बाग-बगीचों में इनके ढेर देखे होंगे। इस तरह ये हमारे बाग और खेत के लिए बहुत उपयोगी हैं क्योंकि ये जमीन को पोली और उपजाऊ बनाते हैं।

केंचुए के शरीर की बनावट साँप की तरह लम्बी पर बहुत पतली होती है। यह लम्बाई में तो ४ से ६ इंच तक रहता है लेकिन मोटाई में चौथाई इंच से ज्यादा नहीं होता। इसका अगला सिरा या मुँह नोकीला न होकर कुछ चपटा-सा रहता है और इसके पीछे का हिस्सा शरीर में सबसे ज्यादा मोटा होता है। यह अपने शरीर को बराबर सिकोड़कर और फैलाकर जमीन पर खिसकता है। इसका रंग भूरा होता है जो नीचे या दुम की ओर हलका हो जाता है। इसके सारे शरीर के ऊपरी हिस्से पर छल्लेदार धरारे पड़े रहते हैं। ऊपर के इन धरारों के नीचे शरीर का भीतरी हिस्सा भी इसी प्रकार के छल्लों का रहता है और मुँह के ऊपर मांस का एक नोकीला भाग निकला रहता है। इसका मलद्वार इसके शरीर के एकदम पिछले हिस्से में एक छिद्र-सा रहता है।

केंचुए के शरीर पर के जिन धरारों का वर्णन किया जा चुका है उनके बीच-बीच में महीन रोएँ-से रहते हैं जो इसके वदन को गोलाई से घेरे रहते हैं। ये रोएँ पीछे की तरफ मुड़े रहते हैं जो केंचुओं को चिकनी जमीन पर पीछे की ओर फिसलने से बचाने में बहुत सहायक होते हैं।

केंचुआ उभयलिंगी जीव है, यानी इसके शरीर में नर और मादा दोनों के चिह्न वर्तमान रहते हैं। इसकी संतान-वृद्धि के भी दो तरीके हैं:—पहला और सरल तरीका तो यह है कि केंचुए का शरीर किसी तरह कट जाने पर जितने हिस्से हो जाते हैं वे अलग स्वतन्त्र केंचुए बन जाते हैं और दूसरा तरीका अंडों द्वारा है जो इनके रज और शुक्रकीटों के फलित होने से होता है।

केंचुए के शरीर के कुछ हिस्से में डिम्बकोश और कुछ में शुक्रकोश रहता है, लेकिन इतना होने पर भी केंचुआ स्वयं गर्भ धारण नहीं कर सकता। इसके लिए उसे दूसरे केंचुए की सहायता लेनी पड़ती है। डिम्ब और शुक्रकोशों के परिपक्व हो जाने पर दो केंचुए एक दूसरे से इस तरह मिलते हैं कि दोनों का मुख विपरीत दिशा में रहता है और एक का डिम्बकोश दूसरे के शुक्रकोश के ठीक सामने आ जाता है। इसके

बाद दोनो दूसरे के डिम्बकोश में अपने शुक्रकीट डाल देते है और दोनो साथ ही गर्भ धारण कर लेते है। केंचुए के शरीर के दो तीन वृत खडो पर एक प्रकार की पतली झिल्ली चढ जाती है, जो एक प्रकार का रस निकलने पर इसके अडो के लिए एक खोल का रूप धारण कर लेती है। इस खोल या कोष के तैयार हो जाने पर केंचुआ इसमें अडे देकर अपना शरीर पीछे की ओर खिसका खिसका कर बाहर निकाल लेता है और तब उस खोल के दोनो सिरे बन्द हो जाते है और अडो की वृद्धि शुरू हो जाती है।

चिपिट-कृमि विभाग

(PHYLUM PLATYHELMINTHES)

इस विभाग के प्राणियो का शरीर लम्बा और फीते जैसा चपटा होता है। इसी कारण इन्हे चिपिट-कृमि कहा गया है। इनके शरीर की रचना गड्पद विभाग के जीवो की तरह त्रिस्तरीय होती है अर्थात् उनके शरीर की भित्ति तीन स्तरो की रहती है जो बहिस्तर, मध्यस्तर तथा अन्तस्तर कहलाते है।

ये जीव अन्य प्राणियो के शरीर में परजीवी बनकर रहते है और उनके स्वास्थ्य को बहुत हानि पहुँचाते है।

इस विभाग को तीन श्रेणियो मे विभक्त किया गया है, लेकिन यहाँ केवल एक ही श्रेणी का वर्णन किया जा रहा है जो चिपिट कृमि श्रेणी (Class Cestoda) कहलाती है।

चिपिट-कृमि श्रेणी

(CLASS CESTODA)

इस श्रेणी के जीवो की आकृति पतले फीते के समान होती है। इनके शरीर में आँतो का अभाव रहता है, इसलिए ये जिस जीव के शरीर मे रहते है उसकी आँत के पचे हुए भोजन को चूस लेते है।

यहाँ हम इनमें से एक प्रसिद्ध चिपिट-कृमि का वर्णन कर रहे है जो प्राय सुअरो की आँतो में रहता है और उसका मास खाने से अक्सर मनुष्यो के शरीर में पहुँच जाता है। इसे शूकरचूषशिर (Tenia solium) कहते है।

कद्दूदाना

(TAPE WORM)

कद्दूदाना भी एक पराश्रयी जीव है जो मनुष्यों की अँतड़ियों में रहकर उनके स्वास्थ्य को बहुत हानि पहुँचाता है। यह ६ से १० फुट लम्बा और चपटा-सा जीव है जो हमारे शरीर में सुअरों के द्वारा पहुँचता है। कद्दूदाना चपटा फीते-जैसा होता है जिसका रंग सफेदी मायल रहता है। इसे देखने से सहसा एक लम्बे गंदे फीते का धोखा हो जाता है। इसका शरीर पतली नालियों से भरा रहता है जो संख्या में ६००
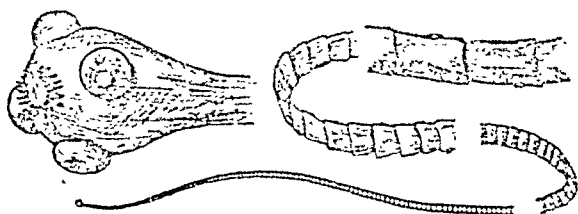
कद्दूदाना

से २,५०० सौ तक हो जाती हैं। सिर की चौड़ाई $\frac{१}{२५}$ इंच की होती है जिसके सिरे पर बहुत से हुक से रहते हैं। सिर के दोनों बगल के हिस्से पर चार चूपक रहते हैं जिनसे वह अँतड़ियों की दीवाल को पकड़े रहता है। इसके शरीर के प्रत्येक खंड में अंडे भरे रहते हैं।

कद्दूदाना को प्रकृति ने न तो चलने-फिरने के अंग दिये हैं और न मुंह ही, क्योंकि न तो इन्हें चलना-फिरना रहता है और न इन्हें खाने के लिए ही ज्यादा झंझट उठानी पड़ती है। ये जिसके शरीर में रहते हैं उसके खाये हुए पदार्थ के रस को अपने शरीर की खाल से सोखा करते हैं।

कद्दूदाना के अंडे मनुष्य के मल के साथ बाहर निकल जाते हैं और यदि उन्हें किसी सुअर ने खा लिया तो वे उसकी अँतड़ियों में पहुँच जाते हैं और वहीं इन अंडों से बच्चे निकलते हैं। कद्दूदाने के ये छोटे-छोटे बच्चे अँतड़ियों को छेदकर रक्त शिराओं में प्रवेश कर जाते हैं और फिर खून के द्वारा सारे शरीर में फैल जाते हैं। रक्तशिराओं से ये मांसपेशियों में घुस जाते हैं जहाँ पहुँच कर ये अंडाकार

होकर पड़े रहते हैं। फिर यदि किसी ने ऐसे माँस को अधपका ही खा लिया तो उसके शरीर में जाकर ये कीड़े फिर लम्बाकार निकल आते हैं और उसकी अँतड़ियों की दीवाल से चिपक जाते हैं। इस प्रकार ये उस आदमी के खाये हुए भोजन का अधिकांश रस स्वयं चूस लेते हैं और खुराक का काफी हिस्सा इन कीड़ों के पेट में चले जाने से वह मनुष्य कंकाल मात्र रह जाता है।

सूत्र-कृमि विभाग

(PHYLUM NEMATHELMINTHES)

इस विभाग के प्राणियों का शरीर लम्बा, गोल तथा सूत्रवत् रहता है जिसके कारण ये सूत्रकृमि कहलाते हैं। ये कृमि प्रायः सभी स्थानों में पाये जाते हैं और इनकी संख्या भी कम नहीं होती।

ये मिट्टी में, मीठे और खारे पानी में तथा अन्य जीवों के शरीर में परजीवी के रूप में रहते हैं। परजीवी होकर भी ये उनके स्वास्थ्य को हानि भले ही पहुँचाते हों लेकिन उनके लिए घातक नहीं सिद्ध होते। ये १/२० इंच से लेकर चार फुट तक लम्बे होते हैं और इनकी शरीर-रचना भी चिपिट कृमि की तरह तीन तहोंवाली होती है।

इस विभाग के जीवों में हमारे यहाँ का मलसर्प नाम का सूत्रकृमि (Ascaris lumbricoides) बहुत प्रसिद्ध है। यहाँ उसी का वर्णन किया जा रहा है।

केंचुला (मलसर्प)

(HUMAN ROUND WORM)

केंचुला मनुष्यों की अँतड़ियों के भीतर रहनेवाला डोरे जैसा पतला कृमि है जो बहुत छोटा होने पर भी हमारा स्वास्थ्य बिगाड़ देता है। यह अक्सर मनुष्यों की अँतड़ियों में अपना घर बना लेता है जहाँ इसकी ज्यादा संख्या बढ़ जाने पर कभी-कभी हमारी जान पर आ बीतती है। छोटे बच्चों के शरीर में तो ये अक्सर रहते हैं क्योंकि वे अपने बदन की सफाई का उतना ध्यान नहीं रख पाते, लेकिन कभी-कभी ज्यादा उम्रवाले मनुष्य भी ऐसे मिल जाते हैं जिनकी अँतड़ियाँ केंचुला से भरी रहती हैं।

केंचुला १०-१२ इंच तक लम्बा होता है, लेकिन इसकी मोटाई चौथाई इंच ही रहती है। इसका रंग या तो दूध-सा सफेद होता है या ललछौंह पीला।

से पकड़ पाती हैं। ये घुण्डियाँ इनको किसी स्थान पर चिपके रहने में तो मदद देती ही हैं साथ ही साथ इनके चलने फिरने में भी ये इनकी बाहुओं का काम बहुत कुछ हल्का कर देती हैं क्योंकि घुण्डियों के नीचे की नली का तारामछलियाँ की इच्छा से थोड़ा भीतर बाहर कर सकती हैं।

तारामछलियाँ केवल मांसभक्षी जीव नहीं हैं। इन्हें तो सर्वभक्षी कहना ज्यादा ठीक होगा। इनसे खाने की कोई भी चीज नहीं बचती। सीप के लिए तो ये काल ही हैं। किसी सीप को इन्होंने देखा नहीं कि ये उसके ऊपर सवार हो जाती हैं और फिर अपनी दो भुजाओं को उसके दरार में डालकर उन्हें खोल लेती हैं। सीप का ढक्कन खुल जाने पर ये अपने पेट को उस पर रखकर उसका नरम शरीर खा लेती हैं।

अगर हम तारामछली की ऊपरी सतह को छुएँ तो हम देखेंगे कि उसकी खाल बहुत खुरदुरी-सी है और जिस पर बहुत से छोटे छोटे स्तम्भ से उभरे हैं। उसके नीचे के हिस्से को हम यदि उलट कर देखें तो हमको उसका मुँह दिखाई पड़ेगा जिसके चारों ओर छोटे-छोटे किन्तु कड़े काँटे से फैले हैं।

तारामछली जब पानी के बाहर रहती है तो उसकी आँखें पैर और मुँह किसी काम के नहीं रहते और वह बेबस रहती है। पानी में डालने पर पहले तो वह अपने पैरों को खाल के भीतर समेटे रहती है लेकिन थोड़ी ही देर में छिद्रों से सैकड़ों पैर बाहर निकल आते हैं और तब तारामछली अपनी पखड़ियों को पानी पर चलाकर और पैरों को हिलाकर आगे की ओर बढ़ती हैं।

तारामछली दिन भर खाने की ही फिक्र में रहती है और सीपी तथा घोंघों को बहुत नुकसान करती है। इसी कारण मछुए जब इसे पकड़ पाते थे तो बीच में फाड़ कर समुद्र में फेंक देते थे, लेकिन उनको शायद इसका परिणाम नहीं मालूम था कि दो टुकड़े किये जाने पर तारामछलियाँ मरती नहीं, बल्कि उसके दोनों टुकड़े अलग अलग दो स्वतन्त्र तारामछलियाँ बन जाते हैं।

जलसाही श्रेणी

(CLASS ECHINOIDEA)

इस श्रेणी में सब प्रकार की जलसाहियाँ एकत्र की गयी हैं जो समुद्र की निवासिनी हैं। इनका शरीर नारंगी-सा गोल और ऊपर तथा नीचे चपटा रहता है। इनके

सारे शरीर पर छोटे-छोटे काँटे रहते हैं जिससे इन्हें जलसाही या समुद्री-साही कहा जाता है।

यहाँ एक प्रसिद्ध जलसाही का वर्णन दिया जा रहा है।

जलसाही

(SEA URCHIN)

जलसाहियों को यह विचित्र नाम इसलिए मिला है कि उनके सारे शरीर पर उसी प्रकार काँटे भरे रहते हैं जैसे हमारी जंगल की साहियों के।

ये समुद्र में रहने वाले ५–६ इंच के जीव हैं जो ज्यादातर चट्टानों के आसपास के समुद्री तटों पर रहते हैं। ऐसे स्थानों पर जहाँ जलसाहियों की अधिकता है बहुधा

जलसाही

लोग कम नहाते हैं क्योंकि जलसाहियों के काँटे नुकीले तो होते ही हैं, साथ ही साथ उनमें से कुछ जहरीले भी होते हैं।

खड ५

कटकितत्वचजीव विभाग

(PHYLUM ECHINODERMA)

इस विभाग में सब कटकचर्मी जीवो को एकत्र किया गया है जिनके शरीर के बाह्य आवरण पर काँटे जैसे उभार रहते हैं। ये सब समुद्र के निवासी हैं जिनमें से कुछ गहरे समुद्रो में और कुछ छिछले समुद्रो में अपना समय बिताते हैं। इनमें से अधिकाश प्राणियो के शरीर मे एक प्रकार का अतर ककाल (Endo Skeleton) होता है जो कैलशियम कार्बोनेट के प्लेटो का बना होता है। इनकी कितनी ही जातियाँ ससार मे फैली हुई हैं जिनमें तारा मछली (Star Fish) और जलसाही (Sea Urchin) बहुत प्रसिद्ध हैं।

इस विभाग को वैसे तो विद्वानो ने ५ श्रेणियो में विभक्त किया है, लेकिन इनमें से नीचे लिखे केवल दो का वर्णन यहा दिया जा रहा है—

१. तारामछली श्रेणी—Class Asteroidea

२ समुद्रीसाही श्रेणी—Class Echinoidea

तारामछली श्रेणी

(CLASS ASTEROIDEA)

इस श्रेणी में सब प्रकार की तारा मछलियाँ रखी गयी है जिनका शरीर पाँच कोणवाले सितारे की तरह रहता है। ये सब समुद्र में रहनेवाले जीव हैं जो मरी हुई मछलियो आदि को खाकर समुद्र की सफाई करते रहते हैं। सूखे पर फेक दिये जाने पर तारा मछलियाँ बेबस हो जाती हैं और कुछ देर तक एक ही जगह पडी रहकर मर जाती हैं। यहाँ एक प्रसिद्ध तारामछली का वर्णन दिया जा रहा है।

तारामछली

(STAR FISH)

तारामछली का मछलियों से कोई संबन्ध नहीं है, फिर भी मछलियों के साथ रहने के कारण इसको भी लोग मछली कहने लगे हैं।

ये समुद्र में रहनेवाले सितारे की शकल के जीव हैं जो पंचकोण की शकल के होते हैं या इनके गोल शरीर से पाँच ओर नोकीली भुजाएँ सी निकली रहती हैं।

तारामछली समुद्र में रहनेवाले जीवों में है जो दिन में तो चुपचाप पानी के भीतर डूबी हुई चट्टानों में आराम करती रहती है लेकिन रात होते ही बहुत तेज़ हो जाती हैं और इधर-उधर अपनी खूराक की तलाश में धीरे-धीरे चलने-फिरने लगती है। उलटी कर देने पर इसको सीधा होने में कुछ दिक्कत जरूर पहुँचती है, लेकिन जिस तरह कछुआ उलट जाने पर अपनी लम्बी गर्दन को जमीन में टेककर सीधा हो जाता है उसी प्रकार तारामछली भी अपनी एक भुजा को सिकोड़ कर सीधी हो जाती हैं।
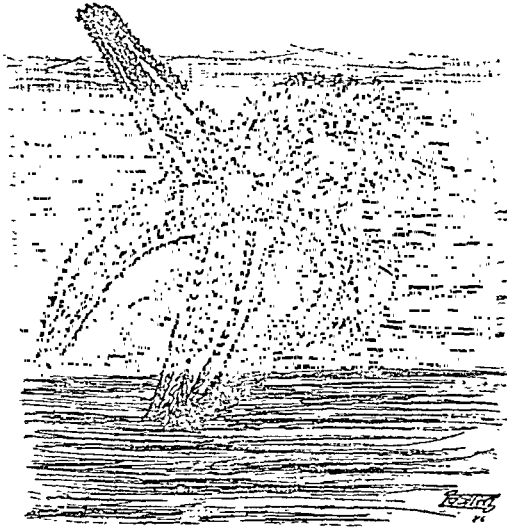
तारा मछली

तारामछलियों को प्रकृति ने बहुत सुन्दर पोशाक दी है। ये लाल, पीली और बैंगनी रंग की होती हैं और देखने में पाँच पंखड़ी वाले खिले फूल के समान जान पड़ती हैं। ये पंखड़ियाँ ही इनकी भुजाएँ हैं। इनका मुंह नीचे की ओर रहता है जिसके चारों ओर बहुत से छोटे कांटे रहते हैं। मुंह से भुजाओं की जड़ तक एक नली जैसी रहती है जिसके दोनों ओर छोटे-छोटे छिद्र होते हैं जो जोड़े में सजे रहते हैं। इन छिद्रों के मुँह पर चूपिकाएँ रहती हैं जिनसे तारामछलियाँ किसी भी कड़ी चीज को बड़ी मजबूती

से पकड़ सकती हैं। ये घुण्डियाँ इसको किसी स्थान पर चिपके रहने में तो मदद देती ही हैं साथ ही साथ इधर उधर चलने-फिरने में भी ये इसकी बाहुओं का काम बहुत कुछ हल्का कर देती हैं क्योंकि घुण्डियों के नीचे की नली को तारामछलियाँ बड़ी आसानी से थोड़ा भीतर बाहर कर सकती हैं।

तारामछलियाँ केवल मांसभक्षी जीव नहीं हैं। इन्हें तो सर्वभक्षी कहना ज्यादा ठीक होगा। इनसे खाने की कोई भी चीज नहीं बचती। सीप के लिए तो ये काल ही हैं। किसी सीप को इन्होंने देखा नहीं कि ये उसके ऊपर सवार हो जाती हैं और फिर अपनी दो भुजाओं को उसके दरवाजे में डालकर उन्हें खोल लेती हैं। सीप का ढक्कन खुल जाने पर ये अपने पेट को उसपर रखकर उसका नरम शरीर खा लेती हैं।

अगर हम तारामछली की ऊपरी सतह को छुएँ तो हम देखेंगे कि उसकी खाल बहुत खुरदुरी-सी है और जिस पर बहुत से छोटे-छोटे मस्से से उभरे हैं। उसके नीचे के हिस्से को हम यदि उलट कर देखें तो हमको उसका मुँह दिखाई पड़ेगा जिसके चारों ओर छोटे-छोटे किन्तु कड़े काँटे से फैले हैं।

तारामछली जब पानी के बाहर रहती है तो उसकी आँखें, पैर और मुँह किसी काम के नहीं रहते और वह बेबस रहती है। पानी में डालने पर पहले तो वह अपने पैरों को खाल के भीतर समेटे रहती है लेकिन थोड़ी ही देर में छिद्रों से सैकड़ों पैर बाहर निकल आते हैं और तब तारामछली अपनी पखड़ियों को पानी पर चलाकर और पैरों को हिलाकर आगे की ओर बढ़ती है।

तारामछली दिन भर खाने की ही फिक्र में रहती है और सीपी तथा घोंघों का बहुत नुकसान करती है। इसी कारण मछुए जब इसे पकड़ पाते थे तो बीच से फाड़ कर समुद्र में फेंक देते थे, लेकिन उनको शायद इसका परिणाम नहीं मालूम था कि दो टुकड़े किये जाने पर तारामछलियाँ मरती नहीं, बल्कि उसके दोनों टुकड़े अलग अलग दो स्वतन्त्र तारामछलियाँ बन जाते हैं।

जलसाही श्रेणी

(CLASS ECHINOIDEA)

इस श्रेणी में सब प्रकार की जलसाहियाँ एकत्र की गयी हैं जो समुद्र की निवासिनी हैं। इनका शरीर नारंगी-सा गोल और ऊपर तथा नीचे चपटा रहता है। इनके

सारे शरीर पर छोटे-छोटे काँटे रहते हैं जिससे इन्हें जलसाही या समुद्री-साही कहा जाता है।

यहाँ एक प्रसिद्ध जलसाही का वर्णन दिया जा रहा है।

जलसाही

(SEA URCHIN)

जलसाहियों को यह विचित्र नाम इसलिए मिला है कि उनके सारे शरीर पर उसी प्रकार काँटे भरे रहते हैं जैसे हमारी जंगल की साहियों के।

ये समुद्र में रहने वाले ५–६ इंच के जीव हैं जो ज्यादातर चट्टानों के आसपास के समुद्री तटों पर रहते हैं। ऐसे स्थानों पर जहाँ जलसाहियों की अधिकता है बहुधा

जलसाही

लोग कम नहाते हैं क्योंकि जलसाहियों के काँटे नुकीले तो होते ही हैं, साथ ही साथ उनमें से कुछ जहरीले भी होते हैं।

ये काँटे हमारे लिए भले ही भयानक हो, लेकिन जलसाहियों के लिए तो ये ही उनके बचाव के साधन हैं। अन्य समुद्री जीव जब इन पर हमला करते हैं तो समुद्री साही ठीक उसी तरह अपने काँटे फैला देती हैं जैसे दबाव पड़ने पर हमारी जंगल की साहियाँ करती है।

जलसाहियाँ समुद्र के किनारे रहती है, जहाँ वे अक्सर चट्टानों में अपने छिपने के लिए सूराख बना लेती हैं जिसमे घुसकर वे दुश्मनों और तेज लहरों से बच जाती हैं।

इनका शरीर प्राय गोल होता है जो ऊपर और नीचे की ओर नारंगी-सा चपटा रहता है। सारा शरीर शल्को से ढका रहता है जो आपस मे जुटकर उसको एक प्रकार की कड़ी खोल से ढके रहता है। दोनो चपटे सिरो मे से एक में एक सूराख रहता है जिसमे से पाँच चमकीले दाँत-से निकले रहते हैं। इसी ओर से समुद्री साही अपने शरीर के भीतर बालू भर लेती है, जिसमें के छोटे-छोटे कीड़े वगैरह तथा अन्य खाद्य पदार्थ तो उसके शरीर के भीतर रह जाते है और बालू खूब पिसकर बाहर निकल जाती है।

जलसाही की शक्ल साही-सी होती हो, सो बात नही है। इसके न तो पैर होते हैं, और न सिर ही। यह गोल काँटेदार गेंद-सी होती है जिसके काँटे काफी तेज होते है। तारा मछली की तरह इसके सारे शरीर पर पतली-पतली नलियाँ रहती हैं जिन्हें यह भीतर बाहर कर सकती है और इन्ही नलियो की हरकत से यह चलने-फिरने में समर्थ होती है।

जलसाही के गोल शरीर के ऊपरी हिस्से पर छोटे-छोटे नेत्र होते हैं जो दो लाल बिन्दुओं-से जान पड़ते हैं। इसका मुँह नीचे की ओर लिफाफ-सा होता है। जलसाही के खाने, चलने और अपने शरीर को साफ रखने के आश्चर्यजनक तरीके हैं। इसके मुँह में भी तारा मछली की तरह पाँच दाँत होते हैं, जो ऊपर-नीचे कैंची की तरह चलकर सभी तरह की चीजो को काट देते हैं। इसका मुख्य भोजन समुद्र के घास-पात, मरी हुई मछलियाँ और जानवरो की लाश है। ये कभी-कभी अपनी सैंकड़ो भुजाओ से छोटे-छोटे जानवरो को पकड़कर अपने जबड़ो से काट डालती हैं। इन का पेट कभी नहीं भरता और ये हमेशा खाने ही की तलाश में परेशान रहती हैं। यही कारण है कि इनके दाँत जल्द घिसते जाते हैं, लेकिन प्रकृति ने इनकी जरूरत को देखकर इन्हें यह सहूलियत दी है कि इनके दाँत जैसे-जैसे घिसते हैं वैसे-वैसे नीचे से बढ़ते भी जाते हैं।

जलसाहियों के बदन पर करीब २,००० छोटे-छोटे, नोकीले काँटे रहते हैं जो उनको शत्रुओं से तो बचाते ही हैं, साथ ही साथ उन्हें लुढ़कने में भी मदद देते हैं। इन्हीं काँटों से ये बालू में गढ़े बना लेती हैं जो दुश्मनों के आक्रमण के समय इनके छिपने के काम आते हैं।

जलसाहियाँ अक्सर समुद्र के किनारों पर ही पायी जाती हैं। ये प्रायः दो इंच चौड़ी होती हैं। इनके शरीर के काँटे आध इंच लम्बे होते हैं। ये काँटे सफेद या धूमिल हरे रंग के होते हैं जिनके सिरे बैंगनी रहते हैं।

खंड ६

कोपस्थजीव विभाग

(PHYLUM MOLLUSCA)

इस विभाग के प्राणियों का शरीर बहुत कोमल और अखंडित होता है जो एक कड़ी खोल या ढक्कन के भीतर सुरक्षित रहता है। इनका शरीर तीन मुख्य भागों में बांटा जा सकता है—१ सिर (Head) २ अधरपाद (Ventral Foot) ३ धड़ (Visceral Mass)। इन जीवों का अधरपाद तो इनके कड़े कवच के बाहर निकल कर इनके चलने फिरने में सहायता भी देता है, लेकिन इनका बाकी शरीर कड़ी खाल के भीतर ही रहता है।

इस विभाग में सब तरह के घोंघे, कटुए, शंख, सीपी, सूती और अष्टबाहु आदि प्राणी रखे गये हैं जो बहुत छोटे-छोटे से लेकर ५-७ मन तक के होते हैं। इनकी सैकड़ों जातियाँ सारे संसार में फैली हुई हैं जिनमें कुछ मीठे पानी में और अधिकांश समुद्रों में निवास करती हैं।

इस विभाग के प्राणी विभिन्न शकल सूरत के होते हैं। फिर भी उन सबका शरीर कोमल होता है और वे अपने अधरपाद की सहायता से धीरे धीरे चलते हैं। वैसे तो इसमें छोटे-बड़े सभी प्रकार के जीव सम्मिलित हैं, लेकिन कुछ बड़ी जाति के स्क्विड (Giant Squid) तो इतने भीमकाय होते हैं कि उनकी लम्बाई ५० फुट तक पहुँच जाती है।

इस विभाग के सभी प्राणियों के कोमल शरीर को एक झिल्ली-सा आवरण ढक रहता है जो उनकी कड़ी खोल से जुटा रहता है। इन्हीं दोनों के बीच इन प्राणियों की साँस लेने की इन्द्रिय रहती है। नीचे इन जीवों के निचले हिस्से से ही इनके कोमल शरीर का कुछ हिस्सा निकला रहता है जिसके सहारे ये इधर उधर चलते फिरते हैं। यही उनके पैर हैं।

एक बात और भी इनके बारे में जानना जरूरी है, वह है इनके शरीर के ढाँचे का परिवर्तन। इनमें से कुछ प्राणी ऐसे भी हैं जिनको अपनी असली शक्ल-सूरत तक आने में कई परिवर्तनों का सामना करना पड़ता है।

इनमें से कुछ को छोड़कर प्रायः सभी जीव अंडज होते हैं। [illegible] कुछ कटुए ऐसे जरूर हैं जो अपने पेट के भीतर ही अंडा सेकर बच्चा पैदा करते हैं। खुश्की में रहनेवालों के अंडे अक्सर चिड़ियों की तरह कड़ी खोल के भीतर रहते हैं, लेकिन पानी में रहनेवालों के अंडे मेढक-मछलियों की तरह लसलसे पदार्थ के समान होते हैं।

इन जीवों का मुख्य भोजन वैसे तो पानी की काई और छोटे-छोटे पौधे एवं कीड़े हैं, लेकिन इनमें से कुछ ऐसे भी हैं जो केकड़ों आदि को भी पकड़ लेते हैं।

इस विभाग को निम्नलिखित तीन श्रेणियों में इस प्रकार बाँटा गया है—

१. उदरपादी-जीव श्रेणी—Class Gastropoda

२. परशुपादी-जीव श्रेणी—Class Pelicypoda

३. शीर्पपादी-जीव श्रेणी—Class Cephalopoda

उदरपादी-जीव श्रेणी में सब प्रकार के शंख, कटुए और कौड़ी आदि प्राणी हैं जो मीठे और खारे पानी के निवासी हैं।

परशुपादी-जीव श्रेणी में सीप और सूतियाँ एकत्र की गयी हैं जिनमें से कुछ तो मीठे पानी में और कुछ खारे पानी में रहती हैं।

शीर्पपादी-जीव श्रेणी में मसि और अष्टबाहु आदि समुद्री जीव हैं जो अपने लंबे और विशाल शरीर के लिए प्रसिद्ध हैं।

यहाँ इन तीनों श्रेणियों के कुछ प्रसिद्ध जीवों का वर्णन किया जा रहा है।

उदरपादी-जीव श्रेणी

(CLASS GASTROPODA)

उदरपादी-जीव श्रेणी कोपस्थजीव विभाग की सबसे बड़ी श्रेणी है। इस श्रेणी के जीव मीठे तथा खारे पानी के अलावा मिट्टी में भी पाये जाते हैं। इनकी ऊपरी खोल ऐंठी या घुमावदार होती है। इनके शरीर के सामनेवाले भाग में इनका सिर रहता है जो शरीर से कुछ अलग रहता है। सिर के ऊपर दो आँखें रहती हैं और उन्हीं

के आसपास इनके अंगक (Tentacle) भी रहते हैं। इनके मुंह में फीते-सी जबान और बहुत से दांत होते हैं। छेड़े जाने पर ये अपने शरीर को सिकोड़कर अपनी कड़ी खाल के भीतर कर लेते हैं और अपने मुखपाद के निचले चौड़े भाग से खोल के द्वार को भी बंद कर लेते हैं।

यहां कुछ प्रसिद्ध जीवों का वर्णन किया जा रहा है।

शंख
(WHELK)

शंख की एक नहीं अनेक जातियाँ हैं। ये सब समुद्री जीव हैं जो पिलछौंह, भूरे, सफेद, राखी तथा और कई रंग के होते हैं। किसी-किसी के तो धारी भी पड़ी रहती है और कुछ का शरीर चिकना और कुछ का खुरदुरा रहता है।

शंख

शंख अपने शरीर के निचले भाग से उसी तरह जमीन को पकड़कर चलता है जैसे हमारे कटुए चलते हैं और खतरे को निकट देखकर यह भी तुरन्त अपने पूरे शरीर को समेटकर अपनी कड़ी खोल के भीतर कर लेता है।
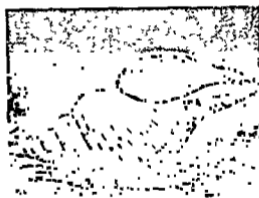
शंख को एकदम शाकाहारी जीव नहीं कहा जा सकता, क्योंकि घासपात के अलावा यह घोंघे और कटुओं को भी बड़े स्वाद से खाता है। कटुए और सूती इत्यादि जब इसकी पकड़ में आ जाते हैं तो यह अपने तेज रेतीनुमा दांतों को उनकी कड़ी खाल में घुसेड़ देता है और फिर उसी सूराख से उनके कोमल शरीर को चूस लेता है।

अपने शरीर के कड़े कवच के होते हुए भी शंख दुश्मनों के हाथ न पड़ता हो, सो बात नहीं है। इसको तारा मछली बड़ी आसानी से मार लेती है। कई शंखों को एक

[illegible] में एक खास तरह की ग्रंथियों से काम लेती है। [illegible] पास में आकर उनको अपने पैर की [illegible] में दबा लेती है। [illegible] के एक प्रकार का तेज रस निकलता है जो उसके [illegible] शरीर को [illegible] उसकी कड़ी खोल से अलग कर देता है।

शंखिनी एक बार में एक दो नहीं बल्कि हजारों की संख्या में अंडे देती है जो एक प्रकार के [illegible] कड़ी खोल में बंद रहते हैं, लेकिन इन अंडों में से शुरू में जो बच्चे निकलते हैं वे अंडों को खा डालते हैं और इस प्रकार अन्त में थोड़े ही बच्चे बच पाते हैं।

कौड़ी

(COWRIE SHELL)

कौड़ियों की एक दो नहीं करीब दो सौ किस्में हैं जो ज्यादातर गरम समुद्रों में पायी जाती हैं। हम लोग तो प्रायः दो किस्म की कौड़ियां जानते हैं। एक सादी कौड़ी,

कौड़ी

जो कुछ दिन पहले सिक्कों की तरह इस्तेमाल होती थी और दूसरी टुइयां कौड़ी जो चपटी और मजबूत होती है और जिससे अक्सर लोग दीवाली पर जुआ खेलते हैं। इनके अलावा एक प्रकार की बड़ी कौड़ी भी अक्सर उन लोगों के पास दिखाई पड़ती है जो समुद्र के किनारे हो आये हैं। यह समुद्री कौड़ी कहलाती है और इसका कद लगभग ३–४ इंच का होता है। इसका रंग वैसे तो सफेद रहता है, लेकिन इसकी पीठ पर घनी भूरी चित्तियाँ पड़ी रहती हैं।

यह बताने की तो अब जरूरत नहीं रह जाती कि कौड़ी भी शंख की तरह का एक

समुद्री जीव है जो अपने पिछले भाग या पैर को खोल से बाहर निकाल कर धीरे धीरे कछुए की तरह खिसकती है और खतरा निकट देखकर अपने कोमल शरीर को फ़ौरन खोल के भीतर कर लेता है। इसका खोल बड़ी दाना और काफी मोटी खोल रहता है जो खोल सी लगती है। इसका ऊपरी सतह खोल ऐसी चिकनी होती है कि जान पड़ता है कि जैसे अभी किसी ने पालिश की हो। कौड़ियाँ विविध रंगों की होती हैं जिनमें से कुछ का रंग तो बहुत सुहावना रहता है।

इनकी और आदतें नाला म मिलती जुलती होती हैं। इसमें उन्हें फिर दुहराने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती।

घोंघा

(LAND SNAIL)

घोघे और कछुए भाई भाई हैं लेकिन घोघे ने अपने रहने का स्थान खुश्की को चुना है तो कछुआ ने पानी को। वैसे दोनों की आदतों में ज्यादा फर्क नहीं रहता।

घोघों की एक नहीं अनेक जातियाँ हैं लेकिन यहाँ जिस घोघे का वर्णन किया जा रहा है उसे हम अक्सर अपने बाग बगीचों में देखते हैं।

घोंघा

घोघे का शरीर बहुत कोमल होता है जिस पर एक तरह की पतली खाल चढ़ी रहती है। इस खाल के ऊपर इसकी कड़ी खोल रहती है। यह पहली खोल इसकी

खोल के लिए अस्तर का काम देती है। घोंघे का जो हिस्सा हम उसकी खोल के बाहर निकलता देखते हैं, वह उसका पैर है जिसके सहारे वह अपनी कड़ी खोल के साथ धीरे-धीरे आगे की ओर खसकता रहता है। इसका पैर आसानी से आगे की ओर फिसल सके, इसके लिए प्रकृति ने बहुत अच्छा प्रबंध किया है। इसके पैर के आगे एक रसकी थैली रहती है जिसमें से इसके आगे बढ़ते समय एक प्रकार का रस निकलकर गिरता है और उसी पर घोंघा फिसलता जाता है। इसके गोलाई लिये हुए सिर पर मांस के दो जोड़ लोथड़े से बढ़े रहते हैं जो सींग से दिखाई पड़ते हैं। इन्हीं सींगों के सिरे पर इसकी आँखें रहती हैं जिनको घोंघा जब चाहता है भीतर की ओर कर लेता है, क्योंकि ये सींग पोले होने के कारण उसी तरह भीतर को उलट जाते हैं जैसे हम मोजे को उतारते समय उलट लेते हैं।

घोंघे की जबान भी अद्‌भुत होती है। उसके बीच में एक लंबा कड़ा फीता-सा रहता है, जिसमें डेढ़ हजार के लगभग महीन दाँते से कटे रहते हैं जो वास्तव में घोंघे के दाँत हैं। जब घोंघा किसी पत्ती पर सरकता हुआ चलता है तो वह अपनी फीते जैसी जबान को उसकी सतह पर रगड़कर उसका रस चूस लेता है।

घोंघा रात्रिचारी जीव है जो दिन में किसी पत्थर या पत्तियों के नीचे नम जगह में छिपा रहता है और रात को बाहर निकलता है। यह खुश्क हवा और तेज रोशनी नहीं सह सकता। इसका कारण यह है कि यह अपनी खाल के छिद्रों से साँस लेता है और जैसे ही खाल की नमी समाप्त हो जाती है इसका जीना असंभव हो जाता है। इसी कारण यह रात में बाहर निकलता है जब सूर्य की तेज रोशनी में इसकी खाल के सूखने का डर नहीं रह जाता।

पतझड़ के मौसम में जब प्रायः रसदार हरे पेड़ सूख जाते हैं तो घोंघों को खाना बहुत कम मिलता है। इसीलिए जाड़ों में ये अपनी खोल में घुस जाते हैं और किसी निरापद स्थान में शीतशायी होकर पूरा जाड़ा सोकर बिता देते हैं। सोने से पहले घोंघे अपनी रस की थैली से काफी रस निकालकर किसी जड़, दीवार या पत्थर से चिपक जाते हैं। जहाँ यही रस कड़ा होकर उन्हें जाड़े भर उसी जगह पर जमाये रखता है। जाड़े भर ये चुपचाप बिना खाये-पिये और साँस लिये एक ही जगह पर पड़े रहते हैं और गरमी का मौसम आने पर इनका चलना-फिरना फिर शुरू हो जाता है।

जून-जुलाई में घोंघे जमीन में ढेर के ढेर अंडे देते हैं। ये अंडे छोटी मटर के बराबर होते हैं जो दर्पण में मोती-से चमकीले लगते हैं। अंडा के फूटने पर उनमें से बहुत छोटे घोंघे निकलते हैं जो कई परिवर्तनों के बाद बढ़कर पूरे घोंघे बन जाते हैं।

कटुआ

(POND SNAIL)

कटुए मीठे पानी में रहनेवाले जीव हैं जो अपना सारा समय पानी में ही बिताते हैं। पानी में मछलियों की तरह रहने पर भी ये मछलियों की तरह पानी के भीतर साँस नहीं ले पाते और इन्हें साँस लेने के लिए बार-बार पानी से बाहर आना पड़ता है।

कटुआ

कटुआ की बहुत-सी जातियाँ हैं, लेकिन शक्ल सूरत में भिन्न भिन्न होने पर भी इनकी आदतें एक जैसी ही होती हैं। इनकी खोल घोंघे की तरह पतली और हल्की होती है और भीतर का भाग बहुत कोमल होता है। कटुए के नीचे जो नरम हिस्सा बाहर निकलता और भीतर जाता है वह कटुए के पैर हैं और इसी से कटुआ पानी में घासपात या डंठल और तनों को पकड़कर चिपक जाता है। पानी के भीतर की सतह पर भी वह इसी नरम हिस्से की मदद से सरकता है और खतरे की घड़ी निकट आने पर इसको कड़ी खोल के भीतर समेट लेता है।

कटुए शाकाहारी जीव हैं जो छिछले पानी में ही रहना पसन्द करते हैं। ये झुंड में रहते हैं। इनकी मादा अपने अंडे पानी में उगनेवाली घास या नरकुल की पत्तियों और डालियों पर देती है जिस पर वे चिपक जाते हैं और वहीं फूटने तक लगे रहते हैं। ये अंडे अर्धपारदर्शक और चिपचिपे होते हैं जो एक प्रकार की खोल में बंद रहते हैं।

परशुपादी-जीव श्रेणी

(PHYLUM LAMELLIBRANCHIA)

इस श्रेणी में सब प्रकार की सीप और सूतियाँ रखी गयी हैं।

इस श्रेणी में सीप और सूतियाँ आती हैं जो अपने डिविया की तरह बीच से खुल जानेवाले शरीर के कारण औरों से नहीं छिपतीं। इनका कोमल शरीर कड़े ढक्कनों के भीतर रहता है। ये बहुत ही काहिल जीव हैं जिनमें से कुछ तो स्थायी रूप से किसी कड़ी वस्तु पर चिपके रहते हैं। इनमें कुछ जीव ऐसे भी हैं जो बालू या कीचड़ में अपने को गाड़ लेते हैं। इनका सिर कटुओं जैसा बड़ा नहीं होता। ये पानी में रहने-वाले प्राणी हैं जिनमें से ज्यादा समुद्र के निवासी हैं। परन्तु कुछ ऐसे भी हैं जो मीठे पानी में ही रहते हैं।

मनुष्यों के लिए इस श्रेणी के जीव बहुत काम के हैं। समुद्रों में पायी जानेवाली मुक्ता-सीप जहाँ हमें बहुमूल्य मोती देती है, वहीं मीठे पानी की सूतियों के ढक्कनों से हम बटन चाकू आदि के बेंट तथा अन्य शोभा की वस्तुएँ बनाते हैं। इन सूतियों में भी हमें कभी-कभी मोती मिल जाते हैं, लेकिन वे छोटे और घटिया होते हैं।

यहाँ सूती (Fresh Water Mussel) तथा मुक्ता सीप (Pearl Oyster) का वर्णन किया जा रहा है।

सूती

(FRESH WATER MUSSEL)

सूती हमारे देश में प्रायः सभी बड़े जलाशयों, नदियों तथा झीलों में पायी जाती है, जहाँ इसे बालू में आधी गड़ी हुई अवस्था में देखना कुछ कठिन नहीं होता।

सूती दोनों ओर से चपटी होती है जो देखने में अंडाकार डिबिया-सी जान पड़ती है। इसके शरीर की कड़ी खोल, जो दो ढक्कनों जैसी होती है, एक बगल में आपस में जुटी-सी रहती है। यह जुटा हुआ भाग ऊपर रहता है और खुलनेवाला बगली हिस्से पर या नीचे की ओर रहता है। इसी से सूती अपना कोमल पैर बाहर निकालकर धीरे-धीरे आगे की ओर सरका करती है। सूती के अगले भाग में उसका मुख-छिद्र रहता है और पिछले भाग में भी दो छिद्र रहते हैं। इन छिद्रों में से एक में होकर जलधार इसके शरीर के भीतर जाती और दूसरे से बाहर निकलती रहती है।

सूती के चलने-फिरने का वही तरीका है जो घोंघे और कछुए आदि कड़ी खोल के जीवों का होता है। ये भी अपने निचले भाग को खोलकर अपने गद्देदार पाद को बाहर निकाल लेती हैं और उसको बालू में गड़ा देती हैं। फिर इसी पाद के संकोचन से उसका शरीर भी थोड़ा आगे की ओर खिसक जाता है और इस प्रकार बार-बार संकोचन करने से सूती धीरे धीरे आगे की ओर खिसकती है।

सूती को अपने भोजन के लिए ज्यादा दौड़ धूप नहीं करनी पड़ती। अन्य कड़ी खोलवाले प्राणियों की तरह यह पानी को अपने भीतर खींच लेती है और उसमें से खाद्य
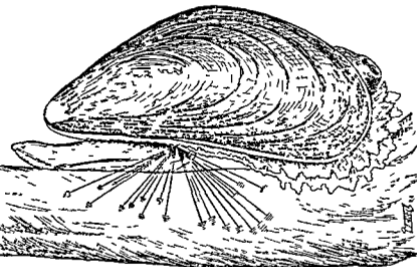
सूती

पदार्थ को ग्रहण करके अपना भरण-पोषण करती है। इसी जलधार से यह प्राणवायु को भी सोखती है।

सूतियाँ उभयलिंगी न होकर एकलिंगी होती हैं। नर के मांसल पैर के ऊपरी भाग में एक वृषण होता है। मादा के ठीक इसी स्थान पर अण्डाशय रहता है। परिपक्व होने पर वृषण से शुक्रकीट पानी में फैल जाते हैं और मादा सूती के अण्डाशय में प्रवेश करके फलित हो जाते हैं। इसके उपरान्त यह फलित डिम्ब सूती के शरीर से बाहर निकलकर पानी में फैल जाते हैं और किसी मछली के सम्पर्क में आने पर

इनके गलफड़ों में चिपक जाते हैं। वहां लगभग एक सप्ताह पश्चात् ये फूट जाते हैं और इनमें से सूंडियों के छोटे बच्चे निकलकर पानी में अपना जीवन बिताते हैं।

मुक्ता सीप

(PEARL OYSTER)

मुक्ता सीप गरम समुद्रों में पायी जानेवाली सीपों में से है जिनसे मोती प्राप्त होते हैं। इनकी बनावट और रहन-सहन सीपियों से मिलती-जुलती होती है, लेकिन ये उनसे कुछ बड़ी और अधिक चमकीली होती हैं। इनका ऊपरी खोल भी काफी मोटा होता है और भीतर भी एक स्तर रहता है जो मुक्तास्तर कहलाता है।
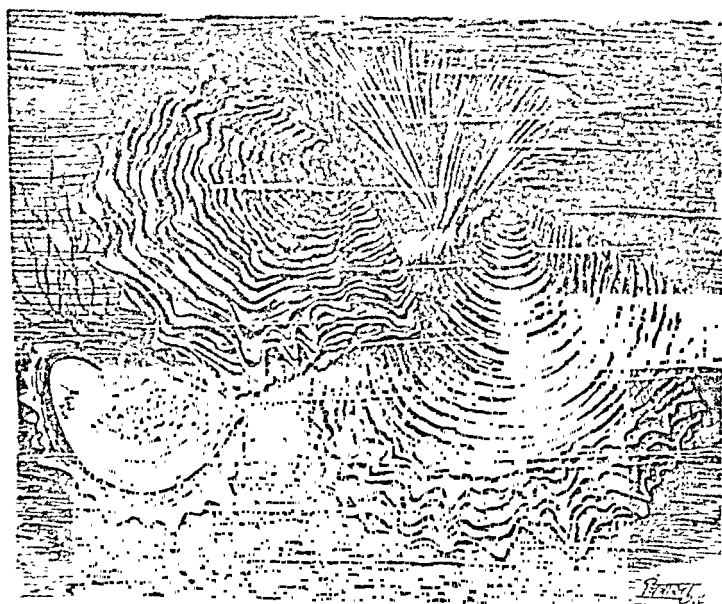
मुक्ता सीप

जब किसी प्रकार का परजीवी प्राणी या बालू आदि का कण मुक्ता सीप के कवच में घुस जाता है तो मुक्ता-स्तर से एक प्रकार का रस द्रवित होकर उस वस्तु के चारों ओर लिपट जाता है जिससे वह सीप के कोमल शरीर में न गड़े। यही चमकीला

गाढ़ा रस जब सूख जाता है तो मोती का रूप ग्रहण कर लेता है और उसमें छेद करके मालाएँ तथा अन्य आभूषण बनाये जाते हैं।

इस प्रकार सीपियों से मोती एकत्र करने में बहुत कठिनाई देखकर जापानवालों ने मोती प्राप्त करने का एक सरल उपाय ढूंढ निकाला। वे लोग मुक्ता सीपों को पालते हैं और उनके कवच के ढक्कन को फैलाकर उसके भीतर छोटे-छोटे कंकड़ डाल देते हैं जिसके चारों ओर मुक्ता द्रव लिपटने लगता है और धीरे धीरे वह सुंदर गोल मोती बन जाता है। इस प्रकार के मोतियों को 'कल्चर' मोती कहते हैं। ये सुडौल जरूर होते हैं, लेकिन इनका दाम असल मोतियों से कम होता है।

मुक्ता-सीप हमारे समुद्रों के अलावा जापानी समुद्रों में भी काफी संख्या में पाये जाते हैं। इनकी और आदतें सूतियों से मिलती जुलती होती हैं, इससे उन्हें दुहराने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती।

शीर्षपादी-जीव श्रेणी

(CLASS CEPHALOPODA)

इस श्रेणी में मसि तथा अष्टबाहु आदि वे समुद्री जीव रखे गये हैं जो इस विभाग के सबसे विकसित प्राणी हैं। इन प्राणियों का शरीर कड़े कवच से ढका नहीं रहता और इनका धड़ और सिर अलग-अलग जाहिर होते रहते हैं। इनकी आँखें मेरुपृष्ठी जीवों की आँखों की तरह होती हैं। इनके सिर और पैर एक ही में मिले रहते हैं और पाद के मध्य भाग में इनका मुख द्वार रहता है जो चारों ओर से अनेक बाहुओं से घिरा रहता है। प्रत्येक बाहु में कई चूषक रहते हैं जिनकी सहायता से ये अपने शिकार आसानी से पकड़ लेते हैं। ये सब समुद्र के निवासी हैं जो तैरने में बहुत उस्ताद होते हैं। तैरते समय ये आगे को न जाकर पीछे की ओर खिसकते हैं और इनके धड़ के दोनों ओर झालरनुमा फैले हुए सुफनों (Fins) से इनको तैरने में बहुत आसानी हो जाती है। यहाँ दो प्रसिद्ध जीव मसि (Cuttle Fish) और अष्टबाहु (Octopus) का वर्णन दिया जा रहा है।

मसि

(CUTTLE FISH)

मसि को यह नाम इसलिए दिया गया है कि इसके शरीर के भीतर मसिकोष्ठ होते हैं जिनके भीतर एक प्रकार की मसि या स्याही भरी रहती है। इन

मसिकोष्ठों या स्याही की थैलियों से ये एक प्रकार का काला पदार्थ निकालती हैं जिससे आक्रमणकारियों के सामने एक काला परदा-सा खड़ा हो जाता है और वे पानी में सामने की वस्तु नहीं देख पाते। इस प्रकार इन्हें भागने का अच्छा मौका मिल जाता है और ये दुश्मनों की आँख में धूल झोंककर नौ दो ग्यारह हो जाती हैं।

मसि की एक नहीं अनेक जातियाँ हैं जो संसार के प्रायः सभी समुद्रों में फैली हुई हैं। इनकी ज्यादा संख्या उथले समुद्रों में किनारे से थोड़ी दूर पर पायी जाती है।

मसि को देखकर यह नहीं कहा जा सकता कि ये भी उसी विभाग के जीव हैं जिसमें सीप और घोंघे हैं क्योंकि सीप घोंघों की तरह इनके शरीर के ऊपर कड़ी हड्डी का कवच या खोल नहीं रहता और इनका शरीर मछलियों की तरह ऊपर से मुलायम रहता है। इनके शरीर के भीतर चौड़ी हड्डी जरूर रहती है जो अक्सर बाजारों में समुद्रफेन के नाम से बिकती है।
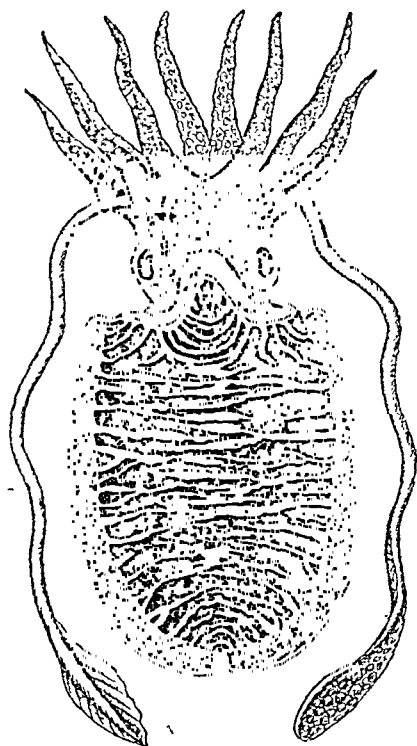
मसि

मसि बहुत ही प्रसिद्ध समुद्री जीव है जिसके शरीर की बनावट बहुत कुछ रबर के गरम पानी की बोतल की तरह होती है। इसके शरीर के किनारे की खाल इस तरह सिकुड़ी रहती है जैसे तकिए में झालरदार गोट लगा दी गयी हो। इसके मुँह को चारों ओर से बाहुओं के पाँच जोड़े घेरे रहते हैं जिनमें से चार जोड़ों पर कई मजबूत चूपक रहते हैं। शेष दोनों बाहुएँ औरों सी लम्बी होतीं हैं जिनके सिरे पर ही चूपक रहते हैं। मसि पहले अपने इन्हीं दोनों लम्बी बाहुओं से शिकार पकड़कर छोटी बाहुओं तक ले जाती हैं, जहाँ वह तमाम छोटी बाहुओं से जकड़कर मुँह में पहुँचा दिया जाता है।

मसि की लम्बी बाहुएँ ही उसके हाथ हैं जो उसके लिए बड़े उपयोगी हैं। प्रकृति ने इसीलिए उनकी बचत का ऐसा प्रबन्ध किया है कि मसि जब चाहती है तब इन्हें समेट कर थैलियों में बन्द कर लेती है।

मसि का जब तैरना होता है तो यह अपने शरीर के किनारे के झालरनुमा सुफना से जो इसके शरीर के दोनों ओर ऊपर से नीचे तक फैले रहते हैं, पानी काटकर लहराती हुई तैरती है। लेकिन किसी प्रकार का खतरा आने पर यह बड़ी तेजी से पीछे की ओर खिसकती है और खिसकते समय अपने शरीर से पानी में एक प्रकार की गहरी स्याही छोड़ती जाती है, जिसका वर्णन प्रारम्भ में हो चुका है।

मसि का मुख्य भोजन झींगे और केकड़े हैं, जिन्हें यह बड़ी सावधानी से पकड़ती है। अपने शिकार को देखकर यह धीरे-धीरे उसकी ओर बढ़ती है और निकट पहुँचने पर अपनी सिकुड़ी हुई लम्बी बाहुओं को उनकी ओर फेंककर उन्हें पकड़ लेती है।

मसि अंडा देने के समय बहुत किनारे तक आ जाती है। जहाँ वह समुद्री पेड़ों के तनों और शाखों पर ढेर के ढेर अंडे दे देती है। ये अंडे अंगूर के गुच्छे की शक्ल के होते हैं।

अष्टबाहु

(OCTOPUS)

अष्टबाहु भी समुद्र के जीव हैं जिन्हें मसि के भाई-बन्धु कहना अनुचित न होगा। मसि का शरीर जहाँ बड़ा और बाहुएँ छोटी होती हैं वहाँ मसि के शरीर का भाग छोटा और बाहुएँ काफी बड़ी रहती हैं। लम्बाई-चौड़ाई में ये अष्टबाहु से कहीं बड़ी होती हैं।

अष्टबाहु, जैसा कि उनके नाम से जाहिर है, आठ बाहुवाले जीव हैं जो अपनी इन्हीं बड़ी-बड़ी बाहुओं से अपना शिकार पकड़ते हैं। ये वैसे तो प्राय ८-१० फुट के होते हैं, लेकिन इनमें से कुछ की लम्बाई ४०-५० फुट तक की पायी गयी है।

कुछ को छोड़कर प्रायः सभी अष्टबाहु समुद्र के तल के निकट रहते हैं। ये उथले और गहरे दोनों प्रकार के समुद्रों में रहते हैं लेकिन ये जहाँ भी रहते हैं प्रायः समुद्र की
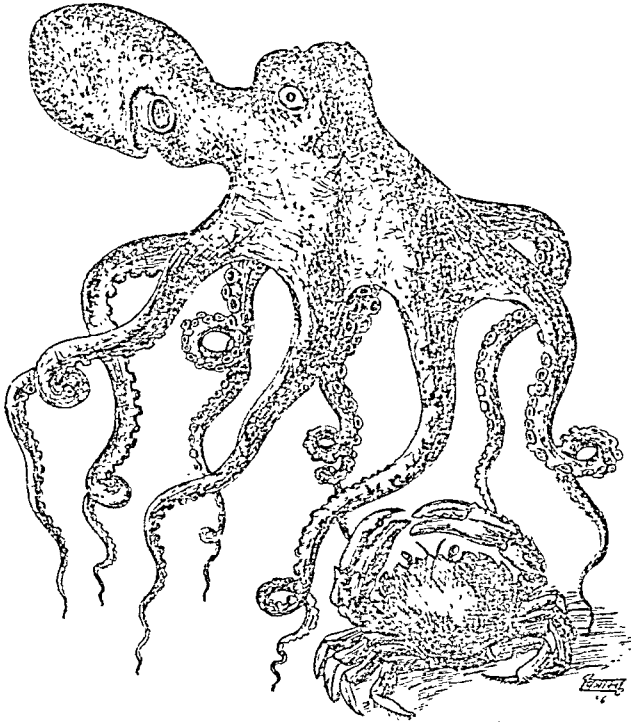
अष्टबाहु

तह पर ही रहते हैं। ये बहुत ही फुर्तीले और बलवान जीव हैं, जिनका मुख्य भोजन केकड़े हैं। ये अपने शिकार को पकड़ते ही उसके शरीर में एक प्रकार का विष भर देते हैं, जिससे शिकार का सारा शरीर सुन्न हो जाता है।

इनके शरीर में मसि की तरह स्याही की थैली नहीं रहती, लेकिन इनका रहन-सहन, स्वभाव तथा अन्य बातें मसि से मिलती-जुलती होती हैं।

खंड ७

संधिपादजीव विभाग

(PHYLUM ARTHROPODA)

संधिपादजीव विभाग जीव-जगत का सबसे बड़ा विभाग है। इसके अन्तर्गत लगभग सात लाख जातियों के प्राणी आते हैं, जो सारे संसार में जल-थल, आकाश, पाताल के अलावा पेड़-पौधों तथा अन्य जीवों के शरीर में परजीवी के रूप में रहते हैं। पहाड़ों पर बीस हजार फुट की ऊँचाई पर और समुद्रों में भी लगभग इतनी ही गहराई में इन जीवों को देखा जा सकता है।

इनमें से अधिकांश जीव हमारे लिए हानिकर हैं, लेकिन केकड़ा, झींगा आदि कुछ ऐसे भी जीव हैं जो हमारी खाद्य-समस्या के सुलझाने में बहुत महत्व रखते हैं। यही नहीं, जहाँ एक ओर टिड्डियाँ आदि समुदाय में रहनेवाले जीव हमारी हजारों एकड़ तैयार फसल को देखते ही देखते साफ कर देते हैं वहीं रेशम के कीड़ों से हमें वस्त्र, मधुमक्खी से मीठा शहद और तितलियों की रंगीन पोशाक से नेत्रों को सुख जरूर मिलता है। लेकिन ये थोड़े से जीव उस हानि के नुकसान की भी पूर्ति नहीं कर सकते जो टिड्डियों, दीमकों, चींटों तथा मक्खी मच्छरों और पिस्सुओं के द्वारा होती रहती है।

हमें इन जीवों से भली भाँति परिचित होने के लिए इनकी विशेषताओं को जान लेना चाहिए।

ये सब जीव संधिपाद जीव कहलाते हैं जिनका शरीर खंडयुत (Segmented) होता है और उनमें अनेक संधियाँ या जोड़ रहते हैं। इनके शरीर के भीतर कठोर हड्डियों का कंकाल नहीं रहता वरन् वह एक कड़े जीवन-रहित खोल से ढका रहता है, जो इनके कोमल शरीर के लिए एक प्रकार के कवच का काम करता है। चूँकि इस खोल में जीवन नहीं रहता, इससे उसकी वृद्धि इन जीवों की वृद्धि के साथ नहीं

होती और इसी कारण इन जीवों को थोड़े-थोड़े समय पर अपनी इस खोल को गिराकर नयी-नयी खोल धारण करनी पड़ती है।

इन जीवों की मांसपेशी में संकोचन की अद्भुत क्षमता रहती है। इसी कारण ये बड़ी द्रुतगति से चल-फिर और उड़ सकते हैं। इनके शरीर-खंडों पर इनके पतले पतले पैर जोड़े में रहते हैं जिनकी संख्या कभी-कभी काफी रहती है। ये इन्हीं से चलने, तैरने और अपनी रक्षा करते हैं। मुख के पास के इनके ये अवयव मुख के भीतर की ओर मुड़कर इनके जबड़े बन गये हैं जिन्हें ये अन्य जीवों की तरह ऊपर-नीचे न चलाकर दोनों बगल सरकाकर कड़ी चीजों को भी बड़ी आसानी से कुतर डालते हैं।

इनके सिर के आगे एक या दो जोड़ लम्बे अंगक (Tentacles) रहते हैं। यही इनकी स्पर्शेन्द्रियाँ हैं। इन जीवों को हवा में सांस लेने की सुविधा ने इनके जीवन-क्रम को और भी गतिमान बना दिया है और इनमें से कुछ ने अपने समाज का मनुष्यों जैसा विकास किया है। इनकी आंखें, स्पर्शेन्द्रियाँ और चेतना-शक्ति बहुत ही विकसित होती हैं। चींटी, दीमक, मधुमक्खी और बर्रे आदि जीवों ने अपने समाज का ऐसा सुन्दर संघठन किया है और उनके यहाँ ऐसा कड़ा अनुशासन है, जैसा मनुष्यों को किसी काल में भी न नसीब हुआ होगा।

इस विभाग के सभी प्राणी एकलिंगी (Uni Sexual) होते हैं और उनके नर और मादा को सहज में ही पहचाना जा सकता है। इनके अंडों के फूटने पर इल्लियाँ या शिशुकीट निकलते हैं जो एकदम असहाय अवस्था में रहते हैं और दिन भर अपने पेट भरने के अलावा जैसे उन्हें दूसरा कोई काम ही नहीं रहता। इल्ली कुछ दिनों तक पेड़-पौधों की नरम पत्तियाँ खाती रहती है। फिर उसके बाद उसका शरीर एक कड़े खोल के अन्दर बंद हो जाता है और तब हम उसे मूककीट (Pupa) कहने लगते हैं। इस अवस्था में वह किसी छोटे पेड़ की टहनी में लटक जाती है और वहीं कुछ समय इसी अवस्था में बिता देती है।

उसके बाद एक दिन सहसा यह कड़ा खोल फट जाता है और उसमें से कोई संधिपाद जीव निकल आता है।

इस विभाग का वर्गीकरण करना बहुत कठिन था, फिर भी विद्वानों ने इसे चार श्रेणियों में विभक्त किया है जो इस प्रकार हैं —

१ कठिनवर्तिकन श्रेणी—Class Crustacea

२ शतपादी श्रेणी—Class Myriapoda

३ कीट-पतग श्रेणी—Class Insecta

४ लूता श्रेणी—Class Arachnida

कठिनवर्तिकन श्रेणी में सब प्रकार के केकडे और झींगे आदि जीव है जो पानी में रहनेवाले प्राणी है और जिनमें से अधिकाश का समय समुद्रों मे ही बीतता है। इनका सिर (Head), धड या वक्ष (Thorax) अलग नही जाहिर होता और उनके दो जोड अगक (Feelers) स्पष्ट दिखाई पडते रहते हैं।

शतपदी श्रेणी में सब प्रकार के गोजर और रामघोडी या गिजाई रखी गयी हैं। इनका सिर इनके वक्ष से अलग स्पष्ट जान पडता है और इनके अगक या स्पर्शेन्द्रियो का एक ही जोडा होता है। इनका लम्बा शरीर छोटे-छोटे खड वृत्तो में बँटा रहता है जिनमें प्रत्येक मे छोटे छोटे पैर रहते है। गोजर के प्रत्येक खड में एक जोड पैर होते है और रामघोडी के प्रत्येक खड में दो जोड।

कीट-पतग श्रेणी इन दोनो श्रेणियों से बडी है। इसके अन्तर्गत हमारे सभी कीट-पतग आ जाते हैं। इन सबका शरीर तीन हिस्सो में बँटा रहता है।

१ सिर—Head

२ वक्ष—Thorax

३ उदर—Abdomen

सिर के भाग में एक जोड स्पर्शेन्द्रिय होती है और इसी में इसके दो जोड चिमटे, जबडे और आखें रहती है। वक्ष भाग में इसकी तीन जोड टाँगें, दो जोड पख रहते है और उदर के भाग में इसके पैर रहते हैं। उदर का भाग दस खडो मे विभक्त रहता है जिसे इसके पख ढके रहते हैं। इन्ही के भीतर कीडे का कोमल शरीर रहता है जिसमें उसके शरीर की पाचन-क्रिया होती है। कीडे के इसी भाग में दो छिद्र रहते है जिसमें से होकर एक नली जाती है, जिससे कीडा साँस लेता है। इन सबके छ पैर होते है।

लूता श्रेणी मे सब प्रकार की मकडिया और बिच्छू रखे गये है जिनका सिर उनके वक्ष से मिला रहता है, लेकिन वह उदर वक्ष से अलग जाहिर होता रहता है। इनके अगक

या स्पर्शेन्द्रियाँ नहीं रहतीं और वक्ष भाग पर एक जोड़ चिमटे और चार जोड़ पैर रहते हैं।

आगे प्रत्येक श्रेणी का तथा उनमें से प्रसिद्ध जीवों का वर्णन किया जा रहा है।

कठिन-वल्किन श्रेणी

(CLASS CRUSTACIA)

इस श्रेणी के जीव समुद्री-कीट कहलाते हैं। ये सब समुद्र के निवासी तो नहीं हैं लेकिन इन सबका जीवन पानी में जरूर बीतता है। संसार का कोई भी जलाशय न होगा, जहाँ इनकी कोई न कोई जाति न पायी जाती हो। इनमें बड़े जीव तो केकड़े अथवा झींगे के बराबर होते हैं लेकिन सबसे छोटे जीवों को देखने के लिए अणुवीक्षण यंत्र का सहारा लेना पड़ता है। इनकी भिन्न-भिन्न जातियों की शकल-सूरत में बहुत भेद रहता है और इनकी आदतें भी एक-जैसी नहीं होतीं।

यद्यपि ये सब पानी में रहनेवाले जीव हैं लेकिन इनमें से कुछ ऐसे भी हैं जो सूखे पर रहने और हवा में साँस लेने लगे हैं।

ये सब जीव अंडज हैं। अंडा फूटने पर जब इनके बच्चे निकलते हैं तो उनकी और माँ-बाप की शकल में बहुत भेद रहता है और कई परिवर्तनों के बाद कहीं जाकर वे अपने बड़ों के अनुरूप हो पाते हैं।

कर्कट श्रेणी काफी बड़ी है। इससे इसे पाँच उपश्रेणियों में विभाजित कर दिया गया है, जो कई वर्गों में बँटी है। लेकिन यहाँ इनमें से प्रसिद्ध कर्कट उपश्रेणी (Sub Class Malacostraca) का ही वर्णन किया जा रहा है जिनमें के जीव हमारे यहाँ काफी संख्या में पाये जाते हैं।

कर्कट उपश्रेणी

(SUB CLASS MALACOSTRACA)

इस उपश्रेणी में जो जीव एकत्र किये गये हैं उनमें यह समानता रहती है कि सिर के अलावा उनका शरीर दो हिस्सों में बँटा रहता है जिन्हें हम धड़ और पेट कहते हैं। धड़ का हिस्सा आठ खंडों में विभक्त रहता है जिनमें से कुछ या सबमें

एक-एक जोड टाँगो का रहना है। पेट का या पिछला हिस्सा छ खडो में बँटा रहता है जिनमे से प्रत्येक में एक जोड टाँगो का रहता है। कभी-कभी एक सातवाँ खड भी रहता है लेकिन उसमें टागे नही रहती।

इस उपश्रेणी को ११ वर्गों में विभाजित किया गया है जिनमे से केवल एक कर्कट वर्ग का वर्णन यहाँ किया जा रहा है, क्योकि वह इस श्रेणी का सबसे बडा वर्ग है और उसमे प्राय हमारे यहाँ के सभी परिचित और प्रसिद्ध जीव आ जाते हैं।

कर्कट वर्ग

(ORDER DECAPODA)

यह वर्ग इस श्रेणी का सबसे बडा वर्ग है जिसमें यहाँ के सभी परिचित जीव एकत्र किये गये है।

इन जीवो की बनावट में और अन्य वर्गों के जीवो की बनावट में यह भेद रहता है कि इनके अगले हिस्से या धड में के आठ खडो में से अगले तीन हिस्सो के पैर इनके जबडे बन गये हैं और बाकी पाँच खडो के दस पैर, पैर का काम देते हैं। इन्ही पैरो में से कुछ से ये चीजो को पकडने का काम लेते हैं। अगले हिस्से के इन पैरो की जड के पास इनके गलफड रहते हैं जिनसे ये साँस लेते हैं।

पिछले हिस्से के छ खडो की बारह टाँगें इनके तैरने के अवयव हैं जिन्हे तेजी से चलाकर ये पानी में इधर-उधर आते जाते हैं।

इनमें केकडे आदि कुछ जीवो का पिछला हिस्सा छोटा होता है और वह अगले हिस्से या धड के नीचे जुडा-सा रहता है जिसमे के पैरो से ये पानी की तह पर रेंगते हैं।

इस वर्ग के जीवो की मादा अपने पिछले हिस्से के पैरो पर अडे देती है जो उन्ही में तब तक चिपके रहते हैं जब तक फूट नही जाते।

इन जीवो को पूर्णरूप से प्रौढ होते होते अपने में कई परिवर्तन करने पडते हैं और कुछ के शिशु अपने बडे और प्रौढ जीवो से शक्ल-सूरत मे एकदम भिन्न रहते हैं।

चूँकि यह वर्ग बहुत बडा है अत इसको ठीक से समझने के लिए इसके जीवो को तीन उप-परिवारो में बाँटना पडा है जो इस प्रकार है—

१. झींगा उपवर्ग--Sub order Macrura

२. हरमिट-केकड़ा उपवर्ग--Sub order Anonura

३. कर्कट उपवर्ग—Sub order Brachyura

यहाँ इनमें से पहले दो उपवर्गों का वर्णन दिया जा रहा है।

झींगा उपवर्ग

(SUB ORDER MACRURA)

इस उपवर्ग में मुख्यतया दो प्रकार के जीव हैं—एक तो झींगे आदि जो पानी में तेजी से तैर लेते हैं और दूसरे समुद्री झींगे आदि जो समुद्र के तल पर रेंगते हैं। इसमें कुछ तो मीठे पानी के निवासी हैं और हमारे ताल-तलैयों तथा नदियों में पाये जाते हैं और कुछ ऐसे हैं जो अपना सारा समय समुद्रों में ही बिताते हैं।

इनका मांस बहुत स्वादिष्ठ होता है। इनमें से यहाँ दो जीवों का वर्णन किया जा रहा है जिनमें से एक मीठे जल का बड़ा झींगा है, जिससे हम भलीभाँति परिचित हैं।

समुद्री झींगा

(LOBSTER)

समुद्री झींगा समुद्र में रहनेवाला जीव है जो अपने शरीर की कड़ी पोशाक में ऐसा लगता है जैसे पुराने जमाने का सैनिक अपना जिरहबख्तर (कवच) पहने हो। निलछौंह काले रंग का यह जीव समुद्र के तल पर अपने शिकार के फिराक में इधर-उधर घूमता रहता है और एक बार इसके मजबूत पंजे की पकड़ में जो भी आ गया, फिर उसका छूटना संभव नहीं।

समुद्री झींगे के शरीर की खोल कड़ी होकर भी सीप या कछुए की तरह कड़ी नहीं होती और न वह उसके लिए सीप कछुओं की तरह उसके खोल का काम ही करती है। उसके शरीर पर का कड़ा आवरण तो अलग-अलग टुकड़ों में रहता है जिससे झींगों को इधर-उधर चलने या अपना बदन मोड़ने में दिक्कत नहीं होती।

एक बड़े टुकड़े से झींगे का सारा सिर ढका रहता है और उसके बाद ही इसका लम्बा शरीर रहता है जो छः उतार-चढ़ाव के छल्लेनुमा टुकड़ों के आपस में जुड़ने से

हैं। ये आध इंच के होते हैं और बड़े चंचल और झगड़ालू होते हैं। कभी-कभी ये आपस में ही लड़ते हैं और एक दूसरे को खा जाते हैं। कुछ और बढ़ने पर वे समुद्र के नीचे जाकर रहना शुरू कर देते हैं और दिन प्रतिदिन बढ़ते जाते हैं। ज्यों-ज्यों इनकी बढ़ती होती है इनकी कड़ी पोशाक इनके लिए तंग हो जाती है और इनको अपनी पोशाक बदलनी पड़ती है। इनके नीचे नयी पोशाक तैयार हो जाती है और ऊपर की पुरानी खोल केंचुए की खोल की तरह उतर जाती है। पहले यह पोशाक साल में कई बार बदलती है, लेकिन बड़े हो जाने पर झींगा साल में एक बार ही पोशाक बदलता है।

झींगे बचपन में ही इतने बड़े नहीं हो जाते, फिर भी वे अपनी झगड़ने की आदत से बाज़ नहीं आते। जब ये लड़ते हैं, तो इनकी लड़ाई ऐसी भयंकर होती है कि इनमें प्राय: एक मर जाता है और नहीं तो इनका अंग-भंग हो जाता है। इनके जो अंग टूट जाते या कट जाते हैं वे फिर नये सिरे से निकल आते हैं।

समुद्री झींगे का मुख्य भोजन पानी के कीड़े-मकोड़े और मछलियाँ आदि हैं। यह स्वयं भी खाने के लिए काफी संख्या में पकड़े जाते हैं और इन्हें लोग बड़े स्वाद से खाते हैं। उबालने पर इनका निलछौंह रंग बदल कर लाल हो जाता है।

झींगा

(PRAWN)

झींगा भी समुद्र का निवासी है, लेकिन इसकी कुछ जातियाँ हमारी नदियों में भी पायी जाती हैं। यह शकल-सूरत में समुद्री झींगे की तरह होकर भी कद में उससे छोटा होता है। इसका कद डेढ़ दो इंच से ज्यादा बड़ा नहीं होता और बदन का रंग पिलछौंह बादामी रहता है। इसके भी दस जोड़ पैरों के रहते हैं और इनके सिर पर का कवच आगे की ओर बढ़कर लम्बे तेगे की तरह दिखाई पड़ने लगता है।

झींगा
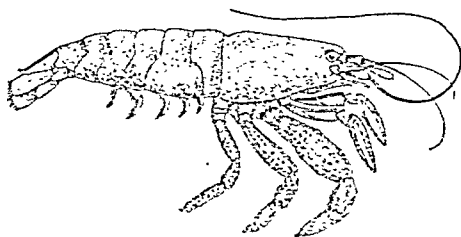
इसके सिर के पास तीन जोड़ लम्बे स्पर्शेन्द्रियों के होते हैं और शरीर के प्रत्येक

खड के नीचे एक जोड पैरो का रहता है जिसके सहारे झींगा बडी खूबी से पानी में तैरता रहता है। इनकी दुम पखी के समान शकल की होती है, जिसको तैरते समय ये इधर-उधर चलाते रहते है।

झींगे उथले समुद्र में न रहकर गहरे पानी मे रहना ज्यादा पसन्द करते हैं, लेकिन इनका शैशव काल पानी के किनारे ही बीतता है। इनकी और सब आदतें समुद्री झींगे की तरह होती हैं। इसमे उन्हें दुहराने की आवश्यकता नहीं जान पडती। झींगियो को पानी के नीचे का तल पसन्द है तो झींगे पानी के ऊपर ही तैरते रहते हैं। इन दोनो का मास बहुत स्वादिष्ठ होता है। झींगे का मास पकाने पर गुलाबी रग का हो जाता है, लेकिन झींगी का हमेशा भूरा ही रहता है।

ये झींगे अडज जीव हैं, जिनके अडो से निकलने पर बच्चे कई परिवर्तनो के बाद झींगे के असली स्वरूप को पाते हैं।

झींगी

(SHRIMP)

झींगी वैसे तो समुद्र की निवासिनी है लेकिन इसकी कुछ जातियाँ मीठे पानी में भी पायी जाती हैं। समुद्र के उथले पानी मे इन्हें तैरते देखना कठिन नही, लेकिन ये इतनी तेज और फुर्तीली होती हैं कि इन्हें पकडना आसान काम नहीं है। इनका शरीर
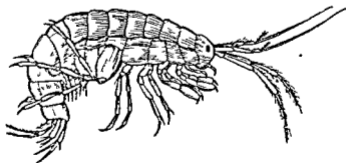
झींगी

पारदर्शी होने के कारण इन्हें जल्द नही देखा जा सकता, लेकिन जब ये अपने पैर चलाकर तेजी से इधर उधर जाती हैं तो ये हमारी निगाह के तले पड ही जाती हैं। छिछले

पानी में ये नीचे के तल पर बालू में बैठकर आराम करती हैं और इस समय बालू के रंग में ऐसा छिप जाती हैं कि उन्हें देखना आसान नहीं होता।

झींगी की शकल-सूरत बहुत कुछ झींगे से मिलती-जुलती होती है, लेकिन इनका शरीर झींगे से चपटा होता है और इनके पैर भी उससे छोटे रहते हैं। इनके सिर के आगे झींगे की तरह तलवारनुमा भाग भी नहीं रहता और न इनकी दुम ही झींगे की तरह पंखीनुमा होती है।

झींगी अंडज जीव हैं जिसका मांस बहुत स्वादिष्ठ होता है। अंडों के फूटने पर छोटे-छोटे बच्चे निकलते हैं जिन्हें अपने माँ-बाप के अनुरूप होने में कई परिवर्तन करने पड़ते हैं।

कर्कट उपवर्ग

(SUB ORDER BRACHYURA)

इस उपवर्ग में सब प्रकार के केकड़े रखे गये हैं जिनमें से कुछ जमीन पर रहनेवाले हैं तो कुछ पानी के निवासी। इन सबका निचला भाग झींगा उपवर्ग के जीवों के समान लम्बा न होकर चौड़ा रहता है और इनका पिछला हिस्सा या पेट धड़ के पीछे न होकर उसके नीचे जुटा रहता है जिसमें इनके रेंगने के लिए पैर रहते हैं। मादा के ये पैर कुछ बड़े होते हैं क्योंकि वह इन्हीं पैरों के समूह में अपने अंडे देती है जो फूटने तक उसी में चिपके रहते हैं।

इनके वैसे तो अनेक परिवार हैं लेकिन उनमें से यहाँ केवल एक प्रसिद्ध केकड़े का वर्णन दिया जा रहा है।

केकड़े

(CRABS)

केकड़े समुद्र-तट के बहुत परिचित और अद्‌भुत जीव हैं जिनकी अनेक जातियाँ सारे संसार में फैली हुई हैं। इनकी कुछ जातियाँ मीठे पानी और सूखे में भी रहती हैं लेकिन ज्यादा संख्या उन्हीं की है जो समुद्र के निवासी हैं।

केकड़े समुद्र के किनारे घास-फूस के बीच में अथवा पानी में डूबी हुई चट्टानों के आस-पास रहना ज्यादा पसन्द करते हैं, जहाँ पानी ज्यादा गहरा नहीं होता। ये

अवसर सूखे पर भी टहलते हुए दिखाई पड़ते हैं और देखे जाने पर अपने चिमटे और टाँगें सिकोड़कर ऐसी चुप्पी मार कर पड़ जाते हैं कि जैसे मर गये हों। कुछ देर बाद ये धीरे से अपने पैरों को बाहर निकाल कर ऐसी सफाई से अपने को बालू में गाड़ लेते हैं कि सिवा उनकी स्पर्शेन्द्रियों (Antennae) के और कोई भी अंग बाहर नहीं रह जाता।

केकड़ा

छेड़े जाने पर केकड़े बहुत क्रुद्ध हो उठते हैं और बड़ी कर्कश आवाज़ करते हैं जो उनके क्रोध को स्पष्ट जाहिर करती है। निकट जाने पर वे अपने चिमटों से वार करने से भी नहीं चूकते।

केकड़े का शरीर गोल डिब्बे की तरह होता है जो बहुत मजबूत और कड़ा रहता है। इनके भी झींगे की तरह १० पैर और एक जोड़ा चिमटे का रहता है। चिमटा बहुत मजबूत होता है और इससे केकड़ा कड़ी चीजों को बड़ी आसानी से तोड़ डालता है। इसकी आँख भी झींगे की तरह एक पतली नली पर स्थित रहती है, जिसे यह अपनी इच्छानुसार आगे-पीछे कर सकता है। यह अपने एक चिमटे से शिकार को पकड़ता है और दूसरे से उसे काटकर टुकड़े-टुकड़े करके मुँह तक पहुँचा देता है।

भोजन के मामले में केकड़ा को सर्वभक्षी कहना ठीक होगा क्योंकि ये सब कुछ खा लेते हैं। कछुए, घोंघे और सूतियों की कड़ी खाल को तो वे बड़ी आसानी से तोड़ डालते हैं और उनका नरम मांस नोच-नोच कर खा लेते हैं। ये अपने को बालू में गाड़कर शिकार के लिए बैठे रहते हैं और किनारे पर किसी मछली को देखते ही उसे पकड़ लेते हैं। इसके अलावा ये मरी हुई मछलियों से भी अपना पेट भरते रहते हैं। किनारे पड़ी हुई मछली की लाश को केकड़े गिद्धों की तरह घेर लेते हैं और उसके लिए आपस में बहुत झगड़ा करते हैं। खाने के मामले के अलावा भी केकड़े कभी-कभी आपस में लड़ बैठते हैं और उस समय ये इतने खूँखार हो जाते हैं कि हारे हुए केकड़े को जीतनेवाला केकड़ा मारकर खा जाता है। बड़े केकड़े, वैसे भी, भूख

लगने पर छोटे केकड़ों से अपना पेट भरते हैं और केकड़ी तो इतनी गुस्सैल होती है कि ज़रा-सी बात पर ही दूसरे केकड़ों की टाँग या चिमटे को काटकर खा जाती है।

केकड़े का शरीर, जैसा ऊपर बताया गया है, एक कड़ी डिबिया जैसे खोल में बन्द रहता है जिसके किनारे कटावदार रहते हैं। यह खोल कई टुकड़ों के जुटने से बनता है और इसी के ऊपरी अगले हिस्से से इनकी स्पर्शेन्द्रियाँ निकली रहती हैं और इन्हीं के पास इसकी आँखों के गड्ढे रहते हैं। केकड़े की दुम छोटी और चौड़ी होती है, जो भीतर की ओर मुड़ी रहती है और ऊपर से दिखाई नहीं पड़ती।

केकड़े चलने-फिरने के लिए अपने चार जोड़ पैरों को ही इस्तेमाल में लाते हैं, पाँचवें और पहले जोड़ को हम पैर न कहकर हाथ ही कहें तो ज्यादा ठीक होगा, क्योंकि इसी से केकड़े अपना शिकार पकड़ते हैं और हाथों की तरह इस्तेमाल करके उसे इन्हीं से नोच-नोच कर खाते हैं। जमीन पर चलते समय केकड़े इन्हें ऊपर की ओर उठाये रहते हैं, क्योंकि हाथी की सूँड की तरह ये भी उनके बहुत उपयोगी अंग हैं। इसीलिए प्रकृति ने भी इन्हें यह सुविधा दी है कि एक बार इनके चिमटे या टाँगें कट जाने पर फिर उसी स्थान पर दूसरी टाँगें या चिमटे निकल आते हैं।

केकड़े अंडज जीव हैं जो अपने अंडों को तब तक अपने पैरों के बीच में दाबे रहते हैं जब तक वे फूट नहीं जाते। अंडों के फूटने पर उनसे अजीब शकल के बच्चे निकलते हैं और उनकी शकल केकड़ों से एकदम भिन्न रहती है।

सब केकड़े खाने के काम में आते हों, सो बात नहीं है। खाये जानेवाले केकड़ो (Edible Crabs) की कुछ खास जातियाँ होती हैं। इनका ऊपरी हिस्सा हलके कत्थई रंग का और नीचे का एकदम सफेद रहता है। इनके पैर लाल रहते हैं जिनका सिरा काला रहता है। ये लगभग एक फुट के हो जाते हैं। इनका मांस बहुत स्वादिष्ठ होता है। इनकी मादा किनारे पर आकर अण्डे देती है जो अपने आप फूटते हैं और जिनमें से बच्चे निकलकर पानी में चले जाते हैं।

हरमिट केकड़ा

(HERMIT CRAB)

हरमिट केकड़ा अन्य केकड़ों से इसलिए भिन्न होता है कि उसके शरीर का खोल कड़े आवरण से ढँका नहीं रहता और उसे अपनी रक्षा के लिए मरे हुए शंख, घोंघे या

कछुए के खाली खोल के भीतर घसकर उसी को अपना खोल बनाकर रहना पड़ता है। यह केकड़ा अपने शरीर के कोमल भाग को निर्जीव खोल के भीतर कर लेता है और अपना दाहिना चिमटा, जो बायें से काफी बड़ा रहता है, बाहर रखता है। उसके चार पैर भी बाहर निकले रहते हैं, जिनके सहारे वह दूसरे के निर्जीव खोल को अपनी पीठ पर लादकर इधर-उधर चलता-फिरता रहता है। खतरे के समय अपने बड़े चिमटे से वह खोल के मुख को बन्द कर लेता है और एकदम उसी खोल में समा जाता है। छोटा रहने पर वह कछुए और घोंघे आदि का खोल इस्तेमाल करता है, लेकिन प्रौढ़

हरमिट केकड़ा

हो जाने पर, जब उसका कद लगभग ३ इंच का हो जाता है, वह किसी शंख के खोल को पसन्द करके उसी में घुस जाता है। उसकी पीठ कुछ झुकी हुई रहती है जिससे वह शंख के भीतर ठीक तरह से बैठ जाय। यही नहीं, उसके शरीर के पिछले हिस्से पर दो हुक भी रहते हैं, जो शंख के खोल को बड़ी मजबूती से पकड़े रहते हैं।

हरमिट केकड़ा हमारे समुद्रों में काफी संख्या में पाया जाता है जिसका अधिक समय इधर-उधर चलने फिरने में ही बीतता है। अण्डे से बाहर निकलने पर इसके भी बच्चे छोटे-छोटे तथा अजीब शक्ल-सूरत के होते हैं जो थोड़े ही दिनों में बड़े बनते हैं। चौथाई इंच के होते ही वे अपने लिए खोल ढूंढ़ने लगते हैं और किसी के छोटे खोल पर कब्जा करके उसी में रहने लगते हैं। कुछ और बढ़ने पर वे बड़ा खोल तलाशते हैं और इसी प्रकार उनकी खोलों की अदला-बदली चलती रहती है। अन्त में शंख का खोल उनको आजीवन शरण देता है।

कभी-कभी ये केकड़े एक दूसरे का खोल देखकर उनके लिए लड़ने लगते हैं और जो मजबूत होता है वह कमजोर को उनके खोल से निकालकर उस पर अपना अधिकार जमा लेता है।

इनकी और सब बातें अन्य केकड़ों की ही तरह होती हैं, अतः उन्हें पुनः दुहराने से कोई लाभ नहीं है।

शतपदी श्रेणी

(CLASS MYRIAPODA)

शतपदी श्रेणी में सब प्रकार के गोजर और रामघोड़ियाँ एकत्र की गयी हैं। इन सबकी एक नहीं हजारों जातियाँ हैं जो सारे संसार में फैली हुई हैं।

इनमें से प्रायः सभी खुश्की पर रहती हैं और गरम तथा ठंडे सभी देशों में इनको देखा जा सकता है।

ये सब लम्बे आकार की होती हैं जिनका शरीर गोल छल्लों के आपस में जुड़ने से बना रहता है। हर एक छल्ले के नीचे एक जोड़ टाँगें रहती हैं, जो महीन बाल जैसे इनके शरीर के नीचे लटकती रहती हैं।

इनका धड़ सिर के आगे साफ जाहिर रहता है जैसे इनके शरीर के कई छल्ले आपस में जुटकर एक हो गये हों।

इस श्रेणी को दो मुख्य वर्गों में इस प्रकार बाँटा गया है—

१. शतपदी वर्ग—Order Chilopoda

२. सहस्रपदी वर्ग—Order Diplopoda

आगे इन दोनों वर्गों का और उनमें के प्रसिद्ध जीवों का वर्णन दिया जा रहा है।

शतपदी वर्ग

(ORDER CHILOPODA)

इस वर्ग में सब प्रकार के गोजर हैं जो हमारे परिचित जीव हैं। ये प्रायः भूरे रंग के होते हैं और अक्सर बाग-बगीचों में या पुराने घरों में कूड़ा-कर्कट के नीचे पाये जाते हैं। जाड़े में ये अपने को मिट्टी के नीचे गाड़ लेते हैं।

इनका शरीर चपटा होता है और इनके विपदत रहते है लेकिन इनका विष घातक नही होता। इनके शरीर के प्रत्येक खड में एक जोड टाँगें रहती है।

गोजर मासाहारी होते है जो छोटे-मोटे कीडे-मकोडो से अपना पेट भरते हैं। यहाँ अपने यहाँ के प्रसिद्ध गोजर का वर्णन किया जा रहा है।

गोजर

(CENTIPEDE)

गोजर भी हमारा बहुत परिचित जीव है। बिच्छू की तरह विषैला न होने पर भी हम उससे डरते है क्योंकि उसके काटने से उस स्थान पर खुजली होने लगती है और सूजन भी हो जाती है।

गोजरो को ठडी जगह बहुत पसन्द है, इसी लिए ये अक्सर खर-पतवार या कूडे के ढेर के नीचे छिपे रहते हैं। मिट्टी खोदे जाने पर भी ये हमें अक्सर दिखाई पडते हैं। जाडो में ये अपने को मिट्टी में गाड लेते है और वहीं रहकर पूरा जाडा काट डालते
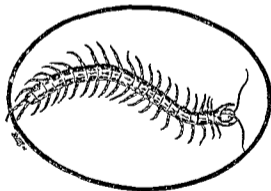
गोजर

है। इनकी एक नही अनेक जातियाँ है जा ससार के सब स्थानो में फैली हुई हैं। ये छोटे-बडे सभी आकार के होते ह। दक्षिणी अमेरिका मे पाया जानेवाला गोजर एक फुट से कम लम्बा नही होता। हमारे यहाँ ता ये ४-५ इच के ही देखे जाते हैं जिनका चपटा शरीर बहुत से छल्लो के जुडने से बना रहता है। शरीर के इन छल्लो में

प्रत्येक में एक-एक जोड़ टाँगें होती हैं। सम्पूर्ण टाँगें कभी-कभी संख्या में तीन सौ से ऊपर तक चली जाती हैं।

गोजर का शरीर भूरे रंग का रहता है, लेकिन इसका सिर लाल होता है। यह मांसाहारी जीव है जो अपना पेट छोटे कीड़े-मकोड़ों से भरता है। गोजरों को कनखजूरा भी कहा जाता है। ये रामघोड़ियों की तरह सुस्त न होकर बहुत तेज होते हैं। इनके अण्डा देने का समय जून से अगस्त तक रहता है। मादा को बहुत सतर्क रहना पड़ता है क्योंकि इनका अण्डा निकलने पर नीचे तक दो हुकनुमा अंग उसे कुछ समय तक रोके रहते हैं। यदि नर ने अण्डे को देख लिया तो वह मादा को पकड़कर अण्डे को खा डालता है। मादा अण्डे के बाहर निकलते ही उसे नर से बचाने के लिए उससे अलग हट जाती है और अण्डे को नीचे के हुकों और पैरों से पकड़कर धूल में खूब लोटती है। अण्डे के ऊपर लसलसा पदार्थ लगा रहता है जिस पर मिट्टी चिपक जाने से फिर उस पर जल्द नर की निगाह नहीं पड़ती। मादा अण्डे को जमीन पर छोड़ देती है जहाँ से वह अपने आप ही फूटता है और उसमें से शिशु गोजर निकलता है। शुरू में इसके छ: जोड़ पैर और जहर का डंक मौजूद रहता है। फिर धीरे-धीरे सब पैर निकल आते हैं और तब वह पूर्णरूप से गोजर बन जाता है।

सहस्रपदी वर्ग

(ORDER DIPLOPODA)

इस वर्ग में सब प्रकार की रामघोड़ियाँ रखी गयी हैं, जो हमारे यहाँ वर्षा काल में काफी संख्या में दिखाई पड़ती हैं।

इनका शरीर गोलाई लिये रहता है और इनके शरीर के खंडों में से हर एक के नीचे एक-एक जोड़ टाँगें तो रहती ही हैं, लेकिन हर पाँच खंडों के नीचे टाँगों की संख्या दुहरी रहती है।

ये शाकाहारी जीव हैं और बहुत से पैरों के कारण इनकी चाल बहुत धीमी होती है।

इनकी मादा मई से जुलाई के बीच में अण्डे देती है, जो जमीन में गाड़ दिये जाते हैं और वहाँ पड़े-पड़े फूटते हैं।

रामघोटी
(MILLIPLDE)

रामघोडिया को वर्षाकाल में हम अक्सर खेतों और मैदानों में इधर-उधर फि देखते हैं। इनको सहस्रपदी भी कहा जाता है, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि इन एक हजार पैर होते हैं। हाँ, गोजरों मे तो इनके पैरों की सख्या जरूर ज्यादा रह है, लेकिन ये गोजरो की तरह तेज नहीं चल पाती।

रामघोडी

रामघोडी का दूस नाम गिजाई भी है। इनक वैसे तो कई जातियाँ। लेकिन हमारे यहाँ छोट और बडी दो तरह क रामघोडियाँ अक्सर दिखा पडती हैं। बडी को लो ग्वालिन भी कहते हैं।

रामघोडी शाकाहार जीव है जिसका मुख्य भोज नरम पौधो के डठल औ जडो का रस है। गोजर की तरह इनके तनिक भी विष नहीं होता, लेकिन छेडे जान पर ये अपने शरीर से एक प्रकार का दुर्गन्धित रस निकालती हैं जिससे इन्हें छूने को जी नहीं करता।

गिजाइयो का शरीर गोजर की तरह चपटा न होकर गोल रभाकार रहता है। इनका सारा शरीर अनेक खडो मे बँटा रहता है। प्रत्येक खड में टाँगो के दो जोडे रहते हैं जो बहुत पतले और महीन होते हैं। ये पैर उसके बगल से नहीं बल्कि नीचे से निकलते हैं।

गिजाइयाँ कत्थई भूरे रग की होती हैं और बरसात मे कहीं-कहीं इनके ढेर के ढेर बच्चे दिखाई पडते हैं। इनके अण्डा देने का समय मई से जुलाई तक रहता है। मादा समय निकट देखकर अपने थूक और मिट्टी से जमीन के भीतर एक सुरगनी बनाती है जिसमे एक ओर एक छोटा छेद रहता है। इसी छेद में मादा ६० से १०० तक अण्डे देती है जो एक प्रकार के लसीले पदार्थ मे आपस में जटे रहते हैं। अण्डे

देने के बाद मादा छेद को बंद कर देती है और अण्डों को अपने आप फूटने के लिए छोड़कर चली जाती है। लगभग १२ दिनों बाद अण्डे फूट जाते हैं और छोटे-छोटे बच्चे निकलते हैं जिनके केवल तीन जोड़ पैरों के रहते हैं। ये जैसे-जैसे बढ़ते हैं इनके दस-दस करके पैर भी निकलते आते हैं और थोड़े ही दिनों में ये प्रौढ़ गिजाई का रूप धारण कर लेते हैं।

कीट-पतंग श्रेणी

(CLASS INSECTA)

कीट-पतंग श्रेणी में उन जीवों को एकत्र किया गया है जो कीड़े-मकोड़े कहलाते हैं। इनकी लगभग सवा छः लाख जातियाँ सारे संसार में फैली हुई हैं।

ये ऐसे संधिपादजीव हैं जिनका शरीर सदा तीन भागों में विभाजित रहता है :—

१. सिर—Head

२. वक्ष—Thorax

३. उदर—Abdomen

कीड़े का शरीर

पहले या सिर के भाग में दो स्पर्शसूत्र (Antennae), दो जोड़े चिमटे, जिनसे यह हाथ का काम लेता है, दो संयुक्तनेत्र (Compound eyes) तथा मुख भाग (Mouth parts) रहते हैं। यह छः खंडों के एकीकरण से बनता है।
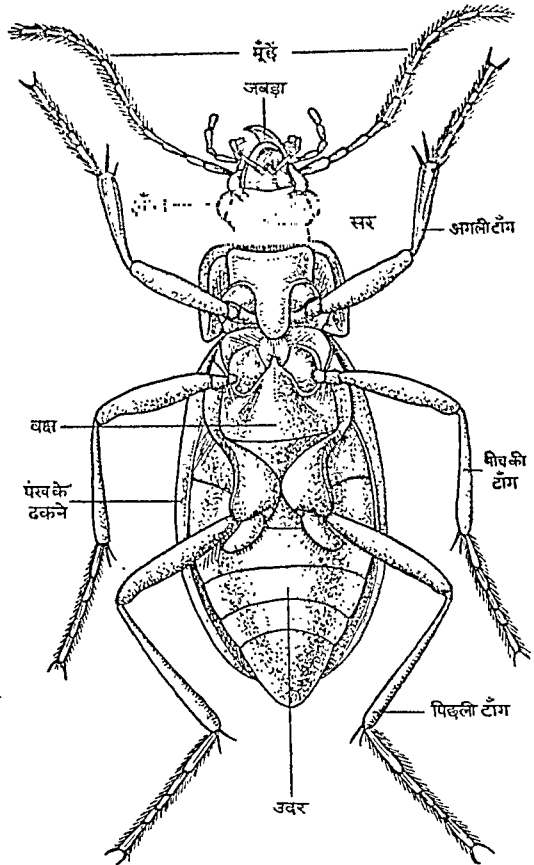
दूसरे भाग में, जो वक्ष-भाग कहलाता है और जो सदैव तीन खडों के एकीकरण से बनता है तीन जोड़ी टाँगे और दो जोड़े पक्ष (Wings) रहते हैं। टाँगो में तीन हिस्से रहते हैं जिनमे ऊपर का हिस्सा जाँघ, बीच का पिण्डी और नीचे का पैर कहलाता है।

तीसरा भाग जो उदर-भाग कहलाता है, दस या ग्यारह खडों का होता है। इन्हें इनके पग कहे रहते हैं। इसी भाग के भीतर कीड़े के कोमल अवयव रहते हैं और यहीं कीड़े का भोजन पचता है। जनन छिद्र (Genital aperture) के समीप उदर के पिछले सिरे पर गुदद्वार (Anus) स्थित रहता है। साँस लेने के लिए कीड़े के इसी हिस्से में दो छिद्र रहते हैं जिनमें से लेकर पेट तक एक एक नली जाती है जिससे कीडा साँस लेता है।

कीड़े-मकोड़ो की इतनी जातियाँ हमारी पृथ्वी पर फैली हैं कि उनका गिनना हमारे लिए एक कठिन समस्या है। इसीलिए यदि उनके बारे में हम अन्य जीवो से कम जानकारी रखते हैं तो कोई आश्चर्य की बात नही है।

यह सब होते हुए भी हम उनके बारे मे मोटी मोटी बातें तो जान ही सकते हैं। उनकी बनावट, उनकी खूराक, उनकी आदतें और उनका रहन-सहन ही इतना रोचक है कि उसका थोडा-बहुत परिचय ही हमें आश्चर्य में डाल देने के लिए पर्याप्त है।

पशु पक्षियों का शरीर हड्डी के ढाँचे पर खडा रहता है अर्थात् उनके शरीर के भीतर हड्डी की ठठरी रहती है जिसके ऊपर मास, चरबी, नसें और खाल जडी रहती है लेकिन कीडों में यह बात नही रहती। उनके शरीर का ढाँचा भीतर न होकर कड़े खोल की शक्ल में ऊपर रहता है जिसके भीतर उनका कोमल अग छिपा रहता है। इस ऊपरी खोल से जहाँ कीडा के अग सुरक्षित रहते हैं वही यह दिक्कत भी रहती है कि वे पशु-पक्षियो की तरह बढ नही सकते।

नतीजा यह होता है कि वे ज्यो-ज्यो बढते हैं त्यो त्यो अपना पुराना कड़ा खोल केंचुल की तरह उतार फेंकते हैं और उनके कोमल शरीर को नया खोल ढक लेता है।

कीडा के बच्चा और बडो मे शकल-सूरत मे नही, बल्कि कद में फर्क रहता है। अण्डा फूटने पर टिड्डे का बच्चा जब बाहर निकलता है तो वह कद में छोटा होने पर भी बड़े टिड्डे के अनुरूप ही रहता है।

इस प्रकार कीडो को असली हालत तक पहुँचने में तीन सीढी पार करना पडता

है। वे पहले अण्डे की, फिर विना पर के वच्चों की और अन्त में कीड़े की असली शकल के हो पाते हैं।

लेकिन कुछ कीड़े ऐसे भी हैं जिनका दूसरी तरह परिवर्तन होता है और उनके अण्डे पहले इल्ली या जोराई वनते हैं, फिर एक प्रकार के कड़े खोल में वन्द हो जाते हैं और अन्त में एक दिन कीड़ा पूरी तौर पर वढ़कर अपना कड़ा ढक्कन फाड़कर हवा में उड़ जाता है। इस प्रकार के कीड़ों में हमारी तितली वहुत प्रसिद्ध है।

रंगीन तितलियों की जीवन-कथा भी कम रंगीन नहीं होती। मादा तितली पत्तियों की निचली सतह पर गुच्छे के गुच्छे अण्डे देती है, जो समय पाकर फूट जाते हैं और उनमें से अनेक जोराइयाँ निकलती हैं। ये जोराइयाँ पहले अण्डों के छिलके खाती हैं। फिर धीरे-धीरे उनका धावा पत्तियों पर शुरू होता है। पत्तियाँ खा-खाकर ये खूव मोटी-ताजी हो जाती हैं, लेकिन उनकी खाल ज्यादा नहीं वढ़ती। वह जल्द ही कस जाती है। ऐसी हालत पहुँच जाने पर जोराई अपने सिर पर की खाल टोपी की तरह उतार देती है और आगे सरककर अपनी कसी हुई खाल को साँप की केंचुल की तरह निकाल देती है। इस केंचुल के निकल जाने पर जोराई के वदन पर नयी और मुलायम खाल रह जाती है जो उसकी वाढ़ को नहीं रोकती और हम लोगों की खाल की तरह फैल जाती है। जिस समय यह खाल कड़ी हो जाती है जोराई को इसे भी केंचुल की तरह उतार फेंकना पड़ता है। कई वार ऐसा करने के वाद एक समय ऐसा आता है जव जोराई को कड़े खोल में वन्द होना पड़ता है।

ऐसा समय आने पर जोराई किसी सुरक्षित स्थान पर जाकर उल्टी होकर दीवाल या और किसी चीज के सहारे लटक जाती है। तव उसकी खाल फटकर गिर जाती है जो उसके चारों ओर फैलकर कड़ा खोल वन जाती है।

इस खोल की दीवार के भीतर कई हफ्ते रहने के वाद एक दिन उसे तोड़कर उसमें से एक रंगीन तितली वाहर निकलती है। पहले वह थोड़ी देर तक अपने गीले पंख सुखाती है, फिर एकाएक पंख फैलाकर अपना थोड़े समय का जीवन विताने के लिए हवा में उड़ जाती है।

कीड़े-मकोड़े की इन्द्रियों में और हमारी इन्द्रियों में वहुत भेद है। तेज उड़नेवाले कीड़ों की आँख की वनावट वर्रे के छत्ते की तरह होती है जिसमें एक के वजाय छोटी-छोटी सैकड़ों पुतलियाँ नगों की तरह जड़ी रहती हैं। कीड़े-मकोड़े के सुनने के लिए कान तो होते हैं, लेकिन ये कभी उनके धड़ में, कभी पेट में, और कभी टाँगों में रहते

हैं। वे अपनी मूंछों से सूंघते हैं क्योंकि ये ही उनकी स्पर्शेन्द्रियां हैं। कुछ कीड़े ऐसे भी हैं जो अपनी जबान के अलावा शरीर के अन्य अवयवों से सूंघने और स्वाद लेते हैं। बाज-बाज तितलियों को उनके पैर की नोक में स्वाद लेने की शक्ति हमारी जबान की शक्ति से कई सौ गुना तेज होती है। इसी प्रकार बहुत से कीड़े ऐसे होते हैं जो अपने शरीर के भिन्न-भिन्न अवयवों से मादा को रिझाने के लिए सुगन्ध निकालते हैं।

जुगनू और पटवीजना कीड़ों को तो लोगों ने देखा ही होगा, जो रात में एक प्रकार की नीली रोशनी फैलाते चलते हैं।

दुनिया में शायद ही ऐसी कोई चीज होगी जो कीड़ों के खाने से बची हो। घुन आदि कुछ ऐसे कीड़े हैं जो लकड़ी खाकर रहते हैं तो खटमलों और पिस्सुओं को खून चूसना पसन्द है। मधुमक्खी और तितलियाँ एक ओर फूलों का रस पीकर रहती हैं तो दूसरी ओर गुबरीलों को अपने गोबर के गोले लुढ़काने में भला कब फुर्सत मिलती है। दीमक तो सैलीलोस जैसे अक्षय पदार्थ को, जिससे पौधों का ढाँचा बनता है, बड़े मजे में खाती है। वह अपने पेट में एक प्रकार के बहुत ही छोटे-छोटे कीड़े पाले रहती है जो उसके खाये हुए खाने को हजम करते हैं। कुछ कीड़े दूसरे कीड़ों को खा जाते हैं, कुछ मुरदों से अपना पेट भरते हैं, कुछ गोबर और विष्ठा भी नहीं छोड़ते और कुछ ऐसे भी हैं जिनसे हमारे घर में कपड़ा, अनाज, तरकारी और लकड़ी का सामान तक नहीं बचने पाता।

आत्म-रक्षा के मामले में भी कीड़ों के साथ प्रकृति ने बेइन्साफी नहीं की। जहाँ खटमल, मच्छर, पिस्सू आदि को हमला करने के लिए मजबूत जबड़े मिले हैं, वहीं मधुमक्खी और बर्रे को आत्म-रक्षा के लिए तेज डंक दिये गये हैं। कुछ जोराइयाँ ऐसी भी हैं जिनको प्रकृति ने ऐसा भयानक रूप दे दिया है कि जल्द उन पर हमला करने का साहस किसी दुश्मन को नहीं होता। यहां कुछ जोराइयाँ ऐसी पायी जाती हैं जिनके माथे पर दो बड़े-बड़े इस प्रकार के चिह्न बने रहते हैं जो देखने पर बड़ी भयानक आँखों से लगते हैं। इस डरावनी शक्लवाली जोराई के पिछले हिस्से पर कोड़े की शक्ल की लाल रंग की दुहरी दुम रहती है जिसको यह जोराई जब हिलाने लगती है तो चिड़ियों की हिम्मत छूट जाती है।

चिड़ियों की तरह, कीड़े-मकोड़े हमारे लिए ज्यादा उपयोगी नहीं हैं। वे हमारा फायदा तो कम करते हैं, लेकिन नुकसान ज्यादा करते हैं। तितलियों की सुन्दरता देखकर थोड़ी देर खुशी भले ही हो और शहद की मक्खी का शहद खाकर हम उनका

इनकार भले ही करें किन्तु दीमक, खटमल, पिस्सू और मच्छर-मक्खी के गन्दगी फैलानेवाले और फसल को नुकसान पहुंचानेवाले कीड़े हमारा जितना नुकसान करते हैं उनके आगे तितलियों की खूबसूरती और महत्व की मिठास ज्यादा देर नहीं ठहरती।

यह श्रेणी इतनी विस्तृत है कि इसे विद्वानों ने निम्न लिखित उपश्रेणियों (Sub-Classes) तथा वर्गों (Orders) में बांटा है—

१. अपक्ष उपश्रेणी—(Sub Class Apterygota)
२. पक्षवर्मी उपश्रेणी—(Sub Class Exopterygota)
३. सपक्ष उपश्रेणी—(Sub Class Endopterygota)

१. अपक्ष उपश्रेणी—के अन्तर्गत वैसे तो तीन वर्ग हैं, लेकिन यहां केवल एक अपक्ष वर्ग का ही वर्णन किया जा रहा है।

अपक्ष वर्ग—इस वर्ग में उन कीड़ों को रखा गया है जो मछलियां कहलाते हैं और हमें अक्सर अपनी किताबों के बीच मिलते हैं।

२. पक्षवर्मी उपश्रेणी—काफी बड़ी उपश्रेणी है। इसमें वैसे तो कई वर्ग सम्मिलित हैं, लेकिन यहां केवल ८ वर्गों को ही लिया गया है जिनमें के जीव हमारे बहुत परिचित हैं।

पक्षवर्मी वर्ग— इस वर्ग में छेंउकी, तिलचट्टे, कठकीड़े, टिड्डे तथा झींगुर आदि जीव रखे गये हैं जिनसे हम सभी थोड़ा-बहुत परिचित हैं।

वल्लगण वर्ग— इस वर्ग में दीमक हैं जो इतने प्रसिद्ध और हमारे इतने परिचित हैं कि उनका अधिक वर्णन करना बेकार है।

पुस्तक-कीट वर्ग— यह वर्ग जैसा इसके नाम से प्रकट है पुस्तक-कीट या किताबी कीड़ों का है, जो अक्सर हमारी किताबों में दिखाई पड़ जाते हैं।

यूका वर्ग— इस वर्ग में सब प्रकार के जुंए, छगोड़िया और चीलर आदि रखे गये हैं जिनके ज्यादा परिचय की जरूरत नहीं जान पड़ती।

पांखी वर्ग— इस वर्ग में हमारी प्रसिद्ध पाँखी आती है, जिसे हम बरसात में अक्सर लैम्पों के चारों ओर मँडराते देखते हैं।

चिउरा वर्ग— इस वर्ग में हमारा प्रसिद्ध चिउरा (Dragon Fly) रखा गया है जिसे हम अक्सर पानी की सतह के पास रुक-रुककर उड़ते देख सकते हैं।

मत्कुण वर्ग— यह वर्ग भी काफी बड़ा है जिसमें सब तरह के खटमल और झिल्ली एकत्र किये गये हैं।

३. सपक्ष उपश्रेणी— भी काफी वर्गों में विभक्त है लेकिन यहाँ उनमें से केवल पाँच वर्गों का वर्णन किया जा रहा है।

संयुक्त-पक्ष वर्ग— इस वर्ग में वैसे तो कई परिचित जीव हैं लेकिन यहाँ केवल चीटीचोर का वर्णन दिया जा रहा है जिसे हम अक्सर धूल में गढ्ढा बनाकर चीटियों को फँसाने के लिए तैयार बैठा देखते हैं।

शल्किपक्ष वर्ग— इस वर्ग में तितली और पतंग (Moths) आते हैं, जो अपनी सुन्दर पोशाक के कारण अन्य कीड़े-मकोड़ो से अलग ही रहते हैं।

कचनपक्ष वर्ग— यह वर्ग औरों से बड़ा है क्योंकि इसमें सब प्रकार के गुबरीले, घुन, धनकुट्टियाँ तथा जुगनू आदि शामिल हैं जिनकी एक नहीं अनेक जातियाँ हैं।

कलापक्ष वर्ग— इस वर्ग में सब तरह की बर्रें, चींटे तथा मधुमक्खियाँ रखी गयी हैं जो अपने डंक मारने की आदत से बहुत प्रसिद्धि पा चुकी हैं।

द्विपक्ष वर्ग— इस वर्ग में सब प्रकार की मक्खियाँ तथा मच्छर रखे गये हैं जिनसे हम सब इतने परिचित हैं कि इनके बारे में यहाँ ज्यादा लिखना व्यर्थ है।

आगे प्रत्येक वर्ग का और उनमें के प्रसिद्ध कीड़े-मकोड़ों का वर्णन किया जा रहा है।

अपक्ष उपश्रेणी

(SUB CLASS APTERYGOTA)

इस उपश्रेणी में वे पुरातन कीट रखे गये हैं जिनको देखकर कीड़े-मकोड़ों के प्रारंभिक विकास का बहुत कुछ पता चलता है। ये सब छोटे-छोटे जीव हैं जो कूड़ा-कर्कट और पत्थर तथा पत्तों आदि के नीचे छिपे रहते हैं और जिनके छोटे कद के कारण अक्सर हमारा ध्यान उनकी ओर नहीं जाता। इनके पर नहीं होते और न अन्य कीट-पतंगों की तरह ये कई परिवर्तनों के बाद जाकर प्रौढ होते हैं, बल्कि अण्डे से निकलने पर इनके शिशुकीट कद में छोटे हो कर भी शक्ल-सूरत में प्रौढ कीटों के समान ही होते हैं।

ये जीव संसार के प्राय सभी स्थानों में पाये जाते हैं और इनके पथराये कंकाल इतनी पुरानी चट्टानों के नीचे पाये गये हैं कि जिन्हें देखकर यह जाना गया है कि कीट-पतंग श्रेणी के प्रारंभिक जीव ये ही हैं।

इसमें के तीन वर्गों में से यहाँ सिर्फ एक अपक्ष-वर्ग का वर्णन किया जा रहा है।

अपक्ष वर्ग

(ORDER THYSANURA)

अपक्ष वर्ग में अपक्ष कीट की उन सब जातियों को एकत्र किया गया है जिनके पर नहीं होते। इन्हें हम अक्सर किताबों के बीच में देखते हैं जो किताब खुलते ही बड़ी तेजी से भागते हैं।

इनका शरीर गोल छल्लों से जुड़ कर बना रहता है और अपनी चाँदी जैसी चमक और मछली जैसी शकल के कारण ही इनका नाम मछली पड़ा है।

इनके आँखें नहीं होतीं लेकिन ये अपनी लंबी मूँछों के सहारे, जो इनकी स्पर्शेंद्रियाँ है, अपना काम चला लेते हैं।

यहाँ इनमें से एक प्रसिद्ध मछली का वर्णन दिया जा रहा है।

मछली

(SILVER FISH)

मछली को यह सुन्दर नाम इसके रुपहले रंग और मछली जैसे आकार के कारण मिला है। यह हमारा बहुत परिचित कीड़ा है जो किताबों के बीच में से अक्सर इधर-उधर तेजी से भागता है। यह किताबों में ही रहता हो, सो बात नहीं है। इसके रहने का मुख्य स्थान तो घर के कूड़ा-कर्कट के ढेर और छप्पर और खपरैलों के धूल भरे छेद और सूराख हैं।

मछली छोटा-सा आध इंच लम्बा कीड़ा है जिसका लम्बा शरीर १२ खंडों में विभक्त रहता है। इसके आगे का हिस्सा चौड़ा रहता है, जो पीछे पतला होता चला आता है। इसके तीन पतली दुमें और दो लम्बे स्पर्शसूत्र (Antennac) रहते हैं। इसका शरीर चाँदी जैसा चमकीला रहता है। इसके आँखें नहीं होतीं, लेकिन यह अपना सब काम इन्हीं स्पर्शसूत्रों से चला लेती है।

मछली का शरीर बहुत कोमल होता है। इसके मुँह की बनावट इस प्रकार की

होती है कि यह चीजा कुतर सके। इसका शरीर बहुत पतले और चिकने शल्कों से ढका रहता है और तितलिया के समान कुछ प्राणियों की तरह इसके शरीर में परिवर्तन नही होना। पैदा होने के बाद से इसका शरीर बढता जरूर है, लेकिन शक्ल-सूरत पहले जैसी ही रहती है। इसे छिपे रहना बहुत पसन्द है। इसीलिए जब हम इसे अपनी किताबों के बीच मे पाते हैं तो यह भाग कर जिल्द के बीच की खाली जगह में छिप जाती है।

मछली

मछली का मुख्य भोजन सूखी पत्तियाँ वगैरह है। कागज के बारे में तो हम सब जानते ही हैं कि यह हमारी पुस्तकों को किस बुरी तरह से चाट डालती है, लेकिन इसे सब कागजो का दुश्मन कहना ठीक नही है क्योंकि यह सब कागजोको नही खाती। इसे तो मीठी और ऐसी चीजें पसन्द हैं जिनमें स्टाच हो। यह वैसे ही कागज खाती है जिसमें लई या गोद वगैरह लगा रहता है।

पक्षवर्मी उपश्रेणी

(SUB CLASS EXOPTERYGOTA)

इस उपश्रेणी मे वे कीट है जिनके अगले पर सीधे और कड़े होते हैं। इन्हे पक्षवर्म (Elytra) कहते हैं। इनके नीचे पखोनुमा पिछले पख होते है। उडते समय इनके अगले पख वायुयान के दोनो पखो की भाति अचल रूप मे फैले रहते हैं और पिछले पख तेजी से चल कर कीडो को उडने में सहायता देते है।

ये अपने मुह से कुतर सकते हैं और इनकी टाँगे कूदने तथा दौडने मे इनकी सहायक होती हैं। इन कीटो मे अधूरा रचनान्तरण (Hemi Metamorphosis) होता है और अण्डो से निकलनेवाले शिशुकीट माँ-बाप के अनुरूप ही रहते हैं।

इसके अन्तर्गत कई वर्ग हैं, लेकिन यहाँ केवल सात वर्गों का ही वर्णन किया जा रहा है। इस उपश्रेणी में टिड्डे, टिड्डियाँ, तिलचट्टे, झींगुर, कठकीड़ा, छेंउकी आदि कीड़े हैं।

पक्षवर्मी वर्ग

(ORDER ORTHOPTERA)

इस वर्ग में छेंउकी, तिलचट्टे, कठकीड़े, टिड्डे तथा झींगुर आदि ऐसे जीव हैं जिनको देखकर सहसा यह विश्वास ही नहीं होता कि इन सबका आपस में इतना निकट संबंध है।

ये शकल-सूरत में ही नहीं, अपनी आदतों में भी एक दूसरे से बहुत भिन्नता रखते हैं। इससे इन्हें एक वर्ग का जीव मानने में संदेह उठता है। ये सब सीधे पंखवाले जीव कहलाते हैं क्योंकि इनके अगले पंख सीधे और कड़े होते हैं और पिछले पंख पंखी की शकल के मुड़े हुए रहते हैं। उड़ते समय इनके पिछले पंख तेजी से चलते हैं और अगले पंख अचलरूप से फैले रहते हैं। ये अपने मुखभाग से कुतरने और चवाने का काम लेते हैं।

इन जीवों का रचना-परिवर्तन अधूरा रहता है क्योंकि अण्डों से निकलनेवाले शिशु-कीट (Nymph) बहुत कुछ प्रौढ़ कीटों के अनुरूप ही रहते हैं। ये भली भाँति कूद और दौड़ सकते हैं और इनमें टिड्डी आदि तो उड़ने में उस्ताद होती हैं।

यहाँ छेंउकी, तिलचट्टा, बोड़र, रीवाँ, पातालगौर, कठकीड़ा, झींगुर, टिड्डी और टिड्डों का वर्णन किया जा रहा है जिनसे हम सब भली भाँति परिचित हैं और जो इस वर्ग के बहुत प्रसिद्ध कीड़े हैं।

छेंउकी

(EARWIG)

छेंउकियों की एक दो नहीं अनेक किस्में हमारे देश में पायी जाती हैं और हममें से बहुत लोग ऐसे होंगे जिन्हें वरसात में कपड़े में घुसकर इन्होंने काटा भी होगा।

छेंउकी लगभग आधी इंच लंबी होती है जो दुम की ओर की चिमटी जैसी बनावट के कारण बहुत जल्द पहचान ली जाती है। यह कत्थई रंग की होती है और इसका

सिर और सारे बदन का हिस्सा चपटा-सा रहता है। इसके पैर औसत लंबाई के होते हैं, जिनसे यह जमीन की सतह पर बड़ी तेजी से चलती है।

छेंउकी

इसकी मूँछें या स्पर्शसूत्र (Antennae) लगभग इंच स चौथाई इंच लंबे रहते हैं। इसकी आँखें बड़ी होती हैं जिनकी बनावट तितलियों की तरह संयुक्त रहती है। इसका वक्ष न छोटा ही होता है और न बड़ा ही। इसके पंखों की बनावट बहुत सुन्दर रहती है जो पंखे की तरह खुलते और बंद होते हैं।

छेंउकी के भोजन के बारे में यद्यपि अभी तक ठीक-ठीक पता नहीं चल सका है, फिर भी यह सड़ी-गली पत्तियाँ आदि खाती है, इतना तो मालूम ही है। छेंउकी पंख होने पर भी उनका इस्तेमाल बहुत कम करती है और जहाँ तक हो सकता है भाग कर ही अपना काम चलाती है। कभी-कभी यह रात को रोशनी के पास जाने के लिए पंख फैलाकर उड़ती है। यह ज्यादातर पेड़ की छाल के नीचे सड़ी पत्तियों, कूड़ा-कर्कट या जड़ों और पत्थरों के नीचे अपना समय बिताती है।

छेंउकी की दुम के पास की चिमटी इसके किस काम आती है, इसका अभी तक पता नहीं चल सका। कुछ लोग इसको आत्मरक्षा का साधन जरूर समझते हैं, लेकिन सब छेंउकियाँ काटती भी तो नहीं।

छेंउकी बरसात में बहुत तेज रहती है क्योंकि जब जमीन नम और मुलायम हो जाती है तो इसे बहुत आराम हो जाता है, लेकिन जाड़ा आने पर यह किसी सुरक्षित स्थान में मिट्टी या ईंट-पत्थरों के नीचे शीतनिद्रा में चली जाती है और फिर जाड़े बाद वहाँ इसकी निद्रा टूटती है।

तिलचट्टा

(COCKROACH)

तिलचट्टों को भी सब जानते ही हैं। चौथाई इंच से लेकर दो इंच तक के तिलचट्टे हमारे देश में पाये जाते हैं। छोटे तो उतने दिखाई नहीं पड़ते, लेकिन बड़ों को हममें से किसने नहीं देखा है, यह बताना व्यर्थ है। सीलन की जगहों में तथा घर की मोरियों के आसपास ये कत्थई रंग के चौड़े अपनी लम्बी मूँछों के कारण फौरन हमारी निगाह अपनी ओर खींच लेते हैं। इनके शरीर की बनावट चपटी और चिकनी होती है और ये काफी तेज भाग सकते हैं।

इनमें से कुछ के तो पर होते हैं और कुछ बेपर के होते हैं, लेकिन अंडे से बाहर निकलने पर परवाली किस्मों के भी बच्चों के पर नहीं रहते। हाँ, छोटे पर के रहने पर भी उनकी शकल-सूरत जरूर बड़ों से मिलती-जुलती रहती है।
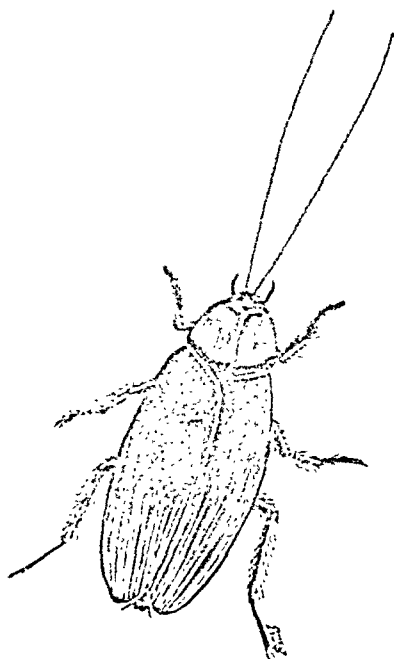
तिलचट्टा

तिलचट्टे कूड़ा-करकट में, पत्तियों और ईंट-पत्थरों के नीचे, जहाँ भी उन्हें नमी मिली, रह लेते हैं। कुछ हमारे घर की मोरियों और गुसलखानों में अपना घर बना लेते हैं। ये मुरदाखोर कीड़े हैं जिनके खाने में सभी तरह की सड़ी-गली चीजें शामिल रहती हैं।

तिलचट्टे यद्यपि हमारा नुकसान नहीं करते, लेकिन सफाई के ख्याल से इनको घर से नष्ट कर देना ही पड़ता है।

चिड्डा या बोडर

(PRAYING INSECT)

चिड्डे या बोडर टिड्डियो के भाई-बिरादरी हैं। यद्यपि इनकी शक्ल टिड्डियो से भिन्न होती है, फिर भी दोनो की आदतें बहुत-कुछ एक जैसी होती हैं।

बोडर देखने में कम सुन्दर नही होता फिर भी उसका रंग पास पडोस की वस्तुओं से मिलता-जुलता रहता है। बनावट में कभी तो यह टहनी-सा लगता है और कभी सूखी पत्तियां जैसा।

इसकी आँखें संयुक्त और बडी होती हैं और यह अपने सिर को भी इधर-उधर घुमा लेता है। इसके अगले दोनो पर पतले, लंबे और रंगीन होते हैं जो पिछले परो को ढके रहते हैं।

चिड्डा या बोडर
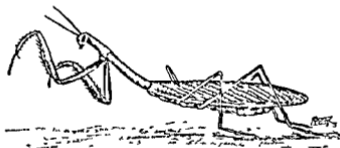
बोडर का मुँह टिड्डियो की तरह छोटा होता है। इसके पैर इसके बड काम के होते हैं, जिनसे यह छोटे कीडो-मकोडो को बडी मजबूती से पकडकर अपने मुह तक लाकर उन्हें खा जाता है। इन्ही लंबी टाँगो से बोडर बडी आसानी से जमीन पर दौड भी लेता है।

इसकी मादा एक प्रकार के चिपचिपे खोल में अंड देती है जो किसी पेड के तने से चिपके रहते हैं। अंडो के फूटने पर चिड्डो के छोटे छोटे चीटे की शक्ल के बच्चे निकलते हैं।

बोडर का मुख्य भोजन कीड-मकोडे हैं जिन्हें यह घास-फूस के बीच बडी आसानी से पकड लेता है।

पातालगौरा

(HETRODES)

पातालगौरा टिड्डी की जाति का जीव है, लेकिन इसको जैसे प्रकृति ने आकाश में उड़ने के बजाय पाताल में ही रहने के लिए बनाया है। यह टिड्डी से बड़ा होता है, लेकिन इसके एक ही जोड़ा पर का रहता है, जिसका पिछला सिरा घूमकर ऐंठा सा रहता है। इसीलिए यह बलुई जमीन में बिल खोदकर उसी में छिपा रहता है।

हमारे देश में वैसे तो प्रायः सभी रेतीली जमीनों पर पातालगौरे दिखाई पड़ते हैं, लेकिन इनकी ज्यादा संख्या पंजाब के कुछ हिस्सों में या उत्तरी भारत के रेतीले भागों में पायी जाती है। पातालगौरे की शकल बहुत भयानक और अजीब-सी होती है। इसके बड़े-बड़े जबड़े और मूंछें, जिसे यह घड़ी की स्प्रिंग की तरह लपेटे रहता है, इसके चेहरे को और भी भयानक बना देते हैं। इसका मुख्य भोजन कीड़े-मकोड़े हैं जिन्हें यह अपने मजबूत जबड़ों से बड़ी आसानी से कुचल डालता है।
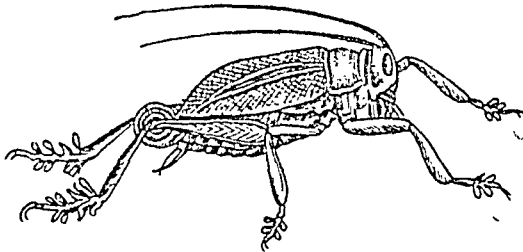
पातालगौरा

पातालगौरे का बिल बहुत गहरा होता है जिसमें पानी भरने से यह बाहर निकल आता है। दो पतालगौरों की कमर में रस्सी बाँधकर लड़के उनको लड़ाते हैं और अक्सर इसको चिड़िया पकड़नेवाली चौगड़िया के बीच में बाँधकर इससे चिड़िया फँसाने का काम भी लिया जाता है। इसको देखकर जैसे ही चिड़िया लासा लगी हुई चौगड़िया के ऊपर बैठती है उसके पंख चौगड़िया की तीलियों में लिपट जाते हैं और वह उसी में फँस जाती है।

इसकी मादा बिलों में ही अण्डे देती है।

रीवाँ

(MOLE CRICKET)

रीवाँ भी पातालगौरे का भाई-बंधु है जिसको पातालगौरे की तरह जमीन में बिल खोदकर रहना ज्यादा पसन्द आता है।

इसका सिर और वक्ष बड़ा होता है और अगली टाँगें काफी मजबूत होती हैं, जिनके सहारे यह जमीन में गहरा बिल खोद लेता है।

रीवाँ डेढ़ दो इंच लंबा भद्दा-सा जीव है, जिसके सिर और वक्ष का अगला हिस्सा कड़ा होता है। इसके पर इसके मुलायम पेट से बिलकुल चिपके हुए रहते हैं। इसके पिछले पर नोकीले होकर पीछे की ओर काँटे जैसे निकले रहते हैं। और इसके पेट के पिछले हिस्से पर दुम की जगह दो नोकीली सलाखें ऊपर की ओर उठी रहती हैं।
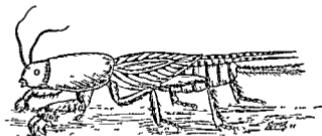
रीवाँ

रीवाँ रात्रिचर जीव है जो रात में ही बाहर निकलता है। इसे रोशनी बहुत पसन्द है और इसी से यह अक्सर लैम्प के निकट आकर्षित होकर चला आता है। इसके बिल में भी पानी डालकर इसे बाहर निकाला जा सकता है और इससे भी पातालगौरे की तरह चिड़िया फँसाने का काम लिया जाता है।

मादा रीवाँ बिलों में अंडे देती है जो काफी गहरे होते हैं। बिल के निचले हिस्से में एक गोल कोठरी-सी रहती है जहाँ मादा काफी संख्या में छोटे-छोटे सफेद बैंजाबी अंडे देती है। ये अण्डे आपस में जुटे न रहकर अलग-अलग रहते हैं। इन अण्डों

के फूटने पर जब बच्चे निकलते हैं तो वे अपने अलग-अलग बिल बनाते हैं और प्रौढ़ रीवों की तरह कीड़े-मकोड़ों से अपना पेट भरते हैं।

रीवाँ जान-बूझकर हमारी फसल को नुकसान नहीं पहुँचाते लेकिन इनके बिल जब काफी संख्या में एक जगह हो जाते हैं तो उनसे अक्सर पौधों की जड़ें कट जाती हैं जिससे पौधे सूख जाते हैं।

कठकीड़ा

(STICK INSECT)

कठकीड़े को हम लोगों ने बहुत कम देखा होगा। इसका कारण यह नहीं है कि यह हमारे यहाँ बहुत कम होता है या उसका कद बहुत छोटा होता है, बल्कि यह अपनी बनावट के कारण पेड़ की टहनियों पर ऐसा छिप जाता है कि उसे देखकर भी हम तब तक उसे नहीं पहचान पाते जब तक यह हिलता डुलता नहीं।

कठकीड़ा वैसे तो टिड्डा का भाई-बिरादर है, लेकिन यह अपनी टाँगें शिकार
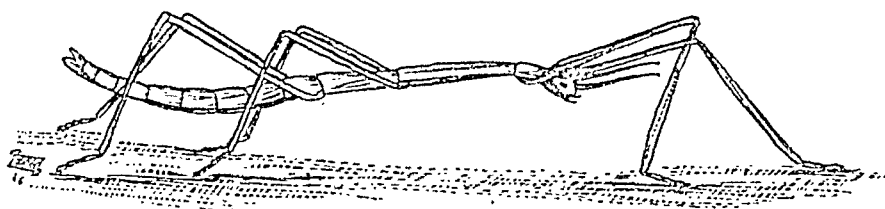
कठकीड़ा।

पकड़ने के काम में नहीं लाता और न पिछली टाँगों से टिड्डों या सुग्गों की तरह कूदता ही है।

कठकीड़ा चार से छः इंच तक लंबा होता है जिसकी बनावट एकदम सूखी टहनी जैसी होती है। इसे किसी डाल पर बैठे देखकर सहसा यही ख्याल होता है कि कोई पतली-सी सूखी टहनी है। इसके बदन का रंग भी पास-पड़ोस के रंग से ऐसा मिल जाता है कि जल्द इस पर निगाह नहीं पड़ती।

कठकीड़े का मुख्य भोजन पेड़ की पत्तियाँ हैं लेकिन यह हमारी फसल को नुकसान नहीं पहुँचाता क्योंकि इसके रहने का मुख्य स्थान गरम प्रदेशों के जंगल हैं।

इसका नर मादा से कुछ मोटा होता है और उसके पर भी रहते हैं। मादा एक-एक करके अंडे देती है जो जमीन पर बीज की तरह बो दिये जाते हैं। इन अन्डो पर बीज की तरह एक कड़ी खोल भी रहती है। अंडो के फूटने पर जब बच्चे निकलते हैं तो उनका कद छोटा रहने पर भी उनकी शकल बडो की ही तरह रहती है। इसी का निकट संबंधी एक और कीडा हमारे यहाँ होता है जिसे पतकीडा (Leaf Insect) या पतकिरवा कहते हैं।
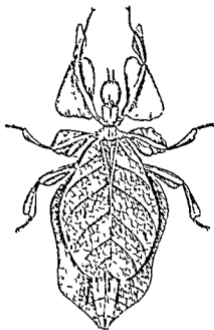
पतकोड़ा

कठकीड़े की तरह यह भी बहुत प्रसिद्ध कीडा है, जो देखने में एकदम पत्ती-सा जान पड़ता है। यह अपने हरे रंग और पत्ती जैसी शकल के कारण पेडो पर इस खूबी से छिप जाता है कि पत्तियो के बीच बैठे रहने पर जल्द इस पर हमारी निगाह नहीं पड़ती। इसकी और सब आदतें कठकीड़े जैसी रहती हैं।

झींगुर

(CRICKET)

झींगुर सारी दुनिया में फैले हुए हैं। हमारे देश में भी ये प्रायः सभी जगह पाये जाते हैं। इन्हें तलाशने के लिए घरसे ज्यादा दूर जाने की जरूरत नही पडती। तस्वीर या आलमारियो के नीचे संदूक और अन्य सामानों के पीछे,जहाँ गदगी रहती है,झींगुरो की भरमार हो जाती है। बरसात में तो इनकी तेज आवाज से कान के परदे फटने लगते हैं।

हमारे यहाँ अक्सर झींगुरो की दो जातियाँ दिखाई पड़ती हैं। काला झींगुर (Field Cricket) और भूरा झींगुर (House Cricket)। जैसा कि नाम से

जाहिर है दोनों के रंग में फर्क जरूर रहता है, लेकिन दोनों की आदतें एक-जैसी ही होती हैं।

झींगुर टिड्डी की तरह लंबे नहीं होते और न उनका शरीर ही दोनों बगल में दबा रहता है बल्कि ये ढुइंया कौड़ी की शक्ल के चपटे से जानवर हैं, जिनकी पिछली टाँगें औरों से लंबी होती हैं जिससे ये मेढ़क की तरह कूद-कूद कर चलते हैं।

झींगुर घास-पात खानेवाला छोटा-सा चपटा जीव है, जो हमारी फसल को काफी नुकसान पहुँचाता है। इसकी लंबाई आधे इंच से डेढ़ इंच तक पहुँच जाती है। काला झींगुर भूरे से कुछ छोटा होता है और उसके पेट के चारों ओर नारंगी बिंदियाँ रहती हैं। यह अपने अगले पैरों को एक दूसरे से रगड़कर एक प्रकार की तेज आवाज करता है जो बरसात में अक्सर सुनाई पड़ती है।
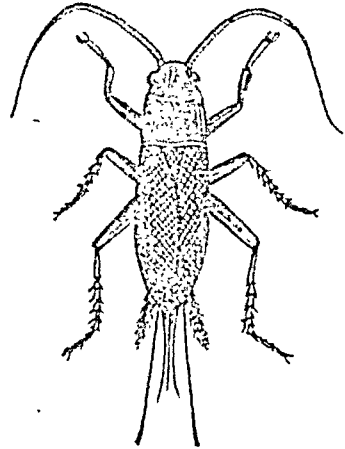
झींगुर

झींगुर का सिर तो बड़ा होता ही है, उसकी मूँछें भी काफी लंबी होती हैं। इसके शरीर का रंग मटमैला भूरा या कलछौंह रहता है। इसके अगले पैरों का कुछ हिस्सा तो पीठ पर फैला रहता है और कुछ पेट में चिपका रहता है। इसके पिछले पंख बंद रहने पर पीछे की ओर डंक की तरह निकले रहते हैं। पीठ के पिछले हिस्से में दुम की तरह दो नोकें निकली रहती हैं और इसकी अगली टाँगों के ऊपरी भाग पर टिड्डियों की तरह सुनने की इन्द्रिय रहती है।

झींगुरों के रहने का कोई निश्चित स्थान नहीं रहता। कुछ गहरा बिल खोदकर रहते हैं तो कुछ सड़ी-गली पत्तियों के नीचे थोड़ा ही गहरा बिल बनाते हैं। कुछ ने एकदम घरों में रहने की आदत डाल ली है तो कुछ ने अपना निवास पेड़ और झाड़ियों के बीच चुना है। बिल बनानेवाले झींगुर शाकाहारी होते हैं और ज्यादातर रात को ही बाहर निकलना पसन्द करते हैं, लेकिन झाड़ी के बीच रहनेवाले झींगुरों का मुख्य भोजन छोटे-मोटे कीड़े हैं।

झींगुरों के अंडे-बच्चों के बारे में अभी ज्यादा पता नही चला है, लेकिन इतना तो ज्ञात ही है कि ये अंडे देते हैं जिनके फूटने पर इन्हीं की शक्ल-सूरत के बहुत छोटे कद के बच्चे निकलते हैं।

टिड्डी
(LOCUST)

टिड्डी की एक नही अनेक जातियाँ हैं जो छोटी-बडी सभी तरह की होती हैं। ये ससार के सभी स्थानो में पायी जाती हैं और इनके हमलो से कोई भी देश नही बच पाया है।

हमारे देश मे टिड्डियो की वैसे तो कई जातियाँ है, लेकिन इनमें से दो प्रमुख हैं—एक का निवास तो सीमाप्रान्त से राजपूताना तक है और दूसरी ने अपने रहने का स्थान बवई प्रान्त चुना है।

टिड्डी झुंड मे रहनेवाले जीव हैं। ये लाखो करोडो के झुण्ड में रहती हैं। टिड्डीदल तो मशहूर ही है। जब इनका यह दल उडता है तो आसमान काला हो जाता है। दूर से देखने से यह बादल सा जान पडता है और कभी-कभी तो यह मीलो लबा होता है।

टिड्डियाँ इस प्रकार स्थान परिवर्तन क्या करती हैं, इसका अभी ठीक-ठीक पता नही चला है। लेकिन इनसे फसल का कितना नुकसान होता है यह तो हम लोग भली भाँति जानते हैं। मीलो लबे टिड्डियो के दल के सामने जो खेत पडते हैं वे तो साफ ही हो जाते हैं, साथ ही साथ पेड की पत्तियो की भी सफाई हो जाती है। इनके झुंड का रोकना सभव नही होता। लोगो ने बडी-बडी खाइयाँ खोदी, आग जलाकर मार्ग अवरोध किया, लेकिन किसी बात मे पूर्ण सफलता नही मिली।

हमारे देश में तो इनके हमले का उतना जोर नही होता, लेकिन कभी कभी इनकी बाढ आ ही जाती है। उस समय का दृश्य बडा डरावना-सा लगता है। चारो ओर भय का वातावरण हो जाता है और ऊपर आसमान में इनके उडने से एक तरह की आवाज होती रहती है। चिडियो के लिए तो यह बडे आनन्द का समय रहता है। वे आपस के वैर-भाव भुलाकर इनके झुण्ड के पीछे लग जाती हैं और ऊपर उडते ही उडते इनको पकडकर अपना पेट भरती हैं।

टिड्डी को हम सबने देखा होगा। इनकी बनावट लंबी और चपटी होती है। इनकी पिछली दोनों टांगें अगली टांगों से लंबी रहती है। इनकी मूंछें पतली और लंबी

टिड्डी

होती हैं। ये ही इनके स्पर्शसूत्र (Antennae) हैं। इनके मुंह की बनावट से ही जाना जा सकता है कि इनका भोजन घास-पात है। इनके धड़ का अगला भाग बड़ा और साफ़ दिखनेवाला होता है।

टिड्डियों के अगले छोटे पर, मोटे और रंगीन होते हैं जो पेट को ढके रहते हैं। इनके परों में एक ऐसी अद्‌भुत शक्ति होती है जिसके सहारे ये सैकड़ों मील का सफर तय कर लेती हैं। उड़ते समय इन परों से एक प्रकार की आवाज निकलती रहती है।

यह आवाज इनके अगले परों के आपस में रगड़ने से निकलती है। इन परों का कुछ हिस्सा चपटा रहता है जो नीचे एक दूसरे पर चढ़ा रहता है और जिसकी परस्पर रगड़ से ही यह कर्कश आवाज़ होती है।

टिड्डियों का रंग प्रायः हरा रहता है जिससे वे पत्तियों के बीच आसानी से छिप जाती हैं। वैसे ये विभिन्न रंगों की होती हैं, और उनका रंग पास-पड़ोस के अनुरूप ही बदलता रहता है। घास और पत्तियों के बीच ये इस तरह छिप जाती हैं कि जब तक हिलती नहीं इन्हें देखना बहुत कठिन हो जाता है। इनके पेट का हिस्सा काफ़ी नरम रहता है।

मादा टिड्डी बरसात के शुरू में किसी पत्ती के किनारे घास के तने में और पेड़ की छाल में छेद करके अंडे देती हैं। कभी-कभी वह जमीन में बिल बनाकर अंडे देती है। ये सूराख बड़े नहीं होते और जब वे अंडों से भर जाते हैं तो टिड्डी एक प्रकार के चिप-चिपे पदार्थ से बिल को भर देती है। इस तरल पदार्थ से अंडे एक दूसरे से चिपक जाते

झींगुरे के अंडे-बच्चों के बारे में अभी ज्यादा पता नही चला है, लेकिन इतना तो ज्ञात ही है कि ये अंडे देते है जिनके फूटने पर इन्ही की शक्ल-सूरत के बहुत छोटे कद के बच्चे निकलते है।

टिड्डी

(LOCUST)

टिड्डी की एक नही अनेक जातियाँ है जो छोटी-बडी सभी तरह की होती है। ये संसार के सभी स्थानों में पायी जाती है और इनके हमलो से कोई भी देश नही बच पाया है।

हमारे देश मे टिड्डियों की वैसे तो कई जातियाँ है, लेकिन इनमें से दो प्रमुख है— एक का निवास तो सीमाप्रान्त से राजपूताना तक है और दूसरी ने अपने रहने का स्थान बबई प्रान्त चुना है।

टिड्डी झुड मे रहनेवाले जीव है। ये लाखो करोडो के झुण्ड में रहती है। टिड्डीदल तो मशहूर ही है। जब इनका यह दल उडता है तो आसमान काला हो जाता है। दूर से देखने मे यह बादल-सा जान पडता है और कभी-कभी तो यह मीलो लबा होता है।

टिड्डियाँ इस प्रकार स्थान परिवर्तन क्यो करती है, इसका अभी ठीक-ठीक पता नही चला है। लेकिन इनसे फसल का कितना नुकसान होता है यह तो हम लोग भली भाँति जानते है। मीलो लवे टिड्डियों के दल के सामने जो खेत पडते है वे तो साफ ही हो जाते है, साथ ही साथ पेड की पत्तियो की भी सफाई हो जाती है। इनके झुड को रोकना सभव नही होता। लोगों ने बडी-बडी खाइया खोदी, आग जलाकर मार्ग अवरोध किया, लेकिन किसी बात में पूर्ण सफलता नही मिली।

हमारे देश मे तो इनके हमले का उतना जोर नही होता, लेकिन कभी-कभी इनकी बाढ आ ही जाती है। उस समय का दृश्य बडा डरावना-सा लगता है। चारो ओर भय का वातावरण हो जाता है और ऊपर आसमान में इनके उडने से एक तरह की आवाज होती रहती है। चिडियों के लिए तो यह बडे आनन्द का समय रहता है। वे आपस के वैर-भाव भुलाकर इनके झुण्ड के पीछे लग जाती है और ऊपर उडते ही उडते इनको पकडकर अपना पेट भरती है।

टिड्डी को हम सबने देखा होगा। इसकी बनावट लंबी और चपटी होती है। इनकी पिछली दोनों टाँगें अगली टाँगों से लंबी रहती हैं। इनकी मूंछें पतली और लंबी

टिड्डी

होती हैं। ये ही इनके स्पर्शसूत्र (Antennae) हैं। इनके मुँह की बनावट से ही जाना जा सकता है कि इनका भोजन घास-पात है। इनके धड़ का अगला भाग बड़ा और साफ़ दिखनेवाला होता है।

टिड्डियों के अगले छोटे पर, मोटे और रंगीन होते हैं जो पेट को ढके रहते हैं। इनके परों में एक ऐसी अद्भुत शक्ति होती है जिसके सहारे ये सैकड़ों मील का सफर तय कर लेती हैं। उड़ते समय इन परों से एक प्रकार की आवाज़ निकलती रहती है।

यह आवाज़ इनके अगले परों के आपस में रगड़ने से निकलती है। इन परों का कुछ हिस्सा चपटा रहता है जो नीचे एक दूसरे पर चढ़ा रहता है और जिसकी परस्पर रगड़ से ही यह कर्कश आवाज़ होती है।

टिड्डियों का रंग प्रायः हरा रहता है जिससे वे पत्तियों के बीच आसानी से छिप जाती हैं। वैसे ये विभिन्न रंगों की होती हैं, और उनका रंग पास-पड़ोस के अनुरूप ही बदलता रहता है। घास और पत्तियों के बीच ये इस तरह छिप जाती हैं कि जब तक हिलती नहीं इन्हें देखना बहुत कठिन हो जाता है। इनके पेट का हिस्सा काफ़ी नरम रहता है।

मादा टिड्डी बरसात के शुरू में किसी पत्ती के किनारे घास के तने में और पेड़ की छाल में छेद करके अंडे देती हैं। कभी-कभी वह जमीन में बिल बनाकर अंडे देती है। ये सूराख बड़े नहीं होते और जब वे अंडों से भर जाते हैं तो टिड्डी एक प्रकार के चिप-चिपे पदार्थ से बिल को भर देती है। इस तरल पदार्थ से अंडे एक दूसरे से चिपक जाते

है और उसके सूखने से सूराख का मुँह भी बंद हो जाता और वह आस पास की जमीन जैसा दिखाई पड़ने लगता है।

ये अंडे करीब तीन सप्ताह बाद फूटते है और उनमेंसे छोटे-छोटे हरे रंग के कीड़े निकलते हैं। कुछ ही घंटो में उनकी हरी खाल उतर जाती है और वे कलछौंह दीख पड़ते हैं। धीरे-धीरे उनकी बाढ़ होने लगती है और उनके शरीर का खोल तंग होकर कस जाता है। कसने के बाद वह साँप के केंचुल की तरह निकल जाता है। कई मरतबा इस तरह का खोल बदलकर ये बच्चे बड़े हो जाते हैं और करीब एक महीने बाद उनके पर भी निकल आते हैं।

टिड्डियाँ ज्यादातर रात मे निकलना पसन्द करती हैं लेकिन कुछ ऐसी भी हैं जो दिन को भी दिखाई पड़ती हैं। इनका मुख्य भोजन वैसे तो घास-पात है लेकिन खाने की कमी होने पर ये कीड़े-मकोड़े भी खा लेती है। इन्हें भी पतिंगे की तरह रोशनी पसन्द है और इनकी कुछ जातियाँ तो लैम्प के पास तक पहुँच जाती हैं।

टिड्डा

(GRASS HOPPER)

टिड्डो को हम उड़नेवाली टिड्डियो (Locusts) का छोटा भाई कहें तो कुछ बेजा न होगा। ये हैं भी असल में उसी खान्दान के। लेकिन अपनी अकेले रहने की आदत और बनावट के कारण इन्हें टिड्डियो से अलग कर दिया गया है।

टिड्डे की बहुत-सी जातियाँ हमारे यहा फैली हुई हैं जिनमें टिड्डा, सुग्गा, पतंगा और फनगा आदि मुख्य हैं।

टिड्डो का हम सब पहचानते हैं। ये घास में रहनेवाले दो इंच के जीव हैं जो पिछली टांगो के बड़ी होने के कारण उछल-उछलकर चलते हैं। इनका रंग आसपास के घास-पात के इतना अनुरूप हो जाता है कि इन्हें जल्द देखना सभव नही। इनका यह रंग हमेशा एक जैसा न रह कर मौसम के साथ-साथ बदलता रहता है। बरसात में जब घास हरी हो जाती है तो इनका शरीर भी हरे रंग का हो जाता है, लेकिन बरसात के बाद घास के सूख जाने पर टिड्डे भी सूखी घास की तरह भूरे हो जाते हैं। इसी कारण बैठे रहने पर इनको देख लेना आसान नही होता।

हाँ, उड़ते समय टिड्डों को पहचानना ज्यादा कठिन नहीं होता क्योंकि इनके दुहरे या दो जोड़े परों में से ऊपरवाले पर तो इनके बदन के रंग के होते हैं लेकिन नीचेवाले परों का रंग चटक होता है। उड़ते समय ये दोनों पर साफ दिखाई पड़ते हैं।

टिड्डों का सिर औसत कद का होता है जो वक्ष से बिल्कुल अलग दिखाई पड़ता है। इनके स्पर्शसूत्र छोटे और आँखें बड़ी होती हैं। इनके मुँह को देखने से जान पड़ता है कि जैसे ये घास ही खाने के लिए बनाये गये हैं।

टिड्डों के नर-मादा छोटे-बड़े कद के होते हैं और उनके रंग में भी थोड़ा-बहुत फर्क रहता है। मादा जमीन में बिल बनाकर अंडे देती है, जिनकी संख्या काफी रहती है। ये अंडे एक दूसरे से एक प्रकार के लसदार पदार्थ से जुटे रहते हैं। अंडे फूटने पर उनमें से छोटे-छोटे बच्चे निकलते हैं जो कद में बहुत छोटे होने पर भी शकल-सूरत में टिड्डे जैसे ही होते हैं। थोड़े दिनों बाद बढ़ने के लिए इनके खोल फट जाते हैं और उनमें से नये खोल पहने निकल आते हैं। प्रौढ़ टिड्डे के बराबर होने तक इनको पांच-सात बार अपना तंग खोल बदलकर नये खोल में बाहर आना पड़ता है।

टिड्डा
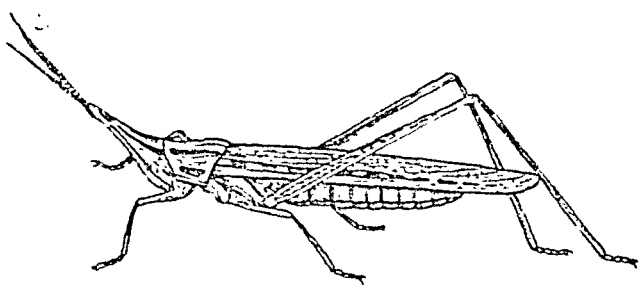
टिड्डे की ही जाति का एक और कीड़ा हमारे यहाँ काफी संख्या में मिलता है जो सुग्गा कहलाता है। यह टिड्डे से कुछ छोटा होता है और इसका शरीर भी उससे कोमल रहता है।

बरसात के मौसम में सुग्गों की संख्या इतनी बढ़ जाती है कि इनको किसी भी खेत या घास के मैदान में देखा जा सकता है।

सुग्गे को यह प्यारा नाम इसके हरे रंग के कारण ही मिला है, लेकिन घास सूख जाने पर इसका भी हरा रंग बदलकर भूरा हो जाता है जिससे उसका भूरा लिवास

उसे सूखी घास में छिपने में मदद दे सके। इनमें से कुछ के ऊपर चमकीली धारियाँ भी रहती हैं। सुग्गे का कद एक से डेढ इंच तक होता है और इसके नर से मादा बड़ी होती है। सुग्गे की मूँछें ऊपर की ओर उभरी रहती हैं जिससे इसको पहचानना कठिन नहीं होता। इसकी और आदतें टिड्डे से मिलती-जुलती होती हैं। सुग्गे से भी छोटा इसी जाति का एक और कीड़ा हमारे यहां पाया जाता है, जो पतेंगा (Small Grass-hopper) कहलाता है। यह सारे देश में काफी सख्या में फैला हुआ है।

पतेंग उगती हुई फसल को बहुत नुकसान पहुँचाते हैं और उस समय इनको खेतों में काफी तादाद में देखा जा सकता है। इसके अलावा इन्हें रात में रोशनी के निकट देखना भी ज्यादा मुश्किल नहीं। इन्हें रोशनी उसी तरह पसन्द है जैसे पतिंगा को और यही वजह है कि ये लैम्प के नजदीक फौरन पहुँच जाते हैं।

मादा पतंगा बरसात में दो बार अंडे देती है, जिनमें से इन्हीं की शक्ल के किंतु बहुत छोटे कद के बच्चे निकलते हैं।

फनगा

(COMMON SURFACE GRASS HOPPER)

फनगा भी पतेंगा की तरह छोटे कद का जीव है जिसे सारे देश में देखा जा सकता है। उगती फसल को पतेंगे की तरह ये भी काफी नुकसान पहुँचाते हैं। तबाकू की फसल को तो इनसे बहुत ही ज्यादा नुकसान पहुँचता है क्योंकि उसकी पत्तियाँ ये बड़े स्वाद से खाते हैं।

नर फनगा मादा से कुछ छोटा होता है और उसका रंग भी भूरा रहता है। मादा जरूर हरे रंग की होती है जो पतेंगे की तरह बिल में अंडे देती है।

इनकी और आदतें पतेंग या सुग्गे से मिलती जुलती रहती हैं।

वल्मगण वर्ग

(ORDER ISOPTERA)

इस वर्ग में अपने प्रसिद्ध सामाजिक कीट दीमक को रखा गया है जिनकी लगभग १,६०० जातियाँ सारे संसार में फैली हैं। चींटियों की भाँति इनका भी सामाजिक संगठन बहुत व्यवस्थित रहता है और इनके कुटुम्ब में चार प्रकार के प्राणी पाये जाते हैं, जो राजा, रानी, सिपाही तथा मजदूर कहलाते हैं।

मजदूर दीमकें प्रजनन-शक्ति से विहीन और नेत्रों तथा परों से रहित होती हैं। इनको दिमौर की मरम्मत और अंडे-बच्चों की देख-रेख करनी पड़ती है। सैनिकों का सिर मजदूरों से बड़ा होता है। ये भी जनन-शक्ति से शून्य, अंधे और पंखविहीन होते हैं। इनका काम दिमौर की रक्षा करना है। ये बहुत ही निर्भीक होते हैं और दिमौर में क्षति होते ही तुरंत वहाँ पहुँच कर दुश्मनों का साहसपूर्ण सामना करते हैं। ये मजदूरों से दिमौर की मरम्मत कराते हैं और स्वयं उनकी रक्षा के लिए खड़े रहते हैं।

राजा और रानी लैंगिक दृष्टि से पूर्ण होते हैं और वे नेत्र और पंख से युक्त होते हैं। उनकी आयु साधारणतया १० वर्ष की होती है। रानी की लंबाई प्रजनन के समय ५–६ इंच की हो जाती है और उसका पेट चर्बी और अंडों से भरा रहता है। वह एक ही स्थान पर पड़ी रहती है और वहाँ से हिल-डुल नहीं सकती। साधारणतया रानी एक दिन में ६० से ८० हजार तक अंडे देती है।

दीमकों का मुख्य भोजन लकड़ी, कपड़ा और चमड़ा आदि है जिसके लिए वे काफी दूर तक चले जाते हैं। ये हमारे पेड़-पौधों की जड़ों को काट डालते हैं। इन्हें रोशनी से बहुत नफरत है। इसी कारण इन्हें जहाँ जाना होता है ये वहाँ तक मिट्टी की पतली सुरंग बनाते हैं और उसी के भीतर इनकी पलटन चलती है। यहाँ अपने यहाँ के प्रसिद्ध दीमक का वर्णन दिया जा रहा है।

दीमक
(TERMITES)

दीमक उन कीड़ों में से हैं जो हमारा बहुत नुकसान करते हैं। ये लकड़ी का तो नुकसान करते ही हैं, साथ ही साथ हमारे छोटे पेड़-पौधों को भी काट डालते हैं।

दीमक के चींटी की तरह सामाजिक-कीट हैं जो जमीन के भीतर अपना बड़ा नगर बसाते हैं जिसमें उनके राजा, रानी, मजदूर और सिपाही दीमक रहते हैं।

दीमक भी बिलों के ऊपर दीमकों के ऊँचे घर होते हैं, जो दिमौर कहलाते हैं। ये बहुत मजबूत मिट्टी के होते हैं और इनकी ऊँचाई कहीं-कहीं २०-२५ फुट तक हो जाती है।

रानी दीमक का काम अंडा देना होता है। जब इन अंडों से बच्चे निकलते हैं तो उनमें कुछ मजदूर और कुछ सिपाही हो जाते हैं। मजदूर दीमकों के न तो पर होते हैं और न आँखें। उनको जीवन भर केवल घर बनाना और बच्चों की देख रेख करना पड़ता है।

दीमक
(मजदूर, रानी सैनिक)

दीमकों को रोशनी से नफरत है इसी लिए जब उन्हें किसी पक्की जमीन से दूसरी जगह जाना होता है तो वे मिट्टी की पतली सुरंग बना कर वहाँ पहुँच जाती हैं। इन सुरंगों से होकर दीमकें सूखी लकड़ी तक पहुँच जाती हैं और उसे पेट भर खाकर अपने पेट में जमा करती जाती हैं। उसके बाद खाई हुई लकड़ी को वे बिल में आकर उगल देती हैं।
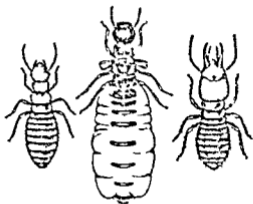
तीसरी किस्म की दीमकें परदार होती हैं जो बरसात आने पर लाखों की तादाद में बाहर निकलती हैं। इनमें से बहुत-सी रोशनी में जलकर मर जाती हैं और बहुत-सी चिड़ियों, मेढकों और छिपकलियों की शिकार हो जाती हैं।

पुस्तककीट वर्ग

(ORDER PSOCOPTERA)

इस वर्ग में किताबीकीड़े रखे गये हैं जिनका शरीर बहुत छोटा और कोमल होता है। इनकी लगभग ३०० जातियाँ सारे संसार में फैली हुई हैं जिनमें से कुछ के पर होते हैं और कुछ परों से रहित रहते हैं। ये कूड़ा-करकट या दीवालों के दराजों या पेड़ की छालों के नीचे रहते हैं और कुछ हमारी पुस्तकों और चटाइयों आदि में घुसे रहते हैं। इनका मुख रुखानीनुमा जबड़ों से युक्त रहता है जिससे ये सब चीजों को आसानी से कुतर डालते हैं। ये कागज, खर-पतवार, काई और फफूद आदि से अपना पेट भरते हैं और इनका कद एक मिलीमीटर से भी छोटा ही होता है। इतने छोटे कद के होने पर

भी ये इतनी तेज आवाज करते हैं कि सहसा यह विश्वास ही नहीं होता कि यह आवाज इन्हीं की है। यहाँ अपने यहाँ के प्रसिद्ध पुस्तककीट का वर्णन किया जा रहा है।

किताबीकीड़ा

(BOOK LICE)

किताबीकीड़ा दीमक की शकल-सूरत का छोटा-सा कीड़ा है जो अक्सर किताबों के बीच दिखाई पड़ता है। यह न भी दिखाई पड़े, तो भी इसके किये हुए छेद तो हमारी किताबों में हमेशा के लिए रह ही जाते हैं। इनका सिर बड़ा और आगे की ओर फूला-फूला रहता है। इनकी आँखें बड़ी, मूँछें लंबी और जबड़े का सिरा कड़ा होता है जिससे ये बड़ी आसानी से चीजों को कुतर सकते हैं। इनके मुँह के और हिस्से कोमल और झिल्लीदार होते हैं और ओठ दो हिस्सों में बँटा रहता है। इनके वक्ष के बीच का खंड बड़ा और लंबा तथा अगला हिस्सा पतला और छोटा होता है। इनके पंख चमकीले और पारदर्शी होते हैं जो बैठे रहने पर नीचे की ओर झुक कर इनके पेट को ढक लेते हैं।

किताबीकीड़ा

किताबीकीड़े के नर-मादा एक ही शकल-सूरत के होते हैं। मादा समय आने पर अंडे देती है जिसे ये कीड़े अपने मुँह से रेशम-जैसे तार निकालकर लपेट देते हैं। अंडों के फूटने पर जो छोटे-छोटे बच्चे निकलते हैं उनकी शकल-सूरत माँ-बाप जैसी ही रहती है। ये झुंड के झुंड काफी समय तक माँ-बाप के ही साथ रहते हैं। कुछ किताबीकीड़े पत्तियों के नीचे जाला बनाकर उसी के भीतर और कुछ पेड़ की छाल या पत्तियों के ऊपर अंडे देते हैं।
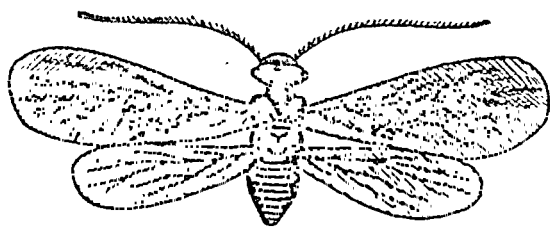
किताबीकीड़ों की अनेक जातियाँ हमारे यहाँ पायी जाती हैं, लेकिन इनमें से ज्यादा संख्या उन्हीं की है जो हमारे घरों की नम जगहों में रहते हैं। ये हमारी किताबों को बहुत नुकसान पहुँचाते हैं। इनका मुख्य भोजन घास-पात, फफूंद, कागज, छाल और छोटे मोटे कीड़े-मकोड़े हैं।

यूका वर्ग

(ORDER ANOPTURA)

इस वर्ग म सब प्रकार के जुँए कुटकियाँ चीलर और छगाडिया आदि कीट र गये हैं जिनको कुछ लोग स्वेदज कहकर पुकारा करते हैं। ये सब कीड़े खून चूस वाले होते हैं और इनके मुख म इसीलिए एक नली लगी रहती है। इन कीडो को द भागो म बाँटा गया है—एक तो काटनेवाले होते हैं और दूसरे खून चूसनेवाले। कुट आदि काटनेवालो में और जुँआ आदि खून चूसनेवाली श्रेणी में रखे गये हैं।

इनके रहने का स्थान चिड़िया जानवरो तथा मनुष्यो का शरीर है जहाँ घने बा में ये पुश्त-दर-पुश्त पड़े रहते हैं।

यहाँ अपने यहाँ पायी जानेवाली कुटकी जुआ चीलर तथा छगाडिया का संक्षि वर्णन दिया जा रहा है।

कुटकी

(BITING LOUSE)

कुटकिया को अक्सर लोग नहीं पहचानते और इन्हें जुँआ या चीलर कह देते लेकिन यदि इनके मुँह को गौर म देखा जाय इनको पहचानना कठिन नहीं होगा।

कुटकी
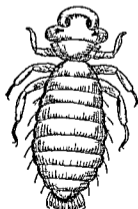
कुटकी चीलर और जुए की तरह परजीवी अवश्य है और उन्ही की तरह यह जिसका चूसती है उसी के शरीर में रहकर अपना जीवन भी बिता देती है लेकिन यह जुए और च की तरह खून न चूसकर दूसरे जीवो की खाल काटती है। यह जानवरो के बाल या चिड़ियो के में रहती है और भूख लगने पर जिन्दा खाल के आकर उसे काट लेती है। जानवरो या चिड़ियो के ब से अलग कर देने पर यह कुछ समय में ही मर जा है। यही नहीं जब वह जानवर या चिड़िया मर जाते है जिसमें यह चिपकी रहती है तो यह भी उसके खून क ठंडा होने पर मर जाती है।

टिड्डों का समूह (पृ० १०)

कुटकियाँ सभी जानवरों या चिड़ियों के शरीर में पायी जाती हों, सो बात नहीं है। ये किसी-किसी चिड़ियों के ही बदन में रहती हैं और फिर उनके बच्चों के बदन में फैलकर पुश्त-दर-पुश्त उस जानवर का पीछा नहीं छोड़तीं।

कुटकी बहुत ही छोटी होती है जिससे इसे जल्द पहचानना कठिन हो जाता है। इसकी करीब १४ जातियाँ हमारे यहाँ पायी जाती हैं जो हमारे पालतू पशु-पक्षियों के शरीर में अक्सर मिलती हैं। इनको निकालने के लिए सबसे आसान तरीका यह है कि परों या बालों की जड़ के पास तेल मल दिया जाय। तेल से इनका साँस लेना रुक जाता है और ये मर जाती हैं।

मादा कुटकी अंडे देती है जिनमें से बड़ी कुटकी की शकल के लेकिन उससे कुछ छोटे बच्चे निकलते हैं।

जुआँ

(HEAD LOUSE)

जुएँ को भला कौन नहीं जानता ? भले ही हममें से बहुतों ने इसे देखा न हो। यह दूसरों का खून चूसकर जीनेवाले जीवों में से एक है जो प्रायः मनुष्यों के बालों में पाया जाता है। हम लोगों के सिरों में गंदगी की वजह से अक्सर जुएँ पड़ जाते हैं और फिर उनको निकालना बहुत कठिन हो जाता है।

जुँओं का शरीर बहुत छोटा होता है और इनका रंग कलछौंह रहता है। इसीसे ये बालों में जल्द नहीं दिखाई पड़ते। इनका शरीर और सिर चपटा होता है, इनकी मूँछें छोटी और गोलाई लिये रहती हैं और इनकी आँखें छोटी होती हैं। इनके मुँह के अगले भाग की बनावट सूँड़-जैसी होती है जिसको खाल में गड़ाकर ये खून पीते हैं। इनका उदर, वक्ष की अपेक्षा लंबा होता है, जिसकी बनावट अंडाकार रहती है। यह सात-आठ खंडों में बँटा रहता है।

जुँए के नर-मादा एक-जैसे होते हैं लेकिन नर मादा से कुछ छोटे रहते हैं। ये पराश्रयी जीव हैं, जिनकी वृद्धि बहुत तेज होती है। मादा नाशपाती की शकल के बहुत से अंडे देती है जो बालों की जड़ के पास चिपके रहते हैं। इन्हें लीख कहते हैं। ये अंडे आठ दस दिनों बाद फूटते हैं और उनमें से छोटे-छोटे बच्चे निकलते हैं। ये बच्चे १८-२० दिनों में बढ़कर प्रौढ़ जुएँ हो जाते हैं।

जुंए के दो भाई और हैं जिनके वर्णन के बिना इनका बयान अधूरा ही रह जायगा। इनमें एक तो चीलर (Body Louse) और दूसरा छगोड़िया (Crab Louse) है। ये दोनों जीव जुंए की तरह दूसरों का खून चूसकर अपना जीवन बिताते हैं और दोनों ही गन्दगी के कारण फैलते हैं।

जुंआ, चीलर और छः गोड़िया

चीलर (Body Louc) बालों के बजाय कपड़ा की तह में रहते हैं और सारे बदन में बुरी तरह काटते हैं। एक बार कपड़े में पड़ जाने पर उसे बिना गरम पानी में उबाले इन्हें उसमें से निकाला नहीं जा सकता। इनका रंग सफेद होता है। इससे ये कपड़ों में जल्द दिखाई नहीं पड़ते। इनकी और आदतें जुंए जैसी होती हैं।
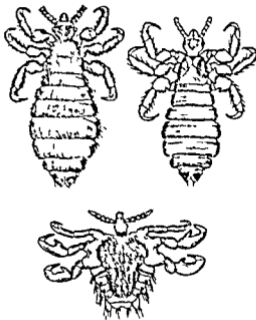
छगोड़िया (Crab Louse) की बनावट गोल होती है और इसका रंग काला या मलछौंह होता है। यह आदमियों के बदन में इस बुरी तरह चिपक जाती है कि इसको निकालना मुश्किल हो जाता है। बदन में चिपक जाने पर यह देखने में छोटे तिल-जैसी जान पड़ती है और नाखून गड़ाकर निकालने से ही बदन को छोड़ती है। कुछ देर तक तो यह चुपचाप अपने पैरों को समेटे हुए पड़ी रहती है। फिर एकाएक पैरों को फैलाकर भागती है। यह भी गन्दगी की निशानी है। गांव के लोग इसका शरीर पर पाया जाना बहुत अपशकुन मानते हैं। कुछ लोगों का तो यह विश्वास है कि यह दरिद्रता आने की सूचना मनुष्य को देती है।

छगोड़िया धीरे-धीरे मनुष्य का खून चूसती रहती है जो उसे ज्ञात नहीं होता। इसकी और सब आदतें जुंए की तरह ही होती हैं।

पाँखी वर्ग

(ORDER EPHEMEROPTERA)

इस वर्ग में हमारी प्रसिद्ध पाँखियाँ हैं जो अपने अद्भुत जीवन के कारण कीट-जगत के विलक्षण जीव हैं। इनके वहुत छोटे स्पर्शसूत्र (Antennae) और पतला-सा लंबा शरीर होता है जिसके पिछले सिरे पर तीन लंबी और पतली दुमें रहती हैं। इसके अगले पर बड़े और चौड़े होते हैं लेकिन पीछे के पर वहुत ही छोटे रहते हैं।

पाँखियाँ सारे संसार में फैली हुई हैं और इनकी अनेक जातियाँ पायी जाती हैं। ये पानी के निकट रहनेवाले जीव हैं जिन्हें रोशनी से खास प्रेम है। इनके शरीर का रंग भूरा या राख-जैसा रहता है।

पाँखी का रूपान्तरण वहुत अद्भुत होता है। अंडे से निकलने के वाद ये शिशुकीट (Nymph) के रूप में लगभग तीन वर्षों तक रहती हैं जिसके उपरान्त कहीं ये पूर्ण रूप से पाँखी वन पाती हैं। अपने असली स्वरूप में आते ही ये मैथुन के उपरान्त अण्डे देकर जल्द ही मर जाती हैं। इनका यह छोटा-सा जीवन ३–४ घंटों से लेकर दो तीन दिन तक रहता है। इस छोटे जीवन का कारण यही है कि इनके मुख और भोजन की नली से कोई संवंध नहीं रहता और दोनों एक दूसरे के लिए वेकार ही रहते हैं। यहाँ अपने यहाँ की प्रसिद्ध पाँखी का वर्णन किया जा रहा है।

पाँखी

(MAY FLY)

पाँखियों को हम सवने लैम्प से टकरा-टकराकर या दीपक में जल-जलकर प्राण देते देखा होगा। वरसात में इनके मारे लैम्प के पास वैठना मुश्किल हो जाता है।

ये पानी के निकट रहनेवाले जीव हैं जिनके जीवन का ज्यादा हिस्सा पानी ही में वीतता है। यही कारण है कि ये नदी और दूसरे जलाशयों के आसपास ही रहती हैं और रात में रोशनी के पास झुंड-की-झुंड पहुँच जाती हैं। दिन को भी इन्हें हम पानी की सतह पर उड़ते देखते हैं।

पाँखी का जीवन वहुत छोटा होता है। अपनी असली पंखदार सूरत में आने के वाद ये दो-तीन घंटे या एक-दो दिन ही जिन्दा रहती हैं और फिर अंडे देकर मर जाती

है। इस छोटे जीवन का एक यह भी कारण है कि इनके मुंह और भोजन की नली में कोई संबंध नहीं रहता। और इनके ये दोनों अंग इनके लिए बेकार ही रहते हैं।

पाँखी का शरीर बहुत ही कोमल होता है जिसकी लंबाई करीब चौथाई इंच से ज्यादा नहीं होती। इनके दो जोड़े पंख होते हैं जिनमें अगले बड़े और पिछले छोटे होते हैं। जब यह बैठी रहती है तो अगले पंख एक दूसरे से जुटकर ऊपर की ओर उठे रहते हैं। इनके मूँछें नहीं होतीं लेकिन दुम लंबी और पतली होती है जिससे पहचानना आसान हो जाता है। नर की आँखें मादा से लंबी होती हैं रंग में नर मादा दोनों भूरे धुमैले रंग के होते हैं।

पाँखी
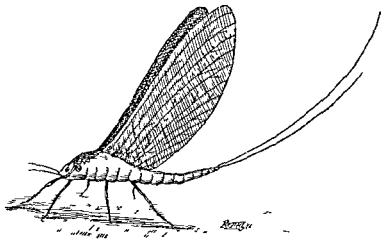
मादा पाँखी अपने अंडे पानी में देती है जहाँ वे फूटकर शिशुकीट की शकल में बदल जाते हैं। ये पहले पानी के भीतर रहते हैं और अपनी खाल से प्राणवायु लेते रहकर जिन्दा रहते हैं लेकिन कुछ समय बाद ये पानी की सतह पर आ जाते हैं। ऊपर आकर ये या तो पानी में तैरते रहते हैं या किसी पत्थर या घासफूस के तने पर चढ़ जाते हैं। इस समय इनके मुंह की बनावट काटनेवाले कीड़ों की तरह होती है जिसके सहारे ये सड़ी-गली घासपात या पानी या कीचड़ में के बहुत छोटे-छोटे कीड़े खाते हैं। इस अवस्था में पानी के भीतर साँस लेने के लिए इनके पेट पर गलफड़ भी बन जाते हैं।

इस अवस्था में काफी समय विताने के वाद एक दिन उनकी झिल्ली फट जाती है और झिल्ली के भीतर से सुन्दर पंखवाली पाँखी निकल पड़ती है। पाँखी को अपनी इस असली सूरत में आने में लगभग तीन वर्ष लग जाते हैं और इन तीन वर्षो के वाद वह अपना छोटा-सा जीवन विताने के लिए हवा में उड़ पाती है। उड़ते समय वह कुछ आगे वढ़कर उड़ती है और ऐसा जान पड़ता है कि जैसे वह हवा में नाच रही है।

चिउरा वर्ग

(ORDER ODONATA)

इस वर्ग में प्रसिद्ध चिउरा या टीडियों को एकत्र किया गया है जो हवा में अपने अगले पंखों को फैलाये हुए हवाई जहाज की तरह उड़ा करते हैं। ये ज्यादातर पानी के ऊपर दिखाई पड़ते हैं, जहाँ ये थोड़ी-थोड़ी देर तक किसी पौधे आदि के पास रुक कर आगे वढ़ जाते हैं।

चिउरा की करीव ढाई हजार जातियाँ सारे संसार में फैली हुई हैं लेकिन इनकी अधिक संख्या गरम देशों में ही देखी जा सकती है। ये अपने सुडौल शरीर, रंगीन पर तथा कुशल उड़ान से वरवस हमारी निगाह अपनी ओर खींच लेते हैं। इनका सिर वक्ष से अलग रहता है और आँखें संयुक्त और वड़ी होती हैं। इनका मुख-छिद्र नीचे की ओर रहता है, जिसमें वहुत मजवूत जवड़े रहते हैं और मुँह के आगे दो छोटे स्पर्शसूत्र रहते हैं। इनके पैर इनके चलने-फिरने में तो सहायक नहीं होते लेकिन कीड़े-मकोड़ों को पकड़ने में इन्हें उनसे वहुत मदद मिलती है। वड़े कीड़ों को ये अपनी टाँगों से पकड़े रहते हैं और उड़ते-उड़ते ही उन्हें चट कर डालते हैं। इनका रूपान्तरण पूर्ण होता है और ये पूर्ण रूप से चिउरा वनकर ही खोल से निकलते हैं। इनके खाली खोल अक्सर पानी के किनारे के पेड़ों, चट्टानों तथा हौज की दीवारों पर चिपके मिलते हैं।

चिउरा मांसाहारी जीव है जो कीड़े-मकोड़ों के अलावा अन्य कीड़े-मकोड़ों के शिशुकीटों को वड़े स्वाद से खाता है।

यहाँ इनमें से एक का वर्णन दिया जा रहा है।

चिउरा

(DRAGON FLY)

चिउरा को कहीं कहीं जोलाहा भी कहते हैं और इसका टीडी नाम भी कम प्रसिद्ध नहीं है। पानी की सतह के ऊपर अपने चारों परों को तानकर इन्हें जिसने एक बार भी उड़ते देखा है वह इन्हें कभी भुला नहीं सकता। ये उड़ते-उड़ते एक ही जगह पर इस तरह रुक जाते हैं जैसे कौडिल्ला पक्षी मछलियों की ताक में पानी के ऊपर रुका रहता है।

चिउरा

चिउरा का सिर तो बड़ा होता है, लेकिन उसके धड़ के बाद का उदर का हिस्सा लंबी नली के आकार का पतला ही रहता है। इन्हें या तो हम उड़ते ही देखते हैं या किसी डाली पर बैठे हुए। जमीन पर ये नहीं बैठते क्योंकि बैठने पर इनके पर इनकी उड़ान के पास की तरफ फैले ही रहते हैं जिससे इन्हें एकाएक हवा में उड़ने में दिक्कत पड़ती है।

चिउरा बहुत फुर्तीले होते हैं और वे इस फुर्ती से इधर-उधर उड़ते हैं कि देखकर आश्चर्य होता है। उड़ते समय ये अपने पैरों को आगे बढ़ा कर सिर के नीचे कर लेते हैं और इन्हीं से उड़ते हुए शिकार को पकड़ लेते हैं। इनका मुँह नीचे की ओर रहता है जिसकी बनावट काटनेवाले कीड़ों के मुख जैसी होती है। चिउरा की आँखें बड़ी और जबड़े कड़े होते हैं। इनका धड़ मोटा और पेट पतला तथा कोमल होता है। इनके पर लम्बे, पारदर्शी और जालीदार होते हैं। टाँगें पतली और काँटेदार रहती हैं।

चिउरा की मादा, समय आने पर, अक्सर पानी में किसी घास-फूस के ऊपर की पत्ती के भीतर नली में छेद बनाकर समूह में अंडे देती है। ये अंडे एक प्रकार के चिपचिपे पदार्थ से आपस में जुड़े रहते हैं। अंडे कुछ दिनों बाद फूटते हैं और उनमें से छोटे छोटे ढिबुए निकलते हैं जो छोटे-मोटे कीड़े-मकोड़ों को बड़े मजे से खाते हैं। इन ढिब-

कीटों का सांस लेने का ढंग विभिन्न होता है। इनमें से कुछ के दुम के निकट सांस लेने के गलफड़ रहते हैं, तो कुछ के गलफड़ अंतड़ियों के पिछले भाग के ऊपर होते हैं। ये इन्हींसे पानी को भीतर खींचकर उसमें की प्राणवायु को सोख लेते हैं।

ये शिशुकीट बहुत फुर्तीले होते हैं और बड़ी तेजी से पानी के ऊपर नीचे आते-जाते रहते हैं। इनका निचला ओंठ सूंड़ जैसा होता है जिसको ये मुंह के ऊपर लपेट सकते हैं। इस सूंड़ के सिरे पर कांटे रहते हैं जिनकी मदद से ये अपने शिकार को पकड़कर अपना पेट भरते हैं।

इन शिशुकीटों का जीवन १०–१२ महीने का ही होता है। ये इसी बीच कई बार अपनी खोल बदलते हैं। अन्त में जब इनके पर निकलने का समय आता है तो ये पानी की सतह पर आ जाते हैं। इस समय इनकी धुंधली आंखें बहुत तेज हो उठती हैं और इनकी खाल सूखने लगती है। खाल के सूख जाने पर उसमें धड़ के पास दराज फूट जाती है, जिसमें होकर चिउरा वाहर निकल आता है।

चिउरा अपने कागज जैसे कड़े खोल से वाहर निकलते समय पहले अपना सिर वाहर निकालता है और फिर टांगें। सिर की मदद से ऐंठकर वह इस होशियारी से अपने शरीर को इस कालकोठरी से वाहर निकालता है कि देखकर आश्चर्य होता है। पेट के अंतिम हिस्से को वह अपनी टांगें चलाकर अलग कर देता है और फिर हवा में उड़ जाता है। इसके सूखे कड़े खोल पानी के पौधों के तनों या हौज की दीवारों में अक्सर चिपके मिल जाते हैं, जिन्हें देखकर कभी इसका ख्याल भी नहीं होता कि इतना वड़ा कीड़ा अभी घंटे दो घंटे पहले सिमटकर इसी छोटे खोल में छिपा था।

मत्कुण-गण वर्ग

(ORDER HEMIPTERA)

यह वर्ग अन्य वर्गों से काफी वड़ा है। इसमें सब प्रकार की झिल्लियाँ तथा खटमल एकत्र किये गये हैं जिनके मुख की जगह चूसने की एक सूँड़-सी रहती है। ये रंग-विरंगे और चपटे आकार के होते हैं और अपने शरीर का पोषण रस या रक्त चूसकर करते हैं।

इनमें से कुछ खुश्की में रहते हैं तो कुछ दरख्तों पर और कुछ ऐसे भी हैं जो पानी में ही अपना समय विता देते हैं। इनमें कुछ पंखवाले होते हैं तो कुछ के छोटे

से प्रारम्भिक पर रहते हैं और ऐसों की भी संख्या कम नहीं है जिनके शरीर पर परों का अभाव रहता है। इन कीड़ों के स्पर्शसूत्र छोटे होते हैं और आँखें बड़ी और संयुक्त रहती हैं। इनके वक्ष का पहला खंड बड़ा रहता है जिसमें इनका सिर घुसा-सा जान पड़ता है। इनका उदर चपटा और अंडाकार रहता है और पैर बहुत पतले होते हैं। इनमें से अधिकांश के शरीर से एक प्रकार की दुर्गन्ध आती है जो इनकी गंध-ग्रन्थियों से निकलती है। ये ग्रन्थियाँ इनके उदर भाग में नीचे रहती हैं।

इन जीवों का रूपान्तरण पूर्ण नहीं होता। कद में छोटे होकर भी शक्ल-सूरत में इनके शिशुकीट प्रौढ़ कीटों के अनुरूप ही रहते हैं। इनकी तीस हजार से अधिक जातियाँ सारे संसार में फैली हुई हैं।

विद्वानों ने सुविधा के लिए इस वर्ग को दो उपवर्गों में इस प्रकार विभाजित किया है—

१ खटमल उपवर्ग—Sub Order Heteroptera
२ रुइयाँ उपवर्ग—Sub Order Homoptera

खटमल उपवर्ग

(SUB ORDER HETEROPTERA)

इस उपवर्ग में सब प्रकार के जल, थल और पेड़ों पर रहनेवाले खटमलों, तथा पनविछियों आदि को एकत्र किया गया है जो हमारे पेड़-पौधों को बहुत नुकसान पहुँचाते हैं। इनकी आदत रहन-सहन तथा भोजन आदि के बारे में बताया ही जा चुका है। यहाँ इनमें से केवल चारपाइयों में रहनेवाले प्रसिद्ध खटमल तथा पनविछियों का वर्णन दिया जा रहा है।

खटमल

(BED BUG)

खटमल का कुटुम्ब बहुत बड़ा है और इसकी अनेक जातियाँ संसार में फैली हुई हैं। इनमें से कुछ खुश्की पर रहनेवाले हैं तो कुछ पानी में। कुछ ने पेड़ों पर अपना निवास बना लिया है तो कुछ ऐसे हैं जिन्होंने हमारे घरों में ही आकर डेरा डाला है।

यहाँ जिस खटमल का वर्णन दिया जा रहा है वह हमारा चिरपरिचित खटमल है जो हमारी चारपाइयों, कुर्सियों और दीवार के दराजों में रहता है। जिन लोगों को जेल जाने का मौक़ा मिला है या जो गर्मियों में पहाड़ों पर जाते हैं उन्हें खटमलों के बारे में ज्यादा बताना फिजूल है। वहाँ कई महीने के भूखे खटमल इस बुरी तरह हमारा खून चूसने के लिए पिल पड़ते हैं कि सारा शरीर चकत्तों से भर जाता है।

खटमल को देहात में खटकीरा या खटकिरवा भी कहते हैं। इनका शरीर चपटा और सुर्खीमायल कत्थई रंग का होता है। इनकी पीठ इतनी कड़ी और चिकनी होती है कि भागते समय इनको पकड़ना मुश्किल हो जाता है। इनके पर नहीं होते। इनके मुँह के अगले हिस्से में एक नोकीली सूँड़ होती है जिसे खाल में चुभाकर ये खून चूस लेते हैं।
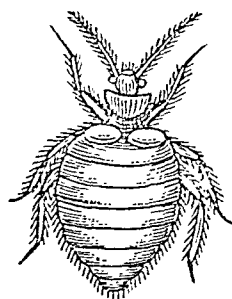
खटमल

खटमल जब काटना चाहता है तो पहले अपने मुँह से एक प्रकार का तरल पदार्थ खाल के भीतर भर देता है। इससे उस जगह बड़ी खुजलाहट और जलन-सी होने लगती है और उस स्थान पर रक्त का संचार बढ़ जाता है। इसी समय वह अपनी सूँड़ गड़ाकर रक्त पी लेता है और फौरन ही हटकर दूसरी जगह खिसक जाता है। इसके काटने पर बहुत खुजली होती है और उस स्थान पर ददोरे उभर आते हैं। इसको हाथ से मसल कर मारना कठिन होता है लेकिन किसी कड़ी चीज पर रगड़ कर मारने से इसके शरीर से एक प्रकार की बदबू निकलती है।

खटमल ज्यादातर रात में ही घूमने निकलते हैं लेकिन कभी-कभी ये दिन में भी कपड़ों पर दिखाई पड़ जाते हैं। इनमें एक खास बात यह होती है कि ये साल-साल भर तक बिना खाये पिये रह सकते हैं।

मादा खटमल दीवार की या कुर्सी, मेज और चारपाइयों की दराज़ों में काफी अण्डे देती है। ये अण्डे ८-१० दिन में फूट जाते हैं और उनमें से छोटे-छोटे बच्चे निकलते हैं जो छोटे होने पर भी शकल-सूरत में बड़ों जैसे ही होते हैं। इनका रंग जरूर हलका रहता है। लेकिन दो महीने के भीतर ही ये अपना खोल बदलकर पूरे तौर पर खटमल बन जाते हैं।

पनबिछिया

(WATER SCORPION)

पनबिछिया बिच्छू की बिरादरी का जीव नहीं है। यह तो पानी में रहनेवाला एक कीड़ा है जिसकी शक्ल सूरत और काटने की आदत से इसको यह नाम दे दिया गया है।
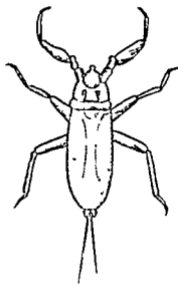
पनबिछिया

पनबिछिया उथले पानी में ही रहना ज्यादा पसन्द करती है, जहाँ नहाते समय इसके काटने से इसकी मौजूदगी का पता बड़ी आसानी से चल जाता है। इसका शरीर करीब १ इंच लम्बा और चपटा होता है जिसकी चौड़ाई ऊपर से नीचे तक एक जैसी रहती है। इसका रंग [illegible] या धुमैला होता है। इसकी अगली टाँगों में नाखून होते हैं जिनसे यह शिकार पकड़ती है। इसकी पीठ पर बड़े पंख रहते हैं जो बन्द होने पर एक खोल की तरह इसके सारे शरीर को ढँक लेते हैं। इसके शरीर के पीछे दो नलियाँ निकली रहती हैं जो देखने में दुम-सी जान पड़ती हैं। पनबिछिया का मुख्य भोजन पानी में रहनेवाले छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़े हैं।

इसकी मादा पानी में पड़ी हुई टहनियों या घासपात पर बहुत से अण्डे देती है जो समय पाकर फूटते हैं और जिनमें से बच्चे निकलते ही पानी में चले जाते हैं।

रइयाँ उपवर्ग

(SUB ORDER HOMOPTERA)

इस उपवर्ग में रइयाँ (Cicada) माहूँ (Aphids) आदि बहुत से कीट हैं जिनसे हमारी फसल को बहुत नुक्सान पहुँचता है। इनमें और खटमलों में मुख्य भेद यह रहता है कि इनका सिर आगे की ओर इतना झुका रहता है कि वह अगले

पैरों के सिरे को छूता रहता है। ये सब जीव भी रस चूसकर अपना पेट भरते हैं। माहूँ हरे, काले, लाल, पीले तथा नारंगी रंग के होते हैं। ये पौधों की पत्तियों तथा मुलायम तनों पर काफी बड़ी संख्या में चिपके रहते हैं और उनका रस चूसा करते हैं। इनकी मादा एक दिन में असंख्य अण्डे देती है जिनमें से बच्चे निकलते ही रस चूसने का काम शुरू कर देते हैं। ये शिशुकीट तीन-चार दिन में ही प्रौढ़ होकर संतान-वृद्धि करने लगते हैं।

यहाँ इनमें से प्रसिद्ध रइयाँ का वर्णन दिया जा रहा है।

रइयाँ

(CICADA)

बरसात में रइयाँ की तीखी आवाज़ को ऐसा कौन है जिसने न सुना हो? झींगुर के साथ ही साथ इनकी कड़ी आवाज़ से जी ऊब जाता है। ये हमारे यहाँ के सबसे तेज़ आवाज़ करनेवाले कीड़े हैं जो नम और गरम प्रदेशों में ज्यादा पाये जाते हैं।

रइयाँ को अपने रहने के लिए मैदान से ज्यादा पहाड़ और जंगल पसन्द आते हैं क्योंकि इन्हें पेड़ों से ही अपनी खूराक का ज्यादा हिस्सा मिलता है। ये उनकी छाल का रस पीते हैं और अपना ज्यादा समय उन्हीं पर रहकर काट देते हैं।

रइयाँ

रइयाँ बहुत सुडौल कीड़ा है जिसका सिर छोटा और चौड़ा होता है। इसकी बड़ी आँखें ऊपर न होकर दोनों बगल दबी रहती हैं। इसके धड़ का अगला हिस्सा छोटा रहता है और बीच का चौड़ा हिस्सा पीछे की ओर फैलकर ढाल की शकल का हो जाता है। इसके अगले पर पिछले परों से बड़े होते हैं जो चमकीले और पारदर्शी

रहते हैं। रइयाँ के बैठे रहने पर ये उसकी पीठ को ढँके रहते हैं। इसका पेट बहुत छोटा होता है और इसके मुख की बनावट चोंच-जैसी होती है।

रइयाँ की तेज़ आवाज के बारे मे कुछ लिखे बिना इसका वर्णन अधूरा ही रह जायगा। ऐसी तेज आवाज करने के लिए इसके पेट के नीचे दो कड़े शल्क से रहते हैं जो इसके आवाज करनेवाले यत्र को ढँके रहते हैं। इनको हटा देने पर हमें एक सिगार सा नजर आयेगा जो दो हिस्सों में बँटा रहता है। इसका भीतरी हिस्सा, चौरस और बेलरदीव होता है और इसकी दीवारों पर एक कड़ी और चमकीली झिल्ली चढ़ी रहती है। बाहरी हिस्सा पतला होता है जिसमे बाहर की ओर एक मुँह-सा खुला रहता है। इसकी दीवार के नीचे एक झिल्ली छिपी रहती है, जिससे यह तेज आवाज निकालता है। रइयाँ जब अपने पेट के पास की मजबूत मांसपेशियों को हरकत देता है तो भीतर की झिल्ली से यह तेज ध्वनि उत्पन्न होती है। प्रकृति ने रइयाँ को ही यह यत्र दिया है इसी से मादाएँ इस प्रकार की तेज़ आवाज करने से वंचित रह जाती हैं।

सपक्ष उपश्रेणी

(SUB CLASS ENDOPTERYGOTA)

सपक्ष उपश्रेणी, जैसा उसके नाम से स्पष्ट है, उन कीट-पतिंगो की उपश्रेणी है जो अपने सुन्दर तथा उपयोगी परो के लिए प्रसिद्ध हैं। इन कीट-पतिंगो को वैसे तो विद्वानो ने कई वर्गों में विभाजित किया है, लेकिन यहा निम्न लिखित पाँच वर्गों के ही जीव लिये जा रहे हैं जिनसे हम सब बहुत कुछ परिचित हैं —

१ सयुक्तपक्ष वर्ग—Order Neuroptera

२ शल्किपक्ष वर्ग—Order Lepidoptera

३ कवचपक्ष वर्ग—Order Coleoptera

४ कलापक्ष वर्ग—Order Hymenoptera

५ द्विपक्ष वर्ग—Order Diptera

सयुक्तपक्ष वर्ग में सब प्रकार के चीटीखोर रखे गये हैं।

शल्किपक्ष वर्ग मे तितलियों और पतिंगो का एकत्र किया गया है।

कंचनपक्ष वर्ग में सब प्रकार के गुबरीले इकट्ठे किये गये हैं।

कलापक्ष वर्ग में चींटे, वर्रे और मधुमक्खियों आदि को जमा किया गया है। द्विपक्ष वर्ग में हमारी चिरपरिचित मक्खियाँ और मच्छर आ जाते हैं। आगे इन्हीं सब का अलग-अलग वर्णन दिया जा रहा है।

संयुक्तपक्ष वर्ग

(ORDER NEUROPTERA)

इस वर्ग के कीटों के दो जोड़ सुन्दर पंख होते हैं जो करीव-करीव वरावर ही रहते हैं। इनका रूपान्तरण (Metamorphosis) पूर्ण होता है लेकिन शिशुकीट प्रौढ़ कीट से शकल-सूरत में एकदम भिन्न रहता है। इन कीटों के मुखभाग काटने के लिए वहुत उपयुक्त होते हैं और अपने मजवूत जवड़ों से इन्हें छोटे कीड़े-मकोड़ों के पकड़ने में दिक्कत नहीं होती।

यहाँ इनमें से अपने देश के प्रसिद्ध चींटीचोर (Ant Lion) नाम के कीड़े का वर्णन दिया जा रहा है।

चींटीचोर

(ANT LION)

चींटीचोर को यह नाम उसके चींटी-चींटों तथा अन्य छोटे कीड़ों के शिकार करने के कारण मिला है और यह नाम है भी वहुत सार्थक।

चींटीचोर वास्तव में उड़नेवाला परदार कीड़ा है, जो अक्सर रात के समय इधर-उधर उड़ता फिरता है लेकिन हम लोग इसकी उस अवस्था को न जानकर इसे चींटीचोर कहते हैं। इसीलिए यहाँ इसके दोनों स्वरूपों का वर्णन करना जरूरी हो गया है।

चींटीचोर के नर-मादा एक-जैसे होते हैं। इसके दो जोड़ पर होते हैं जो नाप में वरावर रहते हैं। ये जालीदार होते हैं और उन पर पत्तियों-जैसी नसें दिखाई

पड़ती हैं। इसका रंग भूरा और चकत्तेदार रहता है जिन पर छोटी बिंदियाँ प
रहती हैं। इसका सिर और आँखें काली होती हैं लेकिन मूँछें छोटी और म
रहती हैं। इसके शरीर का रंग भूरा होता है जिस पर रोयें से रहते हैं।

चींटीचोर

चींटीचोर का धड़ बहुत मजबूत होता है और मुँह क
काफी धारदार है। इसका धड़ लम्बा पतला और कोम
होता है लेकिन शरीर को ढकने हुए टाँगें छोटी हो रहत
हैं। इसकी टाँगों पर काँटे से रहते हैं जिनसे यह पर क
आसानी से पकड़ सकता है। इसके बदन से एक प्रकार क
बू निकलती रहती है।

मादा चींटीचोर समय पाकर बालू या मिट्टी में अण्डे देत
है। ये अण्डे कुछ दिनों बाद फूटते हैं और उनमें से चपटी
बनावट का शिशुकीट (Larva) बाहर निकलता है। यही हमारा परिचित चींटी
चोर है। इसका सिर बड़ा और चपटा होता है जो धड़ से इस प्रकार जुटा रहता
है कि यह उसे सुविधानुसार आगे-पीछे कर सकता है। इसके सिर से आगे की ओर
दो मजबूत जबड़े निकले रहते हैं जो लम्बे और टेढ़े होते हैं। ये ही चींटीचोर के
शस्त्र हैं जिनके बीच यह अपने शिकार को दबा कर उनका खून चूस लेता है। खून
चूसने के लिए इसके मुँह में एक प्रकार की नली रहती है जिसके जरिए यह
अपना पेट भरता है।

चींटीचोर इस अवस्था में बालू में गढ़ा बनाकर रहता है और जहाँ इसका गढ़े
बनाना होता है वहाँ यह पहले जमीन पर गोलाकार निशान बनाता है फिर उसी
निशान पर यह पीछे की ओर चलता हुआ निशान को गहरा करता जाता है और
अपने चौड़े सिर से मिट्टी बाहर की ओर फेंकता जाता है। इस पर बराबर घूम
घूमकर यह गढ़े के भीतर की सारी मिट्टी बाहर फेंक देता है और तब उसका यह
घर तेल भरने की कुप्पी की तरह बनकर तैयार हो जाता है। इस गढ़े की गहराई
प्रायः दो इंच और इसका व्यास करीब तीन इंच होता है।

यह गढ़े के बीचोबीच अपने को जमीन में गाड़कर चोर की भाँति शिकार
की तलाश में बैठा रहता है। उस समय इसकी सिर्फ मूछें ही जो उसकी स्पर्शेन्द्रियाँ
हैं मिट्टी से बाहर निकली रहती हैं। गढ़े में जैसे ही कोई चींटी या दूसरा छोटा

कीड़ा गिरता है यह अपने मजबूत जबड़े से उसे पकड़कर उसका खून यों चूस लेता है कि उसकी सूखी ठठरी भर रह जाती है। इस ठठरी को गढ़े के बाहर फेंककर, फिर यह अपनी जगह पर उसी मुस्तैदी से जा छिपता है। जब कभी कीड़े उसके वार से बचकर गढ़े की दीवार पर चढ़ने लगते हैं तो यह उन पर बालू फेंककर उन्हें आगे नहीं बढ़ने देता और इस प्रकार बालू से अन्धा करके उन्हें फौरन ही पकड़ लेता है। बड़े कीड़े जरूर उसकी पकड़ म नहीं आते लेकिन इसे ज्यादा तकलीफ नहीं होती क्योंकि एक चींटी इसके लिए काफी होती है।

कुछ दिनों बाद इसकी इस दशा में फिर परिवर्तन होता है और यह अपने चारों ओर रेशम के तार का खोल बनाता है और कुछ दिनों के लिए उसी के भीतर बन्द हो जाता है। कुछ दिनों बाद फिर परिवर्तन होता है और यह अपने रेशमी खोल को फाड़कर हवा में उड़ जाता है। यही इसकी अन्तिम अवस्था है जिसको देख कभी अनुमान नहीं होता कि कभी यह बालू में घुसा हुआ चींटी चुराता रहा होगा।

शल्किपक्ष वर्ग

(ORDER LEPIDOPTERA)

इस वर्ग में सब प्रकार की तितलियाँ और पतिंग आते हैं जो अपनी सुन्दरता के लिए बहुत प्रसिद्ध हैं। इनके दो जोड़ पंख होते हैं जिन पर रंगीन धूल से तरह-तरह की डिजाइनें बनी रहती हैं। इनके मुख भाग के आगे एक लंबी सूँड़-सी रहती है जिससे ये फूलों का रस चूसते हैं। इस सूँड़ की बनावट बहुत कुछ घड़ी की कमानी की तरह होती है जो लिपटकर इनके मुख-भाग के नीचे छिपी रहती है।

तितलियों को पूर्णावस्था तक आने के लिए कई रूपान्तर करने होते हैं। वे डिम्बावस्था (Egg), शिशुकीटावस्था (Larval Stage) और मूक कीटावस्था (Pupa) को पार करने के बाद ही अपने वास्तविक स्वरूप को पहुँचती हैं।

तितलियों और पतिंगों में थोड़ा ही भेद रहता है और कुछ लोग इन दोनों को तितली ही समझते हैं, इसलिए यह आवश्यक है कि हम इन दोनों के भेद को जान लें, क्योंकि तितलियों और पतिंगों में अक्सर हमको धोखा हो जाता है। पतिंगे तितलियों से शकल-सूरत में ही नहीं बल्कि और भी कई बातों में मिलते हैं लेकिन वे वास्तव में उनसे भिन्न प्राणी हैं। इसे हम निम्नांकित बातों से आसानी से

जान सकते हैं—१ तितलियाँ जहाँ दिन में उड़ती हैं, पतिंगे प्राय रात में निकलते हैं। २ तितलियाँ बैठने पर अक्सर अपने दोनों परों से ऊपरी हिस्से का एक दूसरे से चिपकाकर ऊपर की ओर उठाये रहती हैं, लेकिन पतिंगे बैठने पर अपने पर फैलाये रहते हैं। ३ तितलियों की मूँछें, जो वास्तव में उनकी स्पर्शेन्द्रियाँ हैं, पतली होती हैं और उनके सिरे पर अक्सर घुण्डी-सी रहती है लेकिन पतिंगों की मूँछें नीचे जड़ के पास मोटी होती हैं जो छोर तक पहुँचते-पहुँचते पतली हो जाती हैं, जैसे नई बनी हुई पेन्सिल का सिरा। लेकिन इस पहचान को हम एक नियम नहीं बना सकते क्योंकि इसका अक्सर दोनों में अपवाद भी देखा जा सकता है।

तितलियाँ

(BUTTERFLIES)

तितलियों को किसी कवि ने उड़ते हुए फूल कहा है लेकिन सच पूछा जाय तो तितलियाँ इस उपमा से कहीं आगे हैं। रंगों के लिहाज से बाज-बाज तितलियों का फूल पता ही नहीं सकते। जैसा सुन्दर चित्रण और रंगों का जैसा विभाजन कुछ तितलियों के परों में दिखाई पड़ता है वैसा किसी जीवधारी में नहीं मिल सकता।

तितली

हमारे देश की तितलियाँ ९ श्रेणियों में विभक्त हैं। पहली श्रेणी में वे बड़ी तितलियाँ आती हैं जिनमें से अधिकांश के पिछले पर के नीचे का कुछ हिस्सा बाहर की ओर बढ़ा रहता है। इनके पैर बड़े होते हैं, जिनके सहारे ये चल लेती हैं। इनमें से कुछ का शरीर लाल होता है और कुछ का काला। इनके पैर सुन्दर और रंगीन रहते हैं जिसमें पीला, काला सफेद, लाल और हरा रंग प्रमुख रहता है। अँगरेजी में इस श्रेणी की तितलियाँ (Papilionids) अबाबीलपुछी तितलियाँ (Swallow Tails) कहलाती हैं। इनमें कैसर-हिन्द (Kaiser Hind) नाम की तितली बहुत प्रसिद्ध है जिसके परों पर पीले और हरे रंग की बहुत सुन्दर मिलावट रहती है।

तितलियाँ (पृ० ११२)

दूसरी श्रेणी की तितलियाँ प्रायः सफेद रंग की होती हैं। इन्हें धौरी तितलियाँ (Picrids या Whites) कहते हैं। लेकिन इस श्रेणी में पीली तितलियाँ भी काफी हैं और कुछ ऐसी भी हैं जिन्हें लाल या नीला रंग मिला है। इनमें धानी (Grass yellow) और केसरिया (Orange Tips) प्रसिद्ध हैं। धानी, पीले रंग की तितली है जिसके पर का ऊपरी किनारा काले रंग का रहता है। केसरिया, वैसे तो सफेद तितली है, पर उसके अगले पर का ऊपरी हिस्सा केसरिया या नारंगी रंग का रहता है।

तीसरी श्रेणी उन तितलियों की है जिन्हें चीतल तितलियाँ (Danaids) कहा जाता है। इनके पैर छोटे होते हैं। ये पहली दोनों श्रेणियों की तितलियों की तरह खूब अच्छी तरह उड़ तो लेती हैं लेकिन उनकी तरह पैरों के बल चल नहीं पातीं। ये बड़ी तितलियाँ हैं जिनके पर चितकबरे रहते हैं। परों की काली जमीन पर कभी सफेद और कभी सफेद जमीन पर काली धारियाँ या चित्तियाँ रहती हैं। इनमें शेर तितली (Tigers) और कौआ तितली (Crows) प्रसिद्ध हैं।

चौथी श्रेणी की तितलियाँ छोटे पैरोंवाली होती हैं जो टाँगों के बल चलने में असमर्थ रहती हैं। यही नहीं, आगे आनेवाली और तीन श्रेणियों की तितलियाँ भी छोटे पैरों की होती हैं। ये भूरी तितलियाँ (Browns या Satyrids) कहलाती हैं। इनमें से अधिकांश के पंखों का रंग धुमैला भूरा होता है और उन पर प्रायः आँख जैसा एक गोल निशान बना रहता है। कद के लिहाज से ये बड़ी और छोटी दोनों तरह की होती हैं जो साये में ही रहना पसन्द करती हैं। इनमें चाँद तितली (Ring) आदि कुछ बहुत प्रसिद्ध हैं।

पाँचवीं श्रेणी की तितलियाँ बड़ी और रंगीन तो होती हैं पर वे अक्सर घने जंगलों में ही रहना पसन्द करती हैं। ये जंगली तितलियाँ (Amathusuds) कहलाती हैं।

छठीं श्रेणी की तितलियाँ रंग-रूप में बहुत सुन्दर और भड़कीली होती हैं और उनको परी तितलियाँ (Nymphalids) कहते हैं। इन्हें धूप बहुत पसन्द है। इसी कारण इन्हें हम प्रायः बाग-बगीचों में देख सकते हैं। इनमें भिन्न-भिन्न रंगों की तितलियाँ हैं जिनमें राजा (Raja), नवाब (Nawab) आदि प्रसिद्ध हैं।

सातवीं श्रेणी की तितलियाँ छठी श्रेणी की तितलियों से वैसे बहुत कुछ मिलती-जुलती होती हैं लेकिन इनका कद उनसे छोटा होता है। इनकी मादाएँ ही पैरों के बल चल-फिर लेती हैं। ये छोटी परियाँ (Erycinids) कहलाती हैं।

आठवीं श्रेणी की तितलियाँ नीलमी तितलियाँ (Blues या Lycaenids) कहलाती हैं। ये छोटे कद की तितलियाँ हैं। वैसे इनमें प्रायः सभी रंगों की तितलियाँ पायी जाती हैं लेकिन इनके रंग में नीलेपन का ही प्राधान्य रहता है।

नवीं और अन्तिम श्रेणी की तितलियाँ ऊपर की सभी श्रेणियों की तितलियों से रंगरूप में ही नहीं वरन् शक्ल-सूरत में भी थोड़ी बहुत जुदा होती हैं। ये फुदकी तितलियाँ (Hesperiids या Skippers) कहलाती हैं। देखने में ये तितलियाँ छोटे पतिंग जैसी जान पड़ती हैं। इनका रंग बहुत धुमैला होता है और इनकी उड़ान अन्य तितलियों की तरह अलसाई-सी न होकर सीधी और तेज होती है।

श्रेणी-विभाजन के रूखे वर्णन के बाद तितलियों के रूपान्तर (Transformation) का रोचक वर्णन आता है। जैसा ऊपर बताया गया है तितलियों को अपने वास्तविक स्वरूप तक आने में तीन परिवर्तनों को पार करना पड़ता है। पहले इनकी डिम्बावस्था रहती है फिर अण्डों के फूटने पर उसमें से शिशुकीट (Caterpiller) निकलता है जो अपना सारा समय खाने में ही बिता देता है। खूब खाकर बढ़ जाने पर यह शिशुकीट मूककीट बन जाता है और फिर वह एक कड़ी खोल के भीतर कैद होकर सुप्तावस्था में कुछ दिनों तक पड़ा रहता है। समय पाकर जब उसका यह खोल टूटता है तो उसमें से हमारी तितली अपने पूर्ण रूप में बाहर निकल आती है। कुछ दिनों बाद यह तितली अण्डे देती है जिनमें शिशुकीट तथा मूककीट के परिवर्तनों के बाद तितलियाँ बन जाती हैं और इसी प्रकार तितलियों का जीवन चक्र चलता रहता है।

शिशुकीट का लम्बा शरीर १४ वृत्त खण्डों में बँटा रहता है जिनमें से पहला खण्ड सिर और अन्तिम खण्ड मलद्वार का रहता है। दूसरे तीसरे और चौथे में से इनकी ६ टाँगें निकली रहती हैं और सातवें आठवें नवें और दसवें खण्डों में से पैर की शक्ल के कुछ रेशे से निकले रहते हैं जो वास्तव में इसकी चूसने की इन्द्रियाँ हैं। अन्तिम खण्ड की शक्ल बहुत कुछ चिमटी-सी होती है जिसमें शिशुकीट किसी

वस्तु के पकड़ने का काम लेता है। इसके शरीर में दोनों ओर दूसरे खण्ड में और पाँचवें तथा बारहवें खंडों में थोड़ी जगह सींग-सी चिकनी होती है जहाँ से शिशुकीट साँस लेता है। उसके सिर के दोनों ओर ६-६ आँखों जैसे निशान रहते हैं जो प्रारंभिक अवस्था की आँखें कही जा सकती हैं। शिशुकीट के थूथन के पास दो मूँछें-सी रहती हैं जो उसकी स्पर्शेन्द्रियाँ हैं। उसके मुंह के भीतर कड़े जबड़े रहते हैं जिन्हें वह ऊपर नीचे न चलाकर आड़ा-आड़ा चलाता है। निचले जबड़े से कुछ ऊपर एक छोटा छिद्र रहता है जिसमें से शिशुकीट रेशम के तार निकालता है। दो एक को छोड़कर प्रायः सभी तितलियों के शिशुकीट शाकाहारी होते हैं और कुछ तो ऐसे होते हैं जिन्हें मदार के पत्ते ही सबसे अधिक पसन्द हैं। इस अवस्था में शिशुकीट जैसे-जैसे बढ़ता है, वैसे-वैसे वह अपनी खाल को पाँच बार केंचुल की तरह निकाल फेंकता है। प्रत्येक परिवर्तन से पहले वह कुछ समय तक पत्तों पर अपने बिने हुए रेशमी बिछौने पर चुपचाप स्थिर होकर पड़ा रहता है। फिर जब उसकी केंचुल बीच से फट जाती है तो वह उसमें से बाहर निकल आता है और पुरानी फटी केंचुल खा जाता है। हर मरतबा इस तरह केंचुल बदलने के बाद उसके रंग में कुछ-न-कुछ नवीनता आ जाती है।

शिशुकीट की इस अवस्था का भी एक दिन अन्त हो जाता है और तब वह खूब खा-पीकर बढ़ जाने के बाद किसी निरापद स्थान की खोज में निकलता है जहाँ वह मूक कीटावस्था को प्राप्त हो सके। ऐसा स्थान पाने पर वह अपने मुँह से रेशम के तार निकालने लगता है। इस प्रकार रेशम के तार उगलते-उगलते वह अपने सारे शरीर को एक मोटी रेशमी खोल से ढँक लेता है। कुछ समय तक उसकी यही अवस्था रहती है जिसके बाद एक दिन यह खोल भी फट जाती है और उसके भीतर से मोटी खाल में कैद मूककीट निकल आता है।

मूककीट शिशुकीट के बराबर नहीं रहता बल्कि वह सिकुड़ कर छोटा हो जाता है और उसके ऊपर का खोल काफी कड़ा और चिकना हो जाता है। उसका रंग प्रायः भूरा रहता है। पर वैसे वे हरे और सुनहले रंग के भी होते हैं। यह अवस्था भी थोड़े दिनों तक रहती है। इसके बाद यह कड़ा खोल भी फट जाता है और उसमें से हमारी सुंदर तितली बाहर निकल आती है, जो थोड़ी देर तक अपने पंख सुखाने के बाद अपना छोटा जीवन बिताने के लिए हवा में उड़ जाती है।

तितलियों के जीवन को छोटा इसलिए कहना पड़ा कि उनके बारे में अभी कु निश्चयपूर्वक नहीं जाना जा सका है। कोई इनका जीवन दो चार दिन का औ कोई दो चार महीने का बताता है लेकिन इतना तो प्राय सभी विद्वान मानते हैं कि वे एक साल से ज्यादा नहीं जीती।

तितलियों के शरीर को हम तीन मुख्य हिस्सों में बांट सकते हैं —१ सिर का हिस्सा जिसमें आँखें, रस चूसने की सूंड और मूँछें या स्पर्शेन्द्रियाँ शामिल हैं। २ वक्ष या बीच का हिस्सा जिसमे तितलियों के पैर और पंख की जड़ें जुटी रहती हैं और ३ उदर जिसमें तितलियों के पेट और मलद्वार रहता है। तितलियों की आँखें बड़ी होती हैं। वे स्थिर रहती हैं और उन्हें हम छोटे छोटे अनेक नेत्रों का समूह कह सकते है, जैसे किसी अँगूठी में बहुत छोटे-छोटे नग जड़े हों। उनकी मूँछें या स्पर्शेन्द्रियाँ लम्बी और सीधी होती हैं जिनके सिरे पर छोटी-छोटी घुण्डियाँ रहती हैं। ये लम्बाई में चौथाई इंच से आध इंच तक की होती हैं और तितलियों के माथे पर से निकलकर आगे की ओर बढ़ी रहती हैं।

तितलियों की सूंड, जिससे ये फूलों में से रस सीचती हैं, बहुत लम्बी होती है। यह गोलाई में लिपटकर आगे की ओर बढ़ी रहती है और देखने में घड़ी की बालकमानी सी लगती है। इसका इस्तेमाल और जीवों की जबान की तरह नहीं होता क्योंकि तितलियाँ दरअसल कुछ खाती नहीं। वे शिशुअवस्था में जो कुछ खाकर अपने शरीर में जमा किये रहती हैं उसी को कायम रखने के लिए वे इस स्प्रिंग-जैसी जबान या सूंड से फूलों का रस चूसा करती हैं।

तितलियों का वक्ष तीन हिस्सों में बाँटा जा सकता है। पहले हिस्से में दोनों अगले पैर और दूसरे में बीच के दोनों पैर निकलते हैं और इसी में अगले पंखों की जड़ जुटी रहती है। तीसरे या पिछले हिस्से में से पिछले पैर निकलते हैं और उसी में पिछले पंखों की जड़ें जुटी रहती हैं। तितलियों के पैरों के नीचे का सिरा ब्रश जैसा रहता है जिससे ये सफाई का काम लेती हैं।

तितलियों के रंगीन पर जिन्होंने इनको इतना मशहूर कर रखा है दोनों ओर बहुत महीन झिल्लियों से मढ़े रहते हैं और उनके बीच में बारीक नसों का [illegible] रहता है। तितलियों की दोनों बगल दो पर रहते हैं, जिनमें

बनावट भिन्न-भिन्न तरह की होती है। जब तितलियाँ अपने छाती के पास के हिस्से को जल्द-जल्द सिकोड़ती और फैलाती हैं, ये पर हरकत करते हैं और वे उड़ने लगती हैं। उनके परों पर बहुत बारीक धूलकण जमे रहते हैं जो अलग-अलग रंग के होते हैं। इन्हीं धूलकणों के एकत्र होने से तितलियों के परों का रंग और उनकी तरह-तरह की किस्में हमें देखने को मिलती हैं। उनके पंख को छूने पर ये धूल के कण हमारे हाथ में लग जाते हैं और वह जगह खाली हो जाती है।

तितलियों की आँख की बनावट सैकड़ों हिस्सों में बँटी रहने पर भी उतनी मुकम्मिल नहीं होती जितनी हम लोगों की। वे केवल दो तीन इंच तक की चीजें साफ तौर पर देख सकती हैं लेकिन चूँकि उनकी आँख अनेक हिस्सों में विभक्त रहती है इससे उन्हें एक ही वस्तु उतनी ही संख्या में दिखाई पड़ती है जितनी संख्या में आँख बँटी रहती है। उन्हें एक गज की चीज तो एकदम धुँधली और लिपी-पुती-सी जान पड़ती है।

तितलियाँ किसी प्रकार की आवाज नहीं कर सकतीं और न उनके सुनने की इन्द्रियाँ ही होती हैं लेकिन प्रकृति ने उन्हें घ्राणेन्द्रिय से हीन नहीं बनाया क्योंकि कीड़ों को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए जब प्रकृति ने फूलों को सुगन्धि दी है तो इन तितलियों को उनके सूँघने की इन्द्रिय भला क्यों न मिलती। इसके अलावा कुछ नर तितलियाँ मादा को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए भी एक प्रकार की खुशबू छोड़ती हैं, इससे तितलियों के घ्राणेन्द्रिय का होना जरूरी हो जाता है।

स्वाद के लिए भी, ऐसा अनुमान किया जाता है कि, तितलियों की मूँछ के पास का हिस्सा वास्तव में उनके स्वाद लेने की इन्द्रियाँ हैं और स्पर्श अथवा अनुभव के लिए उनके शरीर में स्नायु का जाल फैला हुआ है। इतना होते हुए भी उनको प्रकृति ने मूँछों की शकल की जो स्पर्शेन्द्रियाँ दी हैं वे उनके बहुत काम की हैं। घने जंगलों में इन्हीं मूँछों के सहारे वे बिना किसी पत्ती को छुए बड़ी तेजी से उड़ लेती हैं लेकिन इन मूँछों के कट जाने पर उनका उड़ना कठिन हो जाता है और उनकी वही हालत हो जाती है जो किसी आदमी की अँधेरे में हो जाती है।

तितलियाँ मौसमी चिड़ियों की तरह स्थान-परिवर्तन के लिए दूर का सफर तो नहीं करतीं पर कुछ ऐसी जरूर हैं जो हमारे देश ही में थोड़ा बहुत स्थान-परिवर्तन

कर लेती हैं। शत्रुओं से अपनी रक्षा का प्रश्न सभी जीवधारियों के लिए ब
का है। सारे विश्व में बलवानों और चालाकों का निर्बलों और सीधे-साद
निरन्तर एक युद्ध चलता रहता है क्योंकि इस प्रकार का संहार और विना
का सन्तुलन कायम रखने के लिए बहुत जरूरी है। और चूँकि तितलियाँ
और सीधों की श्रेणी में आती हैं, इसमें उन्होंने शत्रुओं से बचने के लिए कुछ
उपाय कर ही लिये हैं।

डिम्बावस्था में तिलचट्टे आदि इनके परम शत्रु होते हैं। उनसे बचने के
जहाँ तक होता है तितलियाँ पत्ती आदि की आड में ही अण्डे देने का उद्योग
हैं। लेकिन शिशुकीटावस्था में इनके शत्रुओं की तादाद बढ़ जाती है और उस
इनको सबसे अधिक डर चिड़िया से रहता है। इसीलिए इनके शिशुकीट प
के निचले हिस्से की ओर अपने को छिपाये रहते हैं और अक्सर रात को ही ब
निकलते हैं। कुछ के शरीर का रंग पास-पड़ोस की चीज़ों से मिलता होता
जिससे दुश्मनों की निगाह उन पर न पड़े तो कुछ के शरीर पर इसीलिए रोएँ रहत
कि शत्रु उन्हें खाने में हिचके और कुछ ऐसे भी होते हैं जो शत्रु पर एक प्रकार
जहरीला रस फेंकते हैं। इसके अलावा कुछ ने यह तरीका भी अख्तियार कि
है कि वे आक्रमणकारी को निकट देखकर गोलाकार लिपटकर जमीन पर गि
पड़ते हैं जिससे वे शत्रुओं के पंजे से बच जायँ।

ये कुछ उपाय तो बहुत से शिशुकीट शत्रुओं से बचने के लिए करते ही हैं लेकिन
इन सबसे अधिक रोचक ढंग उन शिशुकीटों का है जो अपने को चींटियों के हवाले
कर देते हैं। ये चींटियाँ शत्रुओं से इनकी रक्षा करती हैं और उसके बदले में ये
उनको एक प्रकार का मीठा रस देते हैं जो इनके शरीर की ग्रंथियों से निकलता
है। मूक कीटावस्था में शरीर के ऊपर कड़ा खोल चढ़ जाने के कारण मूककीट
को शत्रुओं से ज्यादा डर नहीं रहता, लेकिन तितली बन जाने पर इनके शत्रुओं की
संख्या फिर बढ़ जाती है। छिपकलियाँ और चिड़ियाँ आदि फिर इनकी जान की
गाहक हो जाती हैं। इसीलिए उन्हें अपने रंगीन परों का ऐसा विकास
करना पड़ा है कि उनका रंग आस-पास के रंगों के अनुरूप ही रहता है।
कुछ तितलियाँ बिलकुल पत्ती के रंग की होती हैं, तो कुछ के परों पर आँख जैसा
चिह्न बना रहता है जिससे हमला करनेवाला शत्रु डर जाय। कुछ तितलियों के

शरीर से एक प्रकार का ऐसा रस निकलता है जिसे उनके शत्रु इतना नापसन्द करते हैं कि उन पर हमला नहीं करते। यह देखकर कुछ तितलियों ने उन्हीं के अनुरूप बनने के लिए अपना ऐसा विकास किया है कि वे बहुत कुछ उन्हीं की शकल-सूरत की हो भी गयी हैं और इस प्रकार अपने शत्रुओं को धोखे में डालकर उन्होंने अपनी रक्षा का एक अनोखा उपाय ढूंढ़ निकाला है।

पतिंग

(MOTH)

तितली और पतिंग में क्या भेद रहता है, यह नालियवर्ग के वर्णन के साथ बताया जा चुका है। इसे और तितली का विस्तृत वर्णन पढ़ने के बाद इस बारे में कुछ कहना शेष नहीं रह जाता।

हमारे यहां पतिंग की अनेक जातियां हैं जिन्हें हम नित्य ही रोशनी के आस-पास देखते रहते हैं। इनमें कुछ छोटे होते हैं और कुछ बड़े लेकिन इन सबका रहन-सहन प्रायः एक ही जैसा होता है। बड़े पतिंग (Hawk Moth) को हमारे यहां जमुहां या जमुआं भी कहते हैं और देहातों में ऐसा अंधविश्वास है कि जब यह छोटे बच्चों के ऊपर से उड़ जाता है तो बच्चा बीमार हो जाता है।

इनमें कुछ पतिंग हमारे लिए बहुत उपयोगी भी हैं जैसे रेशम का कीड़ा (Silk worm moth) जिससे हमें बहुत सुन्दर रेशम मिलता है। यहां उसी का वर्णन दिया जा रहा है, क्योंकि इस प्रसिद्ध पतिंग का रहन-सहन तथा अन्य बातें दूसरे पतिंगों के ही समान रहती हैं।
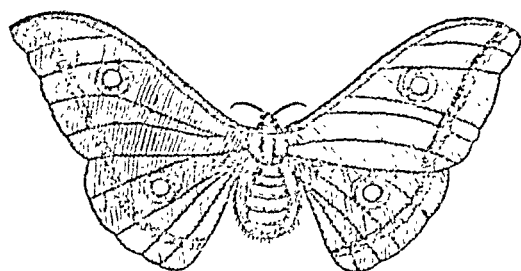
पतिंग

रेशम का कीड़ा (Silk Moth), जिसे रेशम के लिए बड़ी मेहनत से पाला जाता है, रेंड़ या शहतूत की पत्तियाँ खाता है इसलिए इसके पाले जानेवाले स्थानों पर शहतूत के पेड़ों का रहना आवश्यक है।

कर लेती हैं। शत्रुओं से अपनी रक्षा का प्रश्न सभी जीवधारियों के लिए बड़े महत्त्व का है। सारे विश्व में बलवानों और चालाकों का निर्बलों और सीधे-सादों के प्रति निरन्तर एक युद्ध चलता रहता है क्योंकि इस प्रकार का संहार और विनाश प्रकृति का सन्तुलन कायम रखने के लिए बहुत जरूरी है। और चूंकि तितलियां निर्बलों और सीधों की श्रेणी में आती हैं, इससे उन्होंने शत्रुओं से बचने के लिए कुछ न कुछ उपाय कर ही लिये हैं।

डिम्बावस्था में तिलचट्टे आदि इनके परम शत्रु होते हैं। उनसे बचने के लिए जहां तक होता है तितलियां पत्तों आदि की आड़ में ही अण्डे देने का उद्योग करती हैं। लेकिन शिशुकीटावस्था में इनके शत्रुओं की तादाद बढ़ जाती है और उस समय इनको सबसे अधिक डर चिड़ियों से रहता है। इसीलिए इनके शिशुकीट पत्तियों के निचले हिस्से की ओर अपने को छिपाये रहते हैं और अक्सर रात को ही बाहर निकलते हैं। कुछ के शरीर का रंग पास-पड़ोस की चीजों से मिलता होता है जिससे दुश्मनों की निगाह उन पर न पड़े तो कुछ के शरीर पर इसीलिए रोएँ रहते हैं कि शत्रु उन्हें खाने में हिचकें और कुछ ऐसे भी होते हैं जो शत्रु पर एक प्रकार का जहरीला रस फेंकते हैं। इसके अलावा कुछ ने यह तरीका भी अख्तियार किया है कि वे आक्रमणकारी को निकट देखकर गोलाकार लिपटकर जमीन पर गिर पड़ते हैं जिससे वे शत्रुओं के पंजे से बच जायें।

ये कुछ उपाय तो बहुत से शिशुकीट शत्रुओं से बचने के लिए करते ही हैं लेकिन इन सबसे अधिक रोचक ढंग उन शिशुकीटों का है जो अपने को चींटियों के हवाले कर देते हैं। ये चींटियां शत्रुओं से इनकी रक्षा करती हैं और उसके बदले में ये उनको एक प्रकार का मीठा रस देते हैं जो इनके शरीर की ग्रन्थियों से निकलता है। मूक कीटावस्था में शरीर के ऊपर कड़ा खोल चढ़ जाने के कारण मूककीट को शत्रुओं से ज्यादा डर नहीं रहता लेकिन तितली बन जाने पर इनके शत्रुओं की संख्या फिर बढ़ जाती है। छिपकलियाँ और चिड़ियाँ आदि फिर इनकी जान की गाहक हो जाती हैं। इसीलिए उन्हें अपने रंगीन परों का ऐसा विकास करना पड़ा है कि उनका रंग आस-पास के रंगों के अनुरूप ही रहता है। कुछ तितलियाँ बिलकुल पत्ती के रंग की होती हैं, तो कुछ के परों पर आंख जैसा चिह्न बना रहता है जिससे हमला करनेवाला शत्रु डर जाय। कुछ तितलियों के

बाहर निकलने से कुसुआरी कट जाती है और उसका रेशमी धागा किसी काम नहीं आता। इसीलिए रेशम पालनेवाले लोग उनको तैयार जानकर पतिंग के निकलने से पहले ही कक्कून को उबलते हुए पानी में डाल देते हैं, जिससे पतिंग भीतर ही मर जाता है और तब वे रेशम के धागे को किसी दूसरी चीज पर लपेट लेते हैं।

कंचनपक्ष वर्ग

(ORDER COLEOPTERA)

यह वर्ग कीट पतंग श्रेणी का सबसे बड़ा वर्ग माना जाता है जिसमें दो लाख से अधिक जातियों के कीड़ों का तो वर्गीकरण हो चुका है। लेकिन ऐसा अनुमान किया जाता है कि इनकी दस लाख से भी अधिक जातियाँ सारे संसार में फैली हुई हैं। ये कीड़े वैसे तो गुबरैला जाति के हैं, लेकिन इनकी शकल-सूरत तथा रंग-रूप में काफी भेद रहता है। जो हो, यहाँ इन सबको हम गुबरैले (Beetles) के ही नाम से पुकारेंगे।

गुबरैले संसार के प्रायः सभी स्थानों में पाये जाते हैं। इनके दो जोड़ पंख होते हैं जिनमें से अगला जोड़ा तो दृढ़ और कड़ा होता है जो इनके उड़ने में सहायक नहीं होता। यह पक्षवर्म कहलाता है और कभी-कभी बड़े सुन्दर बेलबूटों से चित्रित रहता है। इनका मुखभाग काटने तथा चबाने के योग्य होता है।

ये कीड़े ज्यादातर रात्रिचारी होते हैं, जो सारे दिन भूमि के अन्दर या छेद और दराजों के भीतर घुसे रहकर रात को भोजन की तलाश में बाहर निकलते हैं। इनका रूपान्तरण (Mata morphosis) पूर्ण होता है और ये पहले अण्डे से शिशुकीट और फिर क्रमशः मूककीट का रूप धारण करके कुछ दिनों में प्रौढ़ कीट बन जाते हैं। इनमें से कुछ की मादा भूमि के भीतर अण्डे देती है, जहाँ उनके फूटने पर शिशुकीट निकलते हैं, जो मिट्टी के नीचे ही रहकर पेड़-पौधों की जड़ों से रस चूसा करते हैं। ये वहीं मूककीट बन जाते हैं और कुछ दिनों तक उसी अवस्था में पड़े रहकर प्रौढ़ कीट बनकर बाहर निकल आते हैं। कुछ अपने अण्डे गोबर में देते हैं और उसको लुढ़का-लुढ़काकर किसी सुरक्षित स्थान में गाड़ देते हैं जिनमें से समय पाकर शिशुकीट निकलते हैं।

यह लगभग एक इंच लम्बा और भूरे रंग का कीड़ा है जिस पर हल्की भूरी धारियाँ पड़ी रहती हैं। इसका शरीर अन्य कीड़ों की भाँति सिर, वक्ष तथा उदर इन तीन भागों में बँटा रहता है। इसके नेत्र संयुक्त होते हैं और मुख के पास दो स्पर्शसूत्र रहते हैं।

इसकी मादा समय आने पर किसी पत्ते पर डेढ़ सौ तक अण्डे देती है जिनको गिरने से बचाने के लिए वह उन्हें एक प्रकार के चिपचिपे रस में टँक देती है। कुछ समय बाद अण्डे फूटते हैं और उनमें से छोटे छोटे शिशुकीट निकलकर शहतूत की पत्तियाँ खाने लगते हैं। इस समय ये भूरे रंग के लगभग चौथाई इंच लम्बे रहते हैं जिनके शरीर में टाँगों के आठ जोड़े रहते हैं।

चार दिनों बाद ये अपनी केंचुल बदलते हैं और तब इनकी लम्बाई भी बढ़ जाती है। फिर इसी प्रकार कई बार केंचुल बदलकर ये लगभग ३ इंच के हो जाते हैं। इसके बाद इन शिशुकीटों के शरीर के दोनों ओर कौशेय ग्रन्थियाँ (Silk glands) निकल आती हैं, जो थोड़े ही दिनों में एक प्रकार के लसलसे पदार्थ से भर जाती हैं। इसके बाद वे खाना-पीना छोड़ देते हैं और उनके ओठ के पास के छेद से एक प्रकार का पीला लसलसा पदार्थ डोरे की शकल में बाहर निकलने लगता है। बाहर निकलते ही वह हवा में सूखकर कड़ा हो जाता है और रेशम के डोरे का रूप ग्रहण कर लेता है। इस प्रकार यह तरल पदार्थ कीड़े के शरीर से तीन-चार दिनों तक बहता रहता है और इतने ही समय में वह लगभग हजार बारह सौ गज रेशमी डोरा बना डालता है।

शिशुकीट अपना सिर चारों ओर घुमाकर इस रेशमी डोरे को अपने चारों ओर इस खूबसूरती से लपेट लेता है कि जैसे किसी ने मशीन द्वारा रेशमी डोरे की लम्बी पिंडी लपेट दी हो। शिशुकीट इसी रेशमी महल के भीतर कुछ दिनों के लिए बंद होकर मूककीट का रूप धारण कर लेता है। उसके ऊपर लिपटी हुई इस पिंडी को हम कृमिकोष या कुसुआरी (Cocoon) कहते हैं।

१५ दिन के भीतर कृमिकोष के भीतर बड़ा परिवर्तन हो जाता है और भीतर का कीट जो मूकावस्था में था परदार पतिंग बनकर बाहर निकलने का उद्योग करने लगता है। वह कृमिकोष के एक भाग को गीला करके उसे काट डालता है और उसी द्वार से बाहर निकलकर हवा में उड़ जाता है। इस प्रकार पतिंग के

ये कद में एक इंच से कुछ छोटे होते हैं और इनके शरीर की बनावट पतली रहती है। ये गाढ़े नीले रंग के होते हैं और इनकी पीठ पर छः सफेद बिंदियाँ रहती हैं। इनके पैर लम्बे और पतले होते हैं जिनसे ये बड़ी तेजी से भाग सकते हैं। कुछ लोग इन्हें बहुत जहरीला समझते हैं लेकिन ये जहरीले नहीं होते। इनके शिशुकीट प्रायः जमीन की दराज और गढ़ों में रहते हैं और जैसे ही कोई छोटा कीड़ा-मकोड़ा उसमें गिरता है ये उसे चट कर जाते हैं।
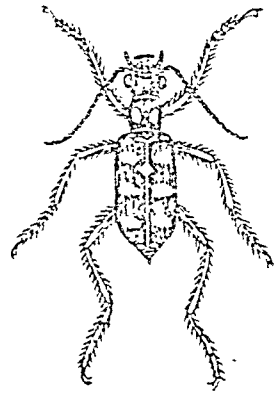
छः बुंदवा

ये हमारा नुकसान नहीं करते बल्कि इनसे यह फायदा होता है कि ये दूसरे कीड़ों को काफी संख्या में खाते रहते हैं।

भँवरी

(WHIRLIGIG BEETLE)

भँवरी पानी में रहनेवाला कीड़ा है जिसे हम अक्सर पानी में ऊपर से नीचे आते-जाते देखते हैं। यह लगभग आध इंच की होती है। इसके शरीर का रंग कलछौंह रहता है, जिस पर बहुत चमक रहती है। इसका सारा समय पानी में ही बीतता है जहाँ इसका झुंड का झुंड एक साथ दिखाई पड़ता है।
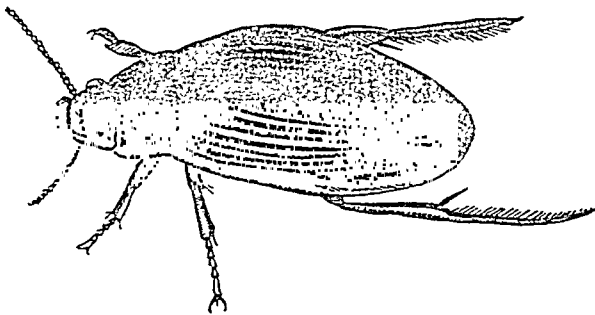
भँवरी

भँवरी पानी पर इतनी तेजी से तैरती है कि इसे पकड़ना आसान नहीं होता।

य कीड अपन पिछले पखो के सहारे उडते हैं जो बहुत तेजी से चलते हैं। इनके अगल पख जो कन और सख्त होते हैं इन पखो की रक्षा के लिए ढकने का काम करते हैं। इनके स्पशसूत्र (Antennae) इनके बहुत काम के होते हैं जिनम स्पशज्ञान के अलावा दूर म भोजन आदि का पता लगाने की अदभुत शक्ति रहती है। इन्हा स्पशसूत्रा से य अपन साथियो को पहचानते हैं और एक दूसरे के स्पश सूत्रा का इस प्रकार मिलाते हैं जैसे आपस म कुछ बात कर रहे हैं।

इनके नत्र सरल भी रहते हैं और सयुक्त भी और उनकी सख्या भी कभी-कभी दो स ज्यादा रहती है। इनम स कुछ बडी ककश आवाज उत्पन करत हैं जो इनके मुख से नही वरन इनके शरीर पर के कड भागो के रगडन स उत्पन्न होती है।

इनम म कुछ एमे भी हैं जो बराबर पानी म रहते हैं और पानी में ही अण्ड दत हैं। लकिन ज्यादा सख्या उन्ही की है जो खुश्की पर रहते हैं। ये सवभक्षी जीव ह जा वनस्पति के अलावा सब तरह का मास और खाद्य अखाद्य से अपना पेट भरते हैं। इनम स कुछ मुर्दाखोर भी होते हैं जो मुर्दों का खाकर सफाई का काम करत ह लेकिन इस थाड स लाभ के समक्ष जब हम इनके द्वारा किय गय नुकसान का देखते हैं ता हम इसी निणय पर पहुचते हैं कि मनुष्या क लिए य हानिकारक ही हैं। इनम स कुछ सड हुए पेड पौधो तथा मल मूत्र और मुर्दों को खाकर सफाई म भल ही हमारी मदद करते हो और जुगनू आदि रात में इधर उधर प्रकाश फैलाकर हमारे बाग बगाचो की शाभा भले ही बढाते हा लेकिन घुन तथा जडो को चूसनवाले गुबरीला स हमारा बहुत नुक्सान हाता है।

य वैस ता लगभग १०० परिवारो में बाट दिये गय हैं लेकिन यहा इनमें से कुछ प्रसिद्ध और परिचित कीडा का वणन किया जा रहा है जो शक्ल सूरत म भिन्न होन हुए भी स्वभाव म करीब-करीब एक जैसे ही हाते हैं।

छ बुदवा

(TIGER BEETLE)

छ बुदवा हमारे यहा का प्रसिद्ध कीडा ह जिसे उसकी पीठ पर की छ सफद बिन्दियो क कारण यह नाम मिला है। य बहुत तज और दूसरे कीडो को खाने में बड उस्ताद हाते हैं। य ज्यादातर रतील स्थाना में रहना पसन्द करते हैं।

जुगनू

(FIRE FLY)

जुगनू हमारे बहुत परिचित कीड़े हैं। बरसात की रात में नम जगहों में इनकी शोभा देखते ही बनती है। ये अँधेरे में रह-रहकर ऐसा चमक उठते हैं जैसे आकाश के तारे पृथ्वी पर आ गये हों।

जुगनू

जुगनुओं की अनेक जातियाँ संसार भर में फैली हुई हैं। हमारे यहाँ पाया जानेवाला जुगनू लगभग आध इंच का होता है। यह पतला और चपटा-सा मिट्टी भूरे रंग का कीड़ा है जिसकी शकल धनकुट्टी से मिलती-जुलती होती है।

जुगनू की आँखें बड़ी, स्पर्शसूत्र लम्बे और पैर छोटे होते हैं। इसके शरीर के कुछ निचले खण्डों से रोशनी निकलती है जो पारभासी (Opaque) या सफेद रहते हैं। मादा का यह प्रकाश-खण्ड नर से ज्यादा विकसित रहता है।

ये पृथ्वी के भीतर या पेड़ की छालों के नीचे रहते हैं जहाँ मादा अण्डे देती है। शिशुकीट के बाद मूककीट भी मिट्टी में ही रहते हैं जो दस दिन बाद प्रौढ़ हो जाते हैं। इनका मुख्य भोजन वनस्पतियाँ तथा कीड़े-मकोड़े हैं। जुगनुओं के शरीर से निकलनेवाली पीली रोशनी हमें सुन्दर भले ही लगती हो लेकिन ये कीड़े हमारे लिए लाभदायक नहीं हैं।

सुरखी

(LADY BIRD)

सुरखी उन कीड़ों की श्रेणी में रखी जा सकती है जो हमारे लिए बहुत लाभदायक हैं। यह नारंगी रंग का छोटा-सा कीड़ा है जिसका आकार गोल और क़द

यह थोडी-थोडी देर पर पानी के भीतर चली जाती है और फिर बाहर निकलकर पानी की सतह पर तेजी से तैरने लगती है।

भँवरी की आखे बडी और स्पर्शसूत्र बहुत छोटे होते हैं। इसके अगले दोनो पैर काफी लम्बे रहते हैं, लेकिन पिछले चारो पैर छोटे और चौडे होते हैं जिनसे यह डाड की तरह तैरने का काम लेती है।

पनकीरा

(WATER BEETLE)

पनकीरा, जैसा इसके नाम से स्पष्ट है, पानी में रहनेवाला कीडा है। इसका शरीर चिकना और चमकीला होता है जिसकी बनावट अण्डाकार रहती है। यह काले रग का लगभग डेढ इच लबा कीडा है जो तैरने में तेज नही होता। इसे ज्यादातर जलीय पौधो की पत्तियो पर चिपके देखा जा सकता है। इसके स्पर्शसूत्र बहुत छोटे होते हैं जिनके सिरे पर घुण्डियाँ-सी रहती हैं। यह मासाहारी कीडा है जो पानी के कीड-मकोडो से अपना पेट भरता है।
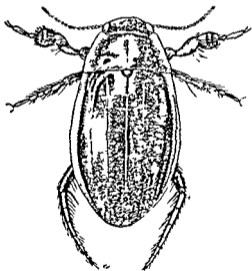
पनकीरा

पनकीरे की मादा अपने अण्डो को एक प्रकार की थैली में रख देती है और उसे अपने पैरो से तब तक दबाये रखती है जब तक उनमें से शिशुकीट नही निकल आते।

जुगनू

(FIRE FLY)

जुगनू हमारे बहुत परिचित कीड़े हैं। बरसात की रात में नम जगहों में इनकी शोभा देखते ही बनती है। ये अँधेरे में रह-रहकर ऐसा चमक उठते हैं जैसे आकाश के तारे पृथ्वी पर आ गये हों।

जुगनुओं की अनेक जातियाँ संसार भर में फैली हुई हैं। हमारे यहाँ पाया जानेवाला जुगनू लगभग आध इंच का होता है। यह पतला और चपटा-सा मिट्टी भूरे रंग का कीड़ा है जिसकी शकल धनकुट्टी से मिलती-जुलती होती है।

जुगनू की आँखें बड़ी, स्पर्शसूत्र लम्बे और पैर छोटे होते हैं। इसके शरीर के कुछ निचले खण्डों से रोशनी निकलती है जो पारभासी (Opaque) या सफेद रहते हैं। मादा का यह प्रकाश-खण्ड नर से ज्यादा विकसित रहता है।

ये पृथ्वी के भीतर या पेड़ की छालों के नीचे रहते हैं जहाँ मादा अण्डे देती है। शिशुकीट के बाद मूककीट भी मिट्टी में ही रहते हैं जो दस दिन बाद प्रौढ़ हो जाते हैं। इनका मुख्य भोजन वनस्पतियाँ तथा कीड़े-मकोड़े हैं। जुगनुओं के शरीर से निकलनेवाली पीली रोशनी हमें सुन्दर भले ही लगती हो लेकिन ये कीड़े हमारे लिए लाभदायक नहीं हैं।

जुगनू

सुरखी

(LADY BIRD)

सुरखी उन कीड़ों की श्रेणी में रखी जा सकती है जो हमारे लिए बहुत लाभदायक हैं। यह नारंगी रंग का छोटा-सा कीड़ा है जिसका आकार गोल और क़द

चौथाई इंच का रहता है। इसकी पीठ पर दो या चार काले बिन्दु रहते हैं जिससे दूर से यह नारंगी रंग के बटन-सी जान पड़ती है।
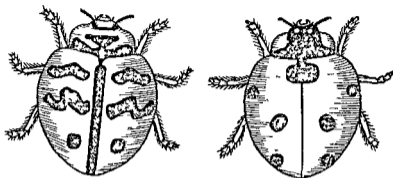
सुरखी

सुरखी हमारे बाग-बगीचो को बहुत फायदा पहुँचाती है। यह माहू (Green Flies) का खा-खाकर उनकी सख्या घटाती रहती है जो हमारे फल फूल में रोग की तरह लग जाते है।

सुरखी अपने अण्डे माहू के झुण्ड के बीच में देती है, जहाँ अण्डो के फूटने से इसके शिशुकीट निकलते हैं। ये शिशुकीट बाहर निकलते ही माहुओं को खाने लगते हैं और थोड़े दिनो बाद ये मूककीट बन जाते हैं। उसके थोड़े ही समय बाद इनकी यह अवस्था भी समाप्त हो जाती है और ये अपने खोल को फाड़कर सुरखी के रूप में हवा में उड़ जाते हैं। सुरखी माहू तथा अन्य कीड़ों के अण्डे आदि से अपना पेट भरती है।

धनकुट्टी

(CLICK BEETLE)

धनकुट्टी को यह अजीब नाम इसलिए मिला है कि यह एक प्रकार की टिक्-टिक की आवाज करती रहती है। इसकी यह आवाज हमें इसलिए सुनाई पड़ती है कि यह अक्सर उल्टी हो जाया करती है और सीधे होने के लिए टिक-टिक करके जोर लगाती है।

धनकुट्टी ललछौंह भूरे रंग का कीड़ा है जो जुगनू की तरह लम्बा और चपटा होता है। इसके स्पर्शसूत्र पतले होते हैं जो दोनों ओर फैले रहते हैं। यह खतरा निकट देखकर अपने पतले पैरों को समेटकर भीतर कर लेता है और कुछ देर उसी तरह पड़ा रहता है।

धनकुट्टी

धनकुट्टी हमारे लिए हानिकारक कीट है जो हमारे गल्ले तथा नरम पौधों की जड़ों को काफी नुकसान पहुँचाता है।

मादा अप्रैल-मई में जोड़ा बाँधकर जमीन के नीचे अपने अण्डे देती है, जहाँ उनके रूपान्तरण में लगभग तीन वर्ष लग जाते हैं। तीन वर्षों के बाद वे शिशुकीट और मूककीट की अवस्था को पार करके प्रौढ़ धनकुट्टी बन पाते हैं। इसके शिशुकीट की अवस्था हमारे लिए सबसे अधिक हानिकारक होती है क्योंकि ये शिशुकीट हमारे पेड़ की जड़ों को चूसकर उन्हें सुखा देते हैं।
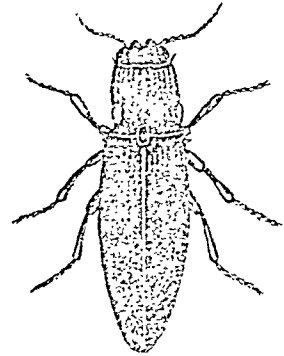
धनकुट्टी को रोशनी बहुत पसन्द है और वह रोशनी को देखकर पतिंगों की तरह उसके पास पहुँच जाते हैं। ये आलू, गेहूँ, गाजर, ककड़ी, सेम आदि को तो नुकसान पहुँचाते ही हैं, साथ ही साथ हमारे घास के मैदानों को भी नष्ट कर डालते हैं।

गुबरीला

(DUNG BEETLE)

गुबरीले से हम सभी परिचित हैं। हम इसे अक्सर खुले मैदानों में गोबर का गोला लुढ़काते हुए देखते हैं। गोबर के इस गोले को अक्सर नर और मादा दोनों लुढ़काते रहते हैं और ऐसा करने में वे जरा भी नहीं हिचकिचाते। इनकी वैसे तो लगभग २० हजार जातियाँ हैं, लेकिन यहाँ अपने देश के प्रसिद्ध गुबरीले का ही वर्णन दिया जा रहा है।

गुबरीला क़द में एक इंच से कुछ बड़ा ही होता है। इसका रंग काला रहता है।

इनमें नर-मादा एक ही शक्ल सूरत के होते हैं, जो बैठे रहने पर अक्सर पैर सिकोड़े रहते हैं लेकिन वैसे ये इधर-उधर चलते-फिरते ही रहते हैं।

गुबरीला

गुबरीले गोबर या लीद की छोटी-छोटी गोलियों को लुढ़काकर किसी स्थान पर ले जाकर छिपा देते हैं, जिसके ऊपर एक सूराख करके वे अपने अण्डे देते हैं। इस गोले को भीतर ही भीतर खाकर वे पोला कर देते हैं जिससे अण्डे फूटने पर शिशुकीटों के लिए यथेष्ट स्थान रहे। अण्डों से शिशुकीट निकलकर गोबर खाने लगते हैं और वहीं मूककीट बन जाते हैं। फिर कुछ दिनों बाद वे प्रौढ़ गुबरीले बनकर गोले से बाहर निकल आते हैं।

घुन
(WEEVIL)

घुन उन हानिकारक कीड़ों में बहुत प्रसिद्ध हैं जो प्रतिवर्ष हमारे अन्न तथा लकड़ी की वस्तुओं का बहुत नुकसान करते हैं।

घुन अपने सूँड़नुमा बढ़े हुए सिर के कारण बड़ी आसानी से पहचाने जा सकते हैं। इनकी यह सूँड़ काफी लम्बी होती है जिसके सिरे पर इनका मुख छिद्र रहता है।

घुन के शरीर का रंग पिलछौंह रहता है। इनकी अनेक जातियाँ हैं जो अनाज, फल और लकड़ी के भीतर अपने अण्डे देती हैं। इन अण्डों से जब शिशुकीट निकलते हैं तो वे आसपास की वस्तुओं को खा-खाकर उनका सत्यानाश कर डालते हैं। लकड़ी आदि का घुन भीतर ही भीतर नालियों की

घुन
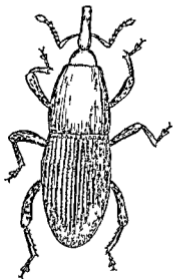
शकल में चाल डालते हैं और वह भीतर ही भीतर पोली होकर नष्ट हो जाती है। बांस में अक्सर घुन लग जाते हैं तो उसे भीतर ही भीतर खा डालते हैं।

अण्डा देने का समय आने पर लकड़ी-घुन की मादा किसी लकड़ी के भीतर नाली-सी काटकर उसी में अपने अण्डे देती है, जहाँ ये अण्डे फूटते हैं और उनमें से शिशुकीट निकलते हैं जो वहीं मूककीट बनकर कुछ दिनों पड़े रहते हैं। उसके बाद ये प्रौढ़ घुन बनकर लकड़ी की दीवार को काटकर बाहर निकल आते हैं।

कलापक्ष वर्ग

(ORDER HYMENOPTERA)

कीट-पतिंगों का यह वर्ग भी काफी बड़ा और विस्तृत है। इसमें सब प्रकार की मधु-मक्खी (Honey Bees), बर्रे (Wasps) तथा चींटे और चींटियाँ एकत्र की गयी हैं। इस वर्ग के अधिकांश जीवों के दो जोड़ी पंख होते हैं, लेकिन कुछ ऐसे भी जीव हैं जिनके या तो पंख निकलते ही नहीं या थोड़े समय बाद गिर जाते हैं। इनके मुखभाग काटने और चूसने दोनों के काम आते हैं।

इन जीवों का पूर्ण रूपान्तरण होता है और इनकी मादाओं के उदर के पिछले सिरे पर डंक की तरह का एक अंग रहता है। ये सब सामाजिक कीट हैं जिनकी समाज-व्यवस्था और संघटन बहुत ही व्यवस्थित रहता है। यहाँ इनमें से चींटा, माटा, हाड़ा, बर्रे, बिलनी, भँवरी तथा मधु-मक्खी का वर्णन किया जा रहा है।

चींटियाँ

(ANTS)

मनुष्यों के बाद हमारी पृथ्वी पर अगर कोई जीव अक्लमंद कहा जा सकता है तो वे हमारी चींटियाँ हैं। इनकी तो ऐसी-ऐसी अद्भुत बातें हैं कि सुनकर दाँतों-तले उँगली दबानी पड़ती है। इनके घर ही इतने सुन्दर होते हैं कि देखकर ताज्जुब होता है। जमीन के नीचे इनकी पूरी बस्ती-सी बसी रहती है। वहाँ छोटे बड़े कमरे, छतें, गैलरियाँ और दालान होते हैं। इसके अलावा ये अपने बिलों के ऊपर

ऊँचे टीले की दिमौर या विमौर बनाती हैं जो दो मंजिली होती हैं। इससे चीटियों के बिल ज्यादा गर्म और ठंडे नहीं हो पाते।

इन दिमौरों में हजार दो हजार नहीं बल्कि लाखों की तादाद में चीटियाँ रहती हैं जो एक दूसरे को अच्छी तरह पहचानती हैं। अगर इत्तफाक से कोई चींटी कहीं दूसरी जगह चली जाती है तो लौटने पर सब चीटियाँ उसे पहचान लेती हैं और उसका आदर-सत्कार होता है पर यदि उनके यहाँ किसी दूसरे बिल की चीटी घुस आती है तो सब मिलकर यदि उसे मार नहीं डालती तो अधमरी तो जरूर कर देती हैं।

रानी मधुमक्खी की तरह हर एक बिल में एक रानी-चींटी भी होती है जिसका काम बिल में रहकर केवल अण्डे देना रहता है। इसके बच्चों को रोज दाई-चीटियाँ दिमौर के ऊपरी खण्ड पर ले जाती हैं और अगर दिन सुहावना होता है तो उन्हें खुली छत पर लिटा दिया जाता है। दाई-चीटियाँ बच्चों का बहुत ख्याल रखती हैं और जब तक बच्चे अपना रेशमी लिबास छोड़कर काम करनेवाली चीटियाँ नहीं हो जाते तब तक वे उन्हें इधर उधर लिये फिरा करती हैं।

चूँकि चीटियाँ अच्छे दिनों में खूब महनत करके अपने लिए खाना इकट्ठा कर रखती हैं इससे जाड़ों में उन्हें किसी बात का डर नहीं रहता। उनके पास सुन्दर घर और खाने का काफी सामान रहता है। इसी से वे जाड़ों में अपने घर के दरवाजे बन्द करके और दीन-दुनिया की फिक्र छोड़कर उसी में पड़ी रहती हैं।

छोटी भूरी चीटियाँ भी बड़े काले चीटों के समान मेहनती और चालाक होती हैं। इनमें एक और खास बात यह होती है कि ये अपने बच्चों के दूध के लिए एक प्रकार की मक्खियों को पालती हैं। ये मक्खियाँ हरे रंग की होती हैं और इनका दूध दुहकर चीटियाँ अपने बच्चों को पिलाती हैं। ये मक्खियाँ फूलों का रस पी-पीकर फूलकर कुप्पे की तरह हो जाती हैं। चीटियाँ इनको पकड़कर अपने यहाँ कैद कर लेती हैं और जरूरत पड़ने पर उन्हें अपने तेज मुँह से काटकर रस देने को मजबूर कर देती हैं।

लड़ाई की कला जितनी चीटियों की फौज जानती है उतनी मनुष्य की सेना नहीं जानती। चीटियों की फौज आपस में अनोखे ढंग से लड़ती है। एक विद्वान ने लिखा है कि मनुष्य लड़ाई में जितने उपायों से काम लेता है वे सब चीटियाँ जानती

हैं। कोलम्बिया, दक्षिण अमेरिका में एक अंग्रेज अपने बँगले के पास ही लाल और काली चींटियों की दो सेनाओं की लड़ाई दो घंटे तक देखता रहा। लाल चींटियाँ एक पेड़ पर थीं, काली चींटियों की फौज ने नीचे से उन पर आक्रमण किया और उन्हें मारकर पेड़ पर दखल जमा लिया।

चींटियां किसी से नहीं डरतीं। घड़ियाल, और बड़े-बड़े साँपों के सामने आने पर वे आक्रमण कर देती हैं। ईराक में एक हवाई जहाज के चालक ने देखा कि काली चींटियों की फौज ने एकाएक एक काले बिच्छू पर आक्रमण कर दिया। बिच्छू ने भी खासी लड़ाई की और बहुतसी चींटियां मर गयीं, पर अन्त में विजय चींटियों की ही हुई।

चींटियाँ बड़ी खाऊ बीर होती हैं। इनके रास्ते में जो चीज आ जाती है ये उसे खा जाती हैं। एक जाति की चींटी तो चूहे भी खा जाती है। अफ्रीका में अँगरेजों के दल के साथ के एक जिन्दे कुत्ते को ये चींटियाँ सफाचट कर गयीं और उसके शरीर में जितना मांस था वह सब उन्होंने नोच लिया।

छोटी होने पर भी चींटी एक भयानक जीव है। प्रोफेसर जूलियन हक्सले का तो कथन है कि चींटी अगर लोमड़ी जितनी बड़ी होती तो इस दुनिया पर मनुष्य और अन्य मेरुदंडी जीवों का अस्तित्व ही न रहता।

चींटियाँ बहुत दिन तक जीती हैं। रानी चींटी तो पचास वर्ष तक जीती है। वैसे भी चींटियाँ जल्द नहीं मरतीं। पानी में ये ७-८ दिन तक पड़ी रह कर भी बच जाती हैं। चींटियाँ अपने शरीर को मजबूत करने के लिए आपस में कुश्ती लड़ती हैं और कभी-कभी नकली युद्ध भी करती हैं।

चींटियों में गुलामी की प्रथा बड़े जोरों से है। एक मजबूत जाति कमजोर जाति की चींटियों को गुलाम बनाकर रखती है और उनसे अपना काम लेती है। एक चींटी के पास दस गुलाम चींटियाँ तक देखी गयी हैं।

इस समय तक हमको ५-६ हजार तरह की चींटियों का पता है जिनमें रानी, सैनिक, किसान, गाय, ग्वाला, कारीगर और अनेक प्रकार की चींटियाँ हैं। चींटियाँ बुद्धि में आदमियों के बराबर भले ही न हों पर इसमें जरा भी सन्देह नहीं

कि खेती करने, आटा बनाकर रोटी पकाने, बाजा बजाने, नाचने और मुर्दों को कबर में गाडने में मनुष्यो के बाद फिर इन्ही का नम्बर है।

बडे चीटे (*Field Ant*) के नर बडे और बर्र की शकल-सूरत के होते है। इनके मजदूर अधे होते है, जो ज्यादातर दीमक की तरह जमीनके भीतर ही रहते है। मादा अधी और दीमक की मादा की तरह होती है। मजदूरों के डक होते है।

चींटा

बडे चीटे दीमक की तरह जमीन के भीतर अपना घर बनाते है और इनका रहन-सहन भी बहुत कुछ उन्ही की तरह रहता है। ये चींटे पौधों का बहुत नुकसान करते है। ये उनकी जड के पास उनका रस चूसकर उन्हें सुखा डालते है। इनके मजदूर दूसरी जाति के चीटो को पकड कर अपने बिलो में ले जाते है, जहां वे उनके टुकडे कर डालते है। इनके नर जाडे के अन्त मे अक्सर बाहर दिखाई पडते है।
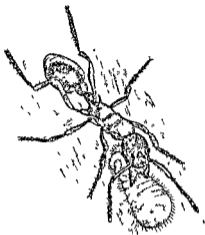
माटा

(RED ANT)

माटे की भी कई जातिया है। पेड पर पत्तो को झोझ बनाकर रहनेवाले माटे हमारे सबसे परिचित माटे है जिन्हें वदरमाटा कहते है। ये लाल रग के होते है जो कई पत्तो को जाले से जोडकर थैलीनुमा झोझ बनाते है जिसमें खटमल की जाति के कीडो को बन्द रखते है। इनकी हरे रग की मादाएँ जून से अपना नया घोसला बनाती है। मजदूर माटे बहुत ही फुर्तीले और भयकर होते है। ये मरे हुए कीडो और जिन्दा जोराइयो को पकड ले जाते है और उनके टुकडे-टुकडे कर डालते है, फिर उन्हें ये अपने घोसले में उठा ले जाते है। एक पेड पर माटो के

बहुत से घोंसले होते हैं जिनको बीच से तोड़कर देखने से उनमें बहुत से मरे हुए कीड़े मिलते हैं। घोंसले के टूट जाने पर मजदूर माटे बड़ी तेजी से उसकी मरम्मत कर देते हैं। इनके मुंह से एक प्रकार का रेशमी तार-सा निकलता है जिससे जालों की मरम्मत की जाती है।

इनकी एक जाति तुरुक-माटा कहलाती है जो पेड़ की जड़ के पास जमीन में या घर की दीवालों में अपना बिल बनाते हैं और मरे हुए कीड़ों आदि को उसमें जमा करते हैं।

तीसरी जाति के माटे गुड़-माटा कहलाते हैं। ये हमारे देश में काफी संख्या में मिलते हैं। ये पेड़ की गिरी हुई पत्तियों तथा सूखे हुए पेड़ के नीचे अपना घर बनाते हैं।

चौथी जाति के माटे अपना घर किसी पेड़, बाँस तथा गन्ने के तने से चिपकी पत्ती या छाल के नीचे बनाते हैं। इन चारों माटों की आदत, रहन-सहन, स्वभाव इतना मिलता-जुलता होता है कि उसे फिर से दुहराना ठीक नहीं जान पड़ता।

माटा

बर्र

WASP

बर्र से भला कौन परिचित न होगा। इन्हें ततैया भी कहा जाता है। हममें से बहुतों को तो इसके तेज डंक का भी अनुभव होगा। जून-जुलाई से नवम्बर तक
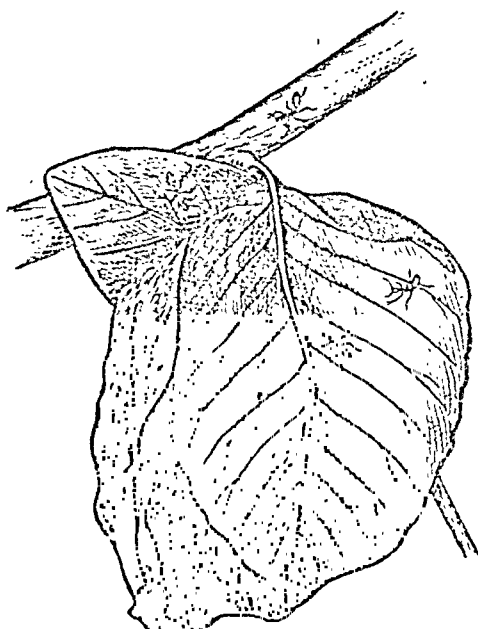
हम इस पीली वर्र को अपने घरों में इधर-उधर उड़ते देख सकते हैं। उस समय ये अपना छत्ता बनाने की फिक्र में इधर-उधर उड़ती रहती हैं। फिर अपना झुमके की शकल का सुन्दर छत्ता बना लेती हैं, जो दीवार के किसी कोने में लटकता रहता है।

वर्र

ये छत्ते मिट्टी के नहीं बल्कि किसी कागज जैसे हल्के पदार्थ के होते हैं जिनकी बनावट बहुत साफ और सुन्दर होती है। इस सुन्दर छत्ते को मादा ततैया बनाती है। पहले वह दो-तीन कोठरियाँ बनाती है, फिर धीरे-धीरे उसकी १०-१२ सुरंगनुमा कोठरियाँ बन जाती हैं जिनमें वह एक एक अण्डा रख देती है। कुछ ही दिनों में अण्डे फूटकर उसमें से मक्षिजातक निकलते हैं जिनके लिए ततैया बिलनियों की तरह न तो पहले से मकड़ियों को ही जमा कर रखती है और न भँवरियों की तरह कोठरियों में पराग ही भर रखती हैं। इससे उसे खुद ही इन नवजात मक्षिजातकों (Grubs) को फूलों से रस और पराग ला-लाकर खिलाना पड़ता है। ८-१० दिनों में ये कीट बड़े होकर शिशुकीट (Nymph) हो जाते हैं और फिर वे धीरे-धीरे प्रौढ़ होकर वर्र बन जाते हैं।

वर्र बन जाने पर ये अपने छत्ते को बढ़ाने लगते हैं और उसमें नयी कोठरी या सुरंग बनाकर इनकी मादा एक एक अण्डा देती जाती है, जो धीरे धीरे अपना परिवर्तन करके वर्र बनते रहते हैं।

इस प्रकार यह दम नवम्बर तक चलता है। फिर जाड़ा आने पर छत्ते की सारी मजदूर बर्रें मर जाती हैं और उनमें सिर्फ थोड़ी-सी मादाएँ ही बचती हैं। ये जाड़े भर किसी सूराख में छिपी रहती हैं और फिर अगले साल बरसात में उसी प्रकार अपना नया छत्ता बनाना शुरू कर देती हैं।

हाड़ा

(HORNET)

बर्रें की वैसे तो कई जातियाँ हमारे यहाँ पायी जाती हैं लेकिन इनमें से हमारे यहाँ दो बहुत प्रसिद्ध हैं। इनमें बड़ा हाड़ा और छोटी बर्रें (Yellow wasp) कहलाती है। हाड़े को हम अक्सर मिठाइयों की दूकानों पर देख सकते हैं। इनका रंग कत्थई होता है जिस पर पीली-पीली धारियाँ पड़ी रहती हैं, लेकिन बर्रें पीले रंग की होती है जो अक्सर हमारे घरों के कोने में छोटा-सा झुमके जैसा लटकनेवाला छत्ता लगाती है। इसे भी ततैया कहते हैं।

इन दोनों के छत्ते कागजी बनावट के होते हैं जिन्हें ये बड़ी खूबसूरती से बनाती हैं। ये पहले घास-पात या पेड़ की छाल वगैरह खूब चबा लेती हैं। फिर उसी चबाये हुए पदार्थ से इनका सुन्दर छत्ता बनता है।

हाड़ा

हाड़े के छत्ते बहुत बड़े-बड़े होते हैं जिनका ऊपरी हिस्सा एक प्रकार की खोल से ढका रहता है। इस खोल और छत्ते के बीच में खाली जगह रहती है जिसमें होकर हाड़े हर एक कोठरी में आ-जा सकते हैं। ये छत्ते पेड़ पर या पुरानी दीवारों में या जमीन के भीतर रहते हैं जहाँ हाड़ों के जाने के लिए ऊपर से एक रास्ता रहता है।

हाड़े का मुख्य भोजन वैसे तो जोराई, टिड्डे, खटमल, गुबरीले और दूसरे छोटे कीड़े-मकोड़े हैं, लेकिन इसको मीठी चीज बहुत पसन्द है। फूल के रसों के लिए ये मधु-

मक्खियो की तरह मँडराते रहते है और मिठाई की दूकानो पर तो हमे इनके झुड-के-झुड देखने को मिल जाते है।

हाडे की मादा जाडो में दो-तीन महीने दीवार के सूराखो मे छिप कर बिता देती है। इस प्रकार शीतशायी अवस्था को बिताकर वह फिर छत्ता बनाने की फिक्र में इधर-उधर चक्कर लगाने लगती है। जाडे के प्रारभ में हम अक्सर हाडे को अपने घरो में देखते हैं क्योंकि यही समय सूराखो मे धुसकर इनके शीतशायी होने का है।

हाडे का डक बहुत तेज और जहरीला होता है और इसके डक मारने पर उस स्थान पर बहुत सूजन हो जाती है।

इसके रहन-सहन और अडे-बच्चे देने का ढग बहुत कुछ ततैया या वर्र से मिलता-जुलता रहता है।

बिलनी

(MUD WASP)

बिलनी की कई जातियाँ हमारे यहा पायी जाती है। यह हाडा और वर्र की भाई-बिरादर है जो अपना मिट्टी का घर बनाती है।

बिलनी

बिल्नी की शकल-सूरत ततैया से मिलती-जुलती रहती है, लेकिन उसकी कमर लबी और बहुत ही पतली रहती है। इसकी मादा मिट्टी का घर बनाती है जिसमें एक दूसरे से मिली हुई २ स ७ तक लबी सुरगनुमा कोठरियाँ रहती है। कोठरिया के तैयार हो जाने पर बिलनी उनके मुँह गीली मिट्टी से बद कर देती है। ये मिट्टी के घर, बिलनी अपने लिए नही बल्कि अपने अडे-बच्चो के लिए बनाती है जो दीवार, खिडकी, दरवाजों, पेड के तनो और मेज-कुर्सियो पर बनाये जात है जो सूख जाने पर बहुत मजबूती से चिपके रहते हैं। घर बन जाने पर बिलनी हर एक सुरग में

एक मकड़ा रख देती है, फिर उसमें एक अंडा देती है। अंडा देने के बाद बिलनी उसमें और मकड़ों को, जो उसके डंक मारने से बेहोश रहते हैं, लाकर जमा करती है। इसके बाद वह उसका मुँह बंद करके दूसरी सुरंग में ऐसा ही प्रबंध करने लगती है।

अंडा फूटने पर जो शिशुकीट निकलता है वह पहले मकड़े का नरम पेट खाता है, फिर धीरे-धीरे वह सब बेहोश मकड़ों को चट कर जाता है। ६ दिन में वह पूरा बढ़ जाता है और उसका सफेद रंग बदलकर सिल्टी हो जाता है। एक सप्ताह और बीतने पर वह अपने ऊपर रेशम के कीड़े की तरह बहुत बारीक पीले रंग की कुसुआरी (Cocoon) बनाता है जिसका रंग सूखने पर भूरा हो जाता है। तीन दिन से छः दिन तक आराम करने के बाद वह कुसुआरी या कृमिकोष के भीतर मूककीट (Pupa) की शकल का हो जाता है। ऐसी हालत में इसे १२-१३ दिन रहना पड़ता है, जिसके बाद वह पूरी तौर से बिलनी की शकल का बन जाता है। बिलनी बन जाने पर वह कुसुआरी को काटकर बाहर आता है और सुरंग द्वार की मिट्टी को ठेलकर हवा में उड़ जाता है। इस प्रकार अंडे से पूरी तौर पर बिलनी बनने में उसे २८ से ३० दिन तक लग जाते हैं।

नयी बिलनी जल्द ही अपना नया घर बनाने की फिक्र में लग जाती है और साल में चार-पाँच बार अंडे देती है। बिलनी वैसे बहुत कम दिखाई पड़ती है लेकिन जब यह हमारे सामने पड़ जाती है तो इसके नीले रंग के कारण हमें इसे पहचानने में देर नहीं लगती।

मधुमक्खी

(HONEY BEE)

हमारे सामाजिक कीटों में मधुमक्खी का नाम सर्वोपरि माना जाता है। इनका संघटन इतना पूर्ण और इनकी सामाजिक व्यवस्था इतनी सुन्दर होती है कि उसे देखकर आश्चर्य से चकित रह जाना पड़ता है। दीमक आदि कीड़े जहाँ हमारी बहुत हानि करते हैं वहीं मधुमक्खी हमको केवल मधु ही नहीं देती वरन् वह पुष्पगर्भाधान में सहायता देकर हमारे बाग-बगीचों तथा फसल आदि का बहुत उपकार भी करती है।

इस सामाजिक कीट के प्रत्येक गिरोह में चार प्रकार की मधुमक्खियाँ होती हैं—

१ रानी मधुमक्खी—Queen

२ मजदूर—Worker

३ कमचोर नर—Drone

४ सैनिक—Soldier

मधुमक्खी के प्रत्येक गिरोह में लगभग ६० हजार मधुमक्खियाँ रहती हैं। इसमें एक रानी लगभग २०० नर तथा शेष मजदूर और सैनिक होते हैं। इन चारों प्रकार
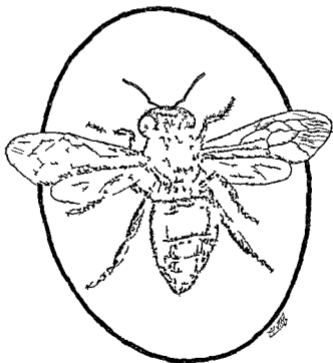
मधुमक्खी

के प्राणियों के कार्य अलग-अलग होते हैं और इन्हीं कार्यों के अनुसार इनके शरीर की बनावट रहती है। मजदूर मधुमक्खियाँ कद में सबसे छोटी होती हैं और इनमें अन्य सब

मधुमक्खियों से ज्यादा तेजी भी रहती है। ये वाँझ होती हैं लेकिन छत्ते में ये ही सबसे ज्यादा काम करती हैं।

नर, मजदूर से बड़े होते हैं और उनका उदर अधिक चौड़ा रहता है। रानी का उदर लंबा और सँकरा रहता है और उसके उदर के अन्तिम भाग में एक पैनी और खोखली नली रहती है। रानी इसी नली की सहायता से अंडे देती है। मजदूर और सैनिकों में इसी स्थान पर एक छोटी और नुकीली नली रहती है जिसे डंक (Sting) कहते हैं। डंक के नीचे एक विष-ग्रन्थि (Poison Gland) रहती है जिसमें से विष निकलकर डंक मारे हुए स्थान में प्रवेश कर जाता है।

मजदूर मधुमक्खियाँ केवल छत्ता ही नहीं बनातीं बल्कि फूलों से मकरंद (Nectar) तथा पराग (Pollen) भी जमा करती हैं। इनके उदर के दूसरे से पाँचवें खंड के नीचे के भाग पर ग्रन्थियाँ रहती हैं, जिनसे ये मोम निकालकर अपने जबड़ों तक लाती हैं और छत्तों की छः कोणवाली कोठरियाँ बनाती हैं।

इन मक्खियों की टाँग पर महीन बाल होते हैं और पिछली टाँगों पर बालों की कूँचियाँ (Pollen Brushes) रहती हैं जिनसे ये पराग-कण इकट्ठा करती हैं जो जाँघ के पास की पराग-टोकरी (Pollen Basket) में जमा कर दी जाती हैं और जिन्हें ये ला-लाकर छत्ते में गिरा देती हैं।

फूलों का रस चूसने के लिए मधुमक्खियों के मुख के अग्रभाग में एक सूँड़-सी रहती है जिसका सिरा फैलकर चम्मच की शकल का हो जाता है। उड़ते समय यह शुंड लिपटकर सिर के ठीक नीचे सिमटा रहता है। मधुमक्खी जब फूलों का रस चूसती है तो वह पहले उसके शरीर के मधुकोष (Honey Sac) में जाता है, जहाँ उसमें कुछ रासायनिक परिवर्तन होते हैं और वह मधु का रूप धारण कर लेता है। मधुमक्खियाँ इसको पुनः उगलकर छत्तों में भर देती हैं। यही हमारा शहद है।

मधुमक्खी का छत्ता दो भागों में विभक्त रहता है। एक को मधुकोष्ठ (Honey Comb) कहते हैं और दूसरे को प्रसूतिकोष्ठ (Brood Comb)। मधुकोष्ठ के प्रत्येक खाने में मधु भरा रहता है और प्रसूतिकोष्ठ में रानी तथा नर मधुमक्खियों का लालन-पालन होता रहता है।

छत्तों के भीतर मजदूरों को तरह-तरह के काम करने पड़ते हैं। ये अंडों की देख-

भाल करते हैं, छत्ते की मरम्मत करते हैं, बाहर से पराग और मकरद लाते हैं तथा छत्ते की सफाई करते रहते हैं। ये अपने ओठ से चाट-चाटकर रानी के शरीर को साफ किया करते हैं और अपने पख को डुला-डुलाकर उसको हवा करते हैं।

रानी माखी का काम केवल अडा देने भर का रहता है। वह अपने जीवन-काल में असख्य अडे देती है। अडे देने से तीन दिन बाद उनमें से शिशुकीट निकलते हैं। इन शिशुकीटो को आगे जो कुछ भी बनाना होता है उन्हें उसी प्रकार का भाजन दिया जाता है। मजदूर बननेवालो को शहद, नर बननेवाला को पराग और रानी बननेवाले शिशुकीट को केवल मकरद का भाजन दिया जाता है। ये शिशुकीट जब पाच दिन के हो जाते हैं तो छत्ते के खानो मे थोडा थोडा पराग अथवा शहद रखकर इन्हें उनमे बद कर दिया जाता है और खाना का मुख माम से बद कर दिया जाता है। इस प्रकार मूककीटावस्था में लगभग दो सप्ताह रहकर ये मधुमक्खी का स्वरूप धारण कर बाहर निकल आते हैं और अपना-अपना काम करने लगते हैं।

नयी रानी के निकलने पर पुरानी रानी छत्ता छोडकर चली जाती है और नयी रानी अन्य रानी बननेवाले मूककीटो की जीवन-लीला समाप्त कर देती है और उस छत्ते की एकमात्र अधिकारिणी बन जाती है।

एक सप्ताह बाद यह नयी रानी अपने प्रणय विहार के लिए नरो को लेकर बाहर निकलकर उडती है। प्रणय लीला के उपरान्त नर तो मर जाता है लेकिन रानी अपने छत्ते मे लौटकर अडा देने का कार्य आरभ कर देती है और फिर बराबर पाच वर्षों तक अडे देती रहती है। शरद ऋतु के आते ही रानी की आज्ञा से शेष नर भी छत्ते से बाहर निकाल दिये जाते हैं जो शीघ्र मर जाते हैं और मजदूर सैनिक तथा रानी छत्ते के भीतर आराम से बैठ कर सचित मधु खाकर अपना समय बिताती रहती हैं।

भौंरा

(LARGE CARPENTER BEE)

भौंरा मधुमक्खियों का भाई बन्धु है जो अपने बड़े शरीर के कारण कहीं भी नहीं छिपता और इसका गुञ्जन सुनकर हमें इसकी उपस्थिति का पता दूर ही से लग जाता है।

हमारे कवि और लेखकों ने जितना भौंरे के बारे में लिखा है उतना शायद ही किसी जीव के बारे में लिखा हो। बाग का कोई वर्णन बिना भौंरे के गुंजन के पूरा ही नहीं उतरता। अक्सर इसके काले शरीर पर पीली पट्टी के कारण कवि लोग इसकी उपमा श्री कृष्ण से देते हैं, लेकिन वे यह भूल जाते हैं कि नर भौंरे का शरीर तो प्रौढ़ होने पर पीले रंग का हो जाता है, काले रंग की तो मादा रहती है जिसका धड़ पीले रंग का रहता है। इसी को हम अपने बाग-बगीचों में भन-भन करते हुए उड़ते देखते हैं।

भौंरा

भौंरा छत्ता नहीं बनाता। यह अपने रहने के लिए किसी लकड़ी की बल्ली या शहतीर को काटकर उसी में अपने लिए गहरी सुरंग बना लेता है।
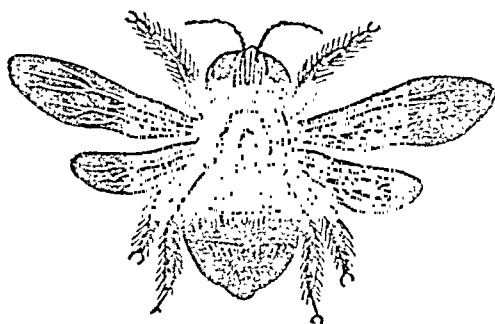
भौंरा, जैसा ऊपर बताया गया हैं, मधुमक्खी के परिवार का प्राणी है। इसका सिर सुडौल और शरीर की बनावट गठी हुई होती है। फूलों का रस चूसने के लिए इसकी जबान तो लंबी होती ही है; साथ ही साथ इसके पिछले हिस्से की सतह पर बहुत महीन-महीन रोएँ रहते हैं। जब भौंरे फूलों का रस पीने के लिए फूलों में घुसते हैं तो इन्हीं रोओं के कारण उनके शरीर पर काफी पराग लग जाता है। इनके छोटे पैर भी रोएँदार होते हैं जिनमें चिपककर पराग एक फूल से दूसरे फूल तक पहुँचा करता है।

भौंरे मधुमक्खियों की तरह बड़े झुंडों में नहीं रहते, लेकिन कई भौंरे एक ही स्थान पर रहना पसंद करते हैं। मादाएँ ज्यादातर फूलों के चारों ओर मँडराती रहती हैं। यहीं अपने लिए और अपने बच्चों के लिए फूलों का रस और पराग इकट्ठा करती हैं।

भौंरे एक ही जगह पर लकड़ी काटकर कई सुरंगें बनाते हैं जिनमें मादा पराग जमा करके एक-एक अंडा देती है। इन सुरंगों का मुँह बंद कर दिया जाता है और अंडा फूटने पर नवजात कीट (Grub) पराग खा-खाकर बढ़ते हैं। फिर कई परिवर्तन के बाद वे भौंरे बन जाते हैं।

जाड़ा आने पर भौंरे की रानी को छोड़कर करीब-करीब सब भौंरे मर जाते हैं। रानी जाड़े के महीने किसी बिल में घुसकर बिताती है और जाड़ा समाप्त होने पर उसका नया वंश-क्रम फिर चलने लगता है।

भौंरी

(MASON BEE)

भौंरी को कुछ लोग छोटी बिलनी भी कहते हैं। यह नाम बहुत कुछ सही भी है क्योंकि यह भी बिलनियों की तरह मिट्टी का बिलोंवाला घर बनाती है।

वैसे भौंरी की शकल-सूरत शहद की मक्खियों से मिलती-जुलती होती है लेकिन यह उनकी शहद का छत्ता न लगाकर मिट्टी का ही घर बनाती है। इसको घर बनाने के लिए जगहें भी खूब सूझती हैं। दीवाल या लकड़ी का कोई सूराख, साइकिल के हैंडिल का छेद, बंदूक की नाल, यहाँ तक कि मोटी किताबों के पीछेवाले हिस्से तक में ये चटपट अपना छोटा-सा मिट्टी का घर बना डालती हैं।

इन घरों के बनाने का काम मादा भौंरी के मत्थे रहता है। एक सुरंग बनाकर भौंरी उसके आधे हिस्से को फूलों के पराग से भर देती है और फिर उसमें एक-एक अंडा देकर उसका मुँह मिट्टी से बंद कर देती है। बस, उसका काम यहीं खतम हो जाता है।

अंडा फूटने पर मक्षिजातक (Grub) पराग को खाता रहता है और उसके खतम होते-होते वह बढ़कर शिशुकीट (Nymph) की शकल का हो जाता है। शिशुकीट के भीतर भौंरी की शकल बनती रहती है जहाँ पूरी तौर पर प्रौढ़ हो जाने पर वह मिट्टी की दीवाल को काटकर उड़ जाती है।

दूसरी भौंरी, जो पत्तकटनी (*Leaf cutting Bee*) कहलाती है, बरसात में काफी संख्या में दिखाई पड़ती है। बरसात में हमें अक्सर गुलाब आदि के पत्ते कटे हुए मिलते हैं और ऐसा लगता है जैसे किसी ने मशीन से पत्तों का कुछ हिस्सा गोलाई से काट लिया हो। उस समय कभी ख्याल भी नहीं होता कि यह काम इसी पत्तकटनी भौंरी का है।

पतकटनी भौंरी पत्तों को अपने खाने के लिए नहीं काटती और न इसकी मंशा हमें बेकार नुकसान पहुँचाने की ही रहती है। इन पत्तों को गोलाई से काटकर यह अपने बिल में अस्तर लगाती है जिससे उनमें भरा हुआ पराग उसके बच्चों के लिए सुरक्षित रहे।
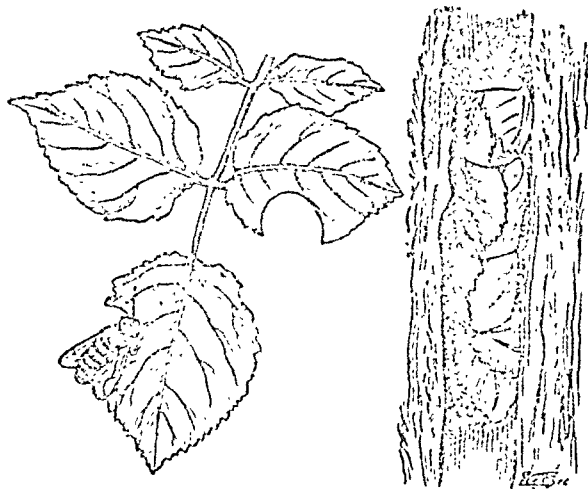
भौंरी

पतकटनी भौंरी अपने घर के लिए एक लंबा सूराख करती है जिसके भीतरी हिस्से में वह पत्तियों को काट-काटकर बहुत सुन्दर ढंग से अस्तर लगाती है। पहले थोड़ी दूर अस्तर लगाकर यह उसमें थोड़ा पराग भरती है और एक अंडा देकर उसको एक पत्ती के गोल ढक्कन से बंद कर देती है। फिर थोड़ा हिस्सा बनता है और उसमें पराग भरकर और एक अंडा देकर उसको भी ढक दिया जाता है। इस प्रकार जब पूरा सूराख भर जाता है तो पतकटनी उसका मुँह मिट्टी से बंद कर उड़ जाती है। उसका काम बस यहीं खत्म हो जाता है। उसके बाद भौंरी की तरह अपना रूपान्तरण करके इसके शिशु भी भौंरी बनते हैं और बिल का मुँह काटकर हवा में उड़ जाते हैं।

द्विपक्ष वर्ग

(ORDER DEPTERA)

इस वर्ग में वे कीट रखे गये हैं जो द्विपक्षकीट कहलाते हैं। इन कीटों के पंखों का केवल एक ही जोड़ा रहता है और पिछले पंखों का अभाव रहता है। इनके मुख विशेष रूप से चूसने के लिए बने हैं, लेकिन ये किसी-किसी कीट के भेदन का भी कार्य करते हैं। इन कीटों में पूर्ण रूपान्तरण होता है।

इस वर्ग के कीट मनुष्यों के लिए बहुत घातक सिद्ध हुए हैं और गरम देशों में इनसे बहुत सावधानी रखनी पड़ती है। मच्छर और मक्खियाँ जैसे रोग फैलानेवाले कीड़ों के कारण यह वर्ग हमारे लिए विशेष महत्त्व का है। यहाँ इन्हीं दोनों का वर्णन किया जा रहा है।

मच्छर

(MOSQUITO)

मच्छर हमारे बहुत ही परिचित कीट हैं जिनसे शायद ही ऐसा कोई होगा जो परेशान न हो गया हो। रात को सोते समय इनसे बचने के लिए हमको मसहरी में बंद हो जाना पड़ता है, तब भी इनसे छुट्टी नहीं मिलती। ये हमारा रक्त चूस कर ही सन्तुष्ट हो जाते तो भी कोई बात नहीं थी, लेकिन इनसे मलेरिया-जैसे भयंकर रोग फैलाकर हमारे स्वास्थ्य की जड़ हिला देते हैं।

मच्छर द्विपक्ष वर्ग के प्रसिद्ध कीट हैं जिनके शरीर में केवल दो पंख होते हैं। इनका मुख चूषण और भेदन कार्य के लिए उपयुक्त रहता है। इनकी लगभग १६०० जातियों का अभी तक पता चल सका है। ये पहाड़ों पर भी लगभग १००० फुट की ऊँचाई तक पाये जाते हैं और गरम देशों में तो ये इतनी अधिक संख्या में फैले रहते हैं कि इनके द्वारा सैकड़ों मनुष्यों को प्रतिवर्ष अपनी जान से हाथ धोना पड़ता है।

मच्छर

मच्छर का शरीर भी अन्य कीड़ों की भाँति तीन भागों में बँटा रहता है—सिर, वक्ष और उदर। इसकी आँखें संयुक्त (Compound) होती हैं और मुँह के दोनों ओर एक एक स्पर्श सूत्र (Feelers) रहते हैं। इनके मुँह के आगे एक सूँड (Pro-

bosces) रहती है जिसका विकास केवल मादाओं में होता है। इसमें छः वल्लम-जैसे तेज धारवाले अंग रहते हैं जिन्हें ये दूसरे जीवों के शरीर में गड़ाकर उनका रक्त चूसते रहते हैं। इनकी जीभ पतली और नोकीली तलवार जैसी रहती है। चूँकि रक्त चूसने की सूँड़ प्रकृति ने मादा मच्छरों को ही दी है अतः वे ही हमारा रक्त चूसकर अपना पेट भरती हैं और नर को रक्त चूसने में असमर्थ होने के कारण फूल और फलों के रसों पर ही निर्वाह करना पड़ता है।

मच्छरों के एक ही जोड़ा पंखों का रहता है जो एक मिनट में सैकड़ों बार खुलता बंद होता है और जिसके कारण एक प्रकार की तेज आवाज निकलती है। इनका उदर सँकरा और लंबा होता है जो ९ खंडों में बँटा रहता है।

मच्छरों की मादा खून चूसने के पूर्व अपनी नोकीली सूँड़ को त्वचा में गड़ाती है और धीरे-धीरे खून चूसने लगती है। उसके मुख से एक प्रकार की लार-सी निकलकर रक्त में मिल जाती है जो उसे गाढ़ा होकर जमने नहीं देती। यों तो मादा भी नर की तरह फल-फूल के रस से अपना पेट भरती है, लेकिन गर्भ धारण करने पर अंडों के पोषण करने के लिए इसके लिए रुधिर पीना आवश्यक हो जाता है। अंडा देने के लिए यह किसी ताल, पोखर, नाली या अन्य किसी स्थान के बंद पानी को चुनती है जहाँ यह प्रातःकाल दो सौ से तीन सौ तक अंडे देती है। अंडा देने के बाद वह अपनी पिछली टाँगों से उन्हें एक बेड़े (Raft) की शकल में सजाती है। अंडे शुरू में सफेद रहते हैं और एक प्रकार के लसलसे पदार्थ से आपस में जुड़े रहते हैं। लेकिन कुछ दिनों बाद इनका रंग गहरा भूरा हो जाता है।

कुछ समय बीतने पर अंडे फूटते हैं और प्रत्येक अंडे में से एक शिशुकीट (Larva) निकलता है। यह लगभग एक मिलीमीटर लंबा होता है और इसका शरीर भी सिर, वक्ष तथा उदर इन तीन भागों में बँटा रहता है। शिशुकीट का सिर बड़ा होता है जिसके अगले सिरे पर दो स्पर्श सूत्र (Antennae) रहते हैं। मुखद्वार के दोनों ओर एक-एक बालों की कूँची (Brush) होती है जिसको पानी में तेजी से चलाकर यह पानी में बहते हुए खाद्यपदार्थ के छोटे-छोटे टुकड़ों को अपने मुख तक पहुँचा देता है। आरंभ में शिशुकीट बहुत छोटा रहता है, लेकिन ६–७ दिन में ही यह बढ़कर लगभग आधा इंच का हो जाता है। इसके बाद यह मूककीट (Pupa) में परिवर्तित हो जाता है। मूककीट के उदर में नौ खंड होते हैं जिसमें से आठवें खंड में सुफने (Fins) का

रहती है। इसके सिर के अगले भाग में दो छोटे-छोटे स्पर्शसूत्र (Antennae) होते हैं।

मक्खी का वक्ष अंडाकार होता है। इसके तीन जोड़ टाँगें होती हैं, जिनके सिरे गद्दीदार रहते हैं। इस गद्दी पर वहुत से सूक्ष्म और खोखले वाल रहते हैं जिनसे एक प्रकार का लसलसा पदार्थ निकलता रहता है। मक्खी इसी लसलसे पदार्थ की सहायता से छतों पर उल्टी चल सकती है। इसके वक्ष से जुड़े हुए दो चौड़े पारदर्शी तथा त्रिकोणाकार पंख रहते हैं जो इसके वैठने पर सिकुड़कर पीठ तथा उदर को ढक लेते हैं। उड़ते समय इसके पंख फैलकर एक सेकेण्ड में ४०० वार चलते हैं जिससे एक प्रकार की भनभनाहट-सी सुनाई पड़ती है।
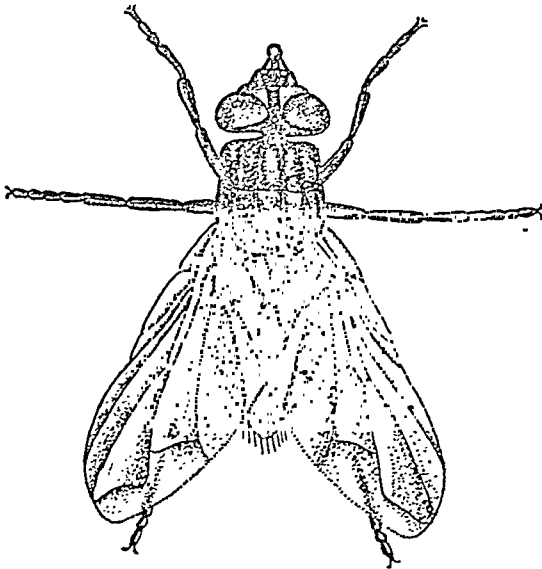
मक्खी

मक्खी का उदर भी अंडाकार रहता है। नर का उदर आठ खंडों का और मादा का नौ खंडों का होता है। यह ठोस पदार्थ नहीं खा सकती, इसी से शक्कर आदि पर वैठकर यह पहले अपने थूक से उसे गीला कर लेती है, फिर अपनी सूँड़ से चूस लेती है। मक्खी के नर मादा की शकल-सूरत में वहुत कम अंतर रहता है लेकिन मादा नर से कुछ वड़ी होती है। मादा के जननांग के अन्तर्गत अंडाशय और नर के जननांग के

दो वृषण (Testes) होते हैं। मक्खियाँ उड़ते समय मैथुन नहीं करतीं बल्कि इसके लिए इन्हें भूमि पर आना पड़ता है, जहाँ नर मादा पर चढ़ कर मैथुन-कार्य सम्पन्न करता है। इसमें एक-दो मिनट लग जाता है।

मैथुन के कुछ दिनों बाद मादा किसी कूड़ा-करकट में अंडे देती है जो सतह से लगभग आध इंच नीचे फेंका दिये जाते हैं। दिन भर में यह डेढ़ सौ तक अंडे देती है। मक्खी का जीवन बहुत थोड़े समय का होता है। यह ५ से १० सप्ताह तक जीती है किन्तु इतने ही थोड़े समय मे यह १०-१२ बार अंडे दे डालती है जो संख्या में डेढ़ दो हज़ार तक हो जाते हैं।

ये अंडे चमकीले सफेद और नाप में लगभग एक मिलीमीटर के होते हैं, जो ८ से २४ घंटे बाद फूटते हैं। इन अंडों से शिशुकीट (Larva) निकलते हैं जो दो बार अपने शरीर की खाल त्यागने पर बढ़कर दो मिलीमीटर से भी ज्यादा बड़े हो जाते हैं। इनका प्रत्येक त्वचा-मोचन एक या दो दिनों बाद होता है और उसके बाद ये शिशुकीट लगभग आध इंच के हो जाते हैं। इस दशा में आने में उन्हें चार-पाँच दिन से अधिक नहीं लगता और इस दशा को पहुँचकर वे कुछ समय तक विश्राम करके मूककीट (Pupa) का रूप धारण कर लेते हैं। मूककीट बनने पर उनका शरीर सिकुड़ने लगता है और उनके अगले और पिछले सिरे गोल हो जाते हैं। इनका रंग गहरा भूरा हो जाता है और इनके शरीर की मुलायम त्वचा एक कठोर जलरोधी खोल में परिवर्तित हो जाती है।

इस अवस्था में मूककीट को गरमी में ४-५ दिन तथा जाड़ों में कई सप्ताह लग जाते हैं, जिसके उपरान्त वे ऊपरी खोल को फाड़कर मक्खी के रूप में बाहर निकल आते हैं। बाहर निकलने पर मक्खी पहले सफेद रंग का रहती है और उसके पंख छोटे होते हैं, लेकिन शीघ्र ही उसके पंख फैलकर बड़े हो जाते हैं और वह भूरे रंग की हो जाती है और तब उसे हवा में उड़ने में कुछ देर नहीं लगती।

पिस्सू वर्ग

(ORDER SIPHONAPTERA)

इस छोटे से वर्ग में सब प्रकार के पिस्सू आदि रखे गये हैं जो एक प्रकार से द्विपक्षी जीव हैं, किन्तु जिनके पंख गायब हो जाने से उनको एक अलग वर्ग में रखना

पड़ा है। इनका शरीर बहुत कुछ पिचका सा रहता है जिनकी टाँगें कूदने और फुदकने के उपयुक्त रहती हैं।

इनकी वैसे तो कई जातियाँ हैं, लेकिन यहाँ केवल एक प्रसिद्ध पिस्सू का ही वर्णन दिया जा रहा है।

पिस्सू

(FLEA)

पिस्सू छोटे पंखहीन चपटे कीड़े हैं जिनकी लगभग ५०० जातियाँ सारे संसार में फैली हुई हैं। ये परजीवी-कीट हैं जो मनुष्यों, पशुओं तथा चिड़ियों के चिपके रहते हैं और उनका खून चूसते रहते हैं। ये प्रायः १/२० इंच के होते हैं और एक स्थान से दूसरे स्थान पर फुदक-फुदककर जाते हैं।

पिस्सू की मादा बहुत से अंडे देती है जिनके फूटने पर बिना टाँगवाले छोटे शिशु-कीट निकलते हैं। ये शिशुकीट कुछ दिनों में खा-पीकर मोटे हो जाते हैं और अपने चारों ओर रेशमी धागे की कुसुआरी-सी बना लेते हैं जिसके भीतर वे मूककीट बनकर कुछ समय तक पड़े रहते हैं। इसके उपरान्त वे प्रौढ़ पिस्सू बनकर बाहर निकल आते हैं। इनका मुख्य भोजन दूसरे जीवों का रक्त है।

चिड़ियों के पिस्सू पशुओं के पिस्सुओं से भिन्न होते हैं और हम कभी न तो किसी पक्षी के शरीर पर पशु के पिस्सुओं को देख सकते हैं और न पशुओं के शरीर पर चिड़ियों के पिस्सुओं को। इन पिस्सुओं का यह स्वभाव होता है कि जैसे ही वह पशु या पक्षी, जिसके शरीर में ये रहते हैं मरता है, वैसे ही ये उसके शरीर को छोड़कर किसी दूसरे के शरीर में अपने रहने का स्थान बना लेते हैं।

पिस्सू
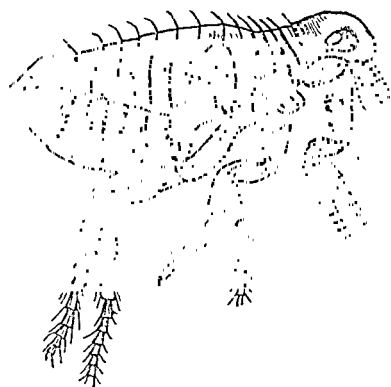
चूहों के शरीर पर रहनेवाले पिस्सुओं में जब प्लेग फैलता है तो चूहा मर जाता है और उसके पिस्सू निकलकर दूसरे चूहे के शरीर पर चढ़ जाते हैं। इसी प्रकार जब सब चूहे मर जाते हैं तो ये प्लेग के कीटाणुओं से भरे हुए पिस्सू आदमियों के शरीर पर चढ़ जाते हैं और उन्हें काटकर उनके रक्त में प्लेग के कीटाणुओं को पहुँचा देते हैं। इस प्रकार इन छोटे-छोटे कीड़ों के द्वारा हजारों मनुष्यों की जान चली जाती है।

लूता श्रेणी

(CLASS ARACHNIDA)

लूता श्रेणी में सब प्रकार की मकड़ियाँ, किल्नियाँ और बिच्छू आदि जीव एकत्र किये गये हैं। इनमें और कीट-पतंगों में यह भेद रहता है कि जहाँ कीट-पतंग के छ: पैर रहते हैं वहीं ये आठ पैरोंवाले होते हैं।

इनका शरीर दो मुख्य हिस्सों में बँटा रहता है—अगला हिस्सा और पिछला हिस्सा। अगले हिस्से में सिर और धड़ एक ही में मिला-सा रहता है और पिछले हिस्से में जिसे पेट का हिस्सा भी कहते हैं, इनका बाकी शरीर रहता है। ये सब कीट-पतंग की तरह साँस लेने की नली से साँस नहीं लेते बल्कि इनके साँस लेने का तरीका भिन्न है। इनमें से थोड़े ही ऐसे हैं जो पानी में रहते हैं। ज्यादा संख्या तो उन्हीं की है जिन्होंने पृथ्वी को अपना घर बना लिया है।

इनमें से अधिकांश मांसभक्षी और रात्रिचारी हैं जो प्रायः अकेले ही घूमना-फिरना पसन्द करते हैं। इनके नर-मादा में यह भेद रहता है कि नर मादा से छोटा होता है।

ये सब अंडज जीव हैं जिनके बच्चे अंडों के फूटने पर निकलते हैं। ये बच्चे १५वें दिन अपना खोल उतारकर कुछ दिनों पर अपने माँ-बाप के अनुरूप हो जाते हैं।

इस श्रेणी को इस प्रकार दो उपश्रेणियों में बाँटा गया है —

१ किंग-क्रैब उपश्रेणी—Sub Class Delobranchiata

२ लूता उपश्रेणी—Sub Class Embolobranchiata

किंग क्रैब अपनी उपश्रेणी में अकेला ही है, लेकिन लूता उपश्रेणी के जीव कई वर्गों में विभाजित किये गये हैं जिनमें से कुछ के नाम ये हैं —

१. लूता वर्ग—Order Araneae

२. वृश्चिक वर्ग—Order Scorpionidae

३. बरुथी वर्ग—Order Acarina

यहाँ उन्हीं वर्गों के प्रसिद्ध जीवों का वर्णन किया जा रहा है।

किंग-क्रैब उपश्रेणी

(SUB CLASS DELOBRANCHIATA)

इस उपश्रेणी में केवल एक ही वर्ग है जो किंग-क्रैब वर्ग कहलाता है। नीचे उनका वर्णन किया जा रहा है।

किंग-क्रैब वर्ग

(ORDER XIPHOSURA)

यह वर्ग बहुत बड़ा नहीं है। इसमें सभी प्रकार के किंग-क्रैब (King crab) रखे गये हैं जो अपनी बनावट और शकल-सूरत में अन्य जीवों से एकदम भिन्न हैं।

हमारे देश के छिछले समुद्रतटों पर ये काफी संख्या में पाये जाते हैं। वैसे अन्य देशों में भी इनकी ५-६ जातियाँ फैली हुई हैं।

यहाँ अपने यहाँ पाये जानेवाले प्रसिद्ध किंग-क्रैब का वर्णन किया जा रहा है।

किंग-क्रैब

(KING CRAB)]

किंगक्रैब समुद्र के जीव हैं जो हमारे देश में काफी संख्या में पाये जाते हैं।

इन जीवों का ऊपरी भाग गोल हड्डी का अर्धचन्द्राकार रहता है। बीच का या उदर का भाग इस अर्धचन्द्राकार हड्डी के नीचे जुड़ा रहता है। ऊपरी हिस्से का रंग गाढ़ा हरा या कलछौंह रहता है जिसमें एक प्रकार की चमक रहती है। इसी में इसकी चार आँखें रहती हैं।

किंग-क्रैब अपना ज्यादा समय गहरे पानी में नीचे अपने को बालू में गाडकर बिताता है, जहां उसके दुश्मनो की संख्या कम रहती है। यह बालू में काफी तेजी से चल लेता है और पानी में भी अपनी दुम चलाकर तेजी से तैर लेता है। इसका मुख्य भोजन पानी के कीडे आदि हैं।

इसकी मादा गरमियों मे समुद्र-तट के पास आकर अडे देती है। ये अडे कई जगहो पर दिये जाते हैं जो लगभग एक एक हजार की संख्या तक एक साथ रहते हैं। इन अडो के ऊपर एक चमडे जैसा मुलायम खोल चढा रहता है। अडे फूटने पर उनमें से जो बच्चे निकलते हैं वे बहुत चचल होते हैं और वे भी अपने मा किंग-क्रैब की तरह बालू के भीतर गाडने में उस्ताद होते हैं। ये पानी में भी बडी खूबी से तैरते हैं। इस अवस्था मे इनके शरीर पर भाले-जैसी दुम का अभाव रहता है।

कुछ समय के उपरात इनके तेज और नोकीली दुम निकल आती है और धीरे-धीरे इनकी शक्ल बदलकर प्रौढ किंग-क्रैब जैसी होने लगती है। लगभग आठ वर्षो में ये प्रौढ हो जाते हैं और इनका ऊपरी भाग ९-१० इच लबा हो जाता है।
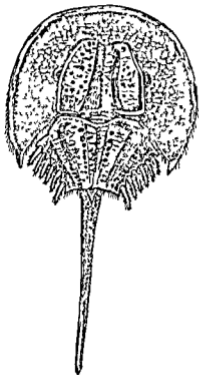
किंग क्रैब

लूता उपश्रेणी

(SUB CLASS EMBOLOBRANCHIATA)

इस उपश्रेणी को कई वर्गों में विभाजित किया गया है जिसमे लूता वर्ग, वृश्चिक-वर्ग तथा किल्ली-वर्ग प्रमुख हैं। ये सब आठ पैरवाले मासाहारी जीव हैं, जिन्हे हम अक्सर देखते रहते हैं। आगे इन वर्गों का सक्षिप्त वर्णन दिया जा रहा है।

लूता वर्ग

(ORDER ARANEAE)

लूता वर्ग काफी बड़ा है जिसमें संसार की हर तरह की मकड़ियाँ रखी गयी हैं। इन जीवों से हम सभी परिचित हैं और इन्हें हम जंगल, बाग, बस्ती तथा खेतों और मैदानों में भी देख सकते हैं।

मकड़ियाँ संसार के प्रत्येक भाग में पायी जाती हैं और इनकी लगभग १४,००० जातियों का अभी तक पता चल सका है।

यहाँ अपने यहाँ की एक मकड़ी का वर्णन किया जा रहा है क्योंकि इन सब की आदतें प्रायः एक-जैसी ही होती हैं।

मकड़ी

(GARDEN SPIDER)

मकड़ियाँ हमारे बहुत परिचित जीव हैं जिनकी लगभग १४ हजार जातियाँ सारे संसार में फैली हुई हैं।

इनका शरीर दो मुख्य भागों में विभक्त रहता है। पहले अर्थात् सिर के भाग में इनकी आठ आँखें और दूसरे अर्थात् धड़ के भाग में इनकी आठ टाँगें रहती हैं। इनके शरीर के पिछले सिरे पर छः छोटी-छोटी घुंडियों की शकल के कर्तनांग (Spinnerets) रहते हैं, जिनके द्वारा ये महीन रेशमी धागा निकालकर अपना जाला बुनती हैं। ये घुंडियाँ पोली होती हैं और उनके नीचे तरल पदार्थ भरा रहता है। घुंडियों में छेद रहता है जिससे यह तरल पदार्थ बाहर निकलता है और हवा में सूखकर रेशमी धागा बन जाता है। मकड़ियाँ अपने इच्छानुसार छेद को छोटा-बड़ा बनाकर धागे को भी मोटा-महीन बना लेती हैं।

मकड़ियों के पंख नहीं होते। उनकी टाँगों के सिरे पर पंजे रहते हैं जो इनके बहुत काम के होते हैं। इन्हीं पंजों से वे अपने शिकार को पकड़ती हैं और इन्हीं से वे जाला बुनते समय रेशमी धागों को अलग-अलग रखती हैं। इतना ही नहीं, इन्हीं पंजों से वे अपने बदन को कंघी करके उसे साफ-सुथरा भी रखती हैं।

मकडी के जबडे बहुत तेज और मजबूत होते हैं। इनके दाँत विषैले सर्पों की तरह पोले होते हैं जिनके नीचे विष की थैली रहती है। मकडी अपने शिकार के शरीर में इन्हीं दाँतों को गडाकर विष भर देती है और उसे मार डालती है। मकडियाँ आपस में भी बहुत लडती हैं और एक दूसरे को मारकर खा जाती हैं।

मकडियों के स्पर्शसूत्र (Antennae) नहीं होते, लेकिन उनके मुख के पास टाँगो-जैसे दो हुक रहते हैं जिनसे वे अपने शिकार को पकडती हैं और जो उनके हाथो की तरह इस्तेमाल होते हैं।
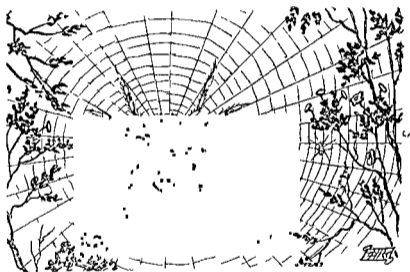
मकडी

मकडियो का अन्य कीडो की तरह शिशुकीट और मूककीटो मे रूपान्तरण नही होता बल्कि अंडा फूटने पर उसमे से जो बच्चा निकलता है वह कद में छोटा रहने पर भी मकडी की ही तरह रहता है। अंडे फूटने पर बच्चे एक दो दिन रेशमी धागा मे लिपटे रहते हैं। उसके बाद वे इस रेशमी पोशाक को फाडकर बाहर निकल आते हैं।

मकडियो के जाले के बारे मे कुछ कहे बिना इनका वर्णन अधूरा ही रह जायगा।

हमारे बाग में रहनेवाली प्रसिद्ध मकड़ी, जिसका यहाँ वर्णन किया जा रहा है, हमारी हथेली से कुछ बड़ा जाला बुनती है। यह जाला उसके रहने का घर नहीं है बल्कि यह तो उसका शिकार फँसाने का जाल है जिसमें वह कीड़े-मकोड़ों को फँसा-कर अपना पेट भरती है। वह अपने रहने के लिए तो थैलीनुमा घर बनाती है, जहाँ रात भर रहकर वह अपना सारा दिन जाले के आस-पास ही बिताती है।

जाला बुनने से पहले मकड़ी दो-चार मोटे धागों से जाले की बुनियाद बना लेती है जिसके सहारे जाले का ताना-बाना बुना जाता है। ये बुनियादी धागे एक डाल से दूसरी डाल तक मजबूती से कस दिये जाते हैं। उसके बाद वह जाले का बीच का हिस्सा बनाती है जहाँ से चारों ओर उसी प्रकार महीन धागे फैलाये जाते हैं जिस प्रकार गाड़ी के पहिये के बीच से चारों ओर पतली-पतली आरागज की लकड़ियाँ लगायी जाती हैं।

इतना कर लेने पर वह बीच से शुरू करके हर खाने को महीन धागे से भरकर जाले को पूरा कर देती है। जाले के बीच में कुछ ऐसे धागे लगे रहते हैं जिन पर लस-लसा पदार्थ लगा रहता है। इन धागों को छूते ही कीड़े के पंख उसमें चिपक जाते हैं और वह जाले से बाहर नहीं जा सकता। जाले में कीड़े को फँसा देखकर मकड़ी वहाँ पहुँच जाती है और उसका खून चूस लेती है।

मकड़ी का जाला काफी दिनों तक रहता है क्योंकि मकड़ी उसकी बराबर देख-भाल और मरम्मत करती रहती है।

वृश्चिक वर्ग

(ORDER SCORPIONIDEAE)

वृश्चिक वर्ग बहुत छोटा है जिसमें सब प्रकार के बिच्छू रखे गये हैं जो अपने विषैले डंक के कारण बहुत प्रसिद्ध हैं। ये सब मांसाहारी जीव हैं जिनके नर मादाओं से कद में छोटे होते हैं।

हमारे यहाँ काले और भूरे रंग के बिच्छू पाये जाते हैं लेकिन दोनों का स्वभाव एक-जैसा ही रहता है। भूरे बिच्छू २-३ इंच के और काले ८-९ इंच तक के पाये जाते हैं।

बिच्छू

(SCORPION)

बिच्छू का नाम किसने न सुना होगा ? साँप बिच्छू और बर्रे इन तीनो जहरीले जीवो का नाम सुनते ही हमे डर लगता है। साँप घर में कम ही दिखाई पडते हैं और बर्र का छत्ता भी हम दूर ही से देख लेते हैं लेकिन बिच्छू हमारे घरो के कोनो में इस तरह छिपा रहता है कि हम उसे जल्द देख नही पाते और कही यदि भूल से भी हमारा पैर उसे छू गया तो वह अपना जहरीला आँडा या दुम के सिरे का नोकीला हिस्सा हमारे बदन म घुसेड ही देता है।

बिच्छू

बिच्छू के आँडे (डक) में बडा तेज जहर होता है जो हमारे शरीर मे प्रवेश करते ही इतनी जलन और पीडा उत्पन्न करता है कि हम मारे दर्द के तडपने लगते हैं। फिर कई घटो बाद दवा-दारू करने पर यह दर्द कम होता है, लेकिन उसकी झनझनाहट कई दिनो तक बनी रहती है।

बिच्छू को हमने जरूर देखा होगा। हमारे यहा इनकी दो जातियाँ पायी जाती हैं—एक काले रग का होता है, दूसरा भूरे रग का। भूरे बिच्छू २-३ इच के और काले ८-९ इच तक के पाये जाते हैं। यह आठ पैरोवाला चपटा सा जीव है जिसके अगले दोनो सँडसीनुमा पजे झींगे की तरह मजबूत और सिरे की ओर चपटे रहते हैं। इसके धड का पिछला हिस्सा पतला होकर इसकी दुम तक चला जाता है जहा सिरे पर इसका गोल आँडा रहता है, जो पीछे की ओर सुई की तरह नोकीला होता है। बिच्छू इसी नोक से दुश्मन के शरीर में उसी प्रकार विष प्रवेश करा देता है, जैसे साँप के पोले विषदतो से दूसरे के शरीर मे विष पहुँचा दिया जाता है।

बिच्छू का डक मारना हमारे लिए कष्टकर जरूर होता है, लेकिन यह बात हमें अच्छी तरह जान लेना चाहिये कि वे बिना दबाव में पडे अकारण ही डक नही

मारते। ये वैसे तो बहुत डरपोक और छिपकर रहनेवाले जीव हैं जिन्हें दिन की तेज रोशनी जरा भी नहीं भाती। इसी कारण ये प्रायः घरों में, बिलों में, जूतों में और ईंट-पत्थर या मिट्टी के ढेरों में रहकर अपना समय बिताया करते हैं और हम इन्हें निकट रहने पर भी बहुत कम देख पाते हैं।

पहाड़ी प्रान्तों में तो बिच्छू प्रायः पत्थर के टुकड़ों के नीचे ही छिपे रहते हैं लेकिन रेतीली या भुरभुरी मिट्टी में ये अपने मजबूत पैरों से काफी गहरे बिल खोद डालते हैं। इन्हीं बिलों में सारा दिन बिताकर ये सूर्यास्त होने पर अपने भोजन की तलाश में बाहर निकलते हैं। इनकी निगाह बहुत तेज नहीं होती इसीलिए ये जल्दी-जल्दी इधर-उधर आ-जाकर अपने मजबूत सँड़सीनुमा पंजे से अपना शिकार पकड़ते हैं।

इनके मुख्य भोजन में कीड़े-मकोड़े और मकड़ियाँ आती हैं लेकिन इनको पकड़ने के लिए बिच्छुओं को अपना डंक नहीं इस्तेमाल करना पड़ता। इन सबको तो वे अपने पंजों से ही पकड़कर चट कर डालते हैं, लेकिन यदि उन्हें कोई बड़ा शिकार पकड़ना हुआ जो उनसे लड़ाई ठानने को तैयार हो गया तो उसके लिए वे अपना डंक इस्तेमाल करते हैं और तब एक ही वार के डंक प्रहार से शिकार अशक्त हो जाता है।

वैसे तो बिच्छू सीधे जीव हैं, लेकिन कभी-कभी दो नर बिच्छू मादा के लिए बहुत विकट लड़ाई लड़ते हैं। जीतनेवाला बिच्छू मादा के पास जाता है और तब दोनों आमने-सामने मुँह करके अपनी दुम उठाकर खड़े होते हैं। नर बड़े प्यार से अपने पंजों से मादा के पंजों को पकड़कर पीछे की ओर खिसकता है और मादा उसका सहारा लेकर आगे की ओर बढ़ती है। इसी प्रकार दोनों एक घंटे तक आगे-पीछे खिसकते रहते हैं, उसके बाद दोनों जोड़ा बाँधकर अपना नया बिल या नया घर बनाने में लग जाते हैं।

लेकिन इतने प्रेम और स्नेह से प्रारंभ होनेवाला जीवन बहुत स्थायी नहीं रहता और उसका अन्त दुःखद ही होता है। इसका कारण यह है कि बिच्छू की मादा कद में नर से बड़ी होती है और नर पर क्रुद्ध होते ही वह उसे मारकर खा जाती है, लेकिन उसकी यह क्रूरता अपने नर ही तक सीमित रहती है। अपने बच्चों को वह बहुत प्यार करती है और उन्हें अपनी पीठ पर बिठाकर घुमाया-फिराया करती है।

वरथी वर्ग

(ORDER ACARINA)

ससार का शायद ही कोई ऐसा स्थान हो जहाँ कुटकियाँ न पायी जाती हों इनकी हजारो जातियाँ सारी पृथ्वी में फैली हुई हैं जिनमे से कुछ पानी में भी रहती है।

ये बहुत छोटे कद की होती हैं और इनके शरीर की बनावट बहुत कुछ इनके रहन सहन के अनुसार ही होती है। ये सब अण्डज जीव हैं जो अडो से पैदा होते हैं।

यहाँ एक कुटकी तथा किल्नी का वर्णन किया जा रहा है।

कुटकी

(ITCH MITE)

कुटकी को वरथी भी कहा जाता है। ये आकार में एक मिलीमीटर से कम और किलनियो से छोटी होती हैं और मनुष्यों की त्वचा को छेदकर उनके शरीर में खुजली का रोग फैला देती है। ये सारे ससार में फैली हुई हैं।

कुटकियाँ अडो से पैदा होती हैं। ये परजीवी कीट हैं जो दूसरे प्राणियों के शरीर मे रहते हैं और उसी के शरीर में सैकडो की सख्या मे अडे देते हैं। अडे देने के बाद मादा कुटकी मर जाती है। ये अडे लगभग एक सप्ताह बाद फूटते हैं जिनसे शिशुकीट (Nymph) निकलते हैं जो कई बार त्वचामोचन (Moulding) करके प्रौढ कुटकी का रूप धारण करते हैं। इसमें लगभग एक महीने का समय लग जाता है। पहले शिशुकीटावस्था मे इनके छ टागे रहती है,लेकिन प्रौढ हो जाने पर ये आठ पैरोकी हो जाती हैं। इनकी टागो के सिरे चूषको का काम करते हैं जिनसे ये दूसरे जीवो के शरीर पर बडी मजबूती से चिपकी रहती हैं। इनका मुख कुतरनेवाले कीडो की तरह होता है जिसको त्वचा मे गडाकर ये रक्त चूसा करती हैं और उसके शरीर में खुजली पहुँचा देती हैं।

किलनी

(TICK)

किलनियाँ परजीवी कीट हैं जो दूसरे जानवरो के शरीर पर रहकर अपना जीवन बिता देती हैं। ये प्राय कुत्तो बैलो और भेड आदि जानवरो की त्वचा पर पायी जाती

हैं और कई जातियों की होती हैं। इनकी मादा नर की अपेक्षा बड़ी होती है। स्पर्श-सूत्रों के अभाव के कारण इनकी टाँगों की पहली जोड़ी के सिरे इनके स्पर्श-सूत्र (Antennae) का काम देते हैं।

किलनी

किलनियाँ चपटे शरीर की होती हैं जिनका जबड़ा कुतरनेवाले जीवों की तरह रहता है। इसीको दूसरे जीवों के शरीर में गड़ाकर वे उनका रक्त पान करती हैं।

गर्भाधान के बाद नर किलनी (किलना) मर जाती है और मादा अंडे देने से पहले रक्त चूसकर फूलने लगती है। वह काफी फूलनें पर त्वचा छोड़कर अलग गिर पड़ती है और किसी सुरक्षित स्थान पर
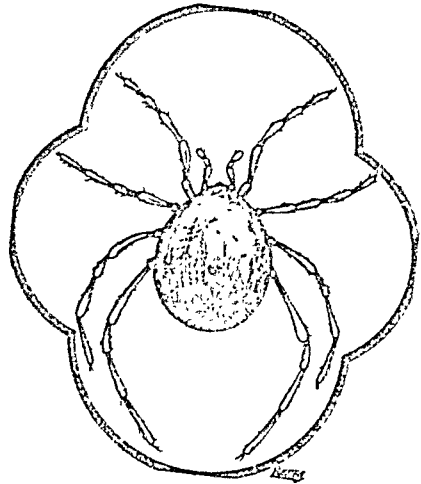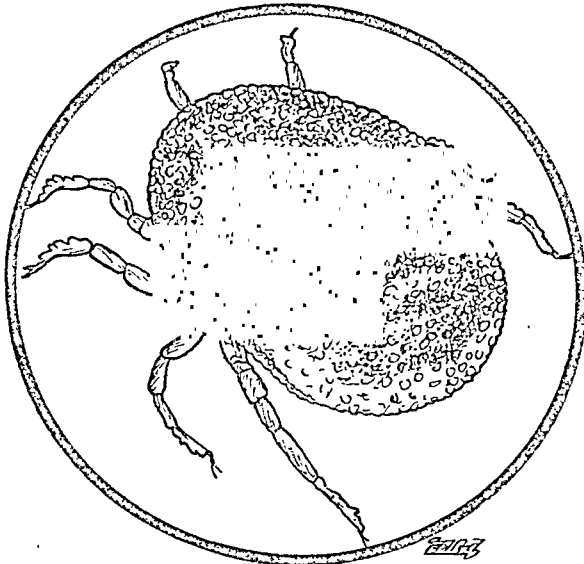
किलना

जाकर छिप जाती है। इसके आठ-दस दिन बाद वह अंडा देना प्रारंभ कर देती है। जो कई दिनों तक बराबर चलता रहता है। दो-तीन सप्ताह के बाद प्रत्येक अंडे से एक एक शिशुकीट (Nymph) निकलता है जिसके केवल तीन जोड़ टांग रहती है। ये शिशुकीट किसी जानवर की त्वचा से चिपक जाते हैं जहां कुछ समय बाद उनका त्वचामोचन (Moulding) होता है। इसके बाद उनके चार जोड़ टांग हो जाती हैं और फिर एक और त्वचामोचन के बाद ये प्रौढ़ होकर किलनी बन जाती हैं।

भाग २

मेरुदंडीय उपजगत

SUB KINGDOM VERTEBR.

खंड ८

मेरुपृष्ठीयजीव विभाग

(PHYLUM CHARDATA)

संसार के सारे जीवों को विद्वानों ने दो मुख्य भागों में विभक्त किया है —

१. अमेरुपृष्ठीय प्राणी

२. मेरुपृष्ठीय प्राणी

अमेरुपृष्ठीय प्राणी वे हैं जिनके शरीर में रीढ़ की हड्डी या मेरुदंड नहीं होता और मेरुपृष्ठीय प्राणियों का विशेष गुण यह होता है कि उनका शरीर रीढ़ की हड्डी से युक्त रहता है।

लेकिन इन दोनों प्रकार के जीवों के बीच के कुछ ऐसे जीव भी हैं जो न तो मेरुदंडीय जीवों की श्रेणी में आते हैं और न उन्हें अमेरुदंडीय जीव ही कहा जा सकता है। इन प्राणियों को दोनों प्रकार के जीवों को जोड़नेवाली कड़ी अवश्य कहा जा सकता है, क्योंकि उनके शरीर में जो एक कठोर शलाका-सा नोटोकार्ड (Notocard) रहता है, वह मेरुदंड का प्रारम्भिक रूप कहा जा सकता है। इनको देखकर हमें यह स्पष्ट हो जाता है कि किस प्रकार बिना रीढ़वाले जीवों में पहले नोटोकार्ड का विकास हुआ और फिर किस प्रकार ये नोटोकार्डवाले जीव विकसित होकर मेरुदंडीय जीव बन गये।

वास्तविक मेरुदंडीय-जीवों के उपविभाग (Phylum Chardata) के वर्णन से पहले हमें संक्षेप में इन नोटोकार्डवाले जीवों के बारे में कुछ जान लेना चाहिये जो तीन उपविभागों में इस प्रकार बाँटे गये हैं—

१. हेमीकार्डेटा उपविभाग—Sub Phylum Hemichardata

२. यूरोकार्डेटा उपविभाग—Sub Phylum Urochardata

३. केफलोकार्डेटा उपविभाग—Sub Phylum Cephlochardata

हेमीकार्डेटा उपविभाग
(SUB PHYLUM HEMICHARDATA)
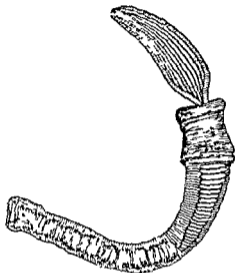
बैलानोग्लोसेस

इस उपविभाग के अन्तर्गत वे जीव आते हैं जिनका शरीर कोमल और कृमि के आकार का लम्बा होता है। इन जीवों के नोटोकार्ड प्रारम्भिक अवस्था में कीचड़ में ही गड़े रहते हैं।

इनमें बैलानोग्लासस (Balanoglossess) नाम का जीव बहुत प्रसिद्ध है।

यूरोकार्डेटा उपविभाग
(SUB PHYLUM UROCHARDATA)
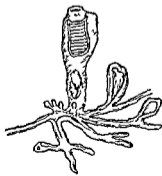
एसीडियन

इस उपविभाग के जीवों का आकार थैली जैसा होता है जिनके ऊपरी भाग पर दो छिद्र रहते हैं। इनमें से अधिकांश जीव पत्थर की चट्टानों पर चिपके रहते हैं।

इनमें एसीडियन (Ascidian) नाम का जीव सबसे प्रसिद्ध है। इसे ट्यूनीकेट (Tunicate) भी कहा जाता है। इसका शैशवकाल मेंढकों की तरह टैडपोल (Tadpole) अवस्था में बीतता है।

उस समय इनके लंबी पूंछ रहती है जिसमें नोटोकार्ड मौजूद रहता है, लेकिन उस अवस्था को पार करने पर इनकी पूंछ और नोटोकार्ड सभी लुप्त हो जाते हैं और ये जीव थैली का आकार ग्रहण करके किसी चट्टान में चिपक जाते हैं।

कैफिलोकार्डेटा उपविभाग

(SUB PHYLUM CAPHILOCHORDATA)

इस समुदाय के प्राणी पिछले दोनों समुदाय के प्राणियों से अधिक विकसित होते हैं। उनकी शक्ल मछली की तरह सूच्याकार होती है और उनके शरीर में नोटोकार्ड सदैव उपस्थित रहता है।

इस उपविभाग का सबसे विख्यात प्राणी ऐम्फीआक्सस (Amphioxus) है जो समुद्र के छिछले पानी में पाया जाता है। यह आकार में मछली-जैसा होता और इसके शरीर की लंबाई डेढ़-दो इंच से ज्यादा नहीं होती। इसका शरीर चपटा और पारदर्शी रहता है।

ऐम्फीआक्सस

ये जीव ज्यादातर अपने शरीर के पिछले हिस्से को बालू में गाड़ लेते हैं और पानी में मुँह खोले पड़े रहते हैं। पानी के साथ भोजन के जो छोटे-छोटे कण इनके मुँह में चले जाते हैं उन्हीं से इनका पोषण होता है।

इन तीनों उपविभागों के पश्चात् हमारे वास्तविक मेरुपृष्ठीय-जीव आते हैं जिनके शरीर में पूर्ण विकसित मेरुदंड होता है। इन सब जीवों को मेरुपृष्ठीय-उपविभाग के अन्तर्गत रखा गया है, जिनकी कुछ विशेषतायें नीचे दी जाती हैं :—

१. इन जीवों में नोटोकार्ड का स्थान मेरुदंड ले लेता है जो अनेक टुकड़ों के मिलने से बनता है।

२. इन जीवों के शरीर के भीतर कड़ी हड्डियों का कंकाल रहता है।

३. इन जीवों का हृदय शरीर के अधोभाग (Ventral Side) में स्थित रहता है।

४ इनके उपागो में केवल दा जोड़े रहते हैं जो मछलियो में वक्ष पक्ष (Pectoral Fin) तथा अध पक्ष (Ventral Fin) के रूप में देखे जा सकते है।

५ इन जीवो के पृष्ठभाग में एक चेतना रज्जु (Nerve cord) रहती है जिसका अगला सिरा फैलकर इनके मस्तिष्क का निर्माण करता है।

६ इन सबका सिर स्पष्ट रहता है और उसमे के अवयव भी साफ जाहिर होते रहते हैं।

७ इनके दोनो जबड़ो के बीच में एक कोर सधि (Hinge joint) रहती है जिससे ये प्राणी अपना मुख खोल और बद कर सकते है।

८ इनमें हीमाग्लोबिन (Haemoglobin) सदैव रुधिर कोशाओ में मिलता है।

मेरुपृष्ठीय उपविभाग

(SUB PHYLUM VERTEBRATA)

मेरुपृष्ठीय जीवो के इस उपविभाग में ससार के सभी मेरुदडीय जीव आ जाते है जिनके खास-खास गुणो का उल्लेख ऊपर हो चुका है। इसमें सब प्रकार की मछलियाँ उभयचर सरीसृप चिड़िया तथा स्तनपायी जीव हैं जो एक दूसरे से इतने भिन्न हैं कि इनको अलग-अलग सात श्रेणियो मे इस प्रकार बाटा गया है —

१ चूषमुखी मत्स्य श्रेणी— Class Marsipobranchii

२ कोमलास्थि मत्स्य श्रेणी—Class Selachii

३ दृढास्थि मत्स्य श्रेणी— Class *Pisces*

४ उभयचर श्रेणी— Class Amphibia

५ सरीसृप श्रेणी— Class Reptilia

६ पक्षि श्रेणी— Class Aves

चूषमुखी मत्स्य श्रेणी

(CLASS MARSIPOBRANCHII)

इस श्रेणी में सर्प के आकार की उन थोड़ी-सी मछलियों को रखा गया है जो दूसरी सब मछलियों से कई बातों में भिन्न हैं।

ये मछलियाँ बाम (Eel) की तरह सर्पाकार होती हैं जिनके दोनों बगल गलफड़ों की जगह दो शिगाफ से कटे रहते हैं। इनकी दुम के पास एक पृष्ठ-पक्ष (Dorsal Fin) या पीठ का सुफना भर रहता है जिसमें काँटे नहीं होते। इस सुफने के अलावा इनके शरीर पर और कहीं किसी प्रकार के सुफने (Fins) नहीं रहते। इनका शरीर चिकना और बिना सेहर के रहता है।

इन प्राणियों का मुख गोल छत्ते-जैसा होता है जिसमें बहुत-से दाँत रहते हैं। इनकी जबान भी मोटी, दलदार और गोल होती है जिस पर बहुत कड़े शल्क रहते हैं। अपनी इस मुग्दर के आकार की जबान को आगे-पीछे चलाकर ये जीव दूसरी मछलियों का मांस नोचकर अपना पेट भरते हैं।

इनके शरीर की अन्तर्रचना भी साधारण मछलियों से भिन्न रहती है। इनकी रीढ़ पूर्ण रूप से विकसित नहीं होती। उसे नोटोकार्ड और मेरुदंड के बीच की अवस्था कहा जा सकता है और उसे देखते हुए यदि इन जीवों को एक प्रकार का अविकसित मत्स्य कहा जाय तो अनुचित न होगा। इनमें लैम्प्रे नाम का जीव बहुत प्रसिद्ध है जो समुद्रों में और कहीं-कहीं नदियों में भी पाया जाता है।

इसके बाद हमारी साधारण मछलियाँ आती हैं जो नीचे दी हुई दो श्रेणियों में विभक्त की गयी हैं—

१. कोमलास्थि-मत्स्य श्रेणी—Class Selachii

२. दृढ़ास्थि-मत्स्य श्रेणी—Class Pisces

---

४ इनके उपांगों में केवल दो जोड़े रहते हैं जो मछलियों में वक्ष पक्ष (Pectoral Fin) तथा अध पक्ष (Ventral Fin) के रूप में देखे जा सकते हैं।

५ इन जीवों के पृष्ठभाग में एक चेतना रज्जु (Nerve cord) रहती है जिसका अगला सिरा फैलकर इनके मस्तिष्क का निर्माण करता है।

६ इन सबका सिर स्पष्ट रहता है और उसमें के अवयव भी साफ जाहिर होते रहते हैं।

७ इनके दोनों जबड़ों के बीच में एक कोर संधि (Hinge joint) रहती है जिससे ये प्राणी अपना मुख खोल और बंद कर सकते हैं।

८ इनमें हीमोग्लोबिन (Haemoglobin) सदैव रुधिर कोशाओं में मिलता है।

मेरपृष्ठीय उपविभाग

(SUB PHYLUM VERTEBRETA)

मेरपृष्ठीय जीवों के इस उपविभाग में संसार के सभी मेरदंडीय जीव आ जाते हैं जिनके खास-खास गुणों का उल्लेख ऊपर हो चुका है। इसमें सब प्रकार की मछलियाँ उभयचर सरीसृप चिड़िया तथा स्तनपायी जीव हैं जो एक दूसरे से इतने भिन्न हैं कि इनको अलग-अलग सात श्रेणियों में इस प्रकार बाँटा गया है —

१ चूषमुखी मत्स्य श्रेणी— Class Marsipobranchii

२ कोमलास्थि मत्स्य श्रेणी—Class Selachii

३ दृढास्थि मत्स्य श्रेणी— Class Pisces

४ उभयचर श्रेणी— Class Amphibia

५ सरीसृप श्रेणी— Class Reptilia

६ पक्षि श्रेणी— Class Aves

जाकर दोनों ओर के गलफड़ों से वाहर निकल जाता है। इन गलफड़ों के भीतर की वनावट पर्तदार होती है जिसमें वहुत-सी तहें रहती हैं। इन पर्तों में रक्त का प्रवाह वहुत तेज रहता है और इन पर होकर जव पानी वहुत तेज वहता है तो ये रक्त-शिराएँ पानी में घुली हुई प्राणवायु या आक्सीजन को खींच लेती हैं। इसके वाद गंदी हवा और पानी गलफड़ों के दराजों से उसी प्रकार वाहर निकल जाता है जिस प्रकार हमारी नाक से भीतर की हवा वाहर निकल जाती है। संक्षेप में मछलियों के साँस लेने का यही तरीका है।

चूँकि मछलियाँ पानी में रहनेवाले जीव हैं जिन्हें अपना सारा जीवन खारे या मीठे पानी में विताना पड़ता है, इसलिए प्रकृति ने उनके शरीर को सूच्याकार वनाया है। यदि उनका शरीर लंवा न होकर गोल या चौकोर होता तो उन्हें पानी में तैरने के लिए इतनी सहूलियत न होती क्योंकि हवा हमारे चलने-फिरने में उतनी रुकावट नहीं डालती जितना पानी डालता है। इसीलिए जव हम पानी में हाथ-पाँव चलाते हैं तो थोड़ी ही देर में थक जाते हैं।

मछलियों के शरीर को तीन मुख्य भागों में वाँटा जा सकता है—सिर, धड़ और दुम का भाग। अन्य प्राणियों की तरह मछलियों के गर्दन नहीं होती वल्कि उनका सिर और धड़ एक ही में मिला रहता है। उनके थूथन से गलफड़ तक का भाग सिर कहलाता है और उसके वाद से मलद्वार तक का भाग धड़। फिर उसके वाद जो आखिरी हिस्सा वचता है उसे हम दुम कहते हैं।

मछलियों के शरीर के ऊपर, नीचे, पीछे और दोनों वगल पंखियों के आकार के सुफने (Fins) रहते हैं जिन्हें पखनियाँ भी कहते हैं। सुफने ही मछलियों के हाथ-पैर हैं और इन्हीं के सहारे ये पानी में इधर-उधर चलती-फिरती हैं। ये पखनियाँ वास्तव में पतली हड्डियों के समूह हैं जो आपस में जुटे रहते हैं। पीठ पर, नीचे और दुम पर का सुफना अकेला ही रहता है, लेकिन मछलियों के गलफड़ के पास के और पेट के निकट के सुफने दोनों ओर जोड़े में रहते हैं। पीठ पर का वड़ा सुफना, जो अक्सर
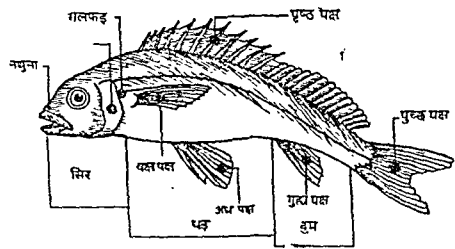
खड ६

मछलियाँ

Fishes

मछलियों के बारे में इतना तो हम सभी जानते हैं कि ये पानी में रहनेवाले जीव हैं जो पानी से अलग किये जाने पर उसका बिछोह नही सह पाते और मर जाते हैं। लेकिन यह शायद हममें से बहुत लोग न जानते होंगे कि इनमें से कुछ मछलियाँ इतनी सुन्दर और रंगीन होती हैं कि उनकी समता न तो सुन्दर से सुन्दर चिड़ियाँ ही कर सकती हैं और न रंगीन तितलियाँ ही।

मछलियों की रहन सहन और आदतें कम आश्चर्यजनक नही हैं, लेकिन सबसे अधिक आश्चर्यजनक तो उनका साँस लेने का ढग है जिसके बारे में हम सब कुछ न कुछ जानते ही हैं। हम लोग जिस तरह फेफड़े से साँस लेकर बाहर की ओर साँस छोड़ते हैं, मछलियाँ वैसा नही करती। वे अपने गलफड़ों से साँस लेती हैं। इस प्रकार प्रकृति ने उनको पानी मे घुली हुई प्राणवायु (Oxygen) से ही साँस लेकर जिन्दा रहने के योग्य बनाया है। पानी से बाहर निकाले जाने पर ये बाहर फैली हुई हवा से, जिसमें बीस फीसदी आक्सीजन (Oxygen), उन्नीस फीसदी नाइट्रोजन (Nitrogen) और साठ फीसदी अगारव या वाष्प रहती है, कोई लाभ नही उठा पाती और पानी से बाहर रहने पर उनका उसी तरह दम घुट जाता है जैसे पानी में घुली हुई हवा को फेफड़ा के द्वारा काई उपयोग न कर सकने से, पानी के भीतर हमारा दम घुट जाता है।

हम लोग जिस तरह अपनी नाक और मुँह से प्राणवायु (आक्सीजन) भीतर खींचकर अपने फेफड़ा को भर लेते हैं और फिर कारबन डाइ आक्साइड (Carbon-Di Oxide) बाहर निकाल देते हैं मछलियाँ वैसा नही कर सकती। वे यह काम अपने गलफड़ा से लेती हैं। वे मुँह से पानी भीतर खींचती हैं जो उनके गले के अदर

से बाहर होते ही कुछ नहीं देख पातीं और पानी में भी उनको एक दो फुट से ज्यादा दूर की चीज नहीं दिखाई पड़ती।

मछलियों के कान का बाहरी भाग नहीं रहता क्योंकि हम लोगों की तरह उनके कान में सीधे आवाज नहीं जाती। होता यह है कि ध्वनि की लहरें पानी के जरिये उनके कान के भीतरी हिस्से में पहुँचकर उन्हें आवाज की खबर दे देती हैं। मछलियों के नाक के छिद्र साफ जाहिर होते हैं, लेकिन वे उनके सांस लेने के लिए नहीं बल्कि सूंघने के काम आते हैं, हालाँकि मछलियों की सूंघने की शक्ति बहुत क्षीण होती है।

वैसे तो मछलियों के सारे शरीर की त्वचा में स्पर्श-ज्ञान रहता है, लेकिन उनके ओठों के अलावा कीचड़ में रहनेवाली कुछ मछलियों के बड़ी-बड़ी मूंछें होती हैं। कीचड़ में जहाँ उनकी आंखें काम नहीं करतीं वहां उनकी ये मूंछें ही उनकी स्पर्शेन्द्रिय का काम देती हैं। इन्हीं के सहारे वे कीचड़ में बिना किसी दिक्कत के इधर-उधर घूमती-फिरती रहती हैं। सेहरवाली मछलियों के शरीर में शल्क-हीन मछलियों के शरीर से कम स्पर्श-ज्ञान रहता है। लेकिन उनके दोनों बगल जो एक या दो धारियां पड़ी रहती हैं ये ही उनकी स्पर्शेन्द्रियां हैं। इन धारियों को हमारे यहाँ सिलाई की पट्टी या बगल की लकीर (Lateral Line) कहा जाता है।

कुछ मछलियों के पेट में लंबे बैलून की तरह हवा की थैली रहती है जो पटका (Bladder) कहलाती है। इसके सहारे मछलियों को पानी की सतह के पास टँगी रहने में कोई दिक्कत नहीं पड़ती। होता यह है कि मछलियों के खून से एक प्रकार की भाप निकलकर इस पटके में भर जाती है जिससे इनका शरीर हल्का होकर ऊपर की ओर उठने लगता है। यही नहीं, ये उसी के सहारे पानी में ऊपर-नीचे आती जाती हैं। हवा की यह थैली अक्सर सेहरवाली मछलियों के ही शरीर में रहती है।

मछलियों की अनेक किस्में होती हैं। इस कारण उनका आहार भी भिन्न-भिन्न रहता है। कुछ शाकाहारी होती हैं तो कुछ मांसाहारी। रंगीन मछलियाँ अधिकतर शाकाहारी होती हैं जिनका मुख्य भोजन शाक-पात और काई वगैरह है। दाँतवाली मछलियाँ केवल मांसाहार करती हैं, लेकिन अधिक संख्या उन्हीं की है जो शाक और मांस दोनों पर गुजर करती हैं।

मछलियाँ अंडज प्राणी हैं जिनकी संतान-वृद्धि अंडों द्वारा होती है। कुछ ऐसी भी हैं जो अंडों को पेट में ही रखकर बच्चे जनती हैं, लेकिन ऐसी मछलियों की संख्या

मछलियों का काँटा कहलाता है इसका पृष्ठ-पक्ष (Dorsal Fin) और नीचे का सुफना गुद-पक्ष (Anal Fin) कहलाता है। ये दोनों अंग तो मछलियों को अपना संतुलन कायम रखने में मदद देते हैं, लेकिन कुछ मछलियाँ इनको इधर-उधर चला कर पानी में थोड़ा आगे भी बढ़ लेती हैं। दुम का सुफना जो पुच्छपक्ष (Caudal Fin) कहलाता है वास्तव में मछलियों को पानी में आगे बढ़ाता है। मछलियाँ आगे बढ़ने के लिए अपनी दुम को इधर-उधर बड़ी तेजी से चलाती हैं जिससे उनका शरीर पानी में आगे की ओर बढ़ता चला जाता है। पेट पर के दोनों बगल के सुफने ऊपर और नीचे के सुफनों से कहीं अधिक मछलियों का संतुलन कायम रखते हैं नहीं तो मछलियाँ पानी में उल्टी हो जायें। यही कारण है कि मर जाने पर जब मछलियों के सुफने की हरकत बंद हो जाती है तो हम उनको पानी में उलटी बहते देखते हैं। पेट पर के इन सुफनों को हम अधःपक्ष (Ventral Fin) कहते हैं। आगे के सुफने, जो गलफड़ के पास दोनों ओर रहते हैं, वक्षपक्ष (Pectoral Fin) कहलाते हैं। ये मछलियों के सन्तुलन में थोड़ी मदद जरूर करते हैं, लेकिन इनका मुख्य काम मछली का रुख बदलना और उसकी चाल को रोकना होता है। कुछ मछलियाँ इन सुफनों से अधःपक्ष की तरह तैरने का काम लेती हैं और इन्हें डाँड की तरह चलाकर तैरती हैं।

मछलियों का शरीर कभी-कभी तो एक प्रकार की खाल से ढका रहता है और कभी-कभी उस पर एक तरह के कड़े छिलके या शल्क रहते हैं जो सेहर या सेल्हर (Scales) कहलाते हैं। ये सेहर एक दूसरे पर इस तरह चढ़े रहते हैं जैसे घर की छतों पर खपड़े छाये रहते हैं। इनसे मछलियों के शरीर की रक्षा तो होती ही है साथ ही साथ पानी में चलते समय भी ये उनके सहायक होते हैं क्योंकि सेहरों पर एक प्रकार का लस-सा तरल पदार्थ निकलता है जिससे मछलियों के शरीर की ऊपरी सतह बहुत चिकनी और फिसलनेवाली हो जाती है। शत्रुओं से बचने के लिए ही प्रकृति ने यह सहूलियत इन निरीह जीवों को दी है। यह चिपचिपा पदार्थ सिर्फ सेहरवाली मछलियों को ही मिला हो सो बात नहीं है बिना सेहरवाली मछलियाँ भी इससे वंचित नहीं रहतीं।

यह तो प्रसिद्ध बात है कि मछलियाँ पलक नहीं भाँज सकतीं। इसका कारण यह है कि उनकी आँखों पर पलकें ही नहीं होतीं। उनकी आँखों में हमेशा पानी भरा रहता है जो उन्हें गंदगी से मुक्त रखता है। उनकी आँखों की पुतलियाँ बड़ी होती हैं क्योंकि उन्हें पानी के भीतर धूमिल रोशनी में देखना पड़ता है। वे पानी

१. कोमलास्थि-मत्स्य श्रेणी—Class Silachii

२. दृढ़ास्थि-मत्स्य श्रेणी—Class Pisces

ये दोनों श्रेणियाँ कई वर्गों में विभाजित की गयी हैं। यहाँ उनमें से केवल उन्हीं वर्गों को लिया गया है जिनमें की मछलियाँ हमारे यहाँ के समुद्रों और मीठे पानी के जलाशयों में पायी जाती हैं।

कोमलास्थि-मत्स्य श्रेणी

(CLASS SILACHII)

इस श्रेणी में वे मछलियाँ रखी गयी हैं जिनके शरीर के काँटे या हड्डियाँ अन्य मछलियों की तरह कड़ी न होकर कोमल और लचीली होती हैं। इसीलिए इन्हें कोमलास्थि या नरम हड्डीवाली मछलियाँ कहा जाता है। इनमें से अधिकांश समुद्र में रहनेवाली मछलियाँ हैं जिनमें सब प्रकार की हांगर (Shark) और सकुची मछलियाँ आती हैं।

ये सब साधारण मछलियों के बराबर विकसित नहीं हुई हैं। इसीलिए इनके गलफड़ अन्य मछलियों की तरह पर्तदार न होकर केवल एक शिगाफ की तरह रह गये हैं। इनका मुंह भी मछलियों की तरह ऊपर न होकर नीचे की ओर एक कटे हुए चीरे-सा जान पड़ता है।

इन्हीं विभिन्नताओं के कारण इन मछलियों को, जिनमें सब प्रकार की हांगर, सकुची और आरा-मछलियाँ शामिल हैं, एक अलग श्रेणी में रखा गया है जो कई वर्गों, उपवर्गों तथा परिवारों में विभक्त हैं।

यहाँ इनमें से केवल दो वर्गों का वर्णन किया जा रहा है, जिनमें अपने यहाँ की सब प्रसिद्ध मछलियाँ आ जाती हैं। ये दोनों वर्ग इस प्रकार हैं—

१. हांगर वर्ग—(Order Pleurotremata) जिसमें सब प्रकार की हांगरें रखी गयी हैं।

२. सकुची वर्ग—(Order Hypotremi) जिसमें सब प्रकार की सकुची और आरा-मछलियाँ रखी गयी हैं।

बहुत कम है। इनके अडे काफी सख्या मे नष्ट हो जाते है, नही तो हमारी पृथ्वी के जलाशय इनसे जल्द ही भर जाते। इनके बच्चे बहुत कुछ मेढक के बच्चो की तरह होते हैं जिनकी छाती के नीचे एक थैली-सी लटकती रहती है। इस थैली मे एक प्रकार का पीला पदार्थ रहता है जिससे इन बच्चो का पोषण होता रहता है। अडो की सख्या के बारे में सहसा विश्वास नही होता, लेकिन कुछ मछलियाँ आठ से दस लाख तक अडे देती है। रोहू आदि हमारी परिचित मछलियाँ भी लगभग छ लाख तक अडे देती हैं। ये अडे पानी की सतह पर तैरते रहते हैं जो तेज धूप में दो सप्ताह मे और धूप न पाने पर एक महीने में फूटते है।

मछलियो के रग के बारे मे भी कुछ कहना जरूरी है क्योकि बिना उसका वर्णन किये मछलियो का बयान अधूरा ही रह जायगा। वैसे तो हम जिन मछलियो को अक्सर देखते हैं वे प्राय मिलेटी, कलछौह या रुपहली रहती है जिससे वे पानी मे आसानी से छिप जायँ और शत्रुओ से उनकी रक्षा होती रहे, लेकिन गहरे समुद्र की कुछ मछलियाँ ऐसी भी है जो अपनी रगीन पोशाक में किसी का सानी नही रखती। ये मछलियाँ प्राय प्रवालद्वीप की चट्टानो के आसपास के गहरे समुद्रो में रहती हैं और इनको मीठे पानी में देखना सम्भव नही है। चिडियो और तितलियो से इन्हे इसलिए अधिक सुन्दर कहा गया है कि एक तो ये पानी में बहुत सुन्दर लगती हैं, दूसरे इनको अपना रग बदलने की जो सहूलियत प्रकृति की ओर से मिली हैं वह कम रोचक नही है। इन रगीन मछलियो की त्वचा में बहुत ही छोटी-छोटी थैलियाँ रहती हैं जिनमें भिन्न-भिन्न रगो के सूक्ष्म कण भरे रहते हैं। इन थैलियो से सबधित छोटी-छोटी मासपेशियाँ के सिकुडने से इन थैलियो की तरह-तरह की शक्लें बदलती रहती है। इन मासपेशियो का सबन्ध मछलियो के मस्तिष्क से रहता है। जब मछलियाँ क्रुद्ध होती हैं, डरती या सतर्क होती हैं तो ये मासपेशिया उसी के अनुसार हरकत करती हैं, जिसके फलस्वरूप इन रग की थैलियो मे बदलाव होता हैं और मछलियो का रग बदल कर पास-पडोस की वस्तुओ के अनुरूप हो जाता है।

मछलियो की इतनी अधिक किस्में हैं कि उनके श्रेणी-विभाजन में बडी कठिनाई पडती है। स्तनप्राणियो और सरीसृपो की सख्या तो ऐसी है जिसे आसानी से भिन्न-भिन्न भागो में बाँटा जा सकता है लेकिन मछलियाँ, जिनकी सौ दो सौ नही बल्कि हजारो किस्में हैं, कभी-कभी प्राणिशास्त्र के विद्वानो को उलझन मे डाल देती हैं। लेकिन फिर भी इनको इस प्रकार दो श्रेणियो में बाँटा गया है —

१. कोमलास्थि-मत्स्य श्रेणी—Class Silachii

२. दृढ़ास्थि-मत्स्य श्रेणी—Class Pisces

ये दोनों श्रेणियाँ कई वर्गों में विभाजित की गयी हैं। यहाँ उनमें से केवल उन्हीं वर्गों को लिया गया है जिनमें की मछलियाँ हमारे यहाँ के समुद्रों और मीठे पानी के जलाशयों में पायी जाती हैं।

कोमलास्थि-मत्स्य श्रेणी

(CLASS SILACHII)

इस श्रेणी में वे मछलियाँ रखी गयी हैं जिनके शरीर के काँटे या हड्डियाँ अन्य मछलियों की तरह कड़ी न होकर कोमल और लचीली होती हैं। इसीलिए इन्हें कोमलास्थि या नरम हड्डीवाली मछलियाँ कहा जाता है। इनमें से अधिकांश समुद्र में रहनेवाली मछलियाँ हैं जिनमें सब प्रकार की हांगर (Shark) और सकुची मछलियाँ आती हैं।

ये सब साधारण मछलियों के बराबर विकसित नहीं हुई हैं। इसीलिए इनके गलफड़ अन्य मछलियों की तरह पर्तदार न होकर केवल एक शिगाफ की तरह रह गये हैं। इनका मुंह भी मछलियों की तरह ऊपर न होकर नीचे की ओर एक कटे हुए चीरे-सा जान पड़ता है।

इन्हीं विभिन्नताओं के कारण इन मछलियों को, जिनमें सब प्रकार की हांगर, सकुची और आरा-मछलियाँ शामिल हैं, एक अलग श्रेणी में रखा गया है जो कई वर्गों, उपवर्गों तथा परिवारों में विभक्त हैं।

यहाँ इनमें से केवल दो वर्गों का वर्णन किया जा रहा है, जिनमें अपने यहाँ की सब प्रसिद्ध मछलियाँ आ जाती हैं। ये दोनों वर्ग इस प्रकार हैं—

१. हांगर वर्ग—(Order Pleurotremata) जिसमें सब प्रकार की हांगरें रखी गयी हैं।

२. सकुची वर्ग—(Order Hypotremi) जिसमें सब प्रकार की सकुची और आरा-मछलियाँ रखी गयी हैं।

हागर वर्ग

(ORDER PLEUROTREMATA)

हागर वर्ग में सब प्रकार की हागर Shark रखी गयी हैं जो समुद्र की निवासिनी हैं। ये कोमलास्थि या नरम हड्डीवाले जीव हैं जिनको अपनी मछलियों से, जिनके शरीर के काँटे कड़े होते हैं, अलग कर दिया गया है।

हागर के शरीर के काँटे या हड्डियाँ उसी तरह कोमल होती हैं जैसी हम मछलियों के मुहनों में देखते हैं। इन हागरों के, मछलियों की तरह हड्डियों के गलफड़ भी नहीं होते बल्कि उस जगह पर ५-७ लम्बे-लम्बे सिगाफ से बने रहते हैं। इनके शरीर के भीतर मछलियों की तरह हवा की थैली भी नहीं होती, जिसमें हवा भरकर मछलियाँ पानी की सतह पर तैरती रहती हैं।

हागर के शरीर पर सेहर नहीं होते बल्कि उनका शरीर एक प्रकार की कड़ी खाल से ढका रहता है जिस पर दाने-दाने से उभरे रहते हैं। इनकी यह दानेदार खाल लकड़ी पर पालिश करने के काम आती है।

इनका मुख छिद्र सामने की ओर न होकर नीचे की ओर रहता है। इससे जब ये किसी शिकार को पकड़ती हैं तो उन्हें उलट जाना पड़ता है।

हागरें छोटी-बड़ी सभी तरह की होती हैं। इनमें कुछ तो ४०-५० फुट तक लम्बी हो जाती हैं। इनका मुख्य भोजन मास मछली तथा समुद्रों के अन्य जीव हैं, लेकिन इनमें से कुछ ऐसी भी हैं जो आदमियों को भी पकड़कर निगल जाती हैं।

हागर के शरीर का ऊपरी हिस्सा सिलछौंह या कलछौंह रहता है, लेकिन इनका नीचे का हिस्सा मछलियों की तरह हमेशा सफेद या हलके रंग का ही रहता है।

इनकी वैसे तो अनेक जातियाँ ससार में फैली हुई हैं, लेकिन यहाँ केवल एक परिवार का वर्णन किया जाता है।

हागर परिवार

(FAMILY CARCHARIIDAE)

हागर परिवार काफी बड़ा परिवार है जिसमें सब तरह की छोटी बड़ी हागरें हैं। ये सब मासभक्षी जीव हैं जो सब तरह की मछलियों तथा अन्य समुद्री जीव-जन्तुओं से अपना पेट भरती हैं। इनमें से कुछ मनुष्यभक्षी हागरें भी हैं।

ये सब समुद्रों में रहनेवाले प्राणी हैं, लेकिन कुछ हांगरें ऐसी भी हैं जो बड़ी नदियों में भी कुछ दूर चली आती हैं। इस परिवार में बहुत-सी हांगरें हैं जिनमें से केवल दो प्रसिद्ध हांगरों का वर्णन यहाँ किया जाता है जो हमारे यहाँ के समुद्रों में पायी जाती हैं।

दंदानी हांगर

(BLUE SHARK)

दंदानी हांगर हमारे देश में हिन्द महासागर में काफी संख्या में पायी जाती है। यह छोटी जाति की हांगर है जो लंबाई में दो ढाई फुट की होती है।
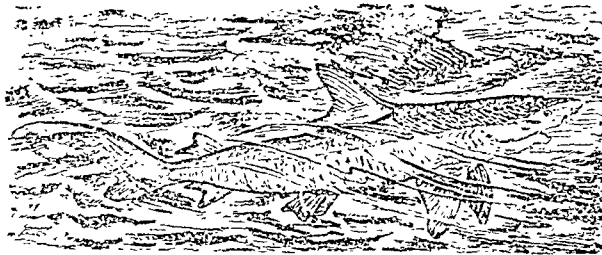
दंदानी हांगर

इसका ऊपरी रंग गाढ़ा सिलेटी और नीचे का सफेद रहता है। इसकी पीठ पर दो सुफने रहते हैं और एक सुफना नीचे रहता है।

यह हांगर आदमियों पर हमला नहीं करती और इसका मुख्य भोजन मछलियाँ तथा अन्य समुद्री जीव हैं।

हथौड़ीसिरी हांगर

(HAMMER HEADED SHARK)

इस हांगर को हथौड़ी सिरी हांगर इसी लिए कहते हैं कि इसका सिर हथौड़े की तरह रहता है जिसके सिरे पर इसकी आँखें रहती हैं और अन्य हांगरों की तरह इसका मुख छिद्र नीचे की ओर रहता है।

ये हागरें वैसे तो हिन्द महासागर में प्रायः सभी जगह पायी जाती हैं, लेकिन इनकी अधिक संख्या मालाबार समुद्री तट पर दिखाई पड़ती है। इनका ऊपरी रंग

हथौड़ीसिरी हांगर

सिलेटी या भूरापन लिये सिलेटी रहता है जो नीचे पहुँचते पहुँचते हल्का हो जाता है। इनके सूघनों का रंग गहरा और चटक रहता है। इन हागरों की लम्बाई वैसे तो चार-पाँच फुट की होती है, लेकिन कहीं कहीं ये १०-१२ फुट तक की भी पायी गयी हैं। इनका मुख्य भोजन मांस-मछली है।

सकुची वर्ग

(ORDER HYPOTREMI)

इस वर्ग में सब प्रकार की सकुची और आरा मछलियाँ रखी गयी हैं जिनका आकार लंबा और गोल दोनों तरह का रहता है। ये ज्यादातर समुद्रों में पायी जाती हैं, लेकिन इनकी कुछ जातियाँ हमारे यहाँ की बड़ी नदियों में भी मिल जाती हैं।

दंदानी हांगर (शार्क मछली पृ० १७५)
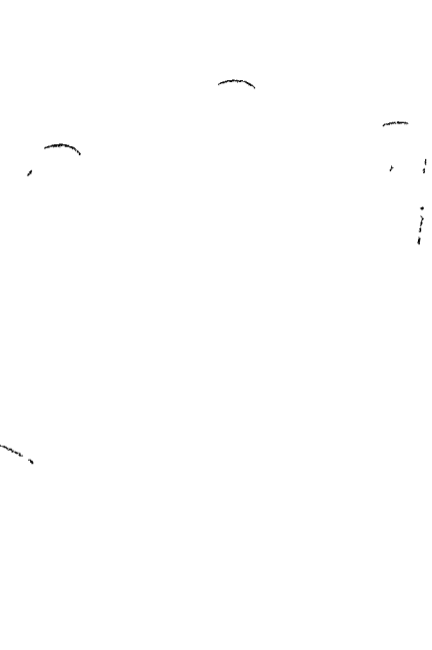
इनमें अधिकतर गोल शरीरवाली मछलियाँ हैं जिनको प्रकृति ने उनकी आत्मरक्षा के लिए लंबी और मजबूत दुम दी है। इन मछलियों का मुख-छिद्र भी हांगरों की तरह नीचे की ओर रहता है जिसमें तेज दाँत रहते हैं। इन मछलियों के बगल के सुफने इनके सिर के पास जुड़कर हाथी के कान से जान पड़ते हैं।

इन मछलियों का अधिक समय पानी के नीचे की तह पर बीतता है, जहाँ ये कीचड़ में इधर-उधर कछुओं की तरह चलकर अपना भोजन तलाशती हैं। इनके शरीर का ऊपरी हिस्सा कलछौंह और निचला एकदम सफेद रहता है।

इन मछलियों का मुख्य भोजन सीप, कछुए और अन्य समुद्री जीव हैं क्योंकि इनमें से कुछ लंबी थूथन वाली जातियों को छोड़ अन्य सब पानी में तेज तैरनेवाली मछलियों को नहीं पकड़ पातीं।

इस वर्ग में वैसे तो कई परिवार हैं लेकिन यहाँ केवल दो परिवारों का ही वर्णन दिया जा रहा है, जो इस प्रकार हैं—

१. सकुची परिवार—Family Trygonidac

२. आरा मछली परिवार—Family Pristidac

सकुची परिवार

(FAMILI TRYGONIDAE)

सकुची परिवार के जीव देखने में कछुए की शकल-सूरत आकार के होते हैं जिनके लंबी और कड़ी दुम रहती है। ये ज्यादातर समुद्रों के निवासी हैं, लेकिन इनमें से कुछ ऐसे भी हैं जिन्हें बड़ी नदियों में भी देखा जा सकता है।

इनका मुख्य भोजन कछुए, घोंघे, सीप और अन्य समुद्री-जीव हैं। यहाँ अपने यहाँ की नदियों में पायी जानेवाली प्रसिद्ध सकुची मछली का वर्णन किया जा रहा है।

सकुची मछली

(STING RAY)

सकुची की शक्ल-सूरत को देखकर जल्द कोई इसे मछली नहीं कह सकता। इसके थाल-जैसे गोल और चपटे शरीर में कोड़े-जैसी दुम रहती है।

ये मछलियाँ हमारे यहाँ की बड़ी नदियों में पायी जाती हैं और अक्सर बँधे पानी में ही रहती हैं ।

सकुची का मुख-छिद्र नीचे की ओर एक गिलाफ-सा पर्दा रहता है जिसमें तेज दाँतों की कई पंक्तियाँ रहती हैं । इसकी लम्बी दुम के बीच में दो तेज काँटे रहते हैं ।
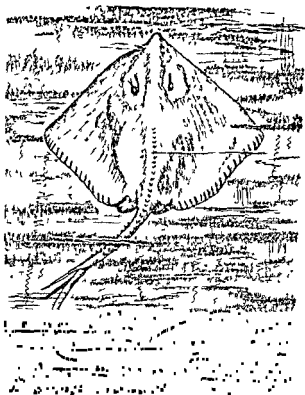
सकुची मछली

सकुची का ऊपरी हिस्सा गाढ़ा सिलेटी रंग का और नीचे का सफेद रहता है । इसकी पीठ की खाल पर कुछ दाने से उभरे रहते हैं ।

इसका मुख्य भोजन छोटी मछलियाँ, घोंघे और कटुए आदि हैं । इसकी मादा

अंडे न देकर बच्चे जनती है जो कद में छोटे होने पर भी शकल-सूरत में प्रौढ़ों से मिलते-जुलते होते हैं।

आरा-मछली परिवार

(FAMILY PRISTIDAE)

इस परिवार की मछलियों का थूथन बढ़कर इतना लंबा हो गया है कि वह आरे जैसा जान पड़ता है जिनके बीच में पड़कर किसी जीव का फिर निकल जाना संभव नहीं। यहाँ, इस परिवार की प्रसिद्ध आरा मछली का वर्णन किया जा रहा है।

आरा-मछली

(SAW FISH)

आरा-मछली को यह नाम उसके आरा जैसे लंबे थूथन के कारण मिला है। यह हमारे यहाँ की प्रसिद्ध समुद्री मछली है जो कभी-कभी नदियों में भी कुछ दूर चली आती है।
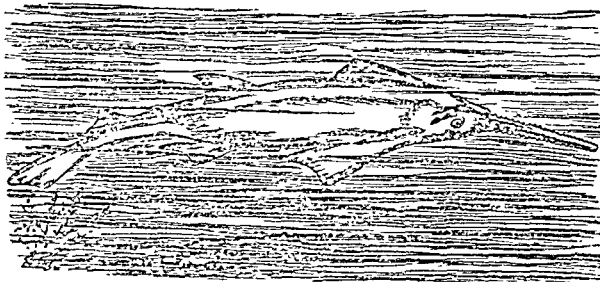
आरा-मछली

यह लगभग २० फुट लंबी होती है। इसके शरीर के ऊपर का रंग पीलापन लिये सिलेटी और नीचे का सफेदी मायल रहता है। इसके आरे-जैसे लंबे थूथन में २३ से ३३ जोड़ी दाँत रहते हैं। इसी से यह बहुत भयंकर आक्रमण करती है।

इसका मुख्य भोजन मांस, मछली और घोंघे-कछुए आदि हैं।

खंड १०

दृढास्थिमत्स्य श्रेणी

(CLASS PISCES)

मछलियों की इस बड़ी श्रेणी में हमारे यहाँ मीठे तथा खारे पानी में पायी जानेवाली अन्य सब मछलियाँ रखी गयी हैं जिन्होंने अपने को हागर से अलग करके अपने शरीर के भीतर कड़े काँटों या हड्डियों के कंकाल का विकास कर लिया है। इसीलिए इन्हें दृढास्थिमत्स्य या कड़ी हड्डीवाली मछलियाँ कहा जाता है।

इन मछलियों ने अपने गलफड़ों का भी ऐसा विकास कर लिया है कि वे हागर की तरह गिलाफ न रहकर पर्तदार गलफड़ बन गये हैं जिनके सहारे ये पानी में घुली हुई हवा द्वारा साँस ले सकती हैं। इसके लिए मछलियाँ पानी को अपने मुँह में भरकर उसे दोनों ओर के गलफड़ों से बाहर निकाल देती हैं और जब यह निकाला हुआ पानी इनके पर्तदार गलफड़ों से होकर बाहर निकलता है तो उसमें की रुधिर-शिराएँ पानी में घुली हुई प्राणवायु (Oxygen) का सोख लेती हैं और इस प्रकार मछलियों के साँस लेने की क्रिया चलती रहती है।

इन मछलियों के जबड़े तो काफी कड़े हो ही गये हैं। कुछ के मुख में तेज दाँत भी रहते हैं। इनमें से कुछ का शरीर चिकना रहता है तो कुछ के बदन पर कड़े सेहरे या शल्क रहते हैं जो एक-दूसरे पर खपरैल की तरह चढ़े रहते हैं।

मछलियों की यह श्रेणी वैसे तो तीन उपश्रेणियों में बाँटी गयी है, लेकिन इनमें से दो उपश्रेणियों में थोड़ी ही मछलियाँ हैं। तीसरी उपश्रेणी बहुत बड़ी है जिसमें लगभग १५ हजार मछलियाँ आती हैं। इस उपश्रेणी को विद्वानों ने अनेक वर्गों में विभाजित किया है, लेकिन यहाँ केवल दस वर्गों का वर्णन किया जा रहा है जिनमें हमारे यहाँ की प्रायः सभी प्रसिद्ध मछलियाँ आ जाती हैं। इन दस वर्गों के नाम इस प्रकार हैं—

१. इल्लिश वर्ग —Order Isospondyti
२. रोहित वर्ग —Order Ostariophysi
३. दंड-मत्स्य वर्ग —Order Apodes
४. सपक्ष-मत्स्य वर्ग —Order Synentognathi
५. चन्द्र-मत्स्य वर्ग —Order Allotriognathi
६. अश्व-मत्स्य वर्ग —Order Solenichthes
७. शैल-मत्स्य वर्ग —Order Percomorphi
८. चूपिका-मत्स्य वर्ग—Order Discocephali
९. चिपिट-मत्स्य वर्ग —Order Haterosomata
१०. सूर्य-मत्स्य वर्ग —Order Plectoglathi

अव आगे इन परिवारों का अलग-अलग वर्णन किया जा रहा है।

इल्लिश वर्ग

(ORDER ISOSPONDYTI)

इस वर्ग में हमारी प्रसिद्ध मछली हिलसा तथा उसके अन्य भाई-वन्धु रखे गये हैं जो वहुत-सी वातों में एक-दूसरे से मिलते-जुलते हैं।

ये मछलियाँ नरम सुफनेवाली मछलियाँ कहलाती हैं और इनके शरीर के भीतर हवा की एक लंवी-सी थैली रहती है। इनके पक्ष पेट के नीचे रहते हैं। इन मछलियों के शरीर पर छोटे-छोटे शल्क रहते हैं।

यह वर्ग वैसे तो कई परिवारों में वाँटा गया है लेकिन यहाँ केवल इल्लिश परिवार (Family Chepeidae) और मोह परिवार (Family Nosopteridae) का वर्णन किया जा रहा है जिनमें की कुछ प्रसिद्ध मछलियों को हम भली भाँति जानते हैं।

इल्लिश परिवार

(FAMILY CHEPEIDAE)

इस परिवार की मछलियों की लगभग २०० जातियाँ हैं जिनमें हिलसा सवसे प्रसिद्ध है। इसे विदेशों में "हेरिंग" (Herring) कहते हैं जहाँ यह लाखों टन के तौल में प्रतिवर्ष वाहर भेजी जाती है।

यहाँ इसीलिए केवल हिल्सा का ही वर्णन किया जा रहा है।

इस परिवार की मछलियाँ वैसे तो समुद्र की रहनेवाली हैं लेकिन इनमें से कुछ हमारी बड़ी नदियों में भी चढ़ आती हैं। इन मछलियों के शरीर पर बगल की धारी नहीं रहती और इनका पृष्ठ पक्ष काफी मोटा रहता है। इनमें से कुछ के पेट का हिस्सा कटावदार रहता है। इनके शरीर पर के सेहर छोटे-छोटे होते हैं।

हिल्सा
(HERRING)

हिल्सा हमारे यहाँ की बहुत प्रसिद्ध मछली है, जो समुद्र की निवासिनी होकर भी हमारे यहाँ की बड़ी नदियों में काफी दूर तक चली आती है।

हिल्सा

हिल्सा का शरीर चपटा और पेट का हिस्सा पतला रहता है। इसके निचले हिस्से में दाँतों-से कटे रहते हैं जो गले तक जाते-जाते समाप्त हो जाते हैं।

इसका रंग सुनहला होता है जिसमें सुनहली और बैंगनी झलक रहती है। ये लगभग १ फुट लम्बी होती हैं और इनका मांस बहुत स्वादिष्ठ होता है।

मोह परिवार
(FAMILY NOSOPTERIDAE)

इस परिवार में मोह आदि मछलियाँ हैं जो अपने चपटे शरीर और छोटे सेहर के कारण अन्य मछलियों से शकल-सूरत में भिन्न होती हैं।

इनकी वैसे तो कई जातियाँ हैं, लेकिन हमारे देश की बड़ी नदियों में इनकी दो जातियाँ, पतरा और चीतल, काफी संख्या में पायी जाती हैं। यहाँ पतरा का वर्णन किया जा रहा है।

मोह

(FEATHER BACK)

मोह को कहीं-कहीं इसके पतले शरीर के कारण पतरा भी कहा जाता है। यह हमारे यहाँ की नदियों की मछली है जो समुद्र-तट के खारे जलाशयों में भी पायी जाती है।
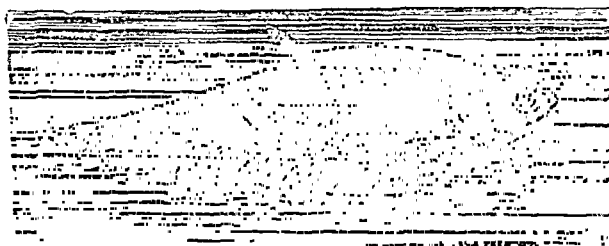
मोह

इसके शरीर की बनावट बहुत चपटी होती है जो देखने में तरबूज के फाँक-सी जान पड़ती है। इसके सारे शरीर पर छोटे-छोटे सेहर होते हैं जो सिर के ऊपर तक फैले रहते हैं। इसके पेट का अगला हिस्सा दानेदार रहता है।

इन मछलियों का रंग रुपहला रहता है लेकिन इनकी पीठ गाढ़े रंग की होती है। इनके सिर पर पीली झलक रहती है और सारा शरीर छोटी-छोटी सिलेटी चित्तियों से भरा रहता है। इन मछलियों की लंबाई दो-ढाई फुट होती है जिसमें का ऊपरी हिस्सा बहुत काँटेदार होता है और निचले हिस्से या पेटी में बहुत कम काँटे रहते हैं।

रोहिष वर्ग

(ORDER OSTARIOPHYSI)

रोहिष वर्ग काफी बड़ा है अतः इसे दो उपवर्गों में इस प्रकार बाँटा गया है—

१. रोहिप उपवर्ग—Sub-order Cyprinoidae

२ पटिन उपवर्ग—Sub-order Siluroidae

इस वर्ग में ससार की अधिकाश मीठे पानी की मछलियाँ एकत्र की गयी हैं। इनमें से कुछ का सिर चिकना रहता है और सारे शरीर पर कडे सेहर रहते हैं और कुछ ऐसी हैं जिनका सारा शरीर चिकनी खाल से ढका रहता है। इन मछलियो के शरीर के भीतर हवा की थैली रहती है और इस थैली से इनके कान के भीतरी हिस्से तक एक पतली हड्डियों की जजीर-सी लगी रहती है जिसके सहारे इनको सुनने में बहुत सहायता मिलती है। पहले हम रोहिप उपवर्ग को लेते हैं।

रोहिप उपवर्ग

(SUB ORDER CYPRINOIDAE)

इस उपवर्ग में वे मछलियाँ आती हैं जिनके शरीर पर कडे सेहर रहते है। ये अपने स्वादिष्ठ मास के लिए प्रसिद्ध हैं।

इस उपवर्ग मे वैसे तो कई परिवार हैं लेकिन यहाँ केवल एक रोहिप परिवार का ही वर्णन दिया जा रहा है।

रोहिप परिवार

(FAMILY CYPRINIDAE)

रोहिप परिवार मछलियो का सबसे बडा परिवार माना जाता है क्योंकि इस परिवार में ही लगभग १५०० जाति की मछलियो को रखा गया है। इस जाति की मछलियो का जन्म-स्थान हमारा देश ही माना जाता है, जहाँ से वे एशिया के सब भागो मे तथा अफ्रीका और यूरोप तक फैल गयी हैं। इन मछलियो में खास भेद यह रहता है कि इनके दाँत इनके मुँह मे न होकर इनके गले में होते हैं।

ये मछलियाँ वैसे तो कद में ज्यादा बडी नही होती लेकिन इनमें से कुछ ऐसी भी हैं जो ५-६ फुट लबी हो जाती हैं। इनका मुख्य भोजन जलाशयो की छोटी मछलियाँ हैं।

इनकी संख्या वैसे तो बहुत है लेकिन यहाँ अपने देश में पायी जानेवाली छः प्रसिद्ध मछलियों का वर्णन किया जा रहा है। उनके नाम इस प्रकार हैं—१. रोहू २. मृगेल ३. भाकुर ४. महासेर ५. कलवोंस ६. चेल्हवा।

रोहू

(ROHU)

रोहू अपने परिवार की ही नहीं हमारे देश की भी सबसे प्रसिद्ध मछली है जो हमारे देश में दक्षिण भारत को छोड़कर प्रायः सभी झीलों, नदियों और तालाबों में पायी जाती है। यह साफ पानी में रहनेवाली मछली है जिसके सिर के ऊपरी हिस्से को छोड़कर सारे शरीर पर सेहर रहते हैं।
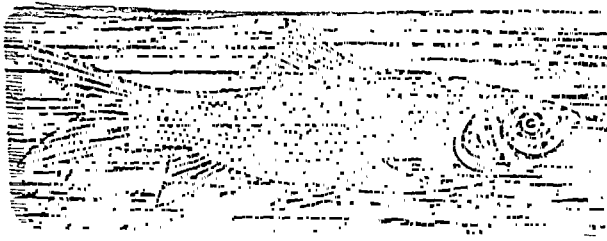
रोहू

इसके ऊपर का रंग निलछौंह या हलका भूरा रहता है जो बगल और नीचे की ओर जाते-जाते चाँदी-सा हो जाता है। सेहरों पर के लाल चिह्नों के कारण इसके बदन पर एक प्रकार की ललछौंह झलक-सी रहती है। इसी कारण इसे रोहिप या रोहू का नाम मिला है। इसके सुफने भी अक्सर ललछौंह रहते हैं।

रोहू प्रायः ढाई-तीन फुट लंबी होती है। इसका मांस बहुत स्वादिष्ठ होता है इसीलिए इसे तालों में पाला जाता है।

नयन या मृगेल

(MIRGAL)

नयन भी हमारे यहाँ की बहुत प्रसिद्ध मछली है जो हमारे देश में प्रायः सभी नदियों और जलाशयों में पायी जाती है। यह भी साफ पानी में रहनेवाली मछली है जिसके बदन पर छोटे और घने सेहर रहते हैं।

नयन के शरीर का रंग चाँदी-सा चमकीला होता है जिसमें पीठ पर का हिस्सा मिलैटी रहता है। ये भी लंबाई में २-३ फुट तक पहुँच जाती हैं और अपने स्वादिष्ठ मांस के लिए इनको भी जलाशयों में पाला जाता है।

नयन

भाकुर

(CATLA)

भाकुर भी हमारे यहां की प्रसिद्ध मछली है जो अपने बड़े सिर और चौड़े मुख के कारण अन्य मछलियों से भिन्न हो रहती है। यह हमारे यहाँ

भाकुर

दक्षिण भारत की कृष्णा नदी से लेकर सारे उत्तर भारत के जलाशयों में पायी जाती है।

यह वैसे तो मीठे पानी की मछली है लेकिन यह समुद्र में गिरनेवाली नदियों के मुहानों पर के खारे पानी में भी रह लेती है।

यह लंबाई में ५-६ फुट तक की होती है जो वजन और मोटाई में अपने परिवार में सबसे आगे रहती है। इसका मांस स्वादिष्ट होता है।

भाकुर का ऊपरी रंग सिलेटी और बगल और नीचे का रुपहला रहता है। ये भी तालों में पाली जाती हैं।

महासेर

(MAHASEER)

महासेर वैसे तो हमारे यहां की सभी बड़ी नदियों में पायी जाती है, लेकिन यह पहाड़ी नदियों और जलाशयों में रहना ज्यादा पसंद करती है।
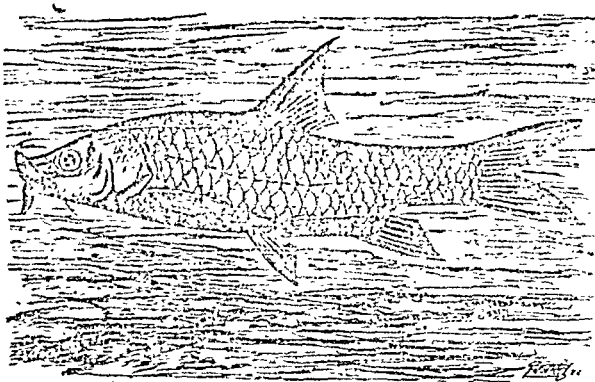
महासेर

यह भी सेहरदार मछली है जिसका शरीर बहुत गठा हुआ और सुंदर होता है। इसके शरीर के आधे से ऊपर का हिस्सा रुपहला होता है, जिसमें कुछ हरापन रहता है। नीचे का हिस्सा हलके रंग का होता है जिसमें कुछ पीलेपन और सुनहलेपन की झलक रहती है। इसके बगल के हिस्से में भी सुनहलापन रहता है।

ये मछलियाँ भी ५-६ फुट लंबी हो जाती हैं और इनका भी माँस बहुत स्वादिष्ठ होता है।

कलबाँस

(KALBASU)

कलबाँस को करोंछी भी कहते हैं। इसे यह नाम शायद इसलिए मिला है कि इसके शरीर का रंग अन्य मछलियों से अधिक कलछौंह होता है।
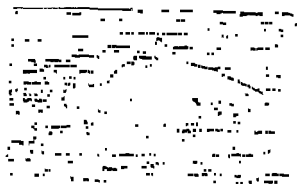
कलबाँस

यह सेहरदार मछली है जो साफ पानी में रहती है। यह थोड़ी और अधिक संख्या में सारे देश की नदियों और तालाबों में पायी जाती है।

इसके शरीर का रंग गाढ़ा सिलेटी या कलछौंह होता है और इसके बगल के दोनों हिस्सों में बहुत काँटे रहते हैं।

पढ़िन उपवर्ग

(SUB ORDER SILUROIDAE)

जिस प्रकार रोहित उपवर्ग में सेहरदार मछलियों को एकत्र किया गया था उसी प्रकार इस पढ़िन उपवर्ग में चिकनी खालवाली मछलियों को इकट्ठा किया गया है।

ये मछलियाँ प्रायः जलाशयों की तलैटी में अथवा गंदे और कीचड़दार पानी में रहती हैं। गंदे पानी से इनकी आँखें बहुत कम काम देती हैं, इसीलिए प्रकृति ने इनके मुख के चारों ओर बड़ी-बड़ी मूँछें दी हैं जो इनकी स्पर्शेन्द्रियाँ हैं। ये इन्हीं मूँछों के सहारे गंदे कीचड़वाले पानी में इधर-उधर फिरा करती हैं।

इनकी पीठ और वक्ष पर के सुफनों पर आगे की ओर एक तेज कड़ा काँटा रहता है, जो कभी-कभी दाँतेदार भी होता है। इस काँटे के लगने से कभी-कभी बहुत दर्द और सनसनाहट-सी होने लगती है।

इनकी लगभग डेढ़ हजार जातियों का पता लग चुका है जो कई परिवारों में विभाजित की गयी हैं। यहाँ उनमें से केवल एक, पढ़िन परिवार, का वर्णन किया जा रहा है।

पढ़िन परिवार

(FAMILY SILURIDAE)

इस परिवार में चिकनी खालवाली मछलियाँ हैं जो विदेशों में बिल्ली-मछली (Cat-Fish) कहलाती हैं। इनको यह नाम शायद इसलिए मिला है कि ये पकड़ी जाने पर बड़े कर्कश स्वर में बोलती हैं।

ये मछलियाँ छोटे-बड़े सभी कद की होती हैं और किसी-किसी का वजन तो पांच मन तक पहुँच जाता है। इनकी पीठ पर के सुफने का अगला काँटा बहुत बड़ा और नोकीला होता है और वक्ष-सुफने के अगले काँटे भी औरों से बड़े और तेज रहते हैं।

इन मछलियों का ज्यादा समय जलाशयों की तलैटी में और कीचड़ से भरे हुए ताल-तलैयों में बीतता है। कभी-कभी ये अपने चुसनी जैसे मुख से किसी पत्थर या चट्टान को पकड़कर उसी में चिपक जाती हैं और तब साँस लेने के लिए ये मुँह के बजाय अपने गलफड़ों से पानी भीतर खींचने लगती हैं।

इनका मुख्य भोजन पानी में रहनेवाले कीड़े-मकोड़े तथा सड़ा-गला मांस आदि है। ये छोटी-छोटी मछलियों को भी खाती हैं। इसीलिए प्रकृति ने इनके मुँह में महीन और घने दाँतों की पंक्ति दी है।

हमारे यहाँ इनकी अनेक जातियाँ हैं जिनमें से यहाँ केवल पाँच मछलियों का वर्णन किया जा रहा है। उनके नाम ये हैं—

१. सींगी २. मुँगरी ३. पढ़िन ४. सिलंद ५. टेंगरा

पढिन या पहिना

(FRESH WATER SHARK)

पढिन हमारे यहाँ की बहुत प्रसिद्ध मछली है जो हमारे यहाँ की प्रायः सभी नदियों और ताल-तलैयों मे पायी जाती है। यह अपने चौड़े मुख और पतले शरीर के कारण अन्य सब मछलियों से अलग ही रहती है और इसे पहचानने में जरा भी दिक्कत नही होती।

पढ़िन

इसके शरीर मे काँटे भी कम होते हैं और इसका मास भी स्वादिष्ठ होता है, लेकिन इसका आहार छोटी मछलियों के अलावा सडा-गला मास होने के कारण कुछ लोग इसे खाना पसद नही करते।

पढिन ५-६ फुट तक लबी होती है जो अपने भारी शरीर के कारण अपने साथ रहनेवाली छोटी मछलियों का बहुत नुकसान करती है। इसी कारण इसे अंग्रेजी मे मीठे पानी की हागर कहते हैं।

पढिन के शरीर पर सेहर नहीं होते और इसके नीचे का सुफना सीने के पास से शुरू होकर दुम के पास तक चला जाता है। इसका सारा शरीर सिलेटी रग का रहता है।

मुँगरी

(MAGUR)

मुँगरी हमारे यहाँ की प्रसिद्ध मछली है जो पानी के बाहर भी काफी देर तक रह लेती है। हमारे यहाँ यह सारे देश के जलाशयो में पायी जाती है और बगाल की ओर, जहाँ इसे माँगुर कहा जाता है, इसका मास बडे स्वाद से खाया जाता है।

मुँगरी

ये ६ इच से १ फट तक लबी होती हैं और इनके शरीर का रग गहरा हरा या

भूरा रहता है जो नीचे पहुँचते-पहुँचते हलका हो जाता है। इनके मुँह में छोटे और महीन दाँत होते हैं और इनकी मूँछों की संख्या काफी रहती है।

सींगी

(SINGI)

सींगी भी हमारे यहां की प्रसिद्ध मछली है जिसे हम नदियों की अपेक्षा तालों की मछली कह सकते हैं। यह जब अपना काँटा किसी के बदन में गड़ा देती है तो उसको बिच्छू की-सी जलन होती है।

सींगी का कद मुँगरी के ही बराबर होता है और ये दोनों प्रायः एक ही स्थान में पायी भी जाती हैं। इनके शरीर का रंग गाढ़ा सिलेटी होता है जिस पर कभी-कभी दो खड़ी निलछौंह धारियाँ पड़ी रहती हैं।
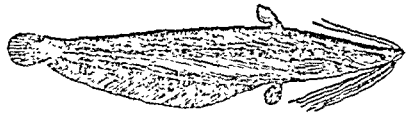
सींगी

इनका मांस खाने में बहुत स्वादिष्ठ होता है और लोग इन्हें खाने के लिए हौजों में पाल रखते हैं।

सिलंद

(SILAND)

सिलंद भी हमारे यहाँ की कम प्रसिद्ध मछली नहीं है। अपने लंबे कद के कारण यह अन्य मछलियों के बीच आसानी से पहचान ली जाती है। हमारे देश में यह प्रायः सभी बड़ी नदियों में पायी जाती है।

सिलंद काफी लंबी मछली है जिसका कद कभी-कभी ६ फुट से ज्यादा लंबा हो जाता है। इसका नीचे का जबड़ा ऊपरी जबड़े से कुछ आगे की ओर बढ़ा रहता है जो बगल में पहुँचते-पहुँचते चाँदी-सा चमकीला हो जाता है।
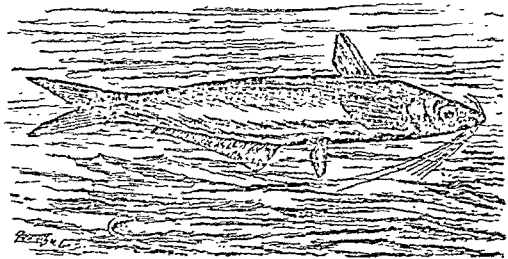
सिलंद

टेंगरा

(TENGARA)

टेंगरा को टेंगान या टेंगनी भी कहते हैं। यह हमारे यहाँ की प्रसिद्ध मछली है जो अपने स्वादिष्ठ मांस के लिए मशहूर है। यह हमारे देश में उत्तरी भाग की प्राय सभी नदियो और तालाबों में पायी जाती है।
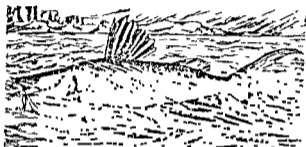
टेंगरा

इसकी पीठ का काँटा बहुत बडा और मजबूत होता है। इसके थूथन काफी चौडे होते हैं और इसका ऊपरी जबडा निचले जबडे से कुछ आगे बढा रहता है।

टेंगरा की मूँछें बडी महीन होती हैं जिनकी संख्या ८ रहती है। इसके मुँह मे तेज और महीन दाँत रहते हैं।

इसके बदन का ऊपरी हिस्सा सिलेटीपन लिये भूरा और बगल का रुपहला रहता है।

दड-मत्स्य वर्ग

(ORDER APODES)

इस वर्ग में सर्पाकार या डंडे की शक्ल की मछलियाँ एकत्र की गयी हैं जिन्हें हमारे यहाँ बाम या दंडमत्स्य कहा जाता है। यह वर्ग छोटा ही है और यहाँ इसके एक ही परिवार का वर्णन किया जा रहा है जो बाम-परिवार कहलाता है।

वाम परिवार

(FAMILY MURAENIDAE)

वाम परिवार में संसार की सब वाम मछलियाँ रखी गयी हैं जो देखने में साँप-सी जान पड़ती हैं। इनके दोनों बगल के गलफड़ों की जगह हांगर की तरह शिगाफ से कटे रहते हैं। इन मछलियों के वक्ष-पक्ष (Pectoral Fin) कभी रहते हैं और कभी नहीं रहते। लेकिन अधःपक्ष (Ventral Fin) तो एकदम गायब ही रहता है। इनका शरीर प्रायः सेहरों से रहित रहता है और किसी-किसी के सेहर हुए भी तो वे प्रारंभिक अवस्था के ही जान पड़ते हैं। इनके मुँह में महीन और तेज दाँतों की पंक्ति रहती है और इनके शरीर के भूरे रंग पर पिलछौंह चित्तियाँ पड़ी रहती हैं।

वाम समुद्रों में तो रहती ही हैं, पर वे हमारी नदियों और तालावों में भी चली आती हैं। वे प्रायः एक फुट से तीन फुट की होती हैं लेकिन समुद्र में रहनेवाली वाम मछलियाँ कभी-कभी इससे भी बड़ी हो जाती हैं।

इन मछलियों का जीवन-चक्र इतना अद्भुत और अनोखा होता है कि बहुत दिनों तक प्राणिशास्त्र के विद्वान उसे समझने में असफल रहे किन्तु बाद में जब इस पर काफी परिश्रम किया गया तो असली बात का पता चला।

वाम वास्तव में समुद्र की निवासिनी है। यह अटलांटिक समुद्र में अंडे देती है, जहाँ समय पाकर ये अंडे फूटते हैं और उनमें से छोटे-छोटे चपटे और पारदर्शी शरीर-वाले बच्चे निकलते हैं। ये बच्चे अंडे से बाहर होते ही पूरब की ओर चल पड़ते हैं। उस समय इनकी संख्या लाखों करोड़ों में रहती है। ये समुद्र की ऊपरी सतह पर रहते हैं और इनका यह काफिला प्रतिदिन तीन-चार मील का सफर तै करता है। तीन साल इसी प्रकार निरंतर चलकर ये तीन हजार मील का सफर पूरा कर लेते हैं और तब इनके शरीर में भी कुछ परिवर्तन हो जाता है। ये बढ़कर लगभग तीन इंच के हो जाते हैं और इनका शरीर बहुत कुछ गोल हो जाता है।

कुछ समय बीतने पर इनका शरीर कुछ और पतला होकर सूच्याकार हो जाता है और ये सिकुड़कर ढाई इंच के रह जाते हैं। इनकी शकल-सूरत अब वाम के अनुरूप होने लगती है लेकिन अभी इनका कद बहुत छोटा रहता है।

इन्हें इस समय मीठे पानी की चाह सताने लगती है और ये नदिया के मुहाना से होकर नदियो के भीतर चढ़ आते हैं। नालो अथवा दलदलो में होकर तालाबो और झीलो में पहुँच जाते हैं।

मीठे पानी के जलाशया में ये अपने जीवन के पाँच सात वर्ष बिताते हैं और बढ़कर लगभग दो-तीन फुट के हो जाते हैं और तब हम इन्हें बाम कहने लगने हैं।

पाँच सात वर्ष बीत जाने पर बामो के शरीर के रग रूप में सहसा परिवर्तन होता है। इनके शरीर का पीलापन गायब हो जाता है और ये निलछौह सिलटी रग की हो जाती हैं।

तब इनको जैसे अपनी जन्मभूमि की याद आ जाती है। ये फिर मीठे पानी से समुद्रो में चली जाती हैं। ये पश्चिम की ओर चलने लगती हैं और एक दिन फिर अपने उसी स्थान पर पहुँच जाती हैं जहाँ से अडा फूटने पर चली थी। वहाँ पहुँचने पर य अडे देती है और मर जाती हैं और इनका रहस्यमय जीवन समाप्त हो जाता है।

यहाँ अपने यहा की प्रसिद्ध बाम का वणन किया जा रहा है।

बाम

(EEL)

बाम क अदभुत जीवन चक्र के बारे में हम जान ही चुके हैं। अब हमें उसके रग रूप आकार प्रकार तथा स्वभाव के बारे में भी कुछ जान लना चाहिये।

बाम का शरीर एकदम साँप जैसा होता है और जिहाने इसे पहले नही देखा है वे इसे साँप समझ लें तो इसमें उनका दोष नही।

बाम हमारे यहा के सभी जलाशयो में पायी जाती है। यह समुद्र में भी रहती है और नदी, तालाब तथा झीलो में भी। यही नही इसे कीचडो में भी देखना कुछ आश्चर्य जनक बात नहीं है।

बाम का गलफड अन्य मछलियो के समान विकसित नही हुआ है। वह पत्तदार और ढक्कने से युक्त न होकर एक शिगाफ सा रहता है। इसका पृष्ठपक्ष गुद्दी के पास से शुरू होकर पीठ पर दूर तक चला जाता है और गुदापक्ष भी फैलकर दुम में जा मिलता है। इसके बदन पर छोटे-छोटे सेहर रहत हैं जो इसकी खाल मे धँसे रहते हैं। दोना वक्षपक्ष बहुत छोटे छोटे और पत्ता क आकार के रहते हैं।

इन मछलियों का ऊपरी हिस्सा निलछौंह् और दोनों बगल के हिस्से रुपहले रहते हैं।

चन्द्रमत्स्य वर्ग

(ORDER ALLOTREOGNATHI)

यह वर्ग भी छोटा ही है जिसमें की मछलियां अपनी विचित्र शकल-सूरत और मुख की अद्‌भुत बनावट के कारण अन्य मछलियों से भिन्न होती हैं। इनमें कुछ पतली और चपटे शरीर की और कुछ गोल-मटोल रहती हैं।

इनमें की प्रसिद्ध चांदमछली, जो लगभग ५०० पाउण्ड वजन की होती है, अपने सुन्दर रंग और अंडाकार गुदगुदे शरीर के कारण मछली जान ही नहीं पड़ती। इसके ऊपर का रंग नीला होता है और बगल के निलछौंह् रंग में बैंगनी और सुनहली झलक भी मिल जाती है। इसके नीचे का हिस्सा लाल रहता है। इसके सारे शरीर पर गोल रुपहले चित्ते रहते हैं और सुफनों का रंग चटक सिंदूरी रहता है। इन मछलियों का मांस बहुत स्वादिष्ठ होता है।

इस वर्ग की मछलियों का मुख्य भोजन सीप, घोंघे और छोटी-छोटी मछलियां हैं। वैसे तो इस वर्ग में कई परिवार हैं, लेकिन यहां केवल फीतामछली-परिवार का वर्णन किया जा रहा है।

फीतामछली परिवार

(FAMILY TRACHYPTEIDAE)

इस परिवार की मछलियाँ अपने फीता-जैसे पतले और चपटे शरीर तथा सिर से लेकर दुम तक फैले हुए पृष्ठपक्ष के कारण अन्य मछलियों से भिन्न रहती हैं।

ये मछलियाँ कभी-कभी २०-२० फुट तक की पायी जाती हैं। इनकी चौड़ाई एक फुट और मोटाई एक इंच रहती है। ये अक्सर रुपहली होती हैं और सुफने गुलाबी रहते हैं।

हमारे यहाँ पायी जानेवाली फीता-मछली (Ribbon Fish) का कद बहुत बड़ा नहीं होता, लेकिन इसका शरीर बहुत पतला रहता है। यहाँ इसी एक मछली का वर्णन किया जा रहा है।

जाती हैं। आँधी या तूफान के समय ये मछलियाँ हवा के झोंके से जहाज के डेक पर पहुँच जाती हैं।

ये हमेशा झुंड में रहती हैं और इनका मुख्य भोजन घोंघे, कटुए और छोटी-छोटी मछलियाँ हैं। इनके वैसे कई परिवार हैं, लेकिन यहाँ केवल एक उड़कूमछली-परिवार का ही वर्णन किया जा रहा है।

उड़ंकूमछली परिवार

(FAMILY EXOCOETIDAE)

इस परिवार में केवल उड़कूमछलियाँ रखी गयी हैं जिनके वक्षपक्ष बढ़कर पंख जैसे हो गये हैं। इन मछलियों को लगभग ४० जातियाँ सारे संसार में फैली हुई हैं।

ये मछलियाँ अपने बढ़े हुए सुफनों को चिड़ियों के डैनों की तरह नहीं इस्तेमाल करती, बल्कि वे अपनी दुम को तेजी से चलाकर हवा में उछलती हैं और उसके बाद अपने बड़े सुफनों को फैलाकर हवा में उसी तरह तैरती चली जाती हैं जैसी हमारी उड़नेवाली गिलहरियाँ करती हैं। इनकी यह उड़ान पानी की सतह से कुछ ही ऊपर रहती है, लेकिन कभी-कभी समुद्री तूफान और हवा के झोंके इन्हें जहाज के ऊपर तक पहुँचा देते हैं। यहाँ अपने यहाँ की प्रसिद्ध उड़ंकूमछली का वर्णन किया जा रहा है।

उड़ंकू-मछली

(FLYING FISH)

उड़ंकू-मछली

उड़कू-मछलियों के उड़ने का विवरण हम ऊपर पढ़ ही चुके हैं। हमारे यहाँ के समुद्रों में पायी जानेवाली उड़ंकू मछलियाँ लगभग एक फुट की होती हैं और उनके वक्षपक्ष ६ इंच से कम नहीं रहते।

इनके बदन पर सेहर होते हैं और इनका निचला जबड़ा ऊपरी जबड़े की अपेक्षा बड़ा होता है।

अश्व मत्स्य वर्ग

(ORDER SOLENICHTHYES)

इस छोटे वर्ग में अद्भुत शकल-सूरत की मछलियाँ पायी जाती हैं जो देखने में कोई अन्य जीव जान पड़ती हैं। इन सबका थूथन आगे की ओर एक नली-जैसा बढ़ा रहता है जिसमें दाँत नहीं होते। ये अपने इसी नलीनुमा मुखसे पानी को पिचकारी की तरह भीतर खींच लेती हैं और उसमें के छोटे-छोटे कीड़ों को खाकर अपना पेट भरती हैं।

ये सब छोटे और निरीह जन्तु हैं जिनकी आत्मरक्षा पास-पड़ोस के रंगरूप और शकल-सूरत की अनुरूपता से ही हो पाती है क्योंकि प्रकृति ने इन्हें अपना रंग बदलने की अद्भुत शक्ति प्रदान कर रखी है।

इन अद्भुत शकल-सूरत की मछलियों में से केवल घोड़ा मछली-परिवार का वर्णन यहाँ किया जा रहा है जिसे घोड़े के अनुरूप होने के कारण यह नाम मिला है।

घोड़ा मछली परिवार

(FAMILY SYNGNATHIDAE)

इस परिवार में घोड़ा मछली रखी गयी है जो अपनी विचित्र शकल-सूरत के कारण अन्य मछलियों से भिन्न होती है। यह पानी में अपनी दुम के सहारे खड़े ही खड़े तैरती है और अपना काफी समय पानी के भीतर के किसी पौधे का सहारा लेकर बिताती है। इन मछलियों के नर को ही मादा के स्थान पर अंडा सेना पड़ता है। इसके लिए बेचारे को अपनी दुम के पास की थैली में अंडों को रखकर तब तक घूमना पड़ता है जब तक वे फूट नहीं जाते।

यहाँ अपने देश में पायी जानेवाली प्रसिद्ध घोड़ा-मछली का वर्णन किया जा रहा है।

घोड़ा मछली

(SEA HORSE)

यह विचित्र मछली, जिसे घोड़े-जैसे मुंह के कारण घोड़ामछली का नाम मिला है, शकल-सूरत तथा शरीर की बनावट आदि किसी बात में मछली नहीं जान पड़ती।

फीता-मछली

(RIBBON FISH)

फीता मछलियाँ समुद्र की इतनी गहराई में रहती हैं कि वे हम लोगों को बहुत ही कम दिखाई पड़ती हैं। ये इतनी लम्बी होती हैं कि इन्हें पहले लोग समुद्री अजदह समझते थे।
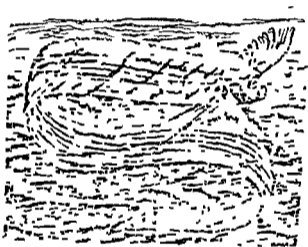
फीता-मछली

इस मछली का पृष्ठपक्ष (Dorsal Fin) सारी पीठ पर फैला रहता है जिसमें बहुत से नरम काँटे रहते हैं। इसका मुँह छोटा होता है जिसमें दाँतों की पंक्तियाँ रहती हैं।

इंगलैंड के समुद्री तट पर जो फीता मछली (Ribbon Fish) मिली थी उसकी लम्बाई २० फुट चौड़ाई एक फुट और मोटाई एक इंच थी लेकिन हमारे देश की फीता मछली का कद छोटा होता है और उसका शरीर भी १ फुट चौड़ा न होकर डंडे की तरह गोल रहता है। इसके सुफने गुलाबी रंग के होते हैं। यह देखने में मछली की अपेक्षा साँप से अधिक मिलती जुलती होती है।

वैसे तो इस वर्ग के अन्तर्गत बहुत-से उपवर्ग हैं, पर यहाँ केवल उन उपवर्गों का ही वर्णन किया जा रहा है जिनमें की मछलियाँ हमारे देश में पायी जाती हैं।

१. भेटकी उपवर्ग—Sub-order Percoidea

२. रूपचांद उपवर्ग—Sub-order Stromateoydea

३. कवई उपवर्ग—Sub-order Anabantoidea

४. मैगामछली उपवर्ग—Sub-order Scombroidea

भेटकी उपवर्ग

(SUBORDER PERCOIDEA)

भेटकी परिवार

(FAMILY PERCIDAE)

इस परिवार की प्रायः सभी मछलियाँ समुद्री हैं जिनका शरीर बहुत लंबा न होकर गोलाई लिये रहता है। इनके पृष्ठपक्ष में आगे की ओर काँटे रहते हैं। इस परिवार की मछलियों का रंग बहुत कुछ इनके पास-पड़ोस की वस्तुओं के अनुरूप रहता है। मटमैले पानी में रहनेवाली मछलियाँ मटमैले रंग की और साफ पानी में रहनेवाली मछलियाँ चटकीले रंगकी होती हैं।

यहाँ इस परिवार से केवल प्रसिद्ध भेटकी मछली का वर्णन किया जा रहा है जो समुद्र की निवासिनी है।

भेटकी

(BHETKI)

भेटकी हमारे यहाँ की बहुत प्रसिद्ध समुद्री मछली है। वैसे तो यह सारे देश के समुद्री किनारों और नदियों के मुहानों पर पायी जाती है लेकिन बंगाल की खाड़ी में यह बहुत अधिक संख्या में मिलती है।

यह समुद्र में रहनवाली मछली है जो हमारे यहाँ बगाल की खाडी में पायी जाती है।

घोडा मछली

इसका धड दोनो ओर से चपटा रहता है और पेट का हिस्सा कुछ बाहर की ओर निकला रहता है। धड हड्डियों के छल्ला के मिलन से बनता है जिस पर जगह-जगह उभार सा रहता है। धड के ऊपर इसका सुअर एसा सिर रहता है जो चपटा होता है और जिसके ऊपर का हिस्सा उभरे हुए काँटो और घुडिया से भरा रहता है जो देखने म मुकुट सा जान पडता है।

इसके पष्ठपक्ष घड क ऊपर और वक्षपक्ष दोनो बगल रहते ह लेकिन गुह्यपक्ष नही होता। यह अपनी दुम से किसी घास को पकडकर पानी म सीधी खडी रहती है।

भटकी वग

(ORDER PERCOMORPHE)

यह वग बहुत ही बडा और विस्तत है इसी कारण सुविधा के लिए इसको कई उपवर्गों म बाँटना पडा है। इस वग की मछलिया खारे और मीठे दाना प्रकार के पानी म पायी जाती ह।

वैसे तो इस वर्ग के अन्तर्गत बहुत-से उपवर्ग हैं, पर यहाँ सिर्फ उन उपवर्गों का ही वर्णन किया जा रहा है जिनकी मछलियाँ हमारे देश में पायी जाती हैं।

१. भेटकी उपवर्ग—Sub-order Percoidea

२. रूपचाँद उपवर्ग—Sub-order Stromateoydea

३. कवई उपवर्ग—Sub-order Anabantoidea

४. सिंगामछली उपवर्ग—Sub-order Scombroidea

भेटकी उपवर्ग

(SUBORDER PERCOIDEA)

भेटकी परिवार

(FAMILY PERCIDAE)

इस परिवार की प्रायः सभी मछलियाँ समुद्री हैं जिनका शरीर बहुत लंबा न होकर गोलाई लिये रहता है। इनके पृष्ठपक्ष में आगे की ओर काँटे रहते हैं। इस परिवार की मछलियों का रंग बहुत कुछ इनके पास-पड़ोस की वस्तुओं के अनुरूप रहता है। मटमैले पानी में रहनेवाली मछलियाँ मटमैले रंग की और साफ पानी में रहनेवाली मछलियाँ चटकीले रंगकी होती हैं।

यहाँ इस परिवार से केवल प्रसिद्ध भेटकी मछली का वर्णन किया जा रहा है जो समुद्र की निवासिनी है।

भेटकी

(BHETKI)

भेटकी हमारे यहाँ की बहुत प्रसिद्ध समुद्री मछली है। वैसे तो यह सारे देश के समुद्री किनारों और नदियों के मुहानों पर पायी जाती है लेकिन बंगाल की खाड़ी में यह बहुत अधिक संख्या में मिलती है।

भेटकी के शरीर का रंग सिलेटी रहता है जिसमें पीठ पर के हिस्से पर हरी झलक रहती है।

भेटकी

इसका निचला हिस्सा रुपहला रहता है जिसमें बरसात में एक प्रकार का बैंगनीपन आ जाता है।

भेटकी लम्बाई में पाँच फुट और वजन में दो-ढाई मन तक की पायी गयी है। इसका मांस खाने में स्वादिष्ठ होता है।

चन्द्रा परिवार

(FAMILY CHAETODONTIDAE)

चन्द्रा परिवार की मछलियाँ भी समुद्र की निवासिनी हैं, लेकिन इनमें कुछ ऐसी भी हैं जो नदियों में कुछ दूर तक चढ़ जाती हैं।

इन मछलियों का शरीर चपटा, मुख-छिद्र गोल और थूथन सिरे पर रहता है। इनका शरीर ऐसे सेहरों से ढका रहता है, जो पतले, गोल और दन्दानेदार रहते हैं।

इस परिवार की कुछ मछलियाँ बहुत सुंदर होती हैं जिनमें मूँगे की चट्टानों के निकट रहनेवाली मछलियाँ तो अपनी रंगीन पोशाक से तितलियों को भी मात कर देती हैं। इन रंगीन मछलियों को तितली-मत्स्य कहा जाता है जो सब प्रकार से ठीक ही है। इनका मुख बहुत पतला और नली के आकार का होता है जिसे वे मूँगे की चट्टानों के सूराखों में डालकर पानी में रहनेवाले छोटे-मोटे कीड़ों को पकड़ा करती हैं।

यहां केवल चँदवा नाम की मछली का वर्णन किया जा रहा है जो हमारे यहां के समुद्रों की बहुत प्रसिद्ध मछली है।

चँदवा

(CHANDAWA)

चँदवा हमारे यहां की प्रसिद्ध मछली है जो हमारे देश के समुद्रों में काफी संख्या में पायी जाती है।
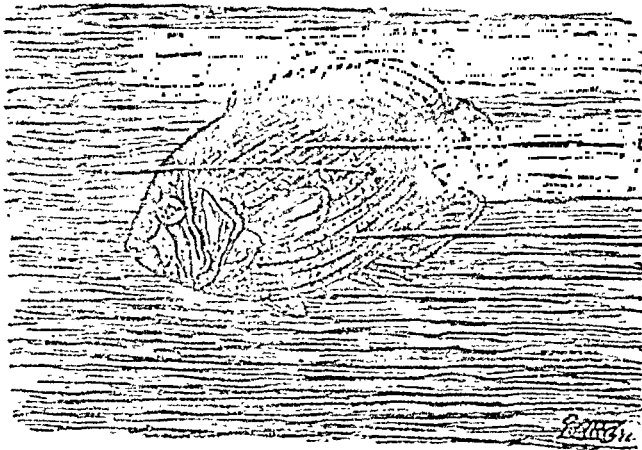
चँदवा

यह लगभग डेढ़ फुट लंबी मछली है जिसे अपने चपटे और चितकबरे शरीर के कारण शायद यह नाम मिला है।

चँदवा के शरीर का रंग रुपहला रहता है जिसमें कुछ सुनहली और बैंगनी झलक रहती है। इसके वदन पर कभी-कभी खड़ी धारियाँ और चित्तियाँ पड़ी रहती हैं।

इसका मांस बहुत स्वादिष्ठ न होकर मामूली ही रहता है।

लेठा परिवार

(FAMILY CENTRARCHIDAE)

इस परिवार की मछलियाँ भी खारे और मीठे दोनों प्रकार के जलाशयों में रहती हैं। इनका शरीर कभी लंबा और कभी अंडाकार और चपटा रहता है। इनमें से कुछ मछलियों का शरीर तो ऐसा गोल-मटोल रहता है कि सहसा हम उन्हें मछली कह ही नहीं सकते। सूर्य मछली (Sun Fish) इसी प्रकार की अंडाकार शरीरवाली मछली है, जो समुद्रों में पायी जाती है।

इसका पृष्ठपक्ष कभी कभी दो हिस्सों में न बँटकर सारी पीठ पर फैला रहता है। इसके बदन पर सेहर रहते हैं जिनके किनारे कटावदार होते हैं। यहाँ इस परिवार की केवल एक लेठा मछली का वर्णन किया जा रहा है।

लेठा

(LETHA)

लेठा भी हमारे देश की प्रसिद्ध मछली है जो मीठे पानी के जलाशयों के अलावा पानी से भरे हुए खेतों में भी पायी जाती है। यह सात-आठ इंच की छोटी सी मछली है जो पानी से बाहर किये जाने पर भी जल्द नहीं मरती।

लेठा

लेठा के शरीर का रंग हरापन लिये भूरा रहता है जिसमें एक प्रकार की ताँबे-जैसी झलक रहती है। इसके शरीर पर ऊपर से नीचे तक तीन चौड़ी पट्टियाँ रहती हैं और एक चौड़ी पट्टी दुम के ऊपर तक चली जाती है। कभी-कभी इस पट्टी की जगह एक काला चित्ता रहता है।

लेठा के बदन पर सेहर होते हैं जो मुँडी पर तो छोटे लेकिन शरीर के अन्य भागों पर बड़े रहते हैं। इसका मांस स्वादिष्ट होता है।

रूपचाँद उपवर्ग

(SUB-ORDER STROMATEOYDEA)

रूपचाँद परिवार

(FAMILY STROMATEIDAE)

रूपचाँद परिवार भी छोटा ही है जिसमें की सब मछलियाँ समुद्र में रहनेवाली हैं। इन मछलियों का शरीर चपटा और बीच में उभरा-उभरा-सा रहता है। इनका पृष्ठपक्ष बहुत लंबा होता है जिसमें प्रायः कड़े काँटे नहीं रहते। इन मछलियों के गलफड़ों के सूराख चौड़े होते हैं और इनके जबड़ों में एक ही कतार में छोटे-छोटे दाँत रहते हैं।

इनमें से यहाँ केवल एक रूपचाँद नाम की मछली का वर्णन किया जा रहा है जो हमारे यहाँ की प्रसिद्ध समुद्री मछली है।

रूपचाँद

(ROOPCHAND)

रूपचाँद समुद्र की मछली है। जो हमारे देश के प्रायः सभी समुद्रों में बहुतायत से पायी जाती है। अपने सुन्दर रुपहले रंग के कारण इसका रूपचाँद नाम ठीक ही लगता है।

रूपचाँद

रूपचाँद लगभग एक फुट लंबी होती है। इसके प्रायः सभी सुफने टेढ़े होते हैं और गुह्यपक्ष (Anal Fin) तो इतना टेढ़ा रहता है कि दूर से दूज के चाँद-सा लगता है।
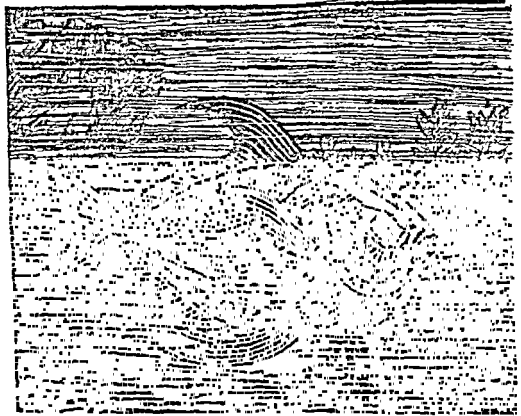
इसके सिर और पीठ के ऊपर का रंग सिलेटी होता है जिसमें बैंगनी झलक रहती है। शरीर का

बाकी हिस्सा रुपहला रहता है जो पेट तक जाते-जाते सफेद हो जाता है। इसके सारे बदन पर छोटी-छोटी बिन्दियाँ रहती हैं और गलफड़ों के दोनों ढक्कनों पर गाढ़े रंग के चित्ते रहते हैं।

कवई उपवर्ग

(SUB ORDER ANABANTOIDEA)

कवई परिवार

(FAMILY ANABANTIDAE)

इस छोटे परिवार में यद्यपि थोड़ी ही मछलियाँ हैं, लेकिन हवा में भी थोड़ा-बहुत साँस ले सकने के कारण ये अन्य मछलियों से भिन्न रहती हैं। ये उभयचरों की तरह पानी के बाहर भी काफी देर तक रह सकती हैं।

इन मछलियों का शरीर चपटा और अंडाकार होता है जिसका ऊपरी हिस्सा कुछ उठा उठा-सा रहता है। इनके गलफड़ के छेद कुछ पतले रहते हैं और पीठ पर का सुफना पीठ पर काफी दूर तक फैला रहता है। इनके शरीर पर सेहर होते हैं जिनका अगला हिस्सा कुछ कटावदार रहता है।

इस परिवार की सब मछलियाँ मीठे पानी में रहती हैं जो हमारे यहाँ के बड़े जलाशयों और नदियों में काफी सख्या में पायी जाती हैं।

यहाँ इनमें से प्रसिद्ध कवई मछली का ही वर्णन किया जा रहा है।

कवई

(CLIMBING PEARCH)

कवई हमारे यहाँ की बहुत प्रसिद्ध मछली है जो पानी से बाहर उछलकर कुछ दूर तक सूखे पर भी चल लेती है। यह हमारे देश में प्राय सभी बड़े जलाशयों में पायी जाती है।

कवई को कहीं-कहीं सुभा भी कहा जाता है। इसका कद लगभग ८-९ इंच का होता है। इसका पृष्ठपक्ष (Dorsal Fin) गलफड़ के ऊपर से शुरू होकर दुम की जड़

तक चला जाता है, जिसमें थोड़े से पिछले हिस्से को छोड़कर बाकी हिस्से में कड़े काँटे उभरे रहते हैं।

कवई

इसके शरीर का रंग हरापन लिये सिलेटी रहता है जिस पर चार चौड़ी-चौड़ी खड़ी पट्टियाँ रहती हैं और एक धारी मुँह के कोने से लेकर गलफड़ तक फैली रहती है। इसका मांस स्वादिष्ठ होता है।

सौर परिवार

(FAMILY OPHIOCEPHALIDAE)

सौर परिवार भी छोटा ही कहा जायगा। इसमें हमारे यहाँ की प्रसिद्ध सौर और उसके भाई-बन्धु हैं जो सब मीठे पानी में रहते हैं।

इन मछलियों का शरीर लंबा होता है जो आगे की ओर गोलाकार रहता है। इनका सिर चपटा, गलफड़ चौड़े और शरीर सुडौल रहता है। पीठ पर का सुफना

सारी पीठ पर फैला रहता है लेकिन उसमे कडे काँटे नही होते। इनके जबडो म तेज और महीन दात रहते हैं।

ये मछलियाँ पानी के बाहर भी कुछ देर तक उभयचरो की तरह रह सकती हैं और इनमें से कुछ अपने सुफनो की मदद से कीचड पर साप की तरह रगकर काफी दूर तक चली जाती है।

इन मछलियो को कीचड से भरे ताल और घास तथा सेवार से भरी हुई नदिया ज्यादा पसद है। इनम से कुछ जाति की मछलियाँ जलाशया के सूख जाने पर मिट्टी म गड जाती हैं और एक छिद्र क द्वारा हवा म साँस लेकर जीवित रहती हैं। वर्षा के आरभ होन पर जब ताल-तलैया पानी से भर जाती हैं तो य मछलिया फिर पानी म तैरने लगती हैं और इनके गलफड फिर पानी म घुली हुई हवा से सास लेने योग्य हो जाते हैं।

यहाँ केवल प्रसिद्ध सौर मछली का वणन किया जा रहा है जो अपने यहाँ की प्रसिद्ध मछली है और जिससे हम भलीभाति परिचित हैं।

सौर

(SERPENT HEAD)

सौर हमारे यहाँ की बहुत प्रसिद्ध मछली है जा हमारे देश के प्राय सभी बडे जलाशया म पायी जाती है। इसे वडी और साफ जलवाली नदियो की अपेक्षा घास

सौर

सेवार और नरकुल आदि स भरे हुए जलाशय और दलदल अधिक पसद हैं। नदिया में भी जहाँ बँधा पानी रहता है वहाँ यह अपने रहने का स्थान चुनती है।

सौर के शरीर का ऊपरी भाग गाढ़ा सिलेटी या कलछौंह और नीचे का हिस्सा सिलछौंह या सफेद रहता है।

सौर का शरीर लगभग दो-तीन फुट लंबा होता है जो बहुत छोटे-छोटे सेहरों से ढँका रहता है। ये सेहर उसके सिर के ऊपर तक फैले रहते हैं। इसके गाल और मुँह के निचले भाग पर धारियाँ और चित्तियाँ पड़ी रहती हैं और शरीर के दोनों बगल में पेट तक काली या सिलेटी पट्टियाँ चली आती हैं। इसका मांस बहुत स्वादिष्ठ होता है।

तेगामछली उपवर्ग

(SUB-ORDER SCEMBROIDEA)

तेगामछली परिवार

(FAMILY XIPHIIDAE)

तेगामछली का परिवार बहुत छोटा है और इसमें की सब मछलियाँ समुद्र की निवासिनी हैं। इन मछलियों का शरीर चपटा होता है और इनका ऊपरी जबड़ा तलवार की शकल का होकर आगे की ओर काफी दूर तक बढ़ा रहता है।

इनका मुँह भीतर की ओर काफी गहराई तक कटा रहता है जिसमें दाँत नहीं होते। इनमें से यदि किसी के दाँत हुए भी तो वे छोटे अंकुर-जैसे ही रहते हैं।

इन मछलियों के शरीर पर सेहर तो नहीं होते, लेकिन कुछ की खाल के ऊपर थोड़ा-सा उभार जरूर रहता है।

वैसे तो इसमें कई प्रकार की तेगामछलियाँ हैं, लेकिन यहाँ अपने यहाँ की प्रसिद्ध तेगामछली का वर्णन किया जा रहा है जो अपने समुद्रों में काफी संख्या में पायी जाती हैं।

तेगामछली

(SWORD FISH)

तेगामछली हमारे यहाँ की प्रसिद्ध समुद्री मछली है जिसका यह नाम उसके ऊपरी थूथन के तेगा या तलवार जैसी शकल के हो जाने से पड़ा है। यह अपनी अजीब शकल-सूरत के कारण शीघ्र ही पहचानी जा सकती है।

तेगामछली ५-६ में १०-१५ फुट तक लंबी होती है। इसके शरीर का ऊपरी हिस्सा मिलैटी रंग का रहता है जो नीचे जाते-जाते हलका हो जाता है। इसके बदन
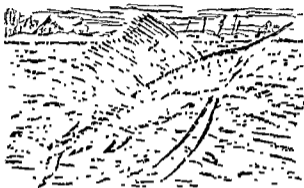
तेगामछली

पर की खाल उभरी-उभरी-सी रहती है और दुम की जड़ के पास दोनों ओर दो जगहों पर थोड़ा-थोड़ा-सा उभार रहता है।

चूपिका मत्स्य वर्ग

(ORDER DISCOCIPHALI)

इस वर्ग में अजीब तरह की भद्दी शक्लवाली मछलियों को एकत्र किया गया है, जो सब समुद्र की रहनेवाली हैं। इनका सिर चपटा होता है जिस पर लहरदार मास-पेशियों की उभरी हुई एक चुसनी रहती है। अपने माथे पर के इस अद्भुत अवयव या यंत्र द्वारा, जिसे चुसनी कहा जाता है, ये मछलियाँ हागर आदि बड़ी मछलियों या समुद्र के भीमकाय कछुओं के पेट में चिपक जाती हैं और उन्हीं के साथ-साथ बिना परिश्रम के ही समुद्र में इधर-उधर घूमा करती हैं। कभी-कभी ये जहाज के पेंदे में भी अपनी इसी चुसनी के द्वारा चिपक जाती हैं और मीलों का सफर अनायास ही कर लेती हैं।

इस प्रकार सफर करते समय जब इन्हें कहीं छोटी मछलियों का झुंड दिखाई पड़ता है तो ये अपने को बड़ी मछली से अलग करके वहीं रुक जाती हैं और अपना

भोजन समाप्त करके फिर किसी के पेट से चिपक कर वहां से दूसरी जगह चली जाती है। इनमें कुछ एक फुट की और कुछ तीन फुट तक की होती हैं।

इनका एक ही परिवार है जो चूसनी-परिवार कहलाता है। यहां हम इसी का वर्णन कर रहे हैं।

चूसनी परिवार

(FAMILY ECHINIDADAE)

इस परिवार की मछलियां अपने सिर पर के विचित्र अंग के कारण अन्य सब मछलियों से भिन्न होती हैं। इसी अंग के सहारे ये दूसरी बड़ी मछलियों, कछुओं तथा जहाज के पेंदों में चिपक जाती हैं, जैसा कि हम कह चुके हैं, और बिना किसी परिश्रम के मीलों का सफर कर लेती हैं।

यहां अपने यहां के समुद्रों में पाई जानेवाली प्रसिद्ध चूसनी-मछली का वर्णन किया जा रहा है।

चूसनी मछली

(SUCKING FISH)

चूसनी हमारे यहां की समुद्री मछली है जो अपने सिर पर के विचित्र अंग के कारण अन्य मछलियों से भिन्न है। इसके सिर पर का चूषक-यंत्र इसको बहुत काम का
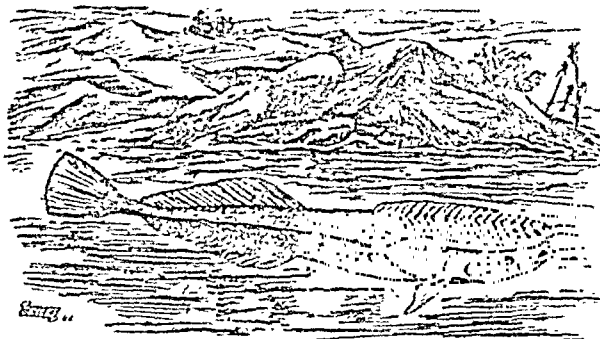
चुसनी मछली

होता है जिसके सहारे यह शार्क आदि बड़ी मछलियों के निचले हिस्से में चिपककर मीलों का सफर कर लेती है।

यह मछली लगभग एक फुट की होती है जिसके शरीर का रंग अन्य मछलियों की तरह ऊपर गाढ़ा और नीचे हल्का न होकर नीचे गाढ़ा और ऊपर हल्का रहता है। इसका कारण यह है कि ज्यादा समय तक सिर के बल पावें आदि के बदन में चिपके रहने से इसके शरीर का ऊपरी हिस्सा अँधेरे में रहता है और वह हलके रंग का रह जाता है, लेकिन इसके नीचे का हिस्सा बाहर रहने के कारण गाढ़े भूरे रंग का हो जाता है जिससे वह नीली लहरों में छिप जाय।

चूँकि ये मछलियाँ कभी-कभी जहाज के पेंदे और बड़े समुद्री कछुओं के नीचे चिपक जाती हैं इससे कुछ शिकारी इन्हें पालकर इनसे समुद्री कछुओं को पकड़ते हैं।

चिपिट मत्स्य वर्ग

(ORDER HETEROSOMATA)

इस छोटे वर्ग में भी विचित्र शक्ल-सूरत की चपटी मछलियाँ रखी गयी हैं, जो सब समुद्र की रहनेवाली हैं। ये सब अपने स्वादिष्ठ मांस के लिए प्रसिद्ध हैं।

इन मछलियों की बनावट में एक खास बात यह होती है कि इनकी दोनों आँखें प्रायः उसी ओर रहती हैं जिस ओर का हिस्सा रंगीन रहता है। इनके चपटे शरीर के रंगीन हिस्से की ओर दाँतों की संख्या भी अधिक रहती है।

इन मछलियों का शरीर चपटा होता है जिसका एक हिस्सा रंगीन और दूसरा सादा रहता है। सादे हिस्से पर कभी-कभी चित्तियाँ भी रहती हैं। इन मछलियों को इनके चपटे शरीर के कारण विदेशों में सोल (Sole) और हमारे यहाँ 'कुकुरजीभी' मछली कहते हैं।

इन मछलियों के पृष्ठपक्ष और गुदपक्ष काफी दूर तक फैले रहते हैं। इनमें से कुछ के बदन पर सेहर रहते हैं और कुछ बिना सेहर की ही रहती हैं।

सोल परिवार

(FAMILY PSETTODES)

इस परिवार में चपटे शरीरवाली मछलियाँ हैं जो सोल या कुकुरजीभी मछलियाँ कहलाती हैं। इनका एक हिस्सा सादा तथा दूसरा रंगीन रहता है और इनकी दोनों आँखें रंगीन हिस्से की ही ओर रहती हैं। इनका मांस बहुत स्वादिष्ठ होता है।

वैसे तो इस परिवार में अनेक मछलियां हैं, लेकिन यहां अपने यहां की प्रसिद्ध जेबरा-मछली का ही वर्णन किया जा रहा है।

जेबरा मछली

(ZEBRA SOLE)

जेबरा मछली हमारे यहां की समुद्री मछली है जो बंगाल की खाड़ी में पायी जाती है। इसका शरीर चपटा होता है और, जैसा इसके नाम से स्पष्ट है, इसके सारे भूरे शरीर पर जेबरा की तरह आड़ी-आड़ी काली धारियां पड़ी रहती हैं।

जेबरा का शरीर बहुत चपटा होता है। इसीलिए इसे अंग्रेजी में जेबरा सोल और हमारे यहां धारीदार तल्ला कहते हैं। यह देखने में भी जूते के तल्ले-सी जान पड़ती है।

इस मछली का मुंह बहुत छोटा, पतला और बायीं ओर को रहता है लेकिन इसकी दोनों आंखें दाहिनी ओर ही रहती हैं, जिनमें ऊपर की आँख नीचे की आँख से कुछ आगे की ओर बढ़ी रहती है।

जेबरा मछली
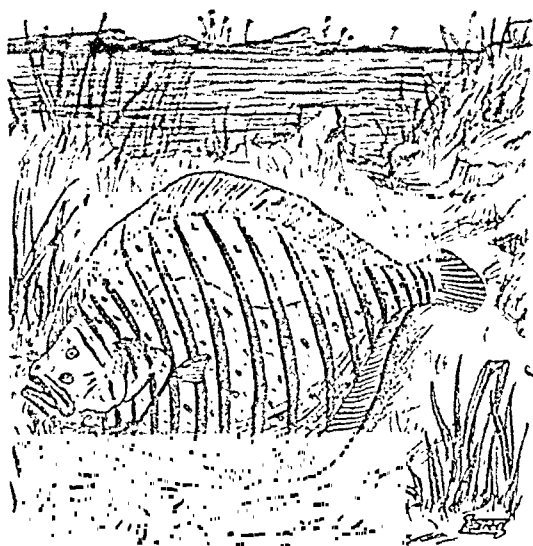
जेबरा मछली का पृष्ठपक्ष (Dorsal Fin) इसके थूयन के पास से शुरू होकर दुम तक पहुँच जाता है और इसका एक वक्षपक्ष Pectoral Fin इसके धारीदार हिस्से की ओर रहता है। दूसरा वक्ष-पक्ष सादे शरीर की ओर या तो रहता ही नहीं और अगर हुआ भी तो बहुत छोटा रह जाता है।

जेबरा मछली की लंबाई लगभग डेढ़ फुट होती है।

सूर्य मत्स्य वर्ग

(ORDER TLECLOGNATHI)

इस वर्ग की मछलियाँ भी अपनी शक्ल-सूरत में अन्य मछलियो से भिन्न होती हैं। इन्हे अपना बदन फुला लेने की ऐसी सहूलियत प्रकृति की ओर से मिली है कि ये उसकी मदद से जरूरत पड़ने पर अपने कद को फुला कर काफी बड़ा बना लेती हैं। ऐसा करने पर इनके बदन पर के छोटे-छोटे काँटे खड़े हो जाते हैं और इनका शरीर एक कँटीले कवच से ढक जाता है। वैसे इनका शरीर बहुत मुलायम होता है और इनका गलफड, जो इनके वक्षपक्ष (Pectoral Fins) के आगे रहता है, पतला होता है। इनका मुँह भी छोटा और सँकरा होता है।

इनमें से कुछ का बदन तो एक दम चिक्‍ना होता है और कुछ के बदन पर खुरदुरे सेहर रहते हैं। कुछ ऐसी भी हैं जिनका शरीर काँटो या कड़े प्लेटो से ढका रहता है। ये मछलियाँ खाने के काम नही आती क्योकि इनमें से अधिकतर ऐसी हैं जिनका मास जहरीला होता है।

इस परिवार की सब मछलियाँ समुद्र में रहती हैं लेकिन इनमें से दो-एक ऐसी भी हैं जो हमारी बड़ी नदियो में चली आती हैं।

वैसे तो इस वर्ग में कई परिवार है, लेकिन यहाँ उनमें से तीन परिवारो का वर्णन किया जा रहा है, जिनमे की मछलियाँ हमारे यहाँ काफी सख्या में पायी जाती हैं।

ये परिवार इस प्रकार हैं —

१ सूरजमछली परिवार, २ गौरैयामछली परिवार, ३ साहीमछली परिवार। इनमें से प्रत्येक परिवार मे एक-एक मछली का वर्णन किया जा रहा है।

सूरजमछली परिवार

(FAMILY MOTIDAE)

इस परिवार मे सूरजमछलियाँ इकट्ठी की गयी हैं, जिन्हें यह नाम उनके गोल-मटोल शरीर के कारण मिला है। ये छोटी भी होती हैं और बड़ी भी। बड़ी मछलियाँ लगभग एक टन वजन तक की हो जाती हैं। यहाँ एक प्रसिद्ध सूरजमछली का वर्णन किया जा रहा है।

सूरज मछली

(SUN FISH)

सूरज मछली समुद्र में रहनेवाली मछली है जो अपने भारी शरीर और बड़े कद के कारण प्रसिद्ध है। यह सभी गरम समुद्रों में पायी जाती है और अपने गोल शरीर के कारण अन्य मछलियों के बीच पहचान ली जाती है। इसके पृष्ठपक्ष और गुह्य-पक्ष ऊपर और नीचे की ओर चपटे फलवाले बल्लम-से निकले रहते हैं जिसके बीच में इसकी पंखीनुमा दुम गोलाई लिये रहती है। इसके वक्षपक्ष बहुत छोटे-छोटे पंखीनुमा, दोनों बगल, रहते हैं।
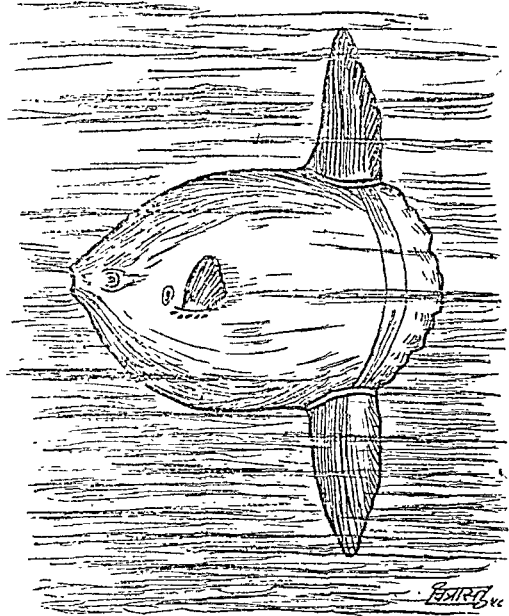
सूरज मछली

यह वजन में प्रायः एक टन तक की होती है। यह अक्सर समुद्र की ऊपरी सतह के पास आकर धूप सेंकती रहती है लेकिन अपने भोजन की तलाश में यह समुद्र की बहुत गहराई तक चली जाती है।

यह सामान्यतः तो प्रायः दो फुट लंबी हो जाती है लेकिन इसकी किसी-किसी जाति की मछलियाँ ६-७ फुट लंबी और वजन में भी लगभग एक टन की हो जाती हैं।

गौरैयामछली परिवार

(FAMILY TRIODONTIDAE)

इस परिवार में गौरैया मछलियों को एकत्र किया गया है जिनके दाँत एक में

मिलकर बड़े प्लेट बन गये हैं। ये मछलियाँ अपने शरीर को काफी फुला लेती हैं। यहाँ केवल एक गौरैया मछली का वर्णन किया जा रहा है।

गौरैया मछली
(GLOBE FISH)

गौरैया मछली को बंगाल में टेपा माछ कहते हैं, लेकिन इसका गौरैया मछली नाम अधिक सार्थक है, क्योंकि जब यह अपना शरीर फुला लेती है तो इसकी शकल ठीक गौरैया-सी हो जाती है।

गौरैया मछली

इसके समुद्री भाई तो काफी बड़े कद के होते हैं लेकिन मीठे पानी में पायी जानेवाली यह मछली ३-४ इंच से ज्यादा बड़ी नहीं होती। हमारे देश में यह बंगाल और उड़ीसा की नदियों में पायी जाती है और कभी-कभी गंगा आदि में होकर बिहार और उत्तर प्रदेश तक चली आती है।

इसकी पीठ चौड़ी और बीच में उभरी रहती है और इसके बदन के सारे सुफ्ने गोलाकार रहते हैं। इसका ऊपरी रंग पिल्छौंह या धानीपन लिये हरा रहता है, लेकिन नीचे का हिस्सा सफेद होता है।

इस मछली के शरीर में हवा की थैली होती है जिसके कारण यह अपने शरीर को फुलाकर गोल-मटोल हो जाती है। शरीर को फुला लेने से इसे तैरने में आसानी होती ही है साथ ही साथ शकल के भयानक हो जाने से इसके दुश्मन भी इससे ता डरने लगते हैं।

साहीमछली परिवार
(FAMILY DIODONTIDAE)

इस परिवार में उन मछलियों को रखा गया है जिनके शरीर पर बड़े काटे रहते हैं। खतरे के समय जब यह अपना शरीर फुला लेती है तो ये काटे खड़े हो जाते हैं और

मछलियाँ साही की तरह दीखने लगती हैं। यहां इनमें से एक प्रसिद्ध मछली का वर्णन किया जा रहा है।

साही मछली

(PORCUPINE FISH)

साहीमछली भी समुद्र की निवासिनी है जो गोरैया मछली की तरह खतरे को निकट देखकर अपने शरीर को फुला लेती है।

साही मछली

यह कई फुट लंबी होती है और इसके शरीर पर साही की तरह तेज कांटे होते हैं, जो इसके शरीर के फूलने पर सीधे खड़े हो जाते हैं और तब यह बहुत भयानक दिखाई पड़ने लगती है। पूरी तरह से फूल जाने पर यह इधर-उधर भागने में असमर्थ हो जाती है और समुद्र की लहरों में पड़कर आगे-पीछे आती-जाती है लेकिन ऐसी दशा में इस पर सहसा दुश्मनों को हमला करने का साहस नहीं होता।
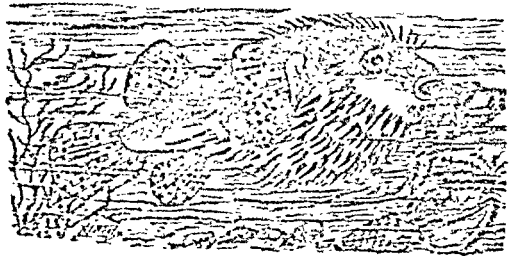
अपनी साधारण अवस्था में आने के लिए यह अपने भीतर की हवा मुँह और गलफड़ों से निकाल देती है। हवा निकलते समय बड़ी तेज आवाज होती है और इसका शरीर पिचककर छोटा और लंबा हो जाता है।

खंड ११

उभयचर श्रेणी

(CLASS RLPTILIA)

उभयचर उन जीवधारियो को कहा जाता है जो जल और स्थल दोनो जगह आसानी से रह सकते हैं। इनका शैशवकाल मछलियो की तरह पानी में बीतता है, जब ये उन्ही की तरह गलफडो से साँस लेते हैं लेकिन बडे होने पर उनके गलफड बन्द होकर फेफडो का विकास हो जाता है और फिर सरीसृपा अथवा स्तनप्राणियों की तरह उनके साँस लेने का व्यापार इन्ही फेफडो से चलने लगता है। इन जीवो को हम मछलियो और सरीसृपो के बीच की कडी कह सकते है।

उभयचरा में ज्यादातर तो ऐसे है जो अपना कुछ समय सूखे मे और बाकी पानी मे बिताते हैं, *कुछ ऐसे भी है जो पानी में जाते ही नही और कुछ इनमें ऐसे भी है* जो शायद ही कभी पानी से बाहर निकलते हो।

खुश्की पर रहनेवाले उभयचरो की खाल सूखी और खुरदुरी होती है और पानी में रहनेवालो की चिकनी, लेकिन कुछ उभयचर ऐसे भी है जिनकी खाल पर एक प्रकार की नमी-सी रहती है। इस नमी के कारण वे पानी को सोख सकते है और ऐसा करने से फिर उन्हें पानी पीना नही पडता। ऐसे उभचर किसी नम जगह में पत्थर या मिट्टी के नीचे दबे पडे रहते हैं।

उभयचरो का कद न बहुत बडा होता है और न बहुत छोटा ही। पानी मे रहनेवाले उभयचरो के पैर जलपाद होते हैं जिससे उन्हें तैरने मे बडी आसानी हो जाती है। इनका मुख भी चौडा होता है और कुछ के छोटे और तेज दाँत भी रहते हैं। ये सब सीधे-सादे निरीह जीव है जो ऐसे ही कभी दबाव मे पडकर भले ही किसी को काट लें, वैसे ये खतरे को देखकर भागना और छिपना ही ज्यादा पसन्द करते हैं।

उभयचर अण्डज प्राणी हैं जो साल में एक बार अण्डे देते हैं। अण्डे देने के लिए ये पानी में चले जाते हैं, जहाँ इनकी मादा हजारों की तादाद में अण्डे देती है। ये अण्डे बहुत छोटे, चिपचिपे और गोल होते हैं जो आपस में एक पतली झिल्ली से जुड़े रहते हैं।

अण्डों के फूटने पर इनमें से जो छोटे मछली की शकल-सूरत के बच्चे निकलते हैं वे टैडपोल (Tadpole) या छूछू मछली कहलाते हैं। ये मछलियों की तरह गलफड़ों से साँस लेते हैं, लेकिन इनमें एक विशेषता यह भी होती है कि इनका कोई अंग कट जाने पर वह फिर नये सिरे से निकल आता है।

ये इस अवस्था में तो शाकाहारी रहते हैं लेकिन बड़े हो जाने पर एकदम मांसाहारी हो जाते हैं और कीड़े-मकोड़े तथा केंचुए आदि कुछ भी इनसे नहीं बचने पाते।

उभयचर श्रेणी वैसे तो कई वर्गों में विभक्त है लेकिन यहाँ केवल मेढक वर्ग का ही वर्णन किया जा रहा है, क्योंकि अन्य वर्ग के प्राणी या तो पृथ्वी पर से सदा के लिए लुप्त हो गये हैं या हमारे देश में वे पाये ही नहीं जाते।

मेढक वर्ग

(ORDER SALIENTIA)

मेढक हमारे बहुत परिचित जीव हैं जो पानी और खुश्की दोनों स्थानों पर रह लेते हैं। लेकिन अधिक संख्या उन्हीं की है जिनका ज्यादा समय पानी में बीतता है। यही नहीं, कुछ ने तो पेड़ों पर तक चढ़ने का अभ्यास कर लिया है जहाँ से वे उड़नेवाली गिलहरियों की तरह हवा में तैरकर जमीन पर उतरते हैं।

यह सब होते हुए भी अभी तक मेढक जल से अपना सम्बन्ध नहीं तोड़ सके हैं और आज भी उनका जन्म पानी में ही होता है। मेढकी पानी में अण्डे देती है जिसमें से मछलीनुमा छोटे-छोटे बच्चे निकलते हैं जो छूछू मछली या टैडपोल कहलाते हैं। कुछ समय बाद इनकी शकल कई परिवर्तनों को पार करके मेढकों-जैसी हो जाती है। यह परिवर्तन बड़ा रोचक होता है जिसका संक्षिप्त वर्णन यहाँ दिया जा रहा है। लेकिन इसको ठीक-ठीक समझने के लिए किसी शीशे के बर्तन में टैडपोलों को पाल-कर उनका निरीक्षण करना ही ठीक होगा।

मेढकी समय आने पर किसी जलाशय में जाकर हजारो की सख्या मे अण्डे देती है जिन पर नर एक प्रकार का रस फैला देता है । ये अण्डे पानी पर इधर-उधर तैरने फिरते है। ये एक प्रकार के लसीले पदार्थ मे मालाकार जुटे रहते है जिस पर पानी का कोई असर नही हो पाता। अण्डे धूप की गरमी से विना सेये ही फूट जाते है जिनमें से टैडपोल निकलते है। शुरू-शुरु में टैडपोल का सिर वडा और दुम लम्बी होती है जिसके सहारे यह तैरता है। इसका मुंह शार्क मछली की तरह नीचे की ओर रहता है। इस समय इसके मछलियों की तरह गलफड होते है जिससे यह पानी में घुली हुई हवा स साँस लेता है और पानी से वाहर निकाल लेने पर यह मछलियो की तरह मर जाता है। कुछ दिनो बाद पहले टैडपोलो के दोना पिछले पैर निकलते है। फिर धीरे-धीरे दोनो अगले पैर भी निकल आते है। इनकी दुम थोडा-थोडा करके एकदम गायब हो जाती है। इस समय ये वद में बहुत छोटे रहने पर भी अपने मेढक के असली रूप में आ जाते है । इस रूपान्तर के बाद ये पानी क वाहर रहने के योग्य हो जाते है क्योकि उनके मछलियों जैसे गलफड नही रह जाते वल्कि उसके स्थान पर खुली हवा में साँस लेने के लिए फेफड़े उत्पन्न हो जात है। इनका यह रूपान्तर चार-पांच सप्ताह मे जाकर कही पूर्ण हो पाता है और लाखा-अरवा अण्डे नष्ट होने पर कही जाकर एक मेढक बन पाता है।

मेढको की शरीर-रचना के बारे में कुछ जानने के पहले गुदकी के काले मेढक और अन्य मेढको का मोटा-मोटा भेद जान लेना चाहिये। इनकी बनावट प्राय एक जैसी ही होती है लेकिन काले या टर मेढक की खाल और मेढको की तरह पतली और चिकनी न होकर सूखी और खुरदरी हाती है। उस पर छोटे-छोटे मस्से से उभरे रहते है।

मेढक का कद छोटा और गठा हुआ होता है। उसके अगले पैर छोटे होते हैं जो उसके सिर और कन्धे को उठाये भर रहते हैं, लेकिन उसके पिछले पैर लम्बे और मजबूत होते हैं। अगली और पिछली टांगों की लम्बाई में इतना भेद होने से मेढक कंगारू की तरह उछलकर चलता है। बैठे रहने पर यह अपनी पिछली टांगों को सिकोड़-कर रखता है, लेकिन तैरते समय यह इन्हीं टांगों को बाहर की ओर फेंककर पानी में आगे की ओर बढ़ता है।

ज्यादातर जीवधारियों के शरीर को सिर, गरदन और धड़ इन्हीं तीन हिस्सों में बांटा जाता है, लेकिन मेढक की बनावट कुछ अजीब-सी होती है। इसके गरदन होती ही नहीं जिससे यह देखने में बहुत बदशकल लगता है। इसका सिर और माथा बड़ा और तिकोना-सा रहता है जिसमें बड़ी-बड़ी उभरी-सी आँखें रहती हैं। इन आँखों को घुमा-फिराकर मेढक अपने चारों ओर की चीज देख सकता है और खतरा निकट देख-कर इसे वह काफी भीतर तक खींच लेता है जिससे ऊपर चोट न लगे। रात में उसकी आँखें और स्पष्ट और चमकीली दीख पड़ती हैं।

मेढक के कान का गोल-सा छिद्र इसकी आँख के पीछे ही रहता है जिस पर एक प्रकार की पतली झिल्ली चढ़ी रहती है। इसका मुंह इसके कद को देखते हुए बड़ा ही कहा जायगा जो खोलने पर कान के नीचे से दूसरे कान के नीचे तक खुल जाता है। मेढकों में वैसे तो प्रायः किसी के निचले जबड़े में दाँत नहीं होते, लेकिन इनमें से कुछ जातियाँ ऐसी भी हैं जिनका ऊपरी जबड़ा भी बिना दाँत के रहता है। दाँत न होने के कारण ये काटने में असमर्थ रहते हैं, लेकिन कुछ मेढक ऐसे जरूर हैं जिनके बदन से एक प्रकार का हलका जहरीला पदार्थ निकला करता है।

मेढकों की जबान की बनावट भी कम आश्चर्यजनक नहीं होती। यह पीछे की तरफ जुटी न रहकर आगे की तरफ जुटी रहती है जैसे किसी ने इसकी लम्बी जबान को भीतर की तरफ दुहर दिया हो। किसी कीड़े को पकड़ते समय मेढक अपनी इस दुहरी हुई जबान को बाहर की तरफ फेंकता है और फिर उसे उठाकर भीतर की ओर कर लेता है। यदि जबान का निशाना ठीक पड़ा तो कीड़ा उसी में चिपककर इसके मुँह में चला आता है क्योंकि इसकी जीभ पर एक प्रकार का ऐसा चिपचिपा पदार्थ रहता है जिसमें से कीड़ों का फँसकर निकलना संभव नहीं होता। यह वैसे तो कीड़ों-मकोड़ों को पूरा ही निगल जाता है, लेकिन अगर कभी बड़ा कीड़ा इसके मुंह में आ गया तो यह उसे अपने

मेढकी समय आने पर किसी जलाशय में जाकर हजारो की सख्या मे अण्डे देती है जिन पर नर एक प्रकार का रस फैला देता है । ये अण्डे पानी पर इधर-उधर तैरते फिरते है। ये एक प्रकार के लसीले पदार्थ मे मालाकार जुटे रहते है जिन पर पानी का कोई असर नही हो पाता। अण्डे धूप की गरमी से बिना सेये ही फूट जाते है जिनमें से टैडपोल निकलते है। शुरु शुरु में टैडपोल का सिर बडा और दुम लम्बी होती है जिसके सहारे यह तैरता है। इसका मुंह शार्क मछली की तरह नीचे की ओर रहता है। इस समय इसके मछलियो की तरह गलफड होते है जिससे यह पानी में घुली हुई हवा से साँस लेता है और पानी से बाहर निकाल लेने पर यह मछलियो की तरह मर जाता है। कुछ दिनो बाद पहले टैडपोलो के दोना पिछले पैर निकलते है। फिर धीरे-धीरे दोनों अगले पैर भी निकल आते है। इनकी दुम थोडा-थोडा करके एकदम गायब हो जाती है। इस समय ये कद मे बहुत छोटे रहने पर भी अपने मेढक के असली रूप में आ जाते है । इस रूपान्तर के बाद ये पानी के बाहर रहने के योग्य हो जाते है क्योकि उनके मछलियो जैसे गलफड नही रह जाते बल्कि उसके स्थान पर खुली हवा मे साँस लेने के लिए फेफडे उत्पन्न हो जाते है। इनका यह रूपातर चार-पाँच सप्ताह मे जाकर कही पूर्ण हो पाता है और लाखा अरबो अण्डे नष्ट होने पर कही जाकर एक मेढक बन पाता है।

मेढका की शरीर-रचना के बारे में कुछ जानने के पहले सुदकी के काले मेढक और अन्य मेढको का मोटा मोटा भेद जान लेना चाहिये। इनकी बनावट प्राय एक जैसी ही होती है लेकिन काले या टर मेढक की खाल और मेढको की तरह पतली और चिकनी न होकर सूखी और खुरदरी होती है। उस पर छोटे छोटे मस्से से उभरे रहते हैं।

बराबर खुला रखा जाय तो वह उसी तरह मर जायगा जिस प्रकार हम लोग मुँह और नाक बन्द कर देने पर मर जाते हैं। मेढक को साँस लेने के इस तरीके के अलावा अपनी त्वचा के द्वारा हवा खींचने की सहूलियत भी मिली हुई है। पानी में रहनेवाले मेढक पानी में घुली हुई हवा को थोड़ा-बहुत अपनी खाल से सोख सकते हैं। त्वचा से साँस लेने में समर्थ होने के कारण जाड़ों में जब ये शीतशायी होते हैं तो बिना नाक से साँस लिये इसी खाल के छिद्रों से ही इनका काम चलता रहता है।

मेढक की कर्कश और भद्दी बोली से ऐसा कौन है जो अपरिचित होगा। बरसात में तो यह दादुर-ध्वनि इतनी ज्यादा बढ़ जाती है कि नींद आना मुश्किल हो जाता है। वर्षा ऋतु में इनकी बोली इसलिए ज्यादा नहीं बढ़ जाती कि ये अधिक पानी के कारण खुश होकर ज्यादा बोलने लगते हैं बल्कि इनके ज्यादा बोलने का मुख्य कारण यह होता है कि यही समय इनके जोड़ा बाँधने का होता है। इस समय खुश्की में रहनेवाला काला मेढक भी पानी में कूद पड़ता है और जी खोलकर बोलता है।

मेढकों के बोलने का ढंग भी कुछ अजीब-सा है। हम लोग जब बोलते हैं तो होता यह है कि हवा हमारे फेफड़े के भीतर के स्वर-यंत्र के ऊपर चलकर मुँह के द्वारा बाहर निकाल दी जाती है। इसीलिए कुछ भी बोलते समय हमारा मुँह खुल जाता है। लेकिन मेढक ऐसा नहीं करता। वह फेफड़े से हवा मुँह तक तो लाता है, लेकिन फिर उसे वह मुँह से बाहर नहीं निकालता बल्कि उसी हवा को फिर फेफड़े में ले जाता है। इसीलिए बोलते समय उसका मुँह नहीं खुलता।

मेढक की आँख, कान और नाक ये ही प्रधान इन्द्रियाँ कही जा सकती हैं। यह स्वाद पाता है या नहीं, यह ठीक से नहीं कहा जा सकता और न यही अभी तक ज्ञात हो सका है कि इसको सूँघने की शक्ति प्रकृति ने दी है या इसके नाक के बड़े-बड़े छिद्र केवल साँस लेने के लिए ही हैं। इसकी दृष्टि भी तेज नहीं होती। यह न तो ज्यादा दूर ही देख सकता है और न ज्यादा नजदीक ही।

मेढकों के रंग के बारे में एक नियम नहीं बनाया जा सकता क्योंकि इनका रंग बहुत कुछ इनके पास-पड़ोस के अनुरूप हो जाता है। कूड़े में छिपकर रहनेवाले मेढक जहाँ ज्यादा काले हो जाते हैं वहीं उसी जाति के मेढक,जो खुली जगह में रहते हैं,हलके रंग के ही रह जाते हैं। पानी में रहनेवाले मेढकों का रंग जहाँ पिलछौंह होता है वहीं पेड़ पर रहनेवाले कठमेघे प्रायः हरे रंग के होते हैं। इसके अलावा इनको थोड़ा-बहुत रंग बदलने की सहूलियत भी प्रकृति ने दे रखी है। इनकी त्वचा के नीचे रंग के कोष

दाँतो के सहारे भीतर ढकेल लेता है। कीड़े-मकौड़ों को निगलते समय मेढक अपनी आँखें इस प्रकार बन्द कर लेता है जैसे इस वक्त स्वाद आ रहा हो। कीड़ों का नाश करके एक प्रकार से मेढक हमारा बहुत फायदा करते हैं क्योंकि ये जो कीड़े खाते हैं उनमें से ज्यादा संख्या उन्हीं की है जो हमारे लिए हानिकारक हैं। इनकी संख्या का हम अन्दाजा इसी से लगा सकता है कि जितने कीड़े मकोड़े मेढकों द्वारा प्रतिवर्ष खाये जाते हैं उन्हें यदि एक पंक्ति में बगल-बगल रखा जाय तो वे हमारी पृथ्वी को घेर लेंगे।

मेढको के अगले छोटे पैरो में चार चार उंगलियाँ होती हैं। इनको यदि हम गौर से देखें तो इनमें इनके अंगूठे का अवशेष चिह्न भी दिखाई पड़ जायगा किन्तु उसे उंगली या अँगूठा नही कहा जा सकता। पिछले पैरो में पाँच-पाँच उँगलियाँ होती हैं जो बत्तखों की तरह आपस में एक प्रकार की झिल्ली से जुड़ी रहती हैं। इनके शरीर का चमड़ा बूढ़ों जैसा ढीला-ढाला रहता है जिस पर बाल या शल्क आदि नही रहते। ज्यादा संख्या तो उन्ही मेढकों की है जिनका शरीर चिकना होता है लेकिन टर या काले मेढक के सिर और बदन पर छोटे-छोटे मस्से से उभरे रहते हैं। इन मस्सो या ग्रंथियो से अक्सर एक प्रकार का जहरीला पदार्थ निकलता रहता है जिसकी वजह से इस पर शत्रु कम हमला करते हैं। इस मेढक के इन ग्रंथियो के अलावा कुछ और ग्रंथियाँ भी रहती हैं जो एक प्रकार का रस निकालती हैं। इस रसीले पदार्थ से इसका शरीर भीगा भीगा-सा जान पड़ता है।

मेढको के शरीर में पसलियाँ नही होतीं। इससे साँस लेने पर इनका सीना हम लोगो की तरह फूल नही आता। इनके साँस लेने का ढंग भी निराला है। अगर हम किसी मेढक को गौर से देखें तो हम उसके गले के नीचे का हिस्सा उठता बैठता दिखाई पड़ेगा। यह हिस्सा इसके साँस लेने पर ठीक उसी प्रकार उठता गिरता है जैसे हम लोगो का सीना। इसका कारण यह है कि साँस लेते समय पहले यह अपनी नाक-द्वारा हवा को अपने मुह में भर लेता है फिर अपनी नाक के दोनो छिद्रों को बन्द करके अपने मुह का नीचे का हिस्सा ऊपर की ओर ढकेलता है। ऐसा करने से इसके मुह के भीतर की हवा दबकर फफड़ों की ओर चली जाती है और वहाँ से वह मासपेशियों को सिकोड़कर मुह में लौटा दी जाती है। इस गंदी हवा को मेढक मुँह से बाहर निकाल देता है। यही कारण है कि बार बार मुह में हवा भरकर उसको फफड़ों की ओर ढकेलने और फफड़ों से हवा मुँह में लाकर तब उसे बाहर निकालने में हम मेढक के गले को बार-बार उठने और गिरते हुए देखते हैं। अगर मेढक का मुह

बराबर खुला रखा जाय तो वह उसी तरह मर जायगा जिस प्रकार हम लोग मुँह और नाक बन्द कर देने पर मर जाते हैं। मेढक को साँस लेने के इस तरीके के अलावा अपनी त्वचा के द्वारा हवा खींचने की सहूलियत भी मिली हुई है। पानी में रहनेवाले मेढक पानी में घुली हुई हवा को थोड़ा-बहुत अपनी खाल से सोख सकते हैं। त्वचा से साँस लेने में समर्थ होने के कारण जाड़ों में जब ये शीतशायी होते हैं तो बिना नाक से साँस लिये इसी खाल के छिद्रों से ही इनका काम चलता रहता है।

मेढक की कर्कश और भद्दी बोली से ऐसा कौन है जो अपरिचित होगा। बरसात में तो यह दादुर-ध्वनि इतनी ज्यादा बढ़ जाती है कि नींद आना मुश्किल हो जाता है। वर्षा ऋतु में इनकी बोली इसलिए ज्यादा नहीं बढ़ जाती कि ये अधिक पानी के कारण खुश होकर ज्यादा बोलने लगते हैं बल्कि इनके ज्यादा बोलने का मुख्य कारण यह होता है कि यही समय इनके जोड़ा बाँधने का होता है। इस समय खुश्की में रहनेवाला काला मेढक भी पानी में कूद पड़ता है और जी खोलकर बोलता है।

मेढकों के बोलने का ढंग भी कुछ अजीब-सा है। हम लोग जब बोलते हैं तो होता यह है कि हवा हमारे फेफड़े के भीतर के स्वर-यंत्र के ऊपर चलकर मुँह के द्वारा बाहर निकाल दी जाती है। इसीलिए कुछ भी बोलते समय हमारा मुँह खुल जाता है। लेकिन मेढक ऐसा नहीं करता। वह फेफड़े से हवा मुँह तक तो लाता है, लेकिन फिर उसे वह मुँह से बाहर नहीं निकालता बल्कि उसी हवा को फिर फेफड़े में ले जाता है। इसीलिए बोलते समय उसका मुँह नहीं खुलता।

मेढक की आँख, कान और नाक ये ही प्रधान इन्द्रियाँ कही जा सकती हैं। यह स्वाद पाता है या नहीं, यह ठीक से नहीं कहा जा सकता और न यही अभी तक ज्ञात हो सका है कि इसको सूँघने की शक्ति प्रकृति ने दी है या इसके नाक के बड़े-बड़े छिद्र केवल साँस लेने के लिए ही हैं। इसकी दृष्टि भी तेज नहीं होती। यह न तो ज्यादा दूर ही देख सकता है और न ज्यादा नजदीक ही।

मेढकों के रंग के बारे में एक नियम नहीं बनाया जा सकता क्योंकि इनका रंग बहुत कुछ इनके पास-पड़ोस के अनुरूप हो जाता है। कूड़े में छिपकर रहनेवाले मेढक जहाँ ज्यादा काले हो जाते हैं वहीं उसी जाति के मेढक,जो खुली जगह में रहते हैं,हलके रंग के ही रह जाते हैं। पानी में रहनेवाले मेढकों का रंग जहाँ पिलछौंह होता है वहीं पेड़ पर रहनेवाले कठमेघे प्रायः हरे रंग के होते हैं। इसके अलावा इनको थोड़ा-बहुत रंग बदलने की सहूलियत भी प्रकृति ने दे रखी है। इनकी त्वचा के नीचे रंग के कोष

रहते है जो बाहर के आलोक से सकुचित होकर और फैलकर मेढक का रग बहुत कुछ उसके पास-पडोस के अनुरूप कर देते है।

मेढक शीतकाल में कम दीख पडते है क्योकि कुछ सरीसृपो की तरह इनको किसी निरापद स्थान पर जाडे भर सोना ज्यादा पसन्द है। इनमें से अधिकाश बिना कुछ खाये पिये मिट्टी, पत्थर या कूडे के नीचे छिपकर जाडे के दो-तीन महीने सुप्तावस्था में ही बिता देते है। इस समय यदि मेढको को छू भी लिया जाय तो भी इनकी कुम्भकर्णी निद्रा नही टूटती।

मेढको का मुख्य आहार कीडे-मकोडे है, लेकिन ये मरे हुए कीडो को नही खाते। ये केवल जिन्दा और चलते हुए कीडो पर ही आक्रमण करते है।

मेढको के बदन पर से भी साप और छिपकलियो की तरह केंचुल निकलती है जिसे ये फौरन खा जाते हैं।

मेढक वैसे तो बहुत ही निरीह जन्तु है और मनुष्यो का ये बहुत उपकार भी करते है लेकिन उनके शत्रुओ की सख्या कम नही है। पहले तो इनके अण्डो को ही मछलियाँ आदि बचने नही देती, फिर उनमे से बचकर जो मेढक पैदा होते है उनकी जान के अनेक ग्राहक हो जाते हैं जिनमे कछुए, साँप, चिडिया आदि मुख्य है। मनुष्यो को भी इनकी कुछ जातियो की पिछली टाँगें बडी स्वादिष्ठ लगती है और दूसरे देशो मे प्रतिवर्ष लाखो मेढक खाने के लिए मारे जाते है।

मेढको की वैसे तो अनेक जातियाँ हमारे देश में पायी जाती है, लेकिन मोटे तौर पर इनको तीन हिस्सो में बाँटा जा सकता है—

१—पानी में रहनेवाले मेढक—इनमे गोपाल मेढक और मेचकुर आदि शामिल है।

२—खुश्की पर रहनेवाले मेढक—इनमें काले या टर मेढक (भेक) आते है।

३—पेड पर रहनेवाले मेढक—इनमें पेड पर के बटमेघे आदि रखे गये है।

मेढक के बारे में सब कुछ जानकर भी अन्त मे यह जान लेना जरूरी है कि यह रोशनी का बहुत प्रेमी होने पर भी एक नम्बर का मूर्ख होता है और यही कारण है कि इसे अन्य जीवधारियो की तरह पालतू करना असभव-सा है।

मेढको का यह वर्ग काफी बडा और विस्तृत है, जिसे सुविधा के लिए अनेक परिवारो में विभक्त किया गया है, लेकिन यहाँ केवल दो परिवारो का वर्णन दिया जा रहा है जो इस प्रकार है—

१—दादुर परिवार—Family Ranidae

२—भेक परिवार—Family Bufonidae

दादुर परिवार

(FAMILY RANIDAE)

मेढकों का यह परिवार बहुत बड़ा है जिसके मेढक सारे संसार में फैले हुए हैं।

इस परिवार में इतने तरह के मेढक हैं कि इनकी रहन-सहन और आदतों में बहुत भेद रहता है। इनमें से कुछ तो अपना सारा जीवन पानी में ही बिता देते हैं और कुछ ऐसे हैं जिन्होंने पानी से अपना नाता एकदम तोड़ लिया है और जो अण्डे देने के लिए भी पानी में नहीं जाते। कुछ ऐसे हैं जो खुश्की में रहते हैं, लेकिन अपने अण्डे पानी में देते हैं और कुछ अपना समय जल-थल दोनों में बिताते हैं और अपने अण्डे झरनों आदि के बहते पानी में देते हैं। कुछ खुश्की पर रहते हैं तो कुछ पानी में ही अपना समय बिताते हैं। कुछ ऐसे भी हैं जो मिट्टी में घुसे रहते हैं और कुछ ने पेड़ों पर रहने की आदत डाल ली है।

लेकिन इन सब में उन्हीं की संख्या अधिक है जो अपना अधिक समय खुश्की पर बिताते हैं और अपने अण्डे पानी में देते हैं। इन्हीं में हमारा वह मेढक भी है जिससे हम बहुत परिचित हैं और जिसे हम बराबर अपने आस-पास देखते हैं। यहाँ उसका तथा उसके साथ के कई प्रसिद्ध मेढकों का वर्णन दिया जा रहा है।

मेढक (गोपाल)

(BULL FROG)

इस मेढक को अपने यहाँ गोपाल मेढक भी कहा जाता है। इसको यह नाम शायद इसलिए मिला है कि यह हमारे यहाँ का सबसे बड़ा मेढक है। हमारे देश में यह हिमालय की तराई से लेकर सारे भारतवर्ष में पाया जाता है।

गोपाल की पीठ पर का रंग भूरा, गंदा हरा या जैतूनी रहता है जिस पर गहरे रंग की चित्तियाँ पड़ी रहती हैं। इसकी रीढ़ के ऊपर पीले रंग की एक धारी पड़ी रहती है जिससे इसको पहचानने में देरी नहीं लगती। इसके अगले पैरों की उँगलियाँ

कुछ छोटी होती है जिनमें पहली उँगली दूसरी से लम्बी रहती है। पिछले पैरों की उँगलियाँ भी बहुत बड़ी नहीं होतीं और वे करीब-करीब सिरे तक जुड़ी रहती हैं।

गोपाल का कद हमारे यहाँ के सब मेढकों से बड़ा होता है। पुरानी नालों और हौजों में रहनेवाले मेढक कभी-कभी काफी बड़े हो जाते हैं और ये अक्सर छोटी-छोटी चिड़ियों तक को पकड़ लेते हैं। बड़े होने पर इनकी पीठ की लम्बाई ५-६ इंच तक की हो जाती है।

मेढक (गोपाल)

नर मेढकों के गले के दोनों ओर स्वर-ग्रन्थियाँ (Vocal Sacs) रहती हैं जो अपने ललछौंह रंग के कारण आसानी से देखी जा सकती हैं।

मेढकी

(SLIME FROG)

मेढकी हमारे देश में प्रायः सभी स्थानों पर पायी जाती है। यह हिमालय की ओर भी ७००० फुट की ऊँचाई तक पायी जाती है।

मेढकी की शकल-सूरत बहुत कुछ गोपाल से मिलती-जुलती रहती है लेकिन कद में यह उसके आधे से ज्यादा नहीं पहुँचती। इसके शरीर का

मेढकी

ऊपरी हिस्सा हरापन लिये जैतूनी रहता है जिस पर गहरे रंग की चित्तियाँ पड़ी रहती हैं। इसकी रीढ़ पर एक हलके रंग की धारी रहती है और जाँघ के दोनों बगली हिस्सों पर काले धब्बे पड़े रहते हैं।

मेढकी वैसे तो सभी प्रकार के जलाशयों में पायी जाती है, लेकिन इसके रहने का मुख्य स्थान पानी से भरे धान के खेत हैं।

मेचकुर

(WATER SKIPPING FROG)

मेचकुर हमारे देश में प्रायः सभी जलाशयों में पाये जाते हैं जो अपना अधिक समय पानी ही में बिताते हैं। ये पानी की सतह पर पिछले दोनों पैर फैलाकर ठहरे रहते हैं और पास जाने पर पानी के ऊपर ही ऊपर कूदते हुए थोड़ी दूर जाकर फिर उसी तरह ठहर जाते हैं।

ये कद में ढाई इंच के होते हैं और देखने में मेढक के बच्चे जान पड़ते हैं। इनके शरीर का ऊपरी हिस्सा भूरा या जैतूनी होता है जिस पर उसी रंग की चित्तियाँ पड़ी रहती हैं। इनकी जाँघों के पिछले हिस्सों पर अक्सर दो कलछौंह धारियाँ पड़ी रहती हैं और निचला भाग कलछौंह चित्तियों से भरा रहता है।

मेचकुर

मदोबर
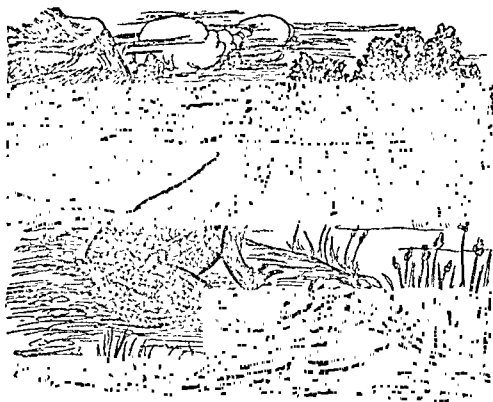
(FAT FROG)

मदोबर खुश्की पर रहनेवाला मेढक है जो अपने छोटे और फूले हुए सिर के कारण देहातों में मदोबर के नाम से प्रसिद्ध है। यह हमारे यहाँ प्रायः सब स्थानों

पर पाया जाता है लेकिन मिट्टी के भीतर गडे रहने के कारण यह बहुत कम दिखाई पडता है।

मदोबर

इसके शरीर की खाल चिकनी होती है लेकिन शरीर की ऊपरी सतह पर दान-दाने से उभरे रहते है जो दूर स चित्ते से दीख पडते हैं।

यह लगभग ढाई इच का होता है। इसके शरीर का ऊपरी भाग जैतूनी या भूरा और पेट का हिस्सा एकदम सफेद रहता है। इसका मुख्य भोजन चीटियाँ हैं।

भेक परिवार

(FAMILY BUFONIDAE)

भेक परिवार म व काले मेढक रखे गय है जो कलमेघा या टर कहलाते हैं। इनका पहला नाम तो इनके काले रग के कारण और दूसरा इनकी ककश बोली के कारण मिला है। गोपाल मेढक की तरह ये भी सारे ससार में फैले हुए हैं।

इन मढको की और गोपाल की शक्ल सूरत और शरीर की बनावट प्राय एक-जसी ही रहती है। फक सिफ इतना रहता है कि इनके शरीर की खाल चिकनी न रहकर रूखी और खुरदुरी रहती है जिस पर दान-दान स उभरे रहते हैं।

टर महीन में दो बार साप की तरह केंचुल बदलते हैं। उस समय इनकी पुरानी खाल पीठ के पास फट जाती है जिसे य अपन पिछले पैरो से निकालकर खा जाते हैं। इन मेढको की बोली बहुत ही ककश होती है और बरसात में तो अक्सर रात में इनके मारे सोना हराम हो जाता है। इतना शोर मचाने के बावजूद भी ये हमारे लिए बहुत लाभदायक सिद्ध हुए हैं क्योकि य कीडे मकोडो को खाकर हमारी खेती और बाग-बगीचो की बहुत रक्षा करते हैं।

इनकी मादा पानी में अण्डे देती है जो दुहरी पंक्ति में मोती की लड़ी के समान फैले रहते हैं। इस परिवार में वैसे तो कई मेढक हैं, लेकिन सबकी आदतें एक-जैसी होने के कारण यहां अपने यहां के प्रसिद्ध काले मेढक या टर का वर्णन दिया जा रहा है।

भेक (टर)

(TOAD)

गोपाल की तरह टर भी हमारे देश का बहुत परिचित मेढक है जो प्रायः सभी जगह पाया जाता है। हिमालय प्रदेश में तो यह दस हजार फुट की ऊँचाई तक पहुँच जाता है। गोपाल की तरह यह हमेशा पानी में रहना पसन्द नहीं करता। इसे जल और थल दोनों जगह देखा जा सकता है लेकिन पानी से ज्यादा इसे खुश्की ही पसन्द है।

टर गोपाल से कद में कुछ छोटा होता है। इसके थूथन से लेकर मलछिद्र तक की लम्बाई लगभग ६ इंच तक रहती है। इसके सिर के दोनों ओर उभरी हुई लकीर-सी रहती है और सिर के पीछे जहाँ ग्रन्थियाँ रहती हैं वहाँ का हिस्सा भी उभरा-उभरा रहता है। इसका थूथन छोटा और दबा-दबा-सा रहता है और इसके मुँह में दाँत नहीं होते।
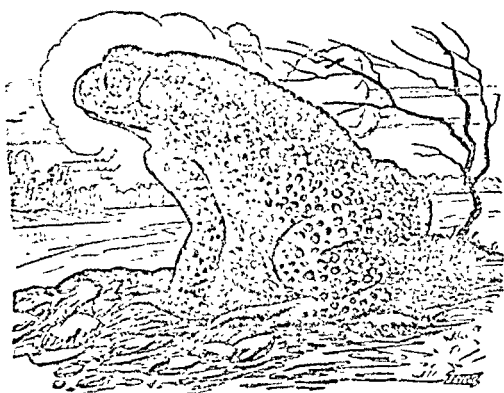
भेक (टर)

टर की अगली टाँगों की उँगलियाँ जुटी नहीं रहतीं लेकिन पिछली टाँगों की उँगलियाँ आधी दूर तक जुटी रहती हैं। इसकी खाल की ऊपरी सतह पर मसे से उभरे रहते हैं।

भेक का रंग भूरापन लिये कलछौंह रहता है और इसके निचले हिस्से पर कभी-कभी चित्तियाँ पड़ी रहती हैं। नर के गले में स्वरग्रन्थि का स्थान काफी उभरा रहता है। यह गोपाल की तरह कूद-कूदकर नहीं चलता बल्कि ज़मीन पर धीरे-धीरे चलता है। इसका मुख्य भोजन कीड़े-मकोड़े हैं।

खंड १२

सरीसृप श्रेणी

(CLASS REPTILIA)

सरीसृप उन जानवरों को कहते हैं जो पृथ्वी पर रेंगकर चलते हैं। इनमें मगर, घड़ियाल, कछुए, साँप तथा सब प्रकार की छिपकलियाँ आ जाती हैं।

संसार में सरीसृपों की संख्या अब जरूर बहुत कम हो गयी है, लेकिन एक समय ऐसा भी था जब हमारी पृथ्वी पर इन्हीं का राज्य था और ये सारे भूमण्डल के उसी प्रकार स्वामी थे जिस प्रकार आज स्तनपायी जीव हैं। इनका राज्य-काल सौ-दो सौ वर्षों तक नहीं बल्कि दस करोड़ वर्षों के लगभग रहा, लेकिन इसी समय पृथ्वी पर भयंकर हिमयुग आया और ये सरीसृप जो बड़े काहिल और स्थूलकाय हो गये थे अपने स्थान से भाग न सकने के कारण उस भीषण सर्दी में सदा के लिए सो गये।

यह तो हम सभी जानते हैं कि सरीसृपों ने उभयचरों से अपना विकास किया और धीरे धीरे वे खुश्की पर रहनेवाले जीव हो गये लेकिन इस प्रकार विकसित होने के लिए उन्हें हजारों लाखों वर्षों तक बहुत कठिन संघर्ष करना पड़ा। उन्होंने पहले अपने पैरों का विकास किया जिससे उन्हें खुश्की पर चलने फिरने की सहूलियत हो गयी। फिर धीरे धीरे उनके गलफड़ सदा के लिए बेकार हो गये और वे फेफड़े द्वारा खुली हवा में साँस लेनेवाले जीव हो गये।

धीरे-धीरे पृथ्वी पर से शीतकाल समाप्त हुआ और ग्रीष्म ऋतु का आगमन होने से चारों ओर वनस्पति की बहुतायत हो गयी। सरीसृपों को अनायास ही भोजन की इतनी प्रचुरता मिल जाने से उनकी संख्या और उनका कद दिन दूना रात चौगुना बढ़ने लगा। वे थोड़े ही दिनों में सारी पृथ्वी पर छा गये और उनमें से कुछ ने खुश्की पर रहना ठीक न समझकर फिर पानी का आश्रय लिया और कुछ ऐसे साहसी निकले कि उन्होंने आकाश में अपना राज्य स्थापित करने का निश्चय किया। इन हवा में उड़नेवाले

सरीसृपों में पत्रांगुष्ठ या टेरोडेक्टल (Pterodactyl) बहुत प्रसिद्ध है जिसने चमगादड़ की तरह अपने शरीर के दोनों ओर मजबूत झिल्ली का विकास करके हवा में उड़ने का अभ्यास कर लिया था। टेराडेक्टल छोटे बड़े सभी तरह के थे। उनमें छोटे तो गौरैया के बराबर थे लेकिन बड़ों के झिल्लीदार पंखों का फैलाव २०-२० फुट तक पहुँच जाता था।

इन उड़नेवाले सरीसृपों का सिर बड़ा और लंबा होता था और उनके मुँह में तेज दाँत रहते थे। उनके रहन-सहन और स्वभाव के बारे में हमें अधिक ज्ञात नहीं हो सका है, लेकिन ऐसा अनुमान किया जाता है कि उनकी उड़ान चिड़ियों की तरह तेज न होकर भारी और भद्दी रही होगी।

टेरोडेक्टल
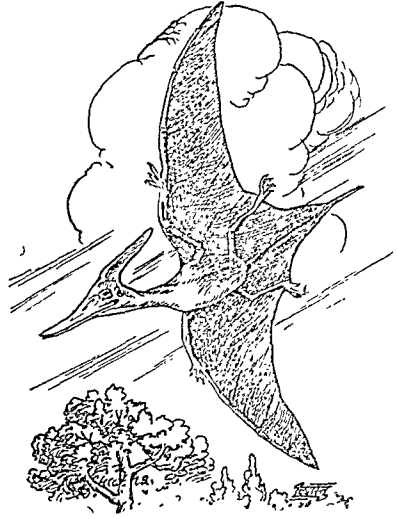
पृथ्वी पर रहनेवाले सरीसृपों में डाइनासोर (Dianosarus) बहुत प्रसिद्ध थे। इनमें से छोटे-छोटे कदवाले तो छिपकलियों के बराबर थे, लेकिन इनमें से कुछ का कद तो इतना बढ़ा कि वे १०० फुट से भी लंबे हो गये। ब्रैन्कियोसोरस (Branchiosaurus) का कद तो लगभग १२० फुट तक पहुँच गया और वे वजन में भी करीब ४० टन के हो गये। इन भीमकाय सरीसृपों में कुछ तो खुश्की पर रहनेवाले हो गये और कुछ कीचड़ से भरे हुए जलाशयों में अपना समय बिताने लगे। इनमें से कुछ तो शाकाहारी थे और कुछ मांसाहारी। शाकाहारियों का कद मांसभक्षी डाइनासोरों से बड़ा था क्योंकि उन्हें खाने की कोई कमी नहीं थी। वे मांसाहारियों की तरह फुर्तीले भी नहीं थे और न उनके शरीर पर आत्म-रक्षा के लिए कड़े प्लेटों का कवच ही था। वे बहुत ही काहिल जीव थे जो अपना सारा समय दलदलों में बिताते थे। इनमें कुछ की शकल छिपकलियों से मिलती थी तो कुछ मछलियों के आकार के थे। कुछ का

शरीर गैंडे के अनुरूप था तो कुछ अजीब तरह की लबी गरदन और छोटे सिर वाले जीव थे जो देखने में बहुत भद्दे और भोंडे दिखाई पड़ते थे।

जैसा पहले बताया गया है, सरीसृप रेंगनेवाले जीव हैं जिनका शरीर कड़े प्लेटो या शल्को से ढका रहता है जिससे उनकी सूखी हवा से रक्षा होती है। ये सब ठंढे खून के प्राणी कहलाते हैं जिसका अर्थ यह होता है कि इन प्राणियो के शरीर का तापमान उस स्थान की जलवायु के अनुसार घटता-बढ़ता रहता है। वे चिडियो की तरह अपने शरीर के तापमान को परों की सहायता से सदैव एक जैसा नही रख सकते और गरमी के लिए उन्हे धूप का सहारा लेना पडता है। उनके शरीर में कम गरमी रहती है और वे चिड़ियो तथा स्तनप्राणियों से काहिल और कम फुर्तीले होते हैं।

इन सरीसृपो में मगर और घड़ियाल कद में सब से बड़े होते हैं। उसके बाद समुद्री कछुओ का नम्बर आता है। कुछ सांप भी काफी बड़े होते हैं, लेकिन छिपकलियों में गोह को छोड़कर सब छोटे ही कद की होती हैं। ये सब अण्डज जीव हैं, लेकिन इनमें से कुछ ऐसे भी हैं जो बच्चे जनते हैं। प्राय सभी सरीसृप अपने अण्डो को चिड़ियो की तरह नही सेते बल्कि वे उन्हें मिट्टी में गाडकर उनकी ओर जाते भी नही। ये अण्डे अपने आप सूरज की गरमी से फूटते हैं।

वैसे तो बहुत-से जीवो के शरीर की ऊपरी खाल उखड जाती है और उसका स्थान नयी खाल ले लेती है, लेकिन सरीसृपो मे यह परिवर्तन स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। सांप का केंचुल बदलना हम सभी ने देखा होगा। वे प्राय महीने मे एक बार अपनी केंचुल बदलते हैं और तब उनके शरीर की पुरानी खाल ढीली होकर निकल जाती है। छिपकलियाँ भी केंचुल बदलती हैं, लेकिन वे अपनी पुरानी खाल या केंचुल को फौरन खा डालती हैं। इसीसे हमें सांप की केंचुल की तरह छिपकलियो की केंचुल कभी नहीं पड़ी मिलती।

अन्य जीवों की तरह सरीसृपो का रंग-रूप भी उनके पास-पडोस के अनुरूप रहता है। पानी में रहनेवाले मगर जहाँ गहरे हरे या जैतूनी रंग के होते हैं वहीं मैदानों में रहनेवाले सांप और छिपकलियाँ हल्के भूरे या मिट्टी रंग की होती हैं। जंगलों में रहनेवाले सरीसृप चितकबरे या धारीदार होते हैं जिससे पेड़ों की धूपछाँह में वे भली भाँति छिप जायें।

बोली के मामले में सरीसृप दूसरे जीवों से जरूर पिछड़े हुए हैं। वे न तो चिड़ियों की तरह मीठी बोली बोल पाते हैं और न लंगूरों की तरह शोर ही मचा सकते हैं। साँप ज़रूर फुफकारते हैं और छिपकलियाँ भी थोड़ा-बहुत चिट-चिट की आवाज कर लेती हैं, लेकिन कछुए बिलकुल नहीं बोलते। मगर भी कुछ घुरघुराहट कर लेते हैं, लेकिन इनमें से कोई भी स्पष्ट बोली नहीं बोल पाता।

इन सब जीवों में साँप जरूर जहरीला और मगर खूँख्वार होता है, लेकिन ज्यादा संख्या उन्हीं की है जो सीधे और निरीह हैं। साँप भी अकारण ही किसी पर आक्रमण नहीं करते और अपने जहरीले दाँतों का प्रयोग केवल आत्म-रक्षा के समय ही करते हैं।

ये सब जीव प्राचीन काल के जीव हैं जिनका जीवन वर्तमान काल की परिस्थितियों के अनुकूल नहीं हो पाया है। ये न तो अपने शरीर पर बालों का विकास कर पाये हैं और न सर्दी से बचने के लिए इन्होंने अन्य किसी साधन का सहारा लिया है जिससे इनके शरीर का तापमान सदैव एक-जैसा रहे। लेकिन बहुत दिन पहले एक समय ऐसा भी था जब इन पिछड़े जीवों ने ही साहस करके समुद्रों को छोड़कर खुश्की पर रहने का अभ्यास डाला था और हजारों लाखों वर्षों तक निरन्तर संघर्ष करके उन्होंने अपने पैरों का विकास कर अपने शरीर को उनके सहारे पृथ्वी पर से ऊपर उठाया था।

इनमें से जिन जीवों ने अपने शरीर पर बालों का विकास करके पृथ्वी पर अपना आधिपत्य कायम किया वे स्तनप्राणी कहलाये और जिन्होंने अपने शरीर पर परों का विकास करके आकाश पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया वे पक्षी के नाम से प्रसिद्ध हुए।

सरीसृपों की बड़ी श्रेणी को कई वर्गों में विभाजित किया गया है जो इस प्रकार हैं—

१—नक्र वर्ग—Order Crocodilia

२—कच्छप वर्ग—Order Chelonia

३—गोधा वर्ग—Order Squamata

४—सर्प वर्ग—Order Ophidia

यहाँ इन चारों वर्गों का और उनके अन्तर्गत प्रसिद्ध परिवारों का वर्णन दिया जा रहा है जिनमें के जीव हमारे यहाँ पाये जाते हैं।

करीब सभी नदियों और जलाशयों में पाये जाते हैं। यही नहीं, यहाँ के दलदलों में भी इनकी काफी बड़ी संख्या फैली हुई है।

समुद्र के मगर मीठे पानी के मगरों से शकल-सूरत में तो कुछ ही भिन्न होते हैं लेकिन इन दोनों की लम्बाई में काफी फर्क रहता है। नदी के मगर जहाँ २५ फुट तक लंबे होते हैं, समुद्री मगरों की लम्बाई ३० से ३५ फुट तक पहुँच जाती है।

मगर छिपकली की शकल-सूरत के पर उससे बहुत बड़े कदवाले जलचर हैं। इनके बच्चे वैसे तो छिपकली से मिलते-जुलते होते हैं लेकिन उनका बड़ा सिर, आरीनुमा दुम और मुँह बन्द होने पर भी खुले हुए दाँत उन्हें छुटपन से ही छिपकलियों से अलग रखते हैं।

मगर के अगले पैरों में पाँच-पाँच उँगलियाँ होती हैं जो या तो सादी होती हैं या जड़ के पास थोड़ी दूर तक एक प्रकार की झिल्ली से जुड़ी रहती हैं। इनके पिछले पैरों में चार ही चार उँगलियाँ होती हैं जो बत्तखों की तरह आपस में झिल्ली से जुड़ी रहती हैं।

मगर गंदे हरे या जैतूनी रंग का होता है। इसकी पीठ पर के शल्क (Scales) बहुत मोटे और उभरे-उभरे से रहते हैं। इन शल्कों के नीचे कड़ी हड्डी की तह रहती है जिसके कारण ये इतने मजबूत हो जाते हैं कि इन पर जल्द बन्दूक की गोली भी असर नहीं करती। इनके पेट पर की खाल के नीचे यद्यपि हड्डी की तह नहीं रहती, फिर भी वह कम मोटी नहीं होती। इसी खाल के जूते और सूटकेस वगैरह बनते हैं।

मगर की दुम दोनों बगल से चपटी और बहुत ही मजबूत होती है जिससे वह तैरने का काम तो लेता ही है साथ-ही-साथ इसी से वह ऐसा जबरदस्त हमला भी करता है कि उसकी चपेट में आ जाने पर किसी का बचना मुश्किल हो जाता है। उसकी दुम के ऊपरी हिस्से पर आरे जैसा कटाव रहता है। मगर जब किसी शिकार को पानी के किनारे से कुछ दूर देखता है तो वह अपनी दुम से इस तेजी से वार करता है कि शिकार छिटककर पानी में चला जाता है। उसकी दुम की मार से छोटी शिकारी नावें तक उलट जाती हैं। तैरते समय वह अपने पैरों को समेट लेता है और अपनी दुम को इधर-उधर हिलाकर पानी में बहुत तेजी से आगे बढ़ता है।

मगर के मुँह की बनावट कम विचित्र नहीं होती। वह जब मुँह खोलता है तो ऐसा जान पड़ता है कि वह अपना ऊपरी जबड़ा उठा रहा है, लेकिन वास्तव में वह हमेशा

अपना निवला जबड़ा ही चलाता है। उसके गले की नली में एक परदा सा रहता है जो उसके मुँह मारने पर इस तरह बन्द हो जाता है कि फिर पानी मुँह के भीतर नहीं जा सकता। इसी सहूलियत के कारण मगर पानी के भीतर मुँह खोलकर मछलियों का शिकार करता फिरता है क्योंकि गले के परदे से उसके मुँह के भीतर या फेफड़े में पानी जाने का डर तो रह ही नहीं जाता। उसका गला घड़ियाल की तरह सँकरा न होकर काफी चौड़ा और फैलनेवाला होता है जिससे वह छोटे शिकार को समूचा ही निगल सकता है। उसके जबड़े बहुत ही मजबूत और दाँत बहुत तेज होते हैं जिनके बीच में पड़कर किसी का जाना निकलना सम्भव नहीं। उसकी जीभ जरूर चौड़ी होने पर भी नाचे की ओर इतनी दूर तक जुड़ी रहती है कि वह उसे बाहर नहीं निकाल सकता।

मगर के नथुने और आँखें ऊपर की ओर तो रहती ही हैं साथ-ही वे इतना उभरी रहती हैं कि वह अपना शरीर पानी के भीतर रखकर भी अपनी आँखें और नथुनों को पानी के बाहर निकाले रख सकता है। उससे इसको साँस लेने की जो सुविधा होती है वह तो होती ही है साथ ही साथ उसको अपने शिकार पकड़ने में भी सहूलियत हो जाती है। वह दूर से ही पानी की सतह के ऊपर अपनी उभरी आँखों को निकालकर शिकार को देख लेता है और पानी में डुबकी लगाकर ठीक उस जगह आ जाता है जहाँ शिकार बड़ी लापरवाही से पानी पीता रहता है। फिर उसकी पकड़ में अगर वह आ गया तो आ गया नहीं तो वह अपनी दुम का वार करने में जरा भी नहीं चूकता। पकड़े हुए शिकार को वह एक बार में ही हमेशा नहीं निगल जाता। यदि वह बड़े शरीर वाला प्राणी हुआ तो मगर उसे पानी में दबाकर मार डालता है और फिर उसे किसी निर्जन स्थान में किनारे के किसी गड्ढे या खोह में रख देता है और सड़न के बाद अपनी सहूलियत के मुताबिक नोच नोच कर खाता रहता है। मगर वैसे तो आदमियों पर हमला नहीं करता और ज्यादा पानी छलछलाय जान पर अक्सर वहाँ से भाग भी जाता है। लेकिन एक दो बार आदमियों का शिकार कर लेने पर वह लागुन और आदमखोर हो जाता है। मछलियों के अलावा वह छोटे-मोटे जानवरों का ही शिकार नहीं करता बल्कि बड़े-बड़े गाय-बैलों को भी आसानी से मार लेता है।

मगर की आँखें उभरी होने पर भी उसके भारी शरीर को देखते हुए छोटी ही कही जायँगी। ये हलके रंग की होती हैं और इनके भीतर एक प्रकार की पारदर्शी झिल्ली-सी चढ़ी रहती है जिसको मगर पानी के भीतर जाते ही चढ़ा लेता है। कुछ लोगों का यह

विश्वास है कि मगर की आँखें उसका मर्मस्थल हैं और यदि उसकी आँखों में उँगली डाली जाय तो वह अपने पकड़े हुए शिकार को छोड़ देता है। आँखों के अलावा उसका मर्मस्थल उसकी कनपटी है जहाँ ठीक से गोली लगने पर ही वह मर सकता है। गोली लगने पर अगर वह पानी के भीतर चला गया तो फिर उसकी लाश दूसरे तीसरे दिन ही मिल सकती है क्योंकि सड़न शुरू हो जाने के बाद जब पेट में गैस भर जायगी तभी तो इतनी भारी लाश ऊपर आ सकेगी।

मगर का मस्तिष्क वैसे तो बहुत छोटा होता है लेकिन ये गजब के चालाक और मक्कार होते हैं। सुनसान किनारों पर जब ये धूप सेंकने के लिए सूखे में पड़े रहते हैं तो ऐसा जान पड़ता है जैसे ये बेधड़क सो रहे हैं। लेकिन आदमियों की जरा भी आहट इन्हें मिली नहीं कि ये फौरन ही पानी में सरक जाते हैं।

इनकी पाचनशक्ति गजब की होती है जिससे इनकी निगली हुई हड्डियाँ तक बड़ी आसानी से गल जाती हैं। अपनी पाचनशक्ति को और तेज करने के लिए ये प्राय: पत्थर के टुकड़ों को निगल लेते हैं जो मारे जाने पर अक्सर इनके पेट से निकलते हैं।

मगर की ग्रन्थियों का एक जोड़ा तो जबड़े के पास रहता है और दूसरा उस जगह पर रहता है जहाँ इसकी जाँघें पेट के पास मिलती हैं। इन ग्रन्थियों से एक प्रकार की तेज मुश्क की-सी बू निकलती रहती है जो इसकी उपस्थिति का पता दे देती है। नर में यह बू मादा की अपेक्षा ज्यादा तेज होती है और उसकी जाँघ के पासवाली ग्रन्थि, जिसे लोग इसकी नाभि के नाम से पुकारते हैं, अच्छे दामों पर बिक जाती है। यह सुपारी की शकल की होती है और अक्सर लोग इसको ताकत के लिए खाते हैं। लेकिन डाक्टरी मत से इस विश्वास में कुछ भी तथ्य नहीं है।

मगर उन सरीसृपों में से हैं जो जल और स्थल दोनों पर रह लेते हैं लेकिन जिनका ज्यादा समय जल में ही बीतता है। जल में रहकर भी इनको मछलियों की तरह पानी में घुली हुई हवा से साँस लेने की सुविधा नहीं मिली है। इसी से इन्हें थोड़ी-थोड़ी देर पर पानी से बाहर साँस लेने के लिए अपने नथुनों को बाहर निकालना पड़ता है। इन नथुनों में भी एक प्रकार का परदा-सा रहता है जिससे इसके भीतर पानी जाने की कोई संभावना नहीं रहती। वैसे तो यह कुछ ही देर बाद साँस लेने के लिए बाहर निकलता है, लेकिन जरूरत पड़ने पर यह ५-६ घंटे तक पानी के भीतर रह सकता है।

मगर बहुत ही सतर्क और खूँखार जीव है। इसकी देखने और सूँघने की शक्ति बहुत तेज होती है। मनुष्यो को इससे बहुत होशियार रहना चाहिये क्योंकि मौका पड़ने पर यह हम लोगो की जान लेने में नही चूकेगा। खासकर सध्या के समय जब मछलियाँ गहरे पानी से हटकर छिछले पानी या किनारे की ओर चली आती हैं तो उस समय मगर और घडियाल उनके शिकार के लालच मे अक्सर किनारे पर ही रहते हैं।

वैसे तो मगर जल में रहनेवाले जीव हैं, लेकिन इन्हें अक्सर किसी निरापद स्थान में सूखे पर धूप लेते देखा जा सकता है। धूप लेते समय ये अक्सर अपना मुँह खोल रहते हैं। उस समय एक बात देखने योग्य होती है। जब घडियाल या मगर मुँह खोलकर धूप में लेटते हैं तो एक प्रकार की छोटी टिटिहरी जाति की चिड़िया उनके मुँह के भीतर घुसकर उनके खूँखार दाँतो से छोटे छोटे कीड़े और मास के रेशो को निकालकर खाती रहती है। यह खेल उन छोटी चिड़िया के लिए जानलेवा हो सकता है लेकिन ऐसा कभी नही होता कि घडियाल अपना मुँह सहसा बन्द कर ले क्योकि ये चिड़ियाँ जब उसके मुँह के भीतर घुसकर कीडो को खाती हैं तो मगरो को बहुत आराम मिलता है और वे बडी खुशी से मुँह खोलकर इन चिड़िया की सेवा को स्वीकार कर लेत हैं।

मगर अण्डज जीव हैं जिनकी उत्पत्ति अण्डा से होती है। मादा एक बार में कई दर्जन अण्डे देती है जो रेत मे या ही धूप में सूखने के लिए छोड दिये जाते हैं। अण्डे देने के बाद माता पिता किसी स भी उनका कोई सम्बन्ध नही रह जाता। ये अण्डे सफेद रग के गोल आकार के होते हैं जिनकी लम्बाई ३-४ इच की रहती है। अण्डो के फूटने पर उनमे से छोटे छोटे छिपकली जैसे बच्चे निकलते हैं जिनका सिर छिपकलियो से बडा रहता है। शुरू-शुरू में इनके आगे की ओर एक दात रहता है जिसे डिम्बदत (Egg tooth) कहते हैं। इसी से बच्चे अण्डे का कडा छिल्का तोडकर अण्डे से बाहर निकलते हैं। यह दात कुछ दिनो मे ही गिर जाता है।

मगर बहुत दिनो तक जीनेवाले जीव हैं। यदि मनुष्यो से इनकी दुश्मनी न होती तो आज सचमुच इनकी सख्या बहुत ज्यादा हो गयी होती। लेकिन इस दुश्मनी के अलावा अपने मास और चमडे के लिए भी इन्हे काफी बडी सख्या में प्रतिवर्ष आदमियो का शिकार होना पडता है।

मगर के शिकार का मुख्य तरीका तो वन्दूक की गोली से मारने का है जिसके लिए वहुत सतर्कता की जरूरत पड़ती है। शिकारी लोग या तो किश्ती पर से इनका शिकार खेलते हैं या फिर उस स्थान पर पहले से गढ़ा खोदकर उसी में छिपे रहते हैं जहाँ अक्सर मगर या घड़ियाल धूप सेंकने के लिए वाहर निकलते हैं। सन्नाटा पाकर जब घड़ियाल या मगर किनारे पर निकलकर लेटता है तो थोड़ी ही दूर गढ़े में छिपा हुआ शिकारी उठकर उसे गोली का निशाना वना लेता है।

दूसरा तरीका उनको काँटे से फँसाने का है जो देखने में वहुत क्रूर जान पड़ता है। किसी छोटे जीव या वकरे वगैरह की आँत में एक मजवूत कटिया पिरोकर उसे ऐसे स्थान में फेंका जाता है जहाँ मगरों के रहने की संभावना रहती है। जब मगर इसे निगल जाता है तो उसकी अद्‌भुत पाचन-शक्ति के कारण मांस का हिस्सा शीघ्र ही पच जाता है और कटिया जाकर इसकी आँत में धँस जाती है। फिर मजवूत डोरी के सहारे, जिसमें कटिया वँधी रहती है, उसको खींचकर निकाल लेना वहुत आसान हो जाता है।

नक्र वर्ग वैसे तो कई परिवारों में वाँटा गया है, लेकिन यहाँ केवल एक मगर परिवार का ही वर्णन दिया जा रहा है जिसमें हमारे यहाँ के प्रसिद्ध मगर और घड़ियाल हैं।

मगर परिवार

(FAMILY CROCODILIDAE)

मगर परिवार में हमारे यहाँ के मगर और घड़ियाल हैं जिनका वर्णन ऊपर दिया जा चुका है। मगर हमारे देश के प्रायः सभी जलाशयों में पाये जाते हैं, लेकिन घड़ियाल गंगा आदि वड़ी नदियों में ही मिलते हैं।

घड़ियाल यद्यपि कद में मगर से वड़ा होता है लेकिन वह मछलीखोर जीव है जो मनुष्यों के लिए मगर की तरह खतरनाक नहीं होता। यहाँ मगर और घड़ियाल दोनों का संक्षिप्त वर्णन दिया जा रहा है।

मगर

(CROCODILE)

मगर हमारे यहाँ घड़ियालों से अधिक संख्या में पाये जाते हैं। इनकी दो जातियाँ हमारे देश में पायी जाती हैं। एक तो वे मगर जो हमारी नदियों में रहते हैं और दूसरे जो समुद्र के निवासी हैं।

नदियों के मगर सारे भारत की नदियों, दलदलों और तालों में रहते हैं और वे घड़ियालों से ज्यादा खतरनाक समझे जाते हैं।

इनका मुँह या थूथन घड़ियालों की तरह लम्बा न होकर सुअर या गोह की तरह छोटा और चौड़ा होता है जिसमें ऊपरी और निचले जबड़ों में हर तरफ १९ तक दाँत रहते हैं। थूथन जड़ के पास की चौड़ाई से डेढ़गुना बड़ा रहता है जो जड़ के पास चौड़ा होकर आगे की ओर पतला होता जाता है। जबड़े का पाँचवाँ दाँत सबसे बड़ा होता है और नीचे के जबड़े का चौथा दाँत जबड़ा बंद होने पर ऊपरी जबड़े के छेद में बैठ जाता है जिससे बंद होने पर इनका मुँह जल्द नहीं खोला जा सकता।

मगर का सिर खुरखुरा जरूर रहता है, लेकिन उस पर कुछ ज्यादा उभार नहीं रहता। हाँ, पिछली टाँगों पर कुछ हिस्सा जरूर उभरा-सा रहता है। इनकी उँगलियाँ जड़ के पास ही जुड़ी हुई रहती हैं लेकिन बाहरी अँगूठा झिल्ली से करीब-करीब पूरा जुड़ा रहता है। इनके पैर के बाहरी किनारे पर दाँत-से बड़े रहते हैं।

मगर

मगर लम्बाई में प्रायः १२ फुट के होते हैं, पर कभी-कभी इससे बड़े मगर भी पाये जाते हैं। घड़ियाल की तरह इनके शरीर पर भी बड़े शल्क या सेहर रहते हैं जिसमें पीठ के शल्कों के नीचे हड्डी रहती है। इनकी गुद्दी पर चार चौड़े चौकोर शल्क रहते हैं

और पीठ पर के कड़े शल्क खड़ी धारियों जैसे जान पड़ते हैं जो चार से छः तक रहती हैं। मगर का ऊपरी रंग जैतूनी होता है जिस पर कभी-कभी काली चित्तियाँ भी रहती हैं। नीचे या पेट का हिस्सा घड़ियालों की तरह पिलछौंह सफेद होता है।

मगरों को कीचड़ वहुत पसंद है और इसीलिए ये अक्सर जंगली नदियों के गहरे कुंड या दलदलों में रहते हैं। कभी-कभी तो कीचड़ के सूख जाने पर ये मेढकों की तरह जमीन में गड़े रहते हैं और फिर पानी भर जाने पर ही वाहर निकलते हैं।

इनका मुख्य भोजन मछली और जलपक्षी हैं लेकिन मौका पाने पर ये आदमियों और जानवरों पर हमला करने से नहीं चूकते।

वरसात के शुरू में पानी के किनारे लंबी सुरंग जैसे विल खोदकर मगरी वीस या उससे ज्यादा अण्डे देती है जो करीव चालीस दिन में फूट जाते हैं। इन अण्डों से छिपकली-जैसे वच्चे निकलते हैं जो घड़ियाल के वच्चों से छोटे होते हैं।

घड़ियाल

(GHARIAL)

घड़ियाल हमारे यहाँ का वहुत परिचित मांसाहारी जलचर है, जिसे हममें से वहुतों ने देखा होगा। कुछ लोग घड़ियाल को मगर की तरह आदमी पर हमला करने-वाला जीव मानते हैं लेकिन इसका सँकरा जवड़ा और गले का पतला सूराख मछलियाँ पकड़नेके लिए भले ही उपयुक्त हो, मनुष्य को समूचा निगलने की सामर्थ्य उसमें नहीं होती। फिर भी इसे एकदम हानिकारक न मानना ठीक नहीं जान पड़ता क्योंकि यह आदमी को भले ही न निगले लेकिन दवाव में पड़ने पर उसे पकड़ सकता है और अपनी मजबूत दुम से मार तो सकता ही है। और ये दोनों अवस्थाएँ हमारे लिए घातक हो सकती हैं।

घड़ियाल की एक ही जाति हमारे यहाँ पायी जाती है जो हमारी गंगा, सिन्धु, ब्रह्मपुत्र, महानदी और उनकी सहायक नदियों में फैली हुई है।

घड़ियाल की लंवाई २० से २५ फुट तक होती है, लेकिन ये ३० फुट तक लंवे पाये गये हैं, जिसमें इनका लम्वा और पतला मुँह भी शामिल है। पुराने नरों के थूथन के सिरे पर का गोल हिस्सा, जिसे तूंबी कहते हैं, लोटे की तरह ऊपर उठा रहता है।

घड़ियाल की ऊपरी और निचली सतह पर चारखाने की शक्ल के शल्क या सेहर रहते हैं जो आपस में जुटे रहने पर भी अलग-अलग जान पड़ते हैं। ऊपरी हिस्से के सेहरों के नीचे हड्डियों की तह रहती है जिससे इसकी पीठ बहुत कड़ी और मजबूत रहती है लेकिन नीचे के सेहरों के नीचे हड्डी नहीं होती और यहीं का चमड़ा सिझाकर जूते और सूटकेस वगैरह बनाने के काम में आता है।
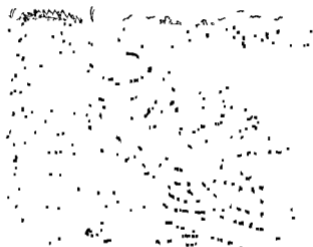
घड़ियाल

घड़ियाल की नीचे की उँगलियाँ एक तिहाई और बाहर की दो तिहाई हिस्से तक जुड़ी रहती हैं और उसके चारों पैरों पर कुछ कड़ा हिस्सा रीढ़-सा उठा रहता है।

घड़ियाल के बच्चे, जिन्हें प्राय: मगरौठी कहते हैं हलके जैतूनी रंग के होते हैं, पर बड़े और पुराने होने पर इनका रंग गाढ़ा जैतूनी या काई जैसा हो जाता है जिस पर गाढ़ी भूरी चित्तियाँ या धारियाँ भी रहती हैं।

इनकी आँखें काफी उभरी उभरी होती हैं जिनमें एक पारदर्शी झिल्ली रहती है। पानी के भीतर देखते समय यह झिल्ली अपने आप सरककर इनकी आँखों के सामने आ जाती है जिससे फिर इनकी आँखों के भीतर पानी जाने का खतरा नहीं रहता।

(२) कच्छप वर्ग

(ORDER CHELONIA)

कच्छप वर्ग भी बहुत बड़ा नहीं है लेकिन इसमें सब प्रकार के जल और स्थल के कछुए एकत्र किये गये हैं। जल में रहनेवाले कछुए प्रायः सब प्रकार के जलाशयों में पाये जाते हैं। ये मीठे और खारे दोनों प्रकार के पानी में रह लेते हैं।

कछुए अपने ढंग के निराले जीव हैं जिनकी बनावट अजीब डिब्बे जैसी होती है। इनका शरीर कड़े खपड़े का होता है जिसमें से इनके चारों पैर, छोटी दुम और लम्बी गरदन बाहर निकली रहती है। इनके शरीर का डिब्बेनुमा ढांचा हड्डी जैसे कड़े पदार्थ का रहता है जिसका निचला हिस्सा तो चपटा और चौरस रहता है, लेकिन ऊपर का हिस्सा, जो खपड़ा कहलाता है, गुम्बज-सा गोलाई में उठा रहता है।

कछुए वैसे तो जल में रहनेवाले जीव हैं, लेकिन इनमें से कुछ जातियाँ ऐसी भी हैं जो सूखे में भी रह लेती हैं। इस प्रकार कछुओं को दो हिस्सों में बाँटा जा सकता है—जलवासी कछुए और स्थलवासी कछुए। इन दोनों की शरीर-रचना, आकृति तथा स्वभाव आदि बहुत कुछ एक-जैसे होते हैं। इससे इन दोनों का वर्णन यहाँ साथ ही दिया जा रहा है।

कछुए हमारे बहुत परिचित जीव हैं जिनकी अनेक जातियाँ इस देश में फैली हुई हैं। हमारे यहाँ शायद ही कोई जलाशय हो जहाँ ये न पाये जाते हों। नदी और ताल ही नहीं, इनकी कुछ जातियों ने समुद्रों को भी अपने रहने का स्थान चुना है, लेकिन कुछ ऐसे भी हैं जिन्हें दलदल या सूखे स्थान ही पसंद आते हैं।

तीनों प्रकार के कछुओं में थोड़ा ही फर्क रहता है। नदियों या तालाबों में रहने-वाले कछुओं की उँगलियाँ बत्तखों की तरह जालपाद (Webbed) होती हैं तो समुद्र के रहनेवाले कुछ कछुओं के पैर मछलियों के मुफनों की तरह पतवारनुमा होते हैं जिससे उन्हें तैरने में बहुत आसानी हो जाती है।

जैसा पहले बताया गया है, कछुओं की पीठ और पेट का हिस्सा हड्डी जैसे कड़े आव-रण से ढँका रहता है। इस पर कभी तो एक प्रकार की झिल्ली-सी चढ़ी रहती है जिससे वह चिकना लगने लगता है और कभी कड़े शल्कों के कारण उभार-सा जान पड़ता है।

ये खपड़े इतने सख्त और मजबूत होते हैं कि उन पर लाठी तथा बर्छी तक का जल्द असर नहीं होता।

कछुओं का सिर चपटा रहता है जो सिरे पर जाते-जाते तिकोना हो जाता है। इनकी गरदन जरूर बहुत लम्बी और लचीली होती है जिसको जरूरत पड़ने पर ये अपने खपड़े के भीतर और बाहर कर सकते हैं। इनके मुँह के भीतर और जानवरों की तरह दाँत नहीं होते बल्कि दाँतों की जगह एक प्रकार का कड़ा हड्डी का प्लेट-सा रहता है जिसके सहारे ये बड़ी आसानी से मास तक काट लेते है।

कछुओं के पैर मजबूत होते हुए भी छोटे होते हैं जिनको इनके भारी शरीर को सँभालने में काफी दिक्कत पड़ती है। खुश्की पर चलते समय ये अपने अगले पंजा से जमीन को पकड़ लेते हैं और फिर उसी के सहारे इनका शरीर घिसट-घिसटकर आगे बढ़ता है। इनके अगले पैर पीछे की ओर मुड़े रहने के बजाय बाहर की ओर निकले रहते हैं जो देखने में बहुत बेडौल जान पड़ते हैं। इनके पंजों में नाखून भी होते हैं जो भिन्न भिन्न जातियों में कम और ज्यादा रहते हैं।

कछुए के छोटे पैर उसके पानी में तैरने अथवा खुश्की में चलने में भले ही सहायक होते हों लेकिन वे उसके चित हो जाने पर बेकार-से हो जाते हैं। कछुए को चित कर देने पर वह बेबस हो जाता है। उस समय वह अपनी लम्बी गरदन बाहर निकालकर और उसी को जमीन पर टेककर उलटने की कई बार कोशिश करता है और थोड़े उद्योग के बाद अंत में उसी के सहारे सीधा होने में वह सफल हो जाता है।

कछुए के शरीर का ज्यादा हिस्सा तो खपड़े से ही ढका रहता है, लेकिन उसकी दुम, पैर और गरदन का हिस्सा ऐसा रहता है जिसपर कड़ी खाल चढ़ी रहती है। उसके पैर की खाल काफी मोटी और ढीली ढीली-सी रहती है जिस पर मेहर से उभरे रहते हैं। उसकी गरदन और माथे पर का चमड़ा जरूर पतला रहता है।

कछुआ के आठ मोटे और भद्दे होते हैं और उनकी दुम बहुत छोटी रहती है जिसका थोड़ा ही हिस्सा इनके खपड़े के बाहर दिखाई पड़ता है।

कछुओं के नोकीले थथन के ऊपर नाक के दो छिद्र स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। इसी के सहारे ये पास-पड़ोस के खाद्य-पदार्थों को सूँघकर तुरत उसका पता लगा लेते हैं। इनके माथे पर दो छोटी-छोटी आँखें रहती हैं जिनमें दो के बजाय तीन पलकें रहती हैं।

जिस प्रकार सब जीवों के ऊपर नीचे दो पलकें रहती हैं वैसी दो पलकें तो इनके (कछुओं के) रहती ही हैं, साथ-ही-साथ इनकी आँखों के भीतर की ओर कोने में एक और पलक भी रहती है जिसे जरूरत पड़ने पर ये खोल बंद कर सकते हैं।

इनके कान के छिद्र दोनों ओर जबड़ों के पास रहते हैं जो इनके बड़े काम के हैं क्योंकि इसी के सहारे ये जरा सी आहट पाते ही पानी में घुस जाते हैं।

कछुओं के साँस लेने का ढंग भी कुछ अजीब-सा है। वैसे तो ये फेफड़े से हवा में साँस लेनेवाले जीव हैं जिनके मछलियों की तरह गलफड़ नहीं होते, लेकिन इनको पानी में घुली हुई हवा को इस्तेमाल करने की भी थोड़ी सहूलियत प्रकृति ने दे रखी है। इससे ये पानी के भीतर भी काफी देर तक रह सकते हैं। इसके लिए कछुए पानी को मुंह द्वारा भीतर खींचकर फिर उसे बड़े जोर से बाहर निकालते हैं और उसमें घुली हुई हवा का कुछ हिस्सा सोख लेते हैं। दूसरा ढंग इस प्रकार की हवा सोखने का इससे भी अद्भुत है। कछुए की आंत का निचला हिस्सा बड़ा होकर दो लम्बी थैलियों के आकार का हो जाता है जिसमें काफी रक्त-शिराएं रहती हैं। कछुआ अपनी गुदा-द्वारा इन थैलियों म पानी खींचकर फिर बाहर निकाल देता है और तभी ये रक्त-शिराएँ पानी में घुली हुई हवा का कुछ अंश सोख लेती हैं। यहाँ एक बात जान लेनी चाहिये कि कछुओं के मल-मूत्र त्यागने और अण्डा देने का काम एक ही छिद्र द्वारा चलता है।

कछुए अण्डज जीव हैं जो एक बार में काफी अंडे देते हैं। मेढकों, मछलियों की तरह ये अण्डे पानी में नहीं दिये जाते बल्कि समय आने पर कछुई बालू में अण्डे देती है जो शकल में अण्डाकार या गोल होते हैं और जिनका रंग दूध-सा सफेद रहता है। अण्डों को वह बालू से ढक देती है और फिर उसके बाद उसका उनसे कोई वास्ता नहीं रह जाता। ये अण्डे तेज धूप खाकर बिना सेये ही फूट जाते हैं।

कछुई एक बार में एक दो नहीं, अनेक अण्डे देती है जिनकी संख्या कभी-कभी कई दरजन तक पहुँच जाती है, लेकिन खैरियत यही है कि इनकी काफी संख्या को सियार, लोमड़ी आदि जंगली जीव खा लेते हैं। नहीं तो आज हम कछुओं से अपने सारे जलाशयों को भरा पाते।

कछुए बहुत ही डरपोक प्राणी हैं जो जरा सी आहट पाते ही पानी में कूद पड़ते हैं। यदि ये सूखे में घिर जाते हैं तो अपनी गरदन खपड़े के भीतर करके वहीं पड़

जाते हैं। इनमें से कुछ का आहार तो पानी की घासपात और काई वगैरह है लेकिन कुछ मेढक-मछलियाँ और कीडे-मकोडो के अलावा मुरदे का मास भी खाते हैं। कभी कभी ये मासाहारी कछुए आदमियो को भी काट लेते हैं। ये उस जगह के मास को ऐसा साफ तराश ले जाते हैं जैसे किसी ने तेज चाकू से काट लिया हो।

कछुओ को, जैसा पहले कहा जा चुका है, दो मुख्य भागो में बाँटा जा सकता है—

१ स्थल-कच्छप—Land Tortoises

२ जल-कच्छप—Sea Turtles

स्थल पर रहनेवाले प्राय सभी कछुए शाकाहारी होते हैं। इनका खपडा अण्डाकार होता है जिसकी ऊपरी सतह कडे शल्को से ढकी रहती है। इनकी उँगलियाँ छोटी या औसत नाप की होती है, जिनमें चार या पाँच नाखून रहते हैं। इनके पैर पानी के कछुओ के पैरो की तरह जालपाद अथवा पतवारनुमा न होकर मजबूत और जमीन पर चलने योग्य रहते हैं। इनकी अनेक जातियाँ हैं जिनमे ज्यादा सख्या उन्ही की है जो सूखे और पानी दोना में रहनेवाले हैं, लेकिन ऐसी एक भी जाति नही है जो एकदम सूखे मे ही रहना पसद करती हो।

जल में रहनेवाले कछुओ की सख्या बहुत ज्यादा है जिनमे से कुछ तो ऐसे हैं जो नदियों तथा अन्य जलाशयों में रहते हैं और कुछ ऐसे हैं जिनका निवास समुद्र है।

समुद्री-कछुओ में से कुछ के पैर पतवारनुमा होते हैं जिससे उन्हे तैरने में बहुत आसानी हो जाती है। इनमे कुछ बहुत भारी भरकम होते हैं और उनका वजन कई मन तक पहुँच जाता है। इनका मुख्य भोजन काई और शाकपात है।

मीठे पानी के कछुए प्राय मासभक्षी होते हैं। इनमे से कुछ शाकपात भी खा लेते हैं, लेकिन इनका मुख्य भोजन मास ही है। इन कछुओ की पीठ और पेट अक्सर कडे शल्को से ढके न रहकर एक प्रकार की मुलायम खाल से मढे रहते है। इनका ओठ मोटा और थूथन नोकीला होता है और अक्सर इनके पजो की तीन उँगलियो में ही नाखून रहते हैं।

कच्छप-वर्ग काफी विस्तृत है। इसलिए विद्वानो ने उसे कई परिवारो में विभक्त कर दिया है। यहाँ उनमें से निम्नलिखित तीन परिवारो का वर्णन दिया जा रहा है जिनमे हमारे देश के प्राय सभी प्रसिद्ध कछुए आ जाते हैं।

१. स्थल-कच्छप परिवार—Family Testudinidae

२. समुद्री-कच्छप परिवार—Family Chelonidae

३. जल-कच्छप परिवार—Family Trionychidae

स्थल-कच्छप परिवार

(FAMILY TESTUDINIDAE)

इस परिवार के कछुए आस्ट्रेलिया को छोड़कर करीब-करीब सारे जगत में फैले हुए हैं। इनमें से कुछ तो एकदम पानी में रहनेवाले हैं, लेकिन कुछ को पानी से ऐसी नफरत है कि यदि वे पानी में छोड़ दिये जायँ तो डूबकर मर जायँ। लेकिन ज्यादा संख्या उन्हीं की है जिन्होंने बीच का रास्ता अपनाया है और जो अपना समय खुश्की और पानी दोनों में बिताते हैं।

यहाँ इनमें से तीन कछुओं का वर्णन दिया जा रहा है जो हमारे देश में काफ़ी संख्या में पाये जाते हैं।

साल कछुआ

(RED STREAKED KACHUGA)

साल हमारे देश का प्रसिद्ध कछुआ है जो गंगा, गोदावरी और कृष्णा आदि नदियों में पाया जाता है ।

यह पानी में रहनेवाला शाकाहारी कछुआ है जिसके खपड़े की लंबाई १५-१६ इंच होती है। इसकी पीठ पतली झिल्ली से ढकी न रहकर एक प्रकार के शल्क से ढकी रहती है और सिर के पिछले भाग में लकीरों के कटने से सेहर-से जान पड़ते हैं। खपड़े पर स्थान-स्थान पर उभार-से रहते हैं।

इसके सिर का बगली हिस्सा निलछौंह रहता है और इसके गले के नीचे दो लाल या पीले अण्डाकार चित्ते रहते हैं।

साल का सिर औसत नाप का होता है और उसका ऊपरी जबड़ा नोकीला और ऊपर की ओर उठा हुआ रहता है।

इसका ऊपरी हिस्सा भरे रंग का होता है लेकिन नीचे का हिस्सा पिलछौंह रहता है। इसकी गरदन भूरी रहती है जिस पर ललछौंह लकीरें पड़ी रहती हैं।

साल कछुआ
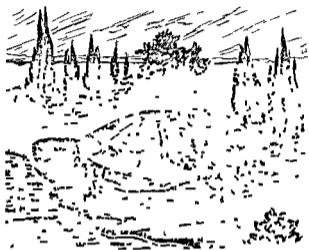
साल के पैरों पर आड़े-आड़े स्केल और पतले मेहर से रहते हैं। उसकी उँगलियाँ आपस में झिल्ली से जुड़ी रहती हैं जिनमें नाखूनों की संख्या ४ से ५ तक रहती है। इसका मांस कुछ लोग बड़े स्वाद से खाते हैं।

छतनहिया कछुआ

(STARRED TORTOISE)

छतनहिया को हम पूरे तौर से स्थल कछुआ कह सकते हैं क्योंकि यह अपना सारा समय सूखे पर ही बिताता है। वैसे तो यह आस्ट्रेलिया को छोड़कर सारे संसार में फैला हुआ है लेकिन हमारे देश में यह केवल बंगाल के दक्खिनी भाग में नहीं पाया जाता।

इसके खपड़े की लम्बाई १० इंच से ज्यादा नहीं होती जिस पर बुल्लक-से उठे रहते हैं। इसकी पीठ काले रंग की होती है जिसपर पीली चित्तियाँ पड़ी रहती हैं और

वहीं से पीले रंग की पतली धारियाँ भी चारों ओर फैल जाती हैं। इसके नीचे का रंग भी कलछौंह ही रहता है।
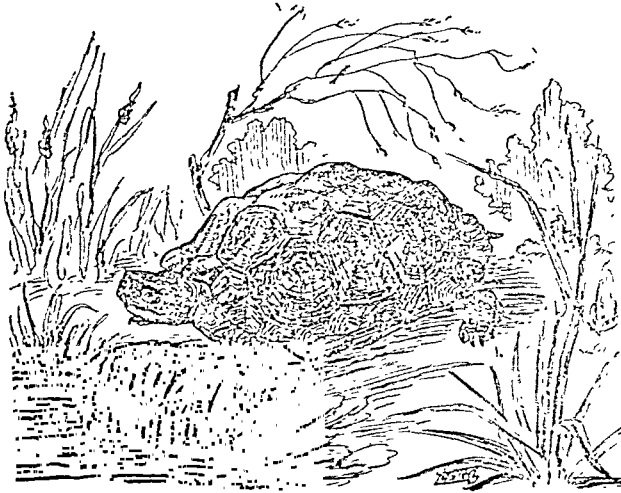
छतनहिया कछुआ

छतनहिया का सिर औसत कद का और माथा उभरा-उभरा-सा रहता है जिस पर बेतरतीब से कुछ सेहर बने रहते हैं। इसके थूथन का कुछ हिस्सा नीचे की ओर मुड़ा रहता है, जो दो या तीन हिस्सों में कटा रहता है।

छतनहिया कछुए के खपड़े के अगले हिस्से पर बीच में कुछ कटाव-सा रहता है और इसके खपड़े का पिछला हिस्सा भी कुछ दूर तक कटा रहता है।

यह भी साल की तरह शाकाहारी कछुआ है जिसकी दुम छोटी और पैर की उँगलियाँ पतली होती हैं जिनमें चार या पाँच नाखून रहते हैं।

रामानंदी कछुआ

(COM ROOFED TERRAPIN)

रामानंदी कछुआ भी हमारे यहाँ का प्रसिद्ध कछुआ है जो हमारे देश के अलावा अन्य देशों में भी कहीं-कहीं पाया जाता है। हमारे यहाँ यह गंगा, सिंधु, ब्रह्मपुत्र तथा इनकी सहायक नदियों में पाया जाता है। यह भी शाकाहारी कछुआ है।

यह बहुत सुंदर कछुआ है जिसके माथे पर तिलक-जैसा चिह्न होने के कारण ही इसका रामानंदी नाम पड़ा है। इसका खपड़ा ९ इंच लंबा होता है, जो बीच में काफी ऊँचा उठा रहता है। इसकी पीठ का रंग जैतूनी रहता है, जिस पर बचपन में

रामानन्दी कछुआ

एक नारंगी या लाल धारी पड़ी रहती है लेकिन जब यह प्रौढ़ हो जाता है तो पीठ पर की यह धारी पीठ के गाढ़े रंग में छिप जाती है। इसके नीचे का खपड़ा नारंगी या लाल रंग का होता है जिस पर काली चित्तियाँ पड़ी रहती हैं। इसकी गर्दन कत्थई रहती है, जो पतली धारियों से भरी रहती है। इसके पैर गाढ़े जैतूनी रंग के होते हैं, जिन पर पीली बिंदियाँ रहती हैं। इसके पैरों की उँगलियाँ चौड़ी झिल्ली से नाखूनों तक जुटी रहती हैं। इन कछुओं का मांस खाया जाता है।

समुद्री-कच्छप परिवार

(FAMILY CHELONIDAE)

इस परिवार में सब समुद्री कछुओं को एकत्र किया गया है, जो गरम देश के प्राय सभी समुद्रों में पाये जाते हैं। ये अपना सारा समय पानी में ही बिताते हैं, और केवल अण्डे देने के लिए पानी से बाहर आते हैं।

ये कछुए कद में चार-पांच फुट के होते हैं और अपने मांस तथा खपड़ों के लिए काफी संख्या में पकड़े जाते हैं।

यहां इनमें से दो प्रसिद्ध कछुओं का वर्णन दिया जा रहा है।

हरा कछुआ

(GREEN SEA TURTLE)

हमारे यहां के समुद्री कछुओं में हरा कछुआ सबसे प्रसिद्ध है। यह वैसे तो हमारे सभी समुद्रों में पाया जाता है, लेकिन अण्डमान द्वीप के आसपास यह अधिक संख्या में दिखाई पड़ता है।
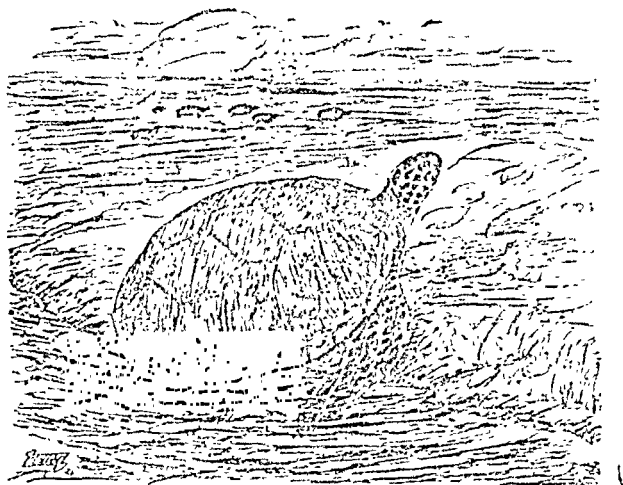
समुद्री हरा कछुआ

इस कछुए का थूथन छोटा और दबा-दबा-सा रहता है और इसके पैर में सिर्फ एक ही उँगली रहती है। इसके खपड़े पर शल्क जरूर रहते हैं, लेकिन वे एक-दूसरे पर चढ़े नहीं रहते। इसका रंग, जैसा इसके नाम से स्पष्ट है, गंदा हरा या जैतूनी रहता है लेकिन नीचे का हिस्सा पिलछौंह रहता है और पैरों के ऊपर एक-एक काला चित्ता रहता है। इसके पैर अन्य कछुओं की तरह न होकर पतवारनुमा होते हैं जिनके सहारे यह पानी में बड़ी आसानी से तैरता है।

हरा कछुआ करीब चार फुट लंबा होता है और इसका शरीर इतना भारी होता है कि यदि इसे उल्टा न किया जाय तो यह थोड़ी देर में ह्वेल की तरह अपने ही बोझ में दम घुटने से मर जाता है।

यह कछुआ शाकाहारी जीव है जो वैसे तो समुद्र में उगनेवाली वनस्पति से अपना पेट भरता है लेकिन मौका पाने पर यह मछलियों और कटुओं आदि को भी नहीं छोड़ता।

लोग इसका मांस खाने के काम में लाते हैं लेकिन कभी-कभी वह जहरीला भी हो जाता है। इसकी मादा साल भर में तीन बार अण्डे देती है जिनकी संख्या ४-५ सौ तक पहुँच जाती है।

बाजठोंठी कछुआ

(HAWKS BEAK TURTLE)

बाजठोंठी कछुआ भी समुद्र का निवासी है लेकिन यह हरे कछुए से कद में कुछ छोटा होता है। इसका यह नाम इस कारण मिला है कि इसका थूथन बाज आदि शिकारी पक्षियों की चोंच की तरह टेढ़ा सा रहता है।
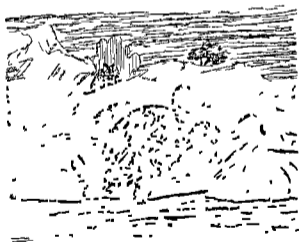
बाजठोंठी कछुआ

इसके पैर भी पतवारनुमा होते हैं जिनमें प्रत्येक में दो-दो नाखून रहते हैं। इसके खपड़े के ऊपर उभरे उभरे शल्क रहते हैं जो एक-दूसरे पर चढ़े रहते हैं।

इस कछुए का मांस तो खाने के काम में नहीं आता लेकिन इसके अण्डे को लोग कछुए के अण्डे की तरह बड़े स्वाद से खाते हैं। इसके खपड़े के उभरे हुए शल्क बहुत कीमती होते हैं जिनसे ऐनक के मूल्यवान फ्रेम बनते हैं।

जल-कच्छप परिवार

(FAMILY TRIONYCHIDAE)

इस परिवार में वे कछुए रखे गये हैं जिनका अधिक समय कीचड़ और पानी में बीतता है। ये हमारे यहाँ के ताल-तलैयों तथा छोटी-बड़ी नदियों में काफी संख्या में पाये जाते हैं। ये सब मांसभक्षी कछुए हैं, जिनका शरीर चपटा और गोल रहता है और इनके खपड़े पर एक प्रकार की मुलायम खाल चढ़ी रहती है।

इन कछुओं के पंजे बत्तखों की तरह आपस में जुटे रहते हैं जिससे इन्हें पानी में तैरने में बहुत आसानी हो जाती है। इनका थूथन आगे की ओर निकला रहता है जिसके सिरे पर इनके नाक के छिद्र रहते हैं।

यहाँ इनमें से कुछ प्रसिद्ध कछुओं का वर्णन दिया जा रहा है, जो हमारे यहाँ की नदियों और जलाशयों में काफी तादाद में पाये जाते हैं।

सेवार कछुआ

(GANGES SOFT SHELL TORTOISE)

सेवार गंगा का सबसे बड़ा कछुआ है जो गंगा और सिंधु, महानदी तथा उनकी सहायक नदियों में पाया जाता है। इसे हम नदी के किनारों पर अक्सर गर्दन उठाकर धूप सेंकते देख सकते हैं। इसके खपड़े पर खाने-खाने-से नहीं कटे रहते बल्कि उसके ऊपर एक पतली झिल्ली-सी चढ़ी रहती है, जिससे इसकी पीठ बहुत चिकनी दिखाई पड़ती है।

इस कछुए के खपड़े की लंबाई डेढ़-दो फुट की रहती है और इसकी गरदन भी काफी लंबी रहती है। इसके पैर भी लंबे होते हैं जिनकी उँगलियाँ आपस में कड़ी झिल्ली से जुड़ी रहती हैं।

सेवार की पीठ का रंग जैतूनी या गंदा हरा रहता है। इसका सिर हरापन लिये

रहता है जिस पर आँखो के बीच से लेकर गुद्दी तक एक काली धारी या पट्टी चली आती है, जहाँ उसे कई शकल की धारियाँ काटती है। नीचे का रंग पिलछौंह सफेद रहता है।

सेवार कछुआ

सेवार नदी का मुर्दाखोर कछुआ है जिसका मुख्य भोजन मास और मछलियाँ हैं। इसका मास नही खाया जाता।

चिकना कछुआ

(SOUTHERN SOFT SHELL TORTOISE)

चिकना भी गगा का कछुआ है जो यहाँ की बडी नदियों में काफी सख्या में पाया जाता है।

यह सेवार से बहुत मिलता-जुलता होता है लेकिन कद में उससे छोटा रहता है। इसका रग भी सेवार की तरह गदा हरा होता है और इसका भी खपडा पतली खाल से ढका रहता है। ऊपरी खपडे के किनारे पर गदी हरी या काली बिंदियाँ पडी रहती हैं जो इसके खपडे तक ही न रहकर इसकी गरदन और पैर तक फैल जाती हैं।

इसके सिर पर पीले चित्ते भी पड़े रहते हैं जो पुराने कछुओं में बहुत धूमिल हो जाते हैं।
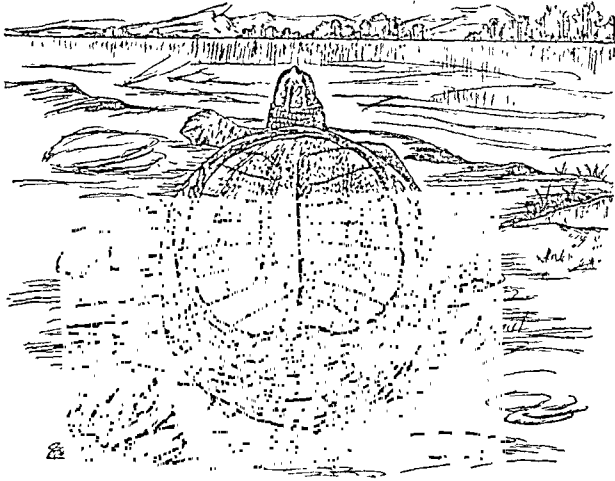
चिकना कछुआ

चिकना भी सेवार की तरह मुरदाखोर कछुआ है जो मांस, मछली और मुरदों से अपना पेट भरता है।

इसकी और आदतें सेवार से मिलती-जुलती रहती हैं।

कछुई

MUD TURTLE

कछुई हमारे यहाँ के प्रायः सभी तालाबों और नदियों में पायी जाती है। यही नहीं, हमारे यहाँ की नदियों में भी इसने अपना घर बना लिया है।

कछुई, जैसा इसके नाम से जाहिर है, कद में कछुए से छोटी होती है। इसका खपड़ा ८-९ इंच से बड़ा नहीं होता, जिस पर पतली झिल्ली चढ़ी रहती है।

कछुई का ऊपरी हिस्सा हरापन लिये भूरे रंग का होता है और इसका निचला हिस्सा पीला या सफेद रहता है। इसकी दुम बहुत छोटी होती है और पैरों की पाँचों उँगलियाँ आपस में एक मजबूत झिल्ली-से जुटी रहती हैं।

कछुई बहुत सीधी और डरपोक होती है लेकिन यह ढीठ भी कम नही होती। पानी के किनारे पडे हुए किसी सूखे पेड के तने पर या किनारे की किसी दीवाल पर ये काफी सख्या में धूप सेंकती दिखाई पडती है। जाड़े के दिनो मे जब काफी सरदी

कछुई

पडने लगती है तो ये अपने का कीचड में गाड लेती है और जाडे भर वही शीतशायी अवस्था मे पडी रह जाती है।

इनके भोजन के बारे मे कोई एक नियम नही है। ये घास-पात के अलावा मास मछली भी बडे मजे से खाती है।

(३) गोधा वर्ग

(ORDER SQUAMATA)

गोधा वर्ग काफी विस्तृत वर्ग है जिसमें सब प्रकार की छिपकलियो को एकत्र किया गया है, लेकिन उनके बारे में जानने के लिए हमें कुछ विस्तार में जाना होगा।

छिपकलियो के बारे में यह तो हम सभी जानते है कि ये मगर की शक्ल-सूरत के किन्तु कद में उससे बहुत छोटे जीव है जिनके सिर, पैर और दुम साँप की तरह एक में मिले न रहकर अलग-अलग रहते है। इनमें कुछ ऐसी जरूर है जो देखने में साँप-जैसी लगती है लेकिन उनकी सख्या बहुत ही कम है।

छिपकलियों की वैसे तो संसार में प्रायः ढाई हजार किस्में हैं लेकिन हमारे देश में इनकी ढाई सौ से अधिक जातियाँ नहीं पायी जातीं। ये सब एक-जैसी नहीं होतीं और इनकी शक्ल-सूरत में इतना भेद रहता है कि इनमें से मुख्य-मुख्य जाति की छिपकलियों का अलग-अलग परिचय देना अनुचित न होगा।

सबसे पहले हम अपने घरो में रहनेवाली छिपकलियों को लेते हैं जो कलछाँह या भूरे रंग की होती हैं। ये हमारे यहाँ की प्रसिद्ध छिपकलियाँ हैं जिन्हें विस्तुइया भी कहा जाता है।

छिपकलियाँ या विस्तुइयाँ रात्रिचर जीव हैं जो दिन में हमारे घर के सूराखों के भीतर, करकटों के नीचे, तस्वीरों और परदों के पीछे तथा खपरैलों के नीचे घुसी रहती हैं। लेकिन रात में लैम्प जल जाने पर जब उसके इर्द-गिर्द कीड़ों का जमघट लग जाता है तो ये ऐसी निडर होकर उनका शिकार करने लगती हैं जैसे इन्हें किसी का डर ही न रह गया हो।

घरों के अलावा कुछ छिपकलियाँ जंगलों में और रेगिस्तानों में भी रहती हैं जहाँ उनका ज्यादा समय झाड़ियों और विलों में वीतता है।

इन छिपकलियों की दुम वहुत नाजुक होती है जो छूते ही टूट जाती है और फिर उसके स्थान पर नयी दुम निकल आती है। दुमों से भी अद्भुत इनके पैरों की कटोरी-नुमा उँगलियाँ होती हैं जिनके सहारे ये छतों पर बड़ी आसानी से उलटी होकर दौड़ा करती हैं। होता यह है कि जब ये अपनी कटोरीनुमा उँगलियों को दीवाल पर दवा-कर चलती हैं तो उनके भीतर की हवा निकल जाती है और वे दीवाल में उसी तरह चिपक जाती हैं जैसे खाली गिलास मुँह पर लगाकर हवा खींच लेने से वह मुँह पर चिपक जाता है। गिलास के भीतर की हवा को भीतर खींच लेने पर जिस प्रकार उसमें वैकुअम (Vacuum) वन जाता है, उसी प्रकार छिपकलियों की उँगलियों में भी दवाव पड़ने पर वैकुअम वन जाता है और उसी के सहारे वे छतों में उलटी चिपकी रह सकती हैं।

छिपकलियों से वहुत मिलती-जुलती हमारी वम्हनियाँ होती हैं जिन्हें कहीं-कहीं वम्हन-वीछी भी कहते हैं। इनकी शक्ल-सूरत छिपकलियों-जैसी ही होती है, लेकिन इनका सिर और गरदन एक ही में मिले रहते हैं। इनका अंग सुदृढ़ होता है लेकिन दुम छिपकलियों की तरह ही नाजुक रहती है।

इनकी पीठ चिकनी और पैर छोटे होते हैं। पीठ पर स्पष्ट धारियाँ पड़ी रहती हैं। इनके शरीर का रंग अन्य छिपकलियों से चटक रहता है और जबान साँप की तरह बीच में फटी रहती है। इसी फटी जबान को देखकर कुछ लोग इन्हें जहरीली समझते हैं लेकिन वास्तव में ऐसा है नहीं। ये बहुत निरीह जन्तु हैं जो कीड़े-मकोड़ों को खाकर हमारा बहुत फायदा करती हैं। ये अपना अधिक समय किसी नम जगह में कूड़े-करकट या मिट्टी के नीचे बिताती हैं।

बम्हनी से शक्ल-सूरत में मिलती-जुलती कोतरी होती है जो उसकी तरह चटकीले रंग की न होकर भूरी या कत्थई रंग की होती है। इसका कद भी बम्हनी से कुछ बड़ा होता है। लेकिन इसके शरीर की बनावट भिन्न है।

कोतरी की भी दुम कोमल होती है और उसकी जबान भी साँप की तरह बीच से फटी रहती है। इसकी पीठ का ऊपरी हिस्सा कड़े शल्कों से ढका रहता है।

यह भी अपना अधिक समय नम जगहों पर, लकड़ी व सूखी पत्तियों अथवा कूड़े-कबाड़ के नीचे बिताती है। कुछ ऐसी भी हैं जो पेड़ों पर रहती हैं लेकिन इनमें से एक भी ऐसी नहीं है जो पानी में रहती हो। इनका मुख्य भोजन भी कीड़े-मकोड़े हैं।

कोतरियों से कुछ बड़े साँडा होते हैं जिनके शरीर की बनावट बहुत गठीली रहती है। इनकी दुम अन्य छिपकलियों की दुमों से एकदम भिन्न रहती है, इससे इन्हें पहचानने में तनिक भी कठिनाई नहीं हो सकती। इनकी दुम के ऊपरी हिस्से पर काँटे-काँटे-से रहते हैं, जिससे वे अपनी आत्मरक्षा करते हैं।

साँडा शाकाहारी जीव है जो ज्यादातर ऊसर और रेगिस्तानी प्रान्तों में पाया जाता है।

साँडे से कुछ लंबा लेकिन पतला गिरगिट होता है जिससे हम सभी परिचित हैं। इसकी दुम काफी लंबी होती है और यह अपने रंग बदलने की आदत के कारण बड़ी आसानी से पहचान लिया जाता है। यह अपना अधिक समय पेड़ों पर बिताता है।

नर गिरगिट के सिर पर मुकुट-जैसा उभार रहता है और गले के नीचे एक थैली-सी लटकती रहती है। जोड़ा बाँधने के समय उसका रंग भी लाल हो जाता है। गिरगिटों के सिर पर छोटे-छोटे शल्क रहते हैं और पीठ पर के लेहर एक-दूसरे पर चढ़े रहते हैं। कभी-कभी इनकी पीठ पर काँटे-से उभरे रहते हैं।

इनमें से कुछ शाकाहारी, कुछ कीटभक्षी और कुछ सर्वभक्षी होते हैं।

गिरगिट की ही तरह का एक और जीव हमारे यहां पाया जाता है जिसे अपना रंग बदलने की अद्भुत शक्ति के कारण बहुरूपी कहा जाता है। इसके सिर पर की हड्डी कलँगी या मुकुट की तरह उठी रहती है जिससे यह बहुत सुन्दर दिखाई पड़ता है।

बहुरूपी के पैरों की उँगलियाँ दो हिस्सों में बँटी रहती है, जिससे यह पेड़ की टहनियों को आसानी से पकड़ लेता है। यह बहुत ही काहिल जानवर है जो अपना अधिक समय वृक्षों पर ही बिताता है। इसकी दुम काफी लंबी होती है जिसे यह किसी पेड़ की डाल से लपेट लेता है और घंटों उसी जगह बैठा रहता है। अपना शिकार करते समय भी यह कुछ तेजी नहीं दिखाता और बड़ी काहिली से उसी जगह बैठे-बैठे अपनी लंबी गोल और मुग्दर जैसी जबान को बड़ी तेजी से तीर की तरह बाहर फेंकता है जिसके सिरे पर के चिपचिपे पदार्थ में कीड़े-मकोड़े चिपककर इसके पेट में पहुँच जाते हैं।

बहुरूपी बहुत निरीह जीव है जो हमारे यहाँ के पूर्वी प्रान्तों में पाया जाता है। इसे प्रकृति ने अपने शरीर का रंग पास-पड़ोस के रंग के अनुरूप कर लेने की अद्भुत शक्ति प्रदान की है जिससे यह अपने ढंग का अकेला ही प्राणी है।

गोह हमारे बहुत परिचित जीव हैं जो अपने भारी-भरकम शरीर से अन्य छिपकलियों से अलग ही रहते हैं। इनमें से कुछ सूखे में रहते हैं और कुछ पानी में। खुश्की में तो ये काफी तेज चल ही लेते हैं, पानी में भी ये काफी तेज तैर लेते हैं। यही नहीं, ये पानी के भीतर काफी देर तक डुबकी भी लगा लेते हैं। इसका कारण यह है कि इनके नथुनों के भीतर की नली काफी फैल जाती है जिसके भीतर ये हवा रोककर पानी के भीतर काफी देर तक रह लेते हैं।

गोहों का शरीर वैसे तो चपटा होता है लेकिन पानी में रहनेवालों की बनावट कुछ गोलाई लिये रहती है। इनकी दुम दोनों ओर से दबी-दबी रहती है जो लम्बाई में भी कम नहीं होती।

गोहों की जबान बहुत लंबी, चिकनी और साँप की जबान की तरह दुफंकी रहती हैं। इनकी जबान की जड़ के पास एक खोल-सा रहता है जिसमें ये साँपों की तरह अपनी जबान को खींचकर भीतर कर लेते हैं। इनकी आँख की पुतली गोल होती है जिस पर मोटी-मोटी पलकें रहती हैं। इनकी गर्दन काफी लंबी और सब अंग बड़े सुडौल और मजबूत होते हैं। इनके सिर पर छोटे-छोटे शल्क रहते हैं जिनके किनारे पर दाने से उभरे रहते हैं।

गोह वैसे तो बहुत सीधे-सादे जानवर है, लेकिन दवाव में पडने पर ये अपनी दुम से बडे जोर से वार कर देते हैं। दुम के अलावा गुस्सा होने पर ये अपने नोकीले दाँतो का भी प्रयोग करते है और पजे भी चलाते हैं।

गोह मासाहारी जीव हैं जिनका मुख्य भोजन छोटे-मोटे जानवर, मेढक, साँप, चिडियाँ और अण्डे हैं।

छिपकलियो में कुछ तो पेडो पर रहती हैं और कुछ अपना समय पानी में व्यतीत करती है, लेकिन ज्यादा सख्या उन्ही की है जिन्होने सूखे पर रहनेकी आदत डाल ली है। इन तीनो प्रकार के प्राणियो के शरीर की बनावट पर भी इसका बहुत असर पडता है और हम जहाँ पर यह देखते हैं कि जमीन पर रहनेवालो का शरीर ऊपर से चपटा रहता है वही पेड पर रहनेवालो का दोनो ओर से दबा हुआ शरीर हमसे नही छिपता। पानी में अपना ज्यादा समय बितानेवालो का शरीर गालाई लिये रहता है और चिकनी दीवार पर दौडनेवाली छिपकलियो ने अपनी उँगलियो का ऐसा विकास कर लिया है कि उन्हें छतो पर उलटी अवस्था में दौडने में भी कोई दिक्कत नही होती। छिपकलियो की खाल की बनावट साँप-जैसी मेहरनुमा होती है जो साँप के केंचुल की तरह समय आने पर शरीर से उतर जाती है। लेकिन ऐसी छिपकलियाँ कम हैं। ज्यादा तादाद उन्ही की है, जिनकी खाल टुकडे टुकडे होकर निकलती है।

छिपकलियाँ जहरीली नही होती। विदेश में एक प्रकार की छिपकली जहर होती है जिसे जहरीली कहा जा सकता है। लेकिन हमारे यहाँ की किसी छिपकली में जहर नही होता। कुछ लोग गोह के बच्चो को जिनकी पीठ पर काली चित्तियाँ पडी रहती हैं, बिसखोपडी कहकर पुकारते हैं। वे इस पर विश्वास करते हैं कि बिसखोपडी के काटने से आदमी फौरन मर जाता है, लेकिन यह एकदम कपोल-कल्पित बात है। बिसखोपडी जहरीली नही होती।

बिसखोपडी के बारे में यह ख्याल जान पडता है इनकी साँप जैसी दुफकी जबान के कारण पडा है। गोह की जबान लबी और साँप की तरह फटी-फटी-सी रहती है, लेकिन और छिपकलियो की जबान भिन्न भिन्न तरह की होती है। विद्वानो ने इनको इनकी भिन्न-भिन्न किस्म की जबानो के अनुसार अलग-अलग परिवारो में विभक्त कर रखा है।

छिपकलियो के दाँत दो तरह के होते हैं। एक तो वे जो इनके जबडे की हड्डी के भीतर की ओर रहते हैं और दूसरे वे जो जबडे के अगले हिस्से पर रहते हैं। कुछ

छिपकलियों की जबान के ऊपर कड़े छिलके-से पड़े रहते हैं और कुछ की ऊपरी तह मुलायम रहती है, लेकिन करीब-करीब सब छिपकलियों के पानी पीने का तरीका एक ही जैसा होता है। ये सब पानी पीने के समय कुत्तों की तरह अपनी जबान पानी में जल्दी-जल्दी भीतर-बाहर करके पानी पीती हैं। एक काम इनकी जबान को प्रकृति ने और सौंपा है। वह यह कि इनकी जबान में स्पर्श-ज्ञान इतना होता है कि ये बिना देखे अपनी जबान से छूकर अपने अण्डे को पहचान लेती हैं।

इनकी आँखों की बनावट जरूर बहुत सादी होती है और उनके ऊपर एक पारदर्शी ढक्कन-सा रहता है जिसके भीतर इनकी पुतलियाँ हरकत करती रहती हैं।

छिपकलियों में थोड़ी ही ऐसी हैं जो बच्चे जनती हैं, ज्यादा संख्या उन्हीं की है जो अण्डे देती हैं। शुरू-शुरू में बच्चों के थूथन पर एक तेज दांत होता है जो डिम्बदन्त कहलाता है। इसी के सहारे बच्चा अण्डे को तोड़कर बाहर निकलता है। अण्डे के बाहर निकलने के कुछ ही दिनों बाद डिम्बदन्त गिर जाता है। कुछ विद्वानों का यह भी मत है कि बच्चे अपने डिम्बदन्त की सहायता से नहीं बल्कि अपने पंजों की सहायता से बाहर निकलते हैं।

प्राय: सभी छिपकलियों के बच्चों का रंग चटक रहता है जो बड़े होने तक धूमिल और गंदा हो जाता है। जोड़ा बाँधने के समय जरूर नर-मादा की पोशाक कुछ भड़कीली हो जाती है जिसमें नर का रंग मादा से सुन्दर और चटकीला रहता है।

कुछ छिपकलियाँ अपनी दुम गिरा देती हैं, यह तो सब जानते हैं, लेकिन यह थोड़े ही लोग जानते होंगे कि पहली बार टूटने के बाद जब दुम निकलती है तब वह दूसरी ही तरह की होती है। छिपकलियों की दुम बीच से न टूटकर जड़ से टूटती है जहाँ वह एक प्रकार की कोमल अस्थि से जुड़ी रहती है। दुश्मन के हमला करने पर छिपकलियों की दुम इसी जगह से टूट जाती है और उसके हाथ सिवा इस दुम के और कुछ नहीं लगता। पहली दुम के भीतर तो गुरियाँ-सी पड़ी रहती हैं, लेकिन पहली बार टूट जाने पर दूसरी बार निकली हुई दुम की बनावट पतले छड़-सी रहती है।

छिपकलियों ने अपने खाने के विषय में कोई एक नियम नहीं बना रखा है। इनमें कुछ तो ऐसी हैं जिन्हें शाकाहारी कहा जा सकता है। ये शाकपात और फल के अलावा नरम कोंपलें और सड़ी पत्तियाँ भी खा लेती हैं। लेकिन ज्यादा तादाद उन्हीं की है

गोह वैसे तो बहुत सीधे-सादे जानवर हैं, लेकिन दबाव में पडने पर ये अपनी दुम से बडे जोर से वार कर देते हैं। दुम के अलावा गुस्सा होने पर ये अपने नोकीले दाँतो का भी प्रयोग करते है और पजे भी चलाते हैं।

गोह मासाहारी जीव हैं जिनका मुख्य भोजन छोटे-मोटे जानवर, मेढक, साँप, चिडियाँ और अण्डे हैं।

छिपकलियो में कुछ तो पेडो पर रहती हैं और कुछ अपना समय पानी में व्यतीत करती हैं, लेकिन ज्यादा सख्या उन्ही की है जिन्होने सूखे पर रहनेकी आदत डाल ली है। इन तीनो प्रकार के प्राणियो के शरीर की बनावट पर भी इसका बहुत असर पडता है और हम जहाँ पर यह देखते है कि जमीन पर रहनेवालो का शरीर ऊपर से चपटा रहता है वही पेड पर रहनेवालो का दोनो ओर से दबा हुआ शरीर हमसे नही छिपता। पानी में अपना ज्यादा समय बितानेवालो का शरीर गोलाई लिये रहता है और चिकनी दीवार पर दौडनेवाली छिपकलिया ने अपनी उँगलियो का ऐसा विकास कर लिया है कि उन्हें छत पर उलटी अवस्था मे दौडने में भी कोई दिक्कत नही होती। छिपकलियो की खाल की बनावट साप-जैसी लेहरनुमा होती है जो साँप के केंचुल की तरह समय आने पर शरीर से उतर जाती है। लेकिन ऐसी छिपकलियाँ कम हैं। ज्यादा तादाद उन्ही की है, जिनकी खाल टुकडे टुकडे होकर निकलती है।

छिपकलियाँ जहरीली नही होती। विदेश में एक प्रकार की छिपकली जरूर होती है जिसे जहरीली कहा जा सकता है। लेकिन हमारे यहाँ की किसी छिपकली मे जहर नही होता। कुछ लोग गोह के बच्चो को, जिनकी पीठ पर काली धारियाँ पडी रहती हैं, बिसखोपडी कहकर पुकारते हैं। वे इस पर विश्वास करते है कि बिसखोपडी के काटने से आदमी फौरन मर जाता है, लेकिन यह एकदम कपोल-कल्पित बात है। बिसखोपडी जहरीली नही होती।

बिसखोपडी के बारे में यह ख्याल, जान पडता है, इनकी साँप-जैसी दुफकी जबान के कारण पडा है। गोह की जबान लबी और साँप की तरह फटी-फटी-सी रहती है, लेकिन और छिपकलियो की जबान भिन्न-भिन्न तरह की होती है। विद्वानो ने इनको इनकी भिन्न भिन्न किस्म की जबानो के अनुसार अलग-अलग परिवारो मे विभक्त कर रखा है।

छिपकलियो के दाँत दो तरह के होते हैं। एक तो वे जो इनके जबडे की हड्डी के भीतर की ओर रहते हैं और दूसरे वे जो जबडे के अगले हिस्से पर रहते हैं। कुछ

छिपकलियों की जवान के ऊपर कड़े छिलके-से पड़े रहते हैं और कुछ की ऊपरी तह मुलायम रहती है, लेकिन करीव-करीव सव छिपकलियों के पानी पीने का तरीका एक ही जैसा होता है। ये सव पानी पीने के समय कुत्तों की तरह अपनी जवान पानी में जल्दी-जल्दी भीतर-वाहर करके पानी पीती हैं। एक काम इनकी जवान को प्रकृति ने और सौंपा है। वह यह कि इनकी जवान में स्पर्श-ज्ञान इतना होता है कि ये विना देखे अपनी जवान से छूकर अपने अण्डे को पहचान लेती हैं।

इनकी आँखों की वनावट जरूर वहुत सादी होती है और उनके ऊपर एक पारदर्शी ढक्कन-सा रहता है जिसके भीतर इनकी पुतलियाँ हरकत करती रहती हैं।

छिपकलियों में थोड़ी ही ऐसी हैं जो वच्चे जनती हैं, ज्यादा संख्या उन्हीं की है जो अण्डे देती हैं। शुरू-शुरू में वच्चों के थूथन पर एक तेज दाँत होता है जो डिम्वदन्त कहलाता है। इसी के सहारे वच्चा अण्डे को तोड़कर वाहर निकलता है। अण्डे के वाहर निकलने के कुछ ही दिनों वाद डिम्वदन्त गिर जाता है। कुछ विद्वानों का यह भी मत है कि वच्चे अपने डिम्वदन्त की सहायता से नहीं वल्कि अपने पंजों की सहायता से वाहर निकलते हैं।

प्राय: सभी छिपकलियों के वच्चों का रंग चटक रहता है जो वड़े होने तक धूमिल और गंदा हो जाता है। जोड़ा वाँधने के समय जरूर नर-मादा की पोशाक कुछ भड़कीली हो जाती है जिसमें नर का रंग मादा से सुन्दर और चटकीला रहता है।

कुछ छिपकलियाँ अपनी दुम गिरा देती हैं, यह तो सव जानते हैं, लेकिन यह थोड़े ही लोग जानते होंगे कि पहली वार टूटने के वाद जव दुम निकलती है तव वह दूसरी ही तरह की होती है। छिपकलियों की दुम वीच से न टूटकर जड़ से टूटती है जहाँ वह एक प्रकार की कोमल अस्थि से जुड़ी रहती है। दुश्मन के हमला करने पर छिपकलियों की दुम इसी जगह से टूट जाती है और उसके हाथ सिवा इस दुम के और कुछ नहीं लगता। पहली दुम के भीतर तो गुरियाँ-सी पड़ी रहती हैं, लेकिन पहली वार टूट जाने पर दूसरी वार निकली हुई दुम की वनावट पतले छड़-सी रहती है।

छिपकलियों ने अपने खाने के विषय में कोई एक नियम नहीं वना रखा है। इनमें कुछ तो ऐसी हैं जिन्हें शाकाहारी कहा जा सकता है। ये शाकपात और फल के अलावा नरम कोंपलें और सड़ी पत्तियाँ भी खा लेती हैं। लेकिन ज्यादा तादाद उन्हीं की है

जो मासाहारी हैं । इनके मास के आहार में मास-मछली, कीड़े-मकोड़े और मेढकों के अलावा हर तरह के अण्डे भी शामिल हैं।

छिपकलियाँ हमारे लिए बहुत उपयोगी हैं। एक ओर जहाँ वे कीड़े मकोड़े खाकर हमको हर प्रकार से फायदा पहुँचाती हैं, वहीं दूसरी ओर इनके शरीर के चमड़े से तरह तरह की चीजें बनाकर मनुष्य काफी कमा लेते हैं। छोटे-छोटे बेग, जूते और बहुत किस्म की दूसरी वस्तुएँ बनाने के लिए छिपकलियों का चमडा काफी मात्रा में विदेश भेजा जाता है। इनका चमडा मजबूत तो होता ही है, साथ-ही-साथ इसमें खाने से बटे रहते हैं, जो कम सुन्दर नही लगते।

छिपकली की खाल की तिजारत करनेवालो से इतना लाभ तो अवश्य हुआ है कि हमको बहुत-सी छिपकलियो का पता चल गया है, लेकिन इस बात का खतरा भी इन्ही लोगो के कारण से बढता जा रहा है कि कही हमारे यहाँ से कुछ छिपकलियाँ सदा के लिए लुप्त न हो जायें। खाल की तिजारत करनेवाला से अन्य छिपकलियो की अपेक्षा ज्यादा खतरा गोह के बारे में है क्योकि बडा होने के कारण सबसे ज्यादा इसी की खाल की माँग है। हमारे देश से सन् १९३३ ई० में सरीसृपों की करीब तीस लाख खाल बाहर गयी जिसमें गोह की खाल ही सबसे ज्यादा थी।

छिपकलियो को छ मुख्य परिवारो में इस प्रकार बाँटा जा सकता है —

१ छिपकली परिवार—Family Geckonidae

२ कोतरी परिवार—Family Scincidae

३ बम्हनी परिवार—Family Lacertidae

४ गोह परिवार—Family Varanidae

५ गिरगिट परिवार—Family Agamidae

६ बहुरूपी परिवार—Family Chamaeliontidae

छिपकली परिवार

(FAMILY GECKONIDAE)

इस परिवार में सब तरह की छिपकलियाँ रखी गयी हैं जिनसे हम सब भली भाँति परिचित हैं। ये ससार के सभी गर्म देशो में पायी जाती हैं और केवल हमारे देश में

इनकी ७० जातियों का पता चला है। इनका कद छोटा और खाल मुलायम रहती है और इनकी आँखों पर एक पारदर्शी झिल्ली-सी चढ़ी रहती है।

इनके पंजों के नीचे की बनावट नरम गद्दे-जैसी रहती है जिनको दबाकर चलने मे उनके नीचे की हवा निकल जाती है और वे सतह पर चिपक जाते हैं । अपने इन्हीं अद्भुत पंजों के सहारे ये छत पर उलटी चल-फिरकर भी नहीं गिरतीं।

छिपकलियों की दुम बहुत कमजोर होती है जो जरा-सा धक्का लगने पर टूटकर अलग हो जाती है और उसके स्थान पर फिर दूसरी दुम निकल आती है।

छिपकलियाँ बहुत कम बोलती हैं। इनमें से कुछ तो एकदम गूंगी होती हैं और कुछ कभी-कभी एक प्रकार की महीन आवाज करती हैं। ये सब अण्डज जीव हैं जिनकी मादाएँ एक बार में प्रायः दो अण्डे देती हैं।

ये वैसे तो बड़ी घिनौनी होती हैं, लेकिन हमारे घर के कीड़े-मकोड़ों को साफ करने में इनकी बहुत उपयोगिता है।

इनकी बहुत-सी जातियाँ है, लेकिन यहाँ केवल अपनी प्रसिद्ध छिपकली का वर्णन दिया जा रहा है जिसे हम रोज ही अपने घरों में देखते हैं।

छिपकली

(HOUSE LIZARD)

छिपकलियाँ हमारे यहाँ के सरीसृपों में सबसे अधिक परिचित हैं । इनको बिस्तुइया भी कहा जाता है। ये वैसे तो रात में निकलनेवाले प्राणियों की श्रेणी में आती हैं लेकिन इन्हें हम अपने घरों में दिन में भी आसानी से देख सकते हैं।

हमारे यहाँ करीब ७० जाति की बिस्तुइयाँ पायी जाती हैं। इनमें से कुछ काली और भूरी होती हैं, लेकिन इन सबकी आदतें एक-जैसी ही होती हैं।

बिस्तुइया हमारे देश में हर जगह फैली हुई है। यह हमारे यहाँ की सबसे छोटी जाति की छिपकली है। इसकी लंबाई थूथन से दुम के सिरे तक पाँच इंच से ज्यादा नहीं होती जिसमें इसकी दो इंच की दुम ही रहती है। इसका सिर गोलाई लिये हुए, थूथन लम्बा , माथा दबा हुआ और शरीर की बनावट सुडौल होती है। इसकी

उँगलियाँ जुटी न रहने पर भी थोडी उभरी रहती है। इसकी दुम की बनावट गोलाई लिये रहती है जो जड के पास चपटी और सिरे के पास पतली हो जाती है। इसके नर की जाँघ पर कुछ बारीक बारीक छिद्र और कुछ दाने रहते हैं। इसके कान का छेद कुछ तिरछा रहता है।

छिपकली
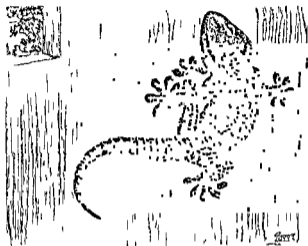
इसकी पीठ का रग हलका भूरा रहता है, जिस पर गाढे रग की चित्तियाँ रहती हैं। इसके दोनो ओर आँख से बगल तक एक गाढी पट्टी चली जाती है और पेट या नीचे का हिस्सा गदा सफेदी-मायल रहता है। ये गोल और सफेद अण्डे देती हैं जिनका छिलका कडा होता है।

कोतरी परिवार

(FAMILY SCINCIDAE)

कोतरी परिवार के वैसे तो ७० जीव हमारे देश मे पाये जाते हैं लेकिन यहाँ केवल एक का ही वर्णन दिया जा रहा है। इसमें के कुछ प्राणियो के पैर बहुत छोटे होते हैं और कुछ ऐसे भी हैं जिनके पैर ही नही होते। इन साँप की शक्ल के जीवो के पैर न होकर भी पैर के स्थान पर कुछ निशान तो रहते ही हैं जिनसे यह जाना जा सकता है कि उनके किसी समय पैर अवश्य रहे होगे।

इनकी पीठ का ऊपरी हिस्सा एक तरह के बडे प्लेटो से ढका रहता है जो इनके शल्को के नीचे रहते हैं।

कोतरियों में ज्यादा ऐसी हैं जो जमीन या पेड़ों पर रहती हैं, लेकिन ऐसी कोई भी नहीं है जिसे पानी में रहना भाता हो।

इनकी दुम निकली तथा कोमल होती है और आँख की पुतलियाँ गोल और जबान बम्हनी की जबान की तरह चपटी और फटी हुई रहती है।

इनका मुख्य भोजन छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़े हैं। इनमें से दो-एक को छोड़कर बाकी सब अण्डे देती हैं लेकिन हमारे यहाँ की प्रसिद्ध कोतरी बच्चे जनती है।

कोतरी

(SKINK)

कोतरी यद्यपि बम्हनी से भिन्न हैं, लेकिन शकल-सूरत में एक-जैसी होने के कारण प्रायः लोग इन्हें भी बम्हनी ही समझते हैं। ये हमारे यहाँ सारे देश में फैली हुई हैं और हमारे यहाँ के परिचित जीवों में से हैं।
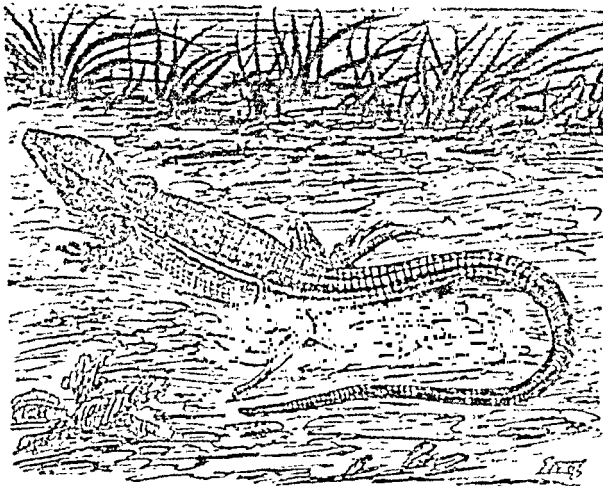
कोतरी

कोतरी की लंबाई १२ इंच रहती है, जिसमें इसकी ७ इंच की दुम भी शामिल है। इसके बदन की बनावट मोटी होती है लेकिन इसके पैर सुडौल रहते हैं। इसकी उँगलियों का निचला हिस्सा चपटा और ऊपर का गोल रहता है।

कोनरी के बदन का ऊपरी रंग भूरा या जैतूनीपन लिये भूरा रहता है जिन पर मिलमिले से काली चित्तियाँ या काली मड़ी धारियाँ पड़ी रहती हैं। बगल का हिस्सा गहरे रंग का होता है जिस पर कभी-कभी कुछ हल्के धब्बे भी रहते हैं। इसकी और गोल होती है जिनके पास से दोनों बगल एक हल्के रंग की धारी दुम तक चली आती है। जोड़ा बाँधने समय नर के दोनों बगली हिस्सों पर कंधे से पिछली टाँग तक एक लाल पट्टी-सी दिखलाई पड़ने लगती है। इसके नीचे का हिस्सा पिलछौंह रहता है।

कोनरी अण्डे देने के मामले में अन्य छिपकलियों से भिन्न है क्योंकि यह औरों की तरह अण्डे नहीं देती बल्कि इसके अण्डे मादा के पेट में ही रहकर फूटते हैं और मादा बच्चे जनती है। कोनरी मांसाहारी होती है जो वैसे तो जमीन पर रहती है लेकिन जरूरत पड़ने पर पेड़ पर भी आसानी से चढ़ जाती है।

बम्हनी परिवार

(FAMILY LACERTIDAE)

बम्हनी परिवार में सब तरह की बम्हनियाँ हैं जो अपनी चिकनी पीठ तथा छोटे पैरों के कारण छिपकलियों से भिन्न रहती हैं। इनका सिर, धड़ और दुम एक ही में ऐसे मिले रहते हैं कि जान पड़ता है एक ही में ढाल दिये गये हों। इनके अंग सुन्दर और सुदृढ़ होते हैं और दुम छिपकलियों की तरह कोमल रहती है।

इनके सिर के ऊपर तरतीबवार सेहरे से बने रहते हैं जो पीठ तक फैल जाते हैं। इनकी पीठ चिकनी तो होती ही है, साथ ही रंगीन भी रहती है।

ये सब बहुत सीधे और निरीह जानवर हैं जो अपनी चपटी और फटी जबान के कारण जहरीले समझे जाते हैं, लेकिन इनमें से किसी के भी जहर नहीं होता। इनकी वैसे तो २०-२५ जातियाँ हमारे देश में पायी जाती हैं लेकिन यहाँ उनमें से केवल एक का वर्णन दिया जा रहा है क्योंकि सब की आदत एक-जैसी नहीं होती।

बम्हनी

(SNAKE-EYED LIZARD)

बम्हनी को कहीं-कहीं बम्हनबिछिया भी कहा जाता है। उसका यह नाम किस कारण पड़ा, यह तो ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता लेकिन इस नाम से उसे इतना लाभ अवश्य हुआ है कि हिन्दू लोग उसे इसी कारण बहुत कम मारते हैं।

बम्हनी यहाँ की बहुत ही परिचित छिपकलियों में से एक है जो अक्सर पुराने मकानों में सीलन की जगह या मिट्टी खोदने पर दिखाई पड़ती है। हमारे देश में इसका निवास पूर्वी पंजाब, उत्तरप्रदेश और मध्यभारत है, पर यह मध्यप्रदेश और मद्रास में भी कहीं-कहीं मिल जाती है।

बम्हनी

बम्हनी का कद छिपकलियों के बराबर होता है लेकिन सिर उनसे ज्यादा चपटा रहता है। इसकी नीचे और ऊपर की पलकें जुटी हुई होती हैं जिनपर एक पारदर्शी परदा चढ़ा रहता है। इसकी पीठ पर के सेहरे एक दूसरे पर तह से जमे रहते हैं और इसकी दुम सिर और शरीर से ड्योढ़ी या दूनी रहती है।
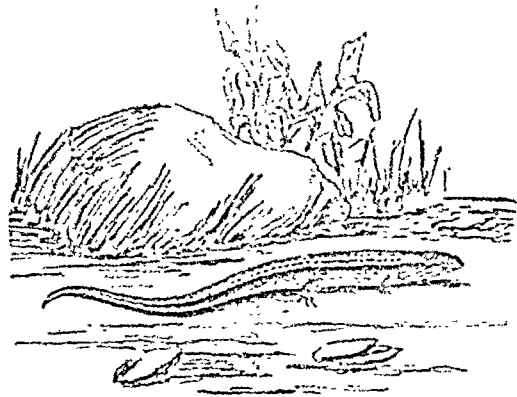
बम्हनी का रंग बहुत ही सुन्दर और भड़कीला होता है। इसके चपटे शरीर का ऊपरी हिस्सा भूरा होता है जिसमें तांबे की-सी झलक रहती है। पीठ के दोनों बगल दो-दो सुनहली खड़ी लकीरें रहती हैं जिनका हाशिया काले रंग का होता है। इनमें से भीतरवाली लकीरें इसकी भौंह के ऊपर से दुम तक चली आती हैं और बाहरवाली ओठ के पास से चलकर पिछली टाँगों की जड़ तक रह जाती हैं। इन लकीरों के बीच में अक्सर काली चित्तियाँ भी रहती हैं। इसके नीचे का हिस्सा सफेद रहता है, जिसमें कुछ पीलापन मिला रहता है।

गोह परिवार

(FAMILY VARANIDAE)

इस परिवार में लंबे कदवाले गोह रखे गये हैं जो छिपकलियों में सबसे अधिक लंबे होते हैं। इनमें से कुछ की लंबाई तो दस फुट तक पहुँच जाती है।

गोहो में कुछ तो सुखी पर रहते हैं और कुछ ऐसे भी हैं जो अपना अधिक समय पानी में बिताते हैं। गोह की दुम काफी लबी और बहुत मजबूत होती है, इसी के लिए यह प्रसिद्ध है कि इसकी कमर में रस्सी बाँधकर लोग इसे मकानो पर चढा देते हैं जहाँ जाकर यह इतनी मजबूती से जमीन को पकड़ लेता है कि लोग उसे पकड़कर ऊपर चढ़ जाते हैं।

गोहो की जबान बहुत लबी और साँप की तरह फटी रहती है। इससे कुछ लोग इन्हें विषैला समझते हैं, लेकिन वास्तव में ऐसी बात नही है। इनमे जहर नही होता लेकिन दबाव में पडने पर ये अपनी दुम से बहुत जोर का वार करते हैं। ये सब अण्डज जीव हैं।

गोह मासभक्षी जीव है जिसके बदन का रंग भूरा मटमैला या चित्तीदार होता है। चित्तीदार गोहो के बच्चो को लोग बिसखोपडी कहते हैं और उन्हें बहुत जहरीला मानते हैं, लेकिन इसमें कुछ भी तथ्य नहीं है और वे सब एकदम निरीह जीव हैं। इनकी यहाँ छ जातियाँ पायी जाती हैं लेकिन यहाँ केवल तीन प्रसिद्ध गोहो का ही वर्णन किया जा रहा है।

गोह

(LARGE LAND MONITOR)

गोह का दूसरा नाम गोहटा भी है और कही कही इनकी साँप की-सी फटी हुई जबान के कारण इनको गोहसाँप भी कहा जाता है।

गोह सारे भारत का निवासी है जो किसी सूखे स्थान पर या सूराखो आदि में रहता है। इसके दाँत नोकीले, चपटे और जड के पास कुछ सूजे से रहते हैं। इसका थूथन ऊपर की ओर उठा हुआ रहता है और नथुने और कान के छेद तिरछे होते हैं। इसके पैरो की उँगलियाँ मजबूत और लबी होती हैं और दुम चपटी होती है जिसका ऊपरी हिस्सा कगूरित रहता है। गोह की पीठ की जमीन का रग पिलछौंह भूरा रहता है जिस पर काली चित्तियाँ रहती हैं। इसके गाल पार एक काली धारी-सी रहती है और नीचे का सारा हिस्सा पिलछौंह रहता है। किसी-किसी के गले पर की काली चित्तियाँ बहुत घनी हो जाती हैं। गोह ५-६ फुट लबे होते हैं।

गोहों की गर्दन लंबी और आगे की ओर कुछ चढ़ी हुई रहती है। इनकी दुम लंबी होती है जो छिपकली की तरह नाजुक नहीं रहती। ये जहरीले तो नहीं होते, लेकिन गुस्सा होने पर बहुत जोर से काट लेते हैं। ये अपनी दुम से बहुत जोर से मारते हैं और कभी-कभी अपने मजबूत पंजों से खरोंच भी लेते हैं। अपने पंजों की मजबूती के लिए तो ये मशहूर ही हैं और इनके लिए यह प्रसिद्ध है कि ये ऊँची छतों पर जाकर अपने पंजों से दीवार को इतनी मजबूती से पकड़ लेते हैं कि इनकी कमर में रस्सी बाँधकर आदमी ऊपर चढ़ सकता है।

गोह

गोह मांसभक्षी जीव हैं जिनका मुख्य भोजन कीड़े-मकोड़े, छोटे-छोटे जीव-जन्तु और अण्डे हैं। हमारे देश में कुछ लोग इनके मांस और अण्डों को बड़े स्वाद से खाते हैं। मादा सितम्बर में २५-३० तक अण्डे देती है।

कबरा गोह

(WATER MONITOR)

कबरा गोह को पानी का गोह भी कहा जाता है क्योंकि इसे पानी का पड़ोस और दलदल बहुत पसंद है। ये हमारे देश के उत्तरी भाग में और खासकर बंगाल की ओर ज्यादा पाये जाते हैं। ये अपना अधिक समय पानी के किनारे पर के पेड़ों पर बिताते हैं और जरूरत पड़ने पर पानी के भीतर भी चले जाते हैं, जहाँ ये काफी समय तक रह लेते हैं।

गोहों में कुछ तो खुश्की पर रहते हैं और कुछ ऐसे भी हैं जो अपना अधिक समय पानी में बिताते हैं। गोह की दुम काफी लंबी और बहुत मजबूत होती है, इसी के लिए यह प्रसिद्ध है कि इसकी कमर में रस्सी बाँधकर लोग इसे मकानों पर चढ़ा देते हैं जहाँ जाकर यह इतनी मजबूती से जमीन को पकड़ लेता है कि लोग उसे पकड़कर ऊपर चढ़ जाते हैं।

गोहों की जबान बहुत लंबी और साँप की तरह फटी रहती है। इससे कुछ लोग इन्हें विषैला समझते हैं, लेकिन वास्तव में ऐसी बात नहीं है। इनमें जहर नहीं होता लेकिन दबाव में पड़ने पर ये अपनी दुम से बहुत जोर का वार करते हैं। ये सब अण्डज जीव हैं।

गोह मांसभक्षी जीव है जिसके बदन का रंग भूरा मटमैला या चित्तीदार होता है। चित्तीदार गोहों के बच्चों को लोग बिसखोपड़ी कहते हैं और उन्हें बहुत जहरीला मानते हैं, लेकिन इसमें कुछ भी तथ्य नहीं है और वे सब एकदम निरीह जीव हैं। इनकी यहाँ छ जातियाँ पायी जाती हैं लेकिन यहाँ केवल तीन प्रसिद्ध गोहों का ही वर्णन दिया जा रहा है।

गोह

(LARGE LAND MONITOR)

गोह का दूसरा नाम गोहटा भी है और कहीं-कहीं इसकी साँप की-सी फटी हुई जबान के कारण इसको गोहसाँप भी कहा जाता है।

गोह सारे भारत का निवासी है जो किसी सूखे स्थान पर या सूराखों आदि में रहता है। इसके दाँत नोकीले, चपटे और जड़ के पास कुछ सूजे से रहते हैं। इसका थूथन ऊपर की ओर उठा हुआ रहता है और नथुने और कान के छेद तिरछे होते हैं। इसके पैरों की उँगलियाँ मजबूत और लंबी होती हैं और दुम चपटी होती है जिसका ऊपरी हिस्सा कगूरित रहता है। गोह की पीठ की जमीन का रंग पिल्छौंह भूरा रहता है जिस पर काली चित्तियाँ रहती हैं। इसके गाल पार एक कालीधारी-सी रहती है और नीचे का सारा हिस्सा पिलछौंह रहता है। किसी-किसी के गले पर की काली चित्तियाँ बहुत घनी हो जाती हैं। गोह ५-६ फुट लंबे होते हैं।

गोहों की गर्दन लंबी और आगे की ओर कुछ बढ़ी हुई रहती है। इनकी दुम लंबी होती है जो छिपकली की तरह नाजुक नहीं रहती। ये जहरीले तो नहीं होते, लेकिन गुस्सा होने पर बहुत जोर से काट लेते हैं। ये अपनी दुम से बहुत जोर से मारते हैं और कभी-कभी अपने मजबूत पंजों से खरोंच भी लेते हैं। अपने पंजों की मजबूती के लिए तो ये मशहूर ही हैं और इनके लिए यह प्रसिद्ध है कि ये ऊँची छतों पर जाकर अपने पंजों से दीवार को इतनी मजबूती से पकड़ लेते हैं कि इनकी कमर में रस्सी बाँधकर आदमी ऊपर चढ़ सकता है।

गोह

गोह मांसभक्षी जीव हैं जिनका मुख्य भोजन कीड़े-मकोड़े, छोटे-छोटे जीव-जन्तु और अण्डे हैं। हमारे देश में कुछ लोग इनके मांस और अण्डों को बड़े स्वाद से खाते हैं। मादा सितम्बर में २५-३० तक अण्डे देती है।

कवरा गोह

(WATER MONITOR)

कवरा गोह को पानी का गोह भी कहा जाता है क्योंकि इसे पानी का पड़ोस और दलदल बहुत पसंद है। ये हमारे देश के उत्तरी भाग में और खासकर बंगाल की ओर ज्यादा पाये जाते हैं। ये अपना अधिक समय पानी के किनारे पर के पेड़ों पर बिताते हैं और जरूरत पड़ने पर पानी के भीतर भी चले जाते हैं, जहाँ ये काफी समय तक रह लेते हैं।

इनकी शक्ल-सूरत और आदतें अन्य गोहों की तरह होती है, लेकिन रग और नाप में जरूर फर्क रहता है। ये हमारे यहाँ के सबसे बड़े गोह हैं जो प्राय सात फुट या उससे भी ज्यादा लबे होते हैं।

इन गोहों के दाँत नोकीले और थूथन का सिरा दबा-दबा-सा रहता है। इनकी उँगलियाँ औसत दर्जे की और सुडौल होती हैं और दुम चपटी रहती है।

कबरा गोह

इनका ऊपरी हिस्सा गाढा भूरा या कलछौंह रहता है जिस पर पीले रग की बिंदियाँ या छल्ले रहते हैं। इनकी कनपटी पर एक काली पट्टी रहती है जो आँख से गरदन तक चली जाती है। इस पट्टी में पीला हाशिया भी रहता है और नीचे का हिस्सा भी पीला ही रहता है। इसके बच्चों के बदन पर भी बिंदियाँ, चित्तियाँ या छल्ले बहुत चटक और स्पष्ट रहते हैं।

कबरा गोह भी मांसाहारी होता है, लेकिन पानी के निकट रहने के कारण इसका मुख्य भोजन कीड़े-मकोड़ों और छोटे जीवों के अलावा मेढक, मछली और केकड़े आदि भी हैं। मादा बरसात के शुरू में किसी बिल या सूराख में अण्डे देती है जो सख्या में १५-२० तक होते हैं। इसके अण्डों को तो कुछ लोग खाते हैं, लेकिन इसका मांस हमारे देश में नहीं खाया जाता।

चंदन गोह्

(BARRED MONITOR)

चंदन गोह् उत्तरी भारत का निवासी है जिसे अपने पीले रंग के कारण चंदन गोह् कहा जाता है।

इस गोह् का शरीर चपटा, थूथन छोटा और उभरा हुआ रहता है। इसकी उँगलियाँ छोटी और दुम दोनों ओर से दबी-दबी रहती है।
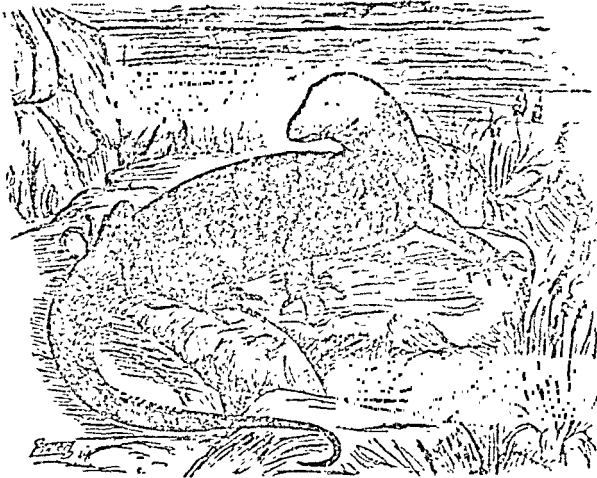
चंदन गोह

चंदन गोह चार-पाँच फुट लंबे होते हैं। इनके शरीर का ऊपरी हिस्सा गाढ़ा भूरा और नीचे का हिस्सा पिलछौंह रहता है। बच्चों के ऊपरी हिस्से पर आड़ी-आड़ी बिंदियों की लकीरें रहती हैं। बड़े होने पर ये लकीरें बहुत कुछ धूमिल हो जाती हैं लेकिन पीठ और दुम पर भूरी और ललछौंह पटरियाँ-सी दीख पड़ती हैं। बरसात में इसका शरीर पीला हो जाता है जिस पर चौड़ी ललछौंह पटरियाँ बहुत साफ दिखाई पड़ती हैं। बरसात खत्म हो जाने पर इनका रंग धूमिल पड़ जाता है। इनकी और सब आदतें अन्य गोहों से मिलती-जुलती रहती हैं।

गिरगिट परिवार

(FAMILY AGAMIDAE)

इस परिवार में भी लगभग ७० प्राणी हैं जो हमारे देश में पाये जाते हैं। इनमें ज्यादा सख्या उन्ही की है जो अपना ज्यादा समय पेड़ो पर बिताते हैं। साँडा आ कुछ प्रसिद्ध जीव हैं जो जमीन पर ही रहते हैं। वृक्षो पर रहनेवालो का शरीर दोनो ओ से दबा हुआ और जमीन पर रहनेवालो का ऊपर से चपटा रहता है। गिरगिट की दुम काफी लबी होती है जो छिपकलियो की तरह टूट नही जाती।

गिरगिटो की काफी बड़ी सख्या ऐसी है जो अपना रग बदलती रहती है। कुछ का गला लाल रहता है जिससे वे रक्तचुसा कहे जाते हैं। जोडा बाँधने के समय नर लाल हो जाता है। इनके सिर और पीठ पर छोटे-छोटे शल्क होते हैं जो एक दूसरे पर चढे रहते हैं। कभी-कभी इनकी पीठ पर काँटे से रहते हैं और अक्सर नरो के सिर पर या तो मुकुट-जैसा उभार रहता है या उनके गले में एक थैली-सी लटकती रहती है।

हमारे यहाँ के गिरगिटो के सिर पर थोड़ा सिर का उभार रहता है जो इनकी गुद्दी तक फैल जाता है। इनकी दुम पर कुछ काँटे-से उभरे रहते हैं और इनके शरीर की खाल खुरखुरी-सी रहती है। ये अपना रग अपने इच्छानुसार बदल लेते हैं और हम अक्सर देखते हैं कि इनका सिर कभी-कभी एकदम लाल हो जाता है। बहुरूपी आदि की तरह इनके शरीर का रग पास पड़ोस की वस्तुओं के अनुरूप होने के लिए नहीं बदला करता बल्कि तेज धूप और गरमी के कारण ही इनके शरीर के रग में परिवर्तन होता रहता है।

गिरगिट अक्सर बाग-बगीचो मे दिखाई पड़ते हैं। इनका शरीर और इनके पैर बहुत मजबूत होते हैं। इनकी मोटी जबान नीचे की ओर काफी दूर तक जुटी रहती है और उसके आगे का हिस्सा कुछ कटा सा रहता है। ये भी अण्डज जीव हैं जिनका मुख्य भोजन कीडे मकोड़े हैं, लेकिन इनमे से कुछ फलाहारी हैं और कुछ ऐसे भी हैं जिन्हें सर्वभक्षी कहा जा सकता है।

यहाँ अपने देश के प्रसिद्ध गिरगिट और साँडा का वर्णन किया जा रहा है।

कबरा गोह (पृ० २७०)

गिरगिट

(GARDEN LIZARD)

गिरगिट को जिसने देखा है उसने उसका रंग वदलना भी जरूर देखा होगा। थोड़ी-थोड़ी देर वाद इसके सीने से ऊपर का हिस्सा एकदम लाल हो उठता है। इसका यह रंग वदलना केवल नर तक ही सीमित रहता है और वह भी जोड़ा वाँधने के समय में, क्योंकि तव इसे मादा को रिझाने में अपनी रंगीन पोशाक वहुत काम देती है।

गिरगिट

गिरगिट को गिद्दा या गिदगिदान भी कहते हैं। यह यहाँ का वहुत ही परिचित जीव है जो ज्यादातर पेड़ों या झाड़ियों में रहता है और हमारे यहाँ सारे देश में फैला हुआ है। इसका सिर वड़ा और ऊपर की ओर उठा रहता है और इसके शरीर की वनावट दवी-दवी-सी रहती है। इसकी पीठ के वीच में काँटे-जैसे उठे रहते हैं, जिनकी संख्या ३५ से ४७ तक रहती है। इसकी दुम गोल और काफी लम्वी होती है जो सिर और धड़ की लम्वाई से दूनी से भी अधिक लम्वी रहती है। इसका थूथन छोटा और नोकीला होता है और इसके कान के छेद खुले हुए रहते हैं।

गिरगिट का रंग हल्का भूरा या पिलछौंह रहता है जिस पर या तो गाढ़ी आड़ी धारियाँ और बिंदियाँ रहती हैं या गाढ़ा जैतूनीपन लिये भूरी चित्तियाँ और पट्टियाँ रहती हैं। ये सब धारियाँ या चित्तियाँ नर में धूमिल रंग की होती हैं पर मादा और बच्चों में ये स्पष्ट रहती हैं।

इसकी लम्बाई वैसे तो थूथन से दुम तक लगभग साढ़े चार इंच ही रहती है। पर अपनी एक फुट लम्बी दुम को लेकर यह १६ से २० इंच तक का हो जाता है। गिरगिट या गिद्दा प्रायः झाड़ियों, पेड़ों या खुले मैदानों में चुपचाप कीड़े-मकोड़ों की ताक में बैठा रहता है जो इसका मुख्य भोजन है। जरूरत पड़ने पर यह पानी में भी अच्छी तरह तैर लेता है।

गिरगिट अण्डज प्राणी है जो अपने सफेद और गोल अण्डों को जमीन में गाड़कर सेने से छुट्टी ले लेता है।

साँडा

(SPINY TAILED LIZARD)

साँडा वैसे तो हमारे देश में पश्चिमोत्तर प्रान्त का निवासी है, पर ऊसरी जमीन ज्यादा पसन्द होने के कारण यह यू० पी० के कुछ हिस्सों में भी मिल जाता है। यह अपने ढंग का अकेला ही जीव है और इस जाति के और जीव हमारे यहाँ नहीं मिलते।

साँडे का सिर कुछ चपटा होता है। इसका थूथन छोटा और नथुने चौड़े रहते हैं। इसके सिर के ऊपर के सेहर या शल्क शरीर के शल्कों से बड़े और चिकने रहते हैं और इसकी गरदन पर कड़ी झुर्रियाँ-सी पड़ी रहती हैं। इसके हाथ-पाँव छोटे और गठे हुए होते हैं और पिछले पैरों पर कुछ छोटे छोटे काँटे से उभरे रहते हैं जो आपस में जुटकर एक या दो दाँत से बन जाते हैं जिनसे इसे किसी चीज के काटने में बड़ी आसानी हो जाती है।

इसका ऊपरी भाग रंग मटमैला या बालू के रंग का रहता है जिस पर अक्सर गहरी चित्तियाँ पड़ी रहती हैं जो घनी होने पर टेढ़ी-मेढ़ी लकीरें जान पड़ती हैं। इसकी जाँघों में एक एक काले चित्ते रहते हैं और नीचे का हिस्सा सफेदी मायल रहता है। इसकी दुम सुडौल और मजबूत होती है जो लम्बाई में शरीर और सिर

से ड्योढ़ी रहती है। दुम पर ऊपर की ओर काँटे से उभरे रहते हैं जो इसकी जड़ से सिरे की ओर धारी से जान पड़ते हैं। इसी कँटीली दुम से यह अपनी रक्षा करता है।
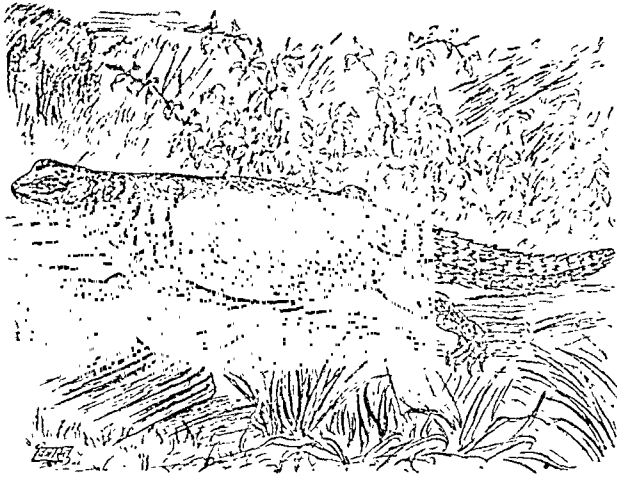
साँडा

साँडा शाकाहारी जीव है जो जमीन में विल खोदकर रहता है। इसकी लम्वाई एक फुट तक होती है जिसमें इसकी लगभग सात, इंच की दुम भी शामिल रहती है।

वहुरूपी परिवार

(FAMILY CHAMAELIONTIDAE)

इस परिवार के जीव वहुत विचित्र होते हैं। इनके पैर की वनावट, इनकी लम्वी दुम, इनके सिर पर का मुकुट, इनकी लम्वी जवान और इनके रंग वदलने का ढंग सव निराला ही है। ये इसी से शायद वहुरूपी कहलाते हैं।

वहुरूपी के शिकार करने का ढंग भी अनोखा है। ये अपनी लम्वी दुम और पैर की उँगलियों से किसी पेड़ की डाल को अच्छी तरह कसकर शिकार की ताक में वैठे रहते हैं और किसी कीड़े-मकोड़े को देखकर अपनी लम्वी जवान को इस

तेजी से बाहर की ओर फेकते हैं कि कीडा उसी में चिपककर इनके पेट में पहुँच जाता है।

बहुरूपी भी गिरगिटों की तरह रग बदलते हैं और इनको इस मामले में गिरगिटो से ज्यादा सहूलियत मिली हुई है। इनके शरीर का रग कुछ तो इनकी इच्छा से और कुछ गरमी और घूप के तापमान से अपने आप ही बदलकर पास पडोस के रग के अनुरूप हो जाया करता है।

यह अपने परिवार का अकेला ही प्राणी है जिसे अपनी अद्भुत आकृति के कारण अन्य सब छिपकलियों से अलग ही रखना पडा है। यहाँ उसी का वर्णन दिया जा रहा है।

बहुरूपी

(CHAMAELION)

बहुरूपी को उसके रग बदलने के कारण यह सुन्दर नाम मिला है। यह हमारे देश में गगा के दक्षिण भाग के जगलो में पाया जाता है।

इसके माथे पर हड्डी की एक कलँगी सी उठी रहती है और दोनो आँखो के बीच का कुछ हिस्सा उभरा उभरा रहता है। इसको आँखो के ऊपर भी कुछ उभार रहता है। इसके शरीर के ऊपर दाने-से होते हैं और पीठ पर एक दाँतेदार धारी रहती है। पैर और गले पर भी उभरे हुए दानो की कतारे रहती हैं। बहुरूपी की दुम सिर और शरीर से लम्बी होती है और गले पर का काँटेदार उभार सफेद रहता है। इसके बदन का इससे अधिक रग बताना सम्भव नही क्योकि यह अपने आसपास की वस्तुओ के अनुरूप ही अपना रग बदलता रहता है।

बहुरूपी जगल का निवासी है जो पेडो पर चढने में उस्ताद होता है।

इसके पैर की उँगलियाँ दो हिस्सो में बँटी रहती हैं जो आपस में खाल से इस तरह जुटी रहती हैं कि केवल नाखून ही जाहिर होते हैं। अगले पैरो में भीतर की ओर तीन और बाहर की ओर दो उँगलियाँ रहती हैं लेकिन पिछले पैरो में इसका उलटा होता है और भीतर की ओर दो ही उँगलियाँ रहती हैं।

इसकी आँखें बडी होती हैं और पलको पर दाने-दाने से रहते हैं। इन मोटी पलको से इसकी आँखें ऐसी ढँकी-सी रहती हैं कि इसकी केवल पुतली भर दिखाई

रहती है। इसकी आँखों से भी ज्यादा अद्भुत वस्तु इसकी जबान ही होती है जो काफी लम्बी, गोल और मुगदर के आकार की रहती है। शिकार पकड़ते समय यह मारे काहिली के अपनी जगह से तो हिलता नहीं, बस अपनी इसी लम्बी जबान को बड़ी तेजी से बाहर निकालता है जिसके सिरे पर के चिपचिपे पदार्थ में कीड़े-मकोड़े चिपक जाते हैं।

बहुरूपी

बहुरूपी को यह सुन्दर नाम उसके रंग बदलने के कारण ही मिला है। यह बहुत जल्दी-जल्दी रंग बदलता है और थोड़ी देर तक इसकी ओर देखने से ऐसा प्रतीत होता है मानों इसके बदन पर रंगों की लहर-सी उठ रही है। इसी से यह कभी पीला, कभी हरा और कभी लाल हो जाता है।

इसके रंग बदलने का रहस्य यह है कि कुछ जलचर, उभयचर और सरीसृपों की त्वचा के कोष में लाल, पीले, काले, सुनहरे और अन्य तरह के अनेक रंगों के कण रहते हैं जो वर्णकोश कहलाते हैं। ये वर्णकोश जब खाल के ऊपर फैल जाते हैं तो खाल का भी वही रंग दिखाई देने लगता है। जब इस प्रकार के कोशवाले प्राणी गुस्सा होते हैं या डरते हैं तो ये वर्णकोश खाल के ऊपर अपना रंग दिखाते

हैं। भय से जैसे हम लोगों का चेहरा सफेद और क्रोध से लाल हो जाता है, उसी प्रकार बहुरूपियों के शरीर का रंग भी बदलता रहता है।

बहुरूपी बहुत ही निरीह और आलसी जीव हैं जिनका अधिक समय वृक्षों पर ही बीतता है। ये लगभग १५ इंच के होते हैं जिसमें उनकी आठ इंच लम्बी दुम भी शामिल है। इसी लम्बी दुम के सहारे ये डालों को पकड़कर ऊपर चढ़ते हैं। ये पेड़ पर थोड़ी दूर खिसकने में ही पूरा दिन लगा देते हैं और इसी सुस्ती के कारण ये शिकार का पीछा करके नहीं बल्कि उसे अपनी लम्बी जबान को तीर की तरह फेंककर पकड़ते हैं।

(४) सर्प वर्ग

(ORDER OPHIDIA)

सर्प-वर्ग सरीसृप श्रेणी का सबसे बड़ा वर्ग है जिसमें संसार भर के सब सर्पों का एकत्र किया गया है। इसमें सब प्रकार के विषधर और बिना विष के सर्प हैं जिनकी शक्ल-सूरत ही नहीं, वरन् रंग-रूप और स्वभाव में भी भिन्नता रहती है।

साँप हमारे देश ही में नहीं, सारे संसार में फैले हुए हैं। अभी तक इनकी लगभग १५ हजार जातियों का पता चल सका है जिनको प्राणि-शास्त्र के विद्वानों ने नव परिवारों में विभक्त किया है। हमारे देश में नवों परिवारों के साँप पाये जाते हैं, लेकिन स्थानाभाव से यहाँ प्रत्येक परिवार का परिचय देना सम्भव नहीं है अतः साँपों के बारे में यहाँ कुछ साधारण बातें दी जा रही हैं जो इन अद्भुत प्राणियों की थोड़ी बहुत जानकारी प्राप्त करने में सहायक हो सकेंगी।

साँप वैसे तो छिपकलियों के भाई-बन्धु ही हैं, लेकिन उनकी शक्ल सूरत में बहुत भेद रहता है। छिपकली परिवार के प्राणी जहाँ चार पैरवाले होते हैं वहाँ साँपों ने अपने पैरों को बेकार समझकर जैसे उनके विकास की ओर ध्यान ही नहीं दिया। इसके परिणामस्वरूप इन प्राणियों के पैर गायब हो गये हैं। ऊपरी तौर से देखने पर इस तरह के कई भेद मिल जायेंगे, लेकिन इनके और छिपकलियों के एक मुख्य भेद के बारे में जानना जरूरी है जिसके बारे में हम आम तौर पर नहीं जान सकते। साँप के जबड़े छिपकलियों के जबड़ों से भिन्न होते हैं। इनके दोनों जबड़े एक दूसरे से घट-बढ़ सकनेवाले अस्थि-बन्धन

से जुड़े रहते हैं जिससे साँप अपने मुख को काफी चौड़ा कर सकता है और बड़े शिकार को आसानी से निगल सकता है। अजगर वगैरह कुछ साँपों के तो ऊपरी जवड़े और तालू की हड्डी भी लचीली होती है जिससे वे दूसरे साँपों की अपेक्षा अधिक मुँह फैला सकते हैं।

साँपों की पलकें नहीं भँज सकतीं क्योंकि उनकी आँखों पर एक पारदर्शी झिल्ली-सी चढ़ी रहती है। जव साँप अपनी केंचुल निकालता है तो उसके साथ ही साथ आँख की झिल्ली का यह ऐनकनुमा हिस्सा भी निकल आता है। साँपों के कान के छिद्र नहीं होते और न ये कान से सुन ही सकते हैं इसीलिए हमारे यहाँ इनको चक्षुश्रवा कहा जाता है, लेकिन ये आँख से सुनते हों ऐसी वात भी नहीं है। इनको प्रकृति ने आहट पहचानने की ऐसी अजीव शक्ति दे रखी है कि उसे देखकर ताज्जुव होता है। इनके सारे शरीर की त्वचा को ही सुनने या आहट का अनुभव करने की इन्द्रिय कह सकते हैं। इसी के सहारे ये दूर चलनेवाले प्राणियों की आहट का अनुभव कर लेते हैं क्योंकि यह आहट या धमक पृथ्वी की सतह के सहारे इनके शरीर तक पहुँच जाती है। वैसे साँप के पास अगर बंदूक भी दाग दी जाय तो उसकी आवाज शायद वह न सुन सके, लेकिन कुछ दूर पर अगर कोई पैर पटके तो उसे तुरन्त इसका पता चल जाता है। यही हाल सँपेरों की वीन का भी है। साँप के वीन के स्वर पर मुग्ध होने की वात में कुछ भी सत्यता नहीं है। वह तो सँपेरे की तूंवी का मधुर स्वर सुन ही नहीं पाता। फिर उस पर मस्त होना कैसा। होता वास्तव में यह है कि जव सँपेरा अपनी वीन वजाता है तो वह साँप के फन के पास अपनी तूंवी को ले जाकर उसे हिलाता रहता है और अक्सर तूंवी से साँप के फन को खोद देता है। अपने वचाव के लिए साँप तूंवी के पास अपना सिर उसके साथ ही साथ हिलाता रहता है और मौका पाते ही सँपेरे पर फन का वार करता है। उस समय जव हम यह सोचते हैं कि साँप वीन के स्वर से मस्त होकर झूम रहा है तो वास्तव में अवस्था यह होती है कि साँप सँपेरे की छेड़छाड़ से वेहद खफा रहता है और उस पर वार करने का मौका तलाशता रहता है।

साँप अपनी फटी हुई जवान के लिए प्रसिद्ध है। इसकी लम्बी और लपलपाती हुई जवान सिरे की ओर कुछ दूर तक फटी रहती है जिसे देखकर डर लगता है।

यह जड के पास एक खोल मे घिरी रहती है जिसके भीतर सॉप अपनी जबान को समेट सकता है। सॉप की दुम विभिन्न नाप की जरूर होती है, लेकिन यह कभी भी सिर और धड से बडी नही होती। कुछ सॉप तो ऐसे हैं जिनकी दुम नोकीली न होकर छोटी और सिरे की ओर मोटी और गोल होती है, जैसे सिरे का कुछ हिस्सा किसी ने काट लिया हो।

सॉप के पैर जरूर नही होते लेकिन पैर न होने पर भी ये सूखे पर इतनी तेजी से भागते हैं कि देखकर आश्चर्य होता है। इनके चलने का तरीका भी बहुत ही अद्भुत है जिसके बारे मे कुछ जान लेना जरूरी है। साप के पेट के नीचे एक पतले और लम्बे मेहरा की कतार-सी रहती है जिसके दोनो सिरे उसकी पसलियों के किनारो से जुडे रहते हैं। जब साप की पसलियाँ हरकत करती हैं तो यह मेहर मुडकर ऊपर की ओर हो जाते हैं और साप को आगे की ओर खिसकने में सहायता मिलती है। इसी प्रकार पसलियो के हरकत करने से नीचे के मेहर सिकुडते और फैलते हैं और सॉप का शरीर जमीन पर रगडता हुआ आगे की ओर बढता है। इसके अलावा सॉप अपने शरीर को इधर उधर चलाकर भी आगे की ओर सर्पाकार बढता है। इसके पानी की सतह पर तैरने का यही तरीका है।

साप का मुख्य भोजन छोटे-छोटे जानवर हैं, लेकिन उनमें भी इसे कुछ खास-खास जीव ही पसन्द हैं। इसके खाने का तरीका भी इतना रोचक है कि उसका सक्षेप मे वर्णन करना असगत न होगा। जैसा पहले बता चुके हैं, सॉप के दोनो जबडे एक प्रकार के अस्थि-बन्धन से जुडे रहते हैं जिसके कारण उसका मुख काफी चौडा फैल सकता है और वह आसानी से बडे शिकार को भी पकडकर निगल सकता है। यह निगलना भी अजीब ढग का होता है क्योकि सॉप के दात भीतर की ओर मुडे रहते हैं और जब वह किसी को निगलने लगता है तो वह उसे इन दाँतो की पक्ति से उसी तरह भीतर की ओर सरकाता है जैसे पैर पर मोजा चढाया जाता है। भीतर की ओर मुडे हुए दाँतो के कारण साप को शिकार के निगलने में आसानी जरूर होती है, लेकिन वह आधे निगले हुए शिकार को अपने मुंह से बाहर नहीं निकाल सकता। सॉप-छछूंदरवाली कहावत में सत्यता इतनी ही है कि सॉप छछूंदर ही क्यो किसी भी शिकार को आधा निगलकर फिर बाहर नही निकाल सकता। सम्भव है, जब यह कहावत बनी हो तो सॉप ने छछूंदर को

ही पकड़ रखा हो। कुछ सांप अपने शिकार को जिन्दा ही निगल जाते हैं और कुछ उसे निगलने से पहले अपनी कुण्डली में कसकर मार डालते हैं। कुछ ऐसे भी हैं जो अपने शिकार को विष द्वारा मारकर तब निगलते हैं, लेकिन यह अन्तिम उपाय वे ही काम में लाते हैं जो विषधर होते हैं और यह तो सभी जानते हैं कि विषैले सांपों की संख्या इनी-गिनी ही होती है।

सांप के भोजन के बारे में कोई खास नियम नहीं है। ये छोटे-बड़े जीवजन्तु कीड़े, मेढक, चिड़ियां, मछलियां और अण्डे तो खाते ही हैं, साथ ही साथ दूसरे सांपों को भी खाने से नहीं चूकते। चिड़ियों के अण्डे-बच्चों का ये काफी नुकसान करते हैं। इनका भोजन बहुत कुछ इनके डील-डौल पर निर्भर करता है। अजगर जहां अपनी गुंजलक में बन्दरों और स्यारों को कसकर उनसे पेट भरते हैं, छोटे सांपों को चूहे और मेढकों पर ही सन्तोष करना पड़ता है। सांप जो कुछ भी खाते हैं वह बहुत जल्द हजम हो जाता है, लेकिन इन सहूलियत के होते हुए भी वे खाते बहुत कम हैं। खाने की इस कमी को, जान पड़ता है, वे पानी या दूध पीकर पूरा करते हैं और यही कारण है कि उन्हें अक्सर ओस चाटने के लिए बाहर चक्कर लगाना पड़ता है। यदि यह दिक्कत उनके साथ न लगी होती तो शायद हम साँपों को इतना अधिक न देख पाते। वे साल में कई बार खाकर ही अपना काम चला लेते हैं, और पानी के साँप तो दो-चार मेढकों पर ही पूरा साल गुजार देते हैं।

साँप अण्डे देनेवाले जीव हैं जो बैजावी अण्डे देते हैं। इन अण्डों का छिलका मुलायम चमड़े-सा होता है और ये कभी-कभी आपस में एक लसलसे पदार्थ से जुड़े रहते हैं। अजगर को छोड़कर कोई भी साँप अपने अण्डों को नहीं सेता। ये जहाँ भी रहते हैं वहाँ की गरमी से अपने आप फूट जाते हैं। पानी में रहनेवाले साँपों को पृथ्वी पर अण्डे देने की सहूलियत प्राप्त नहीं है। अतः वे अपने अण्डों को पेट में ही रखते हैं जहाँ उनके फूटने पर बच्चे बाहर निकलते हैं।

अगर सब साँप विषैले होते या अधिकांश के भी जहर होता तो इनकी मौजूदगी मनुष्यों के लिए जरूर खतरनाक होती लेकिन बात ऐसी है नहीं। इनमें से थोड़े ही ऐसे हैं जिनके विष की ग्रन्थियाँ होती हैं और वे ही हमारे लिए मृत्यु का कारण बन सकते हैं। इनमें ज्यादातर तो ऐसे ही हैं जो हमें कुछ भी नुकसान नहीं पहुँचाते,

यह जड़ के पास एक खोल में घिरी रहती है जिसके भीतर सांप अपनी जबान को समेट सकता है। सांप की दुम विभिन्न नाप की जरूर होती है, लेकिन यह कभी भी सिर और धड़ से बड़ी नहीं होती। कुछ सांप तो ऐसे हैं जिनकी दुम नोकीली न होकर छोटी और सिरे की ओर मोटी और गोल होती है, जैसे सिरे का कुछ हिस्सा किसी ने काट लिया हो।

सांप के पैर जरूर नहीं होते लेकिन पैर न होने पर भी ये सूखे पर इतनी तेजी से भागते हैं कि देखकर आश्चर्य होता है। इनके चलने का तरीका भी बहुत ही अद्भुत है जिसके बारे में कुछ जान लेना जरूरी है। सांप के पेट के नीचे एक पतले और लम्बे सेहरों की कतार-सी रहती है जिसके दोनों सिरे उसकी पसलियों के किनारों से जुड़े रहते हैं। जब सांप की पसलियाँ हरकत करती हैं तो यह सेहर मुड़कर ऊपर की ओर हो जाते हैं और सांप को आगे की ओर खिसकने में सहायता मिलती है। इसी प्रकार पसलियों के हरकत करने से नीचे के सेहर सिकुड़ते और फैलते हैं और सांप का शरीर जमीन पर रगड़ता हुआ आगे की ओर बढ़ता है। इसके अलावा सांप अपने शरीर को इधर-उधर चलाकर भी आगे की ओर सर्पाकार बढ़ता है। इसके पानी की सतह पर तैरने का यही तरीका है।

सांप का मुख्य भोजन छोटे-छोटे जानवर हैं, लेकिन उनमें भी इसे कुछ खास-खास जीव ही पसन्द हैं। इसके खाने का तरीका भी इतना रोचक है कि उसका संक्षेप में वर्णन करना असंगत न होगा। जैसा पहले बता चुके हैं, सांप के दोनों जबड़े एक प्रकार के अस्थि-बन्धन से जुड़े रहते हैं जिसके कारण उसका मुंह काफी चौड़ा फैल सकता है और वह आसानी से बड़े शिकार को भी पकड़कर निगल सकता है। यह निगलना भी अजीब ढंग का होता है क्योंकि सांप के दांत भीतर की ओर मुड़े रहते हैं और जब वह किसी को निगलने लगता है तो वह उसे इन दांतों की पंक्तियाँ उसी तरह भीतर की ओर सरकाता है जैसे पैर पर मोजा चढ़ाया जाता है। भीतर की ओर मुड़े हुए दांतों के कारण सांप को शिकार के निगलने में आसानी जरूर होती है, लेकिन वह आधे निगले हुए शिकार को अपने मुंह से बाहर नहीं निकाल सकता। सांप-छछूंदरवाली कहावत में सत्यता इतनी ही है कि सांप छछूंदर ही क्या, किसी भी शिकार को आधा निगलकर फिर बाहर नहीं निकाल सकता। सम्भव है, जब यह कहावत बनी हो तो सांप ने छछूंदर को

ही पकड़ रखा हो। कुछ साँप अपने शिकार को जिन्दा ही निगल जाते हैं और कुछ उसे निगलने से पहले अपनी कुण्डली में कसकर मार डालते हैं। कुछ ऐसे भी हैं जो अपने शिकार को विष द्वारा मारकर तव निगलते हैं, लेकिन यह अन्तिम उपाय वे ही काम में लाते हैं जो विषधर होते हैं और यह तो सभी जानते हैं कि विषैले साँपों की संख्या इनी-गिनी ही होती है।

साँप के भोजन के वारे में कोई खास नियम नहीं है। ये छोटे-वड़े जीवजन्तु कीड़े, मेढक, चिड़ियाँ, मछलियाँ और अण्डे तो खाते ही हैं, साथ ही साथ दूसरे साँपों को भी खाने से नहीं चूकते। चिड़ियों के अण्डे-वच्चों का ये काफी नुकसान करते हैं। इनका भोजन वहुत कुछ इनके डील-डौल पर निर्भर करता है। अजगर जहाँ अपनी गुंजलक में वन्दरों और स्यारों को कसकर उनसे पेट भरते हैं, छोटे साँपों को चूहे और मेढकों पर ही सन्तोष करना पड़ता है। साँप जो कुछ भी खाते हैं वह वहुत जल्द हजम हो जाता है, लेकिन इस सहूलियत के होते हुए भी वे खाते वहुत कम हैं। खाने की इस कमी को, जान पड़ता है, वे पानी या दूध पीकर पूरा करते हैं और यही कारण है कि उन्हें अक्सर ओस चाटने के लिए वाहर चक्कर लगाना पड़ता है। यदि यह दिक्कत उनके साथ न लगी होती तो शायद हम साँपों को इतना अधिक न देख पाते। वे साल में कई वार खाकर ही अपना काम चला लेते हैं, और पानी के साँप तो दो-चार मेढकों पर ही पूरा साल गुजार देते हैं।

साँप अण्डे देनेवाले जीव है जो वैजावी अण्डे देते हैं। इन अण्डों का छिलका मुलायम चमड़े-सा होता है और ये कभी-कभी आपस में एक लसलसे पदार्थ से जुड़े रहते हैं। अजगर को छोड़कर कोई भी साँप अपने अण्डों को नहीं सेता। ये जहाँ भी रहते हैं वहाँ की गरमी से अपने आप फूट जाते हैं। पानी में रहनेवाले साँपों को पृथ्वी पर अण्डे देने की सहूलियत प्राप्त नहीं है। अतः वे अपने अण्डों को पेट में ही रखते हैं जहाँ उनके फूटने पर वच्चे वाहर निकलते हैं।

अगर सव साँप विषैले होते या अधिकांश के भी जहर होता तो इनकी मौजूदगी मनुष्यों के लिए जरूर खतरनाक होती लेकिन वात ऐसी है नहीं। इनमें से थोड़े ही ऐसे हैं जिनके विष की ग्रन्थियाँ होती हैं और वे ही हमारे लिए मृत्यु का कारण वन सकते हैं। इनमें ज्यादातर तो ऐसे ही हैं जो हमें कुछ भी नुकसान नहीं पहुँचाते,

लेकिन इन थोड़े विषैले सर्पों के कारण आज हम अपनी अनभिज्ञता से सभी साँपों से दुश्मनी मान बैठे हैं। साँप के विष की ग्रन्थियाँ ऊपरी जबड़े के ऊपर और दोनों आँखों के पीछे और नीचे रहती हैं। ये ग्रन्थियाँ जहरीले दाँतों की जड़ तक एक नली से जुड़ी रहती हैं। जहरीले दाँत पोले होते हैं और उनके सिरे या नोक पर बहुत पतला छेद रहता है जिसे भीतर गड़ाकर साँप अपनी विष-ग्रन्थियों से विष भर देता है, जैसे इन्जेक्शन दिया जाता है। इस विष-ग्रन्थियों में विष थोड़ी ही मात्रा में रहता है और एक बार डस लेने या विष निकाल देने पर साँप की विष ग्रन्थियों में थोड़ा या बिलकुल विष नहीं रह जाता। इस प्रकार साँप कुछ देर के लिए विषहीन हो जाता है। कुछ सँपेरे, जो साँप का विष-दन्त नहीं उखाड़ते, अक्सर साँप का तमाशा दिखाते समय हाथ में एक कपड़ा लिये रहते हैं, जिस पर गुस्सा होने पर साँप अपने फन का वार करता है और अपना विष निकाल देता है। कई बार ऐसा कर देने पर साँप कुछ देर के लिए विषहीन हो जाता है और तब सँपेरा बहुत गर्व से उसे पकड़कर दर्शकों के सामने अपनी बहादुरी दिखाता है। साँपों को विषहीन बनाने के लिए एक तरीका यह भी है कि उनके विषदन्त निकाल दिये जायें। लेकिन यह तरीका स्थायी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि अक्सर पुराने दाँत उखड़ जाने पर उनके स्थान पर नये दाँत निकल आते हैं।

विषधर सर्प संख्या में कम भी होते हैं और वे अकारण आक्रमण भी नहीं करते, लेकिन वे साँप जिनमें विष नहीं होता विषैले साँपों से ज्यादा हमला तो करते ही हैं साथ ही साथ वे काटते भी हैं।

साँप गिरगिट आदि की तरह रंग नहीं बदलते और उनकी पुरानी खाल या केंचुल थोड़ी-थोड़ी करके निकलती है। ये समय आने पर अपने शरीर से पूरी केंचुल उतार फेंकते हैं जिसके साथ इनकी आँखों पर चढ़ी हुई झिल्लीनुमा खाल भी निकल जाती है। केंचुल के साथ आँख के ऊपर की इस झिल्ली के निकल जाने से साँप कुछ दिनों तक बहुत कम देख पाते हैं। इनका यह समय बहुत सुस्ती में कटता है और इस समय छेड़े जाने पर ये अक्सर काट भी लेते हैं।

साँपों की ज्यादा किस्में ऐसी हैं जो हमेशा पृथ्वी पर ही रहती हैं और वे न तो पानी में ही जाते हैं और न पेड़ों पर ही चढ़ते हैं। लेकिन कुछ साँप ऐसे हैं जो पानी में

ही रहना पसंद करते हैं और कुछ को पेड़ों पर ही रहना भाता है। जमीन पर रहनेवाले साँपों का शरीर गोलाकार होता है और उनके पेट के नीचे के मेहर चौड़े होते हैं, लेकिन पेड़ों पर चढ़नेवाले साँप बहुधा रंगीन होते हैं। वे पतले होते हैं और उनका शरीर कोमल होता है और उनके पेट पर के मेहरों पर उभार-सा रहता है जिससे उन्हें पेड़ की डाल को मजबूती से पकड़ने में सहायता मिलती है। कुछ पेड़ पर रहनेवाले साँप, जो अपना ज्यादा समय पानी में ही बिताते हैं, तैरने और डुबकी लगाने में बहुत उस्ताद होते हैं। इनके नथुने ऊपर की ओर उठे रहते हैं जिससे इनको पहचानना कठिन नहीं होता। इस प्रकार हम साँपों को देखकर उनके रहने के स्थान का तो पता लगा सकते हैं, लेकिन उनमें से विष वाले और बिना विषवाले साँपों को पहचानना तब तक आसान नहीं होता जब तक हमें उनके बारे में अच्छा ज्ञान न हो जाय।

इस संक्षिप्त वर्णन से आप लोग साँपों के बारे में ज्यादा भले ही न जान सके हों लेकिन इतना तो आपको मालूम ही हो गया होगा कि इनमें बहुत थोड़े ही ऐसे हैं जिनके विष होता है और जो हमारे लिए घातक हैं। ज्यादा संख्या तो उन्हीं की है जो हमारा कुछ भी नुकसान नहीं करते बल्कि वे हमें हानि पहुँचानेवाले कीड़ों-मकोड़ों और जानवरों का नाश करके हमारी भलाई ही करते है।

सर्प वर्ग वैसे तो कई परिवारों में विभक्त हैं, लेकिन यहाँ केवल तीन परिवारों का वर्णन दिया जा रहा है जो इस प्रकार हैं—

१. अजगर परिवार—Family Boidae

२. नाग परिवार—Family Colubridae

३. डुबोइया परिवार—Family Viperidae

इन तीनों परिवारों में प्रायः सभी प्रसिद्ध साँप आ जाते हैं।

अजगर परिवार

(FAMILY BOIDAE)

अजगर परिवार में अजगर तथा उसी जाति के अन्य सर्प रखे गये हैं जो अपने भारी शरीर के लिए प्रसिद्ध हैं। इनमें के कुछ सर्पों की लंबाई २५-३० फुट तक पहुँच जाती है।

ये सब बहुत काहिल, सुस्त और सीधे होते हैं और अकारण ही किसी पर हमला नही करते। इनमें विष भी नही होता, इसलिए ये अपने शिकार को अपनी गुंजलक में कसकर मार डालते हैं और फिर उसे समूचा ही निगल जाते हैं। इनमें कुछ छोटे कद के भी होते हैं लेकिन इन सभी छोटे-बड़े सर्पों का रंग प्राय मटमैला रहता है।

अजगर पेडो पर आसानी से चढ जाते हैं और तैरने मे तो ये उस्ताद होते ही हैं। इन्हे पानी बहुत पसद है और इसीलिए ये दिन दिन भर पानी में पडे रहते हैं।

ये अन्य सर्पों की तरह अपने अण्डो को धूप की गरमी मे फूटने के लिए नही छोड देते बल्कि उन्हें अपनी गुंजलक में रखकर सेते हैं। कुछ ऐसे भी हैं जिनके पेट में ही अण्डे परिपक्व होते हैं और वे बच्चे जनते हैं।

यहाँ अपने यहाँ के प्रसिद्ध अजगर और मटिहा का वर्णन दिया जा रहा है जो इस परिवार के बडे और छोटे साँपो का प्रतिनिधित्व करते हैं।

अजगर

(INDIAN PYTHON)

अजगर हमारे यहाँ का सबसे बडा और प्रसिद्ध साँप है जो इस देश में प्राय सभी जगह पाया जाता है।

इसका कद ८ १० फुट का होता है लेकिन कही-कही ये २० फुट से भी लबे देखे गये हैं। वजन में भी ये ३ मन तक के पाये गये हैं। इनके शरीर की बनावट गोल, सिर चौडा, आँखें औसत कद की और पुतलियाँ आडी होती हैं। इनकी आँखें बिल्ली की आँखो जैसी होती हैं जिससे ये रात में भी देख सकते हैं।

अजगर को पठारा के ढलुए स्थान, पुराने भीटे और पानी के आस पास के जगल बहुत पसद हैं। जगलो मे ये पेड पर भी बडी आसानी से रहते हैं। पेड पर किसी शिकार को पकडते समय ये अपनी दुम से डाल को पकड लेते हैं और अपने शरीर के अगले हिस्से से शिकार को कस लेते हैं। इनका मुख्य भोजन मास है जिसमें चिडियो से लेकर हिरन तक बडे पशु पक्षी आ जाते हैं।

अजगर सूखी जमीन और पेडो के अलावा पानी में भी रह लेते हैं, जहाँ १५-१५ मिनट की डुबकी लगाना इनके लिए कोई बात ही नही है। ये बहुत अच्छी तरह तैरते हैं और काफी ताकतवर होने के कारण पानी की तेज धार को भी चीरते चले जाते हैं। वैसे ये सुस्त और काहिल होते हैं और भोजन के पश्चात तो इनकी काहिली और भी बढ जाती है।

अजगर की पीठ का रंग ललाईपन लिये भूरा या पिलछौंह होता है जिस पर बीच में, सिर से दुम तक, कत्थई चित्तों की खड़ी लकीर-सी रहती है। ये चित्ते चौकोर

अजगर

रहते हैं जिनका हाशिया काला होता है। इन चित्तों के दोनों ओर छोटे चित्तों की खड़ी धारियाँ सी रहती हैं। इनके सिर पर एक भूरी तीर की शक्ल की लकीर रहती है, जो गुद्दी तक चली आती है। दोनों बगल आँखों पर होकर एक एक भूरी पट्टी भी रहती है। आँखों के नीचे भी दोनों ओर एक एक आड़ी भूरी पट्टी रहती है। नीचे का हिस्सा पिलछौंह रहता है जिसके किनारे भूरी चित्तियाँ रहती हैं।

मादा अजगर एक बार में ८ से १०० तक अण्डे देती है जो बत्तख के अण्डों की तरह लेकिन नाप में कुछ छोटे रहते हैं। इनके बच्चे दो फुट या उससे कुछ बड़े होते हैं।

मटिहा साँप

(EARTH SNAKE)

मटिहा साँप, जैसा कि इसके नाम से जाहिर है, मिट्टी में रहनेवाला साँप है। यह अजगर का निकट सम्बन्धी है और कद में उससे बहुत छोटा होने पर भी इसकी बहुत आदतें अजगर से मिलती हैं।

इन सांपों में से कुछ तो जमीन पर रहते हैं, लेकिन कुछ ने पेड़ों पर रहने का अभ्यास कर लिया है। कुछ पानी में ही अपना सारा समय व्यतीत करते हैं तो कुछ ऐसे भी हैं जो जमीन के भीतर बिलों में ही घुसे रहना पसंद करते हैं। इस प्रकार अलग-अलग स्थानों पर रहने के कारण उनके स्वभाव, शरीर-रचना तथा रंगरूप में भी काफी भेद आ गया है, जो उनको देखने से साफ जाहिर होता है।

जमीन के भीतर अधिक समय व्यतीत करनेवाले साँपों का कद छोटा होता है और उनकी दुम और आँखें भी अपेक्षाकृत छोटी होती हैं। रेगिस्तानों में रहनेवाले साँपों की खाल बहुत रूखी होती है और उनका रंग भी हलका रहता है जिससे वे अपने पास-पड़ोस के रंग में आसानी से छिप जाते हैं। लेकिन खुश्की पर रहनेवाले साँपों की दुम लंबी होती है और उनका शरीर भी सुडौल रहता है। उनकी गरदन से उनका सिर अलग जान पड़ता है और उनकी आँखें बड़ी होती हैं। पानी में रहनेवाले साँपों का थूथन कुछ उभरा-उभरा-सा रहता है, और उनके नाक के छिद्र थूथन के सिरे पर रहते हैं। इन छिद्रों को पानी के भीतर जाते समय ये साँप अपने इच्छानुसार बंद कर सकते हैं।

इस बड़े परिवार को सुविधा के लिए तीन मुख्य भागों में इस प्रकार बाँटा गया है—

१. **विषहीन सर्प**—Division Aglypha

जिन सर्पों के विषदन्त नहीं होते।

२. **विषैले सर्प**—Division Opisthoglyphe

जिन सर्पों के विषदन्त ऊपरी जबड़े के पिछले हिस्से में रहते हैं और

३. **विषधर सर्प**—Division Proteroglyphe

जिन सर्पों के विषदन्त मुँह के आगे ही रहते हैं।

पहले भाग में हमारे यहाँ का प्रसिद्ध धामिन साँप आता है जिसका वर्णन आगे दिया गया है।

दूसरे भाग में हमारे यहाँ का पनिहा साँप और यहाँ का प्रसिद्ध उड़नेवाला साँप आता है जिसे प्रायः लोग नागिन कहते हैं। यह अपनी पसलियों को सिकोड़कर ऐसी जोर-जोर से कूदती है कि हवा में कुछ दूर तक तैरती चली जाती है।

तीसरे भाग में हमारे यहाँ के प्रसिद्ध विषधर सर्प रखे गये हैं जो अपने विष के कारण हमारे बहुत परिचित हैं। इन्हीं के साथ समुद्रों में रहनेवाले विषैले सर्प भी हैं जिनका भारी शरीर अजगर से कुछ ही छोटा होता है। ये अपना सारा समय पानी में ही बिताते हैं इसीलिए इनकी दुम नोकीली न होकर चपटी बना दी गयी है जिसे इधर उधर चलाकर ये पानी में आसानी से तैर सकते हैं।

यहाँ इनमें से करायत, गोडकरायत, नाग, नागराज तथा समुद्र में रहनेवाले पीतक का वर्णन दिया जा रहा है।

नाग

(COBRA)

नाग हमारे यहाँ का सबसे प्रसिद्ध और परिचित साँप है जो हमारे देश में प्रायः सभी स्थानों में पाया जाता है। यह अपने फन के कारण और साँपों से अलग रहता है और गुस्सा होने पर जब अपना फन फैलाता है तो इसे पहचानने में कोई दिक्कत रह ही नहीं जाती। यह जहरीला भी बहुत होता है और इसके डसने से काफी आदमी हर साल मरते हैं।

नाग के हमारे यहाँ बहुत से नाम हैं जिनमें करिया या फेटार प्रसिद्ध हैं। ये ४-५ फुट लम्बे होते हैं पर कहीं-कहीं ६ फुट तक के नाग पाये गये हैं। इनके फन पर कई तरह के चिह्न रहते हैं। कुछ के फनों पर ऐनक की तरह गोल चिह्न बने रहते हैं तो कुछ के फन पर सफेद पान का चिह्न रहता है जिसमें का कुछ हिस्सा काला रहता है। और कुछ ऐसे भी हैं जिनके फन पर किसी तरह का चिह्न नहीं रहता।

नाग का ऊपरी हिस्सा रंगीपन लिये गाढ़ा भूरा या काला रहता है। कुछ के शरीर पर हलके रंग की धारियाँ रहती हैं तो कुछ के चारखाने जैसी धारियाँ पड़ी रहती हैं। इनके नीचे का हिस्सा सफेदी मायल भूरा या मटमैला रहता है। किसी और के निचले भाग पर काले चौकोर चिह्न पड़े रहते हैं।

नाग वैसे तो जमीन पर रहनेवाला साँप है पर यह पेड़ पर भी चढ़ जाता है और पानी में भी अच्छी तरह तैर लेता है। इसका मुख्य भोजन छोटे छोटे साँप, चूहे, मेढक और छिपकलियाँ हैं। यह शिकार के लिए रात को बाहर निकलता है और दिन में अक्सर मकान में या उसके आसपास के बिलों और सूराखों में घुसा रहता है। वैसे तो

धामिन तथा नाग (पृ० २८१, २९३)

इनके रहने के स्थान घने जंगल, खुले मैदान, झाड़ियाँ, बाग-बगीचे और खेत हैं लेकिन बस्तियों में भी इनकी काफी बड़ी संख्या रहती है।

नाग

नाग अकारण आक्रमण नहीं करता और छेड़े जाने पर भी भागने की ही कोशिश करता है, लेकिन अगर छेड़नेवाला निकट हुआ और दबाव ज्यादा हुआ तो यह अपना अगला हिस्सा उठाकर और फन फैलाकर डसने को तैयार हो जाता है। उस समय इसकी फुफकार बड़ी डरावनी लगती है। अगर आदमी डर गया और भागने की कोशिश की तो यह आक्रमण करके उसे जरूर डस लेता है। पर यदि मनुष्य चुपचाप वहीं का वहीं रह गया तो यह धीरे-धीरे चला जाता है। पुराने नाग उतने खतरनाक नहीं होते लेकिन बच्चे और पट्ठे बड़े गुस्सैल होते हैं और वे बड़ी जल्दी ही हमला कर बैठते हैं।
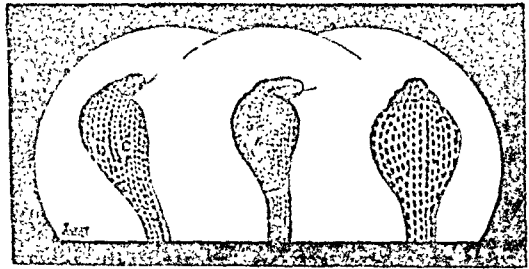
नाग का मुख्य भोजन चूहे और मेढक हैं, पर यह चिड़ियाँ और उनके अण्डे भी बड़े स्वाद से खाता है। इसके अलावा इससे छिपकलियाँ, गिलहरियाँ और दूसरे छोटे साँप भी नहीं बचते।

नाग का जहर बहुत तेज होता है और इसका काटा हुआ मनुष्य दो से छः घंटे के भीतर मर जाता है। वैसे यह जरूरी भी नहीं है कि इसका काटा मर ही जाय क्योंकि एक बार डसने के बाद साँप के जहर की थैली से पर्याप्त विष निकल जाता है और फिर उसमें दुबारा विष भरने में कुछ समय लगता है। यदि नाग किसी को डस चुका है तो बहुत संभव है कि दुबारा डसने पर बहुत ही कम विष चढ़े।

इसकी मादा अण्डे देती है, जो १२ से २२ तक रहते हैं। इनमें से करीब दो महीने पर सँपोले निकलते हैं जो अण्डे से बाहर निकलने पर ८-१० इंच के रहते हैं। कुछ लोगों का ख्याल है कि ये सँपोले नाग से भी अधिक जहरीले होते हैं जो गलत है।

नागराज

(KING COBRA)

नागराज हमारे देश मे केवल दक्षिणी भारत, उड़ीसा, बगाल और मद्रास की ओर पाया जाता है। यह नाग से अधिक जहरीला और खतरनाक होता है, पर खैरियत यही है कि यह अधिक सख्या मे नही पाया जाता।

यह नाग से कद में बड़ा होता है। इसकी लम्बाई औसतन ८ से १२ फुट तक होती है, लेकिन कही-कही यह १५ फुट से भी बड़ा होता है। नाग की तरह इसके भी फन होता है लेकिन इसके फन पर उसकी तरह किसी प्रकार का चिह्न नही बना रहता। इसके शरीर का रग बादामी या जैतूनी होता है जिस पर गहरे रग की पटरियाँ रहती है। इसके बच्चे प्राय काले होते है जिनके शरीर पर पीले छल्ले और सिर के ऊपर चारखानेनुमा पीली पटरियाँ पड़ी रहती है।

नागराज

नागराज ज्यादातर जगलो में रहना पसद करता है। यह नाग से अधिक भयकर होता है और आदमियो को देखकर भागने की जगह उनका पीछा करता है। यह इतना तेज चलता है कि इससे बचकर भागना बहुत कठिन हो जाता है। इसके आक्रमण

से वचने के लिए एक ही तरीका है कि यदि आदमी अपना छाता या कोई कपड़ा भागते समय फेंक दे तो यह उसी में उलझ जाता है।

नागराज का मुख्य भोजन साँप है। यह धामिन वगैरह के अलावा नाग या करायत जैसे जहरीले साँपों को भी खाता है। यह वैसे तो जमीन पर रहनेवाला साँप है, लेकिन यह पेड़ों पर भी वड़ी आसानी से चढ़ जाता है।

नागिन

(INDIAN FLYING SNAKE)

नागिन हमारे यहाँ के जहरीले साँपों में से एक है, लेकिन हमारे यहाँ इसकी इतनी कम संख्या है कि इसे वहुत कम लोगों ने देखा होगा।

यह डेढ़-दो फुट से अधिक लंवी नहीं होती और अपने काले रंग के कारण ही शायद इसे नागिन का नाम मिला है। इसके शरीर के प्रत्येक सेहर पर छोटी-छोटी पीली विंदियाँ पड़ी रहती हैं और पीठ पर पीले रंग के फूलों की एक पट्टी-सी रहती है जिसके वीच का रंग लाल रहता है।

इसे उड़नेवाला साँप भी कहा जाता है क्योंकि यह जमीन से उछलकर हवा में कुछ दूर तक तैरती चली जाती है। यह किसी प्रकार का खतरा निकट आने पर ही हवा में उछलती है और ऊपर उठ जाने पर अपनी पसलियों को वाहर की ओर फैलाकर अपना पेट पिचका लेती है। ऐसा करने से इसके शरीर का निचला हिस्सा खमदार होकर इसे जल्द नीचे नहीं गिरने देता।

करायत

(KARAIT)

करायत हमारे यहाँ का सवसे जहरीला साँप है जिसके डसने से हमारे यहाँ सवसे ज्यादा लोग मरते हैं क्योंकि यह हमारे घरों में अन्य साँपों से अधिक संख्या में रहता है। इसका जहर भी नाग से कम तेज नहीं होता।

करायत सारे भारतवर्ष में पाया जाता है और इसका रंग वहुत कुछ डेढुई से मिलने के कारण अक्सर लोग इसके और उसके पहिचानने में धोखा खा जाते हैं। लेकिन

इसकी पीठ पर की आड़ी सफेद धारियाँ दुम व सिरे से चलकर सिर से कुछ दूर पहले ही खतम हो जाती हैं और डेढ़ुई की पीठ पर ये लकीरें सिर के पास से शुरू होकर निचली पीठ तक जाती हैं।

करायत

करायत के ऊपर का रंग कलछौंह या निलछौंह काला रहता है जिस पर पतली आड़ी सफेद धारियां या घनी चित्तियां रहती हैं। पेट का हिस्सा सफेद रहता है।

करायत लंबाई में २ से ४ फुट तक का होता है। यह रात में निकलनेवाला सांप है जिसका मुख्य भोजन छोटे सांप, चूहे, मेढक, छिपकलियाँ आदि हैं। घोर करायत की तरह अपनी खूराक की तलाश में यह भी पानी में उतरने से नहीं हिचकता। दिन को यह अँधेरी कोठरियों और पुराने सूराखों आदि में छिपा रहता है, पर अँधेरा होते ही इसमें बहुत तेजी आ जाती है और यह इधर उधर घूमने लगता है।

करायत अक्सर जोड़े में रहते हैं और एक के मारे जाने पर दूसरा हमला कर देता है। इससे एक को मारने के बाद उसके जोड़े से सावधान रहने की बहुत जरूरत रहती है। इसके काटने पर चंद घंटों में ही मृत्यु हो जाती है।

करायत की मादा अण्डे देती है जो सफेद रंग के और करीब डेढ़ इंच लम्बे होते हैं।

घोड़ करायत

(BANDED KARAIT)

घोड़ करायत हमारे यहाँ के जहरीले साँपों में से एक है। इसे राज-साँप भी कहते हैं। हमारे देश में यह बंगाल, दक्षिण भारत और उत्तरी भारत में पाया जाता है। लोगों का ऐसा ख्याल है कि यह घोड़े की तरह बोलता है और इसी से इसका नाम घोड़ करायत पड़ा है।

यह ५-६ फुट लंबा साँप है जो कहीं-कहीं सात फुट तक लंबा पाया गया है। यह देखने में बहुत ही सुंदर लगता है। इसका सारा शरीर काली और पीली आड़ी पट्टियों से भरा रहता है। यह देखने में जितना सुंदर होता है उतना ही जहरीला भी होता है। इसका जहर नाग से भी तेज होता है और इसका काटा हुआ मुश्किल से बचता है।
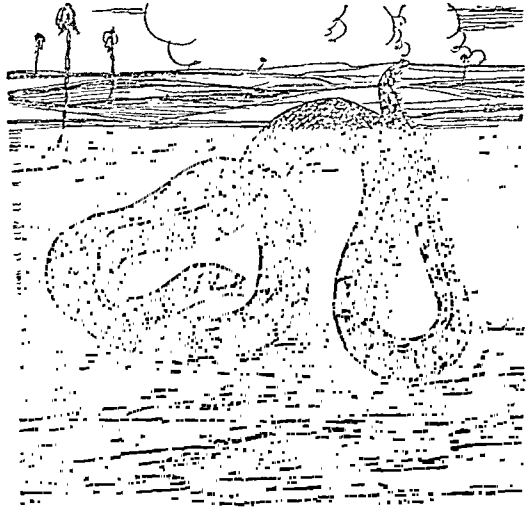
घोड़ करायत

घोड़ करायत वैसे स्वयं बहुत कम आक्रमण करता है, पर दबाव में पड़ जाने पर यह डसने से नहीं चूकता। यह रात में निकलनेवाला साँप है जिसका मुख्य भोजन छोटे साँप, सरीसृप, छिपकली आदि हैं। यह पानी में भी मेढक और मछलियों की तलाश में चला जाता है। इसकी मादा अण्डे देती है और उनको बच्चों के निकलने तक सेती है।

धामिन साँप

(RAT SNAKE)

धामिन हमारा बहुत परिचित साँप है जो अपनी लंबाई के कारण औरों से नहीं छिपता। यह सारे भारतवर्ष में फैला हुआ है। इसका कद औसतन ५-६ फुट का होता

है, लेकिन कहीं कहीं ये १२ फुट तक के भी पाये गये हैं। इस पहाड़ से ज्यादा मैदान पसद है लेकिन पहाड़ पर भी ये ६००० फुट की ऊँचाई तक पाये जाते हैं।

धामिन का शरीर बड़ा मजबूत और सुडौल होता है। इसकी दुम भी लबी और सारे बदन की लबाई की करीब चौथाई होती है। इसके शरीर का रग हरापन लिये भूरे रग का होता है जिस पर पिछली पीठ या दुम पर काले चारखाने के निशान पड़े रहते हैं। पेट का हिस्सा सफेदी मायल या पिलछौंह रहता है। बच्चों की शक्ल-सूरत बड़ों जैसी होने पर भी उनका रग खाकी-सा रहता है और उनकी पीठ पर ये चारखाना का चिह्न और चटक रहता है।

धामिन
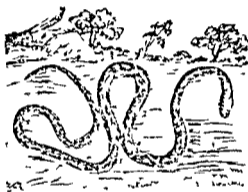
धामिन हमें अक्सर दिखाई पड़ते हैं क्योंकि इन्हें प्राय सभी तरह की जगह रहने के लिए पसद आ जाती है। यह दिन में घूमनेवाला साँप है जो दिन को पेड़ों, झाड़ियों, जगलों और खेतों में बराबर शिकार की तलाश में घूमता रहता है। इसका मुख्य भोजन चूहे, मेढक छिपकली और छोटी चिड़ियाँ हैं।

धामिन जितना तैरने में उस्ताद होता है उतना ही पेडो पर चढने में भी माहिर होता है। तालो के मेढक और पेड पर चिड़ियो के घोसलो पर इसका अक्सर धावा होता रहता है। यह बहुत गुस्सैल साँप है जो वैसे तो आदमियो को देखकर भागने की कोशिश करता है लेकिन दबाव मे पड जाने पर यह बड़े जोर से आक्रमण करता है और अपने लबे कद और मजबूत शरीर के कारण ज्यादातर मुह पर ही चोट करता है।

जहरीला साँप न होते हुए भी इसका तेज हमला और तेज फुफ्कार डर उत्पन्न कर देता है। धामिन की मादा अण्डे देती है।

पनिहा साँप

(WATER SNAKE)

पनिहा पानी में रहनेवाला प्रसिद्ध साँप है जो सारे भारतवर्ष में पाया जाता है। इसकी कई जातियाँ हमारे यहाँ पायी जाती हैं। ये नदियों और दलदलों के किनारे रहते हैं और पानी में बड़ी आसानी से तैर लेते हैं क्योंकि इनके नथुने के छेद और साँपों की तरह बगल में न रहकर ऊपर की ओर रहते हैं जिससे पानी में तैरते समय ये आसानी से साँस लेते रहते हैं। ये जहरीले नहीं होते और इनकी सब आदतें प्रायः एक-जैसी होती हैं।
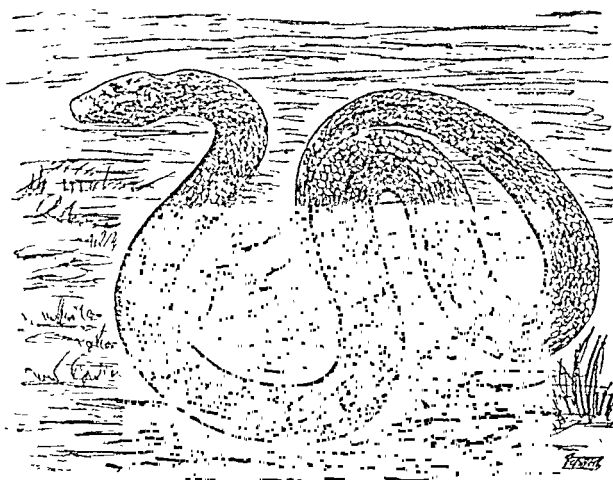
पनिहा

पनिहा बहुत ही सीधा-सादा साँप है जिसका मुख्य भोजन मछली और मेढक हैं। यह औसतन २-३ फुट का होता है पर कहीं-कहीं चार फुट तक का भी पाया गया है।

इसके ऊपर की सतह का रंग हलका सिलेटी या राखी रहता है जिस पर आड़ी कलछौंह धारियाँ पड़ी रहती हैं। पेट हलका बादामीपन लिये सफेद रहता है जिस पर कुछ हरापन लिये काले चित्ते रहते हैं। पेट का रंग पीठ की तरह धूमिल न होकर चटकीला रहता है।

इसका सिर कजई होता है जिस पर प्लेटें रहती हैं। निचला जबडा कुछ बडा और बढा हुआ रहता है जो कुत्ते के मुँह से बहुत कुछ मिलता है। इसकी आँखों से होकर एक एक पट्टी पीछे की ओर चली जाती है।

पनिहा बैंस तो सीधा साँप है जो न तो जहरीला ही होता है और न किसी पर आक्रमण ही करता है लेकिन छेडा जाने पर यह बडे जोर से फुफकार मारकर जबान लपलपाता है। हाथ मे उठाने पर यह हाथ को अपनी गुडली मे काफी जोर से कस भी लेता है और ज्यादा परेशान किये जाने पर यह काट भी लेता है। इसकी मादा अण्डे न देकर बच्चे जनती है।

चीतल

(CHITTAL)

चीतल हमारे यहाँ के समुद्री साँपों में से एक है जिसकी कई जातिया हमारे देश में पायी जाती है। यह समुद्र के किनारे का निवासी है जो हमारे देश के प्राय सभी समुद्री किनारों पर पाया जाता है। इसकी लबाई ५-६ फुट की होती है।
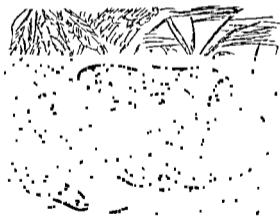
चीतल

चीतल की पीठ का रग भूरापन लिये जैतूनी रहता है जिस पर काली-काली चौथानेदार पट्टियाँ रहती है। ये पट्टियाँ पीठ पर सबसे ज्यादा चौडी हो जाती हैं।

इसका शरीर कुछ चपटा और दुम चौड़ी और चपटी रहती है, जिससे इसे तैरने में भी मदद मिलती है। इसके शरीर का अगला हिस्सा पतला और सिर छोटा होता है। पानी से वाहर निकलने पर यह एकदम असहाय हो जाता है क्योंकि एक तो यह करीव-करीव अंधा-सा रहता है, दूसरे इसके विष के दांत बहुत छोटे होते हैं। ये जहरीले होने पर भी इसके लिए ज्यादा काम के नहीं होते। चीतल का मुख्य भोजन मछली, मेढक वगैरह हैं। इसकी मादा अण्डे न देकर बच्चे जनती है।

दुबोइया-परिवार

(FAMILY VIPERIDAE)

यह परिवार यद्यपि छोटा है, लेकिन इसमें के प्रायः सभी साँप विषैले हैं। ये सब खुश्की पर रहनेवाले सर्प हैं जिनका शरीर भारी और सिर चपटा रहता है।

इन सर्पों के ऊपरी जबड़े खिसकनेवाले होते हैं जिससे मुंह बंद करने पर इनके विषदन्त मुड़कर इनके तालू से सट जाते हैं।

इस परिवार में हमारे यहाँ का प्रसिद्ध दुबोइया और फुरसा आता है जिसे हम सब अच्छी तरह जानते हैं। यहाँ इन्हीं दोनों का वर्णन दिया जा रहा है।

दुबोइया

(RUSSELS VIPER)

दुबोइया हमारे यहाँ का बहुत प्रसिद्ध विषधर सर्प है जो सारे देश में फैला हुआ है। इसे पहाड़ से ज्यादा मैदान पसंद आते हैं, लेकिन पहाड़ों पर भी यह ६००० फुट की ऊँचाई तक पाया जाता है।

दुबोइया तीन-चार फुट लंबा होता है जिसके शरीर का रंग हलका भूरा रहता है। शरीर के ऊपरी हिस्से पर काली छल्लेनुमा चित्तियाँ रहती हैं, जिनका हाशिया हलके रंग का रहता है। ये चित्तियाँ दुबोइया के शरीर के ऊपरी और बगली हिस्से में खड़ी कतारों में रहती हैं। पेट का हिस्सा पिलछौंह या सफेद रहता है जिस पर कभी-कभी अर्धचन्द्राकार छोटी-छोटी काली चित्तियाँ भी रहती हैं।

दुबोइया रात को निकलनेवाला साँप है जो दिन में किसी कोने में चुपचाप पड़ा रहता है। लेकिन रात होने ही इसमें बहुत फुर्ती आ जाती है। यह वैसे तो नाग अथवा करायत से ज्यादा विषैला नहीं होता लेकिन अपने बड़े दाँतों से यह काटनेवाले के शरीर में काफी परिमाण में जहर भर देता है। इसके नाग की तरह फन जरूर नहीं होता, लेकिन इसकी फुफकार उससे कहीं ज्यादा तेज होती है।
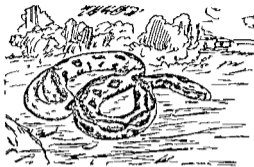
दुबोइया

इसका मुख्य भोजन मेढक और चूहे हैं। इसकी मादा अण्डे न देकर बच्चे जनती है।

फुरसा

(PHOORSA SAW SCALED VIPER)

फुरसा भी हमारे यहाँ के विषैले साँपों में बहुत प्रसिद्ध है। यह हमारे देश के पूर्वी

फुरसा

भागों में पाया जाता है, लेकिन संख्या में कम होने के कारण नाग तथा करायत की तरह ज्यादा नहीं दिखाई पड़ता।

फुरसा बहुत क्रोधी साँप है जो जरा-सा भी छेड़े जाने पर बड़े वेग से आक्रमण कर बैठता है। इसकी लंबाई दो फुट के करीब होती है। इसके सिर पर छोटे-छोटे शल्क रहते हैं और शरीर के दोनों बगल के शल्क आरीनुमा कटे रहते हैं।

फुरसा का रंग हलका भूरा या बादामी होता है जिसमें सिलेटीपन और हलकी ललाई मिली रहती है। इसके सिर के ऊपर एक तीर-जैसा चिह्न रहता है और पीठ पर तथा दोनों बगल हलके रंग की चित्तियों की कतारें दुम तक चली जाती हैं।

फुरसा बहुत जहरीला साँप है जिसके दोनों बगल के काँटेदार शल्कों से चलते समय एक तेज आवाज निकलती है।

खंड १३

पक्षि-श्रेणी

(CLASS AVES)

हमें इस बात पर सहसा विश्वास नहीं होता कि हवा में उड़नेवाली हमारी ये सुन्दर चिड़ियाँ पृथ्वी पर रेंगनेवाले सरीसृपों से बदलकर बनी हैं, लेकिन अब इसमें तनिक भी सन्देह नहीं रह गया है कि चिड़ियाँ वास्तव में सरीसृपों के ही विकसित और परिवर्तित रूप हैं जिन्होंने अपना विकास करके परों की पोशाक प्राप्त कर ली है और आकाश पर अपना आधिपत्य कायम कर लिया है।

इतने बड़े परिवर्तन के बाद भी आज हम पक्षियों में सरीसृपों के कुछ चिह्न देखते हैं जिनसे इस मत की पुष्टि हो जाती है। चिड़ियों के एक दूसरे पर चढ़े हुए पर जहाँ हमें सरीसृपों के शल्कों की याद दिलाते हैं, वहीं मुर्गे आदि के सिर की कलँगी गिरगिट आदि छिपकलियों के सिर पर के मुकुट के ही अनुरूप होती है। चिड़ियों के पैर और पंजों की बनावट बहुत कुछ गोह और दूसरी छिपकलियों-जैसी होती है और दोनों के पैरों के शल्क एक जैसे ही रहते हैं। पक्षी और सरीसृप दोनों ही अण्डे देते हैं और दोनों के बच्चों के प्रारंभ में डिम्ब दन्त (Egg Tooth) रहते हैं जिनसे वे अण्डे के छिलके को तोड़कर बाहर निकलते हैं। इतना ही नहीं, इन दोनों के शरीर के कंकाल और कुछ अवयवों में भी बहुत कुछ समानता रहती है।

सरीसृप किस प्रकार अपना क्रमिक विकास करके चिड़ियों में बदले, इसका सिलसिलेवार ब्योरा तो नहीं मिलता लेकिन सरीसृपों के युग में जिन जीवों ने आकाश में उड़ने का अभ्यास कर लिया था उनके पथराये कंकाल (Fossils) अवश्य मिले हैं। इन पथराये कंकालों से यह अनुमान किया जाता है कि जिन सरीसृपों ने पक्षियों का रूप धारण किया वे छोटे कद के डाइनासोर (Dinosarus) नामक सरीसृप थे जो पृथ्वी पर अपने छोटे अगले पैरों को उठाये रखते थे और पिछली लंबी टाँगों में कंगारू की तरह उछल उछलकर भागते थे। भागते समय वे अपने

अगले पैरों को अपना संतुलन कायम रखने के लिए हवा में तेजी से चलाते थे जिसका परिणाम यह हुआ कि उनके अगले पैर धीरे-धीरे डैनों का रूप ग्रहण करने लगे। पहले तो इन प्रारंभिक डैनों से ये थोड़ी दूर तक उछलकर हवा में तैर लेते थे; फिर धीरे-धीरे वे इतने विकसित हो गय कि उनके महारे ये जीव हवा में वे-रोकटोक उड़ने लगे और सरीसृप से बदलकर पक्षी वन गये।

प्रारंभिक काल के पक्षी शकल-सूरत में आजकल के पक्षियों मे अधिक सरीसृपों से ही मिलते-जुलते होते थे। उनकी लंबी दुम खजूर की डाल जैसी होती थी और उनके मुँह में तेज दाँत होते थे। इतना ही नहीं, उनके डैनों पर तीन उँगलियाँ भी रहती थीं जिनसे वे पेड़ की डालियों को पकड़ सकते थे। इनमें से प्रत्न पुंखीय आर्किओप्टेरिस्क (Archaeopteryx) नाम के जीव के, जिसे हम पक्षियों का पूर्वज कह सकते हैं, दो पथराये कंकाल मिले हैं। इन पथराये कंकालों से हमें उसकी आकृति का वहुत कुछ अनुमान हो सका है और उसी आधार पर उसका काल्पनिक चित्र भी वना लिया गया है।

चिड़ियों के पर उनके वहुत काम के हैं और उन्होंने उनके विकास में वहुत सहायता पहुँचायी है। इन्हीं परों की सहायता से उन्होंने आकाश पर अपना प्रभुत्व कायम किया है और ये पर ही उनके शरीर में गरमी का एक-जैसा तापमान कायम रखते हैं, नहीं तो ये जाड़ों में विना सूरज की गरमी के न तो हवा में ही उड़ पातीं और न आकाश में ही ऊँचाई तक जा पातीं।

चिड़ियों का शरीर जैसे हवा में उड़ने के योग्य ही वना है। उनका शरीर हलका और सूच्याकार होता है जिससे उन्हें हवा चीरकर आकाश में उड़ने में काफी सहूलियत हो गयी है। उनकी हड्डियाँ खोखली होती हैं जिससे उनके डैनों पर उनके शरीर का वोझ नहीं पड़ता। जलसिंह आदि वड़े और भारी शरीरवाले पक्षियों की हड्डियाँ झावें जैसी खोखली होती हैं और उनमें हवा भरी रहती है। नहीं तो इतने भारी शरीर को उठाकर आकाश में ले जाना इन डैनों के लिए कभी संभव न होता।

चिड़ियों के डैने वास्तव में उनके अगले पैर या हाथ हैं जो धीरे-धीरे बदलकर उनके डैने हो गये हैं। यदि हम चिड़ियों के डैने को गौर से देखें तो हमें उसमें अपने हाथ की तरह वाँह की ऊपरी हड्डी (Upper Arm), निचली हड्डी (Fore Arm), कुहनी (Elbow), कलाई (Wrist) और अँगूठा (Thumb) स्पष्ट दिखाई पड़ेगा। अँगूठे के अलावा हमें उसमें पहली और दूसरी उँगलियाँ भी दिखाई पड़ेंगी, लेकिन शेष

दो उँगलियाँ गायब हो गयी है, जो किसी पक्षी के डैने को देखने से भली भाँति स्पष्ट हो जायेंगी।

चिडियो की उडान के बारे में अक्सर लोग यह समझते है कि चिड़िया अपने डैनो को पखो की तरह चलाकर हवा मे उडती है लेकिन वास्तव मे एसा है नही। होता यह है कि जब हवा मे उडते समय चिडियाँ अपने डैनो को ऊपर ले जाकर नीचे की ओर ले आती है तो उनके डैनो के सिरे नीचे पहुँचकर गोलाई से घूमकर तब ऊपर जाते है। इस प्रकार डैने नीचे पहुँचकर गोलाई से घूमने के बाद ऊपर न जायें तो चिडियाँ उलटकर जमीन पर गिर पडें।

तेज हवा में उडते समय चिडिया को अपने डैनो को बार-बार नही चलाना पडता। ऐसे समय वे अपने डैने के सिरो को तिरछा करके उसी के सहारे हवा में ऊपर चढ़ती चली जाती है। हवा मे उडते समय चिडियो को अपना रुख बदलने के लिए डैनो तथा दुम का सहारा लेना पडता है। दुम से ही वे अपनी उडान की रफ्तार को कम करती है और जमीन पर उतरते समय दुम के परो को फैलाकर बडी आसानी से पृथ्वी पर उतर पडती है।

ससार में पक्षी ही ऐसे जीव है जिन्हें प्रकृति ने परो की सुदर पोशाक दी है। ये उनके शरीर पर बालो की तरह निकलते है और फैलकर चौड़े हो जाते है। ये छोटे-बडे सभी प्रकार के होते है और इनकी बनावट भी कम विचित्र नही होती। इनके बीच मे एक डडी रहती है जिसका निचला हिस्सा चिडिया के शरीर मे घुसा रहता है। डडी के दोनो ओर बहुत-सी शाखाएँ फूटी रहती है जिनमे से फिर दोनो ओर बहुत-सी उप शाखाएँ रहती है। इन शाखाओ और उपशाखाओ मे बहुत छोटी छोटी अँकुसियाँ-सी रहती है जो एक दूसरे में फँसकर पूरे पर की सतह को बहुत चिकनी और हमवार बना देती है और यह जान भी नही पडता कि यह चौडा पत्तीनुमा पर इतनी शाखाओ और उप-शाखाओ के जुडने से बना है। परो को फैलाने से सब शाखाएँ अलग अलग हो जाती है लेकिन सीधी ओर मे हाथ फेर देने से फिर सब की सब अँकुसियाँ एक दूसरे से फँस जाती है और पर पहले की तरह चिकना हो जाता है।

चिडियो के ये पर भिन्न भिन्न शक्ल और भिन्न भिन्न रग के होते है और इन्ही से हम चिडियो को पहचानते है। यही नही उनकी बनावट से हम उनके रहने का स्थान और उनके रग से उनके पास-पडोस का सहज में अनुमान कर सकते है। जमीन पर रहनेवाली चिडिया के पर जहाँ मटमैले होते है वही रेत पर रहनेवाली चिडियो के पर

राखी या मिट्टी जैसे हैं । पेड़ों पर रहनेवाली चिड़ियां हरे, लाल, पीले रंग की अथवा चितली होती हैं तो पानी में अपना अधिक समय बितानेवाले पक्षियों का रंग हरा, नीला, बैंगनी और सफेदी का ऐसा मिला-जुला रंग होता है कि वह उन्हें पानी में छिपने में बहुत सहायता पहुँचाता है ।

चिड़ियों के पर साल में एक, दो या तीन बार गिर जाते हैं और उनके स्थान पर दूसरे नये पर निकल आते हैं । इस समय चिड़ियां अपनी नयी पोशाक में बहुत सुन्दर लगती हैं । नर पक्षी की यह चटकीली पोशाक मादा को रिझाने के बहुत काम आती है, जिसके बिना मादा पक्षी नर को जोड़ा बांधने की स्वीकृति नहीं देती ।

चिड़ियों की अगली टांगें तो बदलकर उनके डैने बन गये हैं । इसलिए वे अपनी पिछली टांगों पर मनुष्यों की तरह चलती हैं । कुछ की टांगें छोटी और कुछ की लंबी होती है, लेकिन किसी भी पक्षी की टांगों पर पर नहीं होते । पानी या कीचड़ में रहनेवाली चिड़ियों की टांगें लंबी होती हैं और वे जमीन पर तेजी से भाग लेती हैं, लेकिन पेड़ पर रहनेवाली चिड़ियां, जिनकी टांगें छोटी होती हैं, जमीन पर फुदक-फुदककर चलती हैं ।

चिड़ियों के पैर के निचले हिस्से में उनका पंजा रहता है जिनमें तीन या चार उंगलियां रहती हैं । इन पंजों की बनावट चिड़ियों के स्वभाव, भोजन और रहन-सहन को देखते हुए अलग-अलग तरह की रहती है और उनके पंजों को देखकर हम उनके बारे में बहुत कुछ जान सकते हैं ।

चिड़ियों की चोंच उनके बहुत काम की होती है क्योंकि वे उसी से अपने हाथ का काम लेती हैं । उनकी गर्दन को प्रकृति ने बहुत लचीली बनाया है जिसको हर दिशा में घुमा-फिराकर वे अपना भोजन चुनती हैं । उनकी चोंचें बहुत कड़ी होती हैं जिनमें नाक के छिद्र प्रायः पीछे की ओर रहते हैं । चिड़ियों के मुख में दांत नहीं होते लेकिन बत्तख आदि की चोंचों का भीतरी भाग दंदानेदार रहता है जिससे उन्हें घास आदि के नोचने में आसानी हो जाती है । इन चोंचों की बनावट भिन्न-भिन्न तरह की होती है जिन्हें देखकर हम चिड़ियों की भिन्न-भिन्न खूराक का आसानी से पता चला लेते हैं । जहाँ बाज, बहरी आदि शिकारी चिड़ियों की चोंच की बनावट टेढ़ी रहती है, वहीं चहा आदि कीचड़ में रहनेवाली चिड़ियों की चोंच लंबी और गोल होती हैं । मछली पकड़नेवाली चिड़ियों की चोंच सीधी और नोकीली होती है तो दाना चुगनेवाली चिड़ियों की चोंच छोटी और कड़ी रहती है ।

भोजन के मामले में भी सब चिड़ियाँ एक-जैसी नहीं हैं। कुछ शाकाहारी हैं तो कुछ मांसाहारी और कुछ ऐसी भी हैं जिन्हें सर्वभक्षी कहा जा सकता है। शाकाहारी पक्षी फल-फूल और दानों पर गुजर करते हैं तो मांसाहारी मांस मछली, अण्डे और कीड़े-मकोड़ों से अपना पेट भरते हैं और कौए आदि सर्वभक्षी पक्षियों से कुछ भी नहीं बचने पाता। गिद्ध आदि कुछ पक्षी ऐसे भी हैं जिन्हें हम चिड़ियों का मेहतर कह सकते हैं। ये मुर्दाखोर पक्षी हैं जो मरे हुए जानवरों पर अपनी गुजर करते हैं और शकर-खोरा आदि कुछ छोटी चिड़ियाँ ऐसी भी हैं जो फूलों का रस पीकर ही संतुष्ट हो जाती हैं, भले ही उनके साथ छोटे छोटे फूल के कीड़े भी क्यों न चले जाते हों।

चिड़िया में सूंघने और स्वाद लेने का ज्ञान नहीं के बराबर ही होता है और उन्हें इनकी ज्यादा जरूरत भी नहीं पड़ती क्योंकि पक्षी अपने भोजन का पता सूंघकर नहीं बल्कि देखकर ही लगाते हैं। कीचड़ से कीड़े मकोड़े पकड़ने में चाहा आदि पक्षियों को उनकी चोंच का स्पर्शज्ञान बहुत सहायक होता है।

चिड़िया की आँखें अवश्य बहुत विकसित हैं। उनकी निगाह इतनी तेज होती है कि वे काफी ऊँचाई से उड़ते उड़ते ही नीचे की चीजों को देख लेती हैं। उनकी आँखें स्तनपायी-जीवों की आँखों की तरह सामने न होकर दोनों बगल रहती हैं जिनसे वे सामने तो कम लेकिन दोनों बगल साफ देख लेती हैं। उन्हें जब सामने की ओर देखना होता है तो वे अपनी लचीली गर्दन को घुमाकर एक ही आँख से देखती हैं। इसीलिए उन्हें जिस ओर देखने की जरूरत पड़ती है उसी ओर उनकी गरदन घूम जाती है।

चिड़ियों को रंग के पहचानने का अच्छा ज्ञान प्रकृति की ओर से मिला है जिसके द्वारा मादा जोड़ा बाँधने के समय नर की सुन्दर पोशाक को पसन्द करती है। कुछ चिड़ियाँ रंगीन फूलों, परों और कीड़ों से अपना घोंसला सजाती हैं और कुछ पृथ्वी पर अण्डे रखने के स्थल को रंगीन पत्थरों से घेरकर उस स्थान को सजाती हैं।

चूंकि चिड़िया का शरीर लम्बा और सूच्याकार रहता है इससे यदि उनके कान बाहर की ओर निकले हुए होते तो उससे उन्हें उड़ने में कुछ रुकावट पड़ती, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि चिड़ियों की सुनने की शक्ति भी कम होती है। उनके कान के छिद्र छोटे और आँख के पीछे जरूर रहते हैं लेकिन उनकी सुनने की

शक्ति कम नहीं होती। वे जिस प्रकार देखने के लिए अपनी लचीली गरदन को घुमाकर उसी ओर कर लेती हैं उसी प्रकार सुनने के लिए भी उनको उसी ओर अपनी गरदन को घुमा देना पड़ता है।

चिड़ियों की बोली के भी अनेक भेद हैं। कुछ की बोली कर्कश होती है तो कुछ बहुत मीठे स्वर में बोलती हैं। कुछ की बोली मामूली होती है तो कुछ का चीत्कार बड़ा भयंकर होता है। कोयल, पपीहा और श्यामा आदि चिड़ियाँ अपनी मीठी बोली के लिए प्रसिद्ध हैं, तो तोता मैना आदि पक्षी मनुष्यों की बोली की नकल करने में उस्ताद होते हैं। कौए और चरखियाँ जहाँ अपनी बोली से जी उबा देती हैं, वहीं रात में घू-घू करके बोलनेवाले बड़े उल्लुओं के भयानक स्वर से डर-सा लगने लगता है।

चिड़ियाँ वैसे भी कई तरह से बोलती हैं जिनको उनके साथी तो समझ ही लेते हैं, हम लोग भी उनका बहुत कुछ आशय जान लेते हैं। वसन्त ऋतु में जब नर पक्षी मादा को रिझाने के लिए अपने कण्ठ में सारी मिठास भरकर बोलता है तो वह हमसे छिपा नहीं रहता। उसके बाद जोड़ा बँध जाने पर जब वह आनन्द-विभोर होकर किसी स्थान पर अधिकार जमाकर बोलता है तो वह भी साफ जाहिर हो जाता है। इसी प्रकार उनका डरकर चीत्कार करना, क्रोध से कर्कश स्वर में बोलना, अपने साथियों को खतरे से आगाह करना और अपनी उड़ान के समय अपने साथियों को साथ रहने के लिए चेतावनी देना हमें स्पष्ट रूप से ज्ञात हो जाता है।

संध्या के समय प्रायः सभी चिड़ियाँ चहचहाने के बाद सोने चली जाती हैं, जिसे हम बसेरा लेना कहते हैं। चिड़ियाँ अपना अण्डा सेते समय भले ही घोंसलों में रह लें, वैसे वे घोंसले के बाहर ही रहती हैं। ज्यादा संख्या उन्हीं चिड़ियों की है जो पेड़ की डालियों पर ही बसेरा लेती हैं, लेकिन कुछ ऐसी भी हैं जो झाड़ियों, खुले मैदानों, सूराखों तथा ताल-तलैयों में ही रात गुजार देती हैं।

चिड़ियों के प्रवासगमन के बारे में हमने कुछ न कुछ अवश्य ही सुना होगा। उनकी यह लम्बी उड़ान हर साल जाड़ों के प्रारम्भ में होती है। उस समय चिड़ियों की बहुत बड़ी संख्या, जिनमें बत्तखें मुख्य हैं, अपने देश से उड़कर गर्म मुल्कों की ओर चली जाती हैं और जाड़ा समाप्त होते-होते फिर अपने स्थान पर वापस आ जाती हैं। हमारे देश में मौसमी बत्तखों का आगमन सुदूर उत्तर के साइबेरिया तक

र दिनों में होता है जिनमें जंगलों में पेड़ों पर फल और पानी भर आते हैं। ये बतखें हमारे देश के दक्षिणी भाग तक जाकर फिर उत्तर की ओर वापस होने लगती हैं और मार्च के समाप्त होते-होते हमारे देश को छोड़कर उत्तरी भागों में वापस चली जाती हैं। इसी तरह मौसमी चिड़िया की एक जाति हमारे यहाँ उत्तर की ओर से आती है तो जाड़ा समाप्त होते-होते हमारे देश से उत्तर की ओर फिर वापस चली जाती है। इसी को हम चिड़ियों का स्थान-परिवर्तन या प्रवास-गमन कहते हैं। ये चिड़ियाँ उस समय कितनी ऊँचाई पर उड़ती हैं इसका कोई ठीक पता नहीं लगा है लेकिन उनकी यह उड़ान लगभग ३००० फुट की ऊँचाई तक और उनकी रफ्तार लगभग ३०-४० मील प्रति घंटा से कम नहीं रहती।

चिड़ियों के घोंसले के बारे में हम बहुत कुछ जानते ही हैं लेकिन सब चिड़ियाँ पेड़ों पर ही घोंसला बनाती हैं यह बात नहीं है। तीतर, बटेर और टिटिहरी आदि जमीन पर रहनेवाली चिड़ियाँ जमीन पर ही अपने अण्डे देती हैं तो कौड़िल्ला आदि भीटों के बिलों में रहनेवाले पक्षी बिलों में ही अण्डे देते हैं। लेकिन कुछ चिड़ियाँ जो ज्यादातर पेड़ों पर रहती हैं अपना घास-फूस का घोंसला पेड़ की दोफंकी डालों पर रखती हैं। कुछ चिड़ियों के घोंसले मामूली और बिखरे-बिखरे रहते हैं लेकिन कुछ चिड़ियाँ अपने घोंसलों को बहुत ही सुन्दर ढंग से बनाती हैं। बया का घोंसला तो कारीगरी का सुन्दर नमूना ही है लेकिन दर्जिन फुदकी भी दो पत्तों को जोड़कर बड़ी सफाई से थैलानुमा घोंसला बनाती है जिसमें सेमल की नरम रुई और पर आदि भरकर उसे मुलायम बना लिया जाता है। घोंसले बनाने का कार्य प्रायः मादा के ही जिम्मे रहता है, नर तो घोंसले का सामान ला-लाकर उसे देता रहता है।

घोंसला बन जाने पर मादा उसमें बैठकर अण्डे देती है। फिर या तो वह अकेली या नर और मादा दोनों पारी-पारी से अण्डों पर बैठकर उन्हें सेते हैं। इन अण्डों की बनावट एक-जैसी नहीं रहती। कुछ गोल होते हैं तो कुछ बजावी लेकिन ज्यादातर इनकी बनावट बजावी या अण्डाकार ही रहती है। उनका एक सिरा पतला और नोकीला होता है तो दूसरा गोल और चपटा रहता है।

अण्डों की ऐसी बनावट के कारण उनके नीचे गिरने का डर बहुत कम रह जाता है और यदि वे कभी घोंसले में लुढ़क भी जाते हैं तो वे अपने पतले सिरे के चारों ओर गोलाई से घूमकर वहीं रह जाते हैं और घोंसले से बाहर नहीं गिरने पाते।

चिड़ियों के इन अण्डों का रंग भी एक-जैसा नहीं होता। कुछ नीले होते हैं तो कुछ सफेद। कुछ का रंग कत्थई होता है तो कुछ का गुलाबी या हरा। लेकिन ज्यादा संख्या उन्हीं की है जिन पर छोटी-बड़ी चित्तियाँ या धब्बे पड़े रहते हैं। इन अण्डों का रंग प्रायः उनके पास-पड़ोस के अनुरूप ही रहता है जिससे वे उसी में छिप जायँ और दुश्मनों की निगाह उन पर न पड़े। टिटिहरी के अण्डे, जो रेत पर रहते हैं, रेतीले रंग में ऐसे छिप जाते हैं कि हम बहुत पास जाने पर भी उनको नहीं देख पाते। इसी प्रकार तीतर आदि के अण्डे मटमैले और कौए आदि के नीले रहते हैं जो अपने आसपास के रंग में आसानी से छिप जाते हैं। बिलों, सूराखों या अँधेरी जगह में दिये जानेवाले अण्डे सफेद होते हैं क्योंकि उन्हें अपने को किसी रंग से मिलाने की जरूरत नहीं रहती। अण्डों के फूटने का भी कोई एक नियम नहीं है। भिन्न-भिन्न पक्षियों के अण्डों के फूटने का अलग-अलग समय है। दामा और दँहगल के अण्डे १३ दिन में और अबाबील के १५ दिन में फूटते हैं। घरेलू मुर्गी के अण्डों को फूटने में २१ दिन और बत्तख के अण्डों को २८ दिन लग जाते हैं। हंस के अण्डे को फूटने में और समय लगता है। ये ४२ दिन से पहले नहीं फूटते। जब अण्डा फूटने का समय आ जाता है तो भीतर का बच्चा अपनी चोंच के सिरे पर के उभरे हुए हिस्से से, जिसको डिम्बदन्त कहते हैं, अण्डे को चौड़े सिरे की ओर तोड़ कर उसमें से बाहर निकल आता है। अण्डे से बाहर निकलते ही उसका डिम्बदन्त गिर जाता है।

बच्चों के निकलने पर चिड़ियों को बहुत व्यस्त हो जाना पड़ता है। नर और मादा दोनों सुबह से शाम तक अपने बच्चों के लिए ख़ूराक जमा करते रहते हैं। बच्चों के लिए वे नरम से नरम ख़ूराक लाते हैं। कभी वे उसे स्वयं खाकर और कभी आधी पची दशा में ही उसे अपने मुँह से बाहर निकालकर उन्हें खिलाते हैं तो कभी उनके लिए केंचुए और जरोइयाँ आदि मुलायम कीड़ों को पकड़ लाते हैं। कबूतर आदि दाना चुगनेवाले पक्षी दाने को अपने नीचे की थैली में भर लेते हैं जहाँ से वे दानों का दूध-जैसा रस अपने बच्चों को पिलाते हैं।

चिड़ियों के बच्चे जब कुछ बड़े हो जाते हैं तो चिड़ियाँ उन्हें उड़ने की शिक्षा देती हैं जो जल्द ही समाप्त हो जाती है और वे आकाश में अपने माँ-बाप की तरह दक्ष होकर उड़ने लगते हैं। इस प्रकार स्वच्छन्द वायु में विचरने के लिए उनका जीवन प्रारम्भ होता है और उन्हें हम अपनी प्यारी चिड़ियों के रूप में अपने चारों ओर उड़ते देखते हैं।

संसार में चिड़िया की इतनी अधिक संख्या है और उनकी इतनी अधिक जातियाँ हैं कि उनका वर्गीकरण करना आसान काम नहीं है। फिर भी प्राणिशास्त्र के विद्वानों ने पक्षिश्रेणी का दो उपश्रेणियों में विभक्त किया है जो इस प्रकार है—

१ आदि-पक्षि उपश्रेणी—Sub class Archaeornithes

२ नव-पक्षि उपश्रेणी—Sub class Neornithes

आदि-पक्षि उपश्रेणी में वे पक्षी रखे गये हैं जिन्हे हम पक्षियों का पूर्वज कह सकते हैं और जो अब हमारी पृथ्वी पर से सदा के लिए लुप्त हो गये हैं।

इन पक्षियों के पूर्वज प्रस्तरयुगीय आरकीआप्टेरिक्स (Archaeopteryx) के अभी तक दो ही पथराये कंकाल (Fossils) मिले हैं जिनको देखकर ज्ञात होता है कि वे उड़नेवाले प्रसिद्ध प्राणी, पत्रांगुष्ठ टेराडेक्टल्स (Pterodactyls) से शक्ल-सूरत में भिन्न थे। लेकिन इन दोनों जीवों के पैरों में मजबूत पंजे और जबड़ों में दांत होते थे।

आरकिओप्टेरिक्स के पथराये कंकालों को देखकर मनुष्यों ने उसका एक काल्पनिक चित्र भी बनाया है जिससे उसकी आकृति का बहुत कुछ पता चल सकता है।

दूसरी नव-पक्षि उपश्रेणी में वे पक्षी रखे गये हैं जो हमारी पृथ्वी पर इस समय मौजूद हैं।

इस उपश्रेणी को इसके विस्तार के कारण फिर दो समूहों (Divisions) में बाँटा गया है जो इस प्रकार हैं—

१ पुरा-हनव समूह—Division Palaeognathae

२ नव-हनव समूह—Division Neognathae

पुरा-हनव समूह

(DIVISION PALAEOGNATHAE)

इस समूह में शुतुरमुर्ग (Ostrich), इमू (Emu), किवी (Kiwi) और कैसोवैरी (Cassowary) आदि विदेशी पक्षी हैं जो धीरे-धीरे अपनी उड़ने की शक्ति खो चुके हैं और जिनके डैने भागते या तैरते समय उनके शरीर का संतुलन रखने का काम देते हैं। इनमें से कोई भी हमारे देश में नहीं पाये जाते।

नव-हनव समूह

(DIVISION NEOGNATHAE)

इस समूह के अन्तर्गत शेष सभी वर्तमान पक्षी आते हैं जो हमारे देश के अलावा सारे संसार में फैले हुए हैं।

इन पक्षियों को विद्वानों ने अनेक वर्गों में बाँटा है लेकिन यहां निम्नलिखित ११ वर्गों का ही वर्णन दिया जा रहा है जिनमें की चिड़ियाँ हमारे देश में पायी जाती हैं।

१. वंजुल-वर्ग

(ORDER COLYMBIFORMES)

इस वर्ग में सब प्रकार की छोटी-बड़ी पनडुब्बियाँ रखी गयी हैं जिनका अधिक समय पानी में ही बीतता है।

२. समुद्रकाक-वर्ग

(ORDER PORCELLARIFORMES)

इस वर्ग में समुद्र के निकट रहनेवाले पक्षी हैं जिनका अधिक समय समुद्र के ऊपर उड़ने में बीतता है। इनमें कुछ समुद्र के भीतर पनडुब्बियों की तरह तैरते रहते हैं तो कुछ समुद्रकाक की तरह समुद्री लहरों पर ही अपना समय बिताते हैं।

३: महावक-वर्ग

(ORDER CICONIFORMES)

यह वर्ग पानी अथवा पानी के निकट रहनेवाली चिड़ियों का है जो महावक अथवा जलकाक कहलाते हैं। ये अपना अधिक समय कीचड़ में अथवा पानी के भीतर मछलियों की तरह तैरकर बिताते हैं।

४. हंस-वर्ग

(ORDER ANSERIFORMES)

यह वर्ग काफी बड़ा है जिसमें सब तरह की छोटी बड़ी बत्तखें, हंस और कलहंस आते हैं। ये पक्षी अपना अधिक समय पानी में ही बिताते हैं, इससे इनमें के प्रायः सभी पक्षी जालपाद होते हैं।

५ श्येन-वर्ग

(ORDER FALCONIFORMES)

यह वर्ग शिकारी पक्षियों का है जिसमें बाज, बहरी, शिकरा और उकाब आदि शिकारी पक्षियों के अलावा गिद्ध और चील आदि पक्षी भी रखे गये हैं।

६ मयूर-वर्ग

(ORDER GALLIFORMES)

इस वर्ग में मोर, मुर्गी और तीतर बटेर आदि शिकार की चिड़ियाँ एकत्र की गयी हैं जिनका मांस सफेद और बड़ा स्वादिष्ट होता है।

७ क्रौञ्च-वर्ग

(ORDER GRUIFORMES)

इस वर्ग में सारस क्रौञ्च और करकरा आदि लम्बी टाँगोंवाले पक्षी रखे गये हैं जो पानी के निकट ही अपना सारा समय बिताते हैं। साथ ही साथ हर किस्म के जलकुक्कुटों को भी इसी वर्ग में सम्मिलित कर लिया गया है जिनका सारा समय जलाशयों में ही बीतता है।

८. तटचारी-वर्ग

(ORDER CHARADRIIFORMES)

यह वर्ग उन पक्षियों का है जिनका अधिक समय नदी, तालाबों तथा अन्य जलाशयों के आस-पास बीतता है। इसमें सभी प्रकार के चहे कुररियाँ, टिटिहिरियाँ, भटतीतर तथा कबूतर आदि शामिल हैं।

९ शुकपिक-वर्ग

(ORDER OPHISTHOCOMIIFORMES)

इस छोटे वर्ग में जैसा इसके नाम से स्पष्ट है सब प्रकार के तोते और कोयल आदि पक्षी रखे गये हैं।

१० कीटभक्षी-वर्ग

(ORDER CORACIIFORMES)

कीट-भक्षी पक्षियों का यह वर्ग भी काफी बड़ा है जिसमें सब प्रकार के उल्लू, कौडिल्ले, पतेने धनेश, छपका बसंता हुदहुद नीलकंठ और अबाबील इत्यादि चिड़ियाँ एकत्र की गयी हैं। ये सब कीड़े-मकोड़ों से अपना पेट भरती हैं।

११. शाखाशायी-वर्ग

(ORDER PASSERIFORMES)

पक्षियों का यह वर्ग सब वर्गों से बड़ा है जिसमें उन सब पक्षियों को रखा गया है जो रात में पेड़ों पर बसेरा लेते हैं और जिनका अधिक समय पेड़ों पर ही बीतता है। इनमें सब प्रकार के कौए, मुटरियां, गंगरा, नचनियां, मैना, बुलबुल, पिद्दे, दामा, शकरखोर, मुनियां, भरत और तूती आदि चिड़ियां रखी गयी हैं।

वंजुल-वर्ग

(ORDER COLYMBIFORMES)

इस वर्ग में सब प्रकार की पनडुब्बियां एकत्र की गयी हैं जिनका अधिक समय पानी में ही बीतता है। ये सब एक ही परिवार में रखी गयी हैं, जो पनडुब्बी-परिवार (Family Colymbi) कहलाता है।

पनडुब्बी परिवार

(FAMILY COLYMBI)

पनडुब्बी परिवार में केवल पनडुब्बियां रखी गयी हैं जिन्होंने हवा में उड़ना करीब-करीब छोड़ दिया है और जो पानी के भीतर मछलियों के समान तैर लेती हैं। इनमें इतनी फुरती होती है कि ये मछलियों को आसानी से पकड़ लेती हैं। वे सूखे पर सिवा अण्डे देने के और बहुत कम आती हैं और अपना सारा समय पानी में ही बिताती हैं।

अण्डे देने के लिए भी पानी से इन्हें ज्यादा दूर नहीं जाना पड़ता क्योंकि इनके घोंसले प्रायः पानी के किनारे ही रहते हैं। कुछ के घोंसले तो पानी पर तैरते रहते हैं जिन्हें ये किसी नरकुल से इसलिए बाँध रखती हैं कि वे बहकर दूर न चले जायँ।

पनडुब्बियाँ मीठे और खारे दोनों तरह के पानी में रह लेती हैं। इन सब के पंजे इतने चपटे होते हैं कि उनके दोनों किनारे पतली धार की तरह जान पड़ते हैं। इनसे इन्हें तैरते समय पानी को काटने में बहुत सहूलियत हो जाती है। इनमें से कुछ के पैर बत्तखों की तरह जालपाद होते हैं यानी उनके पैर की उँगलियाँ आपस में एक प्रकार की झिल्ली से जुटी रहती हैं और कुछ की उँगलियों में दोनों ओर पत्ती-सी निकली रहती है जिससे उन्हें पानी में तैरने की सहूलियत हो जाती है।

हैं। यह छोटे-छोटे कद्दुओं आदि को पानी की तह से पकड़ने के लिए बार-बार डुबकी लगाती रहती है और अपने शिकार के लिए पानी के भीतर मछलियों की तरह तैरा करती है।
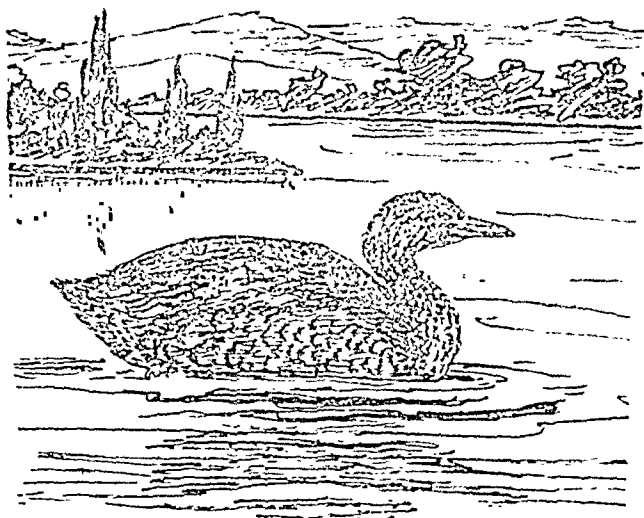
छोटी पनडुब्बी

यह मई से सितम्बर के बीच किसी पानी की घास या नरकुल के बीच में अपना घास-फूस का घोंसला बनाकर तीन से पाँच तक अण्डे देती है। ये अण्डे पहले तो सफेद रहते हैं, लेकिन बाद में गंदे भूरे रंग के हो जाते हैं। अण्डों को नर और मादा दोनों पारी-पारी से सेते हैं। लोग इसका मांस बड़े स्वाद से खाते हैं।

बड़ी पनडुब्बी

(GREAT CRESTED GREBE)

बड़ी पनडुब्बी छोटी पनडुब्बी से कद में बड़ी होती है। यह उत्तरी भारत की झीलों में जाड़ों में बाहर से काफी संख्या में आकर भर जाती है। यह वैसे तो मौसमी बत्तख है, लेकिन इसकी काफी बड़ी संख्या यहीं रह जाती है और यहीं अण्डे देती है।

इसके नर-मादा एक जैसे होते हैं जिनके शरीर का ऊपरी भाग कत्थई और नीचे का सफेद रहता है। इसकी गरदन पतली और लम्बी होती है। जोड़ा बाँधने के समय

इसके माथे पर भड़कीली काली चोटी निकल आती है और बगल का हिस्सा कत्थई हो जाता है जिसमें यह और भी सुन्दर लगने लगती है।
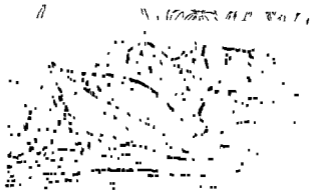
बड़ी पनडुब्बी

इसकी चोंच पतली, नोकीली और तेज रहती है जिस का रंग काला होता है। इसके पैर गदे हरे रंग के होते हैं।

इस पनडुब्बी का भी सारा समय पानी में ही बीतता है, जहाँ यह पानी के भीतर तैरकर कीड़े मकोड़ों आदि से अपना पेट भरती है।

इसके घोसला बनाने का समय भी वही मई से सितम्बर के बीच का है, जब यह पानी के नरकुलों के बीच अपना घासपात का घोसला बनाकर चार-पांच अण्डे देती है। ये अण्डे सफेद होते हैं जो कुछ ही दिनों में भूरे हो जाते हैं।

इसकी और आदतें छोटी पनडुब्बी जैसी ही होती हैं। इसका मांस बड़े स्वाद से खाया जाता है।

समुद्र-काक वर्ग

(ORDER PROCELLARIIFORMES)

इस वर्ग के सब पक्षी समुद्र के निकट रहनेवाले हैं जो अपना समय समुद्र के ऊपर उड़कर बिताते हैं। इनमें से कुछ ऐसे भी हैं जो समुद्र के भीतर पनडुब्बियों की तरह

तैर लेते हैं। इनका मुख्य भोजन मछलियाँ और कीड़े-मकोड़े हैं। ये सब पक्षी एक ही बड़े परिवार में रखे गये हैं, जो समुद्रकाक-परिवार कहलाता है।

समुद्र-काक-परिवार

(FAMILY PROCELLARIDAE)

यह परिवार काफी बड़ा है और इसमें समुद्र-काक की सभी जातियों को एकत्र किया गया है। इनमें से कुछ तो छोटी बत्तखों के बराबर होते हैं, लेकिन कुछ ऐसे भी हैं जिनके डैने फैलाये जाने पर एक फुट तक फैल जाते हैं। ये सब समुद्री-पक्षी हैं, जिनका समय समुद्र के ऊपर हवा में, समुद्र की सतह पर, अथवा समुद्र के भीतर बीतता है। ये उड़ने में और पानी के भीतर तैरने में बहुत उस्ताद होते हैं।

ये कभी कुररियों की तरह समुद्र की लहरों पर पानी को छूते हुए तिरछे होकर तेजी से उड़ते रहते हैं, तो कभी हवा में अबाबील की तरह पंख फैलाकर तैरते रहते हैं। उस समय जो मछली पानी से ऊपर उछलकर आती है उसका इनसे बचना किसी प्रकार सम्भव नहीं होता।

इनकी वैसे तो अनेक जातियाँ हैं, लेकिन इनमें से यहाँ केवल तूफानी समुद्र-काक का वर्णन दिया जा रहा है जो हमारे देश के समुद्रों के निकट दिखाई पड़ता है।

तूफानी समुद्र-काक

(STORMY PETREL)

तूफानी समुद्र-काक समुद्री पक्षी है। जैसा इसके नाम से ही स्पष्ट है, यह अपना अधिक समय समुद्र पर ही बिताता है और बड़े तूफानों और अण्डा देने के समय के अलावा किनारे पर बहुत ही कम आता है।

यह ६ इंच का छोटा-सा पक्षी है, जिसके डैने अबाबील की तरह शरीर से कुछ लम्बे ही होते हैं। इसके नर-मादा एक ही रंग-रूप के होते हैं जिनका पैर जालपाद रहता है। तूफानी समुद्री-काक का शरीर कलछौंह रहता है और उसके दुमगजे के पास एक सफेद धारी-सी पड़ी रहती है। यह अक्सर समुद्र में जहाज को देखकर कुछ दूर तक उसके पीछे-पीछे चलता है। यह समुद्र की लहरों से ऐसा मिलकर

उडता है कि जान पडता है कि जैसे लहर के ऊपर चल रहा हो। यही नहीं, कुछ दूर हो जाने पर ऐसा लगता है कि जैसे काले रंग की बडी-सी तितली पानी से मिलकर
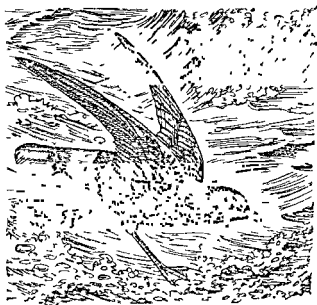
तूफानी समुद्रकाक

उड रही हो। तूफानी समुद्रीकाक समुद्र के किनारे की चट्टानों में कोई गहरा सूराख अण्डा देने के लिए चुनता है जिसमें मादा एक अण्डा देती है, जो दूध सा सफेद रहता है।

महाबक वर्ग

(ORDER CICONIFORMES)

इस वर्ग में उन पक्षियों को एकत्र किया गया है जो जल में या जल के निकट रहनेवाले हैं। यह वर्ग दो उपवर्गों में विभक्त किया गया है जो इस प्रकार हैं—

१ महाबक उपवर्ग—Sub order Ciconiae

२ जलकाक उपवर्ग—Sub order Steganopodes

महावक उपवर्ग
(SUB ORDER CICONIAE)

महावक उपवर्ग में लम्बी टाँगोंवाली वे चिड़ियाँ हैं जो अपनी लम्बी चोंच और लम्बी टाँगों के कारण अन्य पक्षियों के बीच आसानी से पहचानी जा सकती हैं। ये छिछले पानी में या पानी के आसपास के कीचड़ में अपना अधिक समय बिताती हैं, जहाँ इन्हें अपना पेट भरने के लिए मेढक, मछली, कटुए तथा दूसरे कीड़े-मकोड़े काफी संख्या में मिल जाते हैं।

यह उपवर्ग वैसे तो कई परिवारों में विभक्त है लेकिन यहाँ केवल नीचे लिखे चार परिवारों के पक्षियों का वर्णन दिया जा रहा है—

१. महावक परिवार—Family Ciconiidae

२. वक परिवार—Family Ardiedae

३. बुज्जा परिवार—Family Ibidae

४. हंसावर परिवार—Family Phoenicopteridae

महावक परिवार
(FAMILY CICONIIDAE)

महावक परिवार में प्रायः वे सभी महावक शामिल हैं जिन्हें उनकी लम्बी टाँगों के कारण पहचानने में जरा भी कठिनाई नहीं होती। इनके शरीर की बनावट बगुलों की तरह हलकी न होकर भारी होती है और कद में भी ये बगुलों से ऊँचे होते हैं।

इनके पैर की उँगलियाँ इनके कद को देखते हुए छोटी ही कही जायँगी। इनकी जबान भी बगुलों की तरह पतली और लम्बी न होकर बहुत छोटी और तिकोनी होती है। ये पक्षी बोलते नहीं, बल्कि अपनी लम्बी चोंच के दोनों हिस्सों को लड़ाकर एक प्रकार की आवाज करते हैं। ये अपनी लम्बी गरदन को पहले नीचे झुकाकर फिर ऊपर की ओर चक्कर देकर ले जाते हैं और उसे मोड़कर पीठ पर रख लेते हैं।

उड़ते समय ये अपनी लम्बी गरदन को बगुलों की तरह मोड़ नहीं लेते बल्कि उसे आगे की ओर सीधी ताने रहते हैं। इनका मुख्य भोजन मछली, मेढक, घोंघे, कटुए, कीड़े, फतिंगे और अन्य छोटे जीव-जन्तु हैं।

इस परिवार में वैसे तो बहुत से पक्षी हैं, लेकिन यहाँ इनमें से लगलग, जाँघिल, घोंघिल, गैवर और चमरघेंच इन पाँच महाशयों का ही वर्णन दिया जा रहा है।

लगलग

(WHITE NECKED STORK)

लगलग को कहीं-कहीं लोग हाजी लगलग भी कहते हैं। यह हमारे यहाँ के महाबकों में बहुत प्रसिद्ध पक्षी है, जिसे पानी या दलदलों के आसपास देखा जा सकता है।

यह हमारे यहाँ का बारहमासी पक्षी है जो अपना अधिक समय पानी के निकट ही बिताता है। इसे अक्सर बगुलों के साथ पानी के आसपास के ऊसरों में अथवा धान के खेतों में देखा जा सकता है। हमारे देश में यह प्राय सभी मैदानी प्रान्तों में दिखाई पड़ता है।
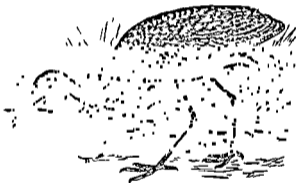
लगलग

लगलग करीब तीन फुट लम्बा पक्षी है जिसके नर मादा एक ही शक्ल-सूरत के होते हैं। इसका माथा और सिर का ऊपरी हिस्सा तो काला रहता है, लेकिन उसके बाद पूरी गरदन सफेद रहती है। दुम का निचला हिस्सा भी सफेद रहता है लेकिन उसके अलावा सारा बदन धुर काला रहता है। इसकी चोंच लम्बी और काली रहती है लेकिन लम्बी टागो का रग लाल रहता है। इसका मुख्य भोजन मछली, मढक और घोंघे, कटुए आदि हैं।

लगलग बरसात के आसपास किसी जलाशय के किनारे या गाँव के पास के किसी ऊँचे पेड़ पर सूखी टहनियों का घोंसला बनाता है जो देखने में भद्दा सा

रहता है। मादा इसमें ३-४ अण्डे देती है जो हलका नीलापन लिये सफेद रंग के रहते हैं।

जाँघिल

(PAINTED STORK)

जाँघिल हमारे यहाँ का प्रसिद्ध महावक है जिसे कहीं-कहीं इसकी पीली चोंच के कारण संदलचोंचा भी कहा जाता है। इसके कंधे और डैने के कुछ पर गुलावी रहते हैं जिससे इसे पहचानने में गलती नहीं हो सकती। अन्य महावकों की तरह ये भी कभी जोड़े में और कभी झुंडों में पानी या दलदलों के किनारे दिखाई पड़ते हैं। हमारे यहाँ ये सारे देश में फैले हुए हैं, लेकिन पंजाव की ओर ये कम संख्या में दिखाई पड़ते हैं।

जाँघिल करीव साढ़े तीन फुट ऊँचे होते हैं। इनके नर-मादा एक-जैसे होते हैं जिनका रंग सफेद और काला रहता है। इनकी गरदन, सीना और पीठ सफेद होती है और पेट पर एक काली पट्टी रहती है। उसके वाद नीचे का कुल हिस्सा सफेद रहता है। डैने और पीठ का पिछला हिस्सा काला रहता है जिसमें एक प्रकार की हरी चमक रहती है। कंधे पर के और डैने पर के पंख गुलावी रहते हैं।

इनकी चोंच लम्वी और भारी होती है जिसका सिरा आगे की ओर झुका-सा रहता है। चोंच का रंग पीला होता है और पैर भूरे रहते हैं।

जाँघिल हमारे यहाँ का वारहमासी पक्षी है जो अपना सारा समय जलाशयों के आसपास ही विताता है। वारहमासी होकर भी यह यहीं थोड़ा स्थान-परिवर्तन कर लेता है। जोड़ा वाँधने का समय निकट आने पर जाँघिल झुंड वनाकर रहने लगते हैं। रात में पानी के निकट के किसी ऊँचे पेड़ पर इनका गिरोह वसेरा लेता है, जहाँ वीच-वीच में इनकी कर्कश वोली सुनाई पड़ती है। इनका मुख्य भोजन मछली, मेढक और पानी के अन्य कीड़े-मकोड़े हैं।

जाँघिल के जोड़ा वाँधने का समय सितम्वर से जनवरी तक रहता है जव ये वड़ी-वड़ी टहनियों का भद्दा और छिछला घोंसला वनाते हैं। ये घोंसले प्रायः पानी में खड़े हुए पेड़ों पर रहते हैं और अक्सर एक ही पेड़ पर २०-२५ तक घोंसले

जाँघिल

देखे जा सकते हैं। मादा समय आने पर चार-पांच अण्डे देती है, जो धूमिल सफेद रहते हैं। कभी-कभी इन पर भूरी चित्तिया और धारियाँ भी पड़ी रहती हैं।

घोंघिल

(OPEN BILLED STORK)

घोंघिल हमारे यहाँ का मशहूर महाबक है जिसकी चोंच के बीच में कुछ दूर तक संधि-सी रहती है। इसी कारण इसे पहचानने में अधिक कठिनाई नहीं होती।

घोंघिल गंदे सिलेटी रंग का महावक है जिसे ताल-तलैयों तथा कीचड़ से भरे गढ़ों के आसपास भोजन की तलाश में देखना कुछ मुश्किल नहीं। घोंघिल वैसे तो जोड़े में रहते हैं, लेकिन कभी-कभी इनके झुण्ड भी हमें दिखाई पड़ जाते हैं।

ये हमारे देश में प्रायः सभी स्थानों में पाये जाते हैं। इनके नर-मादा एक-जैसे होते हैं। ये कद में जाँघिल से छोटे होते हैं और खड़े रहने पर इनकी ऊँचाई ढाई फुट से ज्यादा नहीं होती। इनके वदन का रंग हलका सिलेटी या राखी और डैने काले रहते हैं। चोंच लम्बी और नोकीली होती है, जिसका रंग ललछौंह काला रहता है। चोंच के दोनों हिस्से खमदार होते हैं जिनके वीच का कुछ हिस्सा खुला ही रहता है। पैर लाल रंग के रहते हैं।
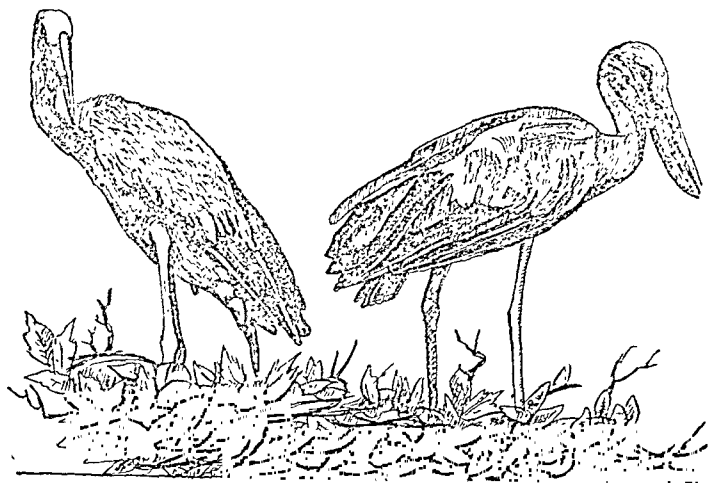
घोंघिल

घोंघिल हमारे देश का वारहमासी पक्षी है जो ऋतु-परिवर्तन के साथ-साथ थोड़ा स्थान-परिवर्तन भी कर लेता है। यह भी अपनी चोंच के दोनों हिस्सों को लड़ाकर एक प्रकार की आवाज करता है जो वहुत कर्कश होती है। इसका मुख्य भोजन मेढक, मछली, केकड़े तथा घोंघे और कटुए हैं। घोंघे आदि को यह वड़ी आसानी से अपनी मजबूत चोंच से तोड़ डालता है और भीतर का नरम मांस खा जाता है।

इनके जोड़ा वाँधने का समय जुलाई से सितम्बर तक है जव ये झुण्ड के

झुण्ड एक साथ किसी पानी के निकट के पेड़ पर अपने घोसले बनाते हैं। ये घोसले टेढ़ी-मेढ़ी टहनियों के भद्दे से होते हैं जिनमें मादा दो से चार तक अण्डे देती है।

गैवर

(WHITE STORK)

गैवर भी हमारे यहाँ का सुंदर महावक है जो अपनी लाल चोंच और टाँगों के कारण अन्य महावकों से भिन्न रहता है। इसको भी हम ताल-तलैया तथा

गैबर

दलदलों के आसपास देख सकते हैं जहाँ यह जोड़े में या छोटे बड़े झुण्डों में अक्सर अपने भोजन की तलाश में घूमता रहता है।

गैवर साढ़े तीन फुट ऊँचा पक्षी है जिसके नर-मादा एक रंग-रूप के होते हैं। इसके शरीर का रंग सफेद होता है लेकिन डैने धुर काले रहते हैं। इसकी चोंच लम्बी और नोकीली होती है जिसका रंग लाल रहता है। पैर भी लाल होते हैं।

गैवर हमारे यहाँ का मौसमी पक्षी है जो हमारे देश के उत्तरी भागों में जाड़ों में आ जाता है। हमारे यहाँ यह सितम्बर के अन्त तक आ जाता है और यहाँ से अप्रैल तक लौट जाता है। गैवर अकेले या जोड़े में जलाशयों के निकट घूमते-फिरते दिखाई पड़ते हैं, लेकिन यहाँ आते समय या लौटते समय ये अपने बड़े झुंड बना लेते हैं। इनका भोजन मेढक, मछली, छोटे सरीसृप और कीड़े-मकोड़े हैं। टिड्डियाँ इन्हें बहुत पसन्द हैं। अन्य महाबकों की तरह ये भी अपनी चोंच के दोनों हिस्सों को लड़ाकर एक प्रकार की कर्कश आवाज करते हैं।

इनके जोड़ा बाँधने का समय मई से जुलाई तक है जब ये टहनियों से अपना मचाननुमा भद्दा-सा घोंसला बनाते हैं। ये घोंसले हमारे देश में तो देखे नहीं जा सकते क्योंकि इस समय ये हमारे देश में नहीं रहते, लेकिन विदेशों में इनके घोंसलों को मकान के ऊँचे धुवाँकशों, मकान की मीनारों तथा ऊँचे पेड़ों पर देखना कठिन नहीं।

मादा समय आने पर ४-५ अण्डे देती है जो एकदम सफेद रहते हैं।

चमरघेंच

(ADJUTANT STORK)

चमरघेंच के भी कई नाम हमारे यहाँ प्रचलित हैं। कहीं यह गंजा कहलाता है तो कहीं इसे चमरढेक या पड़वाढेक का नाम मिला है। यह बहुत ही भद्दा और बदसूरत पक्षी है जिसके चँदुले भारी सिर, लम्बी चोंच तथा गले के नीचे लटकती हुई थैली से इसे दूर ही से आसानी से पहचाना जा सकता है।

हमारे देश में यह केवल उत्तरी भागों में ही पाया जाता है जहाँ इसे बस्तियों तथा जलाशयों के आसपास अकेले या छोटे-छोटे झुंडों में देखना कठिन नहीं।

चमरघेंच चार-पाँच फुट ऊँचा पक्षी है जिसके नर-मादा एक-जैसे होते हैं। इसके शरीर का रंग चितकबरा रहता है जिसमें गरदन का ऊपरी हिस्सा, दोनों

कंधे, सीना और नीचे का कुछ हिस्सा सफेद और पीठ का कुल हिस्सा और डैने काले तथा गाढे सिलेटी रहते हैं। डैने के बडे पर सफेद होते हैं। इसका सिर एकदम नंगा रहता है और इसकी गरदन पर भी पंख नहीं रहते। गरदन के नीचे सीने पर एक १०-१५ इंच लम्बी थैली लटकती रहती है। इसकी चोंच बहुत लम्बी और भारी होती है जिसका रंग ललछौंह रहता है। पैर भी ललछौंह रहते हैं।

चमरघेंच

चमरघेंच हमारे यहाँ का मौसमी पक्षी है जो हमारे यहाँ गर्मियों में आकर कुछ महीनों बाद वापस चला जाता है। यह मुर्दों को ही नहीं, सभी गंदी चीजों का खानेवाला सर्वभक्षी पक्षी है जिससे मछली, मेढक, छोटे सरीसृप तथा कीड़े-पतिंगे कुछ भी नहीं बचने पाते।

जोड़ा बाँध लेने पर चमरघेंच पहाड़ की किसी ऊँची चोटी या ऊँचे पेड़ पर टहनियों का बड़ा और भद्दा-सा घोंसला बनाता है जिसमें मादा ३-४ सफेद अण्डे देती है।

वक परिवार

(FAMILY ARDIEDAE)

वक या बगुले, जैसा पहले बता चुके हैं, महाबकों से कद में छोटे और हल्के होते हैं। छिछले पानी में या पानी के किनारे ही इनका सारा दिन बीतता है, जहाँ ये मछली, मेढक तथा पानी के अन्य कीड़े-मकोड़े पकड़ते हैं। इसी कारण इनको प्रकृति ने लम्बी टाँगें, पतली और लम्बी गरदन तथा तेज चोंच दी है, जिससे मछली छूटकर नहीं जाने पाती। इनके बीच की उँगली के नाखून की बनावट कंघी-जैसी रहती है जिससे ये अपनी चोटी या कलँगी को सँवार लेते हैं।

इनके सीने पर दोनों ओर और दोनों जाँघों के कुछ हिस्से पर बहुत ही मुलायम रोएँ रहते हैं जो देखने में मुलायम ऊन जैसे लगते हैं लेकिन इनको छुआ नहीं कि ये टूट जाते हैं और उँगलियों में पाउडर-जैसा पदार्थ लग जाता है।

बगुलों की वैसे तो अनेक जातियाँ हैं, लेकिन सुविधा के लिए ये दो भागों में बाँट दिये गये हैं—सफेद बगुले और सिलेटी बगुले। इनके अलावा बहुत तरह की बगुलियाँ भी होती हैं, जो पिलछौंह कत्थई, सिलेटी तथा चितली होती हैं। इतना ही नहीं, कुछ बगुले ऐसे भी हैं जो उल्लुओं की तरह रात में ही उड़ना पसन्द करते हैं। इन्हें वाक कहा जाता है।

यहाँ अपने यहाँ के प्रसिद्ध बगुलों का वर्णन दिया जा रहा है।

आँजन बगुला

(COMMON HERON)

आँजन या अंजन बगुला को, इसकी कर्कश बोली के कारण, कहीं-कहीं टर बगुला भी कहते हैं। यह सफेद और सिलेटी रंग का बहुत सुन्दर बगुला है जो कद में और सब बगुलों से बड़ा होता है। यह प्रायः अकेला ही ताल-तलैयों तथा अन्य जलाशयों के निकट अपने शिकार की घात में पानी में चुपचाप खड़ा रहता है।

टर हमारे देश का बारहमासी पक्षी है जो हमारे यहाँ प्राय सभी स्थानो पर पाया जाता है। पहाडो पर भी यह लगभग ५ हजार फुट की ऊँचाई तक चला जाता है। यह लगभग ढाई फुट ऊँचा पक्षी है जिसके नर-मादा एक रगरूप के होते है। इसका सिर, गरदन और नीचे का कुल हिस्सा सफेद रहता है, लेकिन सीने पर के कुछ पर काले रहते है। आँख के पास से एक काली रेखा सिर तक चली जाती है, जहाँ से दो लबे काले पर निकलते है, जो इसकी चोटी-से जान पडते है। इसके शरीर का ऊपरी हिस्सा और डैने सिलेटी रग के रहते है, जिनके सिरे पर के पर काले रहते है। इसके कधे के कुछ पर सफेद रहते है। इसकी लबी और नोकीली चोच गदे पीले रग की होती है और लबे पैर हरापन लिये पिलछौंह रहते है।

आँजन बगुला

टर रात को प्राय एक ही पेड पर झुड बनाकर बसेरा लेता है। यह वैसे तो दिन भर पानी के किनारे ही रहता है, लेकिन इसके शिकार का उपयुक्त समय सुबह और शाम है। यह ज्यादातर ऐसे जलाशयो को पसन्द करता है जिनके किनारे घास या नरकुल हो जहाँ यह अपने शिकार की घात मे पानी मे चुपचाप गरदन सिकोडे खडा रहता है, जैसे सो रहा हो। लेकिन मछली के पास आते ही इसकी लबी गरदन इस तेजी से चलती है कि इसकी तेज चोच की पकड से मछली बच नही पाती। यह मछली, मेढक, घोघे, कटुए तथा पानी के अन्य कीडे-मकोडो से अपना पेट भरता है।

टर के जोड़ा बाँधने का समय जुलाई से सितम्बर तक है, जब ये पानी के किनारे के किसी पेड़ पर टहनियों का मचाननुमा भद्दा घोंसला बनाते हैं, जिसमें बीच में गड़्ढा-सा रहता है । इन घोंसलों को पत्तियों से मुलायम बना दिया जाता है जिसमें मादा प्रायः तीन अण्डे देती है जो हलके हरे रंग के रहते हैं।

वाक
(NIGHT HERON)

वाक को शायद इसकी बोली के कारण ही यह नाम मिला है। यह रात्रिचर बगुला है जो दिन भर उल्लू की तरह किसी पेड़ पर बैठा ऊँघा करता है और रात होते ही
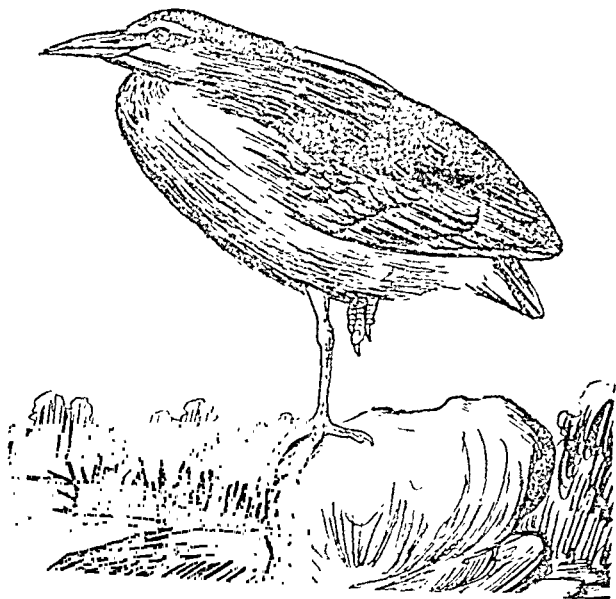
वाक बगुला

वाक्-वाक् करके इधर-उधर उड़ने लगता है । हमारे यहाँ यह सारे देश में फैला हुआ है और पहाड़ों पर भी आँजन बगुले की तरह यह पाँच हजार फुट तक पाया जाता है।

वाक हमारे यहाँ का बारहमासी पक्षी है जिसके नर-मादा एक-जैसे होते हैं। यह हमारे यहाँ की बगुली के बराबर लगभग बीस-बाईस इंच का पक्षी है जिसके

सिर का ऊपरी हिस्सा और पीठ काली होती है। इसमें एक प्रकार की हरी चमक भी रहती है। इसकी चोटी सफेद माथा काला और नीचे का कुल हिस्सा सफेद रहता है। इसकी गरदन दुम और डैने हल्के सिलेटी रहते हैं जिसमें हलका गुलाबीपन मिला रहता है। इसकी नाकीली चोच काली और पैर पिलछौंह हरे रहते हैं। वाक पेड़ों में बसेरा लेते हैं जहाँ ये सारा दिन पेड़ों पर बिताकर शाम होते ही जलाशयों के आसपास उड़ने लगते हैं।

वाक उड़ते समय बीच बीच में बोलता रहता है जिससे इसकी मौजूदगी का पता आसानी से लग जाता है। इसका मुख्य भोजन मेढक, मछली और अन्य कीड़े मकोड़े हैं। इसकी और सब आदतें अन्य बगुलों से मिलती-जुलती हैं।

वाक के जोड़ा बाँधने का समय अप्रैल से सितम्बर तक रहता है जब मादा समय आने पर चार पाँच पिलछौंह हल्के हरे रंग के अण्डे देती है। इसका घोसला मामूली सा रहता है जो टहनियों का बना होता है।

बगुली

(POND HERON)

बगुली से हम सभी परिचित हैं। यह हमारे यहाँ के छोटे-बड़े सभी ताल तलैयों के किनारे बैठी दिखाई पड़ती है। यही नहीं इसे गाँव और बस्तियों के आसपास के पानी से भरे गड्ढों में भी मेढक मछली पकड़ते देखा जा सकता है।

बगुली को घमरबगुली या अधीबगुली भी कहते हैं। हमारे देश में यह सभी जगह पायी जाती है और पहाड़ों पर भी इसे तीन हजार फुट तक देखना कठिन नहीं है। यह १८ २० इंच ऊँची होती है जिसके नर मादा एक जैसे रहते हैं। इसका सिर और गरदन का ऊपरी हिस्सा गहरा भूरा और पीठ सिलेटी भूरी रहती है। लेकिन बाकी ऊपरी हिस्सा और नीचे का कुल हिस्सा सफेद रहता है। इसके सीने पर भूरी धारियाँ पड़ी रहती हैं और सिर पर कुछ लम्बे सफेद चोटी के पर निकले रहते हैं। इसकी नाकीली चोंच पीली रहती है जिसका सिरा काला और जड़ निलछौंह रहती है। इसके पैर गहरे हरे रंग के होते हैं।

बगुली बहुत ढीठ होती है जो बहुत निकट चले जाने पर भी नहीं उड़ती। यह यहाँ की बारहमासी चिड़िया है जो बराबर यहीं रहती है और पानी के सूखने पर या खूराक के कम हो जाने पर ही अपना स्थान छोड़ती है।

अन्य बगुलों की तरह बगुली का भोजन मेढक, मछलियाँ और कीड़े-मकोड़े हैं और यह भी उन्हीं की तरह पानी के किनारे चुपचाप शिकार की ताक में खड़ी रहती है। रात को बगुलियों के झुंड किसी पानी के किनारे के पेड़ पर बसेरा लेते हैं। इनकी बोली भी काफी कर्कश होती है।

बगुली
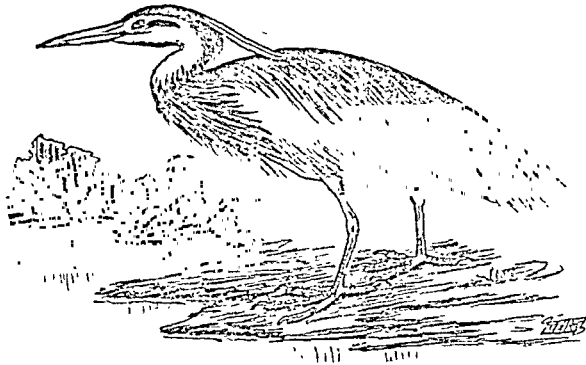
बगुली के जोड़ा बाँधने का समय मई से सितम्बर तक रहता है जब यह छोटी टहनियों का तितरा-बितरा-सा घोंसला बनाती है। एक ही पेड़ पर बगुलियों के बहुत-से घोंसले देखे जा सकते हैं जहाँ ये लगातार उसी पर हर साल अपने घोंसले बनाती रहती है। समय आने पर मादा उनमें ४-५ हरछौंह नीले रंग के अण्डे देती है।

मलंग बगुला

(LARGE EGRET)

मलंग सफेद रंग के बगुलों में सबसे बड़ा होता है। यह टर से कद में थोड़ा ही छोटा रहता है और इसे प्रायः अकेले ही देखा जा सकता है। इसके सिर पर चोटी नहीं रहती और इसे इसकी दूध-जैसी सफेद पोशाक के कारण पहचानने में जरा भी दिक्कत नहीं होती।

मलंग हमारे यहाँ का बारहमासी पक्षी है जो यहाँ के प्रायः सभी जलाशयों के निकट दिखाई पड़ता है। यह ढाई फुट से कुछ ही छोटा होता है जिसके नर-मादा एक-जैसे होते हैं। मलंग सारे देश में फैले हुए हैं जिन्हें सभी स्थानों में देखा जा सकता

है। इनका शरीर धुर सफेद रहता है और जब इनकी पंक्ति नीले बादलों में उड़ती है तो देखने में बहुत भली लगती है। इनकी चोंच वैसे तो पीली रहती है, लेकिन अण्डा देने का समय आने पर वह काली हो जाती है। इनके पैर काले रहते हैं।

मलग बगुला

मलग अन्य बगुलों की तरह मेढक, मछली, कटुए और कीड़े मकोड़ों से अपना पेट भरता है। इसके शिकार करने का ढंग भी अन्य बगुलों की तरह रहता है। जोड़ा बाँधने के समय इसके सीने और पीठ पर बहुत महीन और चमकीले पर निकल आते हैं जो अच्छी कीमत पर बिकते हैं। इन परों की पहले यूरोप में बहुत खपत थी लेकिन अब इनकी माँग बहुत कम हो गयी है। हमारे यहाँ भी जड़ाऊ कलँगियों के पीछे इनके पर लगाये जाते थे लेकिन अब यहाँ भी इसका चलन उठता जा रहा है।

इसके जोड़ा बाँधने का समय जुलाई से अगस्त तक है, जब यह किसी जलाशय के निकट के पेड़ पर टहनियों का भद्दा-सा घोंसला बनाता है। मादा उसमें चार-पाँच

करछिया बगुला

(LITTLE EGRET)

करछिया भी सफेद रंग का बगुला है जो अपनी काली चोंच और काले पैरों के कारण करछिया कहलाता है। जोड़ा बाँधने का समय निकट आने पर इसके सिर पर दो लंबे पर निकल जाते हैं।

करछिया बगुला हमारे यहाँ का बारहमासी पक्षी है जिसके नर-मादा एक ही जैसे होते हैं। यह हमारे यहाँ के प्रायः सभी बड़े जलाशयों में दिखाई पड़ता है। यह प्रायः छोटे-छोटे गरोहों में दिखाई पड़ता है और घास में भी कीड़े-मकोड़ों की तलाश में घूमता रहता है। यह किसी पेड़ पर गरोह बाँधकर बसेरा लेता है।

करछिया बगुला

इसका कद १८ से २२ इंच के लगभग रहता है और इसके नर-मादा एक रंग-रूप के होते हैं। इसका सारा बदन धुर सफेद और चोंच तथा पैर काले रहते हैं। जोड़ा बाँधने के समय इसके सिर पर दो लंबे पर बढ़ आते हैं और सीने तथा पीठ पर भी बहुत सुन्दर चमकीले पतले पर निकलते हैं जो अच्छी कीमत पर बिकते हैं। ये पर कलँगियों में लगाने के काम आते हैं और इन्हीं के लिए विदेशों में लोग इन बगुलों को काफी संख्या में पालते थे, लेकिन अब इनकी खपत कम हो जाने से इनके पालनेवाले भी कम हो गये हैं।

करछिया भी मलंग की तरह जुलाई और अगस्त में जोड़ा बाँधता है और टहनियों

सा भद्दा-सा घोसला बनाता है। मादा, समय आने पर, चार-पाँच अण्डे देती है जो हल्के हरे रंग के रहते हैं।

गाय बगुला

(CATTLE EGRET)

गाय बगुले को जहाँ मवेशियों के साथ रहने के कारण गाय बगुला कहते हैं वहाँ उसे, माथे और पीठ पर के सिन्दूरी सुनहले महीन परों के कारण, सुरखिया बगुला भी कहते हैं। यह भी हमारे यहाँ का प्रसिद्ध सफेद बगुला है जिसे जलाशयों के अलावा चरागाहों में भी काफी संख्या में देखा जा सकता है। यह मवेशियों के आसपास इसी लिए रहता है कि उनके घास में चलने पर जो कीड़े-पतिंगे उड़ते हैं उन्हें यह पकड़-पकड़कर अपना पेट भरता रहे।

सुरखिया या गाय बगुला

गाय बगुला कद में करछिया बगुले के बराबर ही होता है जिसके नर मादा एक जैसे रहते हैं। इसका सारा बदन खूब सफेद रहता है। यह बगुलों की तरह बहुत ढीठ पक्षी है, लेकिन जोड़ा बाँधने का समय आने पर इसके सिर, सीने और पीठ पर के महीन पर सुनहले रंग के हो जाते हैं जिससे फिर इसे पहचानने में कोई दिक्कत नहीं रह जाती। इसकी चोंच पीली रहती है लेकिन पैर अन्य सफेद बगुलों की तरह काले ही होते हैं।

गाय बगुला हमारे लिए बहुत उपयोगी पक्षी है जो दिन भर कीड़े मकोड़ों को खाकर उनकी संख्या कम करता रहता है। यह पशुओं की पीठ पर बैठकर उनके

शरीर की किलनी और कुटकियों को खाता रहता है जिससे उनका बहुत लाभ होता है। इसका मुख्य भोजन तो कीड़े-मकोड़े हैं, लेकिन मौका पड़ने पर यह मेढक-मछलियों को भी बड़े मजे से खाता है। अन्य बगुलों की तरह यह भी किसी पेड़ पर झुंड में बसेरा लेता है।

इनके जोड़ा बाँधने का समय जून से अगस्त तक रहता है जब ये झुंड-के-झुंड किसी पेड़ पर टहनियों के भद्दे से घोंसले बनाते हैं। घोंसला बनाने के लिए ये पानी के पास के ही पेड़ को नहीं चुनते बल्कि कभी-कभी ये ऐसे पेड़ों पर भी घोंसला बनाते हैं जो बस्ती और बाजारों के बीच में रहते हैं। मादा तीन से पाँच तक अण्डे देती है जो हलका हरापन या पीलापन लिये सफेद होते हैं।

बुज्जा परिवार

(FAMILY IBIDAE)

बुज्जा परिवार के पक्षी भी लंबी टाँगोंवाले हैं। शकल-सूरत में ये बहुत कुछ बगुलों तथा महाबकों से मिलते-जुलते रहते हैं, लेकिन इनकी झुकी हुई या टेढ़ी चोंच इन्हें अन्य पक्षियों से भिन्न रखती है। इनमें दाबिल जरूर ऐसा है जिसकी चोंच रोटी सेंकने के चिमटे की शकल की रहती है। ये वैसे तो जलाशयों के निकट रहते हैं जहाँ इन्हें पेट भरने के लिए मेढक, कटुए, घोंघे तथा दूसरे कीड़े-मकोड़े आसानी से मिल जाते हैं, लेकिन कौआरी जाति के पक्षी ऐसे भी हैं जो पानी से दूर खुले मैदानों में भी कीड़े-मकोड़े खाकर रह लेते हैं।

इस परिवार के पक्षी महाबकों की तरह गूंगे नहीं होते बल्कि समय-समय पर उनकी तेज और कर्कश आवाज हमें सुनाई पड़ती है।

इनकी वैसे तो कई जातियाँ हैं लेकिन यहाँ उनमें से केवल तीन पक्षियों का वर्णन दिया जा रहा है।

काला बुज्जा

(BLACK IBIS)

काला बुज्जा का दूसरा नाम कड़ाकुल है। कहीं-कहीं इसे सिर पर के लाल रंग के कारण मुर्ग केस भी कहते हैं। यह काले रंग का गंदा-सा पक्षी है जो अपनी टेढ़ी चोंच और लाल रंग की टाँगों के कारण दूर ही से पहचान लिया जाता है।

कडाकुल हमारे यहाँ का बारहमासी पक्षी है जो हमारे यहाँ करीब-करीब सभी जगह पाया जाता है। यह बारहा महीने पानी के आसपास के मैदानो और ऊसरो में कीड-मकोडे, दाने और बीज की तलाश में घूमा करता है। इसके नर-मादा एक रग-रूप के होते है।

कडाकुल ढाई फुट मे कुछ कम ही ऊँचा होता है। इसके डैने काले और सारा बदन गदे कलछौह कत्थई रग का रहता है। इसके कधे के पास दोनो ओर एक-एक सफेद चित्ता रहता है और सिर के ऊपर के कुछ छोटे पर लाल रग के होते हैं। इसकी चोच काफी लबी और आगे की ओर झुकी-झुकी-सी रहती है और पैर बडे और लाल रग के होते है।
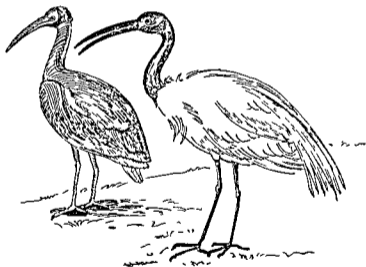
काला और सफेद बुज्जा

काले बुज्जा को दलदल से ज्यादा सूखे मैदान पसन्द है जहाँ ये अक्सर जोडे में दिखाई पडते है। कभी-कभी इनके छोटे-बडे झुड भी दिखाई पडते है जो उस समय रह रह कर एक प्रकार की कर्कश आवाज करते है। ये रात में एक ही पेड पर जमा होकर बसेरा लेते है जो पानी या बस्ती के निकट रहता है।

इसके जोड़ा बाँधने का समय मार्च से नवम्बर तक रहता है, जब यह किसी ऊँचे पेड़ की चोटी पर सूखी टहनियों का गहरा घोंसला बनाता है। मादा, समय आने पर, इसमें दो-चार अण्डे देती है जो हलके हरे रंग के होते हैं और जिनमें से किसी-किसी पर कुछ चित्तियाँ या धारियाँ पड़ी रहती हैं।

सफेद बुज्जा

(WHITE IBIS)

सफेद बुज्जा कद में काले बुज्जे से कुछ बड़ा होता है और इसका रंग भी उससे कहीं साफ और सुन्दर रहता है। यह अपनी सफेद पोशाक, आधे काले सिर और लंबी तथा टेढ़ी चोंच के कारण आसानी से पहचाना जा सकता है। इसे कहीं-कहीं मुंडा और हरजोता भी कहते हैं। यह अपना अधिक समय कीचड़ और दलदलों के आस-पास ही बिताता है।

सफेद बुज्जा हमारे देश के प्रायः सभी मैदानी हिस्सों में पाया जाता है। इसका कद ढाई फुट से कुछ ऊँचा ही रहता है। इसके नर-मादा एक रंग-रूप के होते हैं। इसके सिर और गरदन पर बाल नहीं होते और उनका रंग एकदम काला रहता है। बाकी सारा शरीर एकदम सफेद रहता है जिसमें दुम के ऊपर बढ़े हुए कुछ पर भूरे और सिलेटी रंग के रहते हैं। बरसात में ये पर और बड़े हो जाते हैं और इसके सीने और गरदन के नीचे के पर भी बढ़कर लंबे हो जाते हैं। इसकी चोंच काफी लंबी और आगे की ओर झुकी हुई रहती है और पैर चमकीले काले रंग के होते हैं।

सफेद बुज्जे को सूखे मैदान उतने पसन्द नहीं हैं जितने काले बुज्जे को। यह कीचड़ के आसपास ही रहना ज्यादा पसन्द करता है और इसे अक्सर धान के खेतों में मेढकों की तलाश में घूमते देखा जा सकता है। कड़ाकुल की तरह यह अकेले या जोड़े में नहीं दिखाई पड़ता बल्कि हमें अक्सर इसके छोटे या बड़े झुंड ही दिखाई पड़ते हैं। इसका मुख्य भोजन मेढक, कटुए, घोंघे और कीड़े-मकोड़े आदि हैं।

इनके जोड़ा बाँधने का समय जून से अगस्त तक है जब ये बगुलों, महाबकों आदि के साथ किसी पेड़ पर टहनियों का मचाननुमा भद्दा-सा घोंसला बनाते हैं। मादा इसमें दो से चार तक निलछौंह या हरछौंह सफेद अण्डे देती है।

दाबिल

(SPOON BILLED IBIS)

दाबिल वैसे तो बुज्जा का ही भाई-बन्धु है, लेकिन अपनी चोंच की चम्मच-जैसी बनावट के कारण इसकी शकल-सूरत उनसे एकदम भिन्न होती है। यह इसी चम्मच-जैसी चोंच के कारण कहीं-कहीं चमचबुज्जा भी कहा जाता है। इसकी यह चपटी चोंच इसके बड़े काम की होती है। यह पानी में अपनी अधखुली चोंच को डुबोकर अपनी गरदन बड़ी तेजी से दोनों ओर हिलाता है जिससे पानी में डूबी हुई इसकी चपटी चोंच बड़ी तेजी से इधर-उधर चलने लगती है और पानी के मथ जाने से जो कीड़े-मकोड़े आदि सतह से ऊपर आकर इसकी चोंच के बीच में आ जाते हैं वे इसके पेट में पहुँच जाते हैं।

दाबिल

दाबिल हमारे देश का बाशिन्दा पक्षी है जो यहाँ के प्रायः सभी बड़े जलाशयों में पाया जाता है। यह ऐसे ताल और झील पसन्द करता है जिनमें कीचड़ काफी हो। यह प्रायः गिरोह बाँधकर रहता है। इसे इसकी लम्बी गरदन चपटी चम्मच-जैसी चोंच तथा दूध-जैसी पोशाक के कारण बड़ी आसानी से पहचाना जा सकता है। दूर से यह बगुला ही जान पड़ता है लेकिन इसकी विचित्र चोंच की वजह से इसे बगुले से अलग करना कठिन नहीं होता।

दाबिल का कद प्रायः ३२ इंच का होता है और इसके नर-मादा दोनों एकदम दूध-जैसे सफेद रहते हैं। इसकी चोंच सीधी और लंबी होती है जिसका सिरा चिपटा और गोल रहता है जैसे किसी ने सिरे पर एक पैसा लगा दिया हो। चोंच का रंग काला और पीला रहता है, लेकिन पैर भूरे काले होते हैं।

दाबिल का मुख्य भोजन घासपात के अलावा मेढक, मछलियां और पानी तथा कीचड़ के कीड़े-मकोड़े हैं।

दाबिल के अण्डा देने का समय अगस्त से नवम्बर तक है, जब इनके गरोह एक साथ मिलकर पानी के किनारे के किसी पेड़ पर पतली टहनियों के बड़े और मचान की तरह चौरस घोंसले बनाते हैं। मादा इनमें तीन-चार सफेद अण्डे देती है जिन पर गाढ़ी भूरी या कत्थई चित्तियां पड़ी रहती हैं।

हंसावर परिवार

(FAMILY PHOENICOPTERIDAE)

जिस प्रकार हम बुज्जा को बगुला और महाबक के बीच का पक्षी कह सकते हैं, उसी प्रकार हंसावर को महाबक और बत्तख के बीच की चिड़िया कहना अनुचित न होगा।

इस परिवार में केवल हंसावर रखा गया है जो अपनी लंबी टाँगों और टेढ़ी चोंच के कारण जल्द ही पहचान लिया जाता है। यह अपनी गरदन झुकाकर इसी टेढ़ी चोंच को छिछले पानी में डालकर इधर-उधर हिलाता रहता है और अपनी जबान से छोटे-छोटे कीड़े वगैरह खाता रहता है। इसकी चोंच महाबकों की तरह चिकनी नहीं होती बल्कि उस पर बत्तख की चोंचों की तरह एक पतली झिल्ली चढ़ी रहती है।

इन पक्षियों के पैर बत्तखों की तरह जालपाद होते हैं और ये उन्हीं की तरह पानी में अच्छी तरह तैर भी लेते हैं।

हंसावर प्रायः झुंड में रहते हैं और एक साथ ही अपने घोंसले भी बनाते हैं। ये घोंसले मिट्टी के होते हैं जो ज़मीन पर छोटे-छोटे ऊँचे टीलों से जान पड़ते हैं।

हसावर

(FLAMINGO)

हसावर हस के बराबर तो सुदर नही होते, फिर भी इन्हें कम सुन्दर नही कहा जा सकता। इन्हें कही-कही राजहस भी कहा जाता है, लेकिन इनका हसावर नाम ही अधिक उपयुक्त है। इन्हें इनकी लबी आकृति और टेढी चोच के कारण बडी आसानी से पहचाना जा सकता है।

हसावर

हसावर हमारे यहाँ का मौसमी पक्षी है जो हमारे यहाँ जाडो के प्रारभ मे पश्चिम की ओर से आकर गरमी शुरू होते होते यहाँ से फिर उसी ओर वापस चले जाते है। हमारे देश मे हसावर पश्चिमी प्रदेशो तक ही आते है और उत्तर प्रदेश तक इनकी बहुत थोडी सख्या पहुँच पाती है।

हसावर सारस से कुछ छोटी, किन्तु उसी तरह की लबी टाँगवाली चिडिया है जिसके नर मादा एक जैसे होते है। इसके सिर, गरदन, दुम और बदन का कुल हिस्सा सफेद रहता है जिसमें गुलाबी झलक रहती है। इसके डैने का ऊपरी हिस्सा लाल और चोच गुलाबी रहती है जिसका सिरा काला होता है। इसकी लबी टाँगें लाल रग की रहती हैं।

हसावर कीचड में रहना ज्यादा पसन्द करता है जहाँ वह कीडे मकोडे और काई आदि से अपना पेट भरता रहता है। कीचड में अपना अधिक समय बिताने पर भी यह गहरे पानी में किसी बत्तख से कम नही तैरता। यह प्राय झुडो में ही रहता है

और आकाश में उड़ते हुए इसका गरोह तीर के फल की शकल बनाकर उड़ता है। हमारे यहाँ हंसावर का, बत्तखों की तरह ही खाने के लिए, शिकार होता है और इसका मांस भी बड़ स्वाद से खाया जाता है।

मौसमी पक्षी होने के कारण हंसावर हमारे देश में अण्डे नहीं देते। विदेशों में ये काफी संख्या में पानी के पास किसी निरापद स्थान को चुनकर एक साथ ही मिट्टी के ऊँचे टीले बनाते है जो ऊपर की ओर पोले होते हैं। मादा इन्हीं में कई अण्डे देती है जो रंग में धुमैले सफेद रहते हैं।

जलकाक उपवर्ग

(SUB ORDER STEGANOPODES)

इस उपवर्ग में उन जलपक्षियों को एकत्र किया गया है जिनकी टाँगें छोटी होती हैं और जो अपना अधिक समय पानी में ही बिताते हैं।

ये सब मछलीखोर पक्षी हैं लेकिन इनके मछली पकड़ने का ढंग अलग-अलग है। कुछ मछली पकड़ने में इतने उस्ताद होते हैं कि पानी के भीतर मछलियों की तरह तैर लेते हैं और कुछ अपने भारी-भरकम शरीर के कारण पानी के भीतर ज्यादा देर तक नहीं रह सकते। ये अपनी लंबी चोंच के नीचे लटकती हुई बड़ी थैली में मछलियों को छान लेते हैं। इनके पैर की उँगलियाँ आपस में बत्तखों की तरह जुटी रहती हैं जिससे इन्हें पानी में तैरने में बहुत आसानी हो जाती है।

यह उप-परिवार कई परिवारों में बाँटा गया है, लेकिन यहाँ केवल दो परिवारों का वर्णन दिया जा रहा है—

१. जलकाक परिवार—Family Phalacrocoracidae

२. जलसिंह परिवार—Family Pelecanidae

पहले परिवार में पनकौआ और बानवर हैं और दूसरे में हमारे यहाँ के प्रसिद्ध जलसिंह।

जलकाक परिवार

(FAMILY PHALACROCORACIDAE)

इस परिवार के पक्षियों के पैर की सब उँगलियाँ आपस में एक प्रकार की मजबूत झिल्ली से जुटी रहती हैं। ये पानी के भीतर मछलियों की तरह फुर्ती से तैर लेते हैं

और मछलियाँ ही इनका मुख्य भोजन है। ये उड़ने में उतने उस्ताद नहीं होते जितने तैरने में और इनका अधिक समय पानी में ही बीतता है। इनमें से कुछ की चोंच सिर पर मुड़ी हुई और कुछ की नोकीली रहती है।

•

इस परिवार में वैसे तो कई जाति के पक्षी हैं लेकिन यहाँ केवल दो प्रसिद्ध पक्षियों का वर्णन दिया जा रहा है।

जलकौआ

(CORMORANT)

जलकौआ, जैसा उसके नाम से स्पष्ट है, काले रंग का पक्षी है जो अपना अधिक समय पानी में ही बिताता है। पानी में यह उसकी ऊपरी सतह पर ही नहीं रहता बल्कि उसके भीतर भी यह मछलियों की तरह तैरकर अपनी खूराक तलाशता रहता है। इसे हम जलाशयों के किनारे या पानी में गिरे हुए किसी पेड़ की डाल पर पर फैलाये हुए बैठे देख सकते हैं।

जलकौआ हमारे यहाँ का बारहमासी पक्षी है जो हमारे देश के प्रायः सभी भागों में पाया जाता है। यह १० इंच लंबा पक्षी है जिसके नर-मादा एक-जैसे होते हैं। इसके सारे बदन का रंग काला रहता है जिसमें एक प्रकार की हरी चमक होती है। इसका गला सफेद रहता है और डैने के कुछ पर सिलेटी होते हैं। जोड़ा बाँधने का समय आने पर गले की सफेदी गायब हो जाती है लेकिन कुछ सफेद पर सिर पर निकल आते हैं और कुछ महीन सफेद पर गरदन के दोनों बगल भी दिखाई पड़ने लगते हैं। इसकी चोंच लंबी होती है जिसका ऊपरी सिरा कुछ टेढ़ा रहता है। चोंच का रंग भूरा और पैर का कलछौंह रहता है। इसके पैर बत्तखों की तरह जालपाद होते हैं।

जलकौए बड़े तालों झीलों तथा बड़ी नदियों में दिखाई पड़ते हैं। ये कभी कभी अकेले या जोड़े में भी दिखाई पड़ जाते हैं लेकिन इन्हें प्रायः गिरोहों में ही देखा जाता है जहाँ ये या तो पानी में डुबकी लगाकर मछलियाँ पकड़ते रहते हैं या किनारे पर डैने फैलाकर धूप लेते रहते हैं। पानी की सतह पर तैरते समय बत्तखों की तरह इनका पूरा शरीर पानी के ऊपर नहीं रहता बल्कि इनकी गरदन और पीठ का थोड़ा हिस्सा

भी बाहर निकला रहता है। इनका मुख्य भोजन वैसे तो मछली है, लेकिन ये कभी-कभी मेढकों पर भी हाथ साफ कर देते हैं।

इनके जोड़ा बाँधने का समय जुलाई से सितंबर तक है, जब ये हजारों की संख्या में इकट्ठे होकर एक ही जगह अपने घोंसले बनाते हैं। ये छोटी टहनियों से अपने
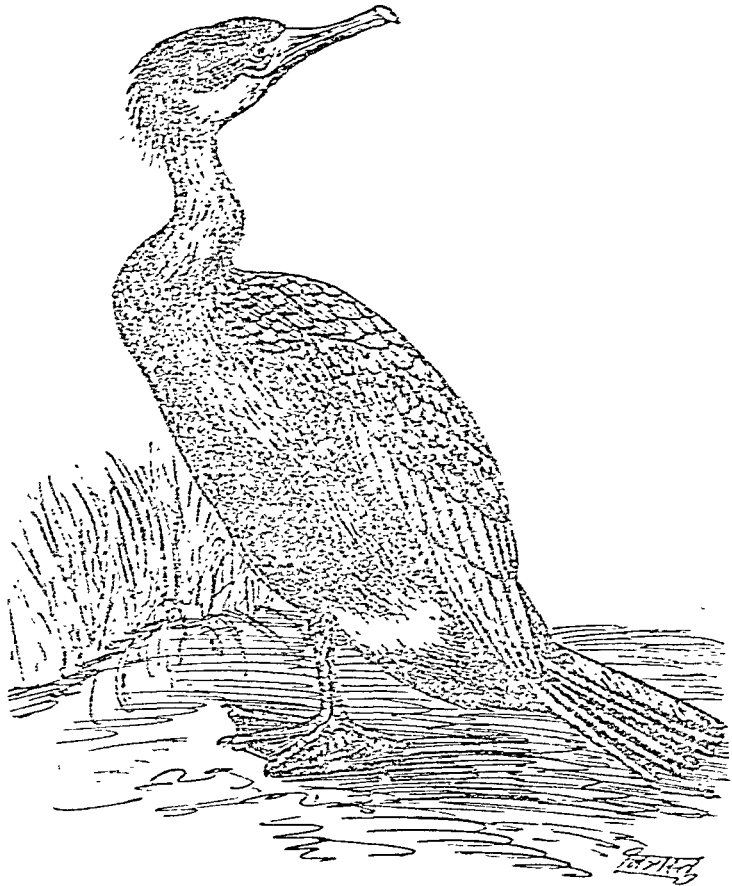
पनकौआ (जलकौआ)

छिछले-से घोंसले बनाते हैं जिनमें मादा चार-पाँच हलके निलछौंह हरे रंग के अण्डे देती है।

बानवर

(DARTER)

बानवर जलकौओं का भाई-बन्धु है। इसे कहीं-कहीं नागिन भी कहते हैं क्योंकि जब यह पानी में तैरता है तो इसका सारा शरीर पानी के भीतर रहता है लेकिन इसकी पतली गरदन जो दूर से साँप-सी दीख पड़ती है पानी के बाहर रहती है। हमारे देश में यह सभी स्थानों में फैला हुआ है और कोई भी तालाब ऐसा नहीं मिलता जहाँ यह शिकार करते किनारे या पानी के बीच किसी ठूँठ पर डैने फैलाये बैठा दिखाई न पड़ता हो। इसकी साँप जैसी पतली और लंबी गरदन और तेज बरछी जैसी पतली चोंच के कारण इसे पहचानने में कोई भी दिक्कत नहीं हो सकती।

बानवर

बानवर हमारे यहाँ का बारहमासा पक्षी है जिसके नर मादा एक जैसे होते हैं। इसके शरीर का रंग काला रहता है जिसपर सफेद भूरा और सिलेटी धारियाँ बिंदियाँ और निशान पड़े रहते हैं। इसकी चोंच और पैर काले होते हैं। चोंच लंबी और नोकीली होती है और पैर आधे जालपाद रहते हैं।

बानवर पानी के भीतर मछलियों की तरह तैर लेते हैं। ये कभी कभी अकेले दिखाई पड़ते हैं और कभी-कभी इनका ५० से १०० तक का गरोह भी रहता है। इनका मुख्य भोजन मछलियाँ हैं जिनको ये डुबकी लगाकर खदेड़ते हैं और अपनी बर्छे जैसी तेज चोंच से पकड़ लेते हैं। मछली को पकड़कर ये पानी के बाहर अपनी गरदन निकालते हैं और

थोड़ा-सा झटका देकर मछली को निगल जाते हैं। इनकी और आदतें जलकौए से मिलती-जुलती होती हैं।

वानवर के जोड़ा बांधने का समय जून से अगस्त तक है जब ये काफी संख्या में एकत्र होकर जलकौओं, बगुलों तथा महाबकों के साथ अपने घोंसले बनाते हैं। ये घोंसले पानी के निकट के किसी पेड़ पर टहनियों द्वारा मचाननुमा बनाये जाते हैं। मादा ऐसे ही घोंसले में तीन-चार अण्डे देती है जो हलके हरछौंह नीले रंग के होते हैं।

जलसिंह परिवार

(FAMILY PELECANIDAE)

इस परिवार में केवल जलसिंह रखे गये हैं जो अपने भारी शरीर के कारण अन्य पक्षियों से अलग ही रहते हैं। ये प्रायः झुंड में रहते हैं और इनकी लंबी चोंच के नीचे एक बड़ी-सी थैली लटकती रहती है जो फैलकर काफी बड़ी हो जाती है। जलसिंह के पैर छोटे और जालपाद होते हैं।

इनका मुख्य भोजन मछलियाँ हैं जिन्हें ये अपना सिर पानी में डुबाकर चोंच के नीचे की थैली में छान लेते हैं।

ये जमीन पर तो कठिनाई से चल पाते हैं, लेकिन तैरने और हवा में उड़ने में उस्ताद होते हैं। इनकी वैसे तो ८-९ जातियाँ हैं, लेकिन यहाँ एक प्रसिद्ध जलसिंह का वर्णन दिया जा रहा है, जो हमारे देश में अक्सर दिखाई पड़ता है।

जलसिंह

(PELICAN)

जलसिंह को कहीं-कहीं हवासिल और कहीं-कहीं पीलो भी कहते हैं। यह हमारे यहाँ का बहुत प्रसिद्ध पक्षी है जो अपने भारी भरकम शरीर के कारण अन्य पक्षियों से भिन्न रहता है।

इसकी बड़ी चोंच और उसके नीचे लटकती हुई बड़ी थैली के कारण इसको पहचानने में जरा भी कठिनाई नहीं होती। जलसिंह हमारे देश में प्रायः सभी ऐसे स्थानों में रहता है जहाँ बड़ी-बड़ी झीलें, ताल और नदियाँ हैं। यह खुश्की पर इतना भारी शरीर लेकर आसानी से नहीं चल पाता, इसीलिए इसका ज्यादा समय पानी में ही बीतता है।

जर्लासिह ५ फट लवा पक्षी है जिसके नर मादा एक जैसे होते है। इसके का रग वैसे तो सफेद रहता है लेकिन इसकी पीठ का पिछला हिस्सा दुम डैने और दुम के नीच का कुछ हिस्सा गुलाबी रहता है। इसके चोटी और पीठ के बड पर भरे रहते है और डैने की उन्नान के कुछ पर कलछौह रहते है। दुम राखीपन लिय भरे रग की रहती हे। इसकी चाच ललछौह पीले रग की और गाढ रहत है।

जर्लासिह

इनका जर्लासिह नाम उचित रखा गया है क्य तालाबो और मछलिया भरी झीलो में जब इनका ग पहुँचता है तो फिर वहाँ इ का एकच्छत्र राज्य हो जा है और थाड ही दिना में ताल्राब का साफ कर देते है

जर्लासिह हमारे यहाँ बारहमासी पक्षी है जि अपन भारी शरीर के कारण हवा में उडन में कठिना जरूर होती है लेकिन एक बा ऊपर उठ जान पर यह बड खूबी से उडता है। यह तैरन म बहुत उम्ताद हाता है

लकिन पानी में बानवर अथवा जलकौए की तरह डुबकी नहीं लगा सकता। इसक मछली पकडन का ढग सबसे निराला है। इसकी ऊपरी चोच ता लबी चपटी और सिरे पर मुडी रहती है लकिन नीच की चाच लचीली हाती है जिसमें एक बडी सी थैली लटकती रहती है जा आवश्यकतानुसार बढ जाती है। अपनी इसी बडी थैली का नीचे करके यह उसम मछलिया को उसी तरह छान-फँसा लेता है जैसे छोटे जाल म मछलिया का मछुए छान लेते है। इसका मुख्य भाजन मछलियाँ है।

इनके घोंसले देखे जा सकते हैं जो किसी ऊँचे पेड़ पर सूखी टहनियों से बनाये जाते हैं। एक पेड़ पर इनके ८-१० घोंसले रहते हैं जिनमें मादा तीन अण्डे देती है। ये अण्डे पहले तो सफेद रहते हैं, लेकिन कुछ दिन बाद भूरे या कलछौंह हो जाते हैं।

हंस वर्ग

(ORDER ANSIRIFORMES)

यह वर्ग काफी बड़ा है जिसमें सब प्रकार के हंस और छोटी-बड़ी बत्तखें रखी गयी हैं।

हंस और बत्तखें यद्यपि बक और महाबकों के भाई-बन्धु हैं, लेकिन छिछले पानी और कीचड़ में अपना सारा समय बिताने के कारण जिस प्रकार बकों और महाबकों की टाँगें लंबी हो गयी हैं; उसी तरह अधिकतर पानी में रहने के कारण बत्तखों की टाँगें छोटी और जालपाद हो गयी हैं।

यह वर्ग वैसे तो दो उपवर्गों में बाँटा गया है, लेकिन इसका एक उपवर्ग बहुत छोटा है और उसमें छोटी जाति के विदेशी पक्षी हैं। इसलिए यहाँ केवल दूसरे हंस-उपवर्ग का ही वर्णन दिया जा रहा है।

हंस उपवर्ग

(SUB ORDER ANSERES)

हंस-उपवर्ग में सब प्रकार की बत्तखें और हंस रखे गये हैं जो अपना सारा समय करीब-करीब पानी में ही बिताते हैं। इसीलिए ये सब जालपाद होते हैं और इनकी टाँगें छोटी होती हैं। अपनी छोटी टाँगों के कारण इनको खुश्की पर चलने में कठिनाई जरूर होती है, लेकिन हवा में ये बड़ी तेजी से उड़ लेते हैं। इनकी उड़ान बहुत लंबी होती है और उड़ते समय ये तीर के फल की शकल बनाकर उड़ते हैं।

इनमें ज्यादा पक्षी तो शाकाहारी हैं जो घासपात से अपना पेट भरते हैं, लेकिन थोड़े ऐसे भी हैं जो मछली आदि खाते हैं। मुख्य भोजन घासपात होने के कारण बत्तखों और हंसों की चोंच की बनावट इस प्रकार की होती है कि उन्हें इस काम में आसानी हो जाय। उनकी चोंच और जबान के किनारे कटावदार रहते हैं जिससे घास-पात

फिसल न जाय और ये उन्हें आसानी से नोच सकें। चोच के ऊपरी हिस्से पर एक प्रकार का खोल चढा रहता है जिसका सिरा बहुत कडा और नोकीला रहता है।

इस उपवर्ग में एक ही परिवार है जो हस परिवार कहलाता है।

हस परिवार

(FAMILY ANTIDAE)

हस परिवार में हस बत और सब प्रकार की छोटी-बडी बत्तखें आती हैं जिनकी विशेषताओं का वर्णन ऊपर हो चुका है।

हस अपनी लबी गरदन और सुन्दर शरीर के कारण पक्षियो का राजा माना जाता है। हमारे देश में हस बहुत कम आते है। इनकी दो एक जातिया कश्मीर या नेपाल तक कभी कभी पहुँच जाती हैं लेकिन इससे आगे इन्हें नही देखा जा सकता।

हसो की ८-१० जातिया ससार भर में पायी जाती हैं जिनमें ज्यादा सख्या सफेद हसो की ही है। एक जाति काले और दूसरी जाति चितकबरे हसो की भी है लेकिन ये सब विदेश के पक्षी हैं।

हस पानी के भीतर नही तैरते लेकिन वे अपनी लबी चोच पानी के भीतर डाल कर घासफूस की जडें कद्दुए सूतिया और पानी के कीडे मकोडे खाया करते हैं। यहा केवल एक हस का वर्णन दिया जा रहा है।

बतें हस से छोटी होती हैं लेकिन इनका कद बत्तखो से बडा होता है। इनकी बनावट बत्तखो की तरह न होकर हसो से ज्यादा मिलती-जुलती रहती है और उनकी गरदन भी काफी लबी रहती है। बतो की चोच जड से आगे की ओर काफी ढलुई रहती है और उनके किनारे काफी कडे और कटावदार रहते हैं। ये ज्यादातर पानी में रहती हैं लेकिन दिन को और चराई के समय इन्हें रेत या जलाशयो के किनारे के खेतो में भी देखा जा सकता है।

बतो की वैसे तो कई जातिया हैं लेकिन यहा उनमें से केवल दो बतो का ही वर्णन दिया जा रहा है जो हमारे यहां प्रतिवर्ष जाडे के मौसम में लाखो की सख्या में आती हैं।

बत्तखो का कद हस और बतो से छोटा होता है। इनको दो भागो में बाँटा जा सकता है। पहली में वे बत्तखें हैं जो बतो और हसो की तरह पानी के भीतर नहीं तैरती और पानी के ऊपर ही तैरकर अपना पेट भरती रहती हैं और दूसरी वे बत्तखें

हैं जो पानी के भीतर पनडुब्बियों अथवा जलकौओं की तरह तैरने में उस्ताद होती हैं। इनमें बुड़ार और लालसर आदि मुख्य हैं।

हंस

(MUTE SWAN)

हंस हमारे यहाँ का सबसे सुन्दर पक्षी है जिसके वर्णन से हमारा साहित्योद्यान भरा पड़ा है। इसकी वैसे तो कई जातियाँ हैं, लेकिन हमारे देश में केवल मूक हंस जाड़े में कश्मीर के आसपास आकर फिर वहीं से वापस चला जाता है।

यह सुन्दर पक्षी हमारे देश का मौसमी पक्षी है जो यहाँ उत्तर की ओर से रावलपिंडी और सिंध होकर कश्मीर तक आ जाता है। इसके आगे फिर इसके आने का कोई प्रमाण नहीं मिलता।

मूक हंस

इस हंस की लंबाई करीब पाँच फुट रहती है जिसके दोनों डैनों का फैलाव सात फुट तक पहुँच जाता है। इसका वजन भी नौ-दस सेर तक हो जाता है। इसके नर-मादा एक रंगरूप के रहते हैं, लेकिन हंस हंसिनी से कुछ बड़ा होता है और उसकी ऊपरी चोंच की जड़ के पास, प्रौढ़ होने पर, एक कुब्बक-सा निकल आता है।
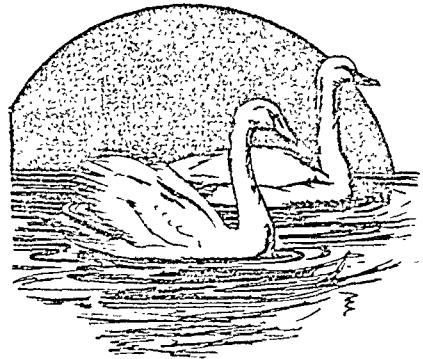
हंस का रंग दूध-सा सफेद रहता है, लेकिन ज्यादा उम्र हो जाने पर इसकी पीठ पर हलका बादामी रंग फैल जाता है। इसकी चोंच नारंगी रंग की होती है, लेकिन उसकी नोक, ऊपरी चोंच के किनारे और चोंच की जड़ काली रहती है। पैर भी काले ही रहते हैं।

हंस, जैसा कुछ लोगों का विश्वास है, मोती नहीं चुँगते बल्कि अन्य बड़ी बतों की तरह घास-फूस और काई आदि खाते हैं। इनमें दूध-पानी के अलग करने की भी क्षमता नहीं होती।

इनके अण्डा देने का समय, अन्य बतों की तरह, मई से जुलाई के बीच रहता है।

बड़ी बत

(GREY LAG GOOSE)

बड़ी बत सकल में कद में कुछ बड़ा होती है लेकिन इसकी सकल से कम यह हमारे देश में आती है। सवन की तरह यह भी हमारे देश की मौसमी चिड़िया है यहाँ जाड़े के प्रारम्भ में उत्तर की ओर से आकर जाड़ा समाप्त होने पर फिर उ ओर लौट जाती है। यह डाई फुट से कुछ लंबी होती है और इसके नर-मादा ए रंग-रूप के रहते हैं।
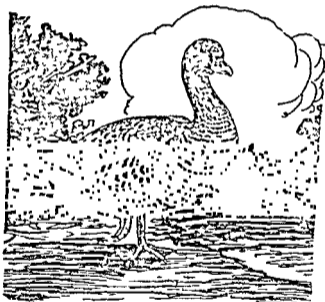
बड़ी बत

बड़ी बत का ऊपरी हिस्सा गाढ़ा कत्यई रहता है जिसमें पीठ का पिछला हिस्सा राखी रहता है। इसका सीना और पेट का अगला हिस्सा राखीपन लिये सफेद रहता है जिस पर कत्यई पटरियाँ पड़ी रहती हैं। पेट का निचला हिस्सा सफेद रहता है। इसका सिर और गरदन कत्यई रहती है और पंख काले रहते हैं, चोंच हल्की गुलाबी और पैर धुमैले लाल रंग के रहते हैं।

वतें भी सवन की तरह गरोहों में रहती हैं और उन्हीं की तरह ये तालावों से ज्यादा बड़ी नदियों का किनारा पसन्द करती हैं जहाँ के कछारों के खेतों में इनकी चराई शाम होते ही शुरू हो जाती है। रात भर चरकर सारे दिन रेत या किसी टापू पर इनका झुंड बैठा ऊँघा करता है। इनका मुख्य भोजन घास-पात और फसल के नरम कल्ले हैं।

वड़ी वतों का भी, सवन की तरह, हमारे यहाँ काफी शिकार होता है। इनका मांस रूखा और मामूली होता है। ये वजन में करीव साढ़े तीन सेर की होती हैं।

हमारे यहाँ की मौसमी चिड़िया होने के कारण बतें इस देश में अण्डे नहीं देतीं। इनके अण्डा देने का स्थान साइबेरिया और मंगोलिया है, जहाँ मादा नरकुल और खर-पतवार के वीच घास-फूस का सुन्दर घोंसला वनाकर १०-१२ अण्डे देती है, जिनका रंग पिलछौंह सफेद रहता है।

सवन

(BARRED HEADED GOOSE)

सवन हमारे देश की सबसे प्रसिद्ध वत है जिसे सोन, काज और कलहंस भी कहा जाता है। शकल-सूरत और शरीर की वनावट में हंसों की तरह होकर भी यह कद में उनसे छोटी होती है। इसके राखी रंग और माथे पर की दो काली पट्टियों से इसे वड़ी आसानी से पहचाना जा सकता है।
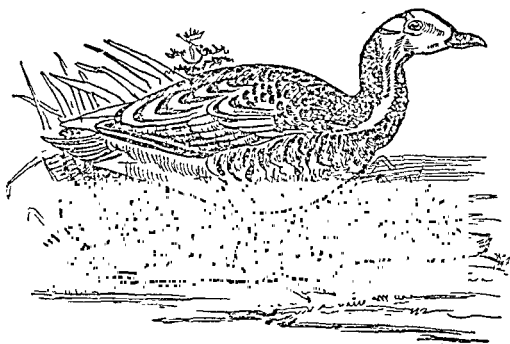
सवन

सवन हमारे यहाँ की मौसमी चिड़िया है जो हमारे यहाँ जाड़ों के प्रारंभ में उत्तर की ओर से आकर जाड़ा समाप्त होते-होते फिर उसी ओर वापस चली जाती है। इसके नर-मादा एक-जैसे होते हैं। सवन लगभग ढाई फुट लंवी सुन्दर चिड़िया है, जिसके शरीर का ऊपरी हिस्सा राख के रंग का और नीचे का सफेद रहता है। इसकी पीठ और कंधों पर पिलछौंह सफेद धारियाँ पड़ी रहती हैं और सफेद

सिर पर आँखों के पीछे दो काली पट्टियाँ रहती है। डैने भूरे होते है जिनके सिरे क रहते है और दुम पिलछौंह राखी रहती है। इसका सीना सफेदी मायल भूरे रग व चोच पीली और पैर गुलाबी रहते है।

सवन झुड मे रहनेवाली चिडिया है जिसे तालावो से ज्यादा बडी नदियो पास-पडोस पसन्द है, जहाँ कछारो के खेतो मे इनका गरोह शाम होते ही चराई लिए पहुँच जाता है। ये दिन में प्राय रेत में बैठी दिखाई पडती है। सवन हमा यहाँ की प्रसिद्ध शिकार की चिडिया है, जिसका हमारे यहाँ काफी सख्या में प्रतिव शिकार होता है। इसका मास रूखा और मामूली होता है और वजन में यह करी तीन सेर की होती है। सवन का मुख्य भोजन घास पात, काई और कमल नरम कल्ले है।

मौसमी चिडिया होने के कारण सवन हमारे यहाँ अण्डे नही देती। इनके घोसल बनाने का स्थान साइबेरिया तथा मगोलिया है, जहाँ ये घास और नरकुलों के बीच अपना घास फूस का घोसला बनाती है। मादा उसमें १०-१२ अण्डे देती है जो पिल छौंह सफेद रहते है।

नीलसर

(MALLARD)

नीलसर हमारे यहाँ की बहुत सुन्दर और प्रसिद्ध बत्तख है जो अपनी निलछौंह गाढे हरे रग की गरदन के कारण अन्य बत्तखो से एकदम भिन्न रहती है। मादा नर से कुछ छोटी होती है। इसके नर दो फुट लबे होते है जिनका वजन करीब डेढ सेर रहता है। इसका सिर और गरदन का ऊपरी आधा हिस्सा गाढा चमकीला हरा रहता है जिसमें नीलेपन की झलक रहती है। गरदन का निचला हिस्सा भूरी लकीरो से भरा रहता है जो बीच में एक सफेद कठे से अलग रहता है। पीठ भूरी चितली रहती है और दुम के पास का कुछ हिस्सा हरा रहता है। डैने के पर भूरे चितले और गाढे नीले रग क होते है और दुम राखी, भूरी रहती है जिसके बीच के चार पर ऊपर की ओर घूमे-घूमे रहते है। सीना और छत्ता गाढा भूरा या कत्थई और पेट राखीपन लिये सफेद रहता है। मादा का सारा ऊपरी हिस्सा भूरा, परो के किनारे हलके कत्थई, सिर और गरदन सदली जिसमें कलछौंह लकीरे रहती है, सीना और निचला हिस्सा

पिलछौंह भूरा रहता है जो कत्थई चित्तियां और लकीरों से भरा रहता है। इसकी चोंच का अगला हिस्सा हरापन लिये राखी और निचला पिलछौंह रहता है। पैर नारंगी रंग के होते हैं।
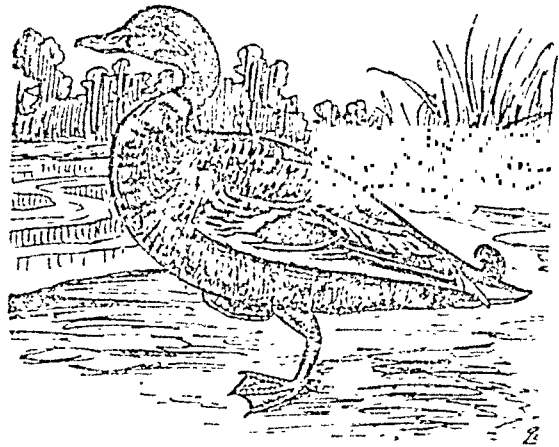
नीलसर

नीलसर प्रायः ८-१० के गोल में रहते हैं लेकिन अण्डा देने का समय निकट आने पर ये जोड़े में रहने लगते हैं। इनकी चराई का वक्त रात है और दिन को इन्हें भी सवनों की तरह किनारे पर ऊँघते देखा जा सकता है। ये जमीन पर चलने, पानी में डुवकी लगाने और हवा में उड़ने में वड़े उस्ताद होते हैं। इनका मुख्य भोजन पानी के नरम पौधे, जड़ें, कीड़े-मकोड़े और छोटी मछलियाँ हैं।

नीलसर की काफी वड़ी संख्या गरमियों में कश्मीर की झीलों में रह जाती है जहाँ ये मई-जून में घास-फूस का घोंसला वनाते हैं जिसमें मादा ९-१० अण्डे देती है। ये अण्डे हरे रंग के होते हैं।

सीखपर
(PINTAIL)

सीखपर हमारे यहाँ की वहुत प्रसिद्ध वत्तख है जो चैती के वाद सबसे अधिक संख्या में प्रतिवर्ष हमारे देश में आती है। इसको कहीं-कहीं पुछार भी कहा जाता है। यह हमारे यहाँ की मौसमी वत्तख है जो हर साल जाड़ों के प्रारंभ में यहाँ आकर गरमियों के शुरू में यहाँ से फिर उत्तर की ओर लौट जाती है। इसकी दुम के पीछे दो सींक-जैसे नोकीले पर निकले रहते हैं जिनसे इसे पहचानने में कठिनाई नहीं होती।

इसके नर-मादा का रंग-रूप भिन्न रहता है और मादा कद में नर से कुछ छोटी रहती है। नर का सिर और गरदन हलका कत्थई रहता है, जिसमें कान के पास हरी

और बैंगनी चमक होती है। इनकी पीठ पतली काली और कत्थई धारियों से भ रहती है और डैने काले रहते हैं। दुम भूरी और मीकनुमा बड़े हुए दोनों पर का होते हैं। सीना और पट सफेद रहता है, लेकिन बगली हिस्से में कलछौंह लकीरें प रहती हैं। पट का निचला हिस्सा कजई चित्तियों से भरा रहता है। मादा का सि और गरदन कत्थई, जिसमें धुमैली लकीरें, ऊपरी हिस्सा केसरिया भूरा और निचल हलका भूरा रहता है। निचले हिस्से में घनी भूरी चित्तियाँ पड़ी रहती हैं इनकी चोंच काली और टाँग गाढ़ सिलेटी रहती है।

सीखपर

सीखपर जाड़ा में हमारी बड़ी झीलों और तालों में काफी संख्या में फैल जाते हैं, जहाँ से वे रात में सब तरह के ताल-तलैयों में चराई के लिए जाकर दिन में फिर उन्हीं बड़ी झीलों में लौट आते हैं जहाँ का पानी साफ रहता है।

सीखपर प्राय २०-२५ के गरोह में सौ दो सौ तक के झुंड में रहते हैं। ये उड़ने और तैरने में बहुत उस्ताद होते हैं। इनका मुख्य भोजन धान और घास फूस वगैरह है। इसके अलावा ये कीड़े-मकोड़े, कछुए और घोंघे भी खा लेते हैं। इनका मांस सब बत्तखों में अधिक स्वादिष्ठ होता है और इसी लिए इनका यहाँ काफी शिकार भी होता है।

ये मौसमी बत्तखें हैं जो हमारे देश में अण्डे न देकर उत्तर एशिया के भागों में अण्डे देती हैं। अण्डा देने का समय मई-जून है जब ये घास-फूस का घोंसला बनाती हैं जो घने नरकुलों के दलदलों में जमीन पर रखे रहते हैं। मादा इसमें ७-८ पिलछौंह रंग के अण्डे देती है।

चैती

([illegible])

[illegible]

चैती लगभग १४, १५ इंच की छोटी बतख है जिसके नर-मादा का एकरूप नहीं होता। नर का सिर और गरदन कत्थई रंग का होता है जिसमें आँखों पर से दोनों ओर एक-एक चौड़ी हरी पट्टी पड़ी रहती है जिसके किनारे पीली धारी रहती है, पीठ और बदन के दोनों बगल का हिस्सा पतली-पतली काली और सफेद धारियों से भरा रहता है; डैने भूरे होते हैं जिन पर चितकबरी हरी और काली पट्टी पड़ी रहती है।

चैती

इसकी दुम भूरी तथा सीना और पेट सफेद रहता है, लेकिन सीने पर काली और सिलेटी चित्तियां भरी रहती हैं।

मादा का सारा ऊपरी हिस्सा भूरे रंग का होता है, लेकिन डैने और नीचे का हिस्सा नर की तरह रहता है। सीने पर काली चित्तियों की जगह भूरी चित्तियाँ ले लेती हैं और सिर भी भूरी चित्तियों से भरा रहता है। इसकी चोंच गहरी सिलेटी और पैर भूरापन लिये सिलेटी रंग के होते हैं।

चैती हमारे यहाँ सब तरफ के ताल-तलैयों, नदियों, झीलों, नहरों तथा बरसात में पानी से भरे हुए गड्ढों में दिखाई पड़ती है और इनसे हमारे सभी जलाशय भरे रहते हैं। ये वैसे तो ४-६ के छोटे छोटे गरोहों में रहती हैं लेकिन बड़े तालों और झीलों में इनके सैकड़ों के झुंड दिखाई पड़ जाते हैं। ये जलाशयों के किनारे छिछले पानी में अक्सर चरती दिखाई पड़ती हैं और रात में पानी के आस पास के धान के खेतों में चरने चली जाती हैं। इनका मुख्य भोजन घास-पात धान नरम कल्ले, दाना और सेवार आदि हैं लेकिन ये कीड़े मकोड़े और घोंघे स्तुए आदि भी खाती हैं जिनको ये कीचड़ में अपनी चोंच गड़ाकर पकड़ने में काफी समय लगाती हैं। इनकी उड़ान बहुत तेज होती है और ये पानी पर उतरने से पहले हवा में काफी गिरहबाजी दिखाती हैं। इनका मांस बहुत स्वादिष्ठ होता है।

चैती के जोड़ा बाँधने का समय अप्रैल से जून तक रहता है, लेकिन ये हमारे देश में अण्डे नहीं देतीं। इनका घोसला घास फूस का होता है जो घास और नरकुलों के बीच पानी के किनारे जमीन पर रखा रहता है। मादा इसमें ८ से १२ तक अण्डे देती है जो हल्के बादामी या मटमैले रंग के होते हैं।

नकटा

(COMB DUCK)

नकटा हमारे यहाँ की प्रसिद्ध बारहमासी बड़ी बत्तख है जो हमारा देश छोड़कर कहीं बाहर नहीं जाती। इसे पेड़ की बत्तख भी कहा जाता है क्योंकि यह अपना काफी समय ताल-तलैया के किनारे के पेड़ों पर व्यतीत करती है। यह हमारे देश में प्रायः सभी जगह पायी जाती है लेकिन ऊँचे पहाड़ इसे पसन्द नहीं हैं। इसे इसकी काली पीठ चित्तीदार गरदन और चोंच पर उठे हुए कुब्बक के कारण पहचानने में ज्यादा दिक्कत नहीं होती।

नकटा ३० इंच का पक्षी है जिसके नर और मादा रंग रूप में करीब करीब एक जैसे होते हैं। नर का ऊपरी हिस्सा काला रहता है जिसमें हरी और नीली झलक रहती है। पीठ का निचला हिस्सा गहरे भूरे रंग का रहता है और सीना और नीचे का कुल हिस्सा सफेद होता है। सिर और गरदन सफेद रहती है जिस पर काली चित्तियाँ पड़ी रहती हैं। मादा कद में कुछ छोटी होती है और उसकी चोंच पर नर की तरह कुब्बक नहीं उठा रहता। उसके सिर और गरदन पर ज्यादा चित्तियाँ रहती हैं।

नकटा की चोंच गहरे भूरे रंग की और पैर हरछौंह सिलेटी रंग के रहते हैं। नर की चोंच के ऊपर एक कुब्बक-सा उठा रहता है जो चोंच के ही रंग का होता है।
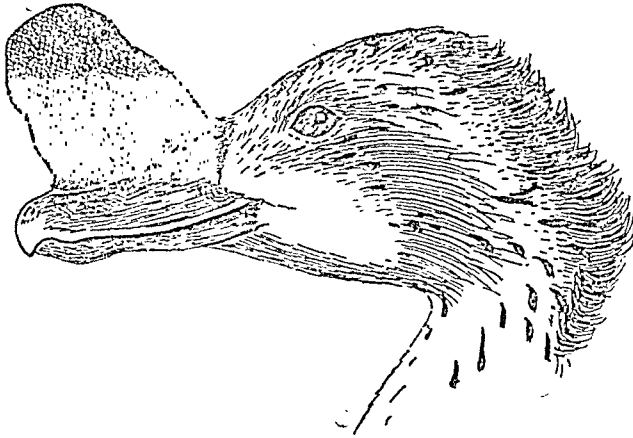
नकटा

नकटा को ऐसे जलाशय ज्यादा पसन्द हैं जिनमें बीच-बीच में घास और नरकुल हों। ये प्रायः ४ से २० तक के गरोह में दिखाई पड़ते हैं लेकिन कभी-कभी इनके बड़े-बड़े झुंड भी देखे जाते हैं। जोड़ा बाँधने के समय ये जोड़े में हो जाते हैं लेकिन उसके बाद फिर इनका गरोह बन जाता है। ये तैरने और डुबकी लगाने में तो उस्ताद होते ही हैं, साथ ही साथ खुश्की पर चलने में और पेड़ों पर बसेरा लेने में भी माहिर होते हैं। इनका मुख्य भोजन तो घास-पात, धान और काई, सेवार आदि है, लेकिन ये मेढक, मछली और कीड़े-मकोड़े भी खा लेते हैं। इनका मांस मामूली किस्म का होता है।

बरसात में ये पानी के किनारे के किसी पेड़ पर या खोखले तने में अपना घास-फूस का घोंसला बनाते हैं जिसमें मादा १०-१२ अण्डे देती है। ये अण्डे मटमैले सफेद रहते हैं जिन पर एक प्रकार की चमक होती है।

सुरखाब

(RUDDY SHELDRAKE)

सुरखाब के बहुत-से नाम हमारे यहाँ प्रसिद्ध हैं। ये चक्रवाक, चकई, कोक भी कहलाते हैं और हमारे साहित्य में कवियों ने इनका नाम अमर कर दिया है।

सुरखाब हमारे यहाँ की प्रसिद्ध मौसमी बत्तख है जो जाड़ों में तालाबों के अलावा नदियों में भी काफी संख्या में दिखाई पड़ती है। यह भी हमारे यहाँ शुरू जाड़े में बाहर से आकर गरमी शुरू हो जाने पर यहाँ से उत्तर की ओर लौटता है। अन्य बत्तखों की अपेक्षा ये ढीठ होते हैं और अक्सर इनके जोड़े बस्तियों के निकट के जलाशयों में तैरते दिखाई पड़ते हैं। इन्हें इनके नारंगी रंग की पोशाक के कारण बड़ी आसानी से पहचाना जा सकता है।

सुरखाब

सुरखाब दो फुट लम्बा पक्षी है जिसके नर-मादा के रंग रूप में थोड़ा ही भेद रहता है। नर के सारे बदन का रंग सुनहरा या नारंगी भूरा होता है लेकिन सिर और गरदन बादामी रहती है। इसकी गरदन के चारों ओर काला कंठा रहता है और पीठ का पिछला हिस्सा और दुम काली रहती है। इसके डैने का सिरा काला, बीच का हरा और नीचे का हिस्सा हल्के सफेद रंग का होता है।

मादा का रंग नर से कुछ हल्का रहता है और उसके गले में नर की तरह काला कंठा नहीं रहता। इसकी चोंच और पैर काले होते हैं।

सुरखाब हमारे यहाँ जाड़ों में दक्षिण भारत को छोड़कर सारे देश में फैल जाता है और यहाँ से सबसे बाद बत्तखों के वापस होता है। यह वैसे तो जोड़े में रहता है, लेकिन कभी-कभी इसके बड़े झुण्ड भी दिखाई पड़ते हैं जो छिछले पानी के किनारे या रेतों पर दिन में आराम करते रहते हैं।

इनका मुख्य भोजन वैसे तो घास-पात, गल्ला, जड़ें और सेवार आदि हैं, लेकिन ये छोटी मछलियाँ और घोंघे-कटुए आदि भी खाते हैं। कुछ लोगों का विश्वास

है कि ये मुर्दों का सड़ा मांस भी खाते हैं। इनका मांस मामूली और विसैंधा होता है।

सुरखाब भी मौसमी पक्षी होने के कारण हमारे देश में कश्मीर को छोड़कर और कहीं अण्डा नहीं देता। यह अण्डा देने के लिए घोंसला बनाने का कष्ट नहीं उठाता और इसकी मादा पहाड़ के सूराखों में जमीन को घास-फूस से नरम करके मई-जून में ८-१० अण्डे देती है, जो पिलछौंह या गंदे सफेद होते हैं।

शाह चकवा

चकवा का एक और निकट सम्वन्धी पक्षी हमारे यहाँ उत्तरी भारत तक जाड़ों में आता है जिसे शाह-चकवा (Sheldrake) कहते हैं। यह बहुत ही सुन्दर पक्षी है और इसको पहचानने में तनिक भी कठिनाई नहीं होती। यह बहुत कम संख्या में हमारे यहाँ आता है और इसी कारण यह हमको वहुत कम दिखाई पड़ता है। इसके वदन का रंग सफेद रहता है जिस पर हरी, काली और कत्थई पट्टियाँ पड़ी रहती हैं। इसकी और सब आदतें सुरखाव या चकवे से मिलती-जुलती होती हैं।
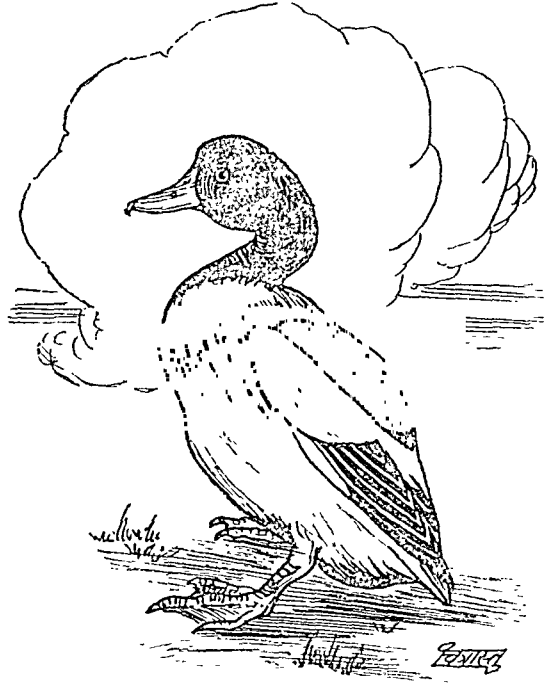
तिदारी

(SHOVELLER)

तिदारी भी हमारे यहाँ की मौसमी वतख है जो हमारे यहाँ शीतकाल के प्रारम्भ में आकर जाड़ा खतम होते-होते यहाँ से वापस चली जाती है। यह वहुत

यही बत्तख है जो गंदे पानी में ही अपना अधिक समय बिताती है। यहाँ यह अपनी चौड़ी और सख्त चोंच से कीचड़ में से मछलियों, घोंघों, कछुओं, कीड़े-मकोड़ों और सेवार आदि से अपना पेट भरती रहती है। इसकी चपटी चोंच के कारण इसको पहचानने में जरा भी दिक्कत नहीं होती।

तिदारी २० इंच की छोटी बत्तख है जिसके नर-मादा अलग-अलग रंग रूप के होते हैं। नर की गरदन और सिर चमकीले हरे और पीठ चितकबरी भूरी रहती है। इसका सीना सफेद तथा पेट गेरुए रंग का रहता है और डैनों में भूरे, नीले, सफेद और सिलेटी पर रहते हैं।

तिदारी

मादा का रंग हल्का रहता है और डैनों में नर की तरह कई रंग के पर होते हुए भी उनके रंग में धूमिलपन रहता है। इसका सारा बदन भूरा, चितकबरा होता है। नर की चोंच काली और मादा की भूरी रहती है लेकिन दोनों के पैर गुलाबी रहते हैं।

तिदारी काफी ढीठ होती है और इसे लोग इसकी गंदी आदत और खूराक के कारण बहुत कम मारते हैं। इसका मांस भी रद्दी किस्म का होता है।

मौसमी बत्तख होने पर भी तिदारी लौटते समय कश्मीर की झीलों में रह जाती है और मई से जुलाई तक वहीं घास-फूस का घोसला बनाकर १०-१२ अण्डे देती है जो रंग में हल्के हरे रंग के होते हैं।

वुड़ार

(POCHARD)

वुड़ार को डूबा भी कहते हैं। ये उस श्रेणी की वत्तखें हैं जो पानी में डुवकी लगाकर, और मछलियों की तरह तैरकर अपनी खूराक एकत्र करती हैं। इनके डैने अन्य वत्तखों की अपेक्षा छोटे होते हैं और उड़ते समय उनको जल्दी-जल्दी चलाने से एक प्रकार की तेज आवाज होती है जिससे इन्हें पहचानने में देर नहीं लगती।

वुड़ार हमारे यहाँ की डुवकी लगानेवाली प्रसिद्ध मौसमी वत्तख है जो जाड़े के प्रारम्भ में यहाँ आकर जाड़े के अन्त तक यहाँ से उत्तर की ओर लौट जाती है। इसकी लम्वाई करीव डेढ़ फुट के होती है, लेकिन नर-मादा के रंग-रूप में थोड़ा भेद रहता है। मादा कद में नर से छोटी होती है।

नर वुड़ार का सिर और गरदन खैरी रहती है। उसका सीना चमकीला काला होता है और पेट सफेद रहता है। दुम का ऊपरी और निचला हिस्सा काला रहता है और शरीर का वाकी कुल हिस्सा पिलछौंह सिलेटी रहता है जिस पर पतली-पतली काली धारियाँ पड़ी रहती हैं। डैने भूरे होते हैं और चोंच और पैर सिलेटी रहते हैं।
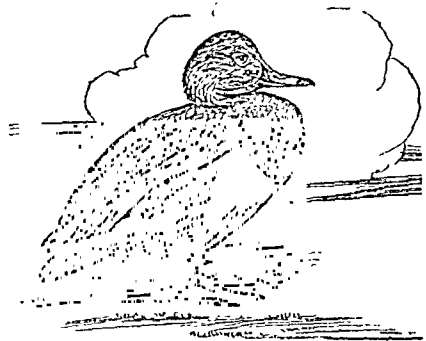
वुड़ार

मादा का सिर, गरदन और सीना कत्थई, पेट सफेद और वाकी सारा ऊपर और वगल का हिस्सा सिलेटी रहता है जिस पर महीन काली धारियाँ पड़ी रहती हैं। डैने भूरे, दुम का ऊपरी हिस्सा कलछौंह और नीचे का भूरा रहता है।

वुड़ार छोटी पनडुव्वी वत्तख है जिसका मुख्य भोजन पानी में उगनेवाली घास, नरकुल आदि पौधों की जड़ें हैं। वुड़ार गरोहों में रहना ज्यादा पसन्द करती हैं और ज्यादातर वड़ी झीलों में उतरती हैं, जहाँ का पानी गहरा और साफ रहता है। नकी चराई का समय रात में ही रहता है और दिन का समय ये ज्यादातर पानी

पर ऊँघते हुए बिताती हैं। उडने में ये सुस्त जरूर होती हैं लेकिन एक बार हवा में उठ जाने पर ये बहुत तेज उडती हैं। इनका मांस अच्छा होता है।

बुडार हमारे देश में अण्डा नहीं देती। इसके लिए इन्हें फिर उत्तर की ओर लौट जाना पडता है, जहाँ मादा घास-फूस का घोंसला बनाकर किसी घनी घास या नरकुल के बीच या किनारे ही जमीन पर उसे रख देती है और समय आने पर उसमें १०-१२ अण्डे देती हैं। ये अण्डे हरछौंह राख के रंग के होते हैं।

लालसर

(RED CRESTED POCHARD)

बुडार की तरह लालसर भी हमारे यहाँ की प्रसिद्ध पनडुब्बी बत्तख है जो जाडों में आकर जाडा खतम होते-होते फिर यहाँ से लौट जाती है। यह दक्खिन की ओर हैदराबाद के आगे नहीं जाती और वहीं से वापस लौट आती है। लालसर को उसकी ललछौंह भूरी चोटी और गरदन तथा चटक सिंदूरी रंग की चोंच के कारण पहचानने में जरा भी कठिनाई नहीं होती। कहीं-कहीं इसी सुर्ख चोंच के कारण इसे लालचोंच भी कहते हैं।

लालसर २०-२१ इंच लम्बा पक्षी है जिसके नर-मादा के रंग-रूप में फर्क रहता है। नर का सिर और पूरी गरदन ललछौंह भूरी, पीठ, डैने और दुम बादामी, पंख का निचला तथा बदन के दोनों बगल के भाग सफेद और सीना तथा पेट काला रहता है। सिर पर ललछौंह चोटी रहती है। इसकी चोंच चटक सिंदूरी और पैर नारंगी रंग के होते हैं। मादा का ऊपरी हिस्सा हलका बादामी और सिर तथा गरदन गाढे बादामी रंग की होती है। सीना और बगल के दोनों हिस्से भी बादामी ही रहते हैं, लेकिन पेट का रंग कजई या राखी रहता है।

लालसर डुबकी लगानेवाली बत्तख है। इससे उन्हें ऐसे गहरे ताल ज्यादा पसन्द आते हैं जिनमें सेवार आदि फैले हों। ये वैसे तो अक्सर १०-१२ की टोलियों में रहती हैं लेकिन बडी झीलों और तालाबों में, जहाँ इन्हें काफी सहूलियत मिल जाती है, इनका हजारों का गोल भी दिखाई पडना असम्भव नहीं।

लालसर बहुत सुन्दर पक्षी हैं जिनका मुख्य भोजन घासपात, काई, सेवार, पानी के पौधों की जडें और नरम कल्ले हैं लेकिन इसके अलावा ये कीडे-मकोडे और

घोंघे, कछुए भी खा लेते हैं। इनकी चराई का समय वैसे तो रात है लेकिन ये सवेरे भी काफी समय तक चरते हैं। दिन में कुड़ार की तरह ये ताल के बीच में पानी में ऊँघते और आराम करते रहते हैं। इनका मांस स्वादिष्ट होता है।
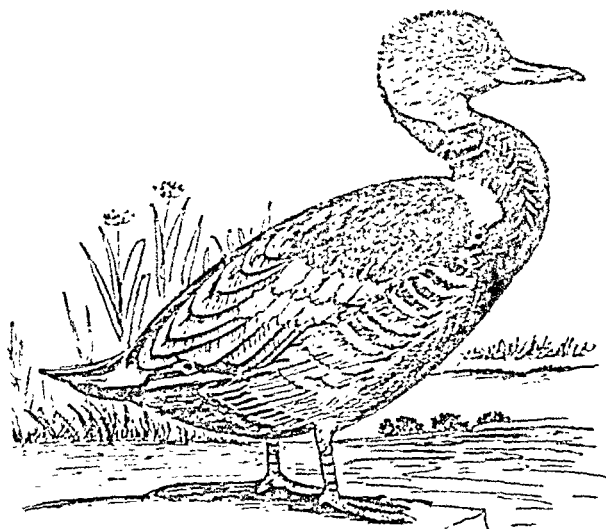
लालसर

इसकी मादा हमारे देश में अण्डे नहीं देती। इसके लिए इसे पश्चिमोत्तर प्रान्त की ओर जाना पड़ता है। वहाँ किसी जलाशय के किनारे या टापू पर अपने घास-फूस के घोंसलों को जमीन पर रखकर उसीमें वह मई-जून में ८-१० अण्डे देती है जो हलके हरे रंग के होते हैं।

पतेरा

(WEGEON)

पतेरे को कहीं-कहीं छोटा लालसर भी कहते हैं। यह भी हमारे यहाँ की प्रसिद्ध मौसमी बत्तख है जो जाड़ों में यहाँ आकर गरमी शुरू होते-होते यहाँ से लौट जाती है।

पतेरा लगभग डेढ़ फुट लम्बा होता है जिसके नर-मादा अलग-अलग रंग-रूप के रहते हैं। नर का माथा और चोटी संदली पीली और बाकी सिर और गरदन

कत्थई लाल रहती है जिस पर काली चित्तियाँ पड़ी रहती हैं। पीठ पर काली और सफेद धारियों की लहरियाँ-सी रहती हैं। इसकी ठुड्डी और गला काला, सीना लाल और पेट सफेद रहता है। दाना के बगली हिस्से काली और सफेद लकीरों से भरे रहते हैं। पर काले रहते हैं, लेकिन उनके किनारे सफेद होते हैं। डैनों का रंग राखीपन लिये भूरा रहता है जिन पर तीन स्पष्ट पट्टियाँ पड़ी रहती हैं। इनमें से ऊपर-नीचे की पट्टियाँ काली और बीच की चटक हरी रहती है। इसकी चोंच सिलछौंह सिलेटी और पैर गाढ़े सिलेटी रहते हैं।

मादा का सिर और गरदन गदा पीलापन लिये भूरी होती है जिसमें धुँमैली चित्तियाँ पड़ी रहती हैं। पीठ और पर धुँमैले भूरे और बगल के दोनों हिस्से लल्छौंह भूरे रहते हैं। बाकी और सब रंग नर-जैसा रहता है।

पतेरा

पतेरा झुण्डों में रहते हैं जो इनके सुविधानुसार छोटे और बड़े हर तरह के होते हैं। इन्हें छोटे ताल और बड़ी नदियाँ पसन्द नहीं आतीं, बल्कि ये ऐसे गहरे और बड़े ताल या छोटी नदियाँ पसन्द करते हैं जिनके किनारे घास और नरकुलों से भरे रहते हैं। इनका मुख्य भोजन घास पात, जड़ें और पौधों के नरम कल्ले हैं, लेकिन

समय दिन है और सीखपर आदि की तरह ये भी रात को अपना स्थान नहीं बदलते। इनका मांस मामूली होता है।

पतेरा भी हमारे यहाँ अण्डे नहीं देते। इसके लिए ये उत्तर की ओर के देशों में लौट जाते हैं, जहाँ मई-जून में इनकी मादा ८-१० अण्डे देती है। इनके घासफूस के घोंसले पानी के किनारे, घास के बीच में, रखे रहते हैं और कभी-कभी ये जमीन पर ही छिछला गढ़ा बनाकर उसी में घास-पात और पर रखकर मादा के लिए अण्डा देने का स्थान बना देते हैं।

श्येन वर्ग

(ORDER FALCONIFORMES)

श्येन-वर्ग में सब शिकारी चिड़ियों को रखा गया है। गिद्ध से लेकर शिकरा तक इस वर्ग में आ गये हैं। पहले प्राणिशास्त्र के विशारद शिकारी पक्षियों के साथ उल्लुओं को भी रखते थे, लेकिन अब उनका अलग वर्ग बना दिया गया है। इन शिकारी पक्षियों में गिद्ध आदि कुछ ऐसे पक्षी ज़रूर हैं जो मुर्दाखोर हैं, लेकिन ज्यादा संख्या उन्हीं की है जो ज़िन्दा शिकार पकड़ते हैं।

ये सब पेड़ों पर रहनेवाले पक्षी हैं जो हवा में काफी ऊँचाई तक उड़ लेते हैं। इनके पैर के नाखून बड़े तेज और टेढ़े होते हैं और इनकी चोंच तोते की तरह आगे की ओर झुकी रहती है जिससे इन्हें मांस नोचने में बड़ी आसानी हो जाती है। इनकी चोंच की जड़ के पास का हिस्सा कुछ सूजा-सा और नरम खाल से ढँका रहता है जिसका रंग अक्सर पीला होता है। इनके पैर के नीचे का हिस्सा गद्देदार रहता है और इनकी निगाह बहुत तेज होती है।

ये सब मांसभक्षी पक्षी हैं जिनके गले के भीतर कबूतरों की तरह एक थैली होती है जिसमें ये जल्दी-जल्दी अपने शिकार को नोचकर भर लेते हैं। फिर वहाँ से वह धीरे-धीरे पेट में सरक जाता है। जिस तरह दाने को पीसने के लिए कबूतर अपनी इस थैली में छोटे-छोटे कंकड़ निगल लेते हैं, वही काम इन शिकारी चिड़ियों की थैली में निगले हुए शिकार के पर करते हैं।

इन शिकारी-पक्षियों की मादा नर से हमेशा बड़ी होती है जो प्रायः एक ही अण्डा देती है क्योंकि इनके घोंसले इतनी ऊँचाई पर और सुरक्षित रहते हैं कि इनके अंडों के

कत्थई लाल रहती है जिस पर काली चित्तियाँ पड़ी रहती हैं। पीठ पर काली और सफेद धारियों की लहरियाँ-सी रहती हैं। इसकी ठुड्डी और गला काला, सीना लाल और पेट सफेद रहता है। दोनों के बगली हिस्से काली और सफेद लकीरों से भरे रहते हैं। पर काले रहते हैं, लेकिन उनके किनारे सफेद होते हैं। डैनों का रंग राखीपन लिये भूरा रहता है जिन पर तीन स्पष्ट पट्टियाँ पड़ी रहती हैं। इनमें से ऊपर-नीचे की पट्टियाँ काली और बीच की चटक हरी रहती है। इसकी चोंच नीलछौंह सिलेटी और पैर गाढ़े सिलेटी रहते हैं।

मादा का सिर और गरदन गदा पीलापन लिये भूरी होती है जिसमें धुमैली चित्तियाँ पड़ी रहती हैं। पीठ और पंख धुमैले भूरे और बगल के दोनों हिस्से ललछौंह भूरे रहते हैं। बाकी और सब रंग नर-जैसा रहता है।
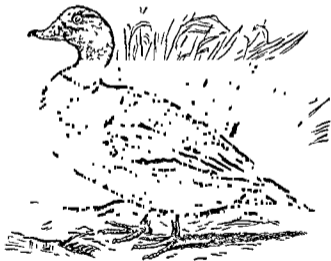
पतेरा

पतेरा झुण्डों में रहते हैं जो इनके सुविधानुसार छोटे और बड़े हर तरह के होते हैं। इन्हें छोटे ताल और बड़ी नदियाँ पसन्द नहीं आतीं, बल्कि ये ऐसे गहरे और बड़े ताल या छोटी नदियाँ पसन्द करते हैं जिनके किनारे घास और नरकुलों से भरे रहते हैं। इनका मुख्य भोजन घास-पात, जड़ें और पौधों के नरम कल्ले हैं, लेकिन इसके अलावा ये घोंघे, कटुए और कीड़े मकोड़े भी खा लेते हैं। इनकी चराई का

निगाह और उड़ान में असाधारण तेजी होती है, नहीं तो एक भी शिकार इनके हाथ न लगे और ये भूखों मर जायें।

आगे अपने यहाँ की कुछ प्रसिद्ध शिकारी चिड़ियों का वर्णन दिया जा रहा है जिनसे हम सभी परिचित हैं।

गरुड़

(GOLDEN EAGLE)

गरुड़ हमारे यहाँ का सबसे बड़ा शिकारी पक्षी है, लेकिन यह हमारे यहाँ हंस की तरह प्रसिद्ध होकर भी उसी की तरह केवल हिमालय के ऊँचे प्रदेशों में ही दिखाई पड़ता है। हमारे यहाँ इसी का भाई-बन्धु छोटा गरुड़ या उकाब (Tawny Eagle) काफी संख्या में फैला हुआ है जो करीब-करीब सारे देश में दिखाई पड़ता है। यह हिमालय पर भी चार हजार फुट तक की ऊँचाई तक देखा जा सकता है। उसके ऊपर फिर इसकी जगह गरुड़ ले लेता है।

गरुड़

गरुड़ उकाब से गहरे रंग का होता है जो दूर से काला-सा जान पड़ता है। इसकी दुम भी कुछ लम्बी होती है। इसकी और सब आदतें उकाब-जैसी ही होती हैं। यहाँ उकाब का ही वर्णन दिया जा रहा है जिसमें और गरुड़ में उपर्युक्त भेद के अलावा और कोई भेद नहीं रहता। छोटा गरुड़ या उकाब यहाँ का बारहमासी पक्षी है जिसकी शकल-सूरत बहुत कुछ चील से मिलती-जुलती रहती है। यह कद में उससे भारी होता है और इसकी दुम भी चील की तरह दुफंकी न होकर गोल रहती है। यह बहुत ही सुन्दर पक्षी है जिसकी शकल से बहादुरी टपकती है। यह अपने मजबूत पंजों से खरगोश तक को उठा ले जाता है।

नष्ट होने का डर नहा रहता। बच्चे अण्डा फूटने पर असहाय-से रहते हैं लेकिन जल्द ही उनके रायें और पर जम आते हैं। श्येन वर्ग वैसे तो कई उपवर्गों में बांटा गया है लेकिन यहा केवल एक श्येन उपवर्ग के पक्षियो का ही वर्णन किया जा रहा है जो सबसे बडा उपवर्ग है और जिसमें के पक्षी हमारे देश म पाये जाते हैं।

श्येन-उपवर्ग

(SUB ORDER ACCIPITRES)

यह उपवर्ग इतना बडा है कि इसमें प्राय सभी प्रकार के शिकारी पक्षी आ गये हैं। जैसा ऊपर बता चुके हैं ये सब मासभक्षी पक्षी हैं जो कीडे मकोड चूहे खरगोश साप छिपकली और सभी तरह की चिडिया का मास खाते हैं। कुछ ऐसे भी हैं जो मुर्दाखोर होते हैं। इनकी निगाह बहुत तेज होती है और ये एक हजार फुट से भी अधिक ऊँचाई से जमीन पर पड हुए मुर्दे को आसानी से देख लेते हैं और फिर इन्हे जमीन पर उतरते देखकर इनके दूसरे साथी भी उसी स्थान पर उतर आते हैं।

इनके पजे बहुत मजबूत और इनके नाखून बहुत तेज और टेढे रहते हैं जिनकी पकड में आकर शिकार का निकल जाना बहुत कठिन हो जाता है। इनकी चोच टेढी और बडी मजबूत होती है जिससे ये मास को बडी आसानी से चीर फाड डालते हैं।

यह उपवर्ग तीन परिवारो म इस प्रकार बाटा गया है—

१ श्येन-परिवार—Family Falconidae

२ गृद्ध-परिवार—Family Vulturidae

३ कुरर-परिवार—Family Pandionidae

श्येन-परिवार

(FAMILY FALCONIDAE)

श्येन परिवार बहुत बडा है जिसमें हमारी सब शिकारी चिडियाँ आ जाती हैं। इनका मुख्य भोजन माम मछली चिडियाँ कीडे मकोडे और छोटे-मोटे जीव जन्तु हैं जिन्हें ये आसानी से पकड सकती हैं। इनकी टेढी मजबूत चोच और टेढे नाखून वाले मजबूत पजे इनकी विशेषता है जिनके सहारे ये अपना पेट भरती हैं। इनकी

बाज लगभग २० इंच का पक्षी है जिसके नर-मादा एक रंग-रूप के होते हैं। इसका ऊपरी हिस्सा राखीपन लिये भूरा होता है और सिर, गुद्दी और गरदन के दोनों बगल का हिस्सा काला रहता है। दुम का ऊपरी हिस्सा हलके भूरे रंग का रहता है जिसका सिरा सफेद होता है। नीचे का सफेद हिस्सा काली और भूरी चित्तियों से भरा रहता है। इसकी टेढ़ी चोंच गाढ़ सिलेटी और पैर पीले रंग के होते हैं। इसके पंजे बहुत मजबूत होते हैं।

बाज को जंगलों में रहना अधिक पसन्द है जहाँ यह अपना अधिक समय आकाश में उड़ने में ही बिताता है। यह नीचे कोई शिकार देखकर उस पर इस तेजी से टूटता है कि उसे अपने को इसके चंगुल से बचाना कठिन हो जाता है। इसका मुख्य भोजन छोटे-मोटे जानवर और चिड़ियाँ हैं। इनके अलावा इससे छोटे सरीसृप भी नहीं बचते। यह कबूतर, तीतर और जंगली मुरगियों आदि का शिकार बड़ी आसानी से कर लेता है।

बाज

इसकी मादा जुर्रा कहलाती है जो करीब दो फुट की होती है। इसे शौकीन लोग शिकार के लिए पालते हैं और इससे चिड़ियों का शिकार कराया जाता है। सिखाये जाने पर यह शिकरा और बहरी की तरह चिड़ियों और खरगोश आदि को अपने मालिक के लिए पकड़ लाती है।

बाज के जोड़ा बाँधने का समय मार्च से जून तक है। इसी बीच किसी ऊँचे पेड़ पर ये टहनियों का भद्दा-सा घोंसला बनाते हैं जिसमें जुर्रा ३–४ अण्डे देती है। ये अण्डे वैसे तो सफेद रहते हैं, लेकिन कभी-कभी उन पर थोड़ी चित्तियाँ भी पड़ी रहती हैं।

छोटे गरुड़ का कद लगभग २५ इंच लंबा होता है लेकिन इसकी मादा २८ इंच से कम नहीं होती। दोनों नर-मादा एक ही रंग रूप के होते हैं। इसके शरीर का रंग हलका बादामी या सुनहरा भूरा होता है और पंख कलछौंह गेरुए रंग के रहते हैं। डैनों के सिरे पर सफेद चित्तियां रहती हैं। इसकी चोंच सिलछौंह सिलेटी और पैर पीले होते हैं।

उकाब का सिर चपटा रहता है और चोंच टेढ़ी और मजबूत होती है। इसके पर पैरों को ढके रहते हैं और इसके डैने इतने लंबे होते हैं कि बैठे रहने पर दुम के सिरे तक पहुँच जाते हैं।

उकाब शिकारी पक्षी है जो दिन भर आकाश में अपनी खूराक की तलाश में उड़ता रहता है। इसे जंगलों से ज्यादा खुले मैदान पसन्द हैं जहाँ ऊपर से इसे जमीन पर अपने शिकार को देखने में आसानी रहती है। इसका मुख्य भोजन छोटे जानवर, चिड़ियाँ साँप, मेढक और छिपकलियाँ आदि हैं जिन्हें यह ऊपर से बड़ी तेजी से झपटकर अपने मजबूत पंजों में पकड़कर उठा ले जाता है।

इसके अण्डा देने का समय नवम्बर से जून तक रहता है जब यह काँटेदार सूखी टहनियों से किसी ऊँचे पेड़ की चोटी पर अपना छिछला-सा घोंसला बनाता है जिसका भीतरी हिस्सा घास और पत्तियाँ लगाकर मुलायम बना दिया जाता है। मादा इसमें १ से ३ तक अण्डे देती है जो रंग में हलके राखी या सफेद रहते हैं। इनमें से कभी-कभी कुछ अण्डों पर लाल और बैंगनी चित्तियाँ पड़ी रहती हैं।

बाज

(GOSHAWK)

बाज को शिकारी पक्षियों का सरदार कहना ठीक होगा। पाले जानेवाले शिकारी पक्षियों में यह सबसे बड़ा और बहादुर होता है। इसकी मादा को जुर्रा कहा जाता है, जो कद में इससे बड़ी होती है।

बाज हमारे यहाँ केवल हिमालय में एक सिरे से दूसरे सिरे तक पाया जाता है। इसे मैदान पसन्द नहीं आते और यह तराइयों में भी गर्मियों में ही कभी कभी दिखाई पड़ता है।

होती है, लेकिन उसका सिर सफेद ही रहता है। इसकी चोंच टेढ़ी और निकलौंह सिलेटी रहती है। पैर पीले रहते हैं।

बहरी उड़ने में बहुत तेज होती है और इसके डैने और पंजे भी बहुत मजबूत होते हैं। इसे न तो घना जंगल ही पसन्द है और न पहाड़ ही। यह खेतों और बागों के आसपास या जलाशयों के निकट रहकर छोटी चिड़ियों का शिकार करती है जो इसकी मुख्य खुराक है। तीतर, बटेर, कबूतर, हारिल आदि का पकड़ना तो इसके लिए कुछ मुश्किल नहीं होता। इसके अलावा यह छोटी बत्तखों के गिरोह पर भी सफल हमला करती है।

इसके अण्डा देने का समय जनवरी से अप्रैल तक रहता है। इसी बीच यह या तो अपना भद्दा-सा घोंसला बनाती है या गिद्ध और कौए आदि के पुराने घोंसले को ठीक-ठाक करके उसी में तीन-चार अण्डे देती है। ये अण्डे गुलाबी या हल्के भूरे रंग के रहते हैं जिन पर कत्थई चित्तियां पड़ी रहती हैं।

शिकरा

(SHIKRA)

शिकरा हमारे यहां की छोटी शिकारी चिड़ियों में सबसे प्रसिद्ध है। इसे कुछ लोग छोटा बाज भी कहते हैं जो एक प्रकार से ठीक ही है। लेकिन इसका रंग बाज से न मिलकर पपीहे-जैसा रहता है। शिकारी चिड़ियों में इसे सबसे सुन्दर और बहादुर पक्षी कहना अनुचित न होगा। सिखाये जाने पर यह अपने से चौगुनी चिड़ियों को पकड़ लेता है।

शिकरा हमारे यहां का बारहमासी पक्षी है जिसे घनी अमराइयों के आगे न तो घने जंगल ही पसन्द हैं और न खुले मैदान और न पहाड़ ही। यह अपना सारा दिन या तो किसी पेड़ की ऊँची डाल पर बैठकर या बाग-बगीचों के आस-पास शिकार की तलाश में उड़कर बिता देता है। हमारे देश में यह प्राय: सभी स्थानों पर पाया जाता है और पहाड़ पर भी इसे चार-पाँच हजार फुट पर देखना मुश्किल नहीं।

शिकरा का नर लगभग एक फुट का और मादा १४ इंच की होती है। नर और मादा करीब-करीब एक रंग-रूप के होते हैं। मादा के ऊपर और नीचे का हिस्सा नर से कुछ गहरे रंग का रहता है। नर का ऊपरी हिस्सा गहरे राख के रंग का होता है जिसमें

बहरी

(PEREGRINE FALCON)

बहरी हमारे यहाँ की प्रसिद्ध शिकारी चिड़िया है, जो बाज की तरह केवल हिमालय प्रान्त में न रहकर सारे देश में फैली हुई है। यह कद में बाज से छोटी जरूर होती है, लेकिन इसकी तेजी का मुकाबला कोई शिकारी पक्षी नहीं कर सकता। जब यह तालाबों के ऊपर बत्तखों के झुंड पर टूटती है तो बहुत-सी बत्तखें डर के मारे अपने पंख समेट लेती हैं और ऊपर से पानी में ढेले की तरह पटापट गिरने लगती हैं। इसके इसी वेग के कारण इसको 'वेगी' भी कहते हैं।

बहरी

बहरी करीब २० इंच की बारहमासी चिड़िया है जिसका नर करीब १६ इंच का होता है। इसके नर, मादा में कद में छोटे होने पर भी एक ही रंग रूप के होते हैं। इनका ऊपर का हिस्सा भूरा और गरदन से लेकर पेट तक का हिस्सा सफेद रहता है। नीचे की सफेदी पर तमाम कत्थई रेखाएँ और चिह्न पड़े रहते हैं। दोनों आँखों के ऊपर भौं की शकल की एक-एक सफेद स्पष्ट रेखाएँ रहती हैं और आँखों के नीचे दोनों ओर एक-एक काली मूँछनुमा रेखाएँ चोंच से गरदन तक चली जाती हैं। डैने कत्थई या कलछौंह रहते हैं और दुम भूरी

होती है, लेकिन उसका सिर सफेद ही रहता है। इसकी चोंच टेढ़ी और तिरछौंह निकली रहती है। पैर पीले रहते हैं।

बहरी उड़ने में बहुत तेज होती है और इसके डैने और पंजे भी बहुत मजबूत होते हैं। इसे न तो घना जंगल ही पसन्द है और न पहाड़ ही। यह खेतों और बागों के आसपास या जलाशयों के निकट रहकर छोटी चिड़ियों का शिकार करती है जो इसकी मुख्य खुराक है। तीतर, बटेर, कबूतर, हारिल आदि का पकड़ना तो इसके लिए कुछ मुश्किल नहीं होता। इसके अलावा यह छोटी बत्तखों के गिरोह पर भी सफल हमला करती है।

इसके अण्डा देने का समय जनवरी से अप्रैल तक रहता है। इसी बीच यह या तो अपना भद्दा-सा घोंसला बनाती है या गिद्ध और कौए आदि के पुराने घोंसले को ठीक-ठाक करके उसी में तीन-चार अण्डे देती है। ये अण्डे गुलाबी या हल्के भूरे रंग के रहते हैं जिन पर कत्थई चित्तियाँ पड़ी रहती हैं।

शिकरा

(SHIKRA)

शिकरा हमारे यहाँ की छोटी शिकारी चिड़ियों में सबसे प्रसिद्ध है। इसे कुछ लोग छोटा बाज भी कहते हैं जो एक प्रकार से ठीक ही है। लेकिन इसका रंग बाज से न मिलकर पपीहे-जैसा रहता है। शिकारी चिड़ियों में इसे सबसे सुन्दर और बहादुर पक्षी कहना अनुचित न होगा। सिखाये जाने पर यह अपने से चौगुनी चिड़ियों को पकड़ लेता है।

शिकरा हमारे यहाँ का बारहमासी पक्षी है जिसे घनी अमराइयों के आगे न तो घने जंगल ही पसन्द हैं और न खुले मैदान और न पहाड़ ही। यह अपना सारा दिन या तो किसी पेड़ की ऊँची डाल पर बैठकर या बाग-बगीचों के आस-पास शिकार की तलाश में उड़कर बिता देता है। हमारे देश में यह प्रायः सभी स्थानों पर पाया जाता है और पहाड़ पर भी इसे चार-पाँच हजार फुट पर देखना मुश्किल नहीं।

शिकरा का नर लगभग एक फुट का और मादा १४ इंच की होती है। नर और मादा करीब-करीब एक रंग-रूप के होते हैं। मादा के ऊपर और नीचे का हिस्सा नर से कुछ गहरे रंग का रहता है। नर का ऊपरी हिस्सा गहरे राख के रंग का होता है जिसमें

गले के चारों ओर कुछ पीली झलक रहती है। इसके डैने भूरे होते हैं, जिनके सिरे काले रहते हैं। इसकी दुम भूरी होती है जिस पर आड़ी-आड़ी पट्टियाँ पड़ी रहती हैं। बदन का निचला हिस्सा ललछौंह रहता है जिस पर आड़ी मिलेटी लकीरें पड़ी रहती हैं। इसकी टेढ़ी और मजबूत चोंच कलछौंह नीली रहती है और पैर पीले रहते हैं। इसका मुख्य भोजन छोटी चिड़ियाँ, छिपकलियाँ, चूहे और टिड्डी आदि हैं।

शिकरा

शिकरा को लोग शिकार कराने के लिए पालते हैं और सिखाये जाने पर यह अपने मालिक के लिए चिड़ियाँ पकड़कर लाता है। इसकी एक और जाति, जो इसी शकल-सूरत की लेकिन इससे कुछ लंबी टाँगोंवाली होती है, गौरहिया शिकरा (Sparrow Hawk) कहलाती है। इसकी मादा को बाशा और नर को बासिन कहते हैं। इसकी सब आदतें शिकरे से मिलती-जुलती रहती हैं। इससे उन्हें दुहराने की आवश्यकता नहीं है।

शिकरा के अण्डा देने का समय अप्रैल से जून तक रहता है, जब यह किसी घने पेड़ पर सूखी टहनियों का छितरा-बितरा-सा घोंसला बनाता है। मादा इसमें तीन-चार तक अण्डे देती है जिनका रंग हलका नीलापन लिये सफेद रहता है। कभी-कभी इन पर सिलेटी चित्तियाँ भी पड़ी रहती हैं।

तुरमुती के जोड़ा बाँधने का समय जनवरी से मई तक रहता है जब यह किसी
चे पेड़ पर अपना टहनियों का सुन्दर कटोरानुमा घोंसला बनाती है। घोंसले को यह

तुरमुती

बाल और परों से मुलायम कर देती है जिसमें समय आने पर मादा तीन-चार अण्डे देती है जो गुलाबीपन लिये सफेद रंग के होते हैं। कभी-कभी इन पर भूरी या कत्थई रंग की चित्तियाँ भी पड़ी रहती हैं।

खेरमुतिया

(KESTREL)

खेरमुतिया भी बहरी की निकट सम्बन्धी है जो हमारे देश में जाड़ों में काफी संख्या में आकर चारों ओर फैल जाती है। इसे भी घने जंगल से ज्यादा खुले मैदान पसन्द है जहाँ यह अक्सर आसमान में एक ही जगह मँडराती रहती है। इसके शरीर की बनावट बहरी से कुछ पतली होती है।

खेरमुतिया हमारे यहाँ की प्रवासी चिड़िया है जो अण्डे देने के लिए हिमालय के पश्चिमी भागों में चली जाती है और जाड़ा शुरू होते-होते सारे देश में फैल जाती है। इसके नर-मादा के रंग में थोड़ा सा भेद रहता है। नर का ऊपरी हिस्सा ईंट-जैसा लाल होता है जिसमें सिर और गर्दन का ऊपरी हिस्सा सिलेटी रहता है। पीठ पर काली-काली तिकोनी-तिकोनी चित्तियाँ पड़ी रहती हैं और दुम के सिरे पर कुछ सिलेटी

सिरे काले रहते हैं। इसके डैनों पर सफेद धब्बे रहते हैं और ठुड्डी और गला भी सफेद रहता है। दुम का ऊपरी भाग भूरा होता है जिस पर काली आडी धारियाँ पडी रहती हैं। इसकी चोंच नारंगी रंग की होती है। चोंच का सिरा काला और पैर नारंगीपन लिये पीले रंग के होते हैं।

टीसा वैसे तो किसी टीले पर अपने शिकार की घात में बैठा रहता है, लेकिन कभी-कभी यह जमीन पर भी अपनी खूराक की तलाश में इधर-उधर घूमता रहता है।

इसके जोडा बाँधने का समय फरवरी से मई तक रहता है जब यह किसी पेड पर सूखी टहनियों से अपना भद्दा-सा घोसला बनाता है। मादा इसी में बैठकर तीन-चार अण्डे देती है जो हलका नीलापन लिये सफेद रहते हैं। कभी-कभी इन अण्डों पर कत्थई चित्तियाँ भी पडी रहती हैं।

तुरमुती

(TURUMUTI)

तुरमुती बहरी की ही भाई-बन्धु है और उसी की तरह यह भी शिकारी चिडियों में बहुत तेज होती है। यह हमारे यहाँ की प्रसिद्ध शिकारी चिडिया है जिसकी मादा नर से बडी होती है। यह भी हमारे यहाँ बाज और शिकरे की तरह पाली जाती है और शौकीन लोग इसे सिखाकर इससे मैना, फाख्ता और हुदहुद आदि चिडियों का शिकार कराते हैं।

तुरमुती १४ इंच की चिडिया है जिसके नर १२ इंच से ज्यादा बडे नहीं होते। इन्हें चेटवा कहा जाता है। रंग-रूप में तुरमुती और चेटवा दोनों एक ही जैसे रहते हैं।

इसके सिर का ऊपरी भाग और गरदन के दोनों बगल का हिस्सा हलका खैरा रहता है। शरीर का ऊपरी हिस्सा सिलेटी रहता है जिस पर भूरी धारियाँ पडी रहती हैं। इसकी दुम भूरी होती है जिसका सिरा सफेद रहता है और उस पर काली आडी धारियाँ पडी रहती हैं। इसके डैने कलछौंह और चोंच हरापन लिये पीली रहती है। पैर भी पीले ही होते हैं।

तुरमुती यहाँ की बारहमासी चिडिया है जिसे घने जंगलों से ज्यादा बाग-बगीचे पसन्द हैं जहाँ इसका जोडा बराबर शिकार करता दिखाई पड सकता है। इसका मुख्य भोजन छोटी-छोटी चिडियाँ हैं।

तुरमुती के जोड़ा बाँधने का समय जनवरी से मई तक रहता है जब यह किसी ऊँचे पेड़ पर अपना टहनियों का सुन्दर कटोरानुमा घोंसला बनाती है। घोंसले को यह
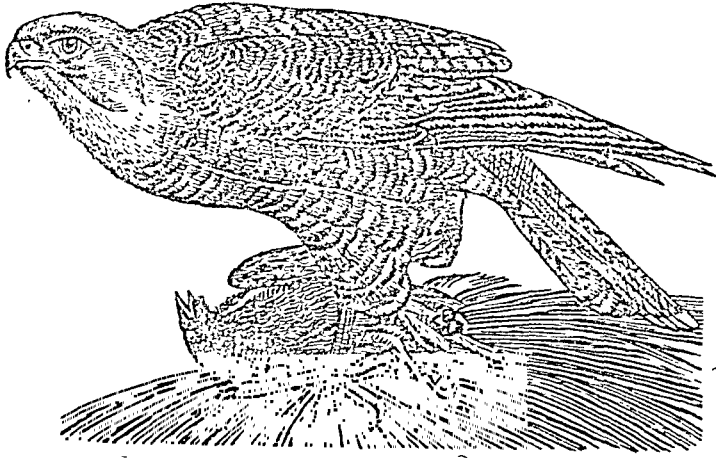
तुरमुती

बाल और परों से मुलायम कर देती है जिसमें समय आने पर मादा तीन-चार अण्डे देती है जो गुलाबीपन लिये सफेद रंग के होते हैं। कभी-कभी इन पर भूरी या कत्थई रंग की चित्तियाँ भी पड़ी रहती हैं।

खेरमुतिया

(KESTREL)

खेरमुतिया भी बहरी की निकट सम्बन्धी है जो हमारे देश में जाड़ों में काफी संख्या में आकर चारों ओर फैल जाती है। इसे भी घने जंगल से ज्यादा खुले मैदान पसन्द हैं जहाँ यह अक्सर आसमान में एक ही जगह मँडराती रहती है। इसके शरीर की बनावट बहरी से कुछ पतली होती है।

खेरमुतिया हमारे यहाँ की बारहमासी चिड़िया है जो अण्डे देने के लिए हिमालय के पश्चिमी भागों में चली जाती है और जाड़ा शुरू होते-होते सारे देश में फैल जाती है। इसके नर-मादा के रंग में थोड़ा ही भेद रहता है। नर का ऊपरी हिस्सा ईंट-जैसा लाल होता है जिसमें सिर और गरदन का बगली हिस्सा सिलेटी रहता है। पीठ पर काली-काली तितरी-बितरी चित्तियाँ पड़ी रहती हैं और दुम के सिरे पर एक सिलेटी

धव्वा रहता है। इसके डैने और दुम का ऊपरी हिस्सा मिलेटी और निचला सफेदी मायल रहता है। बदन का निचला हिस्सा हलका बादामी रहता है जिसपर सीने के पास भूरी धारियाँ और चित्तियाँ पड़ी रहती हैं। डैने भूरे रहते हैं।

मादा का ऊपरी हिस्सा चटक ललछौंह भूरा रहता है जिसमें सिर के पास और पीठ पर ललछौंह धारियाँ-सी पड़ी रहती हैं। दुम ललछौंह और गोलाई लिये भूरी या सिलेटी रहती है जिस पर एक काली पट्टी पड़ी रहती है। नीचे का हिस्सा नर की तरह रहता है।

खेरमुतिया

इसकी चोंच काली और पैर नारंगी रंग के होते हैं। खेरमुतिया १४ इंच की शिकारी चिड़िया है जो खुले हुए घास के मैदानों के आसपास अपना ज्यादा समय बिताती है। वहाँ यह आकाश में चक्कर काटा करती है या फिर किसी टीले सूखे पेड़ के खूँट या तार के खंभे पर शिकार की घात में बैठी रहती है जहाँ से यह शिकार पर झपटकर और उसे पकड़कर फिर उसी जगह आकर बैठ जाती है। आकाश में उड़ते-उड़ते यह एकदम अपने पंखों को कुछ देर के लिए रोक लेती है और नीचे गौर से देखने लगती है। अगर इसे घास-फूस में कोई चीज हिलती जान पड़ी तो यह और नीचे उतर

कर उसे ग़ौर से देखती है और जब इसे निश्चय हो जाता है कि वह कोई शिकार ही है तो यह बड़ी तेजी से उस पर झपटकर उसे अपने पंजों में पकड़कर उड़ जाती है। इसका मुख्य भोजन कीड़े-मकोड़े, छोटे जानवर और सरीसृप तथा छोटी चिड़ियाँ हैं।

खेरमुतिया के अण्डा देने का समय अप्रैल से जून तक रहता है जब यह हिमालय के पश्चिमी भागों में पहाड़ की किसी दराज या सूराख़ या किसी पेड़ की खोह या डाली पर सूखी टहनियों का भद्दा-सा घोंसला बनाकर तीन से पाँच तक अण्डे देती है जो पिलछौंह पत्थरी रंग के रहते हैं। कभी-कभी इन पर कत्थई चित्तियाँ भी पड़ी रहती हैं।

लगर

(LAGGAR FALCON)

लगर को भी बहरी का निकटसंबंधी कहना ठीक होगा। यह १६ इंच की शिकारी चिड़िया है जिसके नर मादा से छोटे जरूर होते हैं लेकिन दोनों का रंग-रूप एक-जैसा ही रहता है। इनके सिर से लेकर दुम तक का ऊपरी हिस्सा भूरा और नीचे का कुल हिस्सा सफेद रहता है, जिसमें आँख के नीचे से गरदन तक एक भूरी पट्टी पड़ी रहती है। इसके गाल सफेद रहते हैं और सीने और पेट पर दूर-दूर पर पतली कत्थई खड़ी लकीरें पड़ी रहती हैं। उड़ते समय इनके सफेद पेट से इसे बड़ी आसानी से पहचाना जा सकता है। इसकी चोंच निलछौंह सिलेटी और पैर पीले होते हैं।
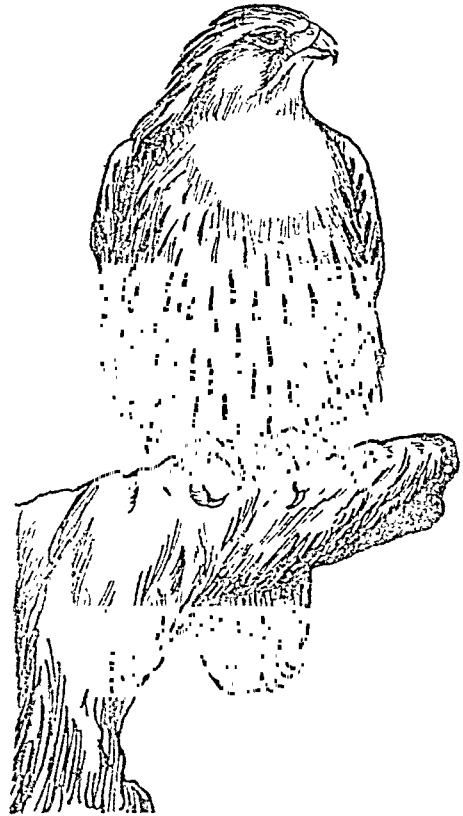
लगर

लगर की मादा को कहीं-कहीं जगगर कहते हैं जो कद में इससे काफी बड़ी होती है। लगर हमारे यहाँ का बारहमासी पक्षी है जो देश भर में फैला हुआ है। हिमालय पर भी यह दो-ढाई हजार फुट की ऊँचाई तक देखा जा सकता है। यह भी बहरी और तुरमुती की तरह हमारी बहुत परिचित शिकारी चिड़िया है जिसे घने जंगलो में ज्यादा खुले मैदान तथा खेतों का पास-पड़ोस भाता है। यही नहीं, इसे अक्सर शहरों में चीलों की तरह ऊँची मीनारो पर बैठे या वहीं उड़ते देखा जा सकता है। इसका मुख्य भोजन छोटी चिड़ियो के अलावा चूहे, छिपकलियाँ, टिड्डियाँ तथा इसी प्रकार के अन्य छोटे जीव हैं।

लगर अक्सर जोड़े में दिखाई पड़ते हैं। ये बहरी की तरह न तो तेज ही होते हैं और न उसके बराबर बहादुर ही, फिर भी इनकी उड़ान किसी से कम नहीं होती। शिकरा आदि की तरह कुछ लोग इन्हें भी चिड़ियों का शिकार करने के लिए पालते हैं।

लगर के जोड़ा बाँधने का समय जनवरी से अप्रैल तक रहता है जब ये किसी ऊँचे पेड़ या पुरानी इमारत के कार्निसो पर सूखी टहनियों का मामूली-सा घोसला बनाते है। मादा इसमें तीन से पाँच तक अण्डे देती है जो गुलाबीपन लिये सदली या पत्थरी रग के रहते हैं। इन अण्डो पर कत्थई या गहरे लाल रग की चित्तियाँ भी पड़ी रहती हैं।

एक बात आश्चर्य की है कि इनके घोसले प्राय ऐसे पेड़ो पर ही दिखाई पड़ते हैं जहाँ फाख्ता आदि के घोसले रहते हैं जो इनके शिकार या खुराक है। लेकिन अण्डा देने के समय ये बराबर अपने बच्चो के लिए खाना लेकर आया-जाया करते हैं और उस पेड़ के किसी भी पक्षी पर हमला नहीं करते।

चील

(KITE)

चील हमारी इतनी परिचित चिड़िया है कि इसके बारे में ज्यादा बताने की आवश्यकता नही है। शहरों में तो यदि खाने की वस्तु सँभालकर न ले चलें तो ये सड़को पर से झपट्टा मारकर हाथ से उसको छीन ले जाती है। शिकारी चिड़ियों में इससे ढीठ और शरारती कोई दूसरी चिड़िया नहीं होती।

चील हमारे यहां की प्रसिद्ध बारहमासी चिड़िया है जो सारे देश में पायी जाती है। यह दो फुट लंबी होती है और अपनी दोफंकी दुम के कारण अन्य शिकारी चिड़ियों से बड़ी आसानी से पहचानी जा सकती है। इसके नर-मादा एक ही शकल-सूरत के होते हैं। इसका सारा बदन भूरे रंग का होता है जिसमें गुद्दी से गरदन तक के हिस्से में और पेट के कुछ हिस्से में पिलछौंह झलक रहती है। इसके सारे बदन पर बुलबुल की तरह गहरे रंग के सेहर से पड़े रहते हैं। इसकी चोंच काली और पैर पीले होते हैं।
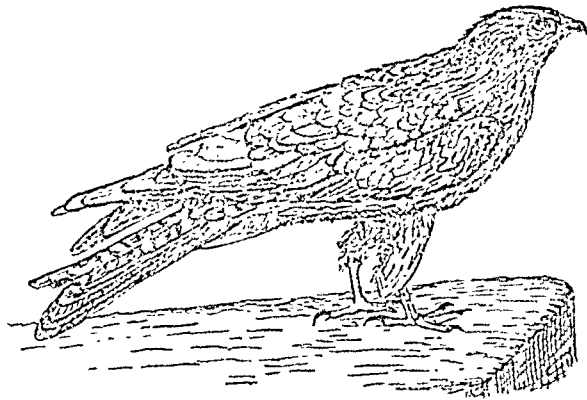
चील

चील उड़ने में बहुत उस्ताद होती है। हवा में यह ऐसी तेजी से उड़ती है जैसे हवा चीरती चली जा रही हो और फिर किसी खाने की चीज पर ऊपर से भरी सड़क पर ऐसी सफाई से झपट्टा मारती है कि क्या मजाल जो सड़क पर के बिजली के तार या खंभों से यह टकरा जाय। इसकी फुरती देखकर सचमुच बहुत आश्चर्य होता है। यह कौए की तरह सर्वभक्षी पक्षी है जिससे कोई भी चीज खाने से नहीं बचती। शहर के बूचड़खाने पर तो इसके झुंड के झुंड लोथड़ों के लिए बैठे रहते हैं। छोटे पशु-पक्षी, सरीसृप और कीड़े-मकोड़े के अलावा यह मुर्दा भी खाती है और इसे गिद्धों के साथ हम मरे हुए जानवरों के मांस में भी हिस्सा लगाते देख सकते हैं।

इसके अण्डा देने का समय सितम्बर से अप्रैल तक रहता है। यह घोंसला बनाने में भी अपनी ढिठाई का फायदा उठाती है और शहर तथा गाँवों के बीच के पेड़ों पर भी अपना घोंसला बनाने से नहीं हिचकती। समय आने पर यह सूखी टहनियों का भद्दा-सा घोंसला बनाती है जो किसी ऊँचे पेड़ या पुराने खंडहरों के भीतर के कार्निसों

पर रगा रहता है। मादा इनमें दो-तीन अण्डे देती है जो सफेद या हल्के मिट्टी रंग के होते हैं और जिन पर कत्थई या लाल चित्तियाँ पड़ी रहती हैं।

गृद्ध परिवार

(FAMILY VULTURIDAE)

गृद्ध-परिवार छोटा ही है जिसमें सब प्रकार के गिद्धों को एकत्र किया गया है। मुर्दा खाने की आदत से इनको शिकारी चिड़ियों के परिवार से अलग करके इनका एक अलग ही परिवार बना लिया गया है। इनकी निगाह सब चिड़ियों से अधिक तेज होती है। शिकारी चिड़ियों की तरह इनकी भी चोंच टेढ़ी और मजबूत होती है पर इनके पंजे और नाखून उनके जैसे मजबूत और तेज नहीं होते। इसीलिए इन्हें शिकार न पकड़कर मुर्दों से ही अपना पेट भरना पड़ता है।

गिद्ध गंदे और बदसूरत होते हुए भी हमारे लिए बहुत उपयोगी पक्षी हैं। ये चिड़िया के मेहतर हैं और प्रकृति ने इन्हें सफाई का काम सौंप रखा है। जहाँ कोई जानवर मरा या मरने के करीब हुआ कि ये आसमान में चक्कर लगाकर उसके पास तेजी से उतरने लगते हैं और उसके मांस को नोच-नोचकर खाना शुरू कर देते हैं। अगर ये न होते तो मरे हुए जानवरों की सड़न से बीमारी फैल जाया करती।

इनकी वैसे तो कई जातियाँ हैं लेकिन यहाँ कुछ प्रसिद्ध गिद्धों का ही वर्णन दिया जा रहा है।

चमरगिद्ध

(WHITE BACKED VULTURE)

गिद्धों की कई जातियाँ हमारे यहाँ पायी जाती हैं जिनमें चमरगिद्ध सब से बड़ा होता है। यह हमारे यहाँ काफी संख्या में पाया जाता है। यह हमारे यहाँ का बारहमासी पक्षी है जिसके नर मादा एक रंग रूप के होते हैं। इसका शरीर तीन फुट लम्बा और बनावट में भारी रहता है लेकिन इतना भारी शरीर लेकर भी यह अपने मजबूत पंखों से हवा में बड़ी तेज और ऊँची उड़ान कर लेता है। गिद्ध आसमान में काफी ऊँचा चला जाता है और दिन भर हवा में उड़ता रहता है। ऊपर से कोई शिकार देखकर यह बड़ी तेजी से नीचे उतरता है और फिर एक को देखकर दूसरे भी उसी स्थान पर उतरने लगते हैं।

चमरगिद्ध हमारे यहां प्रायः सभी स्थानों में पाये जाते हैं। इनका ऊपरी हिस्सा कलछौंह भूरा रहता है जिस पर एक सफेद चित्ता पड़ा रहता है। इनकी गरदन एकदम नंगी रहती है जिस पर भूरे और सफेद रोयें रहते हैं। दुम और निचला हिस्सा भूरापन लिये काला रहता है और टांगें और डैने का ऊपरी पिछला हिस्सा सफेद रहता है।

चमरगिद्ध

इनकी गरदन सिलेटी रंग की और पैर कलछौंह रहते हैं। चोंच का अगला हिस्सा गाढ़ सिलेटी और पिछला सफेद रहता है। ऊपरी चोंच का सिरा आगे की ओर झुका रहता है जिससे इन्हें मांस नोचने में बड़ी आसानी हो जाती है।

चमरगिद्ध गोल बाँधकर रहनेवाले पक्षी हैं जिन्हें घने जंगलो से ज्यादा खुले मैदान पसन्द हैं जहाँ इन्हें ऊपर से उडते उडते नीचे के शिकार को देखने में आसानी रहती है। ये जमीन पर जैसे ही मुर्दे के आस-पास कौओ को जमा होते देखते है ऊपर से बडी तेजी से गोलाकार घूमते हुए नीचे उतरते हैं। नीचे पहुँचकर ये लाश को चारो ओर से घेर लेते हैं और उसे जल्द ही साफ कर डालते हैं। इनका मुख्य भोजन मरे हुए जानवरो का मास है। चमरगिद्धो के अण्डा देने का समय अक्टूबर से मार्च तक रहता है, जब ये किसी ऊँचे पेड पर सूखी टहनियो का भद्दा सा घोसला बनाते हैं। मादा उसमें एक बडा-सा सफेद अण्डा देती है जिस पर कभी लाल और कभी कत्थई चित्तियाँ पडी रहती हैं।

राजगिद्ध

(KING VULTURE)

राजगिद्ध शक्ल सूरत मे चमरगिद्ध जैसा होकर भी कद मे उससे कुछ छोटा होता है। यह अपने काले रग और लाल गरदन के कारण दूर ही से पहचान लिया जाता है। इसी भडकीले लाल और काले रग के कारण इसको राजगिद्ध का सुन्दर नाम मिला है।

राजगिद्ध भी हमारे यहाँ का बारहमासी पक्षी है जिसके नर मादा एक रग रूप के होते हैं। यह लगभग ३२ इच लबा पक्षी है जिसका रग चमकीला काला रहता है। इसकी टागो के ऊपरी हिस्से पर दो सफेद चित्ते पडे रहते हैं। सीने पर भी दोनो ओर दो सफेद चित्ते रहते हैं और दोनो कानो के नीचे दो मास के लोथडे से लटकते रहते हैं। इसका सिर और गरदन लाल होती है और इसके कान के पास लटकते हुए मास के लोथडे भी इसी रग के रहते हैं। चोच गहरी भूरी और पैर धूमिल लाल होते हैं। इसका मुख्य भोजन मरे हुए पशुओ का मास है।

राजगिद्ध चमरगिद्ध की तरह हमारे यहाँ सारे देश में फैले हुए हैं, लेकिन इनकी सख्या उनसे कम है। इसीलिए जब किसी मरे हुए ढोर के आस पास गिद्धो की मण्डली जमा होती है तो बीस-पचीस चमरगिद्धो के बीच में दो-चार से ज्यादा राजगिद्ध नही दिखाई पडते। इन्हें भी घने जगलो से ज्यादा खुले मैदान पसन्द हैं जहाँ ये दिन भर आकाश में काफी ऊँचाई पर उडते रहते हैं। ये झुड में नही दिखाई पडते और इन्हें

अक्सर अकेले या जोड़े में ही देखा जा सकता है। ये उड़ने में बहुत उस्ताद होते हैं और अपने मजबूत डैनों से जब हवा को चीरते हुए नीचे उतरते हैं तो बड़े जोर की आवाज होती है।

राजगिद्ध

राजगिद्ध के अण्डे देने का समय दिसम्बर से अप्रैल तक रहता है, जब ये आबादी के पास के किसी ऊँचे पेड़ पर सूखी टहनियों से अपना बड़ा-सा घोंसला बनाते हैं। जहाँ ऊँचे पेड़ों की कमी रहती है वहाँ इनके घोंसले ८-१० फुट की ऊँचाई पर ही दिखाई पड़ सकते हैं। ये, जहाँ तक हो सकता है, हर साल एक ही स्थान पर घोंसला बनाना पसन्द करते हैं जिसमें मादा, समय आने पर, एक अण्डा देती है जो पहले तो सफेद रहते हैं, लेकिन बाद में गंदे मटमैले रंग के हो जाते हैं।

गोबरगिद्ध

(SCAVENGER VULTURE)

गोबरगिद्ध शकल-सूरत में गिद्धों की अपेक्षा चीलों से ज्यादा मिलता-जुलता है। इसका रंग भी भूरा या काला न होकर सफेद रहता है जिससे कहीं-कहीं इसे सफेद गिद्ध

भी कहते हैं। इसका मुख्य भोजन मरे हुए जीवों का मांस तो है ही साथ ही साथ यह गोबर तथा पाखाने से भी अपना पेट भरता है। इसी से इसे गोबरगिद्ध का नाम मिला है।

गोबरगिद्ध हमारे यहां का बहुत परिचित और ढीठ पक्षी है जो बारहों महीने हमारे देश में ही रहता है। यह यहां प्राय सभी जगह पाया जाता है जहां इसे खुले मैदान में अकेले इधर-उधर जमीन पर टहलते देखना कठिन नहीं है। इसके अलावा यह शहर के खाली ऊँचे मकानों पर भी बैठा रहता है और कभी कभी आकाश में शिकार की तलाश में मँडराया करता है।
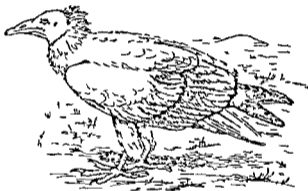
गोबरगिद्ध

यह २०-२२ इंच का पक्षी है जिसके शरीर का रंग गंदा सफेद रहता है। इसके डैने के और भूरे रंग के हैं और गरदन बिना बालों की पीले रंग की होती है। अन्य गिद्धों की तरह इसकी गरदन लंबी नहीं होती और उसकी जड़ के पास छोटे और मुलायम परों का चारों ओर एक कंठा सा रहता है। इसकी चोंच कुछ लंबी रहती है जिसका रंग गाढ़ा मिट्टी रहता है। इसके पैर का रंग प्याजी सफेद रहता है।

गोबरगिद्ध फरवरी से अप्रैल के बीच जोड़ा बांधते हैं और तब ये किसी ऊँची मीनार पेड़ पुराने खंडहर या पहाड़ की दरार में अपना घोसला बनाते हैं। इसका घोसला सूखी टहनियों का होता है जो चीथड़ों और बाल आदि से मुलायम कर दिया जाता है। मादा इसमें अक्सर दो अण्डे देती है जो लल्छौंह सफेद रंग के होते हैं और जिन पर कत्थई चित्तियाँ पड़ी रहती हैं।

कुरर-परिवार
(FAMILY PANDIONIDAE)

इस छोटे परिवार में केवल एक पक्षी हमारे यहाँ प्रसिद्ध है जिसे मछारंग का नाम इसलिए मिला है कि इसका मुख्य भोजन मछली है।

यह बड़ा शिकारी पक्षी है जो कहीं-कहीं झुंड में भी रहता है लेकिन हमारे यहाँ यह प्रायः अकेले या जोड़े में ही दिखाई पड़ता है। इसका घोंसला बहुत बड़ा होता है। नीचे इसका वर्णन दिया जा रहा है।

मछारंग
(OSPREY)

मछारंग को यह नाम उसके मछली के शिकार के कारण ही मिला है जो उसके लिए सब तरह से उपयुक्त है। यह हमारे यहाँ का प्रसिद्ध शिकारी पक्षी है जो जाड़ों में हमारे
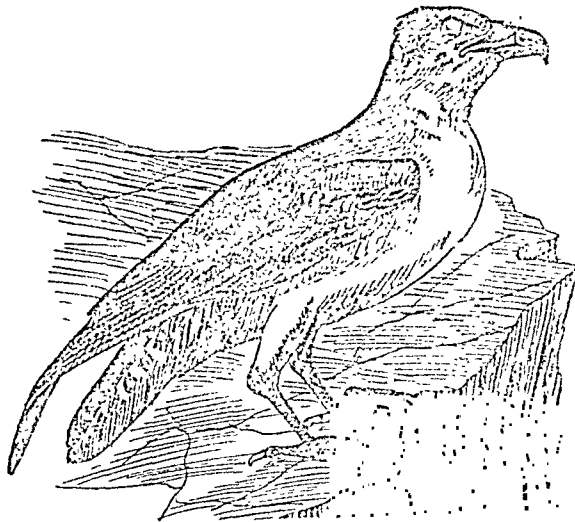
मछारंग

देश में चारों ओर मीठे और खारे पानी के किनारे फैल जाता है। यह या तो पानी के किनारे किसी ठूंठ या टीले पर बैठा रहता है या पानी के ऊपर मछली की घात में उड़ता

रहता है और मछली को देखते ही पानी में कौडिल्ले की तरह कूदकर अपने शिकार को पकड़ लेता है।

यह लगभग २०-२२ इंच का पक्षी है जिसके नर-मादा एक रंग-रूप के होते हैं। इसके शरीर का ऊपरी हिस्सा गाढ़ा भूरा और नीचे का सफेद रहता है। इसका सिर सफेदी मायल रहता है जिस पर दोनों ओर एक एक गाढ़ी पट्टी पड़ी रहती है। चोंच काली और पैर पीले रहते हैं।

मछारंग हमारे यहाँ का मौसमी पक्षी कहा जा सकता है जो यहाँ जाडों में आकर चारों ओर फैल जाता है। इसकी और आदतें यहाँ की शिकारी चिड़ियों की तरह होती हैं और यह ज्यादातर अपना पेट मछलियों से भरता है।

मयूर वर्ग

(ORDER GALLIFORMES)

इस वर्ग में उन सब पक्षियों को एकत्र किया गया है जो अपने मांस के लिए प्रसिद्ध हैं और जिनका हम लोग शिकार करते हैं।

वैसे तो शिकार की चिड़ियों में कुछ लोग बत्तखों को भी शामिल कर लेते हैं क्योंकि वे खाने के लिए काफी संख्या में प्रति वर्ष मारी जाती हैं, लेकिन वास्तव में शिकार की चिड़ियाँ वे ही हैं जिन्हें उनके सफेद मांस के कारण इस वर्ग में स्थान दिया गया है।

ये वैसे तो पेड़ पर रहनेवाले पक्षी हैं लेकिन इनमें से अधिकतर ऐसे हैं जो अपना ज्यादा समय जमीन पर ही बिताते हैं। तीतर आदि कुछ ऐसे जरूर हैं जिन्होंने पेड़ों पर जाना एकदम छोड़ दिया है और जो बत्तखों की तरह लंबी उड़ान नहीं करते लेकिन अपने छोटे, गोल और चौड़े डैनों से ये जमीन से एकाएक हवा में उठ सकते हैं और थोड़ी दूर तक बड़ी तेजी से उड़ सकते हैं।

इनका मुख्य भोजन *गल्ला, बीज और दाना है, लेकिन इनमें से ज्यादातर कीड़े-*मकोड़े भी खाते हैं। इनकी चोंच छोटी और कुछ टेढ़ी होती है जो दाना चुनने के लिए बहुत उपयुक्त है। इनके गले के भीतर कबूतरों की तरह एक थैली होती है जो कोप (Crop) कहलाती है। ये पहले उसी में चुगा हुआ दाना भर लेते हैं जहाँ से वह

कुछ देर बाद उनके पेट में पहुँचता है। इनके पेट की भीतरी दीवार की मांसपेशियाँ बड़ी मजबूत होती हैं। ये पक्षी दाने के साथ कुछ पत्थर के छोटे-छोटे टुकड़े भी चुग लेते हैं जो उनके पेट की मांस-पेशियों के चलने से आपस में रगड़ खाते हैं और उनके चुने हुए दाने को पीस डालते हैं।

ये पक्षी अपने रंगीन परों के लिए प्रसिद्ध हैं। मोर तो संसार का सबसे भड़कीली पोशाकवाला पक्षी माना जाता है। मोर ही क्यों, कुछ फेजेन्ट भी बहुत सुन्दर होते हैं जिनके परों का रंग देखकर आश्चर्य-चकित रह जाना पड़ता है। इनके नरों की ही रंगीन पोशाक होती है, मादाएँ प्रायः मैली सिलेटी रहती हैं। इनमें से कुछ के पैर में एक या दो नोकीले खार रहते हैं जिनसे ये बड़ी भयंकर लड़ाई लड़ते हैं।

यह बड़ा वर्ग वैसे तो दो उपवर्गों में बँटा हुआ है, लेकिन यहाँ केवल मयूर उपवर्ग (Alectoropodes) के पक्षियों का ही वर्णन दिया जा रहा है जिसमें हमारे यहाँ के शिकार के प्रायः सभी पक्षी आ जाते हैं।

मयूर उपवर्ग

(SUB ORDER ALECTOROPODES)

मयूर उपवर्ग में प्रायः सभी प्रसिद्ध पक्षी आ जाते हैं जिनकी विशेषताओं के बारे में ऊपर लिखा जा चुका है।

यह उपवर्ग वैसे तो दो परिवारों में विभक्त है, लेकिन पहला मोर-परिवार (Family Phasianidae) काफी विस्तृत और बड़ा है जिसमें प्रायः शिकार के सब पक्षी आ जाते हैं। यहाँ इसी का वर्णन आगे दिया जा रहा है।

मोर-परिवार

(FAMILY PHASIANIDAE)

मोर-परिवार के पक्षी अपनी रंगीन पोशाक और स्वादिष्ठ मांस के लिए संसार में प्रसिद्ध हैं। इसमें छोटे-बड़े सभी प्रकार के पक्षी हैं जो जमीन पर बड़ी तेजी से दौड़ लेते हैं और खतरा पास आने पर फौरन हवा में उड़ जाते हैं।

इस परिवार में वैसे तो बहुत-सी जातियों के पक्षी हैं, लेकिन यहाँ केवल निम्न-लिखित जातियों की चिड़ियों का वर्णन दिया जा रहा है जिनसे हम सभी परिचित हैं और जो हमारे देश की प्रसिद्ध चिड़ियाँ मानी जाती हैं।

१ मोर (Peacocks)
२ मुर्गियाँ (Jungle Fowls)
३ फेजेण्ट (Pheasants)
४. तीतर (Partridges)
५ वटेर (Quails)
६ लवा (Button Quails)

इन सबका मांस सफेद होता है और इनका मुख्य भोजन दाना, बीज और कीड़े-मकोड़े हैं। ये ज्यादा समय खुले मैदानों में बिताते हैं और जमीन पर ही घास-फूस रखकर किसी झाड़ी में अंडे देते हैं।

मोर

(PEACOCK)

मोर हमारे यहाँ का सबसे सुन्दर पक्षी माना जाता है। जैसी राजसी पोशाक इसको प्रकृति ने दी है वैसी हमारे यहाँ के किसी भी पक्षी को नहीं मिली है। अपनी नीली मखमल-जैसी गरदन और लंबी सतरंगी दुम से यह हमारे बाग-बगीचों की शोभा दुगुनी कर देता है। बरसात में जब यह अपनी दुम को गोलाकार फैलाकर नाचने लगता है तो इसकी शोभा देखते ही बनती है।

मोर हमारे यहाँ का बारहमासी पक्षी ही नहीं, एकदम हमारे ही देश का पक्षी है, जो यहाँ के सिवा और किसी देश में नहीं पाया जाता। यहाँ यह सारे देश में फैला हुआ है और हिमालय पर भी यह पाँच हजार फुट तक चला जाता है। इसके नर और मादा एक रंग-रूप के नहीं होते और नर जितना ही सुन्दर और भड़कीला होता है, मादा उतनी ही भद्दी और बदरंग होती है।

नर मादा से कद में कुछ बड़ा होता है। उसकी लंबाई बिना दुम के जहाँ ४०-४५ इंच की होती है वहीं मादा ३८ इंच से ज्यादा बड़ी नहीं होती। अपनी लंबी दुम के

साथ नर करीब ९० इंच का हो जाता है। मोर के रंग-रूप का वर्णन आसान नहीं है क्योंकि इसकी पोशाक में रंगों की ऐसी भरमार रहती है कि उसका ठीक-ठीक अंदाजा इसे देखकर ही लगाया जा सकता है। इसका ऊपरी हिस्सा सिलेटी-मायल हरा रहता है जिस पर काले सेहर पड़े रहते हैं। गरदन गाढ़ चमकीली नीले रंग की रहती है और सिर पर के छोटे घुंघराले पर हरे रंग के रहते हैं। इसके सिर पर एक सुन्दर कलँगी रहती है जिसके सिरे पर चमकीले, नीले और हरे रोयें रहते हैं। इसकी गरदन के बाद का कुछ निचला हिस्सा चमकीला हरा रहता है और डैने भूरे रंग के होते हैं। दुम भी भूरी रहती है, लेकिन उसके ऊपर के लंबे पर, जिन्हें हम इसकी दुम कहते हैं, काफी बड़े और सुन्दर होते हैं। इनमें से कुछ सिरे पर जाकर गोल हो जाते हैं जिसमें गाढ़ा नीले रंग का अर्द्धचन्द्राकार चिह्न बना रहता है।

मोर

मादा भूरे रंग की होती है जिसके सिर पर नर की तरह कलँगी जरूर रहती है, लेकिन इसके अलावा इसकी पोशाक नर की तरह चटकीली नहीं होती। इसका ऊपरी हिस्सा भूरा और निचला बादामीपन लिये सफेद रहता है। गरदन का निचला हिस्सा जरूर हरा रहता है, लेकिन इसके नर की तरह लंबी दुम नहीं होती। दोनों की चोंच हरछौंह, सिलेटी और पैर सिलेटी भूरे रहते हैं।

मोर वैसे तो शिकार की चिडियो की श्रेणी में आता है, लेकिन कुछ तो इसकी सुन्दरता के कारण और कुछ धार्मिक विचारो के कारण हमारे देश में हिन्दू लोग इसे बहुत कम खाते हैं। यही कारण है कि ये इतने ढीठ हो गये हैं कि इन्हें हम अपने बाग-बगीचों तथा खेतो में आजादी से घूमते देखते हैं।

मोर सर्वभक्षी पक्षी कहा जा सकता है जो दाना और गल्ला के अलावा कीडे-मकोडे, छिपकलियाँ और छोटे-मोटे साँप तक खा लेता है। यह अन्य चिडियों की तरह जोडा नही बाँधता बल्कि एक नर के साथ कई मोरनियाँ रहती हैं। इनके अण्डा देने का समय जून से अगस्त तक रहता है, जब मादा किसी झाडी में जमीन पर ही घास-फूस रखकर पाँच-सात अण्डे देती है। ये अण्डे बादामी या मटमैले होते हैं और उनपर कुछ ललाई भी झलकती रहती है।

जंगली मुरगी

(RED JUNGLE FOWL)

जगली मुरगी शक्ल-सूरत ही में नही रगरूप में भी बहुत-कुछ हमारी पालतू देसी मुरगियो की तरह होती है। इसके मुरगो के सिर पर भी लाल कघीनुमा मास की चोटी या केस और गरदन के नीचे उसी तरह की लाल मास की थैली लटकती रहती है जैसे हमारे पालतू मुरगो के होती है।

जगली मुरगी हमारे यहाँ की बारहमासी चिडिया है जो हमारे देश के उत्तरी और पूर्वी भागा में ज्यादा सख्या में पायी जाती है। दक्षिण की ओर यह गोदावरी के आगे बहुत कम पायी जाती है, लेकिन मध्य प्रदेश के जगलो में यह कहीं कहीं दिखाई पड जाती है। वैसे तो यह हिमालय पर पाँच हजार फुट तक पायी जाती है लेकिन इसकी ज्यादा सख्या तराई के ऐसे जगलो में मिलती है जहाँ ज्यादा नमी रहती है।

इनके नर-मादा अलग-अलग रग-रूप के होते हैं। नर दो सवा दो फुट लबा और बहुत भडकीली पोशाकवाला होता है। मादा डेढ फुट से ज्यादा बडी नही होती। नर का सिर और गरदन सुनहली पीली, पीठ गहरी भूरी, डैने ऊपर कत्थई, नीचे काले, जिनमें हरे और नीले पर और नीचे का हिस्सा काला रहता है। दुम नारगी होती है। लेकिन उसके लबे पर काले रहते हैं जिनमें हरी और नीली चमक रहती है।

दुम के बीच के दो पर काफी लंबे रहते हैं। मादा का सिर और गरदन कत्थई काली, पीठ पर काले और भूरे सेहरे-से, डैने भूरे और नीचे का हिस्सा हलका कत्थई रहता है। दोनों की चोंच गाढ़ी भूरी और पैर गाढ़े सिलेटी रहते हैं।

जंगली मुरगियाँ दिन में ज्यादातर झाड़ियों में घुसी रहती हैं, लेकिन शाम और सबेरे इनका गरोह झाड़ियों से निकलकर मैदानों में खूराक की तलाश में घूमने लगता है। इनकी मुख्य खूराक दाने, बीज और कीड़े-मकोड़े हैं। इनका मांस बहुत स्वादिष्ठ होता है।
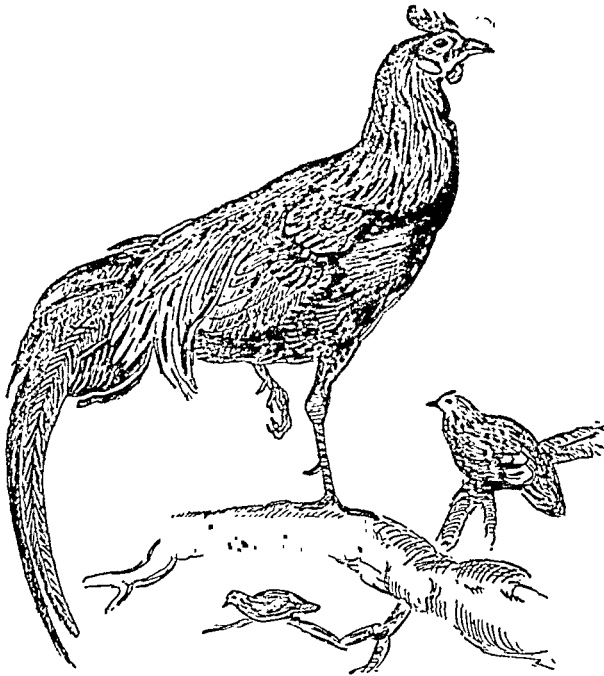
जंगली मुरगी

जंगली मुरगियों का अण्डा देने का एक खास समय नहीं है। इनके अण्डे अक्टूबर से नवम्बर तक तथा मार्च से मई तक मिलते हैं, जिन्हें मादा किसी झाड़ी में छिछला-सा गढ़ा बनाकर और उसमें घास-फूस रखकर देती हैं। अण्डे प्रायः पाँच-सात होते हैं जिनका रंग हलका बादामी रहता है।

फेजेण्ट

(PHEASANT)

फेजेण्ट वास्तव में वे पहाडी मुरगियाँ हैं जो अपनी भडकीली पोशाक के कारण मुरगियों से भिन्न जान पडती हैं। ये मैदानों में नहीं पायी जातीं और इनमें से कुछ तो एक दम बरफिस्तान में ही अपना सारा समय बिताती हैं।

चेड फेजेण्ट

इनकी वैसे तो कई जातियाँ हैं जो हमारे यहाँ हिमालय प्रदेश में पायी जाती हैं लेकिन यहाँ केवल चेड फेजेण्ट (Cheer Pheasant) का वर्णन दिया जा रहा है जो हमारे यहाँ का बहुत प्रसिद्ध फेजेण्ट है। चीड के जगलो मे अपना अधिक समय बिताने के कारण इसका नाम चीड फेजेण्ट (Cheer Pheasant) पड गया है। पहाड में इसे 'चेड' कहते हैं।

चेड हिमालय में ६–७ हजार फुट तक के जगलो में काफी सख्या में पाये जाते हैं। इन्हें घने जगलो से ज्यादा नितरे बितरे जगल पसन्द हैं।

चेड़ हमारे यहाँ के बारहमासी पक्षी हैं जिनके नर-मादा रंगरूप में एक ही जैसे होकर भी कद में छोटे-बड़े होते हैं। नर लगभग ४० इंच का होता है, लेकिन मादा की लंबाई ३० इंच से ऊपर नहीं जाती। इनका वदन चित्तीदार होता है और आँख के चारों ओर की खाल चटक लाल रंग की रहती है। इनकी चोंच भूरापन लिये सिलेटी और पैर भूरे रंग के होते हैं। चेड़ की दुम लगभग दो फुट लंबी होती है जिससे इन्हें उड़ने में उतनी आसानी नहीं रह जाती। ये तीतरों की तरह खतरा निकट देखकर पहले जमीन पर भागना ही पसन्द करते हैं, लेकिन अधिक दवाव पड़ने पर इन्हें उड़ने के लिए मजबूर होना पड़ता है। इनकी उड़ान सुस्त-सी होती है और ये थोड़ी दूर जाकर या तो जमीन पर उतर पड़ते हैं या पेड़ों पर जा वैठते हैं।

चेड़ के शिकार के लिए लोग कुत्तों का सहारा लेते हैं। एक ओर से कुछ आदमी कुत्तों के साथ इन्हें हाँकते हैं और दूसरी ओर कुछ लोग वंदूक लेकर खड़े रहते हैं जो इनके उड़ने पर इन्हें वंदूक से मार गिराते हैं। इनका मांस स्वादिष्ठ होता है।

चेड़ का मुख्य भोजन पेड़-पौधों की नरम जड़ें हैं, लेकिन यह फलफूल, दाना, बीज और कीड़े-मकोड़े भी बड़े स्वाद से खाता है। इसके अण्डा देने का समय अप्रैल से जून तक है जब मादा किसी झाड़ी या घास के बीच घोंसला वनाकर ८ से १४ तक अण्डे देती है जिनका रंग धुमैला सफेद या पत्थरी रहता है।

तीतर

(GREY PARTRIDGE)

तीतर हमारा बहुत परिचित पक्षी है जिसे अक्सर लोग लड़ाने के लिए पालते हैं। आज भी हमारे यहाँ शायद ही कोई गाँव ऐसा होगा जहाँ एक-दो तीतर के शौकीन न मिल जायँ। पालतू हो जाने पर यह अपने मालिक के पीछे-पीछे कुत्ते की तरह फिरा करता है।

तीतर हमारे यहाँ का बारहमासी पक्षी है जो हमारे देश के प्राय: सभी सूखे स्थानों में पाया जाता है। इसे झाड़ियोंवाले खुले मैदान वहुत पसन्द हैं। यह १०–१२ इंच का छोटा शिकार का पक्षी है जिसका मांस वहुत ही स्वादिष्ठ होता है। इसके नर और मादा एक शकल-सूरत के होते हैं लेकिन नर की टाँगों में एक-एक खार रहता है जिसे यह लड़ने के समय इस्तेमाल करता है।

तीतर का शरीर हल्के बादामी रंग का होता है जिसमें सिर और गरदन को छोड़कर सारे शरीर पर भूरी धारियों की लहरियाँ पड़ी रहती हैं। इनकी गरदन और सिर पर भी भूरे चिह्न पड़े रहते हैं और चोंच गाढ़ी सिलेटी तथा पैर लाल रहते हैं।

तीतर प्रायः जोड़े में रहते हैं, लेकिन जहाँ इनकी संख्या ज्यादा होती है वहाँ ये ८–१० के गरोह में दिखाई पड़ते हैं। ये झाड़ियों के आस-पास ही मैदान में चरते रहते हैं और जैसे ही किसी की आहट मिली नहीं कि फौरन भागकर इधर-उधर झाड़ियों में छिप जाते हैं। ये हवा में उड़ने से ज्यादा जमीन पर भागना ही पसन्द करते हैं। खतरा निकट देखकर बड़ी तेजी से उड़कर थोड़ी ही दूर पर जाकर फिर बैठ जाते हैं और जमीन पर बड़ी तेजी से भागकर किसी झाड़ी में छिप जाते हैं। इनका मुख्य भोजन वैसे तो दाना और बीज आदि है लेकिन ये कीड़े-मकोड़े भी खूब खाते हैं। दीमक तो इन्हें खास तौर पर पसन्द है।
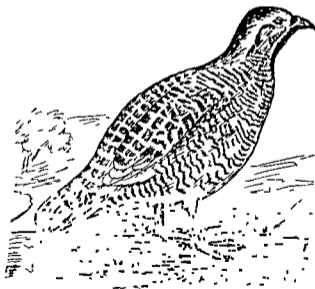
तीतर

इनके अण्डा देने का समय फरवरी से जून तक रहता है, लेकिन इनमें से कुछ सितम्बर अक्टूबर में दूसरी बार फिर अण्डा देते हैं। ये घोंसला नहीं बनाते बल्कि मादा किसी

झाड़ी में छिछला गड्ढा बनाकर और उसमें घास-फूस रखकर ६ से ९ तक अण्डे देती है जो मटमैले रंग के रहते हैं।

तीतर की एक और जाति हमारे यहाँ पायी जाती है जो काले रंग की होती है। इसे वैसे तो काला तीतर (Black Partridge) कहा जाता है, लेकिन इसकी बोली के कारण इसे 'सुभान तेरी कुदरत' भी कहा जाता है। यह ज्यादातर हमारे यहां कछारों और खादरों में पाया जाता है और देखने में बहुत ही सुन्दर लगता है।
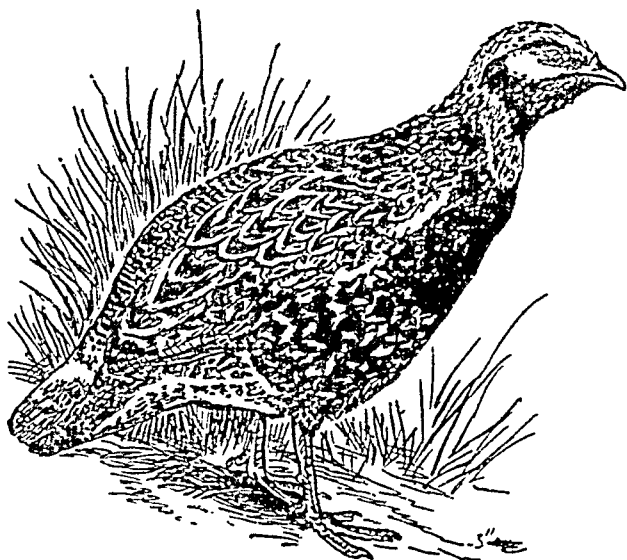
काला तीतर

इसके नर का ऊपरी रंग काला रहता है जिस पर सफेद सीधी आड़ी धारियाँ और चित्ते पड़े रहते हैं। गले में कत्थई कंठा, सीना काला और निचला हिस्सा गहरे भूरे रंग का होता है जिसमें सफेद धारियाँ पड़ी रहती हैं। डैने कत्थई रहते हैं और आँख के नीचे एक सफेद चित्ता पड़ा रहता है। मादा का ऊपरी हिस्सा तो नर के ही जैसा रहता है, लेकिन उसके काले रंग का स्थान गाढ़ा कत्थई ले लेता है। मादा के गले का कंठा भूरा और नीचे का हिस्सा बादामी रहता है। दोनों की चोंच काली और पैर भूरापन लिये लाल रंग के होते हैं।

इसकी बाकी सब आदतें भूरे तीतर की तरह होती हैं इसलिए उन्हें फिर से दुहराने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती।

बटेर

(QUAIL)

बटेर को तीतर का छोटा भाई कहना ही ज्यादा मुनासिब होगा। ये शकल सूरत में ही नहीं, रहन-सहन में भी तीतरों से मिलते-जुलते होते हैं। इनकी वैसे तो कई जातियाँ हैं, पर हमारे यहाँ दो ही बटेर खास तौर पर आते हैं। बड़े घाघस और छोटे चिनिग बटेर कहलाते हैं।

घाघस मौसमी बटेर है जो हमारे यहाँ जाड़े के शुरू होते-होते उत्तर पश्चिम से आकर दक्षिण भारत की ओर बढ़ते जाते हैं। जाड़ा खतम होते ही ये फिर दक्षिण से लौटने लगते हैं और खेत की कटाई के साथ ही साथ हमारे प्रान्त को छोड़कर उत्तर पश्चिम की ओर चले जाते हैं।

घाघस बटेर

इसके नर और मादा में बहुत थोड़ा ही फर्क रहता है। नर के सिर पर काली या कत्थई धारियाँ और दोनों आँखों के ऊपर और बीच सिर से बादामी खड़ी धारी रहती है। ऊपर का रंग भूरा होता है जिस पर सफेद और कत्थई खड़े चिह्न रहते हैं। डैने भूरे होते हैं जिनमें पहला पंख छोड़कर बाकी में ललछौंह पटरियाँ पड़ी रहती हैं।

दुम गाढ़ी कत्थई रहती है जिनमें बादामी लकीरें होती हैं। गला सफेद रहता है जिसमें नर के लंगरनुमा काला चिह्न रहता है। इनका सीना कल्छौंह बादामी रहता है जिसमें हल्के रंग की धारियां रहती हैं। मादा के गले पर लंगरनुमा काला चिह्न नहीं रहता, लेकिन उसकी जगह उसके सीने पर काली चित्तियां पड़ी रहती हैं।

दोनों की आंख की पुतली हल्की बादामी, चोंच सिलेटी भूरी और पैर पीले होते हैं।

बटेर ८ इंच की छोटी-सी गोल चिड़िया है जो तीतर की तरह उड़ने से कहीं ज्यादा भागकर झाड़ियों में दबकना पसन्द करती है। इसे जब मजबूर होकर उड़ना ही पड़ता है तो यह किसी ओर जाने से पहले सीधी आसमान की ओर उड़ती है।

यह दाना भी चुंग लेती है और कीड़े-मकोड़े से भी परहेज नहीं करती। इनका शिकार लोग बंदूक से भी करते हैं और इसे जाल में भी फँसाते हैं। इसका मांस काफी स्वादिष्ठ होता है।

बटेर भी तीतरों की तरह लड़ाने के लिए पाले जाते हैं और शहरों में इस युग में भी बटेरबाज़ काफी संख्या में देखे जा सकते हैं जो इनकी लड़ाई पर सैकड़ों की बाजियाँ लगा देते हैं।
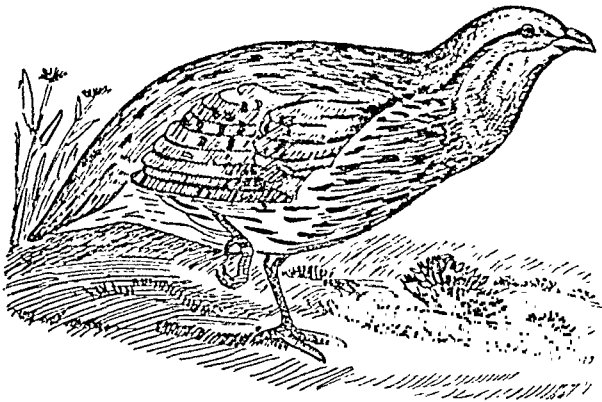
चिनिग बटेर

दूसरा चिनिग बटेर घाघस से कुछ छोटा होता है। इसके रंग-रूप में केवल इतना ही फर्क रहता है कि इसके डैने भूरे और सफेद होते हैं और इसका सीना काला रहता है।

यह हमारे यहाँ का वारहमासी पक्षी है जो जरूरत पड़ने पर थोड़ा-बहुत स्थान-परिवर्तन जरूर कर लेता है, पर अपना देश छोड़कर बाहर नहीं जाता।

इसकी बाकी और सब आदतें घावस से मिलती हैं। कुछ लोगों का तो यह ख्याल है कि शिकारियों से जो घावस बटेर घायल होकर यहाँ रह गये थे उन्ही से इन चिनिग बटेरो की नस्ल चली है जो अब यहाँ के बारहमासी पक्षी हो गये हैं।

घावस तो अपने अण्डे तिब्बत या कश्मीर की तराई में जाकर देता है, पर चिनिग की मादा बरसात में यही किसी झाड़ी या खुले मैदान में ४ से ६ तक अण्डे देती है। अण्डे देने के लिए जमीन पर ही मामूली गढा बनाया जाता है क्योंकि यह पक्षी पेड़ पर कभी नहीं बैठता। इस गड्ढे मे घास-फूस का अस्तर दे दिया जाता है जिससे यह नरम रहे।

इसके अण्डे हलके पीले से लेकर गहरे बादामी तक होते हैं जिन पर काली बैंगनी और भूरी चित्तियाँ पड़ी रहती हैं।

लवा

(BUTTON QUAIL)

लवा बटेर से भी छोटा पक्षी है। शिकार की चिड़ियों में इससे छोटा पक्षी और दूसरा नहीं होगा। कद में यह ५–६ इंच से ज्यादा बड़ा नहीं होता।

लवा

यह हमारे यहाँ का बारहमासी पक्षी है जो खेत के आस पास की घास या सरपत

के बूटों में रहता है। ये १०–१२ के गरोह में निकलते हैं, पर आहट पाने पर फौरन ही छिप जाते हैं।

इनके नर-मादा के रंग में थोड़ा ही फर्क रहता है। वैसे दोनों भूरे रंग के होते हैं जिनके पेट पर छोटी-छोटी काली विन्दियाँ पड़ी रहती हैं, पर नर के सिर पर की सफेद और काली धारियों में कुछ फर्क रहता है।

नर का ऊपरी हिस्सा भूरा, सिर कलछौंह जिस पर माथे के पास काली और सफेद धारी, सीना गुलाबीपन लिये सिलेटी और पेट पीलापन लिये हलका खैरा रहता है। पेट पर छोटी-छोटी काली विन्दियाँ रहती हैं और गला सफेद रहता है।

मादा के निचले हिस्से का रंग धूमिल होता है और उसके सीने पर काली विन्दियाँ नहीं होतीं। उसके सिर या माथे पर काली और सफेद धारी भी नहीं होती और कद में भी वह नर से कुछ छोटी होती है। दोनों की आँख की पुतली भूरी और चोंच तथा पैर लाल होते हैं।

मादा साल में दो वार अण्डे देती है। पहले जनवरी से मार्च तक, फिर सितम्वर से अक्टूवर तक। यह किसी झाड़ी के नीचे एक छिछला गड्ढा खोदकर अण्डे देने की जगह वना लेती है जिसमें यह हलके वादामी रंग के १०–११ अण्डे देती है।

क्रौञ्च वर्ग

(ORDER GRUIFORMES)

इस वर्ग में सारस, क्रौञ्च आदि वड़े कद और लंवी टाँगों के पक्षियों के साथ छोटे कद के जलकुक्कुट भी रखे गये हैं जो प्राय: जलाशयों के किनारे अपना जीवन विताते हैं। इनको इसीलिए जलचारी पक्षी कहा जाता है।

ये पक्षी जलाशयों के आस-पास के कीचड़ में अपना समय विताते हैं और कभी-कभी खुश्की पर भी रहते हैं। इनका मुख्य भोजन घास-फूस, जड़ें, गल्ला, दाना और वीज है, लेकिन ये मेढक और छिपकली आदि छोटे जीवों को भी खा लेते हैं। ये वैसे तो कई परिवारों में वाँटे गये हैं, लेकिन यहाँ नीचे के दो परिवारों का ही वर्णन दिया जा रहा है जिनमें के वहुत से पक्षी हमारे देश में पाये जाते हैं।

१. क्रौञ्च-परिवार—Family Gruidae

२. जलकुक्कुट-परिवार—Family Rallidae

क्रौञ्च-परिवार

(FAMILY GRUIDAE)

क्रौञ्च-परिवार में सारस, करकरा, कूंज आदि लंबी टाँगवाले पक्षी हैं जो देखने में महाबकों जैसे ही जान पड़ते हैं लेकिन इन पक्षियों की गरदन लंबी होते हुए भी उनकी चोंच महाबकों जैसी लंबी नहीं होती। इसके अलावा इनकी चोंच में एक खास बात यह रहती है कि उसमें घरारे कटे रहते हैं जो महाबकों की चोंच में नहीं रहते। इनका मुख्य भोजन तो घास-पात और गल्ला है लेकिन ये मेढक छिपकिली आदि भी खा लेते हैं।

ये अक्सर झुंड में रहनेवाले पक्षी हैं जिनमें से कुछ जोड़ा बाँधकर अलग-अलग भी रह जाते हैं। जोड़ा बाँधने के समय ये मादा को रिझाने के लिए पर फैलाकर बड़ा सुन्दर नृत्य करते हैं। नाच समाप्त होने पर ये अपनी लंबी गरदन झुकाते हैं और फिर हवा में उछल जाते हैं और इस प्रकार मादा को रिझाकर उससे जोड़ा बाँध लेते हैं।

ये न तो वृक्षों पर बैठते हैं और न वृक्षों पर अपना घोंसला ही बनाते हैं। इनका घोंसला जमीन पर ही रहता है जो देखने में घास पात और नरकुलों का ढेर-सा जान पड़ता है। इसी में मादा अण्डे देकर सेने के लिए बैठती है।

इस परिवार में वैसे तो कई जातियों के पक्षी हैं, लेकिन यहाँ केवल तीन पक्षियों के वर्णन दिये जा रहे हैं जो हमारे यहाँ के परिचित पक्षी हैं।

कूंज

(COMMON CRANE)

कूंज को कुलंग भी कहा जाता है। वैसे इनका शुद्ध संस्कृत नाम क्रौञ्च है जो हमारे यहाँ के सारस की जाति के प्रसिद्ध पक्षी हैं। हमारे देश में ये जाड़ों के प्रारंभ में आते हैं और गरमियों के शुरू होते होते फिर यहाँ से वापस चले जाते हैं। यहाँ ये उत्तरी भारत के ही जलाशयों के पास रहते हैं और दक्षिण भारत की ओर नहीं जाते। इनका असली निवासस्थान यूरोप, चीन और मंगोलिया है जहाँ से ये अफगानिस्तान और पाकिस्तान होकर हमारे यहाँ जाड़ों में आते हैं।

कुलंग लगभग ४५ इंच लंबे पक्षी हैं जिनके नर-मादा एक-जैसे होते हैं। इनके शरीर का रंग राख जैसा रहता है, लेकिन डैनों के कुछ पर काले रहते हैं। माथे और आँख के सामने के पर काले रहते हैं और गुद्दी पर का रंग गंदा लाल रहता है। गुद्दी के नीचे

एक कलछौंह सिलेटी तिकोना चिह्न पड़ा रहता है और सिर के दोनों ओर आँखों के नीचे से एक-एक सफेद पट्टी चली जाती है। इनकी गरदन, ठुड्ढी और गाल कलछौंह रहते हैं। चोंच कलछौंह हरे रंग की रहती है और पैर काले रहते हैं। दुम के पर उठे-उठे-से और घुंघराले रहते हैं।

कूँज

कूँज सारस की शकल-सूरत की चिड़िया है जो कद में सारस से छोटी और करकरा से बड़ी होती है। यह करकरा की तरह गरोहों में रहती है और अक्सर इसके तथा करकरा के झुंड एक साथ ही दिखाई पड़ते हैं। इन दोनों की शकल-सूरत भी इतनी मिलती-जुलती रहती है कि अक्सर दोनों में धोखा हो जाता है। इनके गोल दो-दो सौ और तीन-तीन सौ तक के होते हैं।

कूँज वैसे तो बड़े जलाशयों के निकट दिखाई पड़ते हैं, लेकिन इन्हें बड़ी नदियों के किनारे रहना भी अधिक भाता है। ये उड़ते समय आकाश में एक सीधी पंक्ति बनाकर

उडते हैं जो बहुत दूर तक आकाश मे फैली हुई दिखाई पडती है। इनकी बोली बहुत कर्कश होती है, जिससे रात में अथवा दूर रहने पर भी इनकी उपस्थिति का पता लग जाता है। इनकी चराई का समय सुबह और शाम को रहता है और जिस खेत में इनका गरोह पडता है उसको साफ ही कर देता है। दिन और रात मे ये किसी झील या नदी के किनारे आराम करते रहते हैं। इनका मुख्य भोजन हरी फसल के नरम कल्ले और गल्ला है, लेकिन ये कीडे-मकोडे, घोंघे और मछलियाँ भी खा लेते हैं। इनका मास खाने में कडा रहने पर भी अच्छा होता है।

कूज हमारे देश में अण्डे नही देते। इसके लिए वे फिर अपने देश लौट जाते हैं जहाँ मादा किसी दलदल के आसपास जमीन पर सूखी टहनियो आदि का ऊँचा घोसला बनाकर दो अण्डे देती है, जो हरछौंह भूरे रग के होते हैं।

करकरा

(DEMOISELLE CRANE)

कूँज या कुलग की तरह करकरा भी सारस की जाति की लबी टागवाली मौसमी चिडिया है जो जाडो के प्रारम्भ में यहाँ आकर जाडो के अन्त में यहाँ से लौट जाती है। कुल्ग की तरह करकरा सिर्फ उत्तरी भारत में ही नही रहते बल्कि इनके हजारो के गोल दक्षिण भारत की ओर भी जाडो मे दिखाई पडते हैं। इनकी भी चराई का समय सुबह और शाम है और दिन और रात में ये किसी बडी झील या नदी के किनारे आराम करते रहते हैं।

करकरा करीब ३२-३३ इच का पक्षी है जिसके नर मादा एक ही रग-रूप के रहते हैं। इनके सारे शरीर का रग हलका सिलेटी होता है, लेकिन गरदन का निचला हिस्सा काला रहता है। गरदन का यह काला रग इनके सीने तक फैल जाता है जहाँ के पर औरो से बडे रहते हैं। इनकी आँखो के पीछे थोडे से सफेद मुलायम पर रहते हैं जिनसे इन्हें पहचानने में जरा भी दिक्कत नही पडती। इनकी चोंच गदी हरी और पैर काले होते हैं।

करकरा की बोली काफी तेज और कर्कश होती है और जब ये जाडो में हमारे यहाँ आने लगते हैं तो इनकी बोली से इनका आना छिपा नही रहता। इनका भी मुख्य भोजन घास-पात और फसल के नरम कल्ले हैं जिनके अलावा ये कीडे-मकोडे,

घोंघे, कटुए और मेढक मछली भी खा लेते हैं। करकरा भी आसमान में पंक्ति बाँधकर उड़ते हैं और इनकी भी बड़ी लंबी पंक्ति आसमान में फैल जाती है। इनका मांस कुलंग की तरह कड़ा और मामूली होता है।
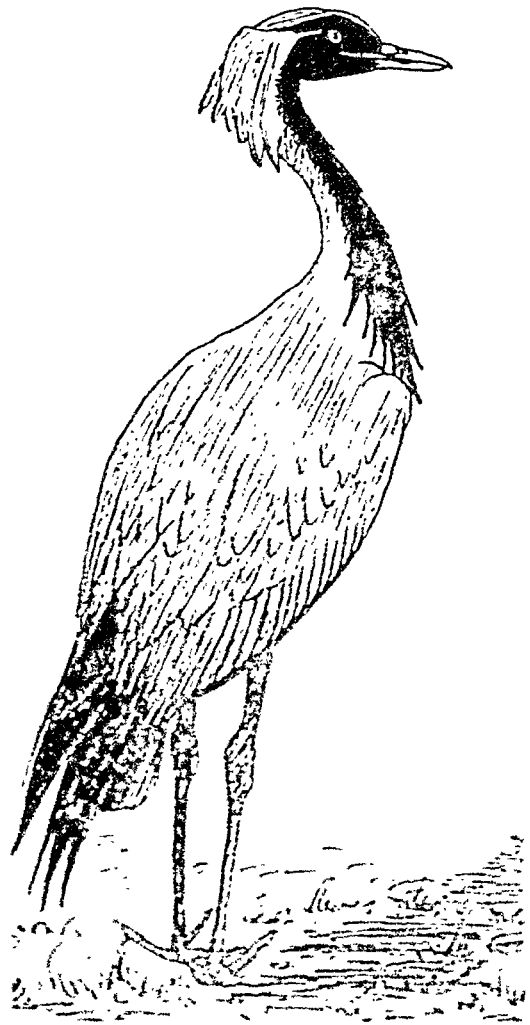
करकरा

मौसमी पक्षी होने के कारण करकरा भी हमारे देश में अण्डा नहीं देते और इसके लिए इन्हें अपने देश लौट जाना पड़ता है। इनके जोड़ा बाँधने का समय मई से जून तक रहता है तब मादा दलदलों के आस-पास या जंगलों में ज़मीन पर घासफूस का ऊँचा और भद्दा-सा घोंसला बनाकर दो अण्डे देती है। ये [illegible] [illegible] [illegible] के होते हैं जिन पर [illegible] [illegible] पड़ी रहती हैं।

सारस

(SARAS CRANE)

[illegible]

इन्हें ज्यादातर लोग मारते नहीं, इससे ये काफी निडर हो गयी हैं, पर बहुत पास जाने पर बड़ी कर्कश बोली बोलकर और अपने भारी पंखों को मारकर ये आसमान में उड़ती हैं। उड़ते समय इन्हें कुछ दूर दौड़ना पड़ता है और हवा में उठ जाने पर भी ये जमीन से बहुत ऊँची नहीं जातीं। इनकी बोली 'सत् राम' से मिलने के कारण इनको गाँव के

सारस

लोग 'सतराम' भी कहते हैं। सारस हमारे यहाँ की बहुत पहचानी हुई बारहमासी चिड़ियाँ हैं जो जोड़ा बाँधकर रहती हैं और अक्सर यह बात देखी गयी है कि एक बार जोड़ा फट जाने पर फिर ये जीवन भर जोड़ा नहीं बाँधतीं।

इनके नर-मादा एक रंग के होते हैं जिनके सारे वदन का रंग सिलेटी रहता है। गर्दन के ऊपरी हिस्से में सफेदी ज्यादा होती है और उसके ऊपर से लेकर सिर तक चटक लाल रंग रहता है। माथा राख के रंग का होता है और कान के पास भी दोनों ओर सिलेटी चित्ते रहते हैं। इसके डैने के सिरे जरूर कलछौंह भूरे रहते हैं, पर निचला हिस्सा सफेदी मायल रहता है। आँख की पुतली नारंगी, चोंच सींग के रंग की और पैर गुलावी होते हैं।

सारस तालावों के छिछले किनारों पर कीचड़ में घूमनेवाला पक्षी है जिसकी चोंच, गर्दन और टाँग सव काफी लंवी होती हैं। इसका मुख्य भोजन मछलियाँ, घोंघे, कटुए और मेढक हैं। वचपन से पाले जाने पर यह इतनी पालतू हो जाती है कि आदमी के पीछे-पीछे घूमती रहती है।

वरसात में मादा सारस पानी के वीच किसी टापू या टिकुरी पर नरई, गोंद या दूसरी किसी तालावी घास के वीच घास का वड़ा-सा घोंसला वनाकर एक से तीन तक अण्डे देती है। अण्डों का रंग हलका गुलावीपन लिये सफेद रहता है जिनमें से कुछ पर वादामी और वैंगनी चित्तियाँ रहती हैं और कुछ सादे ही रहते हैं।

जलकुक्कुट-परिवार

(FAMILY RALLIDAE)

इस परिवार में सव तरह की जलमुरगियाँ रखी गयी हैं जो पानी में अथवा पानी के किनारे रहती हैं। कुछ थोड़ी ऐसी भी हैं जो पानी से दूर खेतों में रहने लगी हैं, लेकिन ज्यादा संख्या उन्हीं की है जिन्हें हम पानी के आसपास के कीचड़ों में कीड़े-मकोड़ों की तलाश में घूमते हुए देखते हैं। इन्हें ऐसे स्थान वहुत पसन्द हैं जहाँ किनारे पर घास-फूस या नरकुल हों जिनमें ये आसानी से छिप सकें।

कीचड़ में रहने के कारण इनके पैरों की उँगलियाँ काफी लम्वी होती हैं। नरकुलों में इधर से उधर उड़कर छिप जाने की आदत से इनके डैने छोटे और इनकी उड़ान मामूली रह गयी है।

टिकरी को छोड़कर इनमें से किसी के पैर जालपाद नहीं होते और टिकरी के पैर की उँगलियाँ भी वत्तखों की तरह पूरी जुड़ी नहीं रहतीं वल्कि पत्तियों की तरह उनका थोड़ा हिस्सा वढ़ा रहता है जिससे वे पानी में आसानी से तैर लेती हैं। जरूरत पड़ने पर ये सव पानी में तैर लेती हैं, लेकिन टिकरी तैरने में सवसे उस्ताद होती है।

इनका मुख्य भोजन कीचड़ के कीड़े-मकोड़े, छोटे-छोटे पौधे और घोंघे हैं जिनके लिए इन्हें लम्बी चोंच मिली रहती है।

इनकी वैसे तो कई जातियाँ हैं लेकिन यहाँ अपने यहाँ की कुछ प्रसिद्ध चिड़ियों का वर्णन दिया जा रहा है।

डाउक
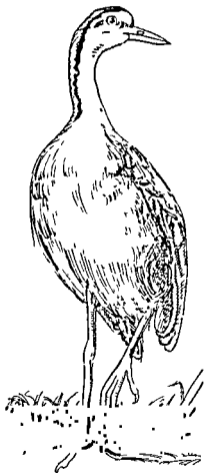
डाउक (वैंममुरगी)

(WHITE CRESTED WATER HEN)

डाउक को कहीं-कहीं वैंममुरगी भी कहा जाता है क्योंकि यह शर्मीली चिड़िया अक्सर गाँव-कस्बों के निकट की ताल-तलैयों के निकट की बाँसवाड़ी को अपने रहने का स्थान चुनती है। यह वैसे तो बहुत ढीठ चिड़िया है और अक्सर हमारे घर के हातों में ही रहने लगती है, लेकिन जैसे ही इसे पता लगता है कि कोई इसे देख रहा है, यह भागकर तुरन्त पास की किसी झाड़ी में छिप जाती है।

डाउक हमारे गाँव की बारहमासी चिड़िया है जो वैसे तो बहुत शान्त रहती है, पर बरसात आते ही यह इतना शोर मचाती है कि जी ऊब जाता है। इसके नर और मादा एक ही रंग के होते हैं जिनके पैर के अँगूठे लम्बे-लम्बे और दुम दहगल की तरह ऊपर की ओर उठी रहती है। लम्बाई में यह १२ इंच से बड़ी नहीं होती।

इसका ऊपर का सारा रंग गाढ़ा खैरा होता है जो करीब करीब काला जान

पड़ता है। आँख, गाल और गले से लेकर पेट तक का तमाम निचला हिस्सा सफेद रहता है। इस सफेदी के बाद का हिस्सा भूरा हो जाता है जो दुम के नीचे पहुँचते-पहुँचते धूमिल ललछौंह में बदल जाता है और दुम उठी रहने के कारण साफ दिखाई पड़ता है।

इसकी भूरी चोंच का अगला हिस्सा लाल और पिछला हरा रहता है। पैर हरापन लिये पीले रंग के होते हैं।

डाउक के अण्डे देने का समय जून से सितम्बर तक है, जब पानी के किनारे किसी झाड़ी या तालाबी घास के बीच यह अपना तितरा-बितरा-सा घोंसला बनाती है। घोंसला घास-फूस या बाँस की पत्तियों से बनाया जाता है जिसमें मादा हलका गुलाबीपन लिये सफेद या कत्थई रंग के तीन-चार अण्डे देती है। इन पर ललछौंह भूरी या बैंगनी चित्तियाँ पड़ी रहती हैं।

जलमुरगी

(MOOR HEN)

जलमुरगी हमारे यहाँ की बारहमासी चिड़िया है जो तालों और अन्य जलाशयों के आसपास ही रहती है। इसे ज्यादातर ऐसे ताल पसन्द आते हैं जो घास और नरकुलों से भरे हों और जहाँ इसे छिपने में जरा भी दिक्कत न रहे । पानी में तैरते समय इसकी दुम उठी रहती है जिससे इसके नीचे का सफेद हिस्सा दूर से ही चमकने लगता है। जमीन पर भागते समय भी यह अपनी दुम उठाये ही रहती है। इसके अलावा इसकी चोंच की जड़ के पास एक लाल चित्ता रहता है जिसके कारण इसको पहचानने में जरा भी दिक्कत नहीं रह जाती।

जलमुरगी खुश्की और पानी दोनों में बड़ी आसानी से रह सकती है, लेकिन इसका करीब-करीब सारा दिन पानी में ही बीतता है। तैरने के अलावा यह डुबकी लगाने में भी उस्ताद होती है और जरा-सी आहट पाते ही डुबकी मार कर पानी के भीतर चली जाती है।

जलमुरगी का कद १२ इंच से ज्यादा बड़ा नहीं होता और इसके नर-मादा एक ही रंग-रूप के होते हैं। इसका सिर और गर्दन कलछौंह कंजई रहती है जो सीने तक पहुँच कर सिलेटी हो जाती है; बग़ल का हिस्सा भी सिलेटी रहता है जिसमें कुछ

सफेद पट्टिया पड़ी रहती है। ऊपर का हिस्सा भूरापन लिये गदा हरा और नीचे का गदा सफेद रहता है। दुम के बाहरी पर काले और दुम का निचला हिस्सा सफेद रहता है। डैने कलछौंह भूरे होते हैं जिनमें किनारे पर सफेद पट्टी पडी रहती है। चोंच लाल और पैर धानीपन लिये सिलेटी रहते है।
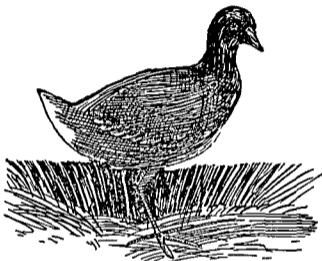
जलमुरगी

जलमुरगी का मुख्य भोजन घास-पात, जडें और कल्ले है, लेकिन इसके अलावा यह पानी के छोटे-छोटे कीडो को भी चट कर जाती है।

इसके अण्डा देने का समय जुलाई से सितम्बर तक रहता है जब यह घने नरकुल या अन्य घास के बीच अपना घासफूस का भद्दा-सा घोसला बनाती है जो प्राय सूखे पर रखा रहता है। समय आने पर मादा इसमें ६ से ८ तक अण्डे देती है जो हल्के पथरी रग के होते है। इन अण्डो पर कत्थई या बैंगनी चित्तियाँ पडी रहती है।

कैमा

(PURPLE COOT)

कैमा को कहीं-कहीं सैमा भी कहते है और कहीं-कहीं इसका जलकोदरी नाम भी खूब प्रसिद्ध है। यह टिकरी की शक्ल-सूरत की होकर भी कद में उससे कुछ बडी होती

है और इसके रंग में भी कुछ बैंगनीपन रहता है। इसकी सब आदतें टिकरी की तरह रहती हैं।

कैमा या जलबोदरी हमारे यहाँ की बारहमासी चिड़िया है जिसके नर-मादा एक ही रंग-रूप के होते हैं। इसका सिर हलके बादामी रंग का रहता है, जिसका ऊपरी हिस्सा बैंगनीपन लिये सिलेटी होता है। इसका कद करीब डेढ़ फुट लम्बा रहता है। नीचे का रंग भी करीब-करीब भूरा ही रहता है जिसमें सीने पर का नीलापन जरूर ज्यादा हो जाता है। डैने और दुम के पर काले रहते हैं और दुम के नीचे एक सफेद चित्ता-सा रहता है। आँख की पुतली गाढ़े लाल तथा चोंच भूरापन लिये गहरे सुर्ख रंग की रहती है। पैर हलके लाल रहते हैं। कैमा गरोहों में रहने-वाली चिड़िया है जो घास वगैरह से भरे हुए तालों में रहना बहुत पसन्द करती है। यह वैसे तो तैरने में उस्ताद होती है, लेकिन उससे भी ज्यादा उस्तादी यह छिपने में दिखाती है। उड़ने से जैसे इसे नफरत है और एक जगह से उड़कर यह थोड़ी दूर पर ही फिर उतर पड़ती है।

कैमा

इसका मुख्य भोजन घास-पात है और इसी कारण धान वगैरह के खेतों को इससे काफी नुकसान पहुँचता है। कैमा के अण्डा देने का समय भी मई-जून रहता है, जब मादा गोंद और नरकुलों के बीच अपना घास-फूस का बड़ा-सा घोंसला बनाती है जिसमें वह ८–१० पत्थरी रंग के अण्डे देती है जिन पर काली और गाढ़ कत्थई चित्तियाँ पड़ी रहती हैं।

टिकरी

(COMMON COOT)

टिकरी को देखकर अक्सर हमें बत्तखों का धोखा हो जाता है और नये शिकारी इसको बत्तख ही समझ कर इसका शिकार कर लाते हैं लेकिन जिसने एक बार भी इन्हें पानी पर कुछ दूर दौड़कर ऊपर उठते देखा है वह इसको पहचानने में कभी धोखा नहीं खा सकता।
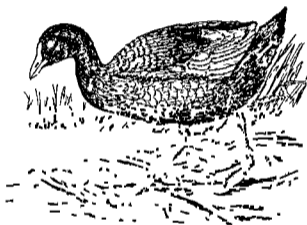
टिकरी

टिकरी हमारे तालाबों में बारहों महीने रहनेवाली चिड़िया है जिसके गोल नरकुल गोंद आदि तालाबी घासों के बीच अक्सर घूमते दिखाई पड़ जाते हैं। कद में ये १६ इंच से ज्यादा नहीं होतीं और इनके नर मादा रंग रूप में एक से होते हैं। इनके सारे बदन का रंग सिलेटी काला होता है जो सिर गर्दन और दुम पर ज्यादा गहरा हो जाता है। नीचे का रंग कुछ पीलापन लिये रहता है और डैनों में किनारे पर सफेदी रहती है। इनकी आँख की पुतली लाल, चोंच और माथे के ऊपर माथे का आगे बढ़ा हुआ हिस्सा सफेद और पैर हरापन लिये सिलेटी रहते हैं। इनके माथे पर एक सफेद टीका-सा रहता है जिसके कारण इनको कहीं-कहीं टिकरी के अलावा टीका या टीकी भी कहते हैं।

टिकरी के पैर के अँगूठे काफी बड़े होते हैं जो बत्तखों की तरह जुड़े नहीं रहते, लेकिन उन सबमें पत्ती की तरह दोनों ओर खाल बढ़ी रहती है। इनके सहारे ये तेजी से तैर तो लेती हैं, लेकिन एकाएक जल्दी उड़ने में इन्हें दिक्कत होती है।

मादा टिकरी मई-जून में तालाबी घास के बीच अपना घास-फूस का बड़ा-सा घोंसला बनाकर ८–१० अण्डे देती है। इनका रंग पत्थर से मिलता-जुलता होता है जिन पर काली और गहरी भूरी चित्तियाँ पड़ी रहती हैं।

तटचारी-वर्ग

(ORDER CHARADRIFORMES)

इस वर्ग में उन सब पक्षियों को एकत्र किया गया है जिनके जीवन का अधिक समय नदी-तालाब तथा जलाशयों के निकट व्यतीत होता है। ये सब खुले मैदान के पक्षी हैं जो अपनी शकल-सूरत और रंग-रूप में इतनी भिन्नता रखते हैं कि इनको देखकर सहसा यह विश्वास नहीं होता कि ये सब एक ही वर्ग के पक्षी हैं। इसी भिन्नता के कारण इस वर्ग को छः उपवर्गों में विभाजित करना पड़ा है जिसमें निम्निलिखित उपवर्ग हमारे यहाँ पाये जाते हैं—१. तिलोर उपवर्ग, २. चहा उपवर्ग, ३. कुररी उपवर्ग, ४. भटतीतर उपवर्ग, ५. कपोत उपवर्ग।

यहाँ इन्हीं पाँचों उपवर्गो से खास-खास परिवार का वर्णन दिया जा रहा है।

तिलोर उपवर्ग

तिलोर-परिवार

(FAMILY ODIDAE)

तिलोर-परिवार में थोड़े ही पक्षी हैं और वे थोड़े भी हमारे यहाँ इतनी कम संख्या में हैं कि ये हमारी निगाह तले बहुत कम पड़ते हैं। ये पक्षी लम्बी टाँगवाले और भारी शरीरवाले होते हैं। इनका अधिक समय खुले मैदानों में ही बीतता है। ये कभी पेड़ पर नहीं चढ़ते। इससे इनके पैर की उँगलियाँ छोटी होती हैं और पिछला अंगूठा होता ही नहीं। इनका मुख्य भोजन वैसे तो घास-पात और गल्ला आदि है लेकिन ये छिपकली आदि छोटे जीव-जन्तु और कीड़े-मकोड़े भी खाते हैं। इनकी

पाँच जातियाँ हमारे यहाँ पायी जाती हैं लेकिन यहाँ केवल चार का ही वर्णन दिया जा रहा है।

सोहन चिड़िया

(GREAT INDIAN BUSTARD)

सोहन पक्षी शक्ल-सूरत मे शुतुर्मुर्ग का भाई-बन्धु जान पड़ता है, यद्यपि उनमे और इससे किसी प्रकार का सम्बन्ध नही है। यह हमारे यहाँ की उन चिड़ियो में से है जिसे शिकारियो के सिवा बहुत कम लोगो ने देखा होगा। लगभग चार फुट ऊँचा होने पर भी जब यह फसल के बीच चुपचाप खड़ा रहता है तो दूर से ऐसा जान पड़ता है कि खेत में कौओ को डराने के लिए 'धोख' (Scare Crow) खड़ा किया गया है। इसको हुक्ना भी कहते हैं और बड़ा तिलोर भी।
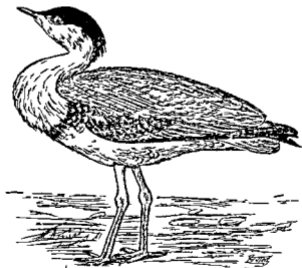
सोहन चिड़िया

हुकना गिद्ध के बराबर और उसी की तरह भारी शरीरवाला पक्षी है जो अपनी मजबूत लंबी टांगो के कारण ऊँचाई में चार फुट तक पहुँच जाता है। इसका वजन बीस सेर से कम नही होता। यह हमारे यहाँ का बारहमासी पक्षी है जिसके

नर-मादा एक-जैसे होते हैं। इसके ऊपर का रंग कत्थई रहता है जिस पर तीतर की तरह काले सेहर और लहरियाँ पड़ी रहती हैं। इसके माथे को छोड़कर सारी गर्दन और नीचे का हिस्सा सफेद रहता है। माथा काला रहता है और सीने पर एक चौड़ी काली पट्टी पड़ी रहती है। चोंच पिलछौंह सिलेटी और पैर गंदे पीले रंग के होते हैं।

हुकना हमारे देश में पंजाव, कच्छ, काठियावाड़, राजपूताना, गुजरात, मध्यप्रदेश तथा दक्षिण की ओर मैसूर तक पाया जाता है। इसे खुले हुए पहाड़ी स्थान और खेतों का पास-पड़ोस ज्यादा पसन्द आते हैं।

वड़े तिलोर अकेले, जोड़े में अथवा दो-चार के छोटे गरोहों में अक्सर दिखाई पड़ते हैं। ये वहुत शरमीले पक्षी हैं, जो खतरा देखकर खेतों या ऊँची घास में छिपना पसन्द करते हैं, लेकिन अधिक दवाव पड़ने पर ये उड़कर काफी दूर चले जाते हैं। उड़ते समय ये पृथ्वी से ज्यादा ऊँचे नहीं उठते और वार-वार गिद्धों की तरह अपने डैने चलाते रहते हैं। इनकी वोली हुक-हुक से मिलती-जुलती है इसी से इनको हुकना कहते हैं। इनका मांस सफेद और वहुत ही स्वादिष्ठ होता है। हुकना का मुख्य भोजन कीड़े-मकोड़े, गल्ला, वीज और फसल के नरम कल्ले हैं। इनके अलावा ये छिपकलियाँ और छोटे-मोटे साँप भी खा लेते हैं।

इसके जोड़ा वाँधने का समय वैसे तो वारहों महीने रहता है, लेकिन मार्च और सितम्वर के वीच में इनके अण्डे ज्यादातर देखे जाते हैं, जव कि मादा किसी झाड़ी में छिछला गढ़ा वनाकर एक अण्डा देती है। अंडे का रंग हरापन लिये भूरे रंग का रहता है जिस पर गाढ़े भूरे रंग की चित्तियाँ पड़ी रहती हैं।

तिलोर

(LITTLE BUSTARD)

तिलोर शकल-सूरत में वहुत-कुछ सोहन चिड़िया या वड़े तिलोर से मिलता-जुलता होता है, लेकिन यह उसकी तरह वारहमासी पक्षी न होकर मौसमी पक्षी है जो दक्षिण यूरोप से यहाँ जाड़ों में आकर पंजाव के आस-पास फैल जाता है। जाड़ों के समाप्त होने पर यह फिर उसी ओर लौट जाता है।

तिलोर अक्सर खेतों में १०–१२ की संख्या में दिखाई पड़ते हैं जहाँ ये सुवह-शाम चरकर दिन को आराम करते हैं। इनकी उड़ान खास ढंग की होती है। ये

पहले बहुत ऊँचे उठ जाते हैं, फिर हवा में इधर-उधर फैल जाते हैं और उड़ते समय पंख काफी फटफटाते रहते हैं।

तिलोर

तिलोर १८ इंच का पक्षी है जिसके नर-मादा एक रंग-रूप के होते हैं। वजन में ये लगभग एक सेर के होते हैं। इनका ऊपरी हिस्सा तो तीतर-जैसा होता है, लेकिन नीचे का हिस्सा हलका बादामीपन लिये सफेद रहता है। गरदन से चारों ओर सीने तक यह भूरा रंग चला आता है जिसमें काली और खैरी चित्तियाँ पड़ी रहती हैं। चोंच कलछौंह और पैर हरापन लिये गंदे पीले रंग के रहते हैं। नर मादा से कुछ बड़ा होता है।

तिलोर का मुख्य भोजन गल्ला, बीज और कीड़े-मकोड़े हैं। इसका मांस स्वादिष्ठ होता है। यह हमारे यहाँ का मौसमी पक्षी होने के कारण यहाँ अण्डा नहीं देता। इसके लिए यह फिर अफगानिस्तान की ओर से दक्षिण यूरोप लौट जाता है, जहाँ मादा जमीन में एक छिछला गढ़ा बनाकर तीन-चार अण्डे देती है। अण्डों का रंग हरापन लिये भूरा रहता है जिन पर गाढ़ी भूरी चित्तियाँ पड़ी रहती हैं।

खरमोर

(LITTLE FLORIKEN)

खरमोर हमारे देश के पश्चिमी प्रान्तों का निवासी है जो बरसात में मध्यप्रदेश, और कभी-कभी बिहार तक चला आता है। मोर की तरह यह भी एकदम भारत का ही पक्षी है जो हमारे देश के अलावा और कहीं नहीं पाया जाता।

खरमोर

इसे ऊबड़-खाबड़ और झाड़ियों से भरे हुए मैदान ज्यादा पसन्द हैं लेकिन जाड़ों में ये अक्सर खेतों में काफी तादाद में दिखाई पड़ते हैं। इनके शिकार के लिए लोग कतार बाँध कर इनका हाँका-सा करते हैं और जब ये उड़ते हैं तो इन्हें बन्दूकों से मार लिया जाता है। जोड़ा बाँधने के समय इनका लोग ज्यादा शिकार करते हैं क्योंकि उस समय नर पक्षी सवेरे थोड़ी-थोड़ी देर पर झाड़ी से निकलकर ६–७ फुट ऊपर उड़कर बोलता है और ऊपर से पंख फैलाये हुए नीचे उतरता है। इसीसे इनके रहने के स्थान का पता चल जाता है और इन्हें तलाश करके इनका शिकार करने में ज्यादा परेशानी नहीं रह जाती। इनका मांस कड़ा और रूखा होता है।
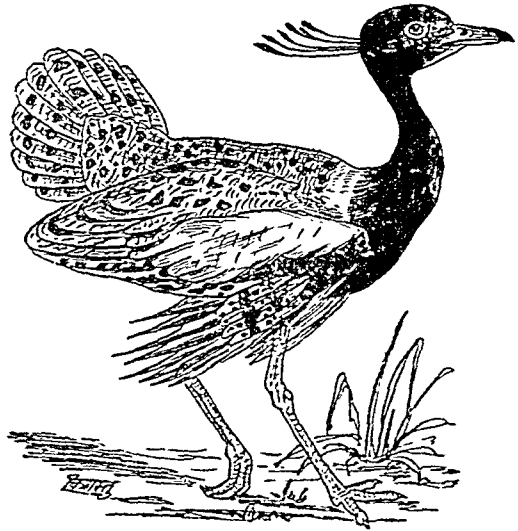
खरमोर १८ इंच का पक्षी है जिसकी मादा नर से कुछ बड़ी होती है। इसके नर-मादा वैसे तो एक ही रंग-रूप के होते हैं, लेकिन जोड़ा बांधने का समय आने पर नर की ठुड्डी छोड़कर सारी गरदन और नीचे का कुल हिस्सा काला हो जाता है। इसकी गरदन पर चौड़ी सफेद पट्टी पड़ी रहती है और ऊपर का कुल हिस्सा चितकबरा रहता है। उसके सिर के पीछे चोटी की शक्ल के कुछ पर निकले रहते हैं। जोड़ा बांधने के समय के अलावा नर-मादा की गरदन और सीना भूरा रहता है जिस पर काली धारियां पड़ी रहती हैं। नीचे का हिस्सा बादामीपन लिये सफेद रहता है और सिर और गरदन कलछौंह लकीरों से भरी रहती है। इसकी पीठ धुर काली होती है जो घनी भूरी चित्तियों से भरी रहती है। इसकी चोंच पिलछौंह और लंबी टाँगें गदे पीले रंग की होती हैं।

खरमोर का मुख्य भोजन घास-पात, फल फूल और नरम कल्ले हैं, लेकिन इसके अलावा ये कीड़े-मकोड़े और छिपकलियों को भी खूब मजे में खाते हैं। इनके जोड़ा बांधने का समय सितम्बर-अक्टूबर है जब मादा किसी झाड़ी में छिछला सा गढ़ा बनाकर दो-तीन अण्डे देती है। ये अण्डे पत्थरी या हरछौंह भूरे रंग के रहते हैं जिन पर गाढ़ी भूरी या कत्थई चित्तियाँ पड़ी रहती हैं।

चरत

(BENGAL FLORIKEN)

चरत हमारे यहाँ का प्रसिद्ध शिकार का पक्षी होने पर भी हमारी निगाह तले बहुत कम पड़ता है। यह हमारे यहां का तराई का पक्षी है जो आसाम से लेकर उत्तरप्रदेश के उत्तरी भाग तक पाया जाता है। इसे न तो एकदम खुले मैदान ही पसन्द हैं और न घने जंगल ही। यह गंगा के कछारों को और खुले हुए तराई के स्थानों को अपने रहने के लिए चुनता है।

चरत का कद और रंग-रूप बहुत कुछ खरमोर से मिलता-जुलता रहता है, लेकिन इसके नर के सिर के पीछे खरमोर की तरह कुछ पर नहीं निकले रहते बल्कि सिर के ऊपर मोर की तरह कलँगी रहती है। जोड़ा बाँधने के समय नर अपनी नयी पोशाक में बहुत भड़कीला लगने लगता है। मोर की तरह यह भी बरसात में, जो इसके जोड़ा बाँधने का समय है, कई मादाओं के सामने पर फैलाकर नाचता है और नाचते-नाचते यह २०–२५ फुट हवा में ऊपर उठ जाता है। नाच के बाद यह किसी मादा के साथ

जोड़ा बाँध लेता है जो समय आने पर किसी झाड़ी में घोंसला बनाकर कई अण्डे देती है। ये अण्डे हलके भूरे होते हैं, जिन पर घनी काली चित्तियाँ पड़ी रहती हैं। इनकी चोंच कलछौंह नीली और पैर गंदे बादामी रंग के होते हैं।

चरत लगभग दो फुट का पक्षी है जिसकी मादा नर से कुछ बड़ी होती है। ये वैसे तो झाड़ी से भरे खुले मैदानों में रहते हैं लेकिन रबी की फसल तैयार होने पर इनके गरोह खेतों में भी चरते दिखाई पड़ते हैं। इनके शिकार के लिए खरमोर की तरह हाँका करना पड़ता है। इनका मांस बहुत ही स्वादिष्ठ और चर्बीला होता है।
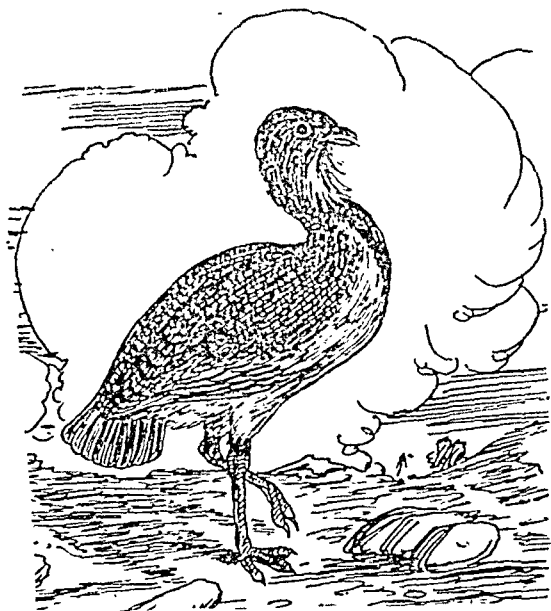
चरत

चरत का भोजन वैसे तो छोटे पौधों के नरम कल्ले और जड़ें आदि हैं, लेकिन यह कीड़े-मकोड़ों, टिड्डे, छिपकलियों और सँपोलों को भी बड़े मजे में खा लेता है।

चहा उपवर्ग

(SUB ORDER LIMICOLAE)

इस बड़े उपवर्ग में जलाशयों के तट पर रहनेवाले चहा, बटान, पनेवा, चुपका, टिटिहरी आदि हमारे बहुत से परिचित पक्षी एकत्र किये गये हैं जिन्हें छ. परिवारों में बाँटा गया है। हमारे देश में इन छः में से केवल चार परिवारों के ही पक्षी पाये जाते हैं। इससे यहाँ उन्हीं चार परिवारों का वर्णन दिया जा रहा है, जो इस प्रकार है—

१. टिटिहरी-परिवार—Family Charadriidae

२. नुकरी-परिवार—Family Glareolidae

३. खरवानक-परिवार—Family Dedicumidae
४ जलमग्वानी-परिवार—Famıly Parridae

टिटिहरी-परिवार

(FAMILY CHARADRIIDAE)

यह इस उपवर्ग का सबसे बडा परिवार है जिसमें के पक्षी हमारे बहुत परिचित हैं और जिन्हें हम अक्सर पानी के किनारे इधर-उधर दौडते देखते हैं। ये छोटे कद के होते हैं और इनमें से कुछ झुड बाँधकर भी रहते हैं। ये जमीन पर तो तेजी से दौड ही लेते हैं, हवा में भी काफी तेज उड सकते हैं। इनका मुख्य भोजन कीडे-मकोडे, छोटे घोघे और कटुए हैं जो जलाशयों के आसपास काफी सख्या मे मिल जाते हैं।

वैसे तो इनकी सैकड़ों जातियाँ हैं लेकिन यहाँ इनमें से दस प्रसिद्ध पक्षियों का वर्णन दिया जा रहा है।

वटान

वटान

(GOLDEN PLOVER)

वटान हमारा बहुत परिचित मौसमी पक्षी है जो यहाँ पूरब की ओर से आकर जाडों में आसाम, बगाल, बिहार, उत्तरप्रदेश तथा मध्यप्रदेश तक फैल जाता है। जाडा खतम होते-होते यह फिर पूरब की ओर लौट जाता है।

यह नौ इच का सुन्दर पक्षी है जिसके नर-मादा एक जैसे होते हैं। इसकी पीठ का रंग पिलछौंह रहता है जो काली लकीरों से भरी रहती है। नीचे का हिस्सा

सफेद रहता है जो गरमियों में काला हो जाता है। इसकी दुम और पैर काले रहते हैं।

बटान हमारे यहाँ काफी संख्या में आते हैं जो जलाशयों के किनारे और दलदलों के पास छोटे-बड़े झुंडों में दिखाई पड़ते हैं। इनका यहाँ काफी शिकार होता है।

बटान का मुख्य भोजन फल वगैरह है। मौसमी पक्षी होने के कारण यह यहाँ अण्डा नहीं देता।

इसके अण्डे पत्थरी रंग के होते हैं जिन पर काली चित्तियाँ पड़ी रहती हैं।

जीरा

(LITTLE RINGED PLOVER)

जीरा छोटी-सी छः इंच की टिटिहरी है, जो हमारे यहाँ बारहों महीने रहती है। हमारे देश में यह प्रायः सभी जगह पायी जाती है और पहाड़ों पर भी चार हजार फुट की ऊँचाई तक मिलती है। इसके नर-मादा एक रंग-रूप के होते हैं। इसके ऊपर का रंग भूरा और नीचे का सफेद रहता है। माथा भी सफेद रहता है जिस पर एक चौड़ी काली पट्टी आँख के ऊपर से होते हुए सिर के बगल तक चली आती है। इसके गले में भी एक काला कंठा रहता है। इसकी चोंच काली और पैर गंदा हरापन लिये पीले रंग के रहते हैं।
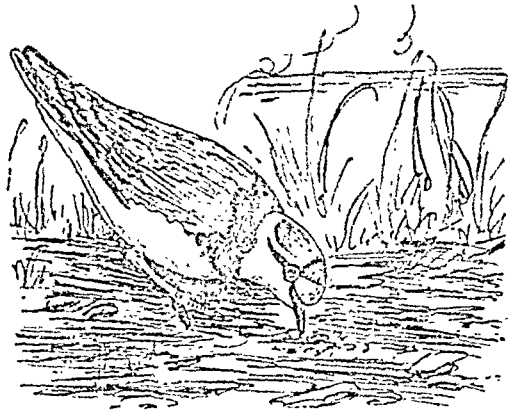
जीरा

जीरा वैसे तो जलाशयों और नदियों के किनारे जोड़े में दिखाई पड़ती हैं, लेकिन कभी-कभी इनके तितरे-बितरे छोटे-छोटे झुंड भी दिखाई पड़ जाते हैं। ये जलाशयों के किनारे-किनारे अपनी खूराक की तलाश में दौड़कर थोड़ी-थोड़ी दूर पर रुक जाती हैं; और कीड़े-मकोड़ों को पकड़कर फिर तेजी से चलने लगती हैं। कीड़ों के लिए ये कीचड़ को बड़ी तेजी से अपने पंजों से मथती

है जिससे वे ऊपर आ जायें। खजन की तरह ये भी बहुत चचल पक्षी है और इन्हें एक स्थान पर स्थिर देखना सभव नही। ये वैसे तो चराई के समय फैली रहती है, लेकिन खतरा निकट देखकर सबके सब एक साथ ही ची-ची करते हुए उड जाती है और काफी देर तक एक साथ उडकर फिर किसी किनारे पर उतर पडती है।

मादा ज्यादातर दक्षिण भारत की ओर अण्डा देती है जहाँ इसे रेवा कहते है। इसके अण्डा देने का समय मार्च से मई तक रहता है। मादा नदी या अन्य किसी जलाशय के किनारे सूखे में कोई छिछला गड्ढा तलाश करके चार अण्डे देती है जिन्हें नर-मादा दोनो पारी-पारी से सेते है। अण्डो का रग पत्थरी या हल्का सिलेटी रहता है जिन पर गाढी भूरी चित्तियाँ पडी रहती है।

टिटिहरी

(RED WATTLED LAPWING)

टिटिहरी हमारे देश की बहुत प्रसिद्ध चिडिया है जिसे प्राय सभी जलाशयो के निकट देखा जा सकता है।

टिटिहरी १२–१३ इच लबी चिडिया है जो बारहो महीने हमारे यहाँ रहती है। इसके नर-मादा एक रग-रूप के होते है, जो प्राय साथ ही जलाशयो के किनारे टहलते दिखाई पडते है। इसकी पीठ का रग तामडा भूरा और नीचे का सफेद रहता है। सिर, गरदन और सीना काला रहता है आँख के पीछे से एक चौडी सफेद पट्टी गरदन से होते हुए नीचे की सफेदी में मिल जाती है। डैने काले होते है और दुम के सिरे के पास एक चौडी काली पट्टी पडी रहती है। आँख के आगे लाल रग का मास बढा रहता है जो चोच के ऊपर तक चला जाता है। इसकी चोच सिरे की ओर काली और जड की ओर सुर्ख रहती है, पैर पीले होते है।

टिटिहरी हमारे देश में प्राय सभी जलाशयो के निकट खुले मैदानो में पायी जाती है। पहाडो पर भी इसे ५–६ हजार फुट की ऊँचाई तक देखना असभव नही। यह वैसे तो जोडो में ही दिखाई पडती है लेकिन कभी-कभी इसके छोटे गरोह भी दिखाई पडते है। इसकी बोली 'डिड ही डू इट' (Did he do it) से मिलती-जुलती रहती है। इसी से अग्रेजी मे इसका एक नाम 'डिड ही डू इट' भी पड गया है।

अन्य टिटिहरियो की तरह ये भी खुश्की पर दिन भर इधर-उधर दौडा करती है और थोडी दूर चलने के बाद रुक जाती है। खतरा निकट देखकर ये थोडी

ही ऊँचाई पर उड़कर फिर आगे जाकर जमीन पर उतर पड़ती हैं। इनका मुख्य भोजन कीड़े-मकोड़े और घोंघे, कटुए आदि हैं।
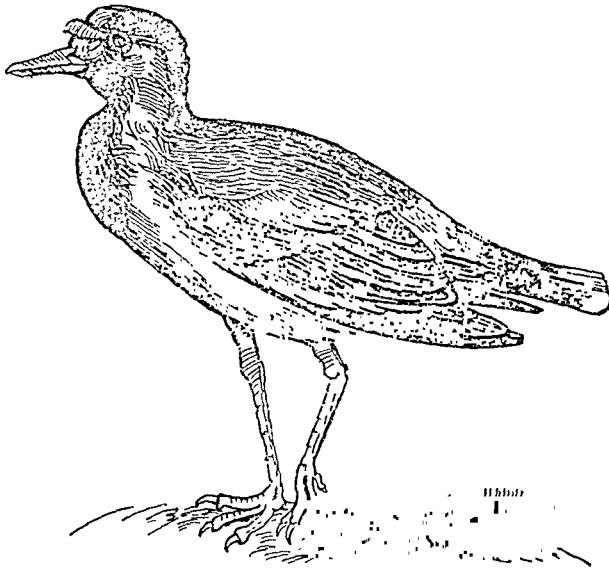
टिटिहरी

टिटिहरी के अण्डे देने का समय मार्च से अगस्त तक रहता है जब मादा रेत या खुले मैदान में चार अण्डे देती है। ये अण्डे पत्थरी या सिलेटी भूरे होते हैं जिन पर कलछौंह चित्तियाँ पड़ी रहती हैं।

पनलवा

(LITTLE STINT)

पनलवा भी हमारे यहाँ जाड़ों में बाहर से आनेवाला छोटा-सा मौसमी पक्षी है जो जाड़ों के प्रारंभ में यहाँ आकर जाड़ा समाप्त होते-होते यहाँ से लौट जाता है। कलकत्ते में इसे चिरचिरी कहते हैं।

यह छः इंच का छोटा-सा पक्षी है जिसके नर-मादा एक रंग-रूप के होते हैं। इसके ऊपर का रंग गाढ़ा कत्थई और नीचे का सफेद रहता है। इसकी चोंच लंबी और

मीठी रहती है, जिसका रंग काला रहता है और पतली लम्बी टाँगें सिलेटी रंग की होती हैं।

पनलवा यहाँ जाड़ा में आकर सारे देश में फैल जाता है और उस समय इसे अपने यहाँ के प्राय सभी जलाशयों के किनारे छोटे-बड़े झुडो में देखना कठिन नहीं होता। किनारे पर चरते समय ये दूर तक फैल जाते हैं, लेकिन जरा-सा खटका होते ही सब इकट्ठे होकर एक प्रकार की चिट चिट की आवाज करते हुए उड़कर दूसरी जगह पर जा बैठते हैं। उड़ते समय इनका झुड बड़ी तेजी से हवा में इधर उधर उड़कर तब कहीं जाकर जमीन पर उतरता है। किनारे पर ये एक जगह खड़े नहीं रहते बल्कि इधर-उधर अपनी खुराक के लिए टहलते ही रहते हैं। इनका मुख्य भोजन कीड़े-मकोड़े, छोटे घोंघे और घोघे आदि हैं।
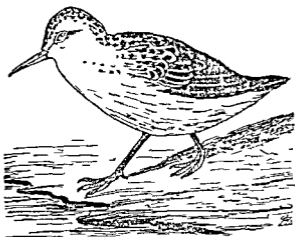
पनलवा

पनलवा यहाँ का मौसमी पक्षी है जो जून-जुलाई में उत्तरी यूरोप तथा साइबेरिया की ओर लौटकर अण्डे देता है। मादा किसी दलदल के करीब घास फूस का कटोरानुमा सुदर घोसला जमीन पर रखकर उसी में चार अण्डे देती है। ये अण्डे पत्थरी रंग के रहते हैं जिनमें हल्के हरेपन की झलक रहती है। इन पर कत्थई चित्तियाँ पड़ी रहती हैं।

गुलिंदा

(CURLEW)

गुलिंदा को कहीं-कहीं गोर भी कहते हैं। यह लगभग दो फुट का पक्षी है जो अपनी लंबी टाँगों तथा आगे झुकी हुई ५–६ इंच लंबी चोंच के कारण आसानी से पहचाना जा सकता है। इनका ऊपरी हिस्सा भूरा चितला और नीचे का एकदम सफेद रहता है। चोंच काली, जड़ के पास गुलाबी और पैर सिलेटी रहते हैं। इसके पैर के अँगूठे आपस में थोड़ी दूर तक बत्तखों की तरह जुटे रहते हैं।

गुलिंदा

गुलिंदा के नर-मादा तो एक ही रंगरूप के होते हैं, लेकिन मादा नर से कुछ बड़ी रहती है। यह हमारे यहाँ का मौसमी पक्षी है जो जाड़ों के प्रारंभ में यहाँ आकर जाड़े के खतम होते-होते यहाँ से फिर वापस चला जाता है। जाड़ों में ये हमारे सारे देश में फैल जाते हैं और किसी भी बड़े जलाशय, दलदल या नदी के किनारे इनके छोटे-छोटे झुंडों को देखना कठिन नहीं। ये किनारे पर कीड़े-मकोड़े, घोंघे, कटुए और घास-फूस चुनते हुए इधर से उधर दौड़ा करते हैं और उड़ते समय करली या करलू जैसी आवाज करते हैं। इसी से अंग्रेजी में इन्हें करलू (Curlew) कहा जाता है। इनका मांस स्वादिष्ठ होता है।
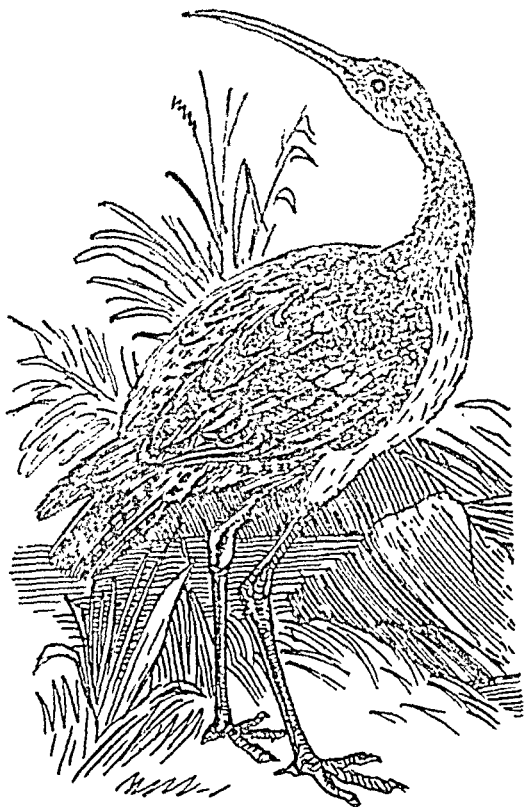
गुल्दिा मौसमी पक्षी होने के कारण हमारे देश में अण्डा नहीं देते। इनके अण्डा देने का समय अप्रैल से जून तक रहता है जब वे उत्तरी यूरोप से लेकर साइबेरिया तक फैले रहते हैं। मादा समय आने पर दलदलों के आसपास जमीन पर ही अपना घास फूस का घोसला बनाकर चार अण्डे देती है जिनका रंग हरछौंह भूरा रहता है। अण्डों पर गहरे रंग की चित्तियाँ पड़ी रहती हैं।

लमटँगा

(BLACK WINGED STILT)

लमटँगा का यह नाम उसकी लंबी टाँग के कारण ही मिला है। कहीं-कहीं इसे टिलुआ या बड़ा पनवा भी कहते हैं। यह हमारे उत्तर भारत का बारहमासी

लमटँगा

पक्षी है जो जाड़ों में सारे भारत में फैल जाता है और जाड़ा खतम होते-होते फिर उत्तर की ओर लौट जाता है। यहाँ के अलावा यह यूरोप, अफ्रीका तथा उत्तर एशिया की ओर फैला हुआ है।

यह १२ इंच का लम्बा पक्षी है जो अपनी लम्बी टाँगों के कारण इतना ही ऊँचा भी होता है। इसके नर-मादा एक रंग-रूप के होते हैं। इसका ऊपरी हिस्सा भूरा और नीचे का सफेद रहता है। डैने कलछौंह कत्थई रहते हैं और चोंच काली तथा लम्बे पैर हलके लाल रंग के होते हैं।

लमटँगा ज्यादातर दलदल के पास के छिछले जलाशयों या नदियों के छिछले किनारों पर दिखाई पड़ते हैं। ये कभी-कभी जोड़ों में और कभी-कभी झुंड में रहते हैं। कभी-कभी तो इन्हें गाँवों की गड़हियों में भी देखा जा सकता है। इनका मुख्य भोजन पानी के कीड़े-मकोड़े, छोटे घोंघे, कटुए और पानी के पौधों के बीज आदि हैं। ये खुश्की पर काफी तेज दौड़ लेते हैं और मौका पड़ने पर पानी में बड़ी खूबी से तैर भी लेते हैं, लेकिन इनकी उड़ान तेज़ नहीं होती। इनका मांस स्वादिष्ठ होता है।

बड़ा पनेवा के जोड़ा बाँधने का समय अप्रैल से अगस्त तक रहता है जब सैकड़ों पक्षी एक साथ इकट्ठे होकर एक जगह घोंसला बनाते हैं। ये घोंसले किसी तालाब या झील के किनारे जमीन पर छिछले गढ़े में थोड़ी-सी घासपात रखकर बनाये जाते हैं। मादा इनमें ३–४ अण्डे देती है जो हलके भूरे रंग के होते हैं और जिन पर घनी काली चित्तियाँ पड़ी रहती हैं।

टिमटिमा

(GREEN SHANK)

टिमटिमा भी हमारे यहाँ का प्रसिद्ध तटचारी पक्षी है जो यहाँ जाड़ों में आकर जाड़ा बीतने पर फिर यहाँ से उत्तर की ओर लौट जाता है। यह ज्यादातर अकेला ही जलाशयों के किनारे घूमता रहता है। इसे देखकर कभी-कभी चुपके का धोखा हो जाता है, लेकिन कद में चुपके से बड़ा होने के कारण और टाँगों का रंग गंदा हरा होने के कारण यह चुपके से भिन्न ही रहता है।

टिमटिमा १४ इंच का पक्षी है जिसके नर-मादा एक रंग-रूप के होते हैं। इनके सिर से लेकर दुम तक का पूरा ऊपरी हिस्सा सिलेटी भूरा तथा नीचे का कुल हिस्सा सफेद रहता है। आँख के ऊपर एक सफेद रेखा रहती है और चोंच की जड़ के पास

चारों ओर का भाग सफ़ेदी मायल रहता है। चोंच इसकी सिलेटीपन लिये भूरी होती है जिसका सिरा काला और पैर पिलछौंह हरे रहते हैं।

टिमटिमा

टिमटिमा ऐसे जलाशयों को पसन्द करता है जिनके किनारे रेतीले हों और जहाँ ज्यादा घास-फूस न उगे हों। यह अन्य तटचारी पक्षियों की भाँति किनारे पर टहलते टहलते थोड़ी-थोड़ी दूर पर रुक जाता है। खतरा निकट देखकर यह चिव-चिव की तेज आवाज करके हवा में उड़ जाता है और थोड़ी दूर पर फिर उतरकर किनारे पर टहलने लगता है। यह अपने सिलेटी भूरे रंग से चुपके से अलग रहता है। इसका मुख्य भोजन पानी में कीडे-मकोडे हैं। इसका मांस स्वादिष्ठ होता है।

टिमटिमा मौसमी पक्षी होने के कारण अण्डा देने के समय यूरोप और उत्तरी एशिया की ओर लौट जाता है, जहाँ मई-जून में इसकी मादा जमीन के किसी छिछले गड्ढे में पत्ती और घास फूस रखकर चार अण्डे देती है, जिन पर कत्थई और सिलेटी चित्तियाँ पड़ी रहती हैं।

चुपका

(WOOD SAND PIPER)

चुपका हमारा परिचित पक्षी है जो शकल-सूरत में बहुत-कुछ चहों जैसा होता है। यह हमारे यहाँ का मौसमी पक्षी है जो यहाँ अगस्त से आने लगता है और मई

तक रहकर फिर उसी ओर लौट जाता है। चहे के शिकारी अक्सर इसको चहा समझकर मार लेते हैं, लेकिन इसके सफेद दुमगजा (Rump) और पटरीदार दुम को देखकर इसको और चहे को पहचानने में भूल हो ही नहीं सकती। जाड़ों में यह सारे देश में फैल जाता है।

चुपका लगभग ८ इंच का छोटा-सा पक्षी है जिसके नर-मादा एक ही रंग-रूप के होते हैं। इसका ऊपरी हिस्सा कत्थई होता है जिस पर हलकी सफेद चित्तियाँ पड़ी रहती हैं। नीचे का हिस्सा सफेद रहता है जो इसकी आँखों के चारों ओर घेरे-सा फैला रहता है। इसका दुमगजा भी सफेद और इसकी लम्बी चोंच हरछौंह रहती है जिसका सिरा काला रहता है। पैर भी गंदे हरे रंग के होते हैं।
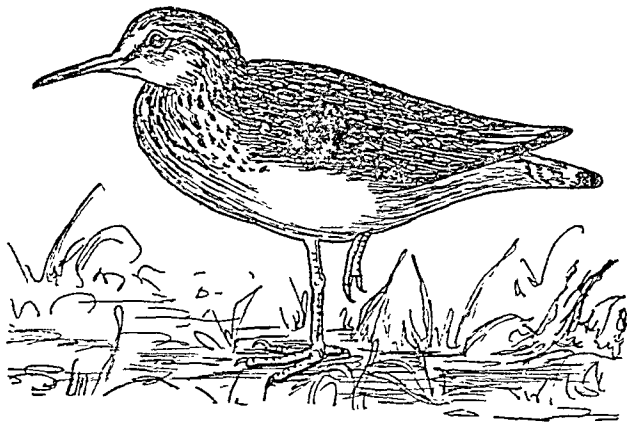
चुपका

चुपके प्रायः छोटे-बड़े गरोहों में दिखाई पड़ते हैं जो अक्सर जलाशयों के ऐसे किनारों पर रहते हैं जो दलदलों से भरे हों। ये किनारे पर कीड़े-मकोड़ों के लिए इधर-उधर बराबर दौड़ते रहते हैं और थोड़ी-थोड़ी देर पर अपनी दुम ऊपर-नीचे किया करते हैं। इनका मुख्य भोजन कीड़े-मकोड़े और छोटे घोंघे, कटुए हैं।

मौसमी पक्षी होने के कारण ये हमारे यहाँ अण्डा नहीं देते। इनकी मादा यूरोप और उत्तरी एशिया में मई-जून में किसी छिछले गढ़े में घास-फूस रखकर कई अण्डे देती है। ये अण्डे हरछौंह भूरे रंग के होते हैं जिन पर गाढ़ी भूरी चित्तियाँ पड़ी रहती हैं।

गेहवाला

(RUFF)

गेहवाला चुपका और पनलवा के भाई-बन्धु हैं जो हमारे यहा जाडा म आकर गरमी के प्रारम्भ में यहा स लौट जात हैं। ये अपना समय ज्यादातर छिछल पानी क निकट बिताते हैं।

गेहवाला जाडा म सारे उत्तरी भारत मे फैल जाते हैं जहाँ इनका बटान, चहा और पनलवा की तरह खूब शिकार होता है। इनका मास चहे की तरह स्वादिष्ठ हाता है। इनका शरीर गाढा भूरा या कत्थई रहता है लेकिन मादा नर से कुछ छोटा होती है। कभी कभी नरा की गरदन और सिर सफेद भी हो जाते हैं। जोडा बाधने
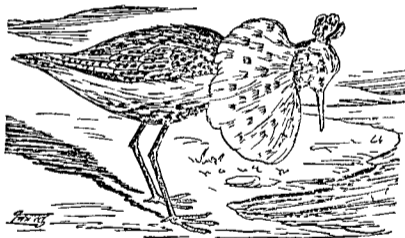
गेहवाला

के समय नर की गरदन पर काफी बड़े-बड़े पर निकल आते हैं जिनसे फूलकर वह बहुत सुन्दर लगने लगता है। इनकी चोच नारगी होती है जिसका अगला हिस्सा काला रहता है। पुराने पक्षियों के पैर गुलाबी या नारगी और बच्चों के मिट्टी रंग के रहते हैं। इनकी दुम चुपका की तरह सफेद न होकर भूरी रहती है इससे इन्हें पहचानने में कठिनाई नहीं होती। इनका मुख्य भोजन वैसे तो दाना और बीज वगैरह है लेकिन ये पानी के कीड़े मकोड़े भी खा लेते हैं।

गेहवाला मौसमी पक्षी है जो अण्डा देने के समय उत्तरी यूरोप या एशिया के उत्तर के भागों में चले जाते हैं। उस समय नरों में मादाओं के लिए खूब युद्ध होता है और वे अपने गले के चारों ओर निकले हुए परों को फुलाकर खूब लड़ते हैं। विजयी मादा से जोड़ा बांध लेता है और वे अपने घोंसले की फिक्र में लग जाते हैं। इनका घोंसला जमीन पर छिछले गड्ढे में घास-फूस रखकर बनाया जाता है जिसमें मादा चार अण्डे देती है। ये पत्थरी या भूरे रंग के रहते हैं और उनके ऊपर कत्थई या गाढ़ी भूरी सिलेटी चित्तियाँ पड़ी रहती हैं।

चहा

(COMMON SNIPE)

चहा हमारे यहाँ का बहुत प्रसिद्ध पक्षी है जिसकी तलाश में शिकारियों को दलदल-वाले जलाशयों के किनारे चक्कर लगाना पड़ता है।
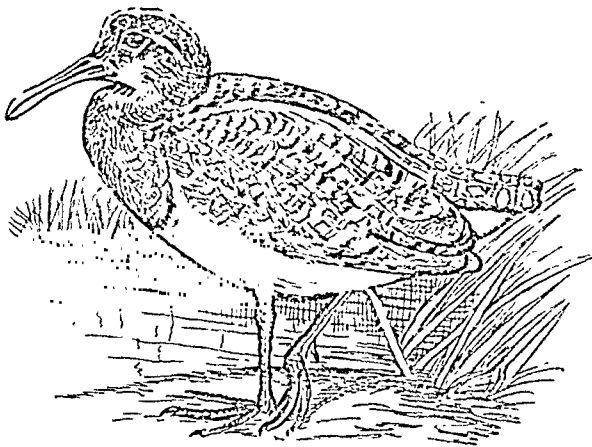
चहा

चहा हमारे यहाँ के मौसमी पक्षी हैं जो सितम्बर में यहाँ आने लगते हैं और मई के शुरू होते-होते फिर उत्तर की ओर लौट जाते हैं। इनका मुख्य भोजन कीचड़ के कीड़े हैं जिसके लिए इनकी चोंच खास तौर पर लम्बी और आगे की ओर गोल बनायी गयी है। इसके ऊपरी हिस्से में निचला हिस्सा इस तरह डिबिया की तरह

चिपककर बैठता है कि कीचड तो छनकर बाहर निकल जाता और छोटे-छोटे कीडे चोच के भीतर ही रह जाते हैं।

चहा दस-ग्यारह इच का छोटा-सा चितकवरा पक्षी है जिसके नर और मादा एक रग-रूप के होते हैं। इसकी पीठ काली होती है, जिसके अगले भाग पर सफेद और पिछले हिस्से मे सफेद और काली आडी धारियाँ रहती हैं। इसके डैने गाढे भूरे होते हैं और उनमे भी सफेद धारियाँ पडी रहती हैं। दुम काली होती है, जिसका सिरा सफेद रहता है। सिर काला और सफेद फाँको मे बँटा होता है और नीचे का कुल हिस्सा सफेद रहता है। इसकी आँख की पुतली गहरी भूरी, चोच लम्बी और कलछौंह भूरी तथा पैर गदे हरे होते हैं। आँखे बडी और पीछे की ओर कुछ हटकर रहती हैं।

चहा के रहने का उपयुक्त स्थान कीचड और घास फूस से भरा हुआ किनारा है जहाँ इसे खाने के अलावा छिपने की भी आसानी रहे।

आहट पाते ही चहा पहले तो जमीन पर भागते हैं, फिर सीधे ऊपर की ओर उडते हैं और उसके बाद कुछ दूर जाकर हरियाली में छिपकर बैठ जाते हैं, लेकिन दोपहर को इनमें यह तेजी नही रहती। तब ये सुस्त और आलस से भरे रहते हैं और ज्यादा खतरा देखने पर उस स्थान को छोडकर बहुत दूर निकल जाते हैं।

चहा मौसमी पक्षी है जो अण्डा देने के समय हमारा देश छोडकर चला जाता है पर कश्मीर के कुछ हिस्से ऐसे भी हैं जहा यह रहकर अण्डे देता है। चहे का घोसला घास-फूस का बना हुआ, एक छिछला प्याला-जैसा होता है जो किसी दलदल के आस-पास घनी घास के बूटे मे रखा रहता है। मादा इसमें हलके हरे या बादामी रग के चार अण्डे देती है जिन पर भूरी चित्तियाँ पडी रहती हैं।

नुकरी-परिवार

(FAMILY GLAREOLIDAE)

इस छोटे परिवार मे जो थोडे से पक्षी हैं वे बहुत कुछ चहा परिवार से मिलते-जुलते होते हैं। लेकिन वैज्ञानिको ने थोडे-से भेद के कारण इन्हें उनसे अलग कर दिया है। इन पक्षियो की टाँगे कुछ लम्बी होती हैं, लेकिन उडने तथा जमीन पर दौडने मे ये चहो से कम नही होते। इनका भी मुख्य भोजन कीडे मकोडे और छोटे-छोटे कटुए आदि हैं।

यहाँ इनमें से दो पक्षियो का वर्णन दिया जा रहा है जो हमारे परिचित हैं।

नुकरी

(COURSER)

नुकरी को उसकी रंगीन पोशाक के कारण कहीं-कहीं सोन गलरई भी कहते हैं। यह टिटिहरी की बनावट की छोटी-सी १२ इंच की चिड़िया है जो प्रायः अकेली या आठ-दस की संख्या में फैलकर खुले मैदानों और प्रान्तों में घूमा करती है। इसके नारंगी भूरे निचले भाग और गाढ़ ललछौंह भूरे सिर के कारण इसे पहचानने में ज्यादा कठिनाई नहीं होती। इसके नर-मादा एक ही रंग-रूप के होते हैं।

नुकरी यहाँ की वैसे तो बारहमासी चिड़िया है लेकिन आवश्यकता पड़ने पर यहीं थोड़ा स्थान-परिवर्तन भी कर लिया करती है। इसके शरीर का ऊपरी हिस्सा राखीपन लिये भूरा रहता है और नीचे का कुल हिस्सा चटक नारंगी भूरा रहता है। गरदन के नीचे का रंग हलका हो जाता है। इसके सिर का ऊपरी भाग और गुद्दी गाढ़ ललछौंह भूरे रंग की रहती है और चोंच से लेकर
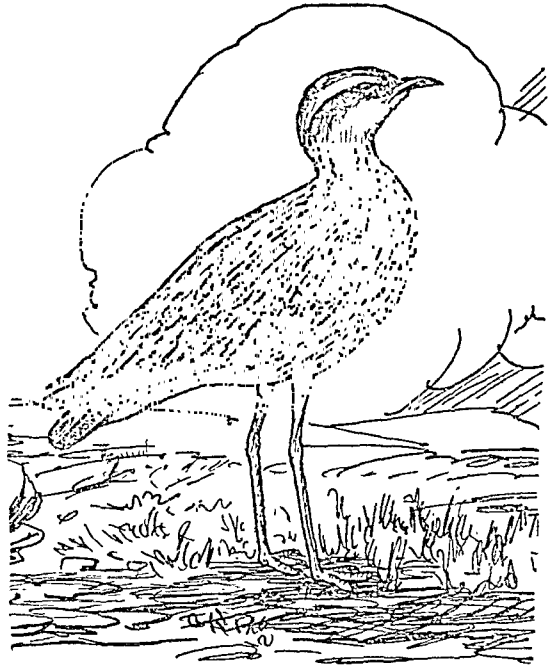
नुकरी

गरदन तक एक पतली काली रेखा पड़ी रहती है। इस काली रेखा के ऊपर एक और सफेद लकीर रहती है जो इसकी आँख के ऊपर से होकर काली रेखा के साथ-साथ गरदन तक चली जाती है। चोंच काली और पैर सफेद रहते हैं।

नुकरी हमारे देश में आसाम को छोड़कर सभी जगह सूखे और खुले मैदानों में

पायी जाती है। इसे जंगल पसन्द नही आते और यह खेतो के आस-पास ऊसर और परती जमीनो पर अपनी खूराक की तलाश में घूमती रहती है। इसका मुख्य भोजन कीडे-पतिंगे और उनकी इल्लियाँ हैं।

नुकरी खुश्की पर बहुत तेज दौड लेती है। खतरा निकट देखकर यह उडने से ज्यादा जमीन पर भागना ही पसन्द करती है और बडी तेजी से भागती है। ज्यादा दबाव पडने पर ही यह उडती है और थोडी दूर ऊँचाई पर उडकर सौ पचास गज़ पर फिर जमीन पर उतरकर दौडने लगती है।

इसके अण्डा देने का समय मार्च से अगस्त तक है जब मादा खुले मैदान में बिना किसी प्रकार का घोसला बनाये किसी छिछले गढे में २–३ अण्डे देती है। ये अण्डे पत्थरी रंग के होते हैं जिन पर काली चित्तियाँ पडी रहती हैं।

धोबैंचा

(LITTLE INDIAN PRATINCOLE)

धोबैंचा हमें अक्सर नदियो के किनारे कुररियो की तरह झुडो में दिखाई पडते हैं जिससे इन्हे पहचानने में ज्यादा दिक्कत नही उठानी पडती। वैसे तो ये ज्यादातर नदियो के आस पास रहते हैं लेकिन कभी कभी इनके झुड बड़े तालो और झीलो में भी दिखाई पड जाते हैं। कुररिया को देहातो में अक्सर धोबिन कहा जाता है। अत उन्ही की तरह दुफकी दुम लम्बे डैने तथा गरोह में रहने के कारण ही शायद ये धोबैंचा कहलाने लगे हैं। वैसे इनसे और कुररिया से कोई सम्बन्ध नही है।

धोबैंचा ७ इंच के छोटे से पक्षी हैं जिनके नर-मादा एक ही रंगरूप के होते हैं। इनका सीना धुमैला भूरा और डैने काले और सफेद रहते हैं। दुम भी सफेद रहती है। इनका ऊपरी हिस्सा रेतीला हलका सिलेटी और नीचे का सफेद रहता है। माथा भूरा लेकिन सिर के पास का ऊपरी पर कलछौंह होते हैं। चोच काली रहती है जिसकी जड के पास से एक काली पट्टी आख तक चली आती है। पैर काले रहते हैं।

धोबैंचा अपनी उडान में अबाबीलो से बहुत मिलते जुलते हैं और उन्ही की तरह उडते उडते ये कीडे पतिंगे भी पकडा करते हैं। ये ज्यादातर छोटे-बडे गरोह बनाकर कीडे-मकोडा के लिए बडी नदियो के ऊपर शाम को उडते रहते हैं लेकिन दिन में इनका गरोह रेत पर बैठकर आराम करता रहता है। इनकी उडान बहुत तेज और सधी हुई होती है और उडने में इन्हें अबाबीलो से कम होशियार नही कहा जा सकता।

इनके जोड़ा बाँधने का समय मार्च से मई तक रहता है। जब इनका बड़ा झुंड किसी रेतीले टापू को पसन्द करता है जहाँ ये जमीन में गढ़ा बनाकर २–३ अण्डे देते हैं। ये अण्डे कभी पत्थरी और कभी हरापन लिये सफेद होते हैं, जिन पर कत्थई और बैगनी चित्तियाँ और धब्बे पड़े रहते हैं।

धोबैचा
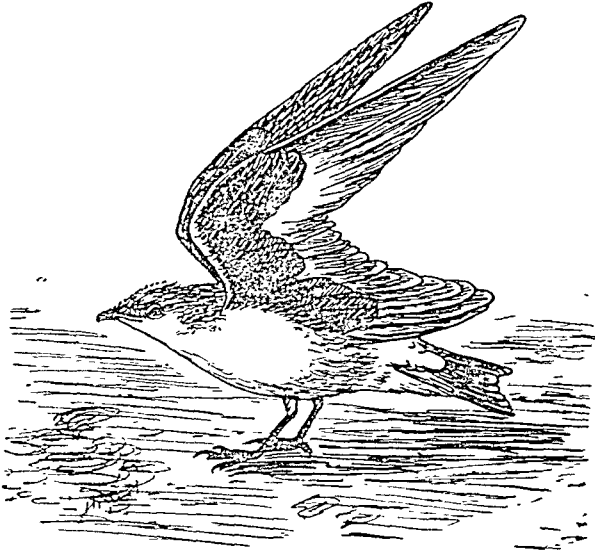
धोबैचा भी टिटिहरियों तथा कुररियों की तरह अण्डे के पास किसी आदमी को आते देखकर बहुत शोर मचाते हुए सिर के ऊपर मँडराने लगते हैं। तब ऐसा जान पड़ने लगता है कि ये हमला कर बैठेंगे। जब ये बहुत थक जाते हैं तो अक्सर अपने पंख फैलाकर रेत पर लेट जाते हैं और लँगड़ाते हुए एक ओर चलते हैं, जिससे आदमी का ध्यान इनके अण्डों की ओर से हट कर इनकी ओर चला जाय और वह इनका पीछा करने लगे। अपने पीछा करनेवाले को ये कुछ दूर इसी तरह ले जाकर हवा में उड़ जाते हैं। ये अपने थोड़े-बहुत अण्डे इस प्रकार भले ही बचा लें, लेकिन नदियों की धारा बदलते रहने से इनके सैकड़ों अण्डे देखते ही देखते नदी की भेंट हो जाते हैं। इसके अलावा स्यार, लोमड़ी आदि यदि इनके अण्डों को काफी संख्या में नष्ट न कर डाला करें तो धोबैचों की संख्या बहुत ज्यादा बढ़ जाय।

खरवानक-परिवार
(FAMILY DEDICUEMIDAE)

इस परिवार के पक्षी चहा और चरता के बीच के पक्षी कहे जा सकते हैं क्योंकि इनकी लम्बी और मोटी टाँगों में चरतो की तरह छोटी छोटी उँगलियाँ होती हैं और ये उन्हीं की तरह पानी से दूर खुले मैदानों में रहते हैं। वहीं दूसरी ओर इनके शरीर की बनावट और चोंच चहों की तरह होती है और ये उनकी तरह जमीन पर तेजी से दौड़ लेते हैं। इनका मुख्य भोजन कीड़े-मकोड़े तथा छोटे जीव-जन्तु हैं।

इनकी वैसे तो १५ जातियों का अभी तक पता चल सका है, लेकिन यहाँ केवल एक खरवानक का ही वर्णन दिया जा रहा है जो हमारे यहाँ का प्रसिद्ध पक्षी है।

खरवानक
(STONE CURLEW)

खरबानक के करवानक, खरमा तथा बड़सिरी आदि कई नाम हैं। यह हमारे यहाँ का बहुत प्रसिद्ध पक्षी है जो शक्ल-सूरत में बटान की तरह होता है। इसका बड़ा सिर, बड़ी-बड़ी पीली आँखें और लम्बे पीले पैरों से इसे पहचानना कठिन नहीं

खरवानक

होता। उड़ते समय इनके डैनों का सफेद चित्ता इनकी पहचान को और भी आसान कर देता है।

यह हमारे देश का बारहमासी पक्षी है जो सारे देश में फैला हुआ है। इसे ऐसी सूखी और रेतीली जगह, जो जंगल या घने बाग के निकट हो या पास-पड़ोस के सूखे ताल जिनके निकट घास-फूस और नरकुल आदि हों, ज्यादा पसन्द आते हैं, क्योंकि यह एकदम जमीन पर रहनेवाला पक्षी है जो अपना सारा समय मैदानों में ही घूमकर बिताता है।

खरवानक १६ इंच का पक्षी है जिसके नर-मादा एक रंग-रूप के होते हैं और दोनों का कद भी बराबर ही रहता है। इसके शरीर का रंग हलका भूरा रहता है जिस पर गाढ़ी भूरी लकीरें पड़ी रहती हैं। पीठ पर ये चित्तियाँ घनी और नीचे के सफेद भाग में कम हो जाती हैं। डैने भी भूरे रहते हैं जिन पर काली और सफेद धारियाँ पड़ी रहती हैं। चोंच पीली होती है जिसका सिरा काला और पैर पीले रहते हैं।

खरवानक दिन से ज्यादा रात में अपना पेट भरने के लिए घूमता है, इसी लिए इसे इतनी बड़ी आँखें मिली हैं। यह अकेला या जोड़े में घूमता रहता है और कभी-कभी ८–१० पक्षी एक साथ भी दिखाई पड़ जाते हैं। यह अपनी धारीदार भूरी पोशाक से जमीन पर ऐसा छिप जाता है कि उड़ने या भागने पर ही हमारी निगाह इस पर पड़ती है। खतरा निकट देखकर यह जमीन पर अपने पर समेटकर लेट जाता है और गर्दन ऊपर करके इधर-उधर देखता रहता है। दबाव पड़ने पर यह बड़े तेज स्वर में चिक-चिक करके उड़ता है, लेकिन थोड़ी ही दूर जाकर फिर जमीन पर उतरकर दौड़ने लगता है। इसका मांस बहुत स्वादिष्ठ होता है।

इसके जोड़ा बाँधने का समय फरवरी से अगस्त तक रहता है जिसके बीच में मादा किसी झाड़ी, घास या सरपत के बीच जमीन पर ही गढ़ा बनाकर दो अण्डे देती है। अण्डे हलके बादामी रंग के होते हैं जिन पर गाढ़े भूरे रंग की चित्तियाँ पड़ी रहती हैं। इसका मुख्य भोजन कीड़े-मकोड़े हैं।

जलमखानी-परिवार

(FAMILY PARRIDAE)

इस परिवार में केवल एक जाति के पक्षी हैं जो जलमखानी या टीभू कहलाते हैं। ये अपने पैर की लम्बी उँगलियों के कारण अन्य पक्षियों से अलग कर दिये गये हैं और इनका एक अलग परिवार बना दिया गया है।

इन पक्षियों को पहले लोग जलकुक्कुट के भाई-बन्धु समझते थे, लेकिन बाद में

पता चला कि इनका उनमें कोई सम्बन्ध नही है और वास्तव में ये टिटिहरी और चहों की बिरादरी के हैं।

अपनी लम्बी उँगलियो के सहारे ये पानी के ऊपर तैरनेवाली घास फूस या कमल और कुई के पत्ता पर बडी आसानी स दौडते रहते है, जैसे कोई खुश्की पर दौड रहा हो। इनका मुख्य भोजन पानी के कीडे-मकोडे हैं जिनकी तलाश में इन्हें सारा दिन जलाशयो में बिता देना पडता है।

यहाँ अपने यहाँ के दोनो प्रसिद्ध जलमखानियो का वर्णन दिया जा रहा है जिनके रग-रूप में भेद अवश्य है लेकिन दोनों की आदतें एक-जैसी ही हैं।

जलमखानी

(BRONZE WINGED JACANA)

जलमखानी को जिसने एक बार भी कमल या कुई के पत्ता पर घूमते देखा होगा वह इसे कभी भी नही भुला सकेगा। यह ११ इच की छोटी सी चिडिया अपनी लम्बी उँगलियो के कारण कमल आदि के पत्ता पर इस तेजी स दौडती रहती है जैसे खुश्की पर टहल रही हो। इसको जल्पीपी, टीभू और करटिया भी कहते हैं। इसके नर-मादा एक रग रूप के रहते हैं।

जलमखानी हमारे यहाँ राजपुताना को छोडकर प्राय सभी जगह पायी जाती है और शक्ल सूरत में जलमुरगियो से मिलती-जुलती रहती है। इसका सिर, गरदन तथा नीचे का हिस्सा काला रहता है जिसमें हरछौह झलक रहती है। इसकी पीठ तामडे रग की और डैने खैरे रहते हैं। दुम व नीचे का हिस्सा कत्थई रहता है और आँख के पीछे से गरदन तक एक सफेद स्पष्ट पट्टी चली जाती है। चोच पिलछौह हरी और पैर गदे हरे रहते हैं। इसकी चोच की जड के पास एक लाल चकत्ता सा रहता है।

जलमखानी ज्यादातर ऐसे तालो में रहती है जो कमल, कुई, सिंघाडा तथा जलकुभी आदि से भरे रहते है। इन्ही के पत्ता पर ये लम्बी उँगलियोवाली चिडियाँ इधर उधर दौडती रहती हैं। जलमखानी पत्तो पर ही नही, खुश्की पर भी आसानी से दौड लेती हैं और मौका पडने पर पानी में तैर और डुबकी भी लगा लेती हैं, लेकिन इनकी उडान भद्दी और कमजोर होती है। इनका मुख्य भोजन पानी के पौधो की

जड़, बीज और नरम कल्ले आदि हैं। साथ ही कीड़े-मकोड़े तथा छोटे कटुओं से भी इन्हें परहेज नहीं है।
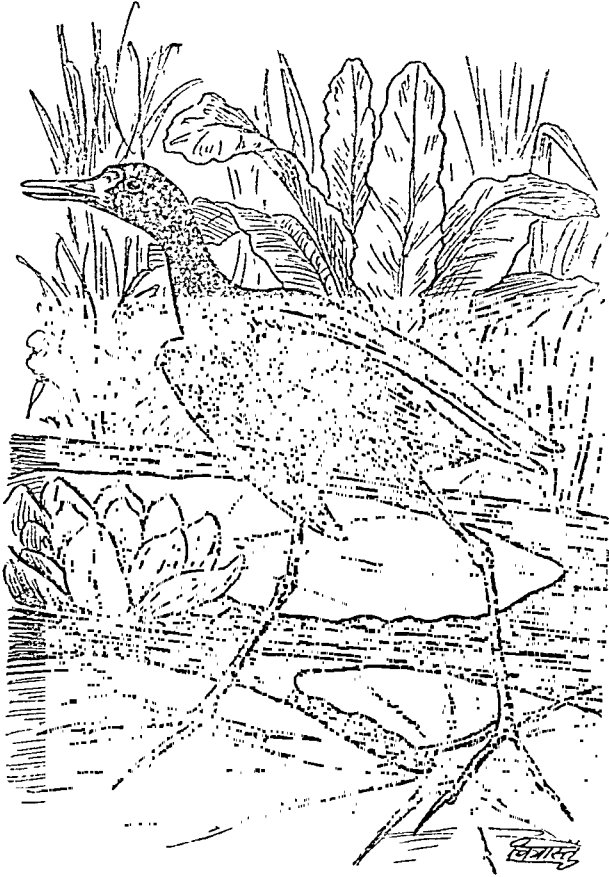
जलमखानी

जोड़ा बाँधने के समय जलमुरगियों की तरह ये भी बहुत ज्यादा शोर मचानेवाली हो जाती हैं। यह समय जून से सितम्बर तक रहता है, जब मादा किसी चौड़ी पत्ती पर अपना घास-पात का भद्दा-सा घोंसला बनाकर चार अण्डे देती है। अण्डे भूरे रंग के होते हैं जिन पर काली या गाढ़ी भूरी चित्तियाँ पड़ी रहती हैं।

जलमोर

(PHEASANT-TAILED JACANA)

जलमुर्गानी की तरह जलमोर के भी कई नाम प्रचलित हैं। कहीं इसे पीहो कहते हैं तो कहीं टीभू। कहीं यह सुखदल के नाम से प्रसिद्ध है तो कहीं इसे चिकबिलाई के नाम से पुकारा जाता है। लेकिन जिसने इसको जलमोर की उपाधि दी है उसकी जितनी तारीफ की जाय थोड़ी है।
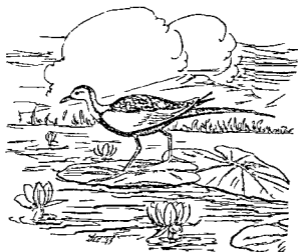
जलमोर

जलमोर १२ इंच का पक्षी है जिसके नर मादा एक रंगरूप के होते हैं लेकिन मादा कद में नर से ड्योढ़ी होती है। यह हमारे यहां का बारहमासी पक्षी है जो सारे देश में पाया जाता है। कश्मीर में यह ५-६ हजार फुट की ऊँचाई पर भी देखा जा सकता है। जलमुर्गानी की तरह इसको भी दलदल और कमल या सिंघाड़ आदि से भरे हुए ताल पसन्द हैं जिनकी चौड़ी पत्तियों पर यह इधर उधर चक्कर लगाया करता है। जलमोर बहुत ही सुन्दर पक्षी है जिसकी गरमियों और जाड़ों की पोशाक में बहुत भेद हो जाता है। जाड़ों में इसका ऊपरी भाग भूरा रहता है और सिर पर तथा ऊपरी गरदन पर सफेद लकीर पड़ी रहती है। आंख के ऊपर एक सफेद लकीर रहती है और वहीं से एक भूरी पीली पट्टी गरदन तक चली आती है। सीना कलछौंह और नीचे

का हिस्सा सफेद रहता है। दुम भी सफेद रहती है जिसके बीच के पर भूरे रहते हैं। डैने हलके भूरे रहते हैं जिन पर गाढ़ी भूरी पटरियां पड़ी रहती हैं और दोनों बगल एक-एक सफेद चकत्ते से पड़े रहते हैं।

गरमियों में इनका सिर और गरदन का निचला हिस्सा सफेद हो जाता है और गुद्दी से गरदन का ऊपरी भाग सुनहला पीला तथा बाकी ऊपर और नीचे का सारा शरीर गाढ़ कत्थई हो जाता है। दोनों बगल के हिस्से सफेद रहते हैं और दुम कलछौंह हो जाती है। नर की दुम पर ६ इंच लंबे पर निकल आते हैं जिससे वह बहुत भड़कीला जान पड़ने लगता है। इसकी चोंच गाढ़ी भूरी और पैर गंदे हरे रंग के रहते हैं और उनमें की उँगलियां काफी लंबी होती हैं।

जलमोर जाड़ों में कहीं-कहीं ५० से १०० तक के झुंड में भी दिखाई पड़ जाते हैं जो खतरा निकट देखकर टीं-टीं की आवाज करते हुए हवा में उड़ जाते हैं। इनका मुख्य भोजन पानी की घास-पात और उनकी जड़ें आदि हैं, लेकिन ये कीड़े-मकोड़े भी बड़े मजे से खाते हैं। इनकी और आदतें जलमखानियों से मिलती-जुलती होती हैं।

जलमोर के जोड़ा बाँधने का समय जून से सितम्बर तक रहता है, जब मादा किसी चौड़ी पत्ती पर घास-फूस का भद्दा-सा घोंसला बनाकर चार अण्डे देती हैं, जो हरछौंह भूरे या तामड़े रंग के रहते हैं।

कुररी उपवर्ग

(SUB ORDER LARI)

इस उपवर्ग में सब तरह की कुररियाँ और सामुद्रिक रखे गये हैं जो शकल-सूरत में टिटिहरियों तथा चहों से एकदम भिन्न होते हैं, लेकिन पक्षिशास्त्र-विशारदों ने इनकी शरीर-रचना में समानता पाकर इन्हें एक ही उपवर्ग का पक्षी माना है।

इस उपवर्ग में एक ही परिवार है जो कुररी परिवार कहलाता है। यहाँ उसी का वर्णन दिया जा रहा है।

कुररी-परिवार

(FAMILY LARIDAE)

कुररी परिवार में कुररियाँ, सामुद्रिक तथा पनचिरा रखे गये हैं जिन्हें हम पानी के ऊपर उड़ते तथा पानी में तैरते देख सकते हैं।

कुररियाँ सामुद्रिको से कद में छोटी जरूर होती हैं लेकिन शकल सूरत और बनावट में दोनों में बहुत कुछ समानता रहती है। कुररियो के डैने बडे होते हैं और दुम दुफकी कटी रहती है। इनके पैर भी छोटे होते हैं, लेकिन वैसे देखने में ये छोटे कद के सामुद्रिक ही जान पडती हैं । इनके पैर पूरे जालपाद नही होते बल्कि इनकी उँगलियाँ थोडी दूर तक ही आपस में जुटी रहती है।

कुररियो की चोच बडी तेज और नोकीली होती है और इनके बदन का ऊपरी हिस्सा सिलेटी तथा निचला सफेद रहता है। सिर के ऊपर का हिस्सा प्राय काला रहता है। इनका मुख्य भोजन मछलियाँ और कटुए आदि हैं। यहाँ अपने यहाँ की प्रसिद्ध कुररियो का वर्णन दिया जा रहा है।

सामुद्रिक समुद्र के निकट रहनेवाला पक्षी है, जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट है। लेकिन जाडो में हम इस बडी नदियों और तालो में भी देख सकते हैं। यह हवा में भी बहुत अच्छी तरह तैर लेता है। इसके पैर बत्तखो की तरह जालपाद होते हैं और इसकी कुछ जातियो का सिर धुर काला रहता है। यह मास-मछली, कटुए, घोघे आदि सब कुछ खा लेता है और अक्सर इसे पानी में फेंकी हुई लाश के साथ-साथ नदियों में उडते देखा जा सकता है।

यहाँ अपने यहाँ की नदियों मे आनेवाले सामुद्रिक का वर्णन दिया जा रहा है।

पनचिरा शकल-सूरत में तो कुररी की ही तरह होते हैं लेकिन उनकी ऊपरी चोच छोटी, पतली और नोकीली होती है और निचली काफी लबी और चाकू की तरह पतली रहती है। कुररियाँ मछली पकडते समय ऊपर से पानी में कौडिल्ले की तरह कूद पडती हैं लेकिन पनचिरा पानी की सतह पर इस तरह उडता है कि उसकी चोच का निचला हिस्सा पानी मे रहता है। इस प्रकार उसकी चोच में जो मछली आ जाती है वह चोच के ऊपरी नोकीले हिस्से में छिद जाती है।

यहाँ अपने यहाँ की दो प्रसिद्ध कुररियां तथा एक सामुद्रिक और पनचिरा का वर्णन दिया जा रहा है।

कुररी

(*TERN*)

कुररी को देहात में कुछ लोग धोबिन कहते हैं और कुछ टिटिहरी। इसे धोबिन कहे जाने में तो ज्यादा हर्ज नही है लेकिन इसको टिटिहरी कहना तो सरासर भूल है, क्योंकि टिटिहरियो से इसका किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है।

इसकी वैसे तो चार-पाँच जातियाँ हैं, पर हमारे यहाँ ज्यादातर इसकी दो किस्में दिखाई पड़ती हैं—एक बड़ी कुररी (Com. River Tern) और दूसरी छोटी या कलपेटी कुररी (Black-billed Tern)। ये दोनों शकल में एक-जैसी होती हैं। कलपेटी कुररी कुछ छोटी जरूर होती है और उसका पेट भी काला रहता है, लेकिन वैसे इन दोनों की आदतें एक-जैसी ही होती हैं। दोनों के नर-मादा भी एक शकल-सूरत के रहते हैं।

बड़ी कुररी १६ इंच लंबी चिड़िया है जिसमें उसकी लंबी दोफंकी दुम भी शामिल है। इसके सारे बदन का रंग हलका सिलेटी होता है जो कहीं हलका और कहीं गहरा हो जाता है। निचला हिस्सा राख से भी हलका रहता है। गरमियों में इसकी कनपटी से सिर तक का हिस्सा चमकीला काला हो जाता है, जैसे किसी ने इसे काले मखमल की टोपी पहना दी हो।
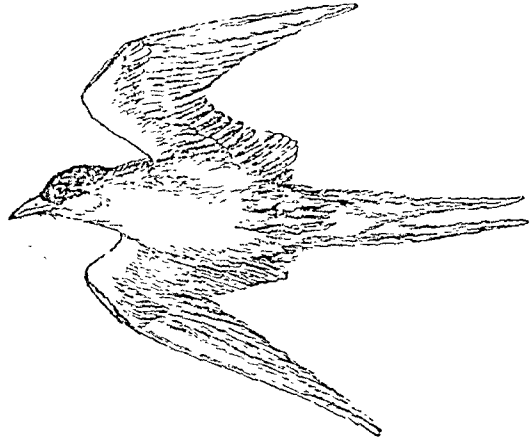
कुररी

इसकी चोंच गहरी पीली और छोटे-छोटे पैर लाल रंग के होते हैं। चोंच लंबी और पैर के अँगूठे बत्तखों की तरह जुड़े रहते हैं और दुम तथा डैने कद के हिसाब से काफी बड़े होते हैं।

कलपेटी कुररी कुछ छोटी होती है। इसका भी रंग हलका सिलेटी होता है, पर काली टोपी के अलावा इसके पेट के नीचे से लेकर दुम तक का हिस्सा भी काला रहता है। अण्डे देने के बाद कुछ समय तक के लिए इसके रंग में भी तब्दीली होती है और इसका काला रंग सफेदी में बदल जाता है।

इसकी चोंच नारंगी और पैर लाल होते हैं। इसके पैर, दुम और चोंच सब बड़ी कुररी की बनावट के होते हैं।

कुररियाँ झील और दरिया के किनारे रहनेवाली हमारे यहाँ की बारहमासी चिड़ियाँ हैं जो नदी के किनारे सैकड़ो की तादाद में दिखाई पड़ती हैं।

इनके पैर बत्तखो की तरह जालपाद होते हैं, फिर भी ये पानी में तैरती नही और न इसी वजह से पेड़ पर ही बैठती हैं। पेट भर जाने या थक जाने पर ये किनारे पर बालू में और चिड़ियों के साथ चुपचाप बैठी रहती हैं। इन्हें अपने लबे और मजबूत डैनों पर ज्यादा भरोसा रहता है और उन्ही के सहारे ये ज्यादातर पानी की सतह के ऊपर मछलियों की तलाश में उड़ती रहती हैं, जो इनकी मुख्य खूराक है। शाम को पानी की सतह से चोच मिलाकर इनका उड़ना बहुत भला मालूम होता है।

कलपेटी कुररी

ये मार्च से मई तक खुली रेत पर छिछला गड्ढा बनाकर अण्डे देती हैं। जहाँ तक मुमकिन होता है अण्डे देने के लिए कोई टापू तलाश किया जाता है, जहाँ आदमियों की पहुँच न हो सके। अण्डे पत्थर के रग के होते हैं जिन पर घनी गहरी भूरी चित्तियाँ पड़ी रहती हैं, जिससे वे आसानी से जमीन के रग में मिल जायँ।

बड़ी कुररी के अण्डे कुछ बड़े और कलपेटी के उससे कुछ छोटे होते हैं लेकिन रग दोनों का एक जैसा ही रहता है।

एक दो नही, सैकड़ा कुररियाँ एक ही मैदान में अण्डे देती हैं और वहाँ कोई आदमी पहुँचा नहीं कि उसके सिर के पास ये ऐसी तेज आवाज करती हुई उड़ती हैं कि डर लगता है कि वे कही चोच न मार दें।

सामुद्रिक

(GULL)

सामुद्रिक वसे तो समुद्र की चिड़ियाँ हैं और इनकी अधिक संख्या समुद्र के किनारे ही रहती है, लेकिन जाड़े के मौसम में इन्हें उत्तरी भारत की वड़ी नदियों, झीलों और तालावों के किनारे उड़ते देखा जा सकता है।
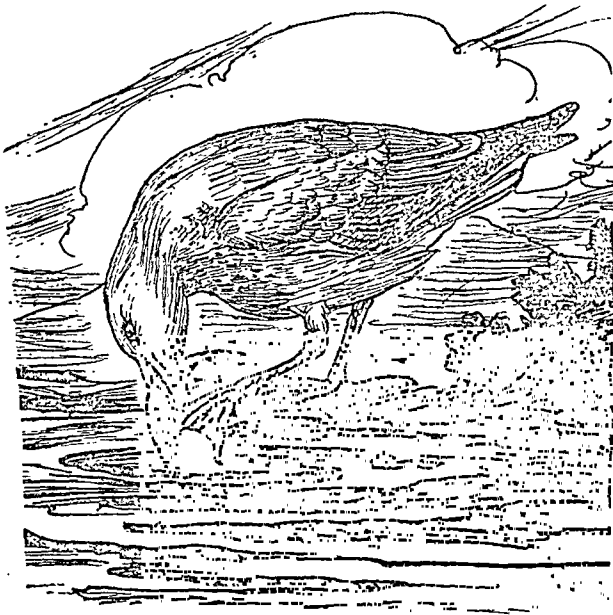
सामुद्रिक

सामुद्रिक हमारे यहाँ का मौसमी पक्षी है जिसका अंग्रेजी नाम 'गल' वैसे तो वहुत प्रसिद्ध है, परन्तु हमारे यहाँ इसको वोमरा भी कहते हैं। इसका सामुद्रिक नाम देहातों में वहुत प्रचलित है, क्योंकि न जाने लोग यह कैसे जान गये हैं कि ये समुद्री-पक्षी हैं। वैसे तो ये समुद्र के किनारे रहते हैं, लेकिन जाड़ों में इन्हें वड़ी नदियों और झीलों के किनारे देखना असम्भव नहीं।

सामुद्रिक को कुररी का भाई-वन्धु कहना अनुचित न होगा, क्योंकि इनके शरीर की वनावट कुररियों की तरह पतली भले ही न हो, लेकिन रंगरूप और आदतों

में दोनों बहुत समानता रखते हैं, यहाँ तक कि इनके पैर के अँगूठे भी कुररियों की तरह जालदार होते हैं।

सामुद्रिक १६ इंच का पक्षी है जिसके नर मादा एक ही रंग रूप के होते हैं। इसकी पीठ और डैने हल्के स्लेटी रंग के रहते हैं जिनमें एक प्रकार की चमक-सी रहती है। नीचे का हिस्सा, सिर, गरदन और दुम सफेद रहती है, आँख के आगे और कान के पीछे का थोड़ा हिस्सा भूरा रहता है और डैने के कुछ परों के सिरे काले रहते हैं। गरमियों में इस रंग में कुछ तब्दीली हो जाती है और सामुद्रिक का पूरा सिर और गरदन का कुछ हिस्सा कलछौंह कत्थई रंग का हो जाता है। इसकी चोंच टेढ़ी और मजबूत होती है। आँख की पुतली भूरी और चोंच तथा पैर गाढ़े लाल रंग के होते हैं।

सामुद्रिक वैसे तो बहुत साफ सुथरी चिड़िया है लेकिन इसका भोजन बहुत गंदा होता है। पानी में डुबकी न लगा सकने के कारण यह जिन्दा मछलियों को आसानी से पकड़ नहीं पाती। इसी से इसे मुरदाखोर बनना पड़ा है। किसी तरह की लाश पानी में बहती दिखाई पड़ी नहीं कि कुररिया के साथ सामुद्रिकों के झुंड भी लाश पर चोंच मारते दिखाई पड़ते हैं।

सामुद्रिकों का ज्यादा समय हवा में उड़ते ही बीतता है, जैसे इनको दूसरा कोई काम ही नहीं है। हमारे देश में तो ये अण्डे देते ही नहीं, लेकिन यूरोप में इनकी मादाएँ, झुंड की झुंड कुररिया की तरह, पानी के निकट रेत पर छिछला गढ़ा बनाकर अण्डे देती हैं। ये गढ़े घास वगैरह से मुलायम जरूर कर दिये जाते हैं लेकिन इनको छिपाने की जरूरत जैसे इनको नहीं जान पड़ती। अण्डों की संख्या दो से चार तक रहती है जिनका रंग पत्थरी रहता है और जिन पर गाढ़ी भूरी चित्तियाँ पड़ी रहती हैं।

पनचिरा

(INDIAN SKIMMER)

पनचिरा को प्रायः लोग कुररी ही समझते हैं क्योंकि यह उनका भाई बंधु तो है ही, साथ ही साथ इसकी शकल-सूरत भी उन्हीं की तरह होती है। इसका यह नाम इसकी अनोखी चोंच के कारण मिला है जिससे मछलियों के लिए यह उड़ते उड़ते ... को चीरता चला जाता है। देखने में तो यह कुररिया की तरह होता है लेकिन

इसकी पीठ, डैने और सिर का ऊपरी भाग कल्छौंह गाढ़ा भूरा रहता है जिससे इसको पहचानने में ज्यादा दिक्कत नहीं उठानी पड़ती।

पनचिरा हमारे यहां का बारहमासी पक्षी है जो अपना सारा समय पानी के पास ही बिताता है। इसकी लंबाई करीब डेढ़ फुट की होती है और नर-मादा दोनों एक ही शकल-सूरत और रंग-रूप के होते हैं। सारा शरीर सफेद रहता है, लेकिन सिर का ऊपरी हिस्सा, पीठ और डैने कल्छौंह भूरे रहते हैं जो दूर से काले जान पड़ते हैं। डैने काफी लंबे, नोकीले और चटक सिंदूरी रंग के होते हैं और पैर जालपाद रहते हैं। चोंच नारंगी रंग की रहती है। इसकी चोंच पतली छुरी की तरह रहती है जिसका ऊपरी हिस्सा निचले हिस्से से छोटा रहता है।
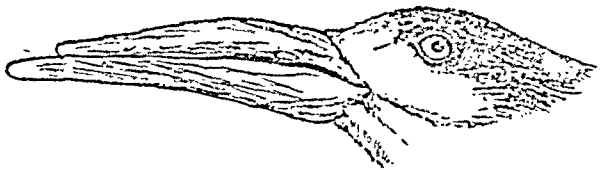
पनचिरा

पनचिरा प्रायः बड़ी नदियों के आसपास रहते हैं जहाँ इनको अक्सर पानी की सतह से मिलकर उड़ते देखा जा सकता है। उड़ते समय ये अपनी चोंच से पानी को चीरते चलते हैं, जिससे जो मछली इनकी तेज़ चोंच के सामने पड़ जाती है वह फिर इनसे नहीं बच पाती। कभी-कभी ये बड़ी झीलों में भी चले जाते हैं, लेकिन अगर वहाँ के पानी में काफी दूर तक घास वगैरह न हुई तभी इनको मछलियाँ पकड़ने में आसानी होती है। शाम के समय, जब मछलियाँ किनारे की ओर चली आती हैं, तो आठ दस पनचिरे उन्हें घेरकर बड़ी तेजी से वहीं चक्कर लगाने लगते हैं।

इनके जोड़ा बाँधने का समय मार्च से मई तक रहता है जब ये कुररियों आदि के साथ काफी बड़ी संख्या में इकट्ठे होकर जमीन पर अण्डे देते हैं जो संख्या में प्रायः चार रहते हैं। इनके अण्डों का रंग हरापन अथवा राखीपन लिये सफेद रहता है, जिन पर गाढ़ी भूरी कत्थई या बैंगनी बिंदियाँ या चित्ते पड़े रहते हैं।

भटतीतर उपवर्ग

(SUB ORDER DTREOCLES)

भटतीनरो को टिटिहरी वर्ग में देखकर ताज्जुब होगा, लेकिन वैज्ञानिको ने इनकी शरीर-रचना के बाद यही निश्चय किया कि ये सब एक ही वर्ग के पक्षी है।

ये खुले रेगिस्तानी मैदानो के रहनेवाले पक्षी है जिनके पैर छोटे और डैने नोकीले मजबूत होते हैं। इनका रग अपने पास-पडोस के रग से ऐसा मिल जाता है कि इनके बहुत निकट जाने पर भी इनको देखना कठिन हो जाता है। अपने इन्ही दोनो गुणो के कारण ये दुश्मनो से बच जाते है।

इनके बच्चे अण्डे से बाहर निकलने के दो ही चार घण्टे बाद अपने माँ-बाप के साथ घूमने-फिरने लगते है लेकिन उड नही पाते। इसीलिए ये पानी के पास नही पहुँच पाते जो प्राय इनके रहने के स्थान से दूर रहता है। अत इनकी प्यास बुझाने के लिए इनके बाप को दूर से पानी लाना पडता है। वह जलाशय के पास जाकर अपने सीने के परो को पानी मे तर करके बच्चो के पास उड आता है जहाँ उसके प्यासे बच्चे उसके भीगे हुए परो को चूसकर अपनी प्यास बुझाते है।

इनका मुख्य भोजन तरह-तरह के बीज है जो सूखे मैदानो में मिलते है। इनकी कई जातियाँ हमारे यहाँ पायी जाती है जिनमें से कुछ का वर्णन यहाँ दिया जा रहा है।

भटत्तीतर

(SAND GROUSE)

भटतीतर को हम तीतर और फाखना के बीच की चिडिया कह सकते हैं। यह एकदम जमीन पर रहनेवाला पक्षी है जो बीस पचीस के झुड में रहता है। जमीन पर बैठे रहने पर ये हमें जल्द दिखाई नही पडते, लेकिन खुले मैदान में बैठे रहने के कारण ये शिकारियो को दूर से ही देखकर उड जाते हैं। इससे उडते समय ही इनका अच्छा शिकार हो सकता है।

भटतीतर यहाँ की बारहमासी चिडिया है जिसे सुनसान मैदानो में गोल बाँधकर दाना चुगते हुए अक्सर देखा जा सकता है। इसे न तो नम जगह पसन्द है और न घने जगह ही। इसे तो सूखे रेतीले या पहाडी मैदान ही पसंद आते है।

इसके नर-मादा के रंग में कुछ फर्क रहता है। नर १८ इंच का सिलेटी रंग का होता है जिसमें इसकी लंबी दुम भी शामिल रहती है। दुम तो वैसे ज्यादा लंबी नहीं होती, पर उसके बीच के दो पतले पर पतेना की तरह बढ़े हुए रहते हैं। मादा की दुम नर से कुछ छोटी होती है। नर के ऊपरी हिस्से का रंग हल्का सिलेटीपन लिये वादामी रहता है और उसकी पीठ पर कुछ आड़ी-आड़ी कत्थई धारियाँ पड़ी रहती हैं। दुम और डने का वाहरी हिस्सा गहरा भूरा होता है और गला हलका पीला और सीना ललछौंह वादामी रहता है।
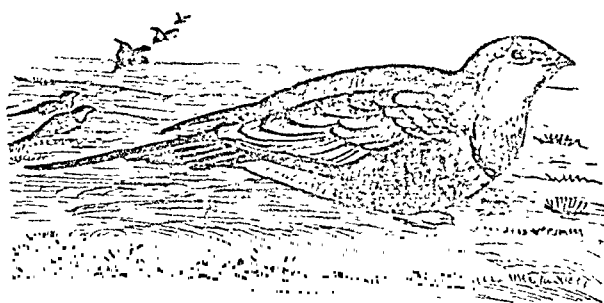
भटतीतर

इसकी मादा चितकवरी होती है और उसका सारा वदन वादामी रंग का रहता है जिसमें सिर, पीठ, डैने और तमाम निचले हिस्से में काले सेहर-से वने रहते हैं। पेट में एक आड़ी पट्टी जरूर विना किसी चिह्न के छूट जाती है और इसकी कनपटी तथा गले के नीचे भी चित्ते नहीं रहते। चोंच तथा पैर सिलेटी रंग के होते हैं। ये अपने गोल के साथ मैदानों में ही वसेरा करते हैं, इनमें से कुछ पारी-पारी से जागकर पहरा देते रहते हैं, नहीं तो स्यार और लोमड़ियाँ इन्हें चट कर जायँ।

भटतीतरी अपने अंडे किसी छिछले गड्ढे में देती है जिसे थोड़ा घास-फूस रखकर मुलायम कर लिया जाता है।

इसके अण्डे अक्सर अप्रैल में मिलते हैं जिनकी संख्या दो-तीन से ज्यादा नहीं होती। अण्डों का रंग गेहुँआ या वादामी होता है जिन पर भूरे और वैंगनी रंग की चित्तियाँ पड़ी रहती हैं।

कपोत उपवर्ग

(SUB ORDER COLUMBAE)

कपोत उपवर्ग को टिटिहरी-वर्ग में देखकर आश्चर्य होगा, लेकिन शरीर रचना में समानता होने के कारण यह भी इसी वर्ग में सम्मिलित कर लिया गया है।

कबूतरों ने जमीन पर रहने के बजाय पेड़ों पर रहने की आदत डाली, जिससे उनके पैर की उंगलियाँ डाल पकड़ने लायक हो गयीं और उनके बच्चे प्रारम्भ में तब तक असहाय रहने लगे जब तक उनके डैने उड़ने लायक न हो जायें और वे पेड़ पर के घोंसले से बाहर न आने-जाने लगें।

उन्होंने अपना कीड़े-मकोड़े का खाना छोड़कर दाने से अपना पेट भरना शुरू किया, इससे उनके गले के भीतर एक थैली का विकास हुआ जिसमें वे पहले दाना चुनकर भर लेते हैं और वहाँ से कुछ देर बाद दाना पिसकर उनके पेट में हजम होने चला जाता है। इस थैली में कबूतर कुछ कंकड़ के टुकड़े भी निगल लेते हैं जो आपस में रगड़कर निगले हुए दाने को पीस डालते हैं। कबूतर इसी थैली से पिसे हुए दाने के रस को, जो दूध जैसा होता है बच्चों के मुँह में अपनी चोंच डालकर उगल देते हैं जिससे उनका पेट भर जाता है।

इस उपवर्ग में दो ही परिवार हैं। कपोत परिवार और डाडो-परिवार। डोडो नाम का पक्षी संसार से लुप्त हो गया है। अतः अब केवल एक कपोत-परिवार ही बच गया है।

कपोत परिवार

(FAMILY COLUMBIDAE)

कपोत परिवार में सब प्रकार के कबूतर, पडकियाँ तथा हारिल रखे गये हैं जिनके कुछ गुणों का वर्णन ऊपर दिया जा चुका है। ये पेड़ों पर रहना पसन्द करते हैं और दाना तथा फल खानेवाले पक्षी हैं। ये प्रायः झुंड में ही रहते हैं लेकिन इनमें से कुछ जोड़ा बाँधकर भी रहते हैं। ये अपनी मिठाई के लिए प्रसिद्ध हैं और इनमें से कुछ जातियों को मनुष्य ने पालतू बनाकर उनकी अनेक नयी जातियाँ बना डाली हैं।

यहाँ कबूतर, फ़ाख़ता तथा हारिल का वर्णन दिया जा रहा है।

कबूतर

(BLUE ROCK PIGEON)

कबूतर हमारे देश के प्रायः सभी भागों में पाया जाता है। यह यहाँ का बारह-मासी पक्षी है, जो देहातों और शहरों में एक ही समान फैला हुआ है । इसके नर-मादा का रंग-रूप एक ही जैसा होता है।

इसके सारे शरीर का रंग वैसे तो सिलेटी रहता है, लेकिन इसकी गरदन पर चमकीले हरे पंखों का एक कंठा-सा रहता है जिसके नीचे फिर एक बैंगनी पट्टी रहती है जो सूरज की किरण पड़ने से चमक उठती है। पीठ और डैनों का रंग कुछ गहरा होता है जिन पर दो-तीन आड़ी पट्टियाँ पड़ी रहती हैं। दुम का सिरा काला रहता है जिसके दोनों बगल सफेद धारी रहती है।
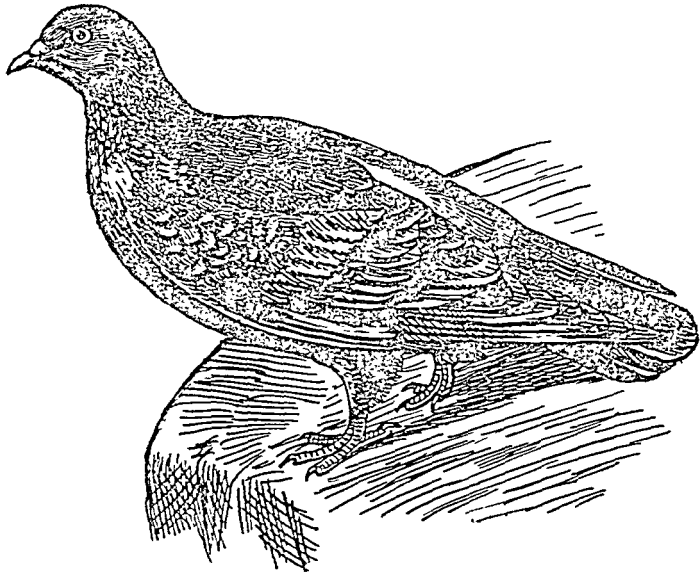
कबूतर

इसकी आँख की पुतली नारंगी, चोंच सिरे पर काली, जड़ पर सफेद और पैर गहरे गुलाबी रहते हैं। कबूतर प्रायः रात में पेड़ों पर बसेरा न करके पुरानी इमारतों अथवा कच्चे कुओं और ऊँचे कगारों की दराज़ में रहते हैं। ये प्रायः

गोल में रहते हैं जिन्हें अक्सर खेतो में दाने चुगते देखा जा सकता है। उड़ने में तो कबूतरो की बराबरी जल्द कोई नही कर सकता।

इन्हें घोसला बनाना शायद आता नही, नही तो मकान की कारनिसों, छज्जों, मिट्टी के टीलों और कच्चे कुओं की सूराखों में लापरवाही से थोड़ा-सा घास-फूस रखकर इनकी मादा अण्डे न देती।

वैसे तो इनके अण्डा देने का समय जनवरी से मई तक है, पर साल में दो बार अण्डा देने के कारण इनके घोसलो में प्राय सभी महीनो में अण्डे मिल जाते हैं। इनके अण्डे सफेद होते हैं।

इस जगली कबूतर से ही विकास करके मनुष्यों ने इनकी अनेक जातियाँ बनायी है जो अपने सुन्दर रंग-रूप के कारण सारे ससार में शौकीनो द्वारा पाली जाती हैं। इन पालतू कबूतरो में कुछ तो उड़ान के गिरहबाज कबूतर होते हैं और कुछ ऐसे होते हैं जिन्हें उनकी सुन्दरता के लिए ही पाला जाता है। इन सुन्दर कबूतरों में चीना, मुक्खी, गोला और अबरसरे आदि मामूली किस्म के सफेद या चित्तीदार कबूतर है जिन्हें अक्सर पालनेवालों के यहाँ देखा जाता है, लेकिन लक्का अपनी टेढी गरदन और उठी हुई पूँछ के कारण औरो से अलग ही रहता है। शीराजी कबूतर बहुत सुन्दर होते हैं जिनका कद भी बड़ा होता है। लोटन कबूतर हाथ में लेकर जमीन पर उलटकर छोड़ देने से लोटता ही रहता है, लेकिन इन सबमें आश्चर्य-जनक होते हैं उड़ान के कबूतर, जिनके द्वारा आज भी लड़ाई की खबरें भेजी जाती हैं। ये कबूतर सफेद भी होते हैं और जगली कबूतरो जैसे सिलेटी भी। लेकिन इनमें यह खासियत होती है कि ये जहाँ पले रहते हैं उस जगह को, दूर ले जाकर छोड़े जाने पर भी, नही भूलते और सैकड़ो मील दूर छोड़े जाने पर भी अपनी पुरानी जगह पर लौट आते हैं। इनको वैसे भी सवेरे उड़ा दिया जाता है जहाँ ये बहुत ऊपर जाकर आसमान में ऐसे दूर जाते हैं कि दिखाई ही नही पड़ते और सारे दिन उड़ते रहकर शाम को वही नीचे उतरते हैं।

फाख्ता या पड़कियाँ

(DOVES)

फाख्ता को पड़की भी कहा जाता है। इनकी कई जातियाँ हमारे यहाँ पायी जाती हैं जो अपने भोलेपन और मिठाई के लिए कबूतरों से कम प्रसिद्ध नही हैं।

ये कबूतर के भाई-बन्धु हैं, जिनकी शकल-सूरत ही नहीं आदतें भी उन्हीं से मिलती-जुलती रहती हैं।

पड़कियाँ इतनी सीधी और भोली चिड़ियाँ हैं कि इनके शिकार में जरा भी परेशानी नहीं उठानी पड़ती। खेत के आसपास के बबूल आदि पेड़ों पर इन्हें देखा जा सकता है। इसके अलावा ये जंगल और खुले हुए मैदानों में भी काफी संख्या में दिखाई पड़ती हैं। यहाँ अपने यहाँ की पाँच पड़कियों (फ़ाख़ताओं) का वर्णन दिया जा रहा है जिनकी शकल-सूरत में भेद भले ही हो, लेकिन इनकी आदतों में किसी प्रकार का भेद नहीं रहता।
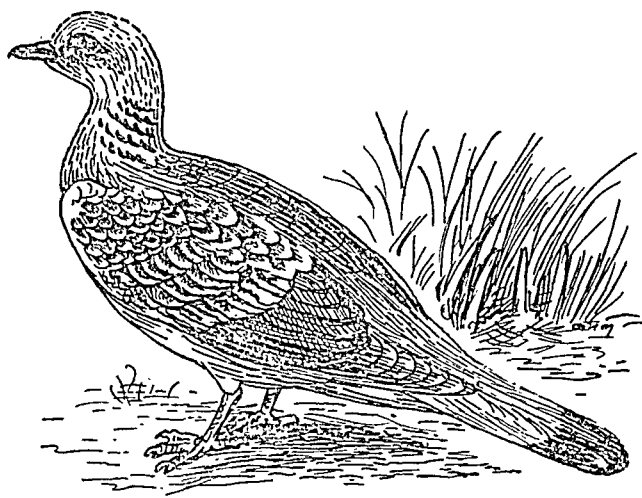
काल्हक फ़ाख़ता

१. काल्हक फ़ाख़ता—Turtle Dove
२. चितरोखा फ़ाख़ता—Spotted Dove
३. धवर फ़ाख़ता—Ring Dove
४. टुटरूँ फ़ाख़ता—Brown Dove
५. ईंटकोहरी फ़ाख़ता—Red Turtle Dove

काल्हक फ़ाख़ता का कद सबसे बड़ा होता है। यह कबूतर के कद का सुन्दर पक्षी है जिसका सिर, गरदन और ऊपरी हिस्सा ललछौंह भूरा और निचला हिस्सा

हलका कत्थई रहता है। गरदन के दोनो ओर काली काली चित्तियाँ रहती हैं और डैना पर मेहर से निशान पडे रहते हैं। दुम भूरी होती है जिसका सिरा गाढा कत्थई रहता है।

इसकी चोच भूरी पैर और पजे लाल होते हैं। अण्डे सफेद रग के होते हैं। काल्हक के बाद चितराखा का नम्बर आता है। यह कद मे तो काल्हक से कुछ छोटा होता है पर सुदरता में उससे आगे ही रहता है।

चितरोखा फाखता

इसका सिर ललछौंह सिलेटी गरदन के ऊपरी हिस्से से पीठ तक का हिस्सा काला जिसमें सफद बिन्दियाँ, उसके बाद भूरा जिस पर हल्की कत्थई और काली चित्तियाँ और लकीरें रहती है। डैने भूरे और दुम के बीच का हिस्सा भी भूरा रहता है जिसके दोनो किनारे काले और सफेद होते हैं। इसका गला और दुम के नीचे का हिस्सा सफद होता है और उसके बीच का तमाम निचला हिस्सा ललछौंह कत्थई रहता है।

इसकी चोच गदी काली और पैर बैंगनीपन लिये लाल रहते हैं। इसके अण्डे धुर सफद होते हैं।

धवर चितराखा के बराबर ही होता है पर इसका रग चित्तेदार न होकर सुदर राख के रग का रहता है। इसके सिर के रग में बहुत हल्का फालसई रग मिला रहता है और गरदन के ऊपरी हिस्से पर सफेद और काली धारी का एक कठा सा रहता है। इसकी पीठ का रग हलका भूरापन लिये हुए हल्का सिलेटी और डैने के सिरे और दुम के किनारे चितरोखा की तरह काल और सफद रहते हैं। निचला कुल हिस्सा हल्का सिलेटी या राख के रग का रहता है जिसमें बहुत हल्का फालसई रग मिला रहता है।

इसकी चोंच काली और पैर गाढ़े गुलाबी रहते हैं। अण्डे चितरोखा के बराबर और उसी की तरह सफ़ेद होते हैं।
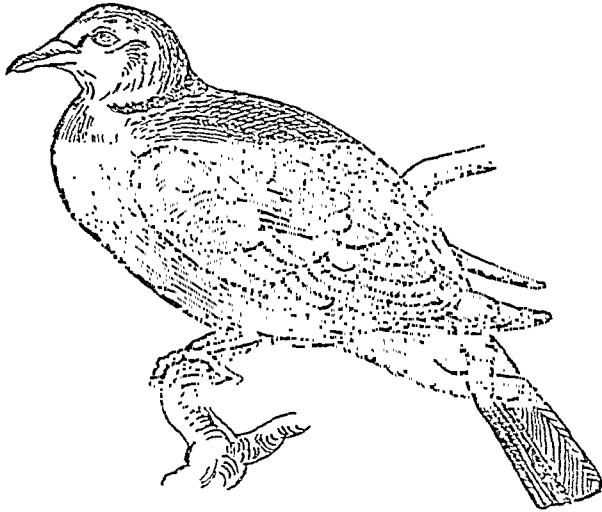
धवर फ़ाखता

टुटरूँ फ़ाख़ता इन तीनों से छोटी होती है। इसका कद आठ-नौ इंच का रहता है और यह चितरोखा और धवर के बीच की चिड़िया जान पड़ती है। इसका
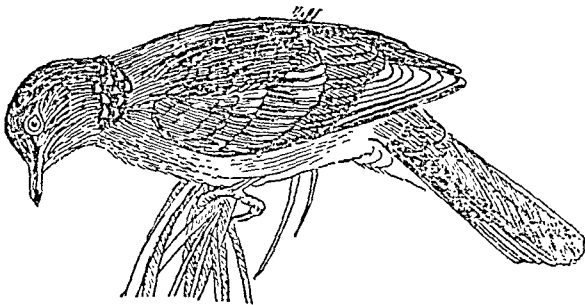
टुटरूँ फ़ाखता

सिर, गरदन और सीना फालसई लिये ललछौंह होता है और गरदन के दोनों ओर कान्हक की तरह काली पट्टियाँ होती हैं जो सफेद विन्दियों से भरी रहती हैं। इसके

ऊपरी हिस्से में हल्की सिलेटी पट्टियाँ पडी रहती हैं जिनका सिरा कत्थई रहता है। दुम भूरी होती है जिसके किनारे काले और सफेद होते हैं। इसके सीने के नीचे पेट से लेकर दुम तक का निचला हिस्सा सफेद रहता है। चोंच काली और पैर गुलाबी रहते हैं।

इसके भी अण्डे सफेद ही होते हैं जो धवर से कुछ छोटे रहते हैं।

ईंटकोहरी फाखता

पाँचवी और आखिरी फाखता ईंटकोहरी या सिरोटी फाखता है। यह सबसे छोटी पडकी है जिसके नर मादा का रग अलग अलग होता है। इट के रग की होने के कारण इसका नाम ईंटकोहरी पड गया है। नर के सिर का रग सिलेटी गरदन पर धवर की तरह काला कठा उसके बाद का ऊपरी हिस्सा इट के रग का और डैन के सिरे कत्थई रग के होते हैं। दुम की जड सिलेटी और बाद का हिस्सा भूरा रहता है। इसके किनारे काले और सफेद रहते हैं। इसके नीचे का हिस्सा भी ईंट के रग का रहता है जो दुम के नीचे पहुँचकर सफेदी में बदल जाता है।

मादा का ऊपरी हिस्सा राख के रग का भूरा सिर डैन और दुम नर की तरह और निचला हिस्सा हल्का भूरा होता है। इसकी चोच काली और पैर हल्के होते हैं। अण्डे का रग अन्य पडकियो की तरह सफेद होता है।

फ़ाख़ता के अण्डे देने का समय पूरे साल भर रहता है। यह साल में दो बार अण्डे देती है, पर एक मर्तबा में इनके ज्यादातर दो ही अण्डे पाये जाते हैं।

इनके घोंसले को घोंसला न कहकर मचान कहें तो ज्यादा ठीक होगा। ये किसी दोफंकी डाल पर दस-बीस सीधी-आड़ी टहनियाँ रख देती हैं, जिन पर मादा अण्डे देकर खुला ही छोड़ देती है। अण्डे ऊपर से ही नहीं, पेड़ के नीचे से भी साफ दिखाई पड़ते हैं।

हारिल

(GREEN PIGEON)

फ़ाख़ता की तरह हारिल की भी कई जातियाँ हैं जिनमें कुछ हारिल कहलाती हैं और कुछ कोकिल, लेकिन इन सबके रंगों में थोड़ा ही फरक रहता है और आदतें तो इन सबकी एक ही जैसी होती हैं।
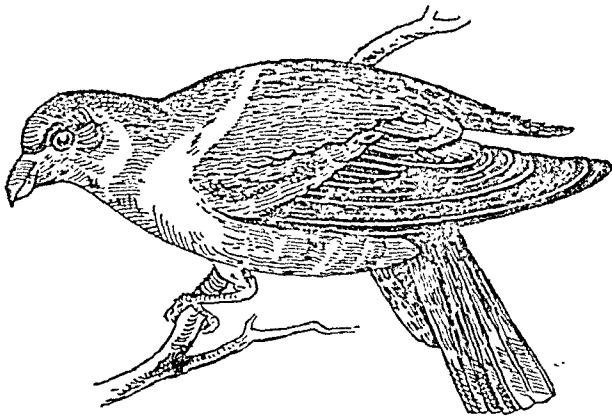
हारिल

हारिल हमारा बहुत परिचित पक्षी जरूर है, लेकिन अपनी फल की मुख्य खूराक के कारण यह शायद ही कभी जमीन पर उतरता हो और इसी कारण यह हमारी निगाहों के तले बहुत ही कम पड़ता है। हारिल हमारे यहाँ का प्रसिद्ध बारहमासी पक्षी है जिसके नर-मादा एक शकल के होते हैं। यह कद में कबूतर के बराबर होने पर भी उससे तगड़ा होता है और रंग में तो उससे कहीं ज्यादा सुन्दर और भड़कीला होता है।

इसका सिर पीलापन लिये हरा, गरदन के चारो ओर से लेकर सीने तक का हिस्सा भूरा और ऊपरी हिस्सा पीलापन लिये गाढ़ा रहता है। डैने पर काली और फालसई धारियाँ पड़ी रहती हैं। इसकी दुम हरी, जिसमें बीच में भूरी-आड़ी पट्टी, नीचे का भाग भूरा, जिसमे बादामी धारियाँ और पेट तथा नीचे का हिस्सा हलका सिलेटी रहता है।

इसकी आँख के चारो तरफ एक गुलाबी घेरा रहता है। इसकी चोच सूजी-सूजी-सी, जिसका निचला हिस्सा हरा और आगे का हिस्सा नीलापन लिये सफेद रहता है। पैर नारगी लाल होते हैं।

हारिल के अण्डा देने का समय मार्च से जून तक है, जब यह किसी ऊँचे पेड पर सूखी टहनियो का एक ऐसा तितरा-बितरा घोसला बनाता है जिसके पेंदे से अक्सर इसके अण्डे दिखलाई पड़ते हैं। घोसले को मुलायम करने के लिए घास-फूस भी नही लगाया जाता क्योंकि हारिल को जमीन पर उतरने से नफरत है। इसी भद्दे घोसले मे मादा दो चमकीले अण्डे देती है।

शुकपिक वर्ग

(ORDER OPISTHOCOMIFORMES)

इस छोटे वर्ग मे हमारे यहाँ के सभी प्रकार के तोते और कोयले आ जाती हैं। इन दोना पक्षियों मे कुछ भेद होने के कारण इन्हे इस प्रकार दो उपवर्गों में बाँट दिया गया है—

१ पिक उपवर्ग—Sub Order Cuculi

२ शुक उपवर्ग—Sub Order Psittaci

पिक उपवर्ग

(SUB ORDER CUCULI)

इस उपवर्ग में कोयल और उनके भाई-बन्धु हैं जिनमे से दो एक के सिवा प्राय सभी पेड पर रहते हैं। इनकी दूसरे के घोसलो में अपना अण्डा रखने के लिए रख आने की आदत को हम सब जानते हैं। इसी कारण हमारे यहाँ इनको परभृति-जीवी कहा जाता है। ... कौवा या पोदना आदि के

घोंसलों में अपने अण्डे दे आती है जहाँ वे समय पाकर फूटते हैं। उनमें से इनका जो बच्चा निकलता है वह एक-एक करके दूसरे सब बच्चों को घोंसले से बाहर फेंक देता है और अकेले सबका हिस्सा भोजन खाकर शीघ्र मोटा-ताज़ा हो जाता है। कोयल इसी प्रकार, बिना घोंसला बनाये और बिना अण्डों पर बैठे ही अपना वंश बढ़ाती रहती है।

इनका मुख्य भोजन कीड़े-मकोड़े और जोराइयाँ हैं, लेकिन कुछ बड़े कद के पक्षी साँप, छिपकली और अन्य छोटे-मोटे जीव-जन्तुओं को भी खा लेते हैं। हमारे यहाँ की प्रसिद्ध कोयल के नर का रंग जरूर काला होता है, लेकिन बाकी और कुक्कू, फूपू, काफलपाक्को आदि कोयलें खैरी चितकबरी होती हैं।

इस उपवर्ग में एक ही परिवार है जो पिक-परिवार कहलाता है।

पिक-परिवार

(FAMILY CUCULIDAE)

पिक-परिवार के अधिकांश पक्षी चितकबरे होते हैं, जिनका मुख्य भोजन कीड़े-मकोड़े हैं। इनके बारे में ऊपर वर्णन हो ही चुका है। यहाँ कुछ प्रसिद्ध पक्षियों का वर्णन दिया जा रहा है।

कोयल

(INDIAN KOEL)

कोयल हमारी चिड़ियों में सबसे मीठी बोली बोलनेवाली चिड़िया मानी जाती है और वास्तव में यह है भी ऐसी ही। वसन्त के बाद आम में बौर आये नहीं कि कोयलों की एक बड़ी संख्या हमारे प्रान्त में फैल जाती है और कू ऊ ऊ कू ऊ ऊ करके गरमी के आगमन की सूचना देने लगती है।

यह हिन्दुस्तान के लिए तो बारहमासी चिड़िया है, पर हमारे प्रान्त को जाड़ों में छोड़कर धुर दक्खिन चले जाने के कारण इसको यहाँ मौसमी चिड़ियों में शामिल कर लिया जाता है। इसका नर धुर चमकीला काला रहता है पर मादा भूरी होती है। इसके पेट का जहाँ हलका रंग रहता है वहाँ गहरी भूरी और डैने आदि पर जहाँ गहरा रंग रहता है वहाँ सफेद चित्तियाँ रहती हैं। दुम पर गहरी भूरी और सफेद धारियाँ रहती हैं। मादा की शकल थोड़ी बहुत-पपीहे से मिलती-जुलती होती है।

कोयल की लम्बाई लगभग १७ इच होती है। इसकी चाच धूमिल हरी अ पैर गहरे सिलेटी रग के होते है। यह मुख्यतया फल खानेवाली चिडिया है और इ कारण ज्यादातर पेडो पर ही रहती है। इसके अण्डा देने का समय तो जून है प इसके अण्डा देने का हाल बहुत दिलचस्प है।
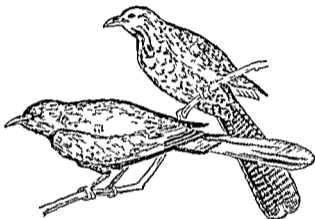
कोयल

यह स्वय घोसला न बनाकर कौए के घोसले में अपने अण्डे सेने के लिए रख आती है और चूंकि कौआ अपने अण्डो को अकेला नही छोडता और नर या मादा कोई न कोई अण्डा पर बैठा ही रहता है इससे कोयल को उसे धोखा देना पडता है। नर कोयल जिसकी शकल कौए जैसी होती है घोसले के पास जाकर इतना उत्पात मचाता है कि वहाँ के सब कौए जिनमे अण्डा सेनेवाली मादा भी रहती है उसे खदेड लेते है। वह भागता है और तेज़ उडने के कारण कौओ की पकडाई में न आकर उनको इधर-उधर दौडाता रहता है और तब तक मादा घोसले में जाकर कौए के अण्डे को गिराकर स्वय अण्डे दे देती है। अण्डा फूटने और बच्चो के बड होने पर कही जाकर असली भेद खलता है और तब वे कौए के घोसले से खदेड दिये जाते है।

इनके अण्डा का रग नीलापन लिए हरा होता है जिस पर कत्थई चित्तियाँ पडी

पपीहा

(HAWK CUCKOO)

कोयल की तरह पपीहा भी हमारा बहुत परिचित पक्षी है, जिसे पेड़ों पर रहने के कारण हमने भले ही न देखा हो, लेकिन इसकी 'पी कहाँ, पी कहाँ' की तेज़ बोली हम सबने सुनी होगी।

कोयल की तरह यह भी यहाँ का बारहमासी पक्षी है जो जाड़ों में दक्खिन की ओर चला जाता है। कुछ पपीहे यहाँ हमारे प्रान्त में रह भी जाते हैं, पर चूँकि ये ज्यादातर पेड़ों पर ही रहते हैं इससे हम लोग इन्हें नहीं देखते और देखते भी होंगे तो इनको शिकरा समझकर न पहचानते होंगे। पपीहे के नर-मादा एक-जैसे होते हैं और इनकी शकल-सूरत शिकरे से बहुत मिलती-जुलती होती है। हाँ, लम्बाई में १५-१६ इंच के होने के कारण ये उसके बच्चे जान पड़ते हैं।

पपीहा

पपीहे के डैने और ऊपरी हिस्से का रंग हलका सिलेटी भूरा होता है, जिस पर दुम के पास से चलकर कुछ छोटी-छोटी सफेद धारियाँ रहती हैं। इसकी दुम लम्बी होती है जिसके बीच में दो-चार काली और सफेद आड़ी पट्टियाँ और छोर पर एक सफेद धारी रहती है। इसकी चोंच से लेकर सीने तक सफेदी लिये हुए हलका सिलेटी रंग रहता है जिसमें पेट के पास भूरी धारियाँ रहती हैं।

इसकी चोंच हरापन लिये पीली होती है जिसका आगे का हिस्सा काला रहता है। टाँगें भी पीली ही होती हैं।

पपीहा वैसे तो फल खानेवाला पक्षी है लेकिन कीड़े-मकोड़ों से भी इसे परहेज नहीं है। यह रोएँदार जुरई को बड़े स्वाद से खाता है, जिसे बहुत चिड़ियाँ शायद खाना पसन्द न करें।

इसके अण्डे देने का समय अप्रैल से जून है जब कोयल की तरह यह भी स्वयं अण्डे न सेकर दूसरों से ही यह काम लेता है। कोयल को तो कौए जैसे मक्कार पक्षी को धोखा देना पड़ता है पर इसको यह दिक्कत नहीं उठानी पड़ती। यह चरखी-जैसी सीधी चिड़िया से यह काम लेता है। चरखी को पता भी नहीं चलता और इसकी मादा उसके अण्डों के पास अण्डे दे आती है। अण्डे फूटने के बाद भी चरखी को पता नहीं चलता और वह इसके बच्चों को पाल-पोसकर बड़ा कर देती है।

पपीहे के अण्डे चरखी की तरह नीले रंग के होते हैं पर नाप में ये उससे कुछ बड़े रहते हैं।

कुक्कू

(CUCKOO)

कुक्कू हमारे यहाँ का बहुत प्रसिद्ध पहाड़ी पक्षी है, लेकिन हिमालय का निवासी होने के कारण हम मैदानों में इसे बहुत कम देख पाते हैं। इसके भाई-बन्धु कोयल और पपीहा तो समय आने पर हमें मैदानों में अपनी मीठी बोली सुना जाते हैं और महोख तो हमारे गाँव की चिड़िया बन गयी है लेकिन कुक्कू मैदान की ओर सिर्फ मध्य प्रदेश तक ही पहुँच पाती है। यह भी जाड़ों में अन्य मौसमी पक्षियों की तरह दूसरे देशों से हमारे यहाँ आया करती है।

कुक्कू की कई जातियाँ हमारे यहाँ पायी जाती हैं लेकिन इसमें एक तो हमारी प्रसिद्ध कुक्कू है जो हमारे यहाँ जाड़ों में बाहर से या हिमालय के उत्तरी भाग से मध्य भारत तक फैल जाती है और दूसरी यहाँ की बारहमासी कुक्कू (Indian Cuckoo) काफल पाक्को के नाम से हमारे यहाँ प्रसिद्ध है। दोनों का रंग और स्वभाव करीब करीब एक-जैसा ही रहता है लेकिन काफल पाक्को कद में कुक्कू से कुछ छोटी होती है।

कुक्कू १३ इंच की मझोले कद की चिड़िया है जिसके नर-मादा के रंग में थोड़ा ही भेद रहता है । नर के शरीर का ऊपरी भाग राख के रंग का रहता है। इसके डैने भूरे होते हैं जिनमें एक प्रकार की चमक रहती है और ऊपर सफेद पटरियाँ पड़ी रहती हैं। गला, ठुड्ढी और सीना हलका राखी रहता है और बाकी नीचे का कुल हिस्सा सफेद रहता है जिस पर पतली काली लकीरें पड़ी रहती हैं।

कुक्कू

मादा के शरीर के निचले हिस्से की लकीरें काली न होकर भूरी रहती हैं और उसका रंग नर से कुछ हलका रहता है। दोनों की चोंच गाढ़ी भूरी और पैर पीले होते हैं ।

कुक्कू कोयल और पपीहे की तरह बहुत शरमीली चिड़िया है जो अपना सारा समय पेड़ों पर ही बिताना पसन्द करती है, लेकिन इसकी 'कू कू कू कू कू' अथवा काफल-पाक्को की 'ओ ओ ओ' की परिचित बोली से इसको पहचानने में देर नहीं लगती। जिस प्रकार कोयल हमारे यहाँ बहुत प्रसिद्ध है उसी प्रकार यूरोप आदि देशों में कुक्कू ने साहित्य में अमरता प्राप्त कर ली है।

इसकी, दूसरे पक्षियों के घोंसले में अण्डा देने की, आदत का विवरण कोयल के वर्णन के साथ दिया गया है, जो पक्षि-जगत में अपने ढंग का अनोखा है। यह पारी-पारी से चरखी आदि के घोंसलों में बीस तक अण्डे दे आती है जहाँ से इसके परभृति-

जीवी बच्चे बड़े होकर अपना स्वतन्त्र जीवन बिताने के लिए मुक्त आकाश में उड़ जाते हैं।

इसके अण्डे सफेद प्याजी या पत्थरी रंग के होते हैं जिनपर ललछौंह बैंगनी या काली चित्तियाँ पड़ी रहती हैं।

महोख
(CROW PHEASANT)

कोयल और पपीहे का भाई बिरादरी होकर भी महोख शक्ल-सूरत में उनसे भिन्न होता है। यह हमारा बहुत परिचित और ढीठ पक्षी है और इसे अपने बाग-बगीचों में देखना बहुत ही आसान है। यही नहीं, यह बस्ती के आसपास सड़क के किनारे सूखती हुई तलैयों में, अमराइयों और बँसवाड़ियों में जरूर दिखाई पड़ेगा। यह कीड़े-मकोड़े खानेवाला गंदा पक्षी है, जो बारहों महीने यहीं रहता है। यह कीड़े ही नहीं छोटे-मोटे साँप भी खा लेता है।

इसके बोलने का समय रात का पिछला पहर है जब एक महोख के बोलते ही आस-पास के सब महोख बोलने लगते हैं। गाँव के लोग इसकी बोली से सवेरा होने का अन्दाजा कर लेते हैं।

महोख

महोख लगभग २० इंच लम्बा पक्षी है जिसके नर और मादा की शकल एक-जैसी होती है। गहरे खैरे डैनों को छोड़कर इसका सारा बदन काला होता है। इसकी

दुम कद से बड़ी, डैने कद में छोटे और चोंच बाज की तरह टेढ़ी होती है। चोंच और पैर काले रहते हैं।

महोख के अण्डे देने का समय जून से सितम्बर तक है। जोड़ा बांधने से पहले नर महोख मादा को खुश करने के लिए अपनी लम्बी पूंछ फैलाकर नाचता है। इसके बाद जोड़ा बांधने पर दोनों घोंसला बनाने में लग जाते हैं। इनका घोंसला अक्सर गोल गुम्बज की शकल का होता है जिसमें बगल से घुसने का रास्ता बना रहता है। कद में यह काफी बड़ा होता है, इसी से अण्डा सेते समय मादा की दुम घोंसले से बाहर निकली रहती है। इसके अण्डे धुर सफेद रहते हैं।

शुक उपवर्ग

(SUB ORDER PSITTACI)

तोतों को भला कौन नहीं पहचानता ? ये अपनी टेढ़ी और मजबूत चोंच के लिए प्रसिद्ध हैं। इनकी सैकड़ों जातियाँ संसार में फैली हैं जो अपनी रंगीन पोशाक के लिए विख्यात हैं।

तोते बड़े, छोटे सभी कद के होते हैं, लेकिन हमारे यहाँ तो छोटे ही कद के तोते पाये जाते हैं, जिनका रंग प्रायः हरा रहता है।

इनका मुख्य भोजन फल-फूल, गल्ला और बीज हैं, लेकिन कुछ कीड़े-मकोड़े और छिपकली आदि भी खाते हैं।

ये अक्सर झुंड में रहते हैं और अपने अण्डे किसी पेड़ के खोये में, या पहाड़ की दराज में देते हैं।

इनके वैसे कई परिवार हैं, लेकिन हमारे यहाँ केवल शुक-परिवार के ही पक्षी पाये जाते हैं।

शुक-परिवार

(FAMILY PSITTACIDAE)

इस परिवार के पक्षियों की विशेषताओं का वर्णन ऊपर हो ही चुका है। हमारे यहाँ जो दो प्रसिद्ध तोते पाये जाते हैं उन्हीं का वर्णन यहाँ दिया जा रहा है।

तोते

(PARROTS)

ऐसा कौन है जो तोते को न पहचानता हो ? पालतू चिडियो में सबसे ज्यादा इसी को पिंजडे में बन्द रहना पडता है, लेकिन इसके लिए लोहे के पिंजडो की जरूरत पडती है, नही तो ये अपनी तेज चोच से उसे काटकर फौरन उड जायँ ।

हमारे यहाँ वैसे तो कई तोते पाये जाते हैं लेकिन उनमे हरा या ढेल्हरा तोता (Green Parakeet) तथा टुइयाँ तोता (Blossom Headed Parakeet) प्रसिद्ध हैं । यहाँ इन्हीं दोनो का वर्णन दिया जा रहा है। हम पहले हरे या ढेल्हरा तोते को ही लेते हैं।

तोता (ढेलहरा)

ढेल्हरा तोता मय अपनी लम्बी दुम के कद में १६ इच का होता है । इसके नर के ऊपरी हिस्से का रग चमकीला हरा रहता है जो गरदन तक पहुँचकर धानी हो जाता है। डैने गहरे हरे और दुम के बीच के पर आसमानी और बाकी धानी होते हैं।

गरदन के ऊपरी हिस्से में एक कंठानुमा लाल पट्टी रहती है और निचली चोंच और इस कंठ तक दोनों गालों पर चन्द्राकार काली धारियां रहती हैं। निचला हिस्सा भी धानी ही होता है। मादा भी करीव-करीव इसी रंग की होती है, लेकिन उसका गुलावी कंठा और गाल की काली लकीरें गाढ़े हरे रंग में वदल जाती हैं।

दोनों की चोंच लाल और पैर हरापन लिये हलके सिलेटी रंग के होते हैं।

तोते की ऊपर की चोंच वहुत टेढ़ी होती है जो निचली चोंच पर काफी ऊपर तक चढ़ी रहती है।

ढेलहरा या हरा तोता यहाँ का वारहमासी पक्षी है जो गरोह में ही रहता है और वसेरा करता है। फल और खेतों की वाल पर जो इनके हमलों को जानते हैं उनसे इनकी खूराक के वारे में वताने की ज्यादा जरूरत नहीं। ये इतनी तेजी से उड़ते हैं कि इनकी लम्वी दुम किसी प्रकार इसमें वाधा नहीं डाल सकती। वैसे तो इनकी वोली वड़ी कर्कश होती है, पर पढ़ाने से ये शरारती होते हुए भी वहुत जल्द पढ़ जाते हैं और आदमियों की वोली की नकल करने लगते हैं।

तोते घोंसले नहीं वनाते। इनकी मादा पेड़ के खोथों में चार से छः तक अण्डे देती है जो धुर सफेद रहते हैं। खोथे न मिलने पर इन्हें अपनी तेज चोंच का सहारा लेना पड़ता है और तव ये कठफोर की तरह पेड़ के तनों को छेदकर सूराख वना लेते हैं।

टुइयाँ तोता

टुइयाँ तोता (Blossom headed Parakeet) हरे तोते से कुछ छोटा होता

है पर इसकी शक्ल-सूरत और बाकी सब आदतें एक-जैसी होती हैं। दोनों के रंग में फर्क जरूर रहता है। इसके नर का सिर बैंगनी लिये हुए लाल होता है जैसे अधपकी जामुन। इसके बाद ही गरदन के चारों ओर एक काला कंठा रहता है और उसके बाद से चटक हरा रंग शुरू होता है जो दुम तक चला जाता है। निचला हिस्सा धानी और डैने गाढ़े हरे होते हैं जिन पर दोनों ओर एक-एक लाल चित्ती रहती है। मादा के गले के कंठे का रंग पीला होता है और उसका सिर जामुन के रंग का न होकर कुछ बैंगनीपन लिये हुए ऊदी रंग का होता है।

इनकी ऊपरी चोंच नारंगी और नीचे की कल्छौंह रहती है। पैर धुमैले हरे रंग के होते हैं।

कीटभक्षी वर्ग

(ORDER CORACIIFORMES)

कीट-पतिंगे खानेवाले पक्षियों का यह वर्ग भी काफी बड़ा है जिसमें सब प्रकार के कीटभोजी पक्षी एकत्र किये गये हैं। इनमें से अलग-अलग पक्षियों के शिकार करने का अलग-अलग ढंग है। कुछ आकाश में उड़ते ही उड़ते कीड़े-पतिंगे पकड़ लेते हैं, तो कुछ हवा में एक ही जगह पर काफी देर तक उड़ते रहकर शिकार पर टूट पड़ते हैं, कुछ जमीन पर चलकर घास-फूस से कीड़े पकड़ते हैं तो कुछ रात में इधर-उधर उड़कर या जमीन पर बैठकर ही अपना शिकार कर लेते हैं।

इनमें से कुछ को रंगीन पोशाक मिली है तो कुछ को इतने मुलायम पर मिले हैं कि रात में बिलकुल निकट से उड़ जाने पर भी उनके पंख की आवाज हम नहीं सुन सकते। कुछ को लम्बे डैने मिले हैं ताकि वे दिन भर अबाबील की तरह हवा में उड़ते रहें और कुछ को बिल्लियों जैसी बड़ी आँखें मिली हैं जिससे रात में थोड़ी रोशनी में भी काफी आसानी से उड़ने में समर्थ हो सकें।

वैसे तो इन पक्षियों को कई उपवर्गों में बाँटा गया है, लेकिन यहाँ निम्नलिखित छ उपवर्गों का वर्णन किया जा रहा है जिनमें हमारे यहाँ के सब कीटभक्षी पक्षी आ जाते हैं।

१ नीलकंठ उपवर्ग—Sub Order Coraciae

२ कौड़िल्ला उपवर्ग—Sub Order Halcyones

फुदकी तथा नीलकंठ
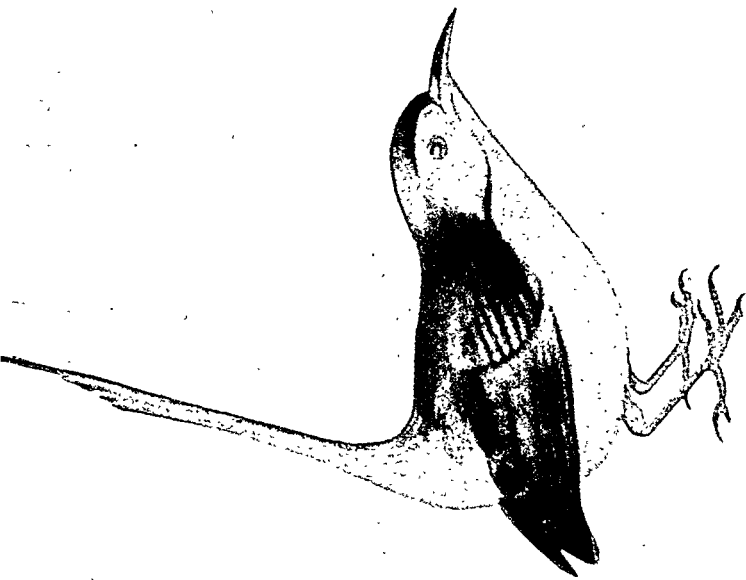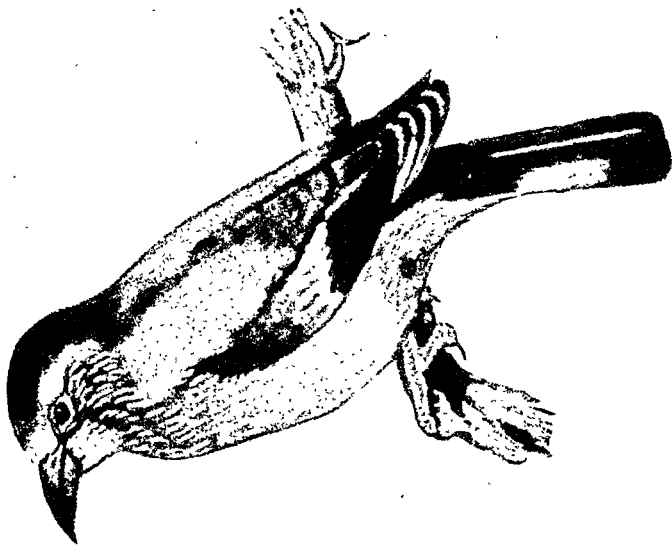
३. उल्लू उपवर्ग—Sub Order Striges

४. छपका उपवर्ग—Sub Order Caprimulgi

५. बतासी उपवर्ग—Sub Order Cypseli

६. कठफोर उपवर्ग—Sub Order Pici

अब इनमें से प्रत्येक उपवर्ग का अलग-अलग वर्णन दिया जा रहा है।

नीलकंठ उपवर्ग

(SUB ORDER CORACIAE)

इस उपवर्ग के प्रसिद्ध नीलकंठ हमारे परिचित पक्षी हैं। ये कीटभक्षी पक्षी हैं जो काफी शोर मचाते हैं। ये प्रायः किसी पेड़ की डाली पर बैठे रहते हैं जहाँ से हवा में उड़कर कीड़े-पतिंगे को ऊपर ही पकड़कर फिर उसी जगह लौट आते हैं।

जोड़ा बाँधने के समय ये मादा को रिझाने के लिए हवा में उड़कर दो-दो तीन-तीन गिरह लगाते हैं। प्रकृति ने इन्हें बड़ी सुन्दर और भड़कीली पोशाक दी है जिसमें नीले, हरे, भूरे और काले रंग की बहुतायत रहती है। ये घोंसला बहुत कम बनाते हैं और प्रायः किसी सूराख में घास-फूस रखकर अण्डे देते हैं। इस उपवर्ग में केवल एक नीलकंठ-परिवार के पक्षी यहाँ पाये जाते हैं।

नीलकंठ-परिवार

(FAMILY CORACIDAE)

नीलकंठ-परिवार में केवल नीलकंठ ही हमारे देश में पाया जाता है। इसका काफी वर्णन इसके उपवर्ग के साथ आ ही चुका है। जो बातें रह गयी हैं वे आगे नीलकंठ के वर्णन के साथ दी जायँगी।

नीलकंठ

(INDIAN ROLLER)

नीलकंठ हमारा बहुत परिचित पक्षी है जो हमारे देश में प्रायः सभी जगह पाया जाता है। हमारे देश में त्योहारों आदि के दिन इसका दर्शन बहुत शुभ माना जाता है।

नीलकंठ मैदान में रहनेवाली हमारी बारहमासी चिड़ियों में से एक है जो कीड़ो-मकोड़ो की तलाश में दिन भर खेतों में घूमा करता है। इसे हम खुले मैदानों में, गाँव और बस्तियों के आस-पास, रोज ही देखते रहते हैं। यह देखने में तो काहिल और सुस्त-सा जान पड़ता है, लेकिन इसमें इतनी तेजी होती है कि जैसे ही कोई कीड़ा जमीन पर दिखाई पड़ता है यह उसे फौरन कूदकर पकड़ लेता है।

नीलकंठ

इसके नर और मादा एक शक्ल के होते हैं। इसके सिर के बीच में एक आसमानी चित्ती होती है। इसके बाद पीठ तक भूरा रंग चला आता है। फिर हरी और आसमानी हलकी और गहरी नीली लकीरें रहती हैं। डैने और दुम की भी यही हालत रहती है। आगे आसमानी, फिर हल्की नीली और बाद को गहरी नीली हो जाती है। दुम के बीच के दो पर गंदे हरे रंग के होते हैं और सीना ललछौंह कत्थई रंग का होता है जिसमें छोटी छोटी खड़ी धारियाँ पड़ी रहती हैं। पेट का रंग बादामी और दुम के नीचे फिर आसमानी रंग आ जाता है।

इसकी चोंच कालापन लिये गहरी भूरी और टाँगें गहरी बादामी रंग की होती हैं।

इसके जोड़ा बांधने का ढंग भी मजे का है। कुछ अन्य चिड़ियों की भांति नर नीलकंठ मादा को खुश रखने के लिए उनके आगे अपना करतब दिखाता है। पहले वह ऊपर उड़ जाता है, फिर नीचेकी ओर ऐसे गिरता है मानो मर गया हो, पर जमीन पर आने से पहले ही वह संभलकर ऊपर उड़ जाता है। इस प्रकार यह मादा को खुश करके जोड़ा बांध लेता है और तब दोनों घोंसला बनाने की फिक्र में लग जाते हैं।

इसके अण्डा देने का समय मार्च से जुलाई तक है, जब मादा किसी पेड़ के खोंधे में चार-पाँच चीनी मिट्टी के रंग के सफेद अण्डे देती है।

कौड़िल्ला उपवर्ग

(SUB ORDER HALCYONES)

इस उपवर्ग के पक्षियों की चोंच लम्बी और नोकीली रहती है। इनके पैर छोटे होते हैं और पैरों की उँगलियाँ पतली होती हैं। ये सब मांसाहारी पक्षी हैं जिनकी खुराक में कीड़े-मकोड़े, छिपकलियाँ, मछली, कटुए तथा इसी प्रकार के अन्य जीव-जन्तु हैं।

यह उपवर्ग चार परिवारों में इस प्रकार बँटा है—

१. कौड़िल्ला-परिवार—Family Alcedinidae
२. पतेना-परिवार—Family Meropidae
३. हुदहुद-परिवार—Family Upupidae
४. धनेश-परिवार—Family Bucerotidae

आगे इनका अलग-अलग वर्णन दिया जा रहा है।

कौड़िल्ला-परिवार

(FAMILY ALCEDINIDAE)

इस परिवार में सब तरह के कौड़िल्ले रखे गये हैं जो अपनी सुन्दर पोशाक के लिए बहुत प्रसिद्ध हैं। इनकी चोंच लम्बी और नोकीली रहती है जिससे इन्हें मछली पकड़ने में बड़ी आसानी हो जाती है। ये बड़े शिकारी पक्षी हैं जो पानी के ऊपर हवा में एक जगह काफी देर तक पंख मारकर ठहरे रहते हैं और नीचे पानी में मछली को देखते ही उस पर कूद पड़ते हैं।

ये घोसले नही बनाते बल्कि भीटो मे अपना लम्बा सुरग-जैसा बिल खोद लेते हैं। इनका मुख्य भोजन मछली, कटुए आदि है।

कौडिल्ले

(KING FISHERS)

कौडिल्ले उन चिडियो में से एक है जिन्हें प्रकृति ने सुन्दर पोशाक दी है। इन्हें छोटे-बडे जलाशयो के निकट बडी आसानी से देखा जा सकता है।

कौडिल्ला ताल या नदी के किनारे पानी की सतह से १५-२० फुट ऊपर एक जगह पर स्थिर होकर उडता रहता है और नीचे मछली को देखकर अपना बदन ढीला करके यह इस तरह पानी में गिरता है कि जान पडता है जैसे मरकर गिरा हो, पर दूसरे ही क्षण हम इसे चोंच में मछली दाबे किलकिल करते हुए उडते देखते हैं। यही इसके शिकार करने का तरीका है जिसे एक बार देख लेने पर इस शिकारी पक्षी को फिर कभी भूला नही जा सकता।

कौडिल्ला

कौडिल्ला की तीन मुख्य जातियाँ यहाँ होती हैं—कौडिल्ला, कौडिल्ली तथा किलकिला।

कौडिल्ला हमारे यहाँ का बारहमासी पक्षी है जो पानी के करीब रहता है। इसकी चोंच लम्बी और नोकीली होती है जिससे मछली फिर छूटकर जा न सके। इसके पैर छोटे होते हैं क्योंकि इसे दिन भर उडने के सिवा उनसे काम लेने की फुरसत

ही नहीं मिलती। यह १२ इंच का सुन्दर चितकबरा पक्षी है जिसके सारे बदन में सफेद और काली धारियाँ, पट्टियाँ और चिह्न रहते हैं। इसका निचला हिस्सा जरूर सफेद रहता है, पर सीना दो-एक काली पट्टियों से नहीं बचता।

इसकी चोंच और पैर काले होते हैं और अण्डे धुर सफेद रहते हैं।

कौड़िल्लो छोटी होती है। सात इंच की इस छोटी चिड़िया में रंग की कमी नहीं रहती। इसका ऊपरी हिस्सा नीला, गला सफेद तथा निचला हिस्सा बादामी रहता है। गाल और दुम के बगल में कुछ कत्थई रंग भी रहता है। इसकी चोंच काली और पैर धूमिल लाल होते हैं। अण्डों का रंग सफेद रहता है। ये दोनों जातियाँ मछलियों से ही अपना पेट भरती हैं।
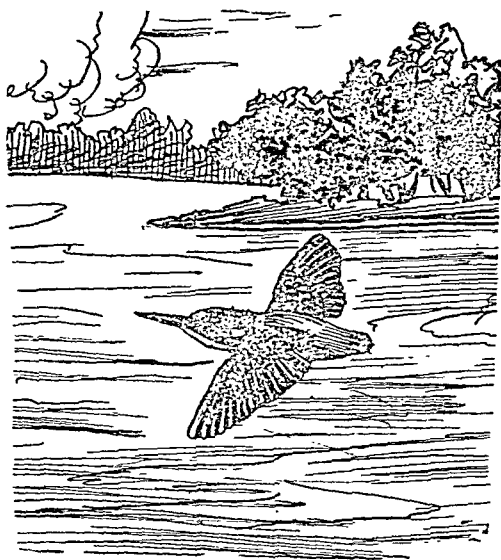
कौड़िल्ले घोंसले नहीं बनाते बल्कि मिट्टी के भीटों में पतेना की तरह लम्बा बिल खोद लेते हैं जिसमें मादा पाँच-सात दूध-से सफेद अण्डे देती है। अण्डे देने का समय मार्च से जून तक रहता है।

कौड़िल्ली

किलकिला का ढंग ही कुछ दूसरा है। वह इन दोनों की तरह न तो हवा में शिकार के लिए एक स्थान पर उड़ता है और न इसका मुख्य भोजन ही मछली है। यह तो किसी पेड़ की डाल पर बैठा रहता है और जहाँ कोई शिकार दीखा नहीं कि यह नीलकंठ की तरह नीचे टूट पड़ता है और उसे चट कर जाता है। लम्बाई में यह कौड़िल्ले से कुछ छोटा होता है, पर रंग में उससे कहीं चटकीला होता है। इसका सिर, गरदन और निचला हिस्सा कत्थई रंग का होता है जिसमें गले से सीने तक एक

बड़ा चित्ता पड़ा रहता है। बाकी ऊपर का हिस्सा नीला और डैने के सिरे काले रहते हैं।
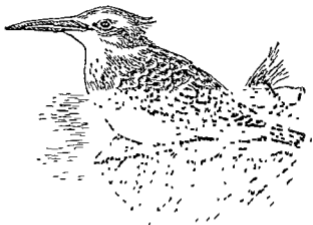
किलकिला

इसकी चोंच और पैर धूमिल लाल रंग के होते हैं।

पतेना-परिवार

(FAMILY MEROPIDAE)

इस परिवार में सब प्रकार के पतेने एकत्र किये गये हैं जो अपनी हरी और नीली पोशाक के कारण हवा में उड़ते समय भी पहचाने जा सकते हैं।

इनका मुख्य भोजन कीड़े-मकोड़े हैं जिन्हें ये एक जगह से उड़कर हवा में ही पकड़ लेते हैं और कौड़िल्ले या मछमरनी की तरह उनको खाने के लिए अपने स्थान पर आ बैठते हैं।

इनकी चोंच लम्बी और नोकीली होती है लेकिन वह कौड़िल्ले की तरह एकदम सीधी न होकर कुछ खमदार रहती है।

ये अक्सर झुंड में रहते हैं और घने और सायेदार स्थान इन्हें ज्यादा पसन्द हैं। कौड़िल्ले की तरह ये भी अण्डे देने के लिए भीटों में बिल खोदते हैं जिनके सिरे पर कुछ घास-फूस रखकर ये अण्डे देते हैं।

पतेना

(BEE EATER)

पतेना हरे रंग की पतली-सी चिड़िया है जो दिन भर अबाबील की तरह हवा में उड़ा करती है। यह हमारे देश में प्रायः सभी स्थानों पर पायी जाती है। हिमालय पर भी यह पांच हजार फुट की ऊंचाई तक देखी जा सकती है।

पतेना को जंगल, मैदान तथा बाग-बगीचे आदि सभी ऐसी जगहें पसन्द हैं जहां कीड़ों की बहुतायत रहती है। वहीं यह अपने छोटे-छोटे पंख फैलाये पतिंगों की फिराक में उड़ा करती है। इसके अलावा इसे हम नहर और नदी के किनारे भी अक्सर देख सकते हैं।

यह यहाँ की बारहमासी सुन्दर चिड़िया है जो जाड़े में यहाँ थोड़ा-सा स्थान परिवर्तन कर लेती है। इसका मुख्य भोजन पतिंगे हैं जिनका यह उड़ते ही उड़ते शिकार कर लेती है।
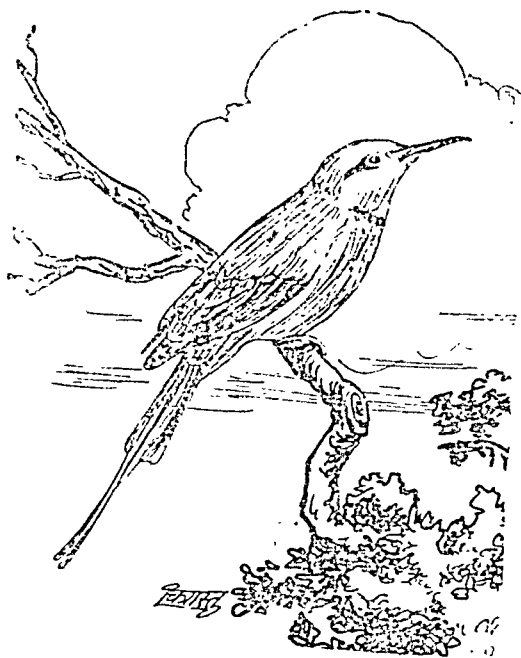
पतेना

पतेना के नर-मादा एक-जैसे होते हैं। वैसे तो इसकी लम्बाई सात ही इंच की होती है, पर अपनी दुम के बीच के दो पतले लम्बे पंखों को लेकर यह नौ इंच की हो जाती है। इसका समूचा रंग चटक हरा होता है जिसमें चोंच के नीचे से लेकर गले का निचला हिस्सा नीला रहता है। उसके आगे फिर एक काला कंठा होता है और चोंच की जड़ से आँख पर होते हुए एक काली लकीर चली जाती है। गरदन के दोनों बगल, थोड़ा-थोड़ा डैने के ऊपर का कुछ और नीचे का समूचा हिस्सा सुनहला रहता है।

दुम के बीच के दोनों पतले पर वाले होते हैं। इनकी चोंच काली और पैर गहरे मिलेटी रंग के होते हैं। चोंच लम्बी नोकीली और नीचे की ओर कुछ झुकी हुई रहती है।

पतेना खुद तो अक्सर गोल बांधकर पेड़ पर बसेरा लेती है, पर अण्डा देने के लिए यह अपनी नोकीली चोंच से मिट्टी खोदकर कगारों में सूराख बना लेती है। ये बिल पाँच-छः फुट तक गहरे होते हैं। साथ ही साथ ये भीतर जाकर टेढ़े भी हो जाते हैं। इन्हें दरिया के किनारे ऊँचे कगारों में बड़ी आसानी से देखा जा सकता है।

बिलों के भीतर जमीन पर ही मादा अप्रैल से जून तक तीन से लेकर पाँच तक दूध-से सफेद अण्डे देती है जिन पर किसी किस्म की चित्तियाँ नहीं रहतीं।

हुदहुद-परिवार

(FAMILY UPUPIDAE)

हुदहुद परिवार में अकेले हुदहुद ही हैं जिनकी कई जातियाँ हैं। ये पक्षी भी बहुत सुन्दर होते हैं जिनके सिर पर एक कलँगी-सी रहती है जिसे ये अक्सर उठाते-गिराते रहते हैं।

ये कीट-भक्षी पक्षी हैं जो प्रायः जमीन पर ही घूम फिरकर कीड़े-मकोड़े खाते हैं। बड़े कीड़ों को ये जमीन पर पटक-पटककर टुकड़े-टुकड़े कर डालते हैं। फिर उन्हें ऊपर उछालकर निगल जाते हैं।

खतरे को निकट देखकर ये अक्सर जमीन पर पंख फैलाकर लेट जाते हैं, जहाँ इनके शरीर की धारियाँ और भूरा रंग मिट्टी में ऐसा मिल जाता है कि ये निकट जाने पर भी दिखाई नहीं पड़ते।

ये किसी पेड़ के खोंखे में घास फूस रखकर अण्डे देते हैं जो संख्या में आठ-दस तक पहुँच जाते हैं। अण्डा देने पर मादा बराबर अण्डे पर बैठी रहती है और नर बराबर उसे खिलाता रहता है। हमारे यहाँ का प्रसिद्ध हुदहुद, जिसे दुबया या शाह सुलेमान कहते हैं, हमारा बहुत परिचित पक्षी है। यहाँ उसी का वर्णन दिया जा रहा है।

हुदहुद

(HOOPOE)

हुदहुद हमारे यहाँ का बहुत ही प्रसिद्ध और परिचित बारहमासी पक्षी है जो सारे देश में फैला हुआ है। यह हमारे यहाँ के उन सुन्दर पक्षियों में से एक है जो अपनी

भड़कीली पोशाक के कारण दूसरे पक्षियों से अलग ही रहते हैं। इसे गाँव के आस-पास खुले मैदानों में विना किसी कठिनाई के देखा जा सकता है।

हुदहुद के नर और मादा एक शकल के होते हैं। ये लम्बाई में १८ इंच से ज्यादा नहीं होते। दोनों के सिर पर लम्बी चोटी होती है जो जमीन खोदकर कीड़े खाते समय तो दबी रहती है, पर इसके जरा भी चौकन्ना होने पर खुलकर पंखीनुमा हो जाती है। इसकी चोंच भी तेज और नीचे को ओर झुकी हुई रहती है।

हुदहुद

इसका चोटी से लेकर गले तक का रंग हलका बादामी, चोटी के सिरे काले और सफेद तथा आधी पीठ और कन्धे से लेकर सीने तक का हिस्सा ऊदी मिला हुआ हलका बादामी रहता है। इसकी पीठ पर आड़ी-आड़ी सफेद और काली धारियाँ रहती हैं और दुम का भीतरी हिस्सा सफेद और बाहरी काले रंग का होता है।

इनकी चोंच गीग के रग की काली और पैर गाढ़े सिलेटी रंग के होते हैं।

हुदहुद का मुख्य भोजन कीड़े-मकोड़े हैं जिनकी तलाश में यह सदैव इधर-उधर जमीन में घास और दूब आदि खोदा करता है और जरा-सा खटका पाते ही पेड़ पर चला जाता है। उड़ने मे तो यह इतना तेज और गिरहबाज होता है कि इसे आसानी से शिकरा और लगर आदि शिकारी चिड़ियाँ भी नहीं पकड़ सकती।

इतना सुन्दर पक्षी होते हुए भी यह घोंसला बहुत भद्दा बनाता है। किसी अँधेरे खाण्डे, छज्जे या वीरान खँडहर की फर्श पर यह थोड़ा-सा घास-फूस और पत्ते वगैरह रखकर अपना घोंसला बनाने से छुट्टी ले लेता है। मादा इसी पर तीन से दस तक अण्डे देती है जिनको छोड़कर फिर वह उनके फूटने तक हटती नहीं। नर उसको बाहर से ला-लाकर खाना दिया करता है। अण्डे फूटने पर मादा को कहीं छुट्टी मिलती है और तब दोनों बच्चों के लिए बाहर से कीड़े-पतिंगे लाते रहते हैं।

इसके अण्डे देने का समय फरवरी से जुलाई तक रहता है, लेकिन इसके घोंसले ज्यादातर अप्रैल और मई में मिलते हैं। इन अण्डों का रंग हलका बादामी और हरापन लिये हलका नीला होता है।

धनेश-परिवार

(FAMILY BUCEROTIDAE)

धनेश अपनी बड़ी और कटावदार चोंच के कारण अन्य पक्षियों से आसानी से पहचाने जा सकते हैं। इनकी बड़ी चोंच अगर भरत् या ठोस होती तो इनका उड़ना मुश्किल हो जाता लेकिन वह भीतर से पोली रहती है और उसमें इतनी हलकी हड्डियाँ रहती हैं कि बड़ी होकर भी भारी नहीं होती। इनकी चोंच के ऊपरी हिस्से पर कभी उभार-सा रहता है तो किसी की बनावट कुछ अजीब-सी रहती है।

ये भारी कद के पक्षी हैं, इससे इनकी उड़ान भी भारी और सुस्त होती है। इनका मुख्य भोजन तो फल फूल है लेकिन ये कीड़े मकोड़े और छोटे-मोटे जीव जन्तु तथा चिड़िया भी खा लेते हैं।

इनके घोंसला बनाने का अजीब तरीका है। मादा अण्डा देने का समय आते ही पेड़ के खोये में घास-फूस और छोटी टहनियाँ रखकर अपना घोंसला बनाती है। अण्डे

देने पर वह उन्हें छोड़कर खोथे के वाहर नहीं जाती और नर उस खोथे का मुँह मिट्टी से वन्द कर देता है। सिर्फ एक छोटा-सा सूराख जरूर छूटा रहता है जिसमें चोंच आ-जा सके और इसी के द्वारा नर मादा को खिलाता रहता है। नर वाहर से भोजन लाकर सीधे मादा को नहीं देता वल्कि उसे वह स्वयं खा लेता है और उसके पेट में वह भोजन कुछ पचने के वाद एक प्रकार की झिल्ली की थैली में वंद हो जाता है। नर इसी थैली को मादा के मुँह में उगल देता है जिसे वह खा लेती है। नर जव तक यह झिल्ली का भोजन वाहर नहीं निकाल देता तव तक वह दूसरा खाना नहीं खा सकता। इस प्रकार की मेहनत करने पर कभी-कभी नर मर तक जाता है।

हमारे यहाँ धनेश की कई जातियाँ पहाड़ी क्षेत्रों में पायी जाती हैं। यहाँ एक का वर्णन दिया जा रहा है।

धनेश

(COM. GREY HORNBILL)

धनेश को उसकी लम्बी और अद्‌भुत वनावटवाली चोंच के कारण वड़ी आसानी से पहचाना जा सकता है। यह वैसे तो पहाड़ी चिड़िया है, लेकिन इसकी एक छोटी जाति सारे देश में फैली हुई है। यहाँ उसी का वर्णन दिया जा रहा है।

धनेश
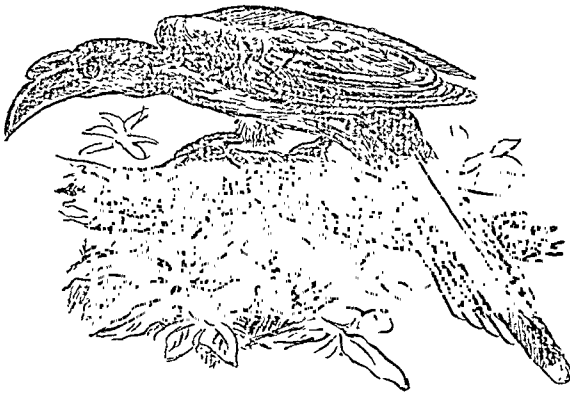
धनेश अपनी लम्बी दुम और चोंच को लेकर लगभग दो फुट लम्बा होता है जिसके नर-मादा एक ही-जैसे होते हैं। यह सिलेटी रंग की चिड़िया है जिसका ऊपरी भाग

गहरा और नीचे का हल्का रहता है। इसके डैने मे भूरापन रहता है और दुम के सिरे सफेद रहते हैं। इसकी लम्बी चोंच काली और पैर गाढ़ सिलेटी रहते हैं। ऊपरी चोंच के ऊपर जड के पास कुछ दूर तक कुछ भाग उठा-सा रहता है।

धनेश हमारे यहा की बारहमासी चिडिया है जो सारे भारत में फैली हुई है। यह पेडो पर रहनेवाला पक्षी है जो जमीन पर कभी नहीं उतरता। यह अक्सर अकेला या जोडे मे दिखाई पडता है और कभी-कभी इनका ५–७ का गरोह भी पीपल, बरगद आदि के पेडो पर चीं-चीं करता हुआ दिखाई पडता है।

धनेश अपनी लम्बी दुम के कारण तेज उड नही पाता और एक पेड से उडकर थोडी ही दूर पर फिर दूसरे पेड पर बैठ जाता है। इसका मुख्य भोजन वैसे तो पीपल, गूलर और बरगद आदि के फल हैं, लेकिन यह टिड्डे आदि बडे कीडे-मकोडो तथा छिपकलियो आदि का भी खाने में नही चूकता।

धनेश के अण्डा देने का समय मार्च से जून तक रहता है जब मादा किसी पेड के खोथे मे दो-तीन सफेद अण्डे देती है। इसकी मादा जब पेड के खोथे में अण्डा देने के लिए बैठती है तो नर खोथे का मुँह मिट्टी से इस प्रकार बन्द कर देता है कि मादा की चोंच भर बाहर निकली रहती है। इस समय नर बाहर से भोजन लाकर मादा को खिलाता रहता है और अपने इस परिश्रम के कारण वह सूखकर काँटा हो जाता है।

उल्लू उपवर्ग

(SUB ORDER STRIGES)

उल्लू रात्रिचारी पक्षी हैं जो अपने ढग के निराले होते हैं। इनकी शक्ल-सूरत अन्य पक्षियों से भिन्न रहती है। इनकी आँख अन्य चिडियो की तरह सिर के दोनो बगल न होकर मनुष्यो की तरह सामने होती है जिससे उल्लू सिर्फ सामने की ही ओर देख सकते हैं। प्रकृति ने इनकी इस कमी को दूर करने के लिए इनकी गरदन ऐसी लचदार बना दी है कि उसे ये दोनो बगल बडी आसानी से घुमा सकते हैं।

उल्लुओं को पहले शिकार के पक्षियो के साथ रखा गया था, लेकिन अब इन्हें अलग करके इनका एक अलग उपवर्ग बना दिया गया है। इनके पर इतने मुलायम होते हैं कि रात में उडते समय बिलकुल आवाज नही होती। ये प्राय चितले रग के रहते हैं लेकिन बरफ पर रहनेवाले उल्लू अक्सर सफेद होते हैं।

उल्लू मांसाहारी पक्षी है जो कीड़े-मकोड़े, मछली, चिड़िया, छिपकली तथा चूहे-गिलहरी आदि अन्य छोटे-मोटे जीव-जन्तुओं से अपना पेट भरते है। इनके पंजे बहुत मजबूत और चोंच तेज और टेढ़ी होती है।

उल्लू घोंसले के मामले में बिलकुल लापरवाह होते है। कुछ जमीन पर ही घास और तिनके रखकर अण्डा दे देते है तो कुछ किसी पेड़ के खोखे और सूराख में घास-फूस रखकर अण्डे देते हैं। कुछ ऐसे भी हैं जो कौए के पुराने घोंसले को अपना लेते हैं जिसमें मादा समय आने पर कई अण्डे देती है।

उल्लू की अनेक जातियाँ सारे संसार में फैली हुई हैं। हमारे यहाँ भी बहुत तरह के उल्लू पाये जाते हैं, लेकिन वे सब एक ही परिवार में रखे गये है जो उल्लू-परिवार कहलाता है।

उल्लू-परिवार
(FAMILY ASIONIDAE)

उल्लू-परिवार काफी बड़ा है जिसमें छोटे और बड़े सभी तरह के उल्लू शामिल हैं। ये रात्रिचारी पक्षी हैं जो अपनी आँख और गोल चेहरे के लिए प्रसिद्ध हैं। इनके पर बहुत मुलायम होते हैं जिससे रात में उड़ते समय आवाज़ नहीं होती।

ये बहुत कम रोशनी में भी देख लेते हैं, इससे इन्हें रात में उड़कर शिकार करने में दिक्कत नहीं होती।

ये सब मांसाहारी पक्षी हैं जिन्हें सर्वभक्षी कहा जा सकता है। इनकी अनेक जातियाँ हमारे देश में हैं, लेकिन यहाँ उनमे से कुछ प्रसिद्ध उल्लुओं का ही वर्णन दिया जा रहा है।

उल्लू
(OWLS)

उल्लू अपने ढंग के निराले पक्षी हैं जो दिन के बजाय रात को बाहर निकलते हैं जब और सब चिड़ियाँ बसेरा ले लेती हैं। इनके पर इतने मुलायम होते हैं कि रात में उड़ते समय जरा भी आवाज नहीं होती, नहीं तो इन्हें अपना शिकार पकड़ने में इतनी आसानी न रहती।

उल्लू बड़े और छोटे सभी तरह के होते हैं और इनकी कई जातियाँ इस देश में पायी जाती हैं। हमारे यहाँ बड़े उल्लुओं की दो मुख्य जातियाँ हैं—एक पानी के करीब रहनेवाले मुआ और दूसरे खंडहरों और पुराने पेड़ों पर रहनेवाले घुघ्घू।

उल्लू (मुआ)

मुआ का कद २२ इंच का होता है जिसके नर और मादा एक शकल के होते हैं। दूसरे उल्लुओं से इसका सिर बड़ा होता है। इसके ऊपर के पर कत्थई, डैने भूरे जिन पर सफेद और काले मेहर जैसे निशान, दुम गहरी भूरी जिसके सिरे पर सफेदीपन लिये भूरे रंग की धारी और गला सफेद होता है। इसके नीचे के रंग में सफेदी का हिस्सा

ज्यादा होता है जिसमें गहरे भूरे रंग के छोटे चिह्न पड़े रहते हैं। इसकी चोंच टेढ़ी

उल्लू (घुग्घू)

और गहरी गंदी हरी तथा पैर धूमिल पीले रंग के होते हैं। यह यहाँ का बारहमासी
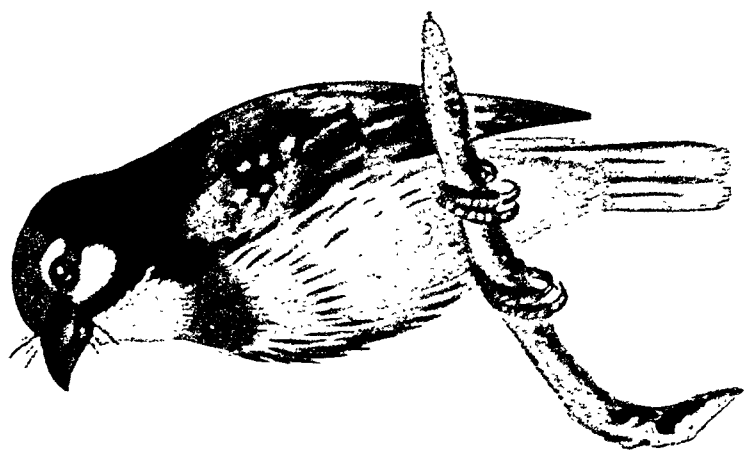
अपना काम चला लेता है। घोंसला भीतर से घास-फूस से मुलायम कर दिया जाता है जिसमें मादा दो सफेद अण्डे देती है।

खूसट
(OWLET)

खूसट ८ इंच का छोटा-सा चितकबरा पक्षी है जिसके नर-मादा एक ही रंग-रूप के होते हैं। इसका ऊपरी हिस्सा, डैने और दुम भूरी होती है जिस पर सफेद आड़ी-आड़ी लकीरें रहती हैं। नीचे का हिस्सा सफेद होता है, जिस पर भूरी आड़ी-आड़ी लकीरें रहती हैं। इसका सिर और आँखें बड़ी होती हैं और इसकी चोंच की जड़ से आँख के ऊपर तक सफेद रंग की भौं-सी बनी रहती है।

खूसट उल्लू

इसकी चोंच और पैर पीलापन लिये हरे रहते हैं। खूसट यहाँ का बारहमासी पक्षी है जो बड़ा ढीठ होता है। पुराने मकानों के सूराखों में चार-पाँच खूसट एक साथ रह लेते हैं, पर अण्डा देने का समय आने पर ये अक्सर जोड़ा बाँधकर रहने लगते हैं। इनके अण्डा देने का समय फरवरी से मई तक है जब मादा खूसट उसी सूराख में थोड़े से पंख या घास-फूस रखकर ३ से ६ तक अण्डे देती है। ये अण्डे दूध से सफेद होते हैं।

करैल या रुस्तक
(BARN OWL)

करैल छोटे कद का उल्लू है जिसका पान की शकल का, मसखरों-जैसा, चेहरा जिसने एक बार भी देख लिया है वह इसे भूल नहीं सकता।

करैल को कही-कही रसतक भी कहते है। यह हमारे देश में प्राय सभी स्थानो पर पाया जाता है। इसे पुरानी इमारतो और खँडहरो में सूर्यास्त के बाद देखना कठिन नही होता। यह काफी ढीठ उल्लू है और अक्सर मकानो और पास के पेडो पर निडर होकर बैठा रहता है।

करैल या रसतक

करैल भी खूसट की तरह आठ इच का छोटा उल्लू है जिसके नर-मादा एक ही रग रूप के होते है। इसका बदर जैसा चेहरा गदे सफेद रग का होता है जिसके चारो ओर भूरा हाशिया रहता है। इसके शरीर का ऊपरी हिस्सा सुनहला, भूरा और नीचे का सदलीमायल सफेद रहता है। पीठ पर और बगल मे तितरी बितरी चित्तियाँ पडी रहती है। चोच और पैर प्याजी रग के रहते है।

करैल किसानो का मित्र पक्षी है जो उनको अनजाने ही बहुत लाभ पहुँचाता है। यह चूहो को पकडने मे बिल्लियो की तरह उस्ताद होता है और खेत तथा गल्ला-गुदामो के निकट इसके रहने से चूहो की सख्या बहुत कम हो जाती है।

इसके जोडा बाँधने का समय बारहो महीने रहता है। मादा समय आने पर किसी दीवार के सूराख में घास-फूस रखकर पाँच से सात तक अण्डे देती है, जो एकदम सफेद रहते है।

छपका उपवर्ग

(SUB ORDER CAPRIMULGI)

इस छोटे उपवर्ग में सब किस्म के छपका रखे गये हैं जिनसे हम अधिक परिचित नहीं हैं। उल्लुओं की तरह ये अँधेरा होने ही बाहर निकलते हैं और अक्सर सूखे मैदानों में जमीन पर बैठे रहते हैं। ये कीटभक्षी पक्षी हैं जो हवा में उड़कर कीड़े-मकोड़ों को पकड़ते हैं।

इस उपवर्ग को तीन परिवारों में बाँटा गया है, लेकिन यहाँ केवल छपका-परिवार का ही वर्णन दिया जा रहा है।

छपका-परिवार

(FAMILY CAPRIMULGIDAE)

छपका-परिवार में छपका की सब जातियाँ रखी गयी हैं जो कीटभक्षी और रात्रि-चारी पक्षी हैं। इनकी आँखें काफी बड़ी, चोंच छोटी और मुँह चौड़ा होता है। ये प्रायः कत्थई या भूरे रंग के होते हैं जिन पर छोटी-छोटी चित्तियाँ और धारियाँ पड़ी रहती हैं। ये पेड़ की डाली पर अन्य पक्षियों की तरह आड़े-आड़े नहीं बैठते बल्कि लम्बे-लम्बे होकर चिपके रहते हैं। इनका मुख्य भोजन कीड़े-पतिंगे हैं। इनके पैर के बिचले पंजे में बगुलों की तरह कंघी-जैसा कटाव रहता है।

इनकी मादा घोंसला नहीं बनाती बल्कि किसी पेड़ के खोंथे या जमीन पर थोड़ा घास-फूस रखकर अण्डे देती है।

हमारे यहाँ छपका की अनेक जातियाँ हैं जिनमें से एक का वर्णन दिया जा रहा है।

छपका

(NIGHT JAR)

छपका उल्लुओं का भाई-बन्धु तो नहीं है, लेकिन इसने उल्लुओं की बहुत-सी आदतें अपना ली हैं। उन्हीं की तरह यह रात को अपना शिकार करता है जिससे इसकी आँखें बड़ी और पर मुलायम हो गये हैं। रात्रिचारी होने के कारण हमारी निगाह इस पर बहुत कम पड़ती है।

छपका को कही कहा छपया भी कहते है। यह हमारे देश का वारहमामी प ी है जो सारे देश में पाया जाता है। इसव नर मादा एक रग रूप के हाते है। यह दस इच लम्बा होता है। इसका ऊपरी हिस्सा मिलछौह बादामी रग का होता है जो छोटी छोटी काली धारिया और बिंदियो से घिरा रहता है। नीच का हिस्सा भूरा रहता है जिसपर आडी और उससे गाढी धारियाँ पडी रहती है। गले के दोनो ओर एक एक सफेद चित्ते पड़े रहते है। इसकी चोच गाढी भूरी और पैर प्याजी भूरे रहते है।

छपका

छपया खुले मैदान में रहनेवाला पक्षी है जो बाग और जगलो क अलावा गाव का बस्तिया के आस पास के मैदान अपन रहने के लिए विशेप रूप से चुनता है। यह रात्रिचर पक्षी है जो दिनभर तो किसी झाडी में चुपचाप पडा सोता रहता है लकिन सूरज डूबते ही वाहर निकल कर अपने शिकार क फिराक में इधर उधर उडन लगता है। इसका मुख्य भोजन कीड मकोडे है जिन्हे यह उडते उडते पकडता है। इसकी आख बहुत बडी होती है जो रात में मोटर या टाच की रोशनी म बडी तजी स चमक उठती है। इसका मुँह भी काफी चौडा हाता है जिसकी जड के पास काफी रोयें स रहते है।

इसक जोडा बाधन का समय माच स सितम्बर तक रहता है लेकिन यह घोसला नही बनाता बल्कि किसी झाडी म मादा जमीन पर ही दा अण्ड दती है जो हल्के प्याजी रग के रहते है और जिन पर कत्थई या बैंगनी चित्ते पड रहते है।

वतासी उपवर्ग

(SUB ORDER CYPSELI)

इस उपवर्ग में सब प्रकार की वतासियाँ हैं जो देखने में तो अवाबील की जाति की जान पड़ती हैं, लेकिन कई बातों में उससे भिन्न होने के कारण कीटभक्षी वर्ग में एक अलग उपवर्ग में रखी गयी हैं। इस उपवर्ग में हमारे यहाँ केवल वतासी-परिवार के पक्षी पाये जाते हैं।

वतासी-परिवार

(FAMILY CYPSELIDAE)

इस परिवार के पक्षी हवा या वतास में दिन भर उड़ते रहते हैं। इसी से उनको वतासी कहा जाता है। इनके डैने लम्बे, मजबूत और हँसिए की तरह टेढ़े होते हैं जिससे ये हवा को बड़ी आसानी से काटते चलते हैं। संसार का कोई पक्षी हवा में इतनी देर तक नहीं उड़ता जितनी देर तक ये उड़ते हैं।

इनका मुख्य भोजन छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़े हैं जिन्हें ये हवा में उड़ते-उड़ते पकड़ लेते हैं। ये अपने घास-फूस के सुन्दर कटोरानुमा घोंसलों को पुराने मकानों की छतों में अपने चिपचिपे थूक से चिपका देते हैं जो भीतर की ओर परों आदि से मुलायम कर दिये जाते हैं।

इन्हीं वतासियों में से एक वतासी (Edible Swift) अपना घोंसला केवल अपने थूक से बनाती है जो घोंसला बनाने के समय इसके मुँह से पर्याप्त परिमाण में निकलने लगता है और इसके मुँह से बाहर निकलते ही सूखकर कड़ा हो जाता है। ये घोंसले भी कटोरानुमा होते हैं और अंधेरे स्थानों पर दीवारों या चट्टानों से चिपके रहते हैं। ये देखने में पारभासी होते हैं और उन्हें उबाल कर चीनी लोग बड़ा स्वादिष्ठ सूप (Soup) या शोरवा बनाते हैं।

वतासी की एक चोटीदार जाति अपना घोंसला इतना छोटा बनाती है कि देखकर ताज्जुब होता है। इसके घोंसले लगभग डेढ़ इंच चौड़े होते हैं जब कि वह स्वयं १० इंच लंबी होती है। ये घोंसले पेड़ के तनों से चिपके रहते हैं और तने पर ऊपर बैठकर मादा उसमें एक अण्डा दे देती है क्योंकि इससे ज्यादा अण्डों की उसमें जगह ही नहीं रहती।

बतासियों की अनेक जातियाँ हमारे यहाँ पायी जाती हैं जिनमें से दो-तीन प्रसिद्ध बतासियों का वर्णन यहाँ दिया जा रहा है।

बतासी
(SWIFT)

बतासी अबाबील की शकल-सूरत की छोटी-सी छ इंच की चिड़िया है जो दिन भर आकाश में अपने कीड़े-पतिंगों के भोजन की तलाश में उड़ा करती है। यह हमारे यहाँ
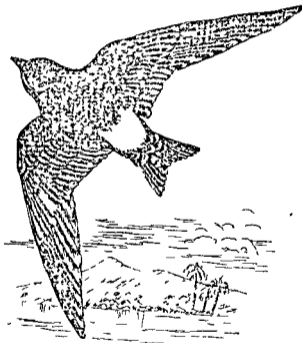
बतासी

की बारहमासी चिड़िया है जो आवश्यकता पड़ने पर यहीं थोड़ा बहुत स्थान परिवर्तन तो कर लेती है, लेकिन हमारे देश से बाहर नहीं जाती। हमारे यहाँ यह सारे देश में फैली हुई है।

बतासी के पैर बहुत छोटे और डैने काफी लंबे होते हैं क्योंकि इन्हें अपने पैरों से बहुत कम और डैनों से बहुत ज्यादा काम लेना पड़ता है। इसी कारण यदि यह कहीं इत्तफाक से जमीन पर गिर पड़ती है तो इसे हवा में ऊपर उठाने में इनके पैर सहायक नहीं होते। यह फिर अपने डैनों को चलाकर यदि किसी प्रकार हवा में कुछ ऊपर उठने में समर्थ हो सकती है तभी आकाश में जाना इसके लिए संभव हो सकता है।

बतासी झुंड में रहनेवाली चिड़ियां हैं जो सैकड़ों की संख्या में साथ उड़ती हैं और सब एक साथ ही किसी पुरानी इमारत में अपना घोंसला बनाती हैं। इनके झुंड गांव और शहरों के अलावा खुले मैदानों, जंगलों और पहाड़ों आदि सभी जगहों पर आकाश में उड़ते देखे जा सकते हैं।

बतासी का रंग कलछौंह लिये सैरा होता है जिसमें ठुड्डी, गला तथा दुम की जड़ के पास का कुछ हिस्सा सफेद रहता है; माथे और दुम के निचले हिस्से का रंग कुछ हलका हो जाता है और आँख के पास एक गाढ़ा चित्ता साफ दिखाई पड़ता रहता है।

इसकी चोंच काली और पैर ललछौंह भूरे होते हैं। नर-मादा एक ही जैसे होते हैं। बतासी अपने घोंसले के लिए अपने थूक में घास और परों आदि को मिलाकर एक ऐसा मजबूत और चिपचिपा पदार्थ बना लेती है जो भीतरी हिस्से को बहुत ही गरम रखता है। इसी से इनके घोंसले छतों में कटोरे की तरह चिपके रहते हैं जिनका भीतरी हिस्सा परों से मुलायम रहता है।

मादा इसी में अप्रैल से अगस्त तक तीन-चार दूध-से सफेद अण्डे देती है।

कठफोर उपवर्ग

(SUB ORDERPICI)

इस उपवर्ग में कठफोर और वसंता आदि पक्षी हैं जो अपना समय वृक्षों पर ही बिताते हैं। ये सब कीटभक्षी जीव हैं जो सुन्दर और रंगीन परोंवाले होते हैं। यह उपवर्ग वैसे तो कई परिवारों में बँटा है, लेकिन यहाँ केवल कठफोरा और वसंता परिवार का ही वर्णन दिया जा रहा है जिनमें के पक्षी हमारे यहाँ पाये जाते हैं।

कठफोर-परिवार

(FAMILY PICIDAE)

कठफोर हमारे यहाँ के प्रसिद्ध पक्षी हैं जिनकी लगभग चार सौ जातियाँ संसार में फैली हैं। ये पेड़ की पपड़ियों को ठोक-ठोक कर और उनमें अपनी लंबी जबान डाल कर कीड़े-मकोड़ों को चिपका लेते हैं जो अपने ढंग का निराला होता है। इस प्रकार कीड़े पकड़ने में उन्हें पेड़ के तनों पर चिपके रहना होता है जिससे उनके पैर की दो उँगलियाँ आगे की ओर और दो पीछे की ओर हो गयी हैं और इससे इन्हें पेड़ के तनों पर चिपकने की आसानी हो गयी है। यही नहीं, उनकी दुम के पर भी ऐसे कड़े हो गये हैं कि उसे तने पर टेक कर जब वे आगे की ओर खिसकते हैं तो उनकी कड़ी दुम उनके तीसरे पैर की तरह काम देती है।

इनकी चोंच लम्बी, नोकीली और बड़ी तेज होती है जिसके सहारे ये पेड़ की पपड़ियों को उखाड़ डालते हैं। ये पेड़ के तने को काटकर सूराख बनाते हैं और उसी में अण्डे देते हैं।

कठफोर का मुख्य भोजन कीड़े-मकोड़े, चींटे, छिपकली, मेढक आदि हैं लेकिन इनमें कुछ ऐसे भी हैं जो पेड़ के तने में अपनी तेज नोक गड़ाकर उसका रस निकालकर पीते हैं।

इनकी वैसे तो अनेक जातियाँ हैं, पर उनमें से केवल एक प्रसिद्ध कठफोर का वर्णन यहाँ दिया जा रहा है।

कठफोर

(WOOD PECKER)

कठफोर हमारे यहाँ का प्रसिद्ध पक्षी है जिसे बाग बगीचों में देखना कठिन नहीं। यह अपनी कीड़े मकोड़ों की खुराक के लिए पेड़ के तनों को अपनी चोंच से ठोकता रहता है जिससे पपड़ियों के नीचे रहनेवाले कीड़े जरा ऊपर आ जायँ और उसकी लम्बी जबान वहाँ तक पहुँच सके। उसकी जबान ऐसी चिपचिपी होती है कि उसको छूते ही कीड़े उसमें चिपक जाते हैं और फिर सीधे उसके पेट में पहुँच जाते हैं।

वैसे तो इसे हर एक बाग में पेड़ के तनों पर चिपका देखा जा सकता है पर जब यह

एक पेड़ से उड़ कर दूसरे पर जाता है तो अपने रंग-रूप और तेज बोली के कारण इसका छिपना कठिन हो जाता है। जमीन पर इसे बहुत कम लोगों ने देखा होगा।

कठफोर यहाँ का बारहमासी पक्षी है जो सारे देश में फैला हुआ है। यह घने जंगलों से ज्यादा खेतों से मिले हुए पुराने बागों में रहना पसन्द करता है क्योंकि वहाँ उसे पपड़ियों के नीचे रहनेवाले कीड़े काफी मिलते हैं जो उसकी खास खूराक है। इनकी कई जातियाँ होती हैं, लेकिन इनमें सोनपिठा कठफोर बहुत प्रसिद्ध है जिसका यहाँ वर्णन दिया जा रहा है।

११ इंच की इस सुन्दर चिड़िया के नर और मादा में थोड़ा-सा ही फर्क होता है। नर का माथा और चोटी सुर्ख और गर्दन काली होती है जिसमें आँख के नीचे से डैने तक एक सफेद धारी चली आती है। पेट और सीना चितकबरा, दुम और उसका निचला हिस्सा काला और पीठ सुनहली रहती है। मादा के सीने का रंग ज्यादा सफेद होता है। इसके अलावा वह और बातों में नर से मिलती-जुलती होती है।

इसकी चोंच सिलेटी और पैर हरापन लिये गाढ़ सिलेटी होते हैं।

कठफोर

कठफोर के घर बनाने का ढंग निराला ही है। फरवरी से जुलाई के बीच में जब इसके अण्डे देने का समय आता है तो यह किसी मोटे पेड़ के तने में अपनी तेज और नोकीली चोंच से इतना बड़ा सूराख बनाती है जिसमें यह आसानी से आ जा सके। बाहर तो यह छेद ३ इंच व्यास तक होता है, पर भीतर ही भीतर इसे बढ़ाकर छः-सात इंच तक का कर लिया जाता है जिसमें बैठ कर मादा तीन-चार सफ़ेद अण्डे देती है।

गर्दनऐंठा-परिवार

(FAMILY WRYNECK)

इस परिवार में केवल गर्दनऐंठा रखा गया है जो देखने में न तो कठफोर का सम्बन्धी लगता है और न बसता का ही। लेकिन इसकी लम्बी जबान और आगे-पीछे दो-दो उँगलियोंवाले पैर कठफोर की ही तरह रहते हैं।

ये पेड़ के तनों पर कठफोर की तरह नहीं चढ़ते, लेकिन अण्डा देने के लिए उसी की तरह पेड़ के तनों में छेद करके अपने अण्डे देते हैं। जोड़ा बाँधने के समय ये मादा को रिझाने के लिए अपनी गर्दन को आगे की ओर बढ़ाकर सिर को गोलाई से घुमाते हैं। इसी से इनका नाम 'गर्दनऐंठा' पड़ा है।

ये कीटभक्षी पक्षी हैं जो प्राय दिमौरों में दीमक और चींटे खोद-खोद कर खाते हैं। गर्दनऐंठा का वर्णन आगे दिया जा रहा है।

गर्दनऐंठा

(WRYNECK)

गर्दनऐंठा को यह नाम उसके गर्दन ऐंठने की आदत से ही मिला है। यह अपनी गर्दन को ऐंठकर काफी लम्बी बढ़ा लेता है और साँप की तरह फुफकार कर अपनी लम्बी जबान को उसी तरह बाहर निकालता है जैसा साँप करते हैं।

गर्दनऐंठा सात-आठ इंच का छोटा-सा चितला भूरा पक्षी है जिसके नर-मादा एक ही रंग-रूप के होते हैं। यह हमारे यहाँ का मौसमी पक्षी है जो जाड़ों में उत्तर की ओर से आकर गरमियों में फिर उसी ओर लौट जाता है। इसका रंग बहुत कुछ पपीहे से मिलता-जुलता रहता है और इसकी पी पी की तेज बोली भी बहुत कुछ उसी के अनुरूप होती है।

इसका मुख्य भोजन कीड़े-मकोड़े हैं जिन्हें यह पेड़ की पपड़ियों के नीचे से अपनी लम्बी जबान में चिपका लेता है। मादा अपने अण्डों के लिए कभी तो कठफोर की तरह पेड़ के तने को काटकर सूराख बनाती है और कभी किसी पुराने खोंथे में सात-आठ सफेद अण्डे देती है।

वसंता-परिवार

(FAMILY CAPITOMIDAE)

इस परिवार के पक्षी प्राय: हरे या चटकीले रंग के होते हैं जो करीब-करीब अपना सारा समय वृक्षों पर ही बिताते हैं। ये छोटे कद के पक्षी हैं जिनका मुख्य भोजन तो कीट-पतंग है, लेकिन वैसे ये फलफूल भी खा लेते हैं। इनकी चोंच बड़ी मजबूत और कड़ी होती है जिससे ये वृक्षों की पपड़ियों को कठफोर की तरह ठोंक-ठोंक कर कीड़ों को पकड़ लेते हैं। इनकी एक छोटी जाति इसी कारण ठठेरा कहलाती है। ठठेरा जब अपनी कड़ी चोंच से पेड़ के तने को ठोंकने लगता है तो सचमुच यही जान पड़ता है जैसे दूर पर कोई ठठेरा बरतन बना रहा हो।

इनके हरे रंग के कारण इन्हें जहाँ वसंता कहा जाता है वहीं इनकी कर्कश बोली के लिए इन्हें कुतुरुझा, कुदरूप या पुदरूप भी कहते हैं जो इनकी बोली से मिलता-जुलता होता है।

ये कठफोर की तरह किसी पेड़ के खोथे का मुँह गोलाई से काटकर उसी में तीन-चार सफेद अण्डे देते हैं।

यहाँ इनकी दो प्रसिद्ध जातियों के पक्षियों का वर्णन दिया जा रहा है।

वसंता

(GREEN BARBET)

वसंता, जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, हरे रंग की चिड़िया है जो अपनी हरी पोशाक के कारण पेड़ों में ऐसी छिप जाती है कि हमारी निगाह सहसा इस पर नहीं पड़ती। इसकी पुद्रूप से मिलती हुई बोली के कारण इसे कहीं-कहीं पुद्रूप और कहीं-कहीं कुतुरुझा भी कहते हैं।

यह गाँव के निकट के बागों में पेड़ों पर ऐसा छिपा रहता है कि इसकी बोली सुनकर भी इसे देखना आसान नहीं होता। इसे हम एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर उड़कर जाते समय ही देखते हैं क्योंकि पीपल बरगद-आदि के फल इसकी मुख्य खूराक होने के कारण इसे जमीन पर उतरने की जरूरत ही नहीं रह जाती।

बसंता यहाँ की बारहमासी चिड़िया है जिसके नर और मादा एक ही रंग रूप के होते हैं। इसकी लम्बाई दस इंच के लगभग रहती है। इसकी गरदन, सिर और सीना भूरा होता है जिसमें पतली पीली लकीरें पड़ी रहती हैं। ऊपरी हिस्सा और दुम चमकीली हरी रहती है जो पतली, पीली, आड़ी लकीरों से भरी रहती है। डैने इसके भूरे, चोंच प्याजी और पैर हलके बादामी रंग के होते हैं।

बसंता

बसंता बोलता बहुत है। बारहों मास दिन को बागों में इसकी बोली सुनी जा सकती है। जाड़ों में इसकी बोली कुछ कम जरूर हो जाती है लेकिन वसन्त के बाद अण्डे देने का समय आने पर इसकी बोली की तेजी बहुत बढ़ जाती है। मादा बसंता वैसे तो मार्च अप्रैल में अण्डे देती है पर कठफोर की तरह इसे अपने रहने का सूराख पहले से ही बनाना पड़ता है। यह किसी ऊँची मोटी डाल में छेद करके अपने रहने के लिए सूराख बना लेती है जिसके भीतर मादा लकड़ी के टुकड़ों पर ही दो चार अण्डे देती है। ये अण्डे एकदम सफेद होते हैं।

ठठेरा

(COPPER-SMITH)

ठठेरे को छोटा वसंता भी कहते हैं। यह भी यहाँ की बारहमासी चिड़िया है जो छः इंच की होती है। फुदकी की तरह छोटी होने के कारण यह अक्सर हमारी निगाह के सामने आकर चली जाती है और हम इसकी ओर ध्यान भी नहीं देते।

इसके डैने, पीठ और दुम धानी रंग के होते हैं, लेकिन गरदन और सिर बहुत सुन्दर रहता है जिसमें इसके माथे और गरदन का निचला थोड़ा हिस्सा लाल रहता है। चोंच के नीचे, आँख के ऊपर नीचे तथा गरदन का बाकी हिस्सा चटकीला पीला होता है और चोंच से लेकर आँख से होती हुई एक काली पट्टी गरदन तक चली आती है जहाँ से वह सिर के ऊपर की ओर घूम जाती है।

ठठेरा

इसकी चोंच काली तथा पैर सुर्ख रंग के होते हैं। बड़े वसंते की तरह यह भी यहाँ के बागों में रहनेवाली चिड़िया है जो फलों से अपना पेट भरती है और जिसे पेड़ पर से नीचे आने की जरूरत ही नहीं पड़ती। इसके नर और मादा एक ही रंग-रूप के होते

हैं। ये पत्तियों में ऐसे छिप जाते हैं कि यदि ये बोलें नहीं तो पता भी न चले कि ये किसी पेड़ पर हैं भी या नहीं। इनकी बोली दिन भर सुनी जा सकती है और जब ये बोलने लगते हैं तो ऐसा जान पड़ता है जैसे कोई ठठेरा काम कर रहा हो। इसी से इनको ठठेरा नाम दिया गया है।

फरवरी से मई तक ठठेरा के अण्डे देने का समय है जब बसंता की तरह यह किसी डाल को काटकर अपना घर बना लेता है। इसके घर का सूराख बाहर से देखने में एक रुपये के बराबर रहता है और जिसका मुँह ऊपर की ओर यह इस डर से नहीं रखता कि कहीं उसमें बरसात का पानी न भर जाय।

मादा ठठेरा तीन चार अण्डे देती है जो दूध-से सफेद होते हैं।

शाखाशायी वर्ग

(ORDER PASSERIFORMES)

शाखाशायी-वर्ग पक्षियों का सबसे बड़ा वर्ग है जिसमें अनेक जाति के पक्षी सम्मिलित हैं। ये सब पक्षी वृक्षों पर बसेरा लेनेवाले हैं और इसी कारण इनके पैर की तीन उँगलियाँ आगे की ओर और एक अँगूठा पीछे की ओर रहता है। अपने इस पिछले अँगूठे से ये सोते समय पेड़ की डाल को बड़ी मजबूती से पकड़ लेते हैं। ऐसा करने से उनकी उँगलियाँ जब तक वे स्वयं नहीं चाहते नहीं खुल सकतीं और इसी कारण वे सोते समय वृक्ष से नीचे नहीं गिरते। इसी विशेषता के कारण इन्हें शाखाशायी पक्षी कहा जाता है और ये सब इसी कारण एक वर्ग में रखे गये हैं।

ये सब पक्षी पेड़ों पर या पत्तों के आसपास रहते हैं, और इनमें से कुछ अपनी सुरीली बोली और कुछ अपने सुन्दर घोंसलों के कारण बहुत प्रसिद्ध हो गये हैं। इनमें से ज्यादातर ऐसे हैं जो जमीन पर फुदक-फुदक कर चलते हैं।

इस बड़े वर्ग में सब तरह के छोटे-बड़े पक्षी शामिल हैं जिनमें कुछ शाकाहारी हैं तो कुछ मांसाहारी। कुछ गल्ला और दाने से अपना पेट भरते हैं तो कुछ ऐसे हैं जिन्हें सर्वभक्षी कहा जा सकता है।

ये सब पक्षी अनेक परिवारों में विभक्त हैं जिनमें से अधिकांश परिवारों के पक्षी हमारे देश में पाये जाते हैं लेकिन स्थानाभाव से यहाँ उनमें से केवल २३ परिवारों के प्रसिद्ध पक्षियों का वर्णन किया जा रहा है।

फुलचुही-परिवार

(FAMILY DICACIDAE)

यह परिवार बहुत छोटा है जिसमें सब तरह की फुलचुहियाँ रखी गयी हैं। ये शकरखोरों के भाई-बन्धु हैं जो कद में बहुत छोटी होती हैं और जिनके नर रंगीन पोशाकवाले होते हैं। इनकी चोंच छोटी और टेढ़ी रहती है।

इनमें से कुछ नासपाती की शक्ल का सुन्दर घोंसला बनाती हैं जो पतली जड़ों और रेशों से बनाये जाते हैं और जिनका भीतरी हिस्सा परों से मुलायम कर दिया जाता है।

ये फूलों का रस और उसी में रहनेवाले छोटे-छोटे कीड़ों से अपना पेट भरती हैं। यहाँ अपने यहाँ की एक प्रसिद्ध फुलचुही का वर्णन दिया जा रहा है।

फुलचुही

(TICKELL'S FLOWER PECKER)

फुलचुही फूलों का रस चूसनेवाली बहुत छोटी-सी चिड़िया है जिसे हमारे बाग-बगीचों में अक्सर तितलियों की तरह उड़ते ही उड़ते फूलों से रस खींचते देखा जा सकता है। इसका मुख्य भोजन वैसे तो फूलों का रस है, लेकिन फूलों के रस के साथ ही साथ उसमें के छोटे-छोटे कीड़ों को भी यह चट कर जाती है। यह हमारे यहाँ की साढ़े तीन इंच की चिड़िया है जिसके नर-मादा एक जैसे होते हैं।

फुलचुही

इसका गरदन से पीठ तक का ऊपरी हिस्सा, हलका हरापन लिये कंजई रहता है। डैने भूरे और दुम गहरी भूरी होती है और नीचे का

हिस्सा पीलापन लिये सफेद रहता है। इसकी चोंच पिलछौंह मिलेटी और पैर नीलापन लिये गाढ़ मिलेटी रहते हैं। यह फूलों के रस और कीड़ों के अलावा छोटे-छोटे फूल भी खा लेती है। इसकी चोंच पतली, लम्बी, नुकीली और आगे की ओर मुड़ी हुई होती है।

फुलचुही फरवरी से अगस्त तक के बीच में किसी झाड़ी में अपना सुन्दर घोंसला बनाती हैं जो शकरखोरों की तरह घास-फूस और रेशों का रहता है और जिसको यह पेड़ की डाली में कस देती हैं। उसका भीतरी हिस्सा सेमल की रुई से मुलायम बना दिया जाता है।

मादा उसमें समय आने पर दो-तीन अण्डे देती है जो एकदम सफेद रहते हैं।

शकरखोर-परिवार

(FAMILY NECTARINIDAE)

यह परिवार भी छोटा ही है जिसमें सब तरह के शकरखोरे एकत्र किये गये हैं। ये सब बहुत छोटे कद के पक्षी हैं जिनकी पोशाक बहुत भड़कीली, चमकदार और प्रायः गाढ़े नीले रंग की होती है।

इनकी चोंच लंबी, पतली और टेढ़ी होती है जिसे फूलों में डालकर ये उसका रस पीते हैं। रस के साथ ये फूलों में रहनेवाले छोटे कीड़े भी खा लेते हैं।

फुलचुहियों की तरह ये भी सुन्दर और गोल घोंसला बनाते हैं जो पतली जड़ों और बारीक रेशों को बुनकर तैयार किया जाता है।

यहाँ अपने यहाँ के एक प्रसिद्ध शकरखोर का वर्णन दिया जा रहा है।

शकरखोरा

(PURPLE SUNBIRD)

फुलचुहियों की तरह शकरखोरे भी फूलों का रस पीनेवाले छोटे पक्षी हैं जो कद में उनसे थोड़े ही बड़े होते हैं। ये अपनी पतली और नोकीली चोंच को फूलों में गड़ा देते हैं और अपनी लम्बी जबान से फूलों का रस चूस लेते हैं। फूलों का रस पीते समय इन्हें कौड़िल्ले की तरह अपने पंख तेजी से चलाकर हवा में एक ही जगह स्थिर रहना पड़ता है। फूलों के रस के अलावा फूलों में रहनेवाले छोटे-छोटे कीड़े भी इसकी लम्बी जबान में लिपटकर इसके पेट में पहुँच जाते हैं।

फुलचुही तथा पीलक (पृ० ४९५, ५०१)

शकरखोरा हमारे बाग में रहनेवाली बारहमासी चिड़िया है जिसे शायद सभी ने फूलों पर उड़-उड़कर रस चूसते देखा होगा। यह लगभग चार इंच की होती है जो हमारे देश में प्रायः सभी जगह पायी जाती है।

शकरखोरा

इसके नर और मादा का रंग जाड़ों में करीब-करीब एक-जैसा ही रहता है। उस समय नर की गरदन से लेकर सीने तक का रंग गाढ़ बैंगनी रहता है, पर गरमियों में यह रंग ऊपरी तमाम हिस्से में फैल जाता है और नर दूर से एकदम काला दीख पड़ने लगता है। सूरज की किरण पड़ने पर इसका हरा और नीला रंग चमक उठता है। मादा का ऊपरी हिस्सा हरापन लिये भूरा होता है। उसकी दुम गहरी भूरी और नीचे का हिस्सा पीला रहता है।

इसके अण्डा देने का समय फरवरी से अगस्त तक रहता है क्योंकि बुलबुल की तरह ये भी बहुत नीचा घोंसला बनाते हैं और इनके अण्डे भी अक्सर कौए, मुटरियों और गिलहरियों के शिकार हो जाते हैं जिस कमी को ये दो बार अण्डे देकर पूरा करते हैं।

इनके घोंसले बया की तरह सुन्दर और कलापूर्ण न होकर भी उनसे कुछ मिलते-जुलते ही होते हैं। पहले यह मकड़ी के जाले में मिट्टी आदि सानकर खूब मजबूत गांठ की तरह का चिपचिपा पदार्थ बनाते हैं जिसको पहले किसी झाड़ी की तीन चार फुट ऊँची डाल में खूब लपेट देते हैं, फिर इसी के सहारे घोंसला लटकाया जाता है। घोसला बनाने में भी उसी तरह का इन्तजाम होता है। ये घास-फूस और रेशों से जो छोटा-सा सुन्दर घोसला बनाते हैं, उसमें बगल से आने-जाने का छेद रहता है। इस सूराख के ऊपर बरसात का पानी रोकने के लिए एक बरसाती भी होती है। और समय को रूई और ऊन आदि से ये घोसले खूब नरम कर दिये जाते हैं।

शकरखोरा के अण्डे हरापन लिये सफेद होते हैं जिन पर भूरी और बैंगनी चित्तियाँ पड़ी रहती हैं। इनकी संख्या दो-तीन से ज्यादा नहीं होती।

बाबुना-परिवार

(FAMILY ZOSTEROPIDAE)

इस परिवार में सभी जाति के बाबुना हैं जो प्रायः सब पीले रंग के होते हैं। इनका कद फुदकियों की तरह छोटा ही रहता है और इनकी आँखों के चारों ओर एक सफेद छल्ला-सा रहता है जिससे इन्हें पहचानना कठिन नहीं होता।

इनकी चोंच बहुत थोड़ी-सी टेढ़ी रहती है जिसके किनारे कटावदार होते हैं। इनका मुख्य भोजन फूलों का रस और कीड़े मकोड़े हैं। यहाँ अपने यहाँ के प्रसिद्ध बाबुना का वर्णन दिया जा रहा है।

बाबुना

(WHITE EYE)

बाबुना बहुत छोटी-सी हरे रंग की चिड़िया है जो अपने हरे रंग, छोटे कद और पेड़ों पर रहने की आदत के कारण हमारी निगाह तले बहुत कम पड़ती है।

यह हमारे यहाँ की बारहमासी चिड़िया है जो हमारे देश में रेगिस्तान को छोड़ कर प्रायः सभी स्थानों पर पायी जाती है। इसका कद चार इंच से बड़ा नहीं होता। बाबुना के नर-मादा एक से होते हैं। इनकी पीठ हरापन लिये सुनहली पीली और डैने का छिपा भाग और दुम गहरी भूरी होती है। गला पीला,

सीना और पेट ऊदी और दुम के नीचे का भाग भी पीला रहता है। आँख के चारों ओर एक सफेद छल्ला-सा रहता है, जैसे यह सफेद रिम का ऐनक लगाये हो। इसकी टेढ़ी और नोकीली चोंच काली होती है और पैर गाढ़े सिलेटी होते हैं।

वाबुना

वाबुना उन चिड़ियों में से है जो जमीन पर नहीं उतरतीं। यह पत्तियों पर रहनेवाले कीड़ों से तो अपना पेट भरती ही है, साथ ही जंगली फल भी इसके हमले से नहीं बचते। इसे वस्तियों से ज्यादा बाग-बगीचे पसन्द हैं, जहाँ मौसम आने पर नर बबने का मीठा स्वर सुना जा सकता है, जो धीरे-धीरे शुरू होकर बाद को तेज ही होता जाता है।
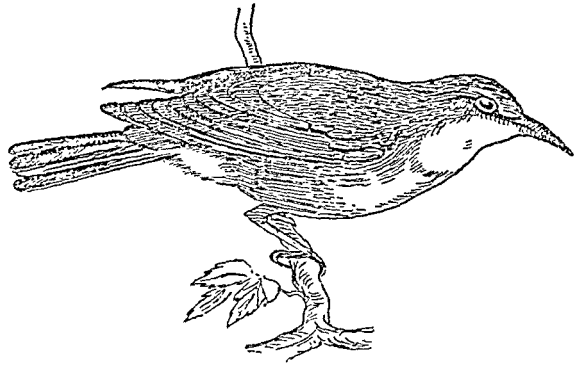
वाबुना यहाँ की बारहमासी चिड़िया है जो वैसे तो गोल में रहती है और एक दूसरे को होशियार करने के लिए सदा धीमे स्वर से बोलती रहती है, लेकिन अण्डा देने का समय निकट आने पर जोड़ा बाँध लेती है। इसके अण्डे देने का समय फरवरी से सितम्बर तक रहता है, जिसमें मादा दो बार अण्डे देती है।

समय आने पर बबूना झाड़ियों अथवा ऊँचे पेड़ों पर अपना सुन्दर और छोटा गोल घोंसला बनाती है जो घास-फूस, बाल और रूई का रहता है। यह घोंसले पर मकड़ी के जाले लपेट-लपेटकर उसे मजबूत बना देती है और उसका भीतरी हिस्सा सेमल की रूई और मदार के भुए से मुलायम कर देती है। मादा इसमें दो या कभी-कभी तीन-चार तक छोटे-छोटे अण्डे देती है जिनका रंग हरापन या पीलापन लिये हलका नीला रहता है और जिन पर किसी प्रकार के चित्ते नहीं होते।

भरत-परिवार

(FAMILY ALAUDIDAE)

भरत-परिवार में छोटे गौरैया जैसे मटमैले पक्षी हैं जिनका अधिक समय जमीन पर ही बीतता है और जो प्रायः जमीन पर ही अण्डे देते हैं।

ये गौरैया के निकट सम्बन्धी हैं और इनकी शक्ल-सूरत भी उन्हीं से मिलती जुलती होती है। इनकी चोंच भी गौरैयों की तरह छोटी और तिकोनी होती है। यहाँ इस परिवार के चार प्रसिद्ध पक्षियों का वर्णन दिया जा रहा है।

भरत
(SKY LARK)

भरत हमारे यहाँ तो पाया ही जाता है, लेकिन यह विदेशों में भी फैला हुआ है। हमारे देश में तो इसे इतना सम्मान नहीं मिला है, लेकिन अंग्रेजी साहित्य में भरत का वही स्थान है जो हमारे यहाँ कोयल और पपीहे का।

हमारे यहाँ भरत को भरही भी कहते हैं। यहाँ इसकी दूसरी जाति जो अपने सिर पर की चोटी के कारण चण्डूल (Crested lark) कहलाती है, भरत से ज्यादा मशहूर है। इसे शौकीन लोग इसकी मीठी बोली के लिए बड़े यत्न से पालते हैं। आगे उसका संक्षिप्त वर्णन दिया जा रहा है।

भरत

भरत मटमैले रंग की छः इंच लम्बी चिड़िया है जो हमारे देश में बारहों महीने रहती है। यहीं रहकर यह आवश्यकतानुसार थोड़ा-बहुत स्थान परिवर्तन कर लेती है,

इसी कारण हम इसे उत्तर की ओर से आकर सारे देश में फैल जाते देखते हैं। यह खुले मैदान में रहनेवाली चिड़िया है जो अपनी भूरी पोशाक के कारण हमारी निगाह तले जल्द नहीं पड़ती और हम इसे तभी देख पाते हैं जब यह इधर-उधर चलती या आकाश में उड़ती है। यह वैसे तो अकेले या जोड़े में दिखाई पड़ती है, लेकिन कभी-कभी इसके छोटे-छोटे झुंड भी दिखाई पड़ते हैं। इसके नर-मादा एक रंग-रूप के होते हैं।

भरत के शरीर का ऊपरी हिस्सा मटमैला होता है जिसमें कालापन लिये गहरी भरी धारियाँ होती हैं। डैने भूरे और दुम भी भूरी होती है। इसका सीना और पेट तक का हिस्सा पीलापन लिये भूरा रहता है और आँख के ऊपर से गर्दन तक एक धूमिल पीली पट्टी चली आती है। इसकी चोंच और पैर हरापन लिये सिलेटी रंग के होते हैं।

भरत को बलुही जमीन काफी पसन्द है इसीसे इसे गाँव के खुले मैदानों में बड़ी आसानी से देखा जा सकता है। यह बहुत निडर चिड़िया है जो आदमियों को काफी पास तक जाने देती है। यह बहुत मीठी बोली बोलती है। इसकी बोली तो उसी समय सुनने लायक होती है जब नर जोड़ा बाँधने के समय मादा को रिझाने के लिए खुले मैदानों में गाता है। उस समय यह जमीन से तीस-चालीस फुट ऊँचा उड़कर बहुत तेज स्वर में बोलता है और फिर नीचे उसी स्थान पर आकर बोलता है जहाँ से उड़ा था। कुछ क्षण रुककर वह फिर उसी तरह उड़कर बोलता है और इस प्रकार बोलने का सिलसिला कुछ देर तक जारी रहता है।

इसकी एक जाति अगिन (Red winged Bush lark) कहलाती है और दूसरी चंडूल (Crested lark)। दोनों की शकल-सूरत, रंग-रूप और आदतें भरत-जैसी ही होती हैं, लेकिन चंडूल अपनी चोटी के कारण जहाँ सबसे अलग रहता है वहाँ अगिन को उसके डैने के बीच में पड़ी हुई लाल पट्टी के कारण पहचानने में देर नहीं लगती। चंडूल गाने में सब से उस्ताद होता है, लेकिन अगिन भी गाने में चंडूल से कम नहीं होती। इसकी आवाज़ में चंडूल की-सी तेजी ज़रूर नहीं होती, लेकिन मिठास उतनी ही रहती है।

अगिन को चंडूल की तरह खुले मैदान ज्यादा पसन्द नहीं आते। यह पानी के आस-पास के जंगलों और झाड़ियों के मैदानों में ज्यादा पायी जाती है। इसे भी लोग इसकी बोली के लिए पिंजड़ों में पालते हैं।

दबक चिरई (Finch Lark) चंडूल से छोटी होती है और इसकी शक्ल चंडूल से ज्यादा गौरैया से मिलती है क्योंकि इसकी चोंच एकदम गौरैया की तरह मोटी

चंडूल

होती है। इसका रंग तो चंडूल की तरह भूरा होता है पर चोंच की जड़ से एक कत्थई पट्टी आंख से होते हुए गरदन तक चली जाती है। नीचे का रंग कत्थई रहता है जो आगे जाकर सीने और पेट तक फैल जाता है।

दबक चिरई को भरदूल भी कहते हैं। ये खुले-खुले गोल में रहनेवाले छोटे-से पक्षी हैं जिन्हें खुले मैदान ज्यादा पसन्द आते हैं।

इनका गाना मीठा होकर भी जी उवा देनेवाला होता है क्योंकि ये एक तरह की आवाज करते रहते हैं। इन चारो पक्षियों के अण्डा देने का समय मार्च से जून तक
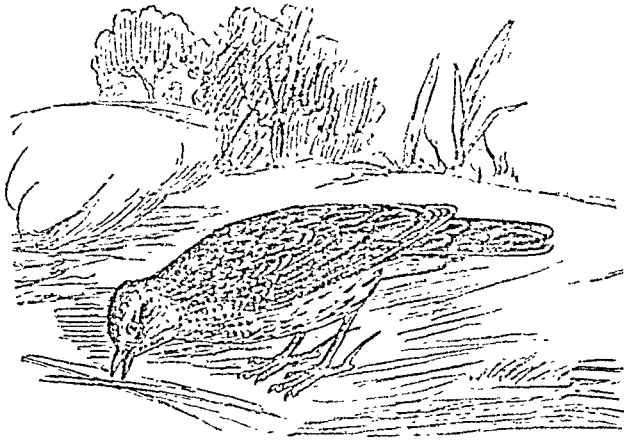
अगिन

रहता है। इन सब का घास-फूस का छिछला घोंसला जमीन पर रखा रहता है जिसको मुलायम बनाने के लिए भीतर वाल और ऊन लगा दिया जाता है। अण्डों की संख्या तीन से पाँच तक रहती है जिनका रंग हलका पीलापन लिये सफेद होता है और जिन पर भूरे और वैगनी चित्ते पड़े रहते हैं।

खंजन-परिवार

(FAMILY MOTACILE)

इस परिवार के पक्षी भरत के निकट सम्बन्धी है जो उन्हीं की तरह अपना अधिक समय जमीन पर घूमने-फिरने में विताते हैं। इन पक्षियों का कद भी छोटा होता है और उनकी पोशाक भी भूरी और चितकबरी रहती है।

ये पानी के पास-पड़ोस में ही रहना पसन्द करते हैं और खतरा निकट देखकर हवा में थोड़ी दूर तक लहराते हुए उड़कर बैठ जाते हैं।

यहाँ इनमें से प्रसिद्ध खंजन तथा चचरी का वर्णन दिया जा रहा है।

खजन

(WAGTAIL)

खजन हमारे यहाँ का बहुत ही सुंदर चितकबरा पक्षी है जिसकी चंचलता के कारण कवि लोग आँखों से इसकी उपमा देते हैं। हमारे साहित्य में शुक-सारिका की तरह इसका भी एक विशेष स्थान है।

खजन

खजन को खजरीट भी कहते हैं और देहात में यह खँडरिच या खिडरिच के नाम से बहुत प्रसिद्ध है। यह हमारे यहाँ की मौसमी चिड़िया है जो अगस्त सितम्बर से हमारे देश के मैदानों में दिखाई पड़ने लगती है। यह बहुत ही चंचल होती है जो एक स्थान पर स्थिर न रहकर इधर उधर कीड़े मकोड़ों की तलाश में चक्कर लगाया करती है।

खजन की वैसे तो कई जातियाँ हैं लेकिन इन सब में चितकबरा खजन (Pied wagtail) और सफेद खजन (White wagtail) बहुत प्रसिद्ध हैं। इन दोनों के रंग रूप में ज्यादा फर्क नहीं रहता और दोनों की आदतें एक जैसी ही होती हैं।

खजन बराबर रंग बदला करते हैं। इससे इनके रंग का ठीक ठीक वर्णन करना बहुत कठिन है तो भी यहाँ इन दोनों खजनों का वर्णन नीचे दिया जा रहा है।

चितकबरे खजन के नर का ऊपरी हिस्सा गहरा और नीचे का सफेद रहता है। इसके सिर का ऊपरी हिस्सा काला और सीने पर भी चंद्राकार काला चित्ता रहता है। डैने काले रहते हैं जिन पर सफेद धारियाँ होती हैं। दुम भी काली होती है

जिसके किनारे सफेद रहते हैं। गरमियों में चोंच के नीचे से तमाम सीना काला हो जाता है। मादा भी इसी तरह की होती है। लेकिन उसके वदन की स्याही धूमिल ही रहती है। दोनों की चोंच और पैर काले होते हैं।

सफेद खंजन के ऊपरी हिस्से में कुछ कम स्याही रहती है और उसके कंठ का काला चिह्न जाड़ों में गायव-हो जाता है।

यों तो सभी चिड़ियाँ साल में एक वार अपने पंख वदलती हैं, जो ज्यादातर जाड़ों में होता है, पर कुछ हिस्से के पंख चितकवरे होने के कारण खंजन के पर ज्यों-ज्यों वढ़ते हैं उनके रंग में काले की जगह सफेद और सफेदी की जगह काला होता रहता है।
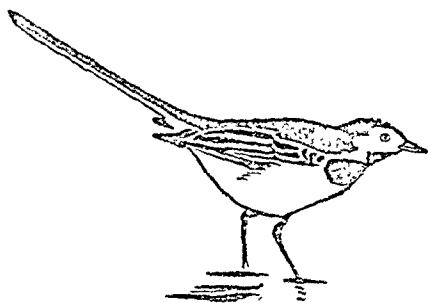
चितकवरा खंजन (ममोला)

खंजन को न तो ज्यादा घना जंगल पसन्द है और न एकदम ऊसर ही। पानी के किनारे के कीड़ों से पेट भरने के कारण इसे हम ज्यादातर तालाव और नदियों के किनारे ही देखते हैं। वैसे यह वड़ा ढीठ होता है, पर वहुत पास जाने पर लहराता हुआ उड़कर थोड़ी दूर पर फिर जाकर वैठ जाता है और वैठते ही अपनी लंवी दुम ऊपर-नीचे उठाने, गिराने लगता है।

इसकी केवल एक जाति कश्मीर में अण्डे देती है। यह मई से जुलाई के वीच में जमीन पर पत्थरों या लकड़ियों के वीच घास-फूस का गहरा घोंसला वनाता है जिसमें मादा चार-पाँच अण्डे देती है। ये हलके राख के रंग के होते हैं जिन पर वादामी रंग की छोटी -छोटी घनी विन्दियाँ भी पड़ी रहती हैं।

चचरी
(PIPIT)

चचरी को कहीं-कहीं रुगेल भी कहते हैं। यह हमारे देश में प्रायः सभी स्थानों पर खुले मैदानों में पायी जाती है और पहाड़ों पर भी इसे पाँच-छः हजार फुट की ऊँचाई तक देखा जा सकता है।

चचरी हमारे यहाँ की वारहमासी चिड़िया है जो कद और रंग-रूप में वहुत कुछ मादा गौरैया से मिलती-जुलती होती है। वनावट में यह गौरैया से कुछ पतली जरूर

होती है। लेकिन इसके नर मादा एक ही जैसे होते है। यह भूरी चितली चिड़िया हमारे मैदानो मे जाड़े या छोटे-छोटे गरोहो मे रहती है और इसे देखकर हम इसे गौरैया ही समझते है लेकिन इससे और गौरैया से कोई सम्बन्ध नही है।

ये चिड़ियाँ अपना ज्यादा समय जमीन पर ही बिताती है और जब ये खेतो, मैदानो और पेड़ो के नीचे कीड़े-मकोड़ो के लिए इधर-उधर दौड़ा करती है, तभी इन्हें देखा जा सकता है। ये खतरा निकट देखकर फौरन उड़कर किसी पेड़ पर जा बैठती है। ये खजन की तरह रह रहकर अपनी दुम को ऊपर नीचे उठाती गिराती रहती है। इसी से हम इनको आसानी से पहचान सकते है। साथ ही इनकी पिट् पिट् या चिपिट की आवाज से भी हमें इनके पहचानने में सहायता मिलती है। इनका मुख्य भोजन कीड़े मकोड़े है।

चचरी

जोड़ा बाँधने के समय मादा को रिझाने के लिए भरत की तरह यह भी बड़े मीठे स्वर में बोलती है और बोलने के बाद चार-पाँच फुट उठकर धीरे धीरे नीचे उतरती है। यही नही जब इसके बच्चो पर कोई हमला करता है तब भी यह गुस्सा होकर बड़े जोर जोर से बोलती है और आकाश म ऊपर उठकर थोड़ी दूर पर अपने पर फैलाकर उतरती है।

इसके अण्डा देने का समय मार्च से जून तक है। यह घास फूस और रेशे तथा जड़ का सुन्दर प्यालेनुमा घोसला बनाकर जमीन पर रख देती है जिसमें मादा तीन चार पिलछौंह या राखीरंग लिये सफेद अण्डे देती है जिन पर भूरा चित्तियाँ पड़ी रहती है।

अबाबील परिवार

(FAMILY HIRUNDINIDAE)

अबाबील परिवार में वे छोटी छोटी चिड़ियाँ है जो दिन भर हवा में उड़ती रहती है। ये देखने में बतासी की भाई-बन्धु जान पड़ती है लेकिन ये उनसे भिन्न हैं।

दिन भर हवा में उड़ने के कारण इनके डैने इनके कद को देखते हुए बड़े और नोकीले जान पड़ते हैं। ये सब कीटभक्षी पक्षी हैं, जो हवा में उड़ते-उड़ते कीड़े पकड़ लेते हैं।

इनकी कई जातियाँ हमारे यहाँ पायी जाती हैं जिनमें से अपने यहाँ की प्रसिद्ध अबाबील का वर्णन यहाँ दिया जा रहा है।

अबाबील

(RED RUMPED SWALLOW)

अबाबील हमारी उन परिचित चिड़ियों में से है जिन्हें हम दिन भर हवा में उड़ते देखते हैं। दिन भर उड़ते रहने के कारण इनके डैने बढ़कर इनके शरीर से बड़े हो गये हैं। इसीलिए ये अपने घोंसले से हवा में कूदकर आकाश में उड़ने लगती हैं और फिर वहीं से अपने घोंसले में आकर घुस जाती हैं। जमीन पर उतर पड़ने से इन्हें भी बतासी की ही तरह ऊपर उठने में बड़ी दिक्कत होती है।

अबाबील
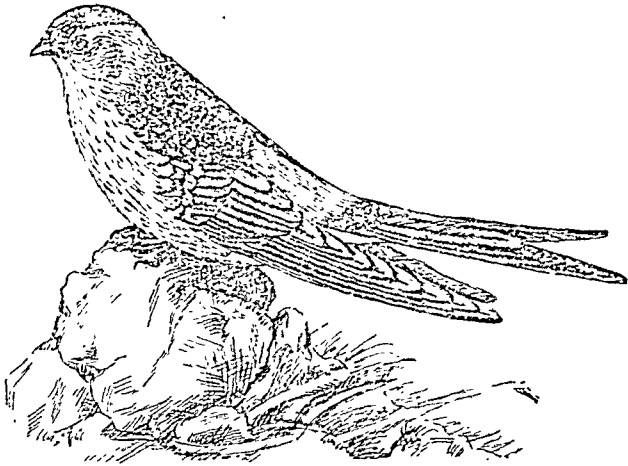
अबाबील हमारे यहाँ की छः इंच की बारहमासी चिड़िया है जो थोड़ा-बहुत स्थान-परिवर्तन तो जरूर करती है, पर हमारे देश को छोड़कर कहीं बाहर नहीं जाती। हमारे देश में यह प्रायः सभी स्थानों में पायी जाती है और हिमालय पर भी यह चार हजार फुट की उँचाई तक चली जाती है।

हम इनकी तलाश में दूर नहीं जाना पड़ता। किसी पुराने मकान, बड़े मन्दिर या मस्जिद के आस पास जहाँ इनके घोंसलों की कतार रहती है इनके झुंड के झुंड उड़ते मिल जाते हैं। ये दिन भर उड़कर भी जैसे थकती ही नहीं और यह बात नहीं है कि इनकी उड़ान की तेजी घटी गाँवों तक ही रहती हो। जब ये कहीं बाहर उड़कर जाती हैं तो इनकी रफ्तार ७०–८० मील की घंटे हो जाती है। उड़ते समय अपने लम्बे परों को साथ कर ये उनके सिरों को थोड़ा-थोड़ा हिलाकर जैसे हवा को चीरती चली जाती हैं। इनका मुख्य भोजन हवा में उड़नेवाले पतिंगे हैं जिन्हें ये अपने चौड़े मुँह में उड़ते ही उड़ते पकड़ लेती हैं।

इनके नर और मादा का रंग रूप एक ही सा होता है। जैसा कि हम पहले कह चुके हैं लम्बाई में ये छ इंच से ज्यादा नहीं होती।

अबाबील का ऊपरी हिस्सा नीलापन लिये चमकीला काला होता है जिसमें दुम की जड़ के पास एक सफ़ेद चित्ता रहता है। सिर के बगल के हिस्से भूरे गले के चारों ओर एक कत्थई पट्टी और नीचे का हिस्सा कत्थई छाँह लिए हल्का रहता है जिस पर छोटी छोटी खड़ी भूरी लकीरें पड़ी रहती हैं। इनकी चोंच और पैर काले होते हैं। दुम लम्बी और दोफंकी रहती है।

अबाबील अण्डे और घोंसले के मामले में भी अन्य चिड़ियों से अलग है। इसके घोंसले घास फूस या टहनियों के न होकर मिट्टी के होते हैं जो प्रायः स्थायी रूप से बने रहते हैं। इन घोंसलों के लिए यह उड़ते उड़ते ही किसी मिट्टी के भीटे में चोंच मारकर मिट्टी खुरच लेती है जो इसके थूक में मिलकर नरम और चिपचिपी हो जाती है। इसी पदार्थ से यह बहुत सुन्दर और मजबूत घोंसला बनाती है जिसे देखने से ऐसा जान पड़ता है जैसे किसी की छत पर मिट्टी का कटोरा चिपका दिया हो। भीतर जाने के लिए छत के पास एक छेद रहता है जिसमें से इसे बार बार आने-जाने देना जा सकता है। यह घोंसला भीतर से भी परों वगैरह से मुलायम कर दिया जाता है जिसमें मार्च अप्रैल से अगस्त के बीच तीन चार सफेद अण्डे देती है।

तूती-परिवार

(FAMILY FRINGILLIDAE)

तूती परिवार काफी बड़ा है जिसमें हर तरह की तूती गौरैया और चपरचिरटा शामिल हैं। इनकी संख्या ६०० से भी ऊपर है।

इन चिड़ियों का मुख्य भोजन तो दाना और बीज आदि है, लेकिन ये कीड़े-मकोड़े और उनकी जोराइयाँ भी खा लेती हैं।

इनकी चोंच छोटी, कड़ी और तिकोनी होती है जिससे ये कड़े बीज और फलों की गुठलियाँ बड़ी आसानी से तोड़ डालती हैं।

इनमें से कुछ चिड़ियाँ रंगीन पोशाकवाली होती हैं और कुछ ऐसी भी हैं जिनके बदन का रंग मौसम आने पर बदल जाता है।

यहाँ इनमें से तीन प्रसिद्ध जातियों का वर्णन दिया जा रहा है।

तूती
(ROSE FINCH)

तूती हमारे यहाँ की प्रसिद्ध बारहमासी चिड़िया है जिसे हम केवल जाड़ों में देखने के कारण मौसमी पक्षी समझते हैं। यह हमारे देश भर में मैदानी भागों में अवश्य जाड़े में आती है, लेकिन गरमियों में हमारे देश से बाहर न जाकर हिमालय के दस हजार फुट ऊँचे स्थानों में रह जाती है, और वहीं अण्डे देती है।

तूती

तूती हमारी गौरैया से कद में कुछ ही बड़ी होती है जिसके नर-मादा के रंग में भेद रहता है। नर गुलाबी रंग की छः इंच की चिड़िया है जिसकी पीठ और बगल के हिस्से में कुछ भूरापन रहता है। नीचे का हिस्सा हलका रहता है जो दुम के नीचे जाते-जाते सफेद हो जाता है। मादा हरछौंह भूरे रंग की होती है जिसके ऊपरी और बगली हिस्से पर भूरी लकीरें पड़ी रहती हैं। इसकी चोंच सींग के रंग की और पैर धुमैले भूरे रहते हैं। चोंच मोटी और तिकोनी रहती है।

तूती जाड़ों में हमारे देश भर में फैल जाती है। इसके छोटे-छोटे झुंड खेतों,

मैदानों और जगलो मे दिखाई पडते हैं जो अपने भोजन की तलाश में एक जगह मे उडकर दूसरी जगह आने-जाते रहते हैं। इसका मुख्य भोजन हर किस्म के फल फूल और हर तरह के गल्ला और बीज हैं। इसकी बोली बडी मीठी होती है, जो दूर से नबीजी-सी जान पडती है। इसीसे कहीं-कहीं इसे नबीजी भी कहते हैं।

तूती के जोडा बाँधने का समय जून से अगस्त तक रहता है जब ये मैदानों से हिमालय के ऊँचे प्रान्तों मे चली जाती हैं। वहाँ ये घास-फूस और जडो तथा रेशों से सुन्दर प्यालानुमा घोसला बनाती हैं जो किसी झाडी में तीन-चार फुट की ऊँचाई पर रखा रहता है। मादा इसमें नीले रग के तीन-चार अण्डे देती है जिन पर गुलाबी और कत्थई चित्तियाँ पडी रहती हैं।

गौरैया

(HOUSE SPARROW)

गौरैया को ऐसा कौन होगा जो न पहचानता हो। दिन भर अपने घरों में घूमनेवाली इस छोटी चिडिया से हम सब भली-भाँति परिचित हैं। यह मनुष्यों से इतनी ढीठ हो गयी है कि शायद ही कोई घर ऐसा होगा जहाँ यह आँगन में दिखाई न पडती हो।

गौरैया

गौरैया हमारे यहाँ की बारहमासी चिडिया है जो हमारे देश में प्रायः सभी स्थानो में पायी जाती है। यह एक छोटी चिडिया है जिसके नर-मादा की शक्ल में थोडा फर्क रहता है। नर के सिर का ऊपरी भाग सिलेटी और चोंच से दोनों आँखो तक और चोंच से गरदन के नीचे सीने तक काला रहता है, पीठ और डैने कत्थई भूरे होते हैं जिनमें छोटी-छोटी काली और सफेद धारियाँ रहती हैं। दुम गहरी भूरी होती है जिसके किनारे हलके बादामी रहते हैं। बाकी निचला हिस्सा हल्के राख के रग का रहता है। मादा की गरदन से लेकर नीचे का हिस्सा नर-जैसा, ऊपरी हिस्सा भूरा, तथा डैने गहरे भूरे होते हैं जिन पर नर-जैसी काली और सफेद धारियाँ रहती हैं। दोनों की आँख के ऊपर एक आडी-सी बादामी रेखा होती है।

इसकी चोंच और पैर भूरे रंग के होते हैं। चोंच दाना खानेवाली चिड़ियों-जैसी मोटी होती है। नर की चोंच वैसे तो भूरी रहती है, पर गरमी में इसका रंग काला हो जाता है।

गौरैया छः इंच की, छोटी-सी चिड़िया है जिसके विना सचमुच घर सूना लगने लगता है। यह वैसे तो हमारा कुछ नुकसान नहीं करती, लेकिन घोंसला वनाने के लिए यह किसी भी ऊँचे सूराख या कोने को नहीं छोड़ती और तव काफी गंदगी फैलाती है। घोंसले का काम वारहों महीने चलता ही रहता है और इसके घोंसले में साल के हर महीने में अण्डे मिल सकते हैं। इसके घोंसले इसके कद को देखते हुए वड़े ही कहे जायेंगे, जिसमें यह घास-फूस, रुई, ऊन, कागज आदि जिस चीज के भी छोटे टुकड़े पाती है, लगाती रहती है।

इसके अण्डे राख के रंग के होते हैं जिन पर सिलेटी और भूरी चित्तियाँ पड़ी रहती हैं। इनकी संख्या चार-पाँच तक हो जाती है।

पथरचिरटा

(BLACK HEADED BUNTING)

पथरचिरटा हमारे यहाँ का मौसमी पक्षी है जो हमारे देश में उत्तर की ओर से सितम्वर में आकर मार्च अप्रैल तक फिर उसी ओर वापस चला जाता है। जाड़ों
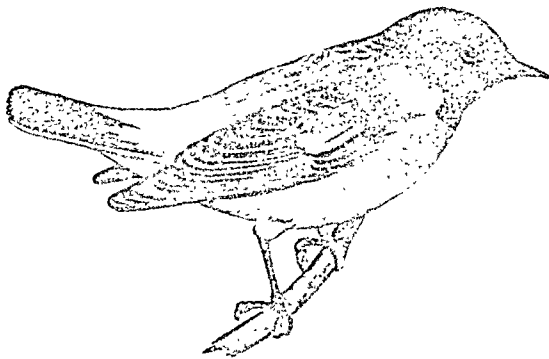
पथरचिरटा

में ये छोटे-छोटे झुंडों में सारे देश में फैल जाते हैं और हमारे यहाँ खुले मैदानों, झाड़ियों और घास से भरे हुए तितरे-वितरे जंगलों में इन्हें देखना कठिन नहीं होता।

ये गौरैया की शक्ल-सूरत और उसी कद के छोटे-से पक्षी हैं जिनका नीचे का हिस्सा पीला रहता है। इनका ऊपरी हिस्सा नारंगी भूरा रहता है और डैनों पर गाढ़ी कत्थई धारियाँ पड़ी रहती हैं। सिर का ऊपरी हिस्सा काला और दुम गाढ़ी भूरी रहती है, जो गौरैया से बड़ी और कुछ दोफंकी रहती है। मादा कद में बराबर होते हुए भी नर से हल्के रंग की रहती है। इनकी चोंच सींग के रंग की और पैर प्याजी भूरे रहते हैं।

पथरचिरटा का मुख्य भोजन गल्ला तथा बीज है और इसीलिए हमारी रबी की फसल में इनके झुंड अक्सर खेतों में दिखाई पड़ते हैं।

इनके जोड़ा बाँधने का समय मई से जून तक है जब ये हमारे यहाँ से लौटकर हमारे देश से बाहर चले जाते हैं और वहाँ अपना घास-फूस, बाल, ऊन और रेशा का सुन्दर प्यालेनुमा घोसला बनाते हैं, जो किसी झाड़ी में तीन चार फुट की ऊँचाई पर रहता है। मादा समय आने पर करीब पाँच अण्डे देती है जो हलका हरापन लिये सफेद रहते हैं और जिन पर गाढ़ी भूरी तथा सिलेटी बिन्दियाँ पड़ी रहती हैं।

बया-परिवार

(FAMILY PLOCIDAE)

इस परिवार के पक्षी गौरैया के भाई-बन्धु हैं जिनकी चोंच गौरैयों की तरह छोटी, कड़ी और तिकोनी होती है। इनका रंगरूप भी उन्हीं से मिलता जुलता रहता है और इनकी आदतें भी उन्हीं जैसी होती हैं। ये बहुत सुन्दर घोंसला बनाते हैं। यहाँ प्रसिद्ध बया का वर्णन दिया जा रहा है।

बया

(WEAVER BIRD)

बया हमारे यहाँ का सबसे कारीगर पक्षी है जो अपना ऐसा सुन्दर घोसला बनाता है कि उसे देखकर फिर कोई इस पक्षी को कभी भुला नहीं सकता।

देहात में बबूल आदि नीचे पेड़ों में बीसियों की तादाद में इनके तूँबी की शकल के घोसले अक्सर लटकते हुए दिखाई पड़ते हैं जिन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता है कि किसी अच्छे कारीगर ने छोटी-छोटी लम्बी झबियाँ बिनकर लटका दी हैं। इन

सुन्दर घोंसलों का कारीगर यहाँ का यही बारहमासी पक्षी है। यह जाड़ों में इसी देश में थोड़ा स्थान-परिवर्तन जरूर कर लेता है, पर देश छोड़कर कहीं बाहर नहीं जाता।

बया गौरैया के बराबर और उसी शकल की छः इंच की छोटी चिड़िया है जिसके नर और मादा भी गौरैया की तरह अलग-अलग रंग-रूप के होते हैं। मादा बया को देखकर अक्सर मादा गौरैया या तूती का धोखा हो सकता है क्योंकि उसका रंग और उसकी शकल-मूरत ही नहीं बल्कि उसकी चोंच भी गौरैया की तरह मोटी होती है जो दाना चुनने की खासियत है।

बया

नर बया जोड़ा बाँधने के समय को छोड़कर बाकी महीने मादा की शकल का रहता है, पर जोड़ा बाँधने का समय आने पर उसकी पोशाक बहुत सुन्दर और भड़कीली हो जाती है। तब उसकी आँख के नीचे से लेकर सीने के ऊपर तक का हिस्सा स्याही मायल एवं गहरा भूरा और सिर का समस्त ऊपरी हिस्सा और सीना पीला हो जाता है जो पेट तक पहुँचते-पहुँचते सफेदी में बदल जाता है। डैने भूरे रहते हैं जिन पर गहरी कत्थई और सफेद खड़ी-खड़ी धारियाँ पड़ी रहती हैं और दुम भूरी होती है।

इसकी चोंच पीलापन लिये बादामी और पैर स्याह रंग के होते हैं।

बया को घना जंगल पसन्द नहीं। यह गाँव के खेतों के आस-पास बबूल आदि के पेड़ों पर रहता है। गौरैया की तरह दाना ही इसका मुख्य भोजन है, लेकिन अपने बच्चों को कीड़े-मकोड़े खिलाने में उसे परहेज नहीं। बया अप्रैल, मई के बाद अपनी चोंच से सरपत, रामबाँस, केला और काँस के पतले-पतले रेशों से अपना सुन्दर घोंसला बनाते हैं जो नीचे गोल होकर ऊपर पतले हो जाते हैं। इसमें घुसने के लिए नीचे से

रास्ता रहता है। भीतर दो हिस्से होते हैं—एक तो वही जिसमें बाहर से आने का रास्ता बना रहता है और दूसरा जिसमें कुछ ऊपर जाकर फिर नीचे की ओर उतरना पड़ता है। इसमें अण्डे रहते हैं। इस तरह किसी दुश्मन का अण्डे के खाने तक पहुँचने का डर नहीं रहता और उनके बच्चे आँधी-पानी से भी बचे रहते हैं। मादा बया अक्सर दो अण्डे देती है, पर कभी-कभी इनके तीन-चार अण्डे भी पाये गये हैं। ये अण्डे धुँधले सफेद होते हैं जिन पर किसी किस्म की चित्ती नहीं रहती।

तेलियर-परिवार

(*FAMILY STURNIDAE*)

तेलियर वंश में देशी मैना की जाति के सब पक्षी रखे गये हैं जो कद में गलगला के बराबर होते हैं। इनमें कुछ का रंग भूरा, कुछ का कत्थई और कुछ का चितकबरा होता है। ये सर्वभक्षी पक्षी हैं और इनमें की कुछ जातियाँ हमारी बस्ती में अक्सर दिखाई पड़ती हैं।

इनमें से कुछ प्रसिद्ध पक्षियों का वर्णन यहाँ दिया जा रहा है।

तेलियर

(STARLING)

तेलियर मैना की जाति के पक्षी हैं जो अपनी चितली पोशाक के कारण बड़ी आसानी से पहचान लिये जाते हैं। हमारे देश में पहाड़ी मैना को साहित्य में जो स्थान प्राप्त है वही स्थान अंग्रेजी साहित्य में तेलियर को वहाँ के साहित्यकारों ने दिया है। यह है भी विदेश का पक्षी जो हमारे यहाँ जाड़ों में आकर जाड़ा समाप्त होते ही फिर उसी ओर लौट जाता है। इसे तेलियर मैना भी कहते हैं।

तेलियर आठ इंच का सुन्दर पक्षी है जिसके नर-मादा करीब-करीब एक से ही होते हैं। इसका शरीर चमकीला काला रहता है। इसके शरीर के कुछ परों के सिरे हल्के भूरे रंग के रहते हैं जिनके कारण इसका सारा शरीर चित्तियों से भरा दिखाई पड़ता है और उसमें गहरे-नीले तथा हरेपन की झलक-सी रहती है। दुम और डैने भूरे रंग के होते हैं जिनके सिरे बादामी कोर के रहते हैं। इसकी चोंच पीली और पैर प्याजी भूरे रहते हैं। मादा नर से धूमिल और ज्यादा चितली रहती है।

तेलियर गरोह में रहनेवाले पक्षी हैं जो अपने बड़े-बड़े झुंड बनाकर जमीन पर कीड़े-मकोड़े चुनते रहते हैं। ये जैसे बहुत जल्दी में रहते हैं और थोड़ी ही देर में वहाँ से आगे खिसक जाते हैं। खतरा देखकर ये पेड़ों पर जा बैठते हैं और थोड़ी देर में फिर पूरा गरोह जमीन पर उतर कर कीड़े-मकोड़े पकड़ने लगता है। कीड़ों के अलावा ये फल-फूल और गल्ला आदि भी खाते हैं।
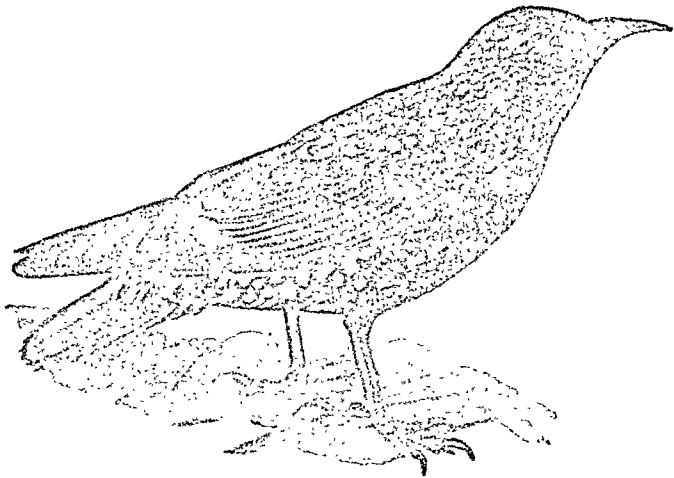
तेलियर मैना

तेलियर मौसमी पक्षी होने के कारण अण्डा देने के समय हमारे देश से बाहर चले जाते हैं, लेकिन इनकी दो एक जातियाँ, जो कद में इनसे कुछ छोटी होती हैं, कश्मीर में रह कर वहीं अण्डे देती हैं। ये अप्रैल, मई में नदी के किनारेवाले पेड़ों के सूराखों में घास-फूस और पर आदि रखकर अपना मामूली-सा घोंसला भी बनाते हैं जिसमें मादा पाँच-छः अण्डे देती है। अण्डे हरापन लिये हलके नीले रंग के होते हैं और उन पर किसी प्रकार की चित्तियाँ नहीं पड़ी रहतीं।

देशी मैना

(MYNA)

मैना के नाम से कई चिड़ियाँ हमारे यहाँ मशहूर हैं जिनकी शकल-सूरत में थोड़ा

जा रहे हैं। ये चारो ही यहा के बारहमासी पक्षी हैं और हमारे देश में सभी जगह फैले हुए हैं।

१ किलहँटा—Common Myna
२ किलनहिया या चही—Bank Myna
३ अबलखा—Pied Myna
४ पवई—Black headed Myna

ये चारो हमारे बहुत परिचित पक्षी हैं जिनसे कोई भी आबादी खाली नही मिलेगी। गाव के मैदानो में, खेतो और ताल तलैया के आस-पास, इनको तलाश करने में जरा भी दिक्कत नही उठानी पडती।

देशी मैना (किलहँटा)

वैसे तो ये गोल बनाकर रहते और बसेरा लेते हैं, पर दिन मे इन्हें अक्सर जोडे में ही देखा जाता।
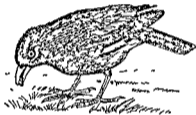
किलहँटा (Com Myna) इनमें सबसे बडा होता है जिसके नर और मादा एक रग रूप के होते हैं। यह १०–११ इच का खैरे रग का पक्षी है जिसका सिर, गरदन, दुम और सीना काला होता है। पेट और डैने के कुछ हिस्से के अलावा दुम का सिरा और दुम का निचला हिस्सा सफेद रहता है। इसकी चाच और चाच की जड से आँख के नीचे तक का उभरा हुआ गोश्त चटक पीला रहता है। पैर भी पीले होते हैं।

किलहँटा सर्वभक्षी है जिसका मुख्य भोजन कीडे मकोडे हैं। इसके अण्डा देने और घोसला बनाने का समय तो जून स अगस्त तक है। पर इसको शायद घोसला बनाना आता नही क्योंकि वैसे तो यह कौए आदि के पुराने घोसलो को ही इस्तेमाल कर लेता है, लेकिन जब मजबूरी आ पडती है तो यह कच्चे मकान की छत या पुरानी दीवार के किसी सूराख में घास फूस और रुई इत्यादि को जमा करके टेढा-मेढ़ा घोसला बना लेता है जिसमें मादा तीन से छ तक नीले रग के अण्डे देती है।

किलहँटा के बाद किलनहिया (Bank Myna) या चही का नम्बर आता है। इसको यह नाम शायद नदी के किनार चरनेवाले मवेशियो की सोहबत से मिला है जिनकी किलनी आदि यह खाती रहती है। इसको दरिया मैना भी कहते हैं और यह है भी दरियावाली मैना।

इसके भी नर और मादा एक किस्म के होते हैं और अपने पद, अपने घोंसले बनाने के ढंग और अपने रंग-रूप के अलावा उसकी बाकी सब आदतें किलहँटे से मिलती-जुलती होती हैं।

चही नौ-दस इंच की छोटी चिड़िया है जिसका सिर के ऊपर और बगल तक का हिस्सा तो काला रहता है, पर बाकी सब सिलेटी रंग का होता है। पेट और पंख के बीच में एक-एक गुलाबी धब्बा रहता है जो उड़ने पर साफ दिखलाई पड़ता है। डैने और दुम भी काली होती हैं जिनका सिरा बादामी रहता है।
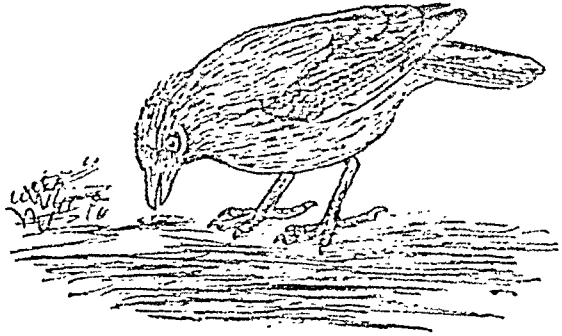
चही मैना

इसकी चोंच और पैर पीले होते हैं। चोंच की जड़ से आँख के नीचे होते हुए एक लाल धारी रहती है। यह पतेना की तरह कगारों में मिट्टी खोदकर छः-सात फुट गहरे सूराख में अपना घोंसला बनाती है जिसमें मादा चार-पाँच नीले अण्डे देती है।
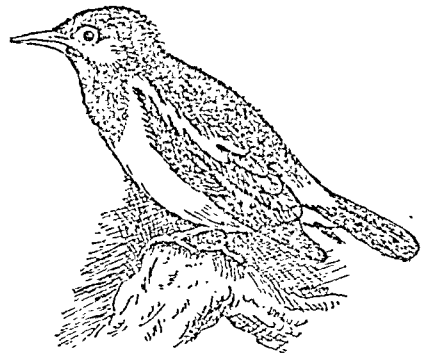
अबलखा किलनहिया के बराबर ही होता है और इसके भी नर-मादा एक रंग के होते हैं। इसका पूरा सिर और गरदन काली होती है जिसमें चोंच की जड़ से दोनों आँखों के नीचे होता हुआ एक गोलाकार सफेद चित्ता रहता है। ऊपरी हिस्सा, दुम और डैने खैरापन लिये काले होते हैं जिसमें दुम की जड़ का ऊपरी हिस्सा भी सफेद रह जाता है। दोनों डैनों पर भी एक-एक सफेद

अबलखा मैना

आडी लकीर रहती है और नीचे का तमाम हिस्सा बहुत हल्का बादामीपन लिये हुए राख के रंग का होता है।

इसके पैर पीलापन लिये सफेद और चोंच नारंगी भूरी होती है जिसका निचला हिस्सा सफेद रहता है। कीडो के अलावा इसकी खूराक में फल फूल भी शामिल हैं।

अबलखा के अण्डा देने का समय मई से अगस्त तक है। उसी समय किसी पेड़ में इनके गोत्र के गोल एक साथ ही घोंसला बनाते हैं। इसका घोंसला घास फूस का भद्दा-सा होता है जो ऊन और पर वगैरह भीतर लगाकर मुलायम कर दिया जाता है। मादा इसी में बैठकर चार से छ तक नीले अण्डे देती है।

पवई

पवई का वर्णन अन्त में दिया जा रहा है लेकिन गाने में यह तीनो से आगे है। यह इन सबसे छोटी जरूर होती है पर इसकी बोली इतनी सुरीली होती है कि लोग इसे पिंजडे में पालते हैं।

इसके भी नर मादा की शकल-सूरत में कोई भेद नही रहता लेकिन इसके सिर पर एक काली चोटी रहती है जो माथे के काले रंग में मिली हुई और पीछे की ओर लटकी रहती है। इसका और बाकी शरीर गहरे बादामी रंग का होता है। डैनों का कुछ हिस्सा काला और दुम के नीचे का हिस्सा सफेद रहता है।

इसकी चोंच का सिरा पीला बीच का हिस्सा हरा और जड नीली रहती है। पैरो का रंग चटक पीला होता है।

इसके अण्डा देने का समय मई से अगस्त तक है जब यह किसी पेड के खोंथ या

किसी मकान के सूराख में घास-फूस और पर की मदद से मादा के बैठने और अण्डा देने की जगह बना देती है।

इसके अण्डों की तादाद तीन से पांच तक होती है जिनका रंग अन्य मैनाओं के अण्डों के समान नीला ही होता है, लेकिन ये गहरे नीले न होकर हल्के नीले ही रहते हैं।

मैना-परिवार

(FAMILY GRACULIDAE)

इस परिवार में पहाड़ी मैनाएँ रखी गयी हैं जो वृक्षों पर ही अपना समय बिताती हैं। इनके शरीर का रंग चमकीला काला होता है और इन्हें हम अक्सर उनकी मीठी बोली के लिए पिंजड़े में पालते हैं। यहाँ उसी का वर्णन दिया जा रहा है।

पहाड़ी मैना

(GRACALE)

मैना से हम सभी परिचित हैं। पालतू चिड़ियों में तोता-मैना ही तो हमारे यहाँ सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं। ये दोनों आदमियों की बोली की बड़ी खूबी से नकल कर लेती हैं और इसीलिए इन्हें पिंजड़ों में कैद रहना पड़ता है।

मैना हमारे यहाँ की बारहमासी पहाड़ी चिड़िया है जो हमारा देश छोड़कर बाहर नहीं जाती। यह यहीं पहाड़ों पर रहती है और जाड़ों में पहाड़ों से उतरकर मैदानों में भी कुछ दूर चली आती है। हमारे देश में इसकी कई जातियाँ यहाँ के भिन्न-भिन्न पहाड़ी स्थानों पर पायी जाती हैं। इनका रंग-रूप एक-जैसा ही रहता है। बस, थोड़ा-बहुत फर्क जो रहता है वह इनकी आँख के बगल की पीली खाल में ही रहता है; वैसे सबकी आदतें एक-जैसी ही होती हैं।

मैना दस इंच लंबा काले रंग का पक्षी है जिसके नर-मादा एक जैसे होते हैं। इसका सारा बदन चमकीले काले रंग का रहता है, जिसमें हरे और बैंगनीपन की झलक रहती है। डैने पर एक सफेद चित्ता रहता है और आँखों के पीछे से सिर की

गुद्दी तक पीली खाल की पट्टी बड़ी रहती है जिसका सिरा पीला रहता है। पैर नारंगीपन लिये पीले रंग के रहते हैं।

मैना गरोह में रहनेवाली चिड़िया है जो अपना ज्यादा समय पेड़ों पर ही बिताती है। यह बहुत शोर मचानेवाली होती है और इसकी चम-चम से जी ऊब जाता है। कभी-कभी यह जमीन पर भी उतरती और देसी मैनाओं की तरह सीधी न चलकर फुदक-फुदककर चलती है।

पहाड़ी मैना

इसका मुख्य भोजन कीड़े मकोड़े और फल-फूल हैं। यह फूलों का रस पीने में भी बहुत उस्ताद होती है।

इसके जोड़ा बाँधने का समय फरवरी से मई तक रहता है जब यह किसी पेड़ के ऊँचे खोंते में घास-फूस और पर आदि रखकर अपना घोंसला बना लेती है। मादा इसी में हल्के हरे या निलछौंह हरे रंग के दो-तीन अण्डे देती है जिन पर भूरी बैंगनी या कत्थई घनी बिन्दियाँ पड़ी रहती हैं।

पीलक परिवार

(FAMILY ORIOLIDAE)

पीलक अपनी सुन्दर पीली पोशाक के कारण हमारे बहुत परिचित पक्षी हैं। ये अपना समय वृक्षों पर ही बिताते हैं और जमीन पर नहीं उतरते।

इनका मुख्य भोजन कीड़े-मकोड़े हैं, लेकिन ये जंगली फल-फूल भी बड़े मजे में खाते हैं। ये घास-फूस और पेड़ की छाल का बहुत सुन्दर घोंसला बनाते हैं जो किसी घने पेड़ की डाली से लटकता रहता है।

हमारे यहाँ इनकी दो जातियाँ पायी जाती हैं जिनमें से एक का वर्णन यहाँ दिया जा रहा है।

पीलक

(GOLDEN ORIOLE)

पीलक को पिपरोला और पियल्ला भी कहते हैं। यह पीले रंग की नौ-दस इंच की बहुत ही सुन्दर चिड़िया है, जो अपनी सुनहली पीली पोशाक के कारण कहीं नहीं

पीलक

छिपती। यह बहुत शरमीली चिड़िया है जो अपना सारा समय पेड़ों पर ही अक्सर बिताती है।

पियल्ला उन मौसमी चिड़िया में म है जो हमारे यहाँ आमो के साथ-साथ आती है और अगस्त के अ त तक फिर दक्खिन की ओर लौट जाती है। इसकी दो मुख्य जातियाँ है—सुनहली पालक (Golden Oriole) और टोपीदार पीलक या हर दुआ (Black headed Oriole)। दोनो पीली रहती है पर टोपीदार का सिर काला होता है। टोपीदार के नर मादा एक जैस होते है लेकिन सुनहरे का नर गहरे सुनहले पीले रग का होता है। इसके डैने और दुम के नीचे का हिस्सा काला होता है और आख के दाना कोना पर गहरी काली लकीर रहती है। मादा के काल रग की जगह गहरा भूरा ले लेता है। इनकी पीठ हरापन लिये पीली और सीना हलका पीला होता है। चोच गहरी गुलाबी या अबीरी और पैर गहरे सिलेटी रग क होते हैं।

जैसा ऊपर बता चुका हूँ पियल्ला बहुत सीधी और शरमीली हाती है। नौ इस वा इस चिड़िया का इस पेड से उस पेड पर उडकर जाने के सिवा हम वैसे ज्यादा नही देखते क्योकि यह ज्यादातर ऊँची घनी डालियो पर ही रहती है। पीपल पाकर बरगद आदि के फला क अलावा यह कीड मकोडे भी खा लेती है।

इसके घासले बनाने का ढग बडा विचित्र है। इसके अण्डे देने का समय मई से जुलाई तक रहता है जब यह किसी ऊँची दोफकी डाल को अपने घासल क लिए चुनती है। उसकी दोनो शाखो को यह शहतूत आदि की पतली छाल से इस तरह लपेटती है कि उस पर इसका घासला रुक सके। फिर उसी पर यह सूखी घास वगरह से अपना बडा सु दर गोल घासला बनाती है जिसमें मादा दो-तीन सफद अण्ड देती है। अण्डो पर एक आर काली चित्तियाँ पडी रहती है।

नीलमी-परिवार

(FAMILY IRENIDAE)

इस परिवार के प ी अपन नील रग की पाशाक क लिए प्रसिद्ध है जिन्हें नीलमी कहा जाता है। यहाँ उसी में से एक का वणन दिया जा रहा है।

नीलमी

(FAMILY BLUE BIRD)

नीलमा भी हमारे यहाँ की पहाडी चिड़िया है जो अपनी सु दर नीली पाशाक के कारण नीलमी कहलाती है। यह हमारे देश की बारहमासी चिड़िया है जा हिमालय तथा द ि ण भारत क पहाडा पर पायी जाता है।

नीलमी दस इंच की सुन्दर चिड़िया है जिसके नर और मादा के रंग में भेद रहता है। नर का सारा शरीर काले मख़मल-जैसा होता है जिसके सिर के ऊपरी हिस्से से पीठ तक का भाग बैंगनी रहता है। दुम की जड़ के पास भी यही रंग रहता है और डैने पर भी इसी प्रकार की पट्टी पड़ी रहती है। मादा हलके नीले रंग की होती है और उसके डैने और दुम कलछौंह होती है जिसमें एक प्रकार की नीली चमक रहती है। इसकी चोंच और पैर काले रहते हैं।
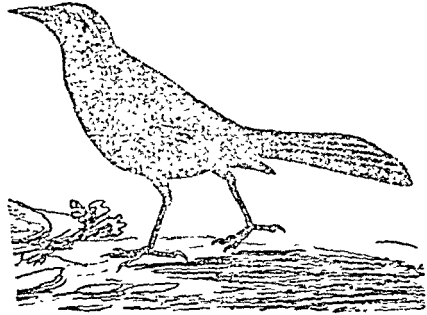
नीलमी

नीलमी हमारे देश में पहाड़ों पर पाँच हजार फुट तक पायी जाती है। यह घने जंगलों में रहनेवाली चिड़िया है जो अपना सारा समय पेड़ों पर ही विताती है। पेड़ों पर यह इस डाली से फुदककर उस डाली पर अक्सर घूमती ही रहती है और कभी-कभी इनका गरोह पेड़ की फुनगी पर बैठा रहता है। दोपहर को ये पानी पीने और नहाने के लिए निकट के झरनों और नदियों के किनारे भी आती हैं। ये एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर जाते समय एक प्रकार की वीट्-वीट् की तरह की तेज आवाज करती रहती हैं।

नीलमी वैसे तो गाढ़े नीले रंग की चिड़िया है, लेकिन इसके वदन का रंग इतना गहरा रहता है कि वह दूर से काला ही जान पड़ता है। जव उड़ते समय कभी सूरज की किरण इसके शरीर पर पड़ती है तव इसका नीला रंग जरूर चमक उठता है। इसका मुख्य भोजन तो जंगली फल-फूल हैं, लेकिन यह फूलों का रस भी वड़े स्वाद से पीती है।

नीलमी के जोड़ा बाँधने का समय जनवरी से मई तक रहता है, जव यह किसी ऊँचे पेड़ पर पन्द्रह-बीस फुट की ऊँचाई पर घास-फूस, रेशों तथा पेड़ पर की काई का छिछला-सा घोंसला वनाती है। मादा इसमें अक्सर दो अण्डे देती है जो हरापन लिये सफेद रहते हैं और जिन पर कत्थई चित्तियाँ पड़ी रहती हैं।

दरजिन हमारे यहाँ के बाग-बगीचों में रहनेवाली पाँच-छः इंच की बारहमासी फुदकी है जिसके नर-मादा एक रंग के होते हैं। जोड़ा बाँधने के समय नर की दुम के बीच के दोनों पंख जरूर लम्बे हो जाते हैं जिससे वह बड़ी आसानी से पहचाना जा सकता है।

दरजिन वैसे तो काफी ढीठ होती है और बाग में बने हुए मकानों के बरामदे तक में निडर होकर घूमा करती है, पर अपने छोटे कद और हरे रंग के कारण यह हरियाली में ऐसी छिप जाती है कि इसकी ओर जल्द हमारा ध्यान ही नहीं जाता। इसका मुख्य भोजन छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़े हैं।
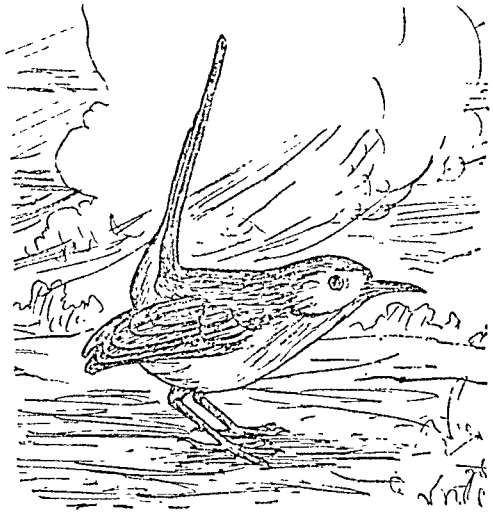
फुदकी (दरजिन)

दरजिन का ऊपर का हिस्सा मामूली पीलापन लिये हरा या धानी और नीचे का एकदम सफेद रहता है तथा सिर का ऊपरी हिस्सा कत्थई और आँख के चारों ओर का भाग राखीपन लिये भूरा रहता है। गरदन के दोनों तरफ एक-एक काली लकीर चोंच से शुरू होकर आँख के नीचे तक चली जाती है। पैर पीलापन लिये भूरे रहते हैं। और चोंच नोकीली, पतली और तेज़ होती है। इसकी दुम ऊपर की ओर उठी रहती है।

दरजिन को यह नाम इसके घोंसला बनाने की वजह से मिला है। यह अपने मुलायम घोंसले को दो बड़ी या कई छोटी पत्तियों को सीकर उनके बीच में रख लेती है। ये घोंसले देखने में इतने सुन्दर होते हैं कि इन्हें देखकर बया के बाद फिर इन्हीं को कारीगर कहा जाता है। पहले यह अपनी तेज चोंच से पत्तियों के किनारे पर छेद कर लेती है, फिर उनमें मकड़ी के जाले और रुई आदि को मिलाकर बनाये हुए डोरे को इस तरह पिरो देती है जैसे कोई होशियार दर्जी कपड़े

के दो टुकड़ों को थैले जैसा सीता है। पत्तियों के ये थैले जिनमें फुदकी के सेमल की रुई आदि के मुलायम घोंसले रहते हैं, किसी झाड़ी या पेड़ में जमीन से पाँच-छ फुट की ऊँचाई पर लटकते रहते हैं।

इसके अण्डा देने का समय मई से जुलाई तक रहता है जब मादा दरजिन तीन चार छोटे-छोटे अण्डे देती है। अण्डों का रंग पीला, हलकी ललाई लिये सफेद या पीलापन लिये हलका नीला होता है। जिन पर गाढ़े बैंगनी, भूरे और कत्थई चित्ते पड़े रहते हैं।

टुनटुनी फुदकी Streaked Fantail Warbler चार इंच की बहुत छोटी फुदकी है जो अपने छोटे कद के ही कारण शायद 'टुनटुनी फुदकी' या 'टुनटुनिया' कहलाती है। यह हमारे देश की बारहमासी चिड़िया है जो सारे देश में फैली हुई है। यह खुले घास के मैदानों में दिखाई पड़ती है। उड़ते समय यह अपनी पंखीजैसी दुम फैला लेती है और हवा में चक्कर काटकर फिर थोड़ी दूर पर उतर पड़ती है। इसका मुख्य भोजन कीड़े-मकोड़े हैं।

फुदकी (टुनटुनी)

टुनटुनी भूरे रंग की चिड़िया है जिसका ऊपरी हिस्सा गहरा भूरा और नीचे का सफेदी मायल भूरा रहता है। पीठ पर गाढ़ी कत्थई टूटी-फूटी धारियाँ पड़ी रहती हैं।

इसके अण्डा देने का समय जून से सितम्बर तक रहता है जब किसी झाड़ी में यह घास फूस का छोटा-सा सुन्दर घोसला बनाती है जो डाली से मजबूती से बँधा रहता है। अण्डों की संख्या तीन से पाँच तक रहती है। ये चित्तीदार सफेद होते हैं और इन पर लाल या बैंगनी चित्तियाँ पड़ी रहती हैं।

पिटपिटी फुदकी Indian Wren Warbler को यह नाम शायद इसकी पिट्-पिट् की बोली के कारण ही मिला है। खतरा निकट देखकर यह अपनी चोंच को

लड़ाकर पिट्-पिट् की आवाज़ करती है जिसके कारण इसको पहचानने में किसी प्रकार का धोखा नहीं हो सकता। यह पाँच इंच की, भूरे रंग की छोटी-सी वारह-मासी फुदकी है जिसके नर-मादा एक ही रंग-रूप और शकल-सूरत के होते हैं।

यह फुदकी भी सारे देश में फैली हुई है जिसे घास के मैदानों, धान के खेतों, झाड़ियों से भरे हुए जंगलों में वड़ी आसानी से देखा जा सकता है। यह अक्सर जोड़े में रहती है, लेकिन जहाँ कीड़े-पतिंगों की संख्या अधिक होती है वहाँ इनके अनेक जोड़े इकट्ठे हो जाते हैं।
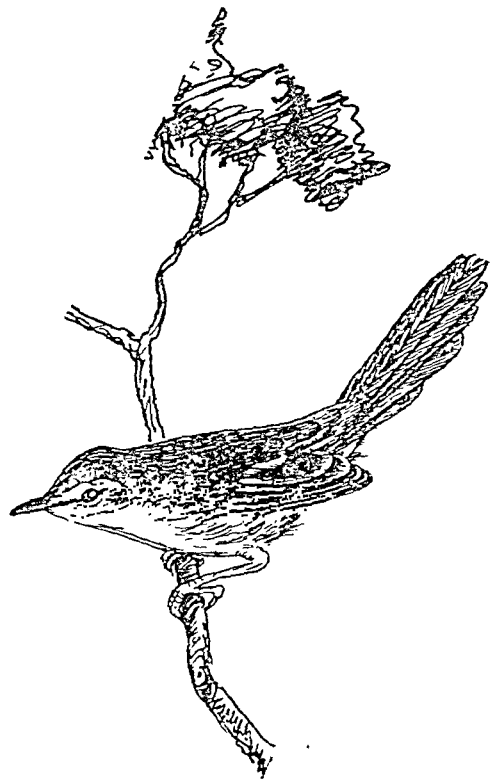
फुदकी (पिटपिटी)

पिटपिटी के वदन का ऊपरी हिस्सा हलका भूरा और नीचे का सफेदी मायल रहता है। इसकी दुम पतली और वढ़ी हुई रहती है। इसका रहन-सहन, भोजन तथा और सव आदतें दरजिन तथा टुनटुनी फुदकी से मिलती-जुलती रहती है।

इसके अण्डा देने का समय मार्च से सितम्बर तक रहता है, जव यह पतली घास-पात और रेशों को वुनकर अपना नासपाती की शकल का सुन्दर और आराम देह घोंसला वनाती है जो किसी खर-पतवार अथवा झाड़ी में जमीन से दो-तीन फुट की ऊँचाई पर लटकता रहता है। इन घोंसलों में वैठकर मादा चार-पाँच तक अण्डे देती है जो हरछौंह नीले रंग के होते हैं और जिनपर कत्थई चित्तियाँ पड़ी रहती हैं।

भुजगा-परिवार

(FAMILY DICRURIDAE)

इस परिवार के पक्षी अपने काले रंग के लिए प्रसिद्ध हैं। इनकी दुम लम्बी, दुफकी या टेढ़ी रहती है। ये बहुत शिकारी और बहादुर पक्षी हैं जिनमें से कुछ हवा में उड़ते उड़ते कीड़े मकोड़ों को पकड़ते हैं और फिर नीचे आकर उन्हें इत्मीनान से खाते हैं। कुछ जमीन पर जानवरों की पीठ पर बैठकर कीड़े मकोड़े पकड़ते रहते हैं।

ये बहुत मीठे स्वर में बोलते हैं और बहुत सवेरे इनकी सुरीली बोली हमें देहातों में सुनने को मिलती है।

इनकी कई जातियाँ हमारे यहा पायी जाती हैं जिनमें से भुजगा और भृगराज बहुत प्रसिद्ध हैं। यहा केवल भुजगे के बारे में सक्षेप में लिखा जा रहा है।

भुजगा

(KING CROW)

भुजगे को यदि हम अपने यहाँ का सबसे बहादुर और साहसी पक्षी कहें तो अनुचित न होगा। यह हमारे यहाँ का बहुत प्रसिद्ध पक्षी है जिसे हम अक्सर गाय-बैल की पीठ पर अथवा टेलीग्राफ के तारों पर बैठा देख सकते हैं। यह अपने अण्डों पर हमला होते देखकर कौवे और चील ही नहीं बन्दरों तक पर हमला कर बैठता है और उस समय उन्हें जान बचाकर भागना ही पड़ता है। यह कभी किसी बेगुनाह चिड़िया पर हमला करता हो ऐसा नहीं देखा गया। बल्कि जिस पेड़ पर भुजगा अपना घोसला बनाता है वह कौए और चील आदि पक्षियों के हमला से बचा ही रहता है और इसीलिए बहुत-सी चिड़ियाँ उसी पर आकर अपना घोसला बनाती हैं। हमारे देश में भुजगा प्राय सभी स्थानों पर पाया जाता है और यह इस देश को छोड़कर कहीं बाहर नहीं जाता।

कैसे तो यह छ सात इंच की छोटी-सी चिड़िया है, पर दुम को मिलाकर यह १२ इंच से कम नहीं होती। इसकी चोंच से दुम तक धुर काली होती है जिसमें कभी-कभी नीली चमक-सी दीख पड़ती है। इसके नर मादा एक ही रंग रूप के होते

हैं जिनकी आँख की पुतली लाल और चोंच तथा पैर काले रहते हैं। इनकी लम्बी दुम सिरे की ओर चलकर कैंचीनुमा दोफंकी हो जाती है जिसकी नोक पर कभी-कभी सफेद चित्ता भी पड़ा रहता है।

भुजंगे का मुख्य भोजन कीड़े पतिंगे हैं जिन्हें यह जमीन से बीन-बीनकर नहीं पकड़ता बल्कि पतेना की तरह उड़ते ही उड़ते इनका शिकार कर लेता है। घास-फूस के ऊपर होकर इसके उड़ने से जो कीड़े उड़ते हैं वे इससे बचकर नहीं जाने पाते।

इसका घास-फूसका घोंसला बहुत सुन्दर होता है। यह गोल या छिछले प्याले-सा रहता है जिसे यह मकड़ी के जाले से किसी दो फाँकवाली ऊँची शाख में जकड़ देता है। यह पहले तो भद्दा रहता है, पर धीरे-धीरे भुजंगे का जोड़ा इसमें बैठ-बैठकर इसे एकदम गोल और सुन्दर बना लेता है।

मादा अप्रैल से अगस्त के दरमियान चार-पाँच सफेद अण्डे देती है। कभी-कभी इन अण्डों
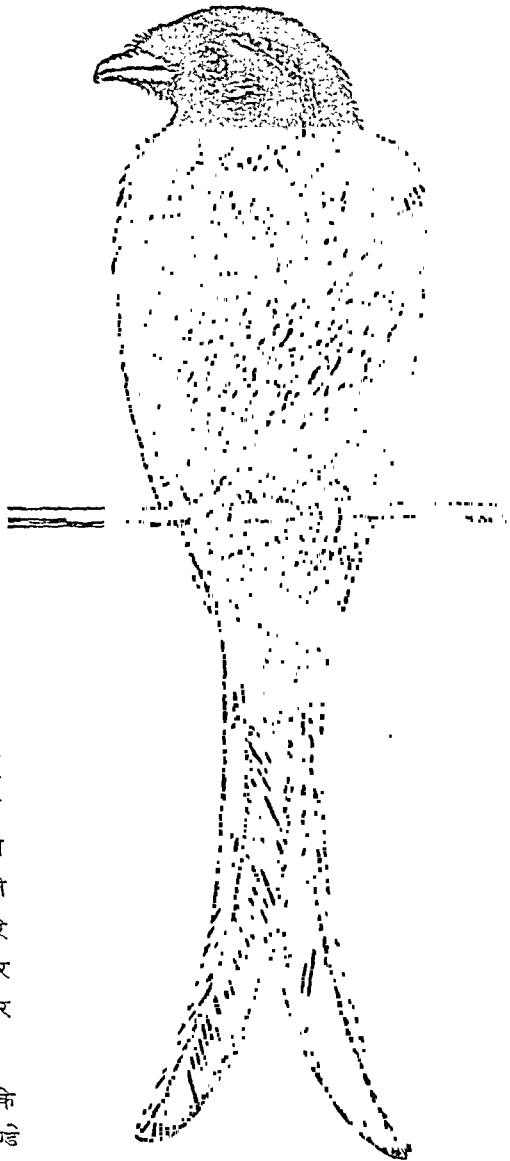
भुजंगा

पर छोटे छोटे काले चित्ते भी पडे रहने और कभी-कभी इसके अण्डे हलके प्याजी रग के भी पाये जाते हैं जिन पर छोटे-छोटे ललछौह भूरे चित्ते रहते हैं।

सहेली-परिवार

(FAMILY CAMPEPHAGIDAE)

इस परिवार के पक्षी यद्यपि लहटोरो के निकट सम्बन्धी है, लेकिन इनकी रगीन पाशाक के कारण इन्हे एक अलग परिवार मे रखा गया है। ये छोटे कद की चिडिया हैं जो लाल, काली या लाल-पीली रग की होती हैं। ये प्राय पाँच-सात के झुड में रहती हैं, इसी से इन्हें हमारे यहाँ 'सात सहेली' भी कहा जाता है।

ये सब शिकारी चिडियाँ हैं जिनकी चोच टेढी और मजबूत होती है। ये कीडे-मकोडो से अपना पेट भरती है।

यहाँ इनकी जाति के एक प्रसिद्ध पक्षी का वर्णन दिया जा रहा है।

सहेली

(MINIVET)

सहेली वैसे तो लहटोरे के परिवार की है लेकिन अपनी सुन्दर रगीन पोशाक के कारण ये उनसे एकदम अलग समझी जाती है। ये गौरैया के बराबर की मौसमी चिडियाँ है जो हमारे यहाँ के मैदानो में जाडा शुरू होने-होने आ जाती हैं और फिर जाडे के अन्त तक उत्तरी पहाडो की ओर लौट जाती हैं। इन चचल पक्षियो को इनकी भडकीली लाल पोशाक के कारण तलाशने में जरा भी दिक्कत नहीं पडती। ये अक्सर छ-सात के गोल मे रहती है इससे इनको 'सात सहेली' या 'सात-सखी' भी कहा जाता है। इनके गोल में अक्सर एक या दो नर और बाकी मादाएँ रहती हैं।

सहेली के नर-मादा एक रग के नही होते। नर की आधी पीठ तक का ऊपरी हिस्सा और गले तक का निचला हिस्सा काला है और डैने को छोडकर बाकी सारा बदन चटक लाल रहता है। डैने भी काले होते है, जिनके बीच मे एक आडी लाल पट्टी पडी रहती है। मादा भी करीब-करीब और सभी बातों में नर ही जैसी होती है जिसमें लाल रग का स्थान पीला ले लेता है।

इतनी सुन्दर पोशाक देकर भी प्रकृति ने इनको मीठी बोली नहीं दी। ये केवल सी-सी-सी से मिलती हुई आवाज करती रहती हैं। इनका मुख्य भोजन कीड़े-मकोड़े हैं।
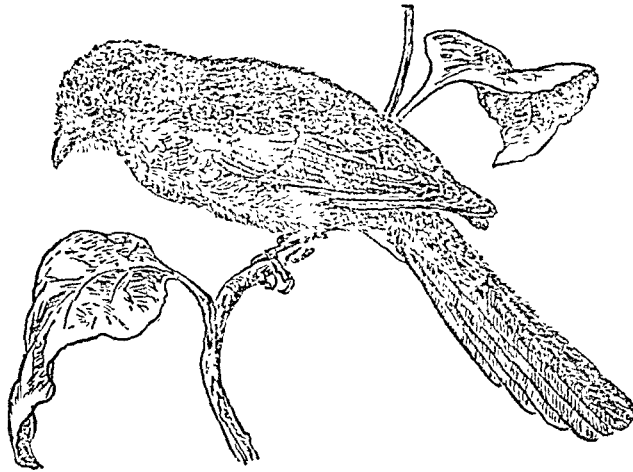
सहेली

इनके अण्डा देने का समय अप्रैल से जुलाई तक है जव ये पतली-पतली डालियों और जड़ों का सुन्दर कटोरेनुमा गहरा घोंसला वनाती हैं, जो मकड़ी के जाले से वनाये हुए लसदार पदार्थ से किसी दुफंकी डाल में जकड़ा रहता है। इनके अण्डों का रंग पत्थरी या हलका अंगूरी रहता है जिन पर कत्थई चित्तियाँ पड़ी रहती हैं। इनकी तादाद दो चार तक रहती है।

लहटोरा-परिवार

(FAMILY LANIIDAE)

लहटोरा-परिवार में सब तरह के लहटोरे रखे गये हैं। ये हमारे परिचित पक्षी हैं जो शिकार के लिए वहुत प्रसिद्ध हैं। ये छिपकली, चूहे और चिड़ियों के अलावा अक्सर हवा में उड़कर कीड़े-मकोड़ों को भी पकड़ लेते हैं और फिर उसी डाल पर आकर उसे किसी काँटे में फँसा कर धीरे-धीरे खाते रहते हैं।

इनकी चोंच शिकारी पक्षियों की तरह टेढ़ी और मजवूत होती है, लेकिन इनके पंजे उनकी तरह मजवूत नहीं होते। इसी कारण ये अपने शिकार को पंजों से

पकड़कर शिकारी चिड़ियों की तरह नोच-नोचकर नहीं खा सकते और उन्हें अपने शिकार का बहुत हिस्सा बेकार छोड़ देना पड़ता है। ये प्रायः मटमैले रंग के होते हैं।

इनकी कई जातियाँ हमारे यहाँ पायी जाती हैं जिनमें से एक प्रसिद्ध लहटोरा का वर्णन यहाँ दिया जा रहा है।

लहटोरा

(GREAT GREY SHRIKE)

लहटोरे को कहीं-कहीं लुटेरवा या लुटेरा भी कहते हैं जो इसके लिए बहुत उपयुक्त शब्द है। कद में छोटे होने पर भी शिकार करने में ये किसी शिकारी पक्षी से पीछे नहीं रहते। कहीं-कहीं इन्हें कसाई चिड़िया भी कहते हैं क्योंकि जब ये कोई शिकार पकड़ते हैं तो उसे पेड़ के किसी मजबूत काँटे में अटका देते हैं और अपने पंजों से नोच-नोचकर खाते हैं। रंग-रूप में भेद होने पर भी सबकी आदतें एक जैसी होती हैं। यहाँ जिस लहटोरा का वर्णन दिया जा रहा है उसे उसके सफेद रंग के कारण हमारे यहाँ दूधिया लहटोरा कहते हैं।
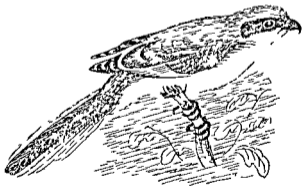
लहटोरा

यह दस इंच की लम्बी मिलेटी और सफेद रंग की चिड़िया है जिसकी चोंच से आँख पर होते हुए गरदन तक एक काली पट्टी चली आती है। इसकी पीठ ऊदी और

डैने काले होते हैं जिसके ऊपरी हिस्से पर सफेद धारियाँ रहती हैं। इसकी लम्बी दुम बीच में काली और दोनों बगलें सफेद रहती हैं और चोंच तथा पैर एकदम काले होते हैं।

लहटोरे की चोंच शिकरे की तरह टेढ़ी होती है जिससे यह अपने शिकार को छूटकर जाने नहीं देता। कीड़े-मकोड़े और टिड्डे ही क्यों, छोटी-छोटी चिड़ियाँ भी इसके हमले से अपने को नहीं बचा पातीं। गाँव के बाहर किसी बबूल के पेड़ पर या किसी ऊँची झाड़ी पर लहटोरों को देखना मुश्किल नहीं होता। ये अक्सर टेलीग्राफ के तार पर भी दिखाई पड़ते हैं।

लहटोरा यहाँ की बारहमासी चिड़िया है जो मार्च से जून के बीच में घोंसला बनाकर अण्डे देती है। इसका घोंसला बहुत ही भद्दा होता है। ये बबूल या और किसी कँटीले पेड़ या झाड़ी पर सूखी कटीली डालियों को जमाकर उनमें थोड़ा घास या ऊन लगा कर मामूली-सा घोंसला बनाते हैं जिसमें मादा तीन से छः तक सफेद अण्डे देती है। इन अण्डों पर भूरे और बैंगनी चित्ते पड़े रहते हैं।

मछमरनी-परिवार

(FAMILY MUSCICAPIDAE)

इस परिवार में सब तरह की मछमरनियाँ रखी गयी हैं जो कीड़े-मकोड़ों से अपना पेट भरती हैं। ये अबाबील या बतासी की तरह बराबर हवा में उड़ती रहकर कीड़े-मकोड़ों को नहीं पकड़तीं बल्कि एक स्थान से उड़कर किसी कीड़े को पकड़कर ये फिर उसे खाने के लिए अपनी जगह पर लौट आती हैं।

इनकी बहुत-सी जातियाँ सारे संसार में फैली हैं, लेकिन इनके रंग-रूप में भेद होने पर भी इनकी आदतों में ज्यादा फरक नहीं होता। ये वैसे तो ज्यादातर भूरे या कत्थई रंग की होती हैं, लेकिन कुछ को प्रकृति ने बड़ी सुन्दर पोशाक दी है। कुछ के बदन का कुछ हिस्सा काला, नीला या बैंगनी रहता है तो कुछ के शरीर पर लाल, पीले तथा काले चित्ते रहते हैं। इनमें से दूधराज, जिसे शाहबुलबुल कहा जाता है, के नर का रंग दूध-सा सफेद और मादा का हलका कत्थई रहता है। उसकी दुम इतनी लम्बी होती है कि वह अपने ढंग की एक निराली चिड़िया ही जान पड़ती है।

यहाँ कुछ प्रसिद्ध मछमरनियों का वर्णन दिया जा रहा है।

मछमरनी

(FLY CATCHERS)

मछमरनियो को यह नाम इसलिए मिला है कि वे दिन भर हवा में उडकर कीडे-मकोडे पकडकर अपना पेट भरती हैं। इनकी एक नही अनेक जातियाँ हमारे देश मे पायी जाती हैं। इनमें से कुछ तो हमारे देश की बारहमासी चिडियाँ हैं और कुछ जाडो में यहाँ आकर जाडा खतम होते होते फिर यहाँ से लौट जाती हैं। इनकी शक्ल सूरत और रग-रूप मे इतना अधिक भेद रहता है कि हम उनको देखकर उन्हें एक परिवार का पक्षी नही कह सकते, लेकिन इन सबका कीडे-मकोडे पकडने का ढग एक ही जैसा रहता है। यहाँ जिस काली मछमरनी का वर्णन दिया जा रहा है, वह हमारे बाग-बगीचो मे रहनेवाली बारहमासी चिडिया है, जिसे हम अपने देश में प्राय सभी स्थानो पर देख सकते हैं।

काली मछमरनी

मछमरनी एक स्थान पर थोडी देर भी स्थिर नही रह सकती और अपना सिर, पख और दुम कुछ न कुछ हिलाती ही रहती है। यह बहुत ढीठ चिडिया है, जिसकी एक डाल से उडकर दूसरी डाल पर आकर पखौनुमा दुम का फैला लेने की आदत हम बडी आसानी मे देख सकते हैं। इसके बाद इसके पहचानने में कोई कठिनाई नही रह जाती। इसकी मुख्य खूराक उडनेवाले पतिगे हैं जिन्हे यह उडकर अपनी चौडी चोच से पकड लेती है।

इस काली मछमरनी के नर और मादा लगभग सात इच लम्बे होते हैं। ये दोनो करीब-करीब एक ही रग रूप के होते हैं। मादा का रग कुछ हलका जरूर होता है लेकिन रगो का बँटवारा नर-जैसा ही रहता है। इनका सिर से लेकर गरदन तक का रग

काला होता है जिसमें माथे से लेकर आँख के ऊपर होते हुए गरदन तक एक सफेद धारी चली आती है। चोंच और गरदन के बगल और नीचे छोटी-छोटी सफेद धारियाँ रहती हैं। पीठ, डैने और दुम गहरी भूरी होती है जिसके बीच के दो परों को छोड़कर बाकी का सिरा सफेद रहता है। इनका पेट सफेद और चोंच तथा पैर काले होते हैं।

मछमरनी के अण्डे देने का समय फरवरी से अगस्त तक रहता है क्योंकि यह भी दो बार अण्डे देती है। इसका घोंसला कटोरानुमा होता है जिसे यह सूखी घास वगैरह में मकड़ी का जाला लपेट कर बनाती है। यह घोंसला किसी पेड़ की दोफंकी डाल पर रखा रहता है।

मादा दो से चार तक सफेद अंडे देती है, जिन पर पेंदे की ओर भूरी चित्तियाँ पड़ी रहती हैं।

मछमरनी जाति का एक और पक्षी, जो अपनी लम्बी दुम और बुलबुलों-जैसी शकल के कारण शाहबुलबुल कहलाता है, हमारे यहाँ का मौसमी पक्षी है। यह जाड़ों में मैदानों की ओर आकर गरमियों में फिर उत्तरी पहाड़ों की ओर लौट जाता है।
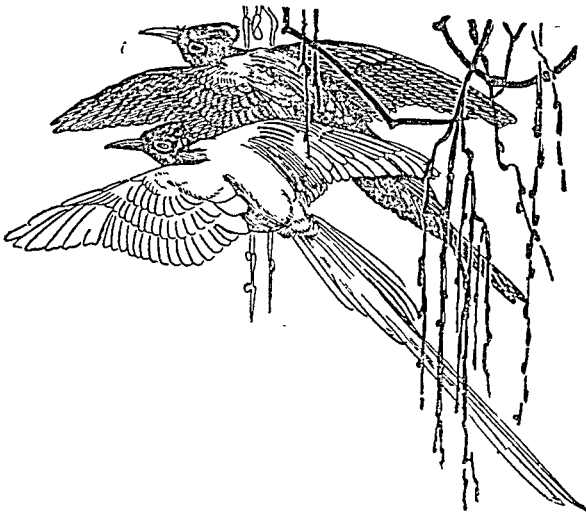
शाह बुलबुल (दूधराज)

शाह बुलबुल के पट्ठे और मादा का रंग चटक बादामी होता है, पर नर दो-तीन साल के होने पर सफेद हो जाते हैं। इसी सफ़ेद पोशाक के कारण इन्हें कहीं-कहीं

दूधराज भी कहा जाता है। इसका सिर, गरदन और चोटी चमकीली काले रंग की होती है और पीठ, डैने और दुम पर भी काली धारियाँ पड़ी रहती हैं। मादा की गरदन राख के रंग की और पेट सफेदी मायल होता है। दोनों के पैर सिलेटी नीले होते हैं।

इसकी चोंच नीली होती है और आँख के चारों ओर इसी रंग का एक गोल घेरा भी रहता है।

शाहबुलबुल देखने में बहुत सुन्दर लगता है। यह बराबर पेड़ पर रहनेवाला पक्षी है, जिसका एक कारण नर की लम्बी दुम भी हो सकता है। यह भी उड़ते हुए पतिंगों को पकड़कर अपना पेट भरता है जो इसका मुख्य भोजन है।

इसके अण्डे देने का समय अप्रैल से जून तक है जिसमें मादा तीन चार सफेद या हलके गुलाबी रंग के अण्डे देती है। इन पर ललछौंह कत्थई चित्तियाँ पड़ी रहती हैं। इसका घोंसला मछमरनी की ही तरह होता है, जिसमें अण्डा सेने के लिए नर और मादा दोनों पारी-पारी से बैठते हैं।

कस्तूरा-परिवार

(FAMILY MUSCICAPIDAE)

कस्तूरा परिवार में उन पक्षियों को रखा गया है जो चिलचिल-परिवार के निकट सम्बन्धी हैं, लेकिन जिनका कद उनसे छोटा होता है।

इन पक्षियों को प्रकृति ने सुन्दर पोशाक तो नहीं दी, लेकिन इनको बहुत सुरीला कर दिया है। संसार के प्रसिद्ध गानेवाले पक्षी इसी परिवार के हैं।

यहाँ इनमें से कुछ प्रसिद्ध पक्षियों का वर्णन दिया जा रहा है।

कस्तूरा

(GREY WINGED BLACK BIRD)

कस्तूरा भी हमारे यहाँ का पहाड़ी पक्षी है जो हमारे देश के सारे हिमालय प्रान्त में, कश्मीर से आसाम तक फैला हुआ है। यह वैसे तो वहाँ चार से दस हजार फुट की ऊँचाई तक पाया जाता है, लेकिन जाड़े में इसे तराई में देखना कठिन नहीं होता। तराइयों के अलावा कभी-कभी यह मैदानों में भी कुछ दूर तक चला आता है।

कस्तूरा यहाँ का बारहमासी पहाड़ी पक्षी है जिसकी लम्बाई लगभग ११ इंच की होती है। इसका नर चमकीले काले रंग का रहता है, जिसके नीचे का रंग ऊपर से कुछ हलका रहता है। इसके डैनों पर सिलेटी पटरियाँ पड़ी रहती हैं। मादा सिलेटी भूरे रंग की होती है और उसके डैने पर की पटरियाँ हलकी कत्थई रहती हैं। दोनों की चोंच मूँगे-जैसी और पैर भूरापन लिये पीले रहते हैं।

कस्तूरा हमारे पहाड़ों की बहुत मीठी बोली बोलनेवाली चिड़िया है जिसकी कई जातियाँ हमारे देश में पायी जाती हैं। श्यामा और मैना की तरह इसे भी लोग इसकी बोली के कारण पिंजड़ों में पालते हैं। यह घने जंगल की चिड़िया है जो प्राय: जमीन पर उतरकर कीड़े-मकोड़े तथा गिरे हुए फल-फूल चुना करती है। पेड़ों पर के भी फल इससे नहीं बचने पाते। इसे सुबह और शाम पेड़ों के नीचे अपनी खूराक की तलाश में इधर-उधर फिरते देखने में कठिनाई नहीं होती। जोड़ा बाँधने का समय निकट आने पर नर पक्षी पेड़ की फुनगी पर बैठकर सुबह-शाम बड़े मीठे स्वर में बोलता है।
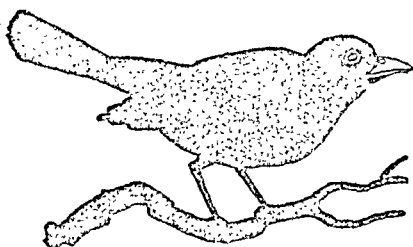
कस्तूरा

इसके अण्डा देने का समय मई से जुलाई तक रहता है जब यह घास-फूस और जड़ों का बड़ा-सा घोंसला बनाता है। इसके बाहरी हिस्से को पेड़ों पर की काई से लपेटकर खूब मजबूत बना दिया जाता है। ये घोंसले २०–२५ फुट की ऊँचाई पर रखे रहते हैं, जिनमें बैठकर मादा दो से चार तक अण्डे देती है। ये अण्डे हलके हरे रंग के होते हैं, जिन पर भूरी और कत्थई चित्तियाँ और धब्बे पड़े रहते हैं।

श्यामा

(SHAMA)

श्यामा हमारे देश की मीठी बोली बोलनेवाली बहुत प्रसिद्ध चिड़िया है जिसे शौकीन लोग मैना की तरह पिंजड़ों में पालते हैं। हमारे देश के दक्षिण भाग में यह बम्बई से ट्रावनकोर तक, पूर्वी भाग में उड़ीसा तक और इसके अलावा उत्तरी प्रदेश के पहाड़ी भागों में चार हजार फुट तक पायी जाती है।

यह हमारे देश की बारहमासी पहाडी चिडिया है जो अपनी छ इच की दुम के साथ लगभग ११ इच लम्बी होती है । इसके नर-मादा के रग में भेद है। नर चमकीले काले रग का रहता है, लेकिन नीचे का हिस्सा सीने के बाद हो जाता है। पैर की जड के पास का हिस्सा सफेद रहता है और दुम की जड के भी एक सफेद चित्ता रहता है। मादा नर के अनुरूप ही रहती है, लेकिन उसके पर काले का स्थान सिलेटी भूरा और कत्थई का स्थान हलका कत्थई ले लेता दोनो की चोंच काली और पैर हल्के प्याजी रग के होते है।

श्यामा

श्यामा घने जगलो मे रहनेवाली चिडिया है । इसीलिए हम इसकी मीठी बो सुनकर भी इसे कम पहचानते है। यह बहुत ही शरमीली चिडिया है जिसे जगल ऐसे स्थान पसन्द आते है जहाँ झरनो के पास ऊबड-खाबड जमीन और सूखे मैद हो। इसका मुख्य भोजन कीडे-मकोडे और जगली फल-फूल है जिनके लिए य अक्सर जमीन पर उतरती है, लेकिन जरा-सा भी खतरा निकट देखकर यह वि पेड पर जा बैठती है।

श्यामा सुबह और शाम को बडे ही मीठे स्वर में बोलती है। इसके जोडा बाँ का समय अप्रैल से जून तक रहता है, जब यह किसी बाँस के झुरमुट में कूडा-कबा के बीच अपना सूखी पत्तियो, घास-फूस तथा पेडो की काई का प्यालेनुमा घोंस बनाती है। मादा उसमे चार-पाँच अण्डे देती है जो प्राय पत्थरी रग के होते है औ जिन पर घनी बैगनी तथा गाढी भूरी चित्तियाँ पडी रहती है।

दँहगल

(MAGPIE ROBIN)

दँहगल हमारे यहां की बहुत सुन्दर छोटी-सी चितकबरी चिड़िया है, जो गाने में बड़ी उस्ताद होती है। चिड़ियों के शौकीन इसे भी इसकी बोली के लिए पालते हैं। यह हमारे यहां की बारहमासी चिड़िया है जो हमारा देश छोड़कर बाहर तो नहीं जाती, लेकिन अपनी सुविधानुसार थोड़ा बहुत स्थान परिवर्तन अवश्य कर लेती है।

दँहगल को न तो घनी झाड़ियां पसन्द हैं और न एकदम खुले मैदान ही। बाग में, जहां इसके रंग की तरह धूप और छाया फैली रहती है, हम इसे अक्सर देख सकते हैं।

दँहगल

इसके पहचानने के लिए इसका रंग ही काफी है। फिर भी कीड़ों के लिए जमीन पर दौड़ना और 'थरथरकँपनी' की तरह रुककर दुम उठाना-गिराना इसकी विशेषता है।

दँहगल आठ इंच की छोटी-सी चिड़िया है जिसके नर-मादा में थोड़ा ही फर्क होता है। नर का सिर, गरदन, सीना और पीठ चमकीले काले रंग की होती है। नीचे का हिस्सा सफेद होता है। पूंछ उठी रहती है जिसमें बीच के दो पंख काले और बाकी सफेद होते हैं। डैने काले रहते हैं, जिनके बीच में सफेद धारी होती है। मादा भी करीब-करीब ऐसी ही होती है। फर्क इतना ही रहता है कि नर के जिस हिस्से में स्याही रहती है, वहाँ मादा के कलछौंह भरा होता है। दोनों की चोंच काली और पैर गाढ़ सिलेटी होते हैं।

दँहगल क अण्डा देने का समय मार्च से जुलाई तक रहता है, लकिन इसके घोसलों मे अण्डे ज्यादातर अप्रैल और मई में ही मिलने हैं। यह अपना घास और पत्तियों का छोटा मुलायम घोसला पेड के खोखा, मकान के छज्जा या नदी के किनारे ऊँचे कगारो पर बनाती है जिसमें मादा चार-पाँच नीला और पीलापन लिये हरे रग के चमकदार अण्डे देती है।

थिरथिरा

(RED START)

थिरथिरा का थरथर-कँपनी भी कहने हैं। यह नाम इसकी दुम हिलाने की आदत के कारण पडा है। यह हमारे यहाँ की मौसमी चिडिया है जो सितम्बर के अ त में यहाँ आकर अप्रैल के प्रारम्भ में यहाँ से लौट जाती है।

थिरथिरा

इसको तलाश करने के लिए दूर नही जाना पडता। मकान के छज्जो के नीचे और सायेदार वृक्षो की निचली डालियो पर इसे आसानी से देखा जा सकता है। वैसे तो यह कुछ छोटी-सी कल्छौंह चिडिया है जो अक्सर निगाह से बच जाती है, लेकिन थोडी देर इधर उधर नजर दौडाने पर यह दिखाई न पडे, यह सम्भव नही। जो इसकी ऊपर नीचे दुम हिलाने की आदत को जानते हैं वे इसे देखते ही पहचान लेते हैं।

यह छ इच की धूमिल काले रग की चिडिया है जो सितम्बर के आखीर में हमारे देश में आती है और अप्रैल के शुरू होते-होते फिर अपने देश को लौट जाती है। इसके नर का ऊपरी हिस्सा

धुँधला काला और दुम के निचले हिस्से से लेकर पेट तक का हिस्सा नारंगी भूरा होता है। दुम का ऊपरी हिस्सा कत्थई रहता है। मादा के पेट का रंग कुछ बादामी लिये हुए भूरा रहता है। इसकी आँखों के चारों ओर एक पीला छल्ला-सा होता है और बाकी कुल बातें नर की तरह रहती हैं।

इसके अण्डे देने का समय जून-जुलाई है, जब यह यहाँ से अपने देश को वापस चली जाती है। वहाँ पहुँच कर जब इसको अण्डे देना होता है तो यह पुराने मकान के छज्जों के नीचे या पहाड़ियों पर पत्थर के नीचे अपना छोटी-छोटी टहनियों का घोंसला बनाती है जिसमें मादा चार से छः तक अण्डे देती है। इसके अण्डे प्रायः दो रंग के होते हैं। कुछ पीले और हरापन लिये हुए नीले और कुछ एकदम सफेद चमकदार।

पिद्दा

(BUSH CHAT)

पिद्दा का दूसरा नाम फिद्दा भी है। यह पाँच इंच का सुन्दर चितकबरा पक्षी है जो हमारे देश के मैदानों में काफी संख्या में फैला हुआ है। इसकी एक नहीं, अनेक जातियाँ हैं जो सारे देश में पायी जाती हैं।

पिद्दे का सारा बदन वैसे तो काले रंग का होता है, लेकिन इसके दोनों कन्धों पर एक-एक सफेद चित्ते रहते हैं। इसके सीने से दुम के नीचे का हिस्सा भी सफेद रहता है जिस कारण देखने से यह चितकबरा लगता है। पिद्दी काली न होकर भूरी होती है और उसकी दुम का निचला हिस्सा सफेद न होकर खैरा रहता है। चोंच तथा पैर काले रहते हैं।

पिद्दे के चितकबरे नर और भूरी मादा को हम अक्सर किसी झाड़ी, सरपत या और किसी ऊँची घास की फुनगी पर बैठा देख सकते हैं। इसे घने जंगलों से खुले मैदान, घास और झाड़ियों का पास-पड़ोस ज्यादा पसन्द आता है।

पिद्दा हमेशा चोटी पर ही बैठा रहता हो सो बात नहीं है। खाने के लिए तो इसे जमीन पर उतरना ही पड़ता है क्योंकि हवा में उड़नेवाले कीड़े-पतिंगों से जब इसका पेट नहीं भरता तो इसे मजबूरन कीड़े-मकोड़ों के लिए जमीन की शरण लेनी पड़ती है।

जोड़ा बाँधने के समय पिद्दा मादा को रिझाने में कोई कोर-कसर नहीं उठा

रगाता। वह बार-बार अपने डैनो पर के सफेद चित्तो को मादा को दिखाता है और उसके बाद किसी ऊँची फुनगी पर से दुम फैलाकर गाता हुआ ऊपर उडता है। कुछ दूर ऊपर जाकर वह फिर धीरे-धीरे गाता हुआ नीचे उतरता है और इस प्रकार नाच-गाकर एक न एक को रिझा लेता है। वैसे तो पिद्दे की बोली बहुत कर्कश होती है लेकिन इस समय उसके गाने में न जाने कहाँ से बहुत मिठास आ जाती है।

पिद्दा

पिद्दा के जोडा बाँधने का समय मार्च से अगस्त तक है जब इसके सुन्दर कटोरानुमा घोसले घास-फूस और पतली जडो से बनाये जाते है जिनमें ऊन, बाल या परो का नरम अस्तर दे दिया जाता है। मादा इसमें चार-पाँच सफेद अण्डे देती है जिन पर कत्थई चित्तियाँ पडी रहती है।

बुलबुल-परिवार

(FAMILY PYCNONOTIDAE)

बुलबुल-परिवार मे सब प्रकार की बुलबुलें रखी गयी है जिन्हें चरखियो और लहटोरो का दूर का सम्बन्धी कहा जा सकता है। ये कीडे पतिगे खानेवाले पक्षी है जो फल-फूल भी बडे मजे से खा लेते है।

इनको न तो प्रकृति ने सुरीला गला ही दिया है और न सुन्दर पोशाक ही। ये कलछौंह, भूरे, मटमैले या गंदे पीले और हरे रंग के पक्षी हैं जो अपने पतले शरीर, लम्बी दुम और सिर पर की चोटी के कारण बड़ी आसानी से पहचान लिये जाते हैं।

यहां अपने यहां की कुछ प्रसिद्ध बुलबुलों का वर्णन दिया जा रहा है।

बुलबुल
(BUL BUL)

मछमरनी की तरह बुलबुल की भी अनेक जातियां हमारे देश में फैली हुई हैं जिनमें गुलदुम बुलबुल सबसे प्रसिद्ध है। हमारे यहां के शौकीन लोग इसको इसकी मीठी बोली के कारण नहीं बल्कि इसके लड़ने की आदत के कारण पालते हैं।

यह पतले बनावट की चितली भूरी चिड़िया अपनी दुम के नीचे लाल निशान के कारण बड़ी आसानी से पहचान ली जाती है। इसके सिर पर चोटी तो नहीं होती, लेकिन बहुधा सिर पर के कुछ पर इसके खुश होने पर चोटी की तरह उठ आते हैं। यह हमारे यहाँ की बारहमासी चिड़िया है जो पहाड़ पर भी चार हजार फुट तक पायी जाती है। यह हमारे यहाँ के बाग-बगीचों, तितरे-बितरे जंगलों तथा खुले मैदानों में अक्सर जोड़े में दिखाई पड़ती है, लेकिन जहाँ इनको भोजन की सहूलियत रहती है वहाँ इनके झुंड भी मिल जाते हैं।
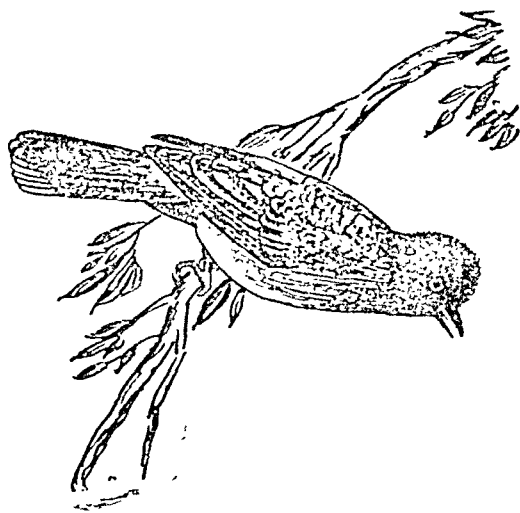
गुलदुम बुलबुल

गुलदुम बुलबुल लगभग आठ इंच की चिड़िया है जिसके नर-मादा की शकल-सूरत एक-जैसी होती है। इनका सिर और गला चमकीला काला और बाकी सब शरीर गहरा भूरा रहता है जिस पर मछली के सेहर-से हलके निशान रहते हैं। पीठ के

गला का सिरा पीला, दुम का सिरा सफेद और दुम के नीचे का हिस्सा सुर्ख होता है। सिर पर छोटी चोटी होती है जो अक्सर दबी रहती है। इनके पैर काले होते हैं।

बुलबुल हमें अक्सर बागों में दिखाई पड़ते हैं। ये वैसे तो झाड़ियों या पेड़ों में रहते हैं पर कभी कभी इनको फलदार पेड़ों पर झुंड में भी देखा जा सकता है। फल इनका मुख्य भोजन है, लेकिन यह कीड़े-मकोड़े भी खा लेते हैं।

बुलबुल हजार दास्तां

बुलबुल वैसे तो एशिया के बाशिन्दे पक्षी हैं, पर इनकी इतनी अधिक जातियाँ हैं और ये इस तरह सभी देशों में फैले हुए हैं कि इनका कौन असली देश है यह कहना कठिन है। सदा गाकर खुश रहने वाली प्रसिद्ध बुलबुल (Nightingale) जिसने उर्दू और फारसी साहित्य में अपना एक स्थान बना लिया है, हमारे देश में नहीं होती। फारस में इसे बुलबुल हजारदास्तां का खिताब मिला हुआ है, लेकिन यह हमारे देश की बुलबुलों से भिन्न पक्षी है।

बुलबुलों के अण्डा देने का समय फरवरी से सितम्बर तक रहता है जब मादा दो बार अण्डे देती है। वह अपना छोटा गहरा घोसला किसी नीची झाड़ी, झाऊ या सरपत के घने बूटे में बनाती है जिसे मुलायम घास, चीथड़े और बालों से नरम बना लिया जाता है। बहुत नीची जगह पर घोसले बनाने के कारण इनके काफी अण्डे दुश्मनों के शिकार हो जाते हैं पर दो बार अण्डे देने के कारण इनका औसत पूरा हो जाता है।

अण्डों की तादाद अक्सर तीन तक होती है। इनका रंग हल्का गुलाबी होता है जिस पर लाल बादामी और ललछौंह बैंगनी रंग की चित्तियाँ पड़ी रहती हैं।

चिलचिल-परिवार

(FAMILY TIMALIDAE)

चिलचिल परिवार अपने वर्ग का काफी बड़ा परिवार है जिसमें सब तरह की चरखियाँ, चिलचिलें, पोदना आदि शामिल हैं।

ये मटमैले अथवा गंदे चितले रंग की चिड़ियाँ हैं जिनका कद कौए के बराबर रहता है। ये अपना सारा समय जंगलों, बागों या झाड़ियों के आस-पास बिताती हैं और कीड़े-मकोड़े आदि से अपना पेट भरती हैं। ये बहुत शोर मचानेवाली चिड़ियाँ हैं जिनमें से कुछ झुंड में रहती हैं और कुछ को अकेले ही रहना भाता है। इनके पंख और दुम ढीली-ढीली-सी रहती है और इनकी उड़ान भी बहुत मामूली-सी होती है।

इनकी वैसे तो बहुत-सी जातियाँ हैं, लेकिन यहाँ इनमें से कुछ प्रसिद्ध पक्षियों का वर्णन दिया जा रहा है।

चिलचिल

(LAUGHING THRUST)

चिलचिल को पहाड़ी चरखी कहना अनुचित न होगा। जिस प्रकार हमारी चरखी सारे देश में बाग-बगीचों और तितरे-बितरे जंगलों में फैली हुई है, उसी प्रकार हिमालय पर इनका स्थान चिलचिलों ने ले लिया है। ये चरखियों की तरह काफी शोर मचाती हैं। इसी से इन्हें चिलचिल कहा जाता है।

चिलचिल हमारे यहाँ की बारहमासी पहाड़ी चिड़िया है जो पश्चिमी हिमालय से भूटान तक पाँच हजार से दस हजार फुट की ऊँचाई तक पायी जाती है। यह आठ इंच का सिलेटी रंग का पक्षी है जिसका सारा शरीर कत्थई धारियों से भरा रहता है। डैने और दुम खैरे रंग के होते हैं जिन पर हलकी धारियाँ पड़ी रहती हैं। इसकी चोंच सींग के रंग की और पैर प्याजी भूरे रहते हैं। इसके नर-मादा का रंग-रूप एक ही जैसा होता है।

चिलचिल हिमालय के बाग-बगीचों में रहनेवाली चरखी की जाति की चिड़िया है, जो आठ-दस का गरोह बनाकर रहती है और बहुत शोर मचाती है। यह झाड़ियों में या पेड़ की नीची डालियों पर उड़कर बैठती है और वहाँ से उड़कर थोड़ी दूर पर

फिर इनका गरोह झाड़ियों और पेड़ों पर जा बैठता है। यह बड़ी ढीठ चि
जो आदमियों को बहुत पास तक आने देती है और अपनी चालढाल से आगे उन
ज्यादा ध्यान नहीं देती। कहीं-कहीं तो यह बस्तियों में भी बड़ी आजादी से अ
है। इसका मुख्य भोजन कीड़े-मकोड़े, फल फूल और बीज हैं।

चिलचिल

चिलचिल के जोड़ा बाँधने का समय मार्च से सितम्बर तक रहता है क्योंकि अक्सर इसी बीच दो बार अण्डे देती है। इसका कारण यह भी हो सकता है कि घोंसले में प्रायः कोयल और पपीहे अपने अण्डे दे आते हैं और उनके बच्चे के बाहर आने पर चिलचिल के बच्चों को घोंसले से गिराकर मार डालते हैं।

चिलचिल का घोंसला घास-फूस, सूखी जड़ों, पेड़ की छालों और रेशों आ बनाया जाता है जो काफी बड़ा, गोल और गहरा होता है। यह किसी घनी में अथवा किसी पेड़ पर पाँच–छः फुट की ऊँचाई पर रहता है। मादा समय आने *इसमें तीन चार अण्डे देती है जो हरापन लिये हल्के नीले रंग के होते हैं।*

सिबिया

(SIBIA)

सिबिया एक पहाड़ी चिड़िया है जो अपने देश में सारे हिमालय के प्रान्तों में हुई है। यह हमारे देश की बारहमासी चिड़िया है जो गरमियों में आठ-दस हजार

की ऊँचाई पर रहती है, लेकिन जाड़ों में यह चार हजार फुट के आस-पास तक उतर आती है।

सिविया को कहीं-कहीं गप्पू भी कहते हैं। यह नौ इंच लम्बी होती है और इसके नर-मादा एक ही रंग-रूप के रहते हैं। इसके शरीर का रंग कत्थई होता है, लेकिन पीठ के बीच का हिस्सा सिलेटी मायल भूरा रहता है। सिर का ऊपरी और बगल का हिस्सा काला रहता है। इसकी दुम भी काली रहती है जिस पर एक गाढ़ी आड़ी पटरी पड़ी रहती है। डैने के पर काले सिलेटी और कत्थई रहते हैं और चोंच काली तथा पैर प्याजी भूरे रंग के होते हैं।
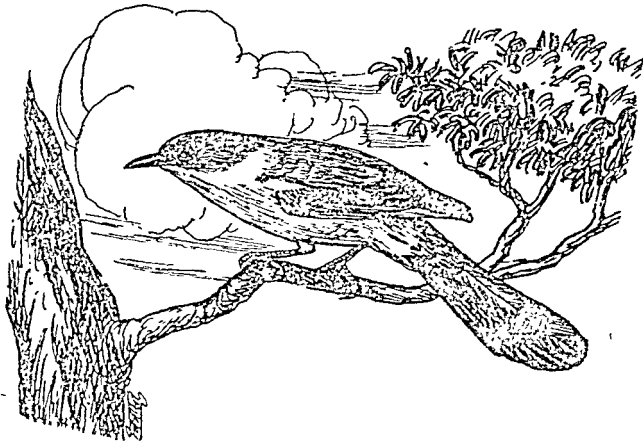
सिविया

सिविया चरखियों की तरह बहुत शोर मचानेवाली चिड़िया है जिसका ज्यादा समय ऊँचे पेड़ों पर ही बीतता है। यह जमीन पर बहुत कम उतरती है और दिन भर पेड़ों पर इधर से उधर फुदका करती है। कभी-कभी यह पेड़ों से उड़कर हवा में भी कीड़े-मकोड़ों को पकड़ती रहती है, लेकिन कहीं जरा-सा भी खटका हुआ नहीं कि यह फौरन ही जाकर पेड़ों में छिप जाती है। इसका मुख्य भोजन कीड़े-मकोड़े हैं।

जाड़ों में सिविया अक्सर छोटे-छोटे गरोहों में दिखाई पड़ती है और पेड़ों पर इधर-उधर शोर मचाती हुई फुदकती रहती है, लेकिन जोड़ा बाँध लेने पर इसकी कर्कशता में कुछ मिठास आ जाती है और तब सारा जंगल इसकी 'टिसी-टिसी-टी' की तेज आवाज से गूँज उठता है।

इसके जोड़ा बाँधने का समय मई से अगस्त तक रहता है जब यह किसी दरवार में ऊँचे पेड़ पर पड़ा की काई जड़ तथा घास और रोएँ आदि का सुन्दर प्यालेनुमा घोंसला बनाता है। मादा इसमें दो-तीन अण्डे देती है जो हल्के हरे या नीले रंग के होते हैं। इन अण्डों पर भूरी कत्थई और लाल चित्तियाँ और चिह्न पड़े रहते हैं।

कठफोरिया परिवार

(FAMILY SITTIDAE)

यह परिवार भी छोटा ही है जिसमें हर प्रकार की कठफोरिया को रखा गया है। यह छोटी सी चिड़िया पेड़ों के तनों पर चूहों की तरह टहलती रहती है और कीड़े मकोड़ों से अपना पेट भरती है।

हमारे यहाँ कई जाति की कठफोरिया पायी जाती हैं जिनमें से एक का वर्णन यहाँ दिया जा रहा है।

कठफोरिया

(NUTHATCH)

कठफोरिया का हमारे यहाँ के प्रसिद्ध कठफोड़ा से कोई सम्बन्ध नहीं है फिर भी इसकी आदत में समानता होने के कारण इसका यह नाम दिया गया है।

यह एक छोटी सी चिड़िया है जो कठफोड़े की तरह लकड़ी नहीं काटती बल्कि पेड़ की पत्तियों में छोटे छोटे कीड़ों की तलाश में ही यह पेड़ों का चक्कर लगाती रहती है। इसे एक जगह पर स्थिर नहीं देखा जा सकता। हमारे यहाँ शायद ही कोई बाग बगीचा ऐसा होगा जिसमें यह देखी न जा सके।

कठफोरिया हमारे यहाँ की बारहमासी चिड़िया है जिसके नर और मादा अलग अलग रंग के होते हैं। नर का ऊपरी हिस्सा सिलेटी मायल नीला और नीचे का कत्थई रहता है। चोंच से दोनों कंधों तक एक एक काली पट्टी सी रहती है और गले का निचला हिस्सा सफेद होता है। जब तक यह उड़ती नहीं तब तक इसके नीचे का कत्थई रंग नहीं दिखाई पड़ सकता। मादा में थोड़ा ही फर्क रहता है। उसके नीचे का रंग कत्थई न होकर बादामी होता है और गाल के पास की सफेदी उतनी स्पष्ट नहीं होती जितनी नर की।

इसकी चोंच काली और पैर हरापन लिये गाढ़े सिलेटी होते हैं।

कठफोरिया शाखों पर तेजी से ऊपर-नीचे घूमती रहती है क्योंकि उसके पंजे का पिछला अँगूठा काफी लम्बा होता है। इसकी चोंच बहुत तेज और नोकीली होती है जिससे वह पेड़ की पपड़ियों से बड़ी आसानी से कीड़े मकोड़ों को चुन लेती है जो इसके मुख्य भोजन हैं।
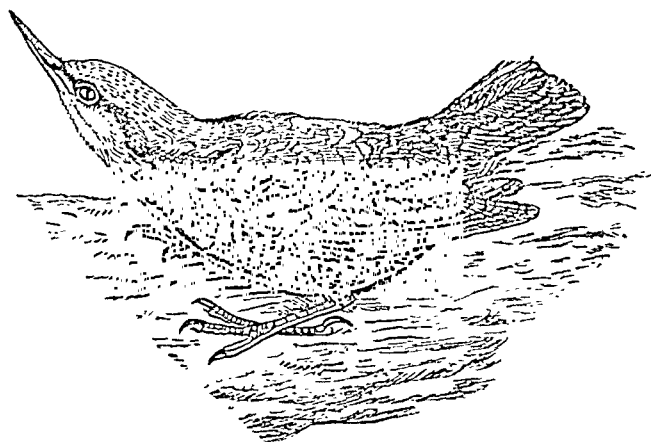
कठफोरिया

कठफोरिया मार्च में किसी पेड़ के खोखले को पत्तियों से मुलायम करके चार-छ: सफेद अण्डे देती है जिन पर लाल चित्तियाँ पड़ी रहती हैं। यह अपन अण्डों को गिलहरी और कौओं आदि से बचाने के लिए केवल एक छोटा सूराख छोड़कर, खोखले का सारा मुँह एक प्रकार की चिकनी मिट्टी से बन्द कर देती है, जो सूखने पर सीमेण्ट की तरह कड़ी हो जाती है।

गंगरा-परिवार

(FAMILY PARIDAE)

गंगरा-परिवार में सभी तरह के गंगरा रखे गये हैं जो अपने छोटे कद के कारण दूर से फुदकी-से जान पड़ते हैं।

ये पक्षी सिलेटी या पिलछौंह होते हैं और इनका मुख्य भोजन कीड़े-मकोड़े हैं। यहाँ अपने यहाँ की एक प्रसिद्ध गंगरा चिड़िया का वर्णन दिया जा रहा है।

गंगरा

(TIT)

गंगरा को मैदान की चिड़िया न कहकर पहाड़ की चिड़िया कहें तो ज्यादा ठीक होगा। यह वैसे तो पहाड़ों पर ही रहती है लेकिन जाड़ों में इसके झुंड मैदानों में भी उतर आते हैं और तब इन्हें मैदान के जंगली प्रान्तों में देखना ज्यादा कठिन नहीं होता।

गंगरा हमारे यहाँ की मौसमी चिड़िया है जो जाड़ों में हमारे यहाँ आकर जाड़े के अन्त में फिर उधर पहाड़ों की ओर लौट जाती है, लेकिन बनगों की तरह हुए हमारा देश छोड़ कर पहाड़ों के उस पार न जाकर सदा यहीं रहती है।

गंगरा
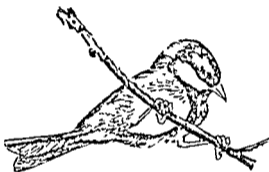
गगरा प्राय अकेली ही देखी जाती है, लेकिन इसे जोड़े में भी देखना कठिन नहीं। यह पेड़ पर रहनेवाली चिड़िया है जो अपना अधिक समय पेड़ों और झाड़ियों पर चक्कर लगाने में ही बिता देती है लेकिन कीड़े-मकोड़ों की तलाश में इसे हम कभी-कभी जमीन पर भी देख सकते हैं।

गगरा चार पाँच इंच की छोटी-सी चिड़िया है जिसके नर और मादा एक रंग-रूप के होते हैं। इसका सिर, गरदन और सीना चमकीले काले रंग का होता है। पेट के नीचे भी एक चौड़ी काली पट्टी रहती है और गाल, गुद्दी और नीचे का हिस्सा सफेद रहता है। ऊपर का सारा हिस्सा राखी या कजई रहता है। इसकी चोंच काली और पैर सिलेटी रंग के होते हैं।

गगरा ने जैसी सुन्दर शक्ल-सूरत पायी है वैसी ही प्यारी टिमुस् टिमुस् की आवाज भी इसे प्रकृति ने दी है। इसके अण्डे देने का समय मार्च से जुलाई तक है जब यह मैदानों से पहाड़ों की ओर लौट जाती है। वहाँ यह ऊन, बाल, घास और

मुलायम जड़ों को किसी पेड़ के खोंढ़रे या पहाड़ की दराज में रखकर अपना मुलायम घोंसला बनाती है जिसमें मादा चार–छः अण्डे देती है।

ये अण्डे सफेद होते हैं जिन पर कत्थई और बैंगनी चित्तियाँ पड़ी रहती हैं।

काक-परिवार

(FAMILY CARVIDAE)

काक-परिवार में कौओं के अलावा सब तरह की मुटरियाँ और बनसरें भी रखे गये हैं, क्योंकि ये सब रंग-रूप में भिन्न होने पर भी एक ही परिवार के पक्षी हैं।

ये सब सर्वभक्षी पक्षी हैं जो प्रायः वृक्षों पर रहते हैं। इनमें कौओं से तो हम सब परिचित ही हैं। मुटरियों की पोशाक रंगीन होती है और उनकी दुम काफी लम्बी रहती है। वनसरी भी अपनी सुन्दर पोशाक से कौओं का भाई-बन्धु नहीं जान पड़ता।

ये सब बड़ी कर्कश बोली बोलते हैं और इनके तितरे-बितरे, घोंसले टहनियों से बड़े भद्दे ढंग से बनाये जाते हैं।

इनकी अनेक जातियाँ हैं लेकिन यहाँ इनमें से कुछ प्रसिद्ध पक्षियों का वर्णन दिया जा रहा है।

वनसरी

(BLACK THROATED JAY)

वनसरी को पहाड़ी पक्षी ही कहना उचित होगा। यह सुन्दर पक्षी पश्चिमी हिमालय से नेपाल तक फैला हुआ है जहाँ इसे पाँच हजार से आठ हजार फुट तक के बीच देखना कठिन नहीं।

यह हमारे देश का बारहमासी पक्षी है जो बराबर यहीं रहता है।

वनसरी तेरह इंच का पक्षी है जिसके नर-मादा एक-जैसे होते हैं। इसके सिर की टोपी बुलबुलों की तरह काली और चोटीदार रहती है और ठुड्ढी और गला काला रहता है। बदन का रंग खैरा सिलेटी रहता है जो पीछे की ओर गहरा हो जाता है। इसकी दुम काली और नीली धारियों से भरी रहती है जिसका सिरा सफेद रहता है। डैने काले होते हैं, जिन पर नीली धारियाँ और सफेद चित्ते पड़े रहते हैं। इसकी चोंच गाढ़े सिलेटी और पैर हलके सिलेटी रहते हैं।

वनसर्रा वैसे तो पाँच-छ के छोटे गरोहों में रहता है, लेकिन जोडा बाँध लेने पर यह अक्सर जोडे में ही दिखाई पड़ता है। यह इतना शोर मचाता है कि जी ऊब जाता है। इसकी बोली बहुत कर्कश होती है। इसका मुख्य भोजन कीडे मकाडे, फल-फूल और बीज हैं। यह वैसे तो जंगल का पक्षी है लेकिन गरमियों में जब
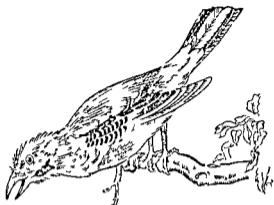
वनसर्रा

यह नीचे उतर आता है तो इसे बाग और बस्तियों में भी देखा जा सकता है।

वनसर्रा के अण्डा देने का समय अप्रैल से जून तक रहता है जब यह टहनियों और जड़ा आदि से अपना मामूली-सा घोसला बनाता है जो किसी घनी झाड़ी या पेड़ पर बहुत कम ऊँचाई पर रखा रहता है। मादा इसीमें चार-पाँच अण्डे देती है जो पथरी या हरछौंह सफेद रहते हैं और जिन पर गाढ़ी भूरी चित्तियाँ पड़ी रहती हैं।

मुटरी

(MAGPIE)

मुटरी को कौआ का निकट सम्बन्धी कहना अनुचित न होगा। शक्ल-सूरत और रंग रूप में कौए से भिन्न होते हुए भी यह चालाकी और चोरी में उससे आगे रहती है। इसकी लम्बी दुम के कारण हमें इसे पहचानने में जरा भी कठिनाई नहीं होती। इसकी कहीं-कहीं टकाचोर और कहीं-कहीं महताब भी कहते हैं।

चालाकी में मुटरी कौए से भले ही कुछ कम मानी जाय पर चोरी में यह उससे भी आगे है। अपनी लम्बी दुम के कारण यह जमीन पर नहीं बैठती, पर इसे किसी ऊँची जगह पर बैठकर चोर की तरह ताकते हुए बड़ी आसानी से देखा जा सकता है।

मुटरी यहाँ की बारहमासा चिड़िया है जिसका कद अट्ठारह इंच का और दुम

एक फुट लम्बी होती है। इसके नर और मादा एक शकल के होते हैं। इसका सिर, गरदन और सीना काला और बाकी हिस्सा कत्थई होता है। पंख और

मुटरी

दुम स्याही लिये हुए सफेद होती हैं जिसका आखिरी हिस्सा धुर काला रहता है। इसकी चोंच सिलेटी और पैर गहरे भूरे रंग के होते हैं।

मुटरी कौए की तरह चोर और सर्वभक्षी चिड़िया है जिससे फल-फूल, कीड़े,

पतिंगे, और छिपकली आदि कुछ नहीं बचता। खुश रहने पर यह जरूर मीठी बोली बोलती है, पर गुस्सा हो जाने पर इतना शोर मचाती है कि जी ऊब जाता है।

मुटरी के अण्डे देने का समय तो फरवरी से अगस्त तक है, लेकिन इसके घोसले ज्यादातर अप्रैल से जून तक देखने को मिलते हैं जब किसी ऊँचे पेड़ पर यह भी कौए की तरह भद्दा-सा घोसला बनाती है। घोसले का भीतरी हिस्सा ऊन तथा बाल आदि से मुलायम कर लिया जाता है जिसमें मादा चार-पाँच अण्डे देती है। इसके अण्डे कभी ऊदे और कभी मटमैले होते हैं जिन पर लाल, बादामी, बैंगनी और हरे चित्ते पड़े रहते हैं।

कौआ

(CROW)

कौए से ऐसा कौन है जो परिचित न होगा? कोई बस्ती, बाग या घर शायद ही ऐसा हो जहाँ सवेरा होते ही ये न पहुँच जाते हों। गौरैयो की तरह कौए भी आदमियो मे इतने हिलमिल गये है कि एक तरह से ये हमारे घर के प्राणी ही जान पड़ते हैं। लेकिन ये गौरैया की तरह सीधे नहीं होते। इनसे तो परेशान हो जाना पड़ता है। सर्वभक्षी होने के कारण यह मुमकिन नहीं कि कोई खाने-पीने की चीज इनके चोंच मारनेसे बच जाय। चोरी और ढिठाई के साथ ये मक्कार भी परले सिरे के होते हैं। इससे मनुष्यों को इनके हमला से हमेशा सतर्क ही रहना पड़ता है।
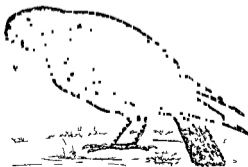
काला कौआ

कौआ यहीं का बारहो महीने रहनेवाला पक्षी है जो ज्यादातर आबादी के निकट ही रहता है। यह हमारे देश में प्रायः सभी स्थानो में पाया जाता है और पहाड़ो पर भी यह चार-पाँच हजार फुट की ऊँचाई तक दिखाई पड़ता है। इसकी दो मुख्य जातियाँ हैं। एक घरेलू छोटा कौआ और दूसरा बड़ा या काला कौआ। छोटा कौआ

सत्रह इंच लम्बा और बड़ा २४ इंच तक का होता है। दोनों के रंग-रूप में फर्क ज़रूर रहता है, लेकिन दोनों की आदत एक-जैसी ही होती है।

काला कौआ खूब काला और चमकीला होता है जिसके पैर काले होते हैं। इसके नर-मादा एक शक्ल के होते हैं। इसको डोम कौआ भी कहते हैं। छोटे कौए की चोंच और पैर बड़े कौए की तरह काली होने पर भी उसके बदन का रंग कुछ दूसरा ही होता है। उसकी गरदन से लेकर सीने तक सिलेटी रंग की चौड़ी पट्टी होती है। बाकी रंग काला रहता है। इसके भी नर-मादा एक ही शक्ल के होते हैं। इसे देहातों के लोग 'नौआ-कौआ' के नाम से बहुधा पुकारते हैं।

डोम कौआ के अण्डे देने का समय फ़रवरी तक और नौआ कौआ का जून तक
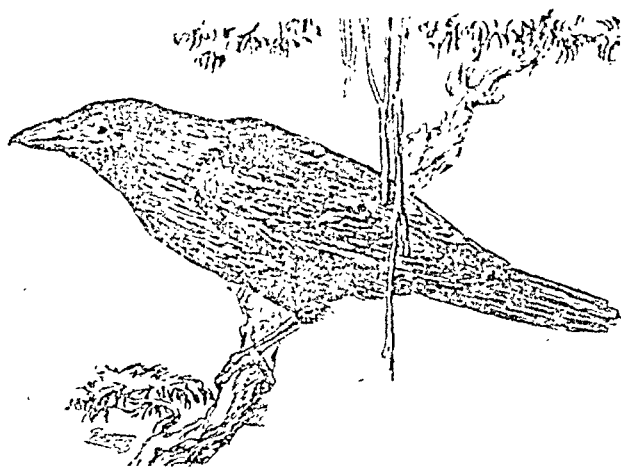
नौआ कौआ

रहता है। ये दोनों किसी पेड़ की ऊँची डाल पर भद्दा-सा घोंसला बनाते हैं जिसका भीतरी हिस्सा बाल वगैरह लगाकर मुलायम कर लिया जाता है।

समय आने पर मादा चार से छः तक अण्डे देती है जिनका रंग नीलापन लिये हरा होता है और जिन पर प्रायः भूरे चित्ते पड़े रहते हैं।

खंड १४

स्तनप्राणी श्रेणी

(CLASS MAMMALIA)

अपनी पृथ्वी की आयु का हमें अभी तक ठीक-ठीक पता नहीं चल सका है, लेकिन इस विषय में विद्वान् लोग इसकी उम्र डेढ़ अरब से लेकर तीन अरब वर्षों के बीच की बताते हैं। यदि हम इसकी उम्र दो अरब वर्षों की मान लें तो पृथ्वी पर रहने-वाले मेरुदंडी जीवों का समय लगभग ३३ करोड़ वर्षों का ठहरता है और इस हिसाब से स्तन-प्राणियों और चिड़ियों का काल आज से लगभग १५ करोड़ वर्षों का होता है। इसी हिसाब से जब हम मनुष्यों के बारे में जोड़ते हैं तो यह पता चलता है कि उसको वनमानुषों के पूर्वजों से अलग हुए तो लगभग एक करोड़ वर्ष हो गये हैं लेकिन उस मनुष्यों के अनुरूप हुए अभी दस लाख वर्ष भी नहीं हो पाये हैं। पूर्णरूप से मनुष्य शरीर तो उसने अभी लगभग बीस हजार वर्ष ही बिताये हैं।

इतना तो हम सब जानते ही हैं कि स्तन प्राणी अन्य सभी जीवों से अधिक विकसित जीव हैं। उनके शरीर पर बाल या समूर रहते हैं और उनकी अपने शिशुओं को स्तन से दूध पिलाने की विशेषता ही के कारण उन्हें स्तनप्राणी या स्तनपायी जीव कहा जाता है। डकबिल्ड प्लैटीपस और एकिडना को छोड़कर बाकी सभी स्तन-प्राणी अण्डे की जगह बच्चे जनते हैं और चिड़िया की तरह अपने शिशुओं का बहुत ध्यान रखते हैं।

चिड़ियों की तरह स्तन-प्राणियों के भी पूर्वज सरीसृप ही थे और उन्हीं से क्रमिक विकास करके आज वे स्तन-प्राणियों की अवस्था को पहुँचे हैं।

सरीसृप युग के अन्तिम चरण में प्रारम्भिक स्तनप्राणी अपना रूप परिवर्तित करने लगे और ऐसा अनुमान किया जाता है कि उनका यह विकास 'थेरोमार्फ'

(Theromorph) नाम के सरीसृप से हुआ जो कुत्ते की शकल का था। प्रारम्भिक काल के स्तनप्राणियों के जो पथराये कंकाल (Fossils) मिले हैं उनसे यही पता चलता है कि वे छोटे कद के जीव थे। उनमें अधिक संख्या तो उन्हीं की है जो चूहे के बराबर थे और कुछ ऐसे भी थे जिनका कद चूहों से भी छोटा था। उनमें जो बड़े-से-बड़े थे, वे भी खरगोश से बड़े नहीं थे।

स्तनप्राणियों के इन छोटे कद के पूर्वजों में जो चूहे के बराबर थे उन्हीं को बढ़ने का अधिक अवसर मिला क्योंकि वे मांस-भक्षी सरीसृपों की निगाह तले जल्द नहीं पड़ते थे और उन्हें जिन्दा रहने के लिए थोड़े ही भोजन की आवश्यकता थी। वे सम्भवतः फल-फूल, पत्ती, जड़ें और कीड़े-मकोड़ों से अपना पेट भरते थे और डकविल्ड तथा एकिडना की तरह अण्डे देते थे। वे अपने अण्डों को तो गहरे बिलों में रखते थे जहाँ सरीसृपों की पहुँच नहीं रहती थी, लेकिन सरीसृपों के अण्डों को इनके द्वारा बहुत नुकसान पहुँचता था। इस प्रकार बड़े सरीसृपों की संख्या दिन प्रतिदिन घटने लगी और ये छोटे जीव दिन दूने रात चौगुने बढ़ने लगे।

इधर धीरे-धीरे पृथ्वी की आवहवा ठंढी और खुश्क होने लगी और उस पर खूराक की कमी होने लगी जिसके कारण जीवन का संघर्ष बहुत बढ़ गया। बड़े-बड़े भीमकाय सरीसृप जो बाल और समर से रहित थे, भीषण सरदी के कारण अपने शरीर के तापमान का संतुलन कायम न रख सके। इसका फल यह हुआ कि ये बहुत काहिल और सुस्त हो गये और उनका एक स्थान से दूसरे स्थान को जाना असम्भव हो गया। भोजन की कमी, भीषण सरदी और विशाल शरीर के कारण वे एक ही स्थान पर घिर कर दुश्मनों के शिकार हो गये और उनका पृथ्वी पर कोई नामलेवा न रह गया।

दूसरी ओर प्रारम्भिक स्तनप्राणी, जो कद में बहुत छोटे थे, अपनी फुर्ती के कारण बड़ी आसानी से दुश्मनों से छिप सकते थे। उन्होंने अपने शरीर पर बालों का विकास कर लिया। इससे उन्हें ठंढ की भी ज्यादा परवाह न रही। गरम खून के प्राणी होने के कारण उनके शरीर का तापमान सरीसृपों की तरह पास-पड़ोस के अनुसार न घट-बढ़कर सदैव एक-जैसा रहता था। इन सब सहूलियतों के कारण यह अनुमान करना कठिन न था कि प्रकृति इन भीमकाय सरीसृपों का समय निकट

देखकर इन छोटे जीवों को पृथ्वी पर आधिपत्य कायम करने के लिए हर प्रकार से सहायक हो रही थी।

कुछ समय और बीतने पर स्तनप्राणियो के इन पूर्वजो ने अण्डे देना बन्द कर दिया जिससे उनकी वंशवृद्धि में जो थोडा-बहुत खतरा शत्रुओ से था वह भी चला गया। वे अण्डे की जगह बच्चे जनने लगे और उनकी माताएँ उन्हें अपने स्तनों से दूध पिलाकर उनका पालन-पोषण करने लगी, जिससे वे शीघ्र ही प्रौढ होकर अपने माता-पिता के अनुरूप होने लगे। स्तन से दूध पिलाने के कारण ही इन जीवो को स्तनप्राणी अथवा स्तनपायी जीव कहा जाने लगा जो इनकी एक विशेषता थी।

प्रारम्भिक स्तनप्राणी एक-दूसरे से बहुत कुछ मिलते-जुलते थे, लेकिन धीरे-धीरे पृथ्वी के जल-थल में जो भौगोलिक परिवर्तन हुए और उसके जलवायु में जो उतार-चढाव हुए उसके कारण इन स्तनप्राणियों की शक्ल सूरत में ही नही वरन् उनके कद में भी बडा भेद हो गया। लाखो करोडा वर्षों में थोडा-थोडा विकास करके इनमें से कोई तो हाथी की तरह विशाल शरीरवाले जीव बन गये और कोई अपने शरीर को चूहे से ज्यादा न बढ़ा सके। कुछ स्तन-प्राणी, जो भीमकाय हो गये, अपने स्थूल शरीर के कारण पृथ्वी पर से उसी प्रकार उठ गये जैसे बडे-बडे डाइना-सोर सदा के लिए लोप हो गये, लेकिन जिन स्तनप्राणियों ने समय के परिवर्तन के साथ अपना विकास कर लिया, वे सारी पृथ्वी पर फैल गये और उनका इस भूमण्डल पर आधिपत्य हो गया। विकास का यह चक्र आज भी उसी प्रकार अबाध गति से चल रहा है और इस समय के स्तनप्राणी अपने पूर्वजो से कद में धीरे धीरे बढ रहे हैं। आज का मनुष्य १,००० वर्ष पहले के मनुष्यो से कद में बडा हो गया है और आगे के करोड दो करोड वर्षो में उसमे और भी न जाने कितने परिवर्तन हो जायँगे, इसमे सन्देह नही।

स्तनप्राणियो के भोजन के सम्बन्ध मे यह जान लेना जरूरी है कि उनमें से अधिकतर तो ऐसे भाग्यशाली हैं कि उन्हें बारहो महीने भोजन मिल जाता है, लेकिन कुछ ऐसे भी हैं जिन्हें अपना पेट भरने के लिए कठिन परिश्रम करना पडता है। उनके आहार में भी समता नही है क्योकि उनमें थोडे ही मनुष्यो की तरह शाकाहारी और मासाहारी दोनो हैं लेकिन ज्यादा सख्या उन्ही की है जो या तो घास-पात से ही अपना पेट भरते हैं या केवल मास से ही सन्तुष्ट रहते हैं।

भोजन के इस मुख्य भेद के कारण स्तनप्राणियों का बड़ा परिवार दो भागों में बँट गया है और इस भेद के कारण इन दोनों प्रकार के जीवों के शरीर के भीतरी और वाहरी स्वरूप में भी विभिन्नता आ गयी है। शाकाहारी जीवों का शरीर जहाँ ढोलक की तरह लम्बा और गोलाकार होता है, वहीं मांसाहारी जीव छरहरे वदन के होते हैं। इसका कारण यही है कि मांसभक्षी जीवों का भोजन वहुत पोपक और शीघ्र पच जानेवाला होता है और उन्हें न तो ज्यादा खूराक की ही आवश्यकता होती है और न उसे पचाने के लिए लम्बी अँतड़ियों की ही, लेकिन दूसरी ओर शाक-पात के आहार में थोड़ा ही पोपक पदार्थ निकलता है, शाकाहारी जीवों को अधिक मात्रा में खाना पड़ता है और उसको पचाने के लिए उन्हें काफी लम्वी अँतड़ियों की आवश्यकता पड़ती है। इन लम्बी अँतड़ियों के कारण उनका शरीर चारों ओर फैलकर गोलाकार हो जाता है और वह मांस-भक्षियों के शरीर की तरह सुडौल नहीं रहता।

इन जीवों के दाँत, थूथन, जवान और पैर आदि अवयव इनकी भिन्न-भिन्न खूराक को देखते हुए अलग-अलग शकल के होते हैं। और उनके द्वारा हमें इन जीवों के आहार का वहुत कुछ पता चल जाता है। छछूंदर आदि कीटभक्षी जीवों का थूथन जहाँ लम्बा और नुकीला होता है, वहीं चींटीखोर की जवान इतनी लम्बी होती है कि वह उसे दीमकों के विल में डालकर सैकड़ों दीमकों को एक साथ चिपका लेता है। मांसभक्षी जीवों के दाँत और पंजे वहुत नुकीले और मज़वूत होते हैं जिनसे उन्हें अपने शिकार को पकड़ने में वहुत आसानी हो जाती है। उनके दाँत भी शाकाहारियों के दाँत से भिन्न रहते हैं और उनके पीछे की ओर पीसनेवाली दाढ़ों के स्थान पर तेज और नुकीले दाँत रहते हैं जिनसे वे आसानी से मांस को काट सकते हैं। उनके वगल के कुकुरदन्त भी वहुत तेज़ होते हैं जिनसे ये अपना शिकार पकड़ते हैं। सुअर के ये ही दाँत वढ़कर वाहर निकल आते हैं जिनसे वह अपनी रक्षा की लड़ाई में शेर का भी मुकावला कर लेता है।

शाकाहारी जीवों में कुछ ऐसे भी हैं जो जुगाली करते हैं—अर्थात् वे पहले जल्दी-जल्दी घास-पात चरकर किसी निरापद स्थान पर वैठ जाते हैं और फिर चरी हुई घास को पेट से मुंह में निकालकर दुवारा अच्छी तरह चवाकर निगलते हैं। इसी कारण इन जीवों की अँतड़ियाँ वहुत लम्वी होती हैं। इन जीवों को रोमन्थकारी जीव कहा जाता है। इन्हें जुगाली करने का विकास इसलिए करना पड़ा कि इनके

शत्रु इन पर प्राय उसी समय आक्रमण करते थे जब ये चराई में लगे रहते थे। इससे ये अपने बचाव के लिए जल्दी-जल्दी घास चर लेने लगे और फिर किसी निरापद स्थान पर बैठकर अपने अधचरे हुए आहार को मुँह में लाकर दुबारा चबाकर निगलने लगे।

इस प्रकार भिन्न-भिन्न प्रकार की अवस्थाओं के कारण भिन्न भिन्न प्रकार के स्तनप्राणियों का विकास हुआ और आज हम उनकी तरह-तरह की सूरतें तथा अलग अलग रंग-रूप देखते हैं।

कुछ स्तनप्राणियों ने, जिनके पूर्वज खुश्की पर रहनेवाले जीव थे, अपनी रक्षा के लिए समुद्र की शरण ली, जिनमें हमारे समुद्र में रहनेवाली ह्वेल (तिमि) और सूस हैं। इन जीवों का शरीर लम्बा और सूच्याकार हो गया जिससे मछलियों की भाँति उन्हें भी पानी में तैरने की सहूलियत हो गयी। उनके हाथ पाँव और दुम भी मछलियों की तरह सुफ्ना में बदल गये जिन्हें देखकर हमें मछलियों का धोखा होने लगा। लेकिन ये पानी में रहकर भी जलचर न हो सके और न उन्हें मछलियों की तरह अपने गलफड़ों से पानी में घुली हुई हवा से साँस लेने की सहूलियत ही प्राप्त हो सकी। वे आज भी हम लोगों की तरह हवा में अपने फेफड़े से साँस लेते हैं और इसके लिए उन्हें थोड़ी-थोड़ी देर पर पानी के बाहर अपना सिर निकालना पड़ता है। इतना ही नहीं ये अन्य स्तनप्राणियों की तरह आज भी बच्चे जनते हैं और उन्हें अपने स्तनों से दूध पिलाते हैं।

कुछ स्तनप्राणी अपनी रक्षा के लिए हवा में चिड़ियों की भाँति उड़ने लगे जिनमें चमगादड़ प्रमुख हैं। वैसे कुछ उड़नेवाली गिलहरियाँ भी होती हैं, लेकिन वे अपने शरीर के दोनों ओर बढ़ी हुई खाल के कारण एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर हवा में तैरती हुई चली जाती हैं जिसे वास्तव में उड़ना नहीं कहा जा सकता। चमगादड़ों ने हवा में उड़ना तो सीख लिया लेकिन उनके शरीर पर चिड़ियों की तरह परों का विकास नहीं हुआ बल्कि उनकी उँगलियाँ ही बढ़कर उनके शरीर से ज्यादा लम्बी होकर आपस में एक प्रकार की झिल्ली से जुड़ गयीं जिनके सहारे वे हवा में चिड़ियों की तरह उड़ने लगे।

कुछ स्तनप्राणी ऐसे भी हैं जो जमीन के भीतर बिल खोदकर रहते हैं। इन जीवों का शरीर पतला और लम्बा होता है जिससे वे बिलों में आसानी से घुस सकें।

चूहे, छछूंदर आदि जीव इसी श्रेणी में आते हैं। उनकी आँखें छोटी होती हैं लेकिन वे बिल खोदने में उस्ताद होते हैं।

अधिक संख्या उन्हीं स्तनप्राणियों की है जो खुश्की पर रहते हैं और जिन्होंने भिन्न-भिन्न तरह के जलवायु, परिस्थितियों तथा पास-पड़ोस की अवस्था के अनुकूल अपने को बना लिया है। ये जंगल-पहाड़, रेगिस्तान और बर्फ के मैदानों में रहकर अपने को वहाँ के अनुकूल बना लेते हैं। इनमें से कुछ ने तो पेड़ों पर रहने का अभ्यास कर लिया है और कुछ ऐसे भी हैं जो पहाड़ की खोहों और माँदों में ही अपना समय बिताते हैं।

स्तनप्राणी रंग के मामले में उतने भाग्यवान नहीं हैं जितनी चिड़ियाँ, तितलियाँ या प्रवाल द्वीप की मछलियाँ हैं, लेकिन इनमें से बाज़-बाज़ को धारीदार या चित्तीदार पोशाक मिली है जो इनके जंगल की धूपछाँह में छिपने में बहुत सहायक होती है। बरफ पर रहनेवाले जीवों को जहाँ प्रकृति ने सफेद पोशाक दी है वहीं घास के मैदान में रहनेवाले जीव भूरे और जल में रहनेवाले कलछौंह होते हैं जिससे वे अपने पास-पड़ोस के रंग में ऐसे मिल जायँ कि दुश्मनों की निगाह उन पर आसानी से न पड़ सके।

स्तनप्राणियों के पैर भी उनके पास-पड़ोस की अवस्था को देखकर ही विकसित हुए हैं। इनमें ज्यादा संख्या तो उन्हीं की है जो अपने चारों पैरों को पृथ्वी पर रखकर चलते हैं और उन्हें इसीलिए चौपाया कहा जाता है। इन चौपायों में हाथी आदि कुछ जीव ऐसे हैं जिनके पैर में पाँच नाखून होते हैं, लेकिन गाय, बैल और हिरन आदि जीवों के पैरों में नाखूनों की जगह खुर होते हैं जो बीच से फटे रहते हैं। घोड़े ने तेज रफ्तार के लिए अपने पैरों का और भी अधिक विकास किया है और उनके पैरों में एक ही नाखून रह गया है जो सुम कहलाता है। अपने इस सुम की सहायता से वह कड़ी जमीन पर भी बड़ी तेज़ी से भाग लेता है। ऊँट को ज्यादातर रेगिस्तानों में ही चलना पड़ता है, इससे उसके पैर का निचला हिस्सा चौड़ा और गद्देदार हो गया है जो बालू में नहीं धँसता। इसी प्रकार पानी में तैरनेवाले ऊद आदि प्राणियों के पैर की उँगलियाँ बत्तखों की तरह जालपाद हो गयी हैं जिससे वे पानी में आसानी से तैर लेते हैं।

मांसभक्षी जीवों के पैरों में चार या पाँच उँगलियाँ होती हैं जिनमें तेज़ नाखून

रहते हैं। ये नाखून वैसे तो भीतर छिपे रहते हैं, लेकिन जरूरत पड़ने पर वे उन्हें निकालकर अपना शिकार पकड़ते हैं। उनके पैर का निचला हिस्सा गद्देदार होता है जिससे उनके चलने पर बहुत कम आवाज होती है और वे चुपके चुपके अपने शिकार के निकट तक पहुँच जाते हैं।

इसी प्रकार सब स्तनप्राणियों ने अपनी सुविधा के लिए अपने हाथ, पाँव और उँगलियों का विकास किया है। तिमि (ह्वेल) आदि जलचारी जीवों के हाथ-पैर जहाँ सुफ्नों मे बदल गये हैं वही वन्दरों आदि की उँगलियाँ लम्बी और अलग-अलग रहती हैं जिनकी सहायता से उन्हें पेड़ों पर चढ़ने में आसानी हो जाती है।

स्तनप्राणियों की आँखों की बनावट में तो ज्यादा भेद नही होता, लेकिन प्रकृति ने उनकी सुविधानुसार उनके स्थान में कुछ हेर फेर जरूर कर दिया है। मासभक्षी जीवों की आँखें जहाँ मनुष्यों की तरह उनके सिर में आगे और बीच में होती हैं, वहीं शाकाहारी जीवों की आँखें उनके सिर के दोनों बगल में रहती हैं। इसका कारण यह है कि जहा मासभक्षियों का अपने शिकार के लिए सामने और दूर का ध्यान रखना पड़ता है, वही शाकाहारियों को इन मासभक्षी जीवों के आक्रमण से बचने के लिए बराबर सतर्क होकर इधर-उधर देखना पड़ता है जिसके लिए सिर के दोनों बगल आखों का होना उनके लिए बहुत उपयुक्त है।

बाल स्तनप्राणियों की एक विशेषता है। प्राय सभी स्तनप्राणियों के शरीर पर कम या ज्यादा बाल होते हैं। यहा तक कि ह्वेल आदि जल में रहनेवाले स्तनप्राणी जिन्होंने अपने शरीर को धीरे-धीरे मछलियों की तरह चिकना बना लिया है अपने थूथन पर के थोड़े से बालों से छुट्टी नहीं पा सके हैं। ये बाल सीग और नाखून की तरह निर्जीव रहते हैं, लेकिन इनकी जड़ त्वचा के उस स्थान पर रहती है जहाँ स्पर्श ज्ञान का केन्द्र रहता है। बिल्ली और शेर आदि हिंसक जीवों की लम्बी मूछें उन्हें रात में चलने में बहुत सहायता पहुँचाती हैं, इसी से ये जीव रात में अपनी मूछों को फैलाकर चलते हैं क्योंकि जिस स्थान से उनकी फैली हुई मूछ बिना किसी वस्तु को छुए हुए निकल जाती है वहाँ से उनका सिर और शरीर भी निकल जाता है।

स्तनप्राणियों की सूंघने और सुनने की शक्ति के बारे में कोई एक नियम नहीं है और सबने अपने आवश्यकतानुसार ही इन शक्तियों का विकास किया है। मासाहारी जीवों को जिन्हें अपना शिकार पकड़कर अपना पेट भरना पड़ता है,

सूंघने की शक्ति बहुत तेज़ होती है, लेकिन हिरन आदि शाकाहारी जीवों को अपनी प्राण-रक्षा के लिए प्रकृति ने उनसे भी तेज घ्राण-शक्ति दी है, नहीं तो उन्हें अपने दुश्मनों का पता ही न लगे और आक्रमणकारी उनके पास तक पहुँच जायँ। इतना ही नहीं, उनके कान भी इसीलिए बड़े और घूमनेवाले होते हैं जिनको इधर-उधर घुमाकर वे दूर से ही दुश्मनों की आहट सुन लेते हैं। इसी प्रकार रात में उड़नेवाले चमगादड़ों को भी प्रकृति ने लम्बे कान और तेज़ सुनने की शक्ति दी है।

स्तनप्राणियों का संक्षिप्त वर्णन समाप्त हुआ। अब आगे उनके वर्गीकरण के बारे में लिखा जा रहा है—

स्तनप्राणी श्रेणी (Class Mammilia) को विद्वानों ने तीन उपश्रेणियों में इस प्रकार विभाजित किया है—

१—अण्डज-उपश्रेणी

(SUB CLASS PROTOTHERIA)

इस उपश्रेणी में डक बिल्ड प्लैटीपस (Duck Billed Platypus) तथा एकिडना (Echidna)नाम के दो प्राणी रखे गये हैं, जो अन्य स्तनप्राणियों की तरह बच्चे न जन कर अण्डे देते हैं। ये दोनों जीव आस्ट्रेलिया तथा उसके पास के टापुओं पर पाये जाते हैं।

२—शिशुधानिन-उपश्रेणी

(SUB CLASS METATHERIA)

इस उपश्रेणी के प्राणियों की यह विशेपता होती है कि उनके बच्चे अपरिपक्व अवस्था में पैदा होते हैं जिन्हें उनकी माँ अपने पेट के पास की थैली में रख लेती है और उनका मुख अपने स्तन में लगा देती है। आठ-नौ महीने तक उसी थैली में रहकर उनके बच्चे परिपक्व होकर बाहर निकलते हैं।

इस उपश्रेणी का मुख्य प्राणी कंगारू है। यह भी आस्ट्रेलिया का निवासी है और वहाँ के अलावा अन्य किसी देश में नहीं पाया जाता।

३—जरायुधारी-उपश्रेणी

(SUB CLASS EUTHERIA)

तीसरी उपश्रेणी बहुत बड़ी है जिसमें शेप सब स्तनपायी जीव एकत्र किये गये हैं। इस उपश्रेणी के प्राणियों की विशेपता यह है कि उनके गर्भस्थ शिशु का

रहते हैं। ये नाखून वैसे तो भीतर छिपे रहते हैं, लेकिन जरूरत पड़ने पर वे उन्हें निकालकर अपना शिकार पकड़ते हैं। उनके पैर का निचला हिस्सा गद्देदार होता है जिससे उनके चलने पर बहुत कम आवाज होती है और वे चुपके-चुपके अपने शिकार के निकट तक पहुँच जाते हैं।

इसी प्रकार सब स्तनप्राणियो ने अपनी सुविधा के लिए अपने हाथ, पाँव और उँगलियो का विकास किया है। तिमि (ह्वेल) आदि जलचारी जीवो के हाथ-पैर जहा सुफनो में बदल गये हैं वही बन्दरो आदि की उँगलियाँ लम्बी और अलग-अलग रहती हैं जिनकी सहायता से उन्हे पेडो पर चढने में आसानी हो जाती है।

स्तनप्राणियो की आँखो की बनावट मे तो ज्यादा भेद नही होता, लेकिन प्रकृति ने उनकी सुविधानुसार उनके स्थान में कुछ हेर-फेर जरूर कर दिया है। मासभक्षी जीवो की आँखें जहाँ मनुष्यो की तरह उनके सिर मे आगे और बीच में होती हैं, वही शाकाहारी जीवो की आँखे उनके सिर के दोना बगल में रहती हैं। इसका कारण यह है कि जहा मासभक्षियो का अपने शिकार के लिए सामने और दूर का ध्यान रखना पडता है, वही शाकाहारियो को इन मासभक्षी जीवो के आक्रमण से बचने के लिए बराबर सतर्क होकर इधर-उधर देखना पडता है जिसके लिए सिर के दोनो बगल आखो का होना उनके लिए बहुत उपयुक्त है।

बाल स्तनप्राणिया की एक विशेषता है। प्राय सभी स्तनप्राणियो के शरीर पर कम या ज्यादा बाल होते हैं। यहाँ तक कि ह्वेल आदि जल में रहनेवाले स्तनप्राणी जिन्होने अपने शरीर का धीरे धीरे मछलियो की तरह चिकना बना लिया है, अपने थूथन पर के थाडे से बालो से छुट्टी नही पा सके हैं। ये बाल सीग और नाखून की तरह निर्जीव रहते हैं लेकिन इनकी जड त्वचा के उस स्थान पर रहती है जहाँ स्पर्श ज्ञान का केन्द्र रहता है। बिल्ली और शेर आदि हिंसक जीवो की लम्बी मूछें उन्हें रात में चलने म बहुत सहायता पहुँचाती हैं, इसी से ये जीव रात मे अपनी मूछो को फैलाकर चलते हैं क्योकि जिस स्थान स उनकी फैली हुई मूछ बिना किसी वस्तु को छुए हुए निकल जाती है वहाँ स उनका सिर और शरीर भी निकल जाता है।

स्तनप्राणिया की सूघने और सुनने की शक्ति के बारे में कोई एक नियम नही है और सबने अपने आवश्यकतानुसार ही इन शक्तियो का विकास किया है। मासाहारी जीवो की, जिन्हे अपना शिकार पकडकर अपना पेट भरना पडता है,

६—मांसभक्षी वर्ग

(ORDER CARNIVORA)

शफ वर्ग की तरह यह वर्ग भी काफी बड़ा है जिसमें स्थल पर रहनेवाले सब मांसभक्षियों को एकत्र किया गया है। इन सब जीवों के कुकुरदन्त बहुत तेज़ और नोकीले होते हैं। इस वर्ग में शेर, तेंदुए, भेड़िये, कुत्ते, बिल्ली, लोमड़ी, स्यार और ऊद आदि मांसाहारी जीव रखे गये हैं।

७—कीटभक्षी वर्ग

(ORDER INSECTIVORA)

यह वर्ग छोटा है और इसमें सब कीटभक्षी जीवों को रखा गया है। इनकी विशेषता यह है कि ये ज़मीन में आनन-फानन बिल खोद डालते हैं। इसमें छछूँदर और काँटा चूहा आदि जीव एकत्र किये गये हैं।

८—करपक्ष वर्ग

(ORDER CHIROPTERA)

इस वर्ग में सब प्रकार के छोटे-बड़े मांसभक्षी और शाकाहारी चमगादड़ों को जमा किया गया है जो स्तनप्राणी होकर भी हवा में चिड़ियों की तरह उड़ लेते हैं।

९—वानर वर्ग

(ORDER PRIMATES)

इस वर्ग में सभी प्रकार के बन्दर, लंगूर तथा वनमानुष इकट्ठा किये गये हैं जो मनुष्यों के निकट सम्बन्धी हैं। इन जीवों के हाथ की उँगलियाँ बहुत विकसित हैं। अन्य जीवों की अपेक्षा ये जीव बुद्धि में सबसे आगे हैं।

अदन्त वर्ग

(ORDER EDENTATA)

इस वर्ग में वैसे तो चींटीखोर और साल आदि पांच परिवार के प्राणी हैं, लेकिन हमारे देश में केवल साल-परिवार के जीव पाये जाते हैं। चींटीखोर, जो इस वर्ग का प्रसिद्ध प्राणी है, दक्षिण अफ्रीका का निवासी है।

इन प्राणियों के मुख में आगे की ओर दाँत नहीं होते। इसी से उन्हें अदन्त जीव कहा जाता है। आगे साल-परिवार का वर्णन दिया जा रहा है।

पोषण एक नाल (Plecenta) द्वारा होता है जो माँ और शिशु से जुड़ी रहती है। इन जीवों के बच्चे माँ के पेट में ही परिपक्व अवस्था में उत्पन्न होते हैं।

इस उपश्रेणी को नौ वर्गों में इस प्रकार बाँटा गया है—

१—अदन्त वर्ग

(ORDER EDENTATA)

इस वर्ग के जीवों की विशेषता यह होती है कि उनके मुख में आगे की ओर दाँत नहीं होते और उनके शरीर पर प्राय बड़े शल्क रहते हैं। हमारे यहाँ केवल शाल्क नाम का प्राणी इस वर्ग में रखा गया है।

२—समुद्रधेनु वर्ग

(ORDER SIRENIA)

यह वर्ग बहुत छोटा है जिसमें समुद्र में रहनेवाले शाकाहारी स्तनप्राणी रखे गये हैं। हमारे यहाँ इस वर्ग में केवल समुद्र-धेनु नाम का जीव रखा गया है।

३—तिमि वर्ग

(ORDER CETACEA)

इस वर्ग के जीव भी समुद्र के निवासी हैं लेकिन ये सब मांसभक्षी हैं जिनमें हमारे यहाँ की तिमि (ह्वेल) और सूस प्रसिद्ध हैं।

४—शफ वर्ग

(ORDER UNGULATA)

यह वर्ग सब वर्गों से बड़ा है जिसमें सब प्रकार के हिरन, गाय-बैल, भेड़-बकरियाँ, सुअर गदहे घोड़े हाथी और ऊँट आदि शाकाहारी जीवों को इकट्ठा किया गया है। इनमें अधिकांश के खुर या सुम होते हैं और वे जुगाली करते हैं।

५—तीक्ष्णदन्त वर्ग

(ORDER RODENTIA)

इस वर्ग में वे जीव रखे गये हैं जो अपने तेज दाँतों और अपनी कुतरने की आदत के लिए प्रसिद्ध हैं। इसमें सब प्रकार के चूहे, गिलहरियाँ और खरगोश आदि रखे गये हैं।

सहायक होते हैं वहीं ये इनके चलने में बहुत बाधा पहुँचाते हैं। इन टेढ़े नाखूनों के कारण ये जमीन पर अपना पूरा पैर नहीं रख पाते क्योंकि चलते समय इनके नाखून मुड़कर इनके तलुओं के नीचे आ जाते हैं जिससे इनकी चाल देखने में अजीब-सी लगती है।

साल

(INDIAN PANGOLIN)

साल को हमारे देश में कहीं-कहीं सल्लूसाँप भी कहते हैं। हमारे यहाँ ये पंजाब से बंगाल तक और हिमालय की तराई से धुर दक्षिण तक पाये जाते हैं, लेकिन ये इतनी कम संख्या में रह गये हैं कि इन्हें बहुत ही कम आदमियों ने देखा होगा।

साल बिल खोदकर रहनेवाले जीव हैं जो दिन भर अपने बिलों में घुसे रहते हैं और रात होने पर ही बाहर निकलते हैं। इनके ये बिल पुराने और सुनसान भीटों में रहते हैं।
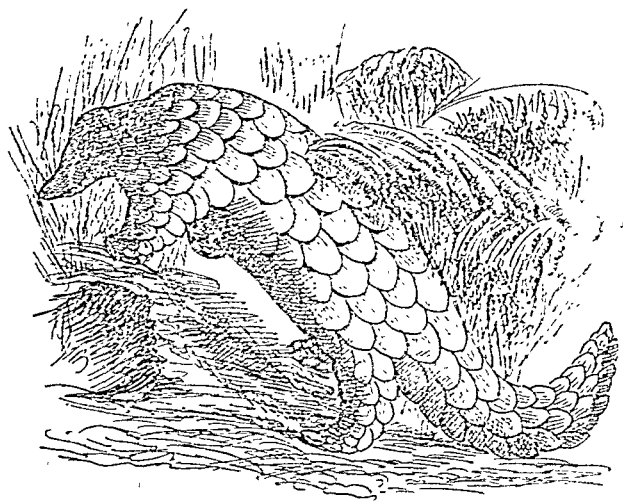
साल

साल का कद लगभग दो फुट लम्बा होता है और उसकी दुम की लम्बाई भी डेढ़ फुट से कम नहीं होती। इसके बदन का ऊपरी और बगली हिस्सा, टाँगों का

साल-परिवार

(FAMILY MARRIDAE)

साल परिवार में साल ही अकेला जीव है जिसको कहीं-कहीं सल्लू साँप भी कहते हैं। इसकी दो जातियाँ हमारे देश में पायी जाती हैं। यहाँ उनमें से एक का वर्णन दिया जा रहा है।

साल बिल खोदकर रहनेवाला प्राणी है जिसका मुख्य आहार दीमक है। इसकी जबान काफी लम्बी होती है जो इसके मुख की एक नली के भीतर छिपी रहती है। यह आगे की ओर साँप की जिह्वा की तरह फटी रहती है इसीसे शायद इसको सल्लू साँप कहा जाता है। आवश्यकता पड़ने पर साल अपनी जीभ को काफी दूर तक बढ़ा लेता है और इसी के सहारे वह दिमौर से दीमकों का शिकार कर लेता है। इसकी जीभ पर ऐसा चिपचिपा पदार्थ रहता है कि दीमक तथा छोटे छोटे कीड़े उसमें चिपककर इसके पेट में पहुँच जाते हैं।

इन जानवरों का शरीर लम्बा होता है जो ऊपर से मोटे और दुर्भेद्य शल्कों से ढँका रहता है। नीचे का हिस्सा कोमल और मुलायम रहता है, जिस पर शल्कों की जगह तितरे बितरे बाल उगे रहते हैं। ऊपर के शल्क खपरैल की तरह एक-दूसरे पर चढ़े रहते हैं जो बनावट में इतने कड़े होते हैं कि कभी-कभी इन पर बन्दूक की गोली का भी असर नहीं होता।

खतरा निकट आने पर साल काँटाचूहे की तरह अपने बदन को गोल गेंद-सा लपेट लेते हैं। फिर किसी जीव की क्या मजाल जो इनका कुछ कर सके। इनके बदन पर के शल्क बहुत कड़े और मजबूत होते हैं जिनके किनारे बहुत तेज रहते हैं। इनकी दुम और टाँगों का बाहरी हिस्सा भी इन्हीं कड़े शल्कों से ढँका रहता है।

इन जानवरों का सिर छोटा और थूथन लम्बा होता है। इनके मुख का छिद्र बहुत पतला, आँखें छोटी और जबान बहुत लम्बी होती है। इनकी टाँगें इनके कद को देखते हुए छोटी ही कही जायँगी। प्रत्येक टाँग में पाँच उँगलियाँ रहती हैं जिनमें बहुत मजबूत टेढ़े नाखून रहते हैं। इन नाखूनों से ये कड़ी-से-कड़ी मिट्टी को बड़ी आसानी से खोद डालते हैं। लेकिन ये टेढ़े नाखून जहाँ इनको कड़ी मिट्टी खोदने में

उँगलियाँ छिपी रहती हैं। इन्हीं पतवारनुमा हाथों से ये पानी में बड़ी कुशलता से तैर लेते हैं। इनके पिछले पैर एकदम गायब हो गये हैं क्योंकि पानी में रहने के कारण वे इनके लिए एकदम बेकार ही थे।

इन जीवों की हड्डियाँ ठोस और भारी होती हैं, क्योंकि इन्हें अपने घास-पात के भोजन के लिए समुद्र के आस-पास ही रहना पड़ता है जहाँ पानी का बोझ इतना अधिक हो जाता है कि यदि वहाँ कोई मामूली जीव पहुँच जाय तो उसकी हड्डी-पसली चूर-चूर हो जाय। लेकिन इन जीवों की ठोस और भारी हड्डियाँ, जहाँ उन्हें पानी के नीचे जाने में सहायक होती हैं वहीं से उन्हें पानी के भारी बोझ से भी बचाती हैं जो समुद्र के नीचे जाने पर निरन्तर बढ़ता ही जाता है।

इन प्राणियों की खाल तो मोटी होती ही है, साथ ही उसके नीचे चरबी की एक मोटी तह भी रहती हैं जो इन्हें सरदी से बचाती है। इनके कृंतक दाँत और दाढ़ों के बीच में थोड़ा फासला रहता है। ये जीव वैसे तो समुद्र के निवासी हैं, लेकिन इनका अधिक समय समुद्रतट के आस-पास ही बीतता है। इस वर्ग के जीवों को विद्वानों ने दो परिवारों में बाँटा है जो इस प्रकार हैं—

१. मैनिटी-परिवार—Family Manatidae
२. समुद्रधेनु-परिवार—Family Halicoridae

पहले परिवार में 'मैनिटी' नाम की समुद्रधेनु रखी गयी है जो हमारे देश में नहीं पायी जाती। इसका निवास-स्थान अमेरिका और अफ्रीका के समुद्र हैं। हमारे देश के समुद्रों में पायी जानेवाली समुद्रधेनु तो दूसरे परिवार की प्राणी है जो हमारे देश के दक्षिणी समुद्रों में पायी जाती है।

मैनिटी (Manati) यद्यपि हमारे देश में नहीं पायी जाती, फिर भी उसके बारे में यहाँ कुछ बताना असंगत न होगा, क्योंकि इन्हीं की मादा को देखकर लोगों ने मत्स्य-स्त्री की कल्पना की थी। हमारे यहाँ की समुद्री-गाय का भी दूसरा नाम इसी कारण "माही तल्ला" पड़ा है जिसका निचला हिस्सा मछली की शकल का होता है।

मैनिटी की शकल थोड़ी-बहुत मनुष्यों से मिलने के कारण कुछ लोग उनकी मादा को मत्स्य-स्त्री (Mermaid) समझा करते थे। पुरानी कहानियों में इनका अक्सर जिक्र आता है कि समुद्रों में एक प्रकार की मत्स्य-स्त्रियाँ रहती हैं जिनका

बाहरी हिस्सा और दुम का कुछ हिस्सा कड़े शल्कों से ढँका रहता है। इसके सिर के ऊपरी हिस्से पर भी कड़े शल्क रहते हैं, लेकिन टाँगों के भीतरी हिस्से और दुम को छोड़कर नीचे का सारा हिस्सा सादा रहता है। इसकी दुम सिरे की ओर पतली हो जाती है। इसके पैर छोटे और पंजों के नाखून टेढ़ तथा मजबूत होते हैं।

साल के बदन पर के शल्क, जिनसे उसका शरीर ढँका रहता है बादामी या भूरे रंग के होते हैं। ये इतने कड़े होते हैं कि कभी-कभी इन पर बन्दूक की गोली का भी असर नहीं होता। इसकी जबान बहुत लम्बी होती है जिस पर एक प्रकार का चिपचिपा पदार्थ लगा रहता है जिसमें चिपककर छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़े इसके पेट में पहुँच जाते हैं।

साल की मादा जाड़ा के अन्त तक एक बच्चा जनती है, लेकिन कभी-कभी इनके दो बच्चे भी पाये जाते हैं। बच्चों के शरीर पर कड़े शल्क नहीं होते लेकिन ज्यों ज्यों वे प्रौढ़ होते जाते हैं, उनका शरीर भी कड़े शल्कों से ढँकता जाता है।

समुद्रधेनु वर्ग
(ORDER SIRENEA)

इस समुद्रधेनु वर्ग में समुद्र में रहनेवाले उन सब जीवों को एकत्र किया गया है जो पूर्णतया शाकाहारी हैं और जिनका मुख्य आहार समुद्र में उगनेवाली वनस्पति है।

जिस प्रकार बन्दर और वनमानुष मनुष्यों के सम्बन्धी हैं, उसी प्रकार समुद्रधेनु और हाथियों का निकट का सम्बन्ध है। इन दोनों के पूर्वज एक ही थे। हाथियों ने तो अपना विकास करके स्तनप्राणियों में अपना एक विशेष स्थान बना लिया। लेकिन ये बेचारे भागकर फिर समुद्र में चले गये और वहाँ मछलियों की तरह अपना जीवन व्यतीत करने लगे।

इन जीवों का सिर गोल और सुडौल होता है, लेकिन आँखें छोटी ही होती हैं। इनके नाक के छिद्र नथुना के ऊपर रहते हैं और कान के छिद्रों के ऊपर ढक्कन नहीं रहते। इनकी दुम चपटी होती है जो तिमि वर्ग के जीवों की तरह आड़ी-आड़ी न होकर मछलियों की तरह खड़ी-खड़ी रहती है।

इन प्राणियों के अगले पैर पत्तियों के आकार के हो गये हैं जिनके भीतर इनकी

समुद्री-गायें वहुत काहिल होती हैं और उनकी शकल-सूरत भी वहुत भोंडी और भद्दी होती है। उनका मांस वहुत स्वादिष्ठ होता है जिसके कारण उनका काफी शिकार होने लगा है और वह समय दूर नहीं जव वे शायद दिखाई ही न पड़ें।

समुद्री-गायें अक्सर छिछली खाड़ियों में दिखाई पड़ती हैं। कभी-कभी तो ये वड़ी नदियों के मुहानों में वहाँ तक चली आती हैं जहाँ तक खारा पानी रहता है, लेकिन इन्हें मीठा पानी कतई पसन्द नहीं है इसीलिए हम इन्हें अपनी नदियों में कभी नहीं देखते।

ये शाकाहारी जीव हैं जो समुद्र के अन्दर उगनेवाली वनस्पति को खाकर अपना पेट भरती हैं। इनकी मादा एक वार में एक ही वच्चा जनती है जिसे वह अपने वगल के सुफनों में दवाकर इधर-उधर लिये फिरती है।

तिमि वर्ग

(ORDER CETACIA)

तिमि वर्ग में सव प्रकार की तिमि (ह्वेल) और सूसें रखी गयी हैं जो समुद्र में रहनेवाले जीव हैं और जिन्होंने पृथ्वी के स्थल भाग को सदा के लिए छोड़कर जल को ही अपना निवास-स्थान वना लिया है।

वहुत लोग ह्वेल को जल में रहने के कारण मछली की एक जाति समझते हैं, लेकिन हमें यह भली-भाँति समझ लेना चाहिए कि पानी में निरन्तर अपना जीवन विताने पर भी ये मछलियाँ न होकर स्तनप्राणी ही हैं और अन्य स्तनपायी जीवों की तरह हवा में साँस लेने के लिए इन्हें वार-वार पानी के वाहर अपना सिर निकालना पड़ता है। मछलियों की तरह शरीर का आकार-प्रकार होने पर भी इनके शरीर की भीतरी रचना मछलियों की तरह न होकर स्तनप्राणियों की तरह होती है।

ये सव मांसाहारी जीव हैं जिनका मुख्य भोजन छोटी-छोटी मछलियाँ और घोंघे आदि हैं क्योंकि इतनी भीमकाय होने पर भी अपने गले के तंग सूराख के कारण ये छोटी मछलियाँ ही खा पाती हैं। मादा तिमि अण्डे न देकर वच्चे जनती है जिनको वह अपने स्तनों से दूध पिलाती है।

अपना सारा समय पानी के भीतर विताने के कारण इन प्राणियों के अगले पैर तो मछलियों के सुफनों (Fins) में वदल गये हैं, लेकिन पिछले पैर वेकार होने

ऊपरी धड स्त्रियो की तरह और नीचे का हिस्सा मछलियो की तरह होता है। ऋकिन य सब काल्पनिक बातें हैं। मैनिटी की मादाओ को देखकर ही लोगों को मत्स्य स्त्री का धोखा हुआ होगा क्योकि अपने बच्चो को दूध पिलाते समय वह पानी में अपनी दुम के सहारे सीधी खडी हो जाती है और तब दूर से ऐसा जान पडता है कि जैसे कोई स्त्री पानी में खडी होकर अपने बच्चो को दूध पिला रही हो।

यहा केवल समुद्रधेनु परिवार (Family Halicordae) का वर्णन दिया जा रहा है क्योकि हमारे यहा केवल इसी परिवार के जीव पाये जाते हैं।

समुद्रधेनु-परिवार

(FAMILY HALICORDAE)

यह परिवार अपने वर्ग की ही तरह बहुत छोटा है जिसमें दो प्रकार की समुद्री गायें आती हैं। भारत की समुद्री गाय और आस्ट्रेलिया की समुद्री गाय।

यहां भारत की समुद्री गाय का वर्णन दिया जा रहा है। वैसे इन दोनो में बहुत थोडा ही अन्तर होता है।

समुद्री गाय

(DUGONG)

समुद्री गाय जैसा उसके नाम से स्पष्ट है समुद्री जीव है। यह हमारे देश के दक्षिणी समुद्रों में काफी सख्या में पायी जाती है।

समुद्री गाय

यह सात-आठ फुट लम्बी होती है और इसका शरीर मछलियों से मिलता जुलता रहता है। इसके शरीर का रंग नीलापन लिये सिलेटी होता है।

समुद्री-गायें बहुत काहिल होती हैं और उनकी शकल-सूरत भी बहुत भोंडी और भद्दी होती है। उनका मांस बहुत स्वादिष्ठ होता है जिसके कारण उनका काफी शिकार होने लगा है और वह समय दूर नहीं जब वे शायद दिखाई ही न पड़े।

समुद्री-गायें अक्सर छिछली खाड़ियों में दिखाई पड़ती हैं। कभी-कभी तो ये बड़ी नदियों के मुहानों में वहाँ तक चली आती हैं जहाँ तक खारा पानी रहता है, लेकिन इन्हें मीठा पानी कतई पसन्द नहीं है इसीलिए हम इन्हें अपनी नदियों में कभी नहीं देखते।

ये शाकाहारी जीव हैं जो समुद्र के अन्दर उगनेवाली वनस्पति को खाकर अपना पेट भरती हैं। इनकी मादा एक बार में एक ही बच्चा जनती है जिसे वह अपने बगल के सुफनों में दबाकर इधर-उधर लिये फिरती है।

तिमि वर्ग

(ORDER CETACIA)

तिमि वर्ग में सब प्रकार की तिमि (ह्वेल) और सूसें रखी गयी हैं जो समुद्र में रहनेवाले जीव हैं और जिन्होंने पृथ्वी के स्थल भाग को सदा के लिए छोड़कर जल को ही अपना निवास-स्थान बना लिया है।

बहुत लोग ह्वेल को जल में रहने के कारण मछली की एक जाति समझते हैं, लेकिन हमें यह भली-भाँति समझ लेना चाहिए कि पानी में निरन्तर अपना जीवन बिताने पर भी ये मछलियाँ न होकर स्तनप्राणी ही हैं और अन्य स्तनपायी जीवों की तरह हवा में साँस लेने के लिए इन्हें बार-बार पानी के बाहर अपना सिर निकालना पड़ता है। मछलियों की तरह शरीर का आकार-प्रकार होने पर भी इनके शरीर की भीतरी रचना मछलियों की तरह न होकर स्तनप्राणियों की तरह होती है।

ये सब मांसाहारी जीव हैं जिनका मुख्य भोजन छोटी-छोटी मछलियाँ और घोंघे आदि हैं क्योंकि इतनी भीमकाय होने पर भी अपने गले के तंग सूराख के कारण ये छोटी मछलियाँ ही खा पाती हैं। मादा तिमि अण्डे न देकर बच्चे जनती है जिनको वह अपने स्तनों से दूध पिलाती है।

अपना सारा समय पानी के भीतर बिताने के कारण इन प्राणियों के अगले पैर तो मछलियों के सुफनों (Fins) में बदल गये हैं, लेकिन पिछले पैर बेकार होने

तिमि-वर्ग को विद्वानों ने इस प्रकार दो उपवर्गों में बाँटा है—

१. अदन्त उपवर्ग—Sub Order Mystacoccti

२. सदन्त उपवर्ग—Sub Order Odontoccti

अदन्त उपवर्ग में वे ह्वेलें हैं जिनके मुँह में दाँत नहीं होते जब कि सदन्त उपवर्ग के प्राणियों के जवड़ों में दाँतों की पंक्ति रहती है।

अदन्त उपवर्ग

(SUB ORDER MYSTACOCETI)

इस उपवर्ग में जैसा कि उसके नाम से ही स्पष्ट है दन्तहीन-ह्वेलें एकत्र की गयी हैं। इनमें तीन परिवार हैं जिनमें अनेक जातियों की ह्वेलें हैं, लेकिन हमारे यहाँ केवल नीली-तिमि-परिवार के जीव पाये जाते हैं। अतः यहाँ केवल उसी में की एक तिमि का वर्णन दिया जा रहा है।

नीली-तिमि-परिवार

(FAMILY BALAENOPTERIDAE)

इस परिवार के जीवों का सिर छोटा होता है और उनकी गरदन से सीने तक के भाग में खड़े-खड़े घरारे पड़े रहते हैं। इनका शरीर बहुत गठा होता है और इनके शरीर की लम्बाई कभी-कभी पचास फुट से भी ज्यादा हो जाती है।

इसमें की प्रसिद्ध नीली-तिमि का, जो हमारे देश के समुद्रों में पायी जाती है, यहाँ वर्णन दिया जा रहा है।

नीली तिमि

(RORQUAL)

नीली तिमि को अंग्रेजी में फिन ह्वेल (Fin Whale) भी कहते हैं और रारक्वेल (Rorqual) भी। यह फिन ह्वेल इसलिए कही जाती है कि इसकी पीठ पर एक बड़ा-सा फिन या सुफना रहता है और चूँकि इसका रंग नीला होता है इस कारण इसे नीली-तिमि कहना भी ठीक ही जँचता है।

नीली तिमि हमारे देश के अरब सागर और बगाल की खाडी में पायी जाती
इसके अलावा मालाबार समुद्रतट के आस-पास भी इसके झुड दिखाई पड़ते हैं

नीली-तिमि

तिमि हमारे यहाँ का ही नही, वरन् सारे ससार का सबसे बडा जीव है जि
शरीर की लम्बाई ९० फुट से भी ज्यादा पहुँच जाती है। इतने बडे शरीर
रखकर किसी जीव का भी स्थल पर रहना सम्भव न होता, लेकिन पानी में अपने विश
शरीर को इधर-उधर ले जाने मे इसे ऐसा सहारा मिल जाता है कि इसे इधर-उ
जाने मे कोई कठिनाई नही होती।

सदन्त उपवर्ग

(SUB ORDFR ODONTOCETI)

इस उपवर्ग में वे जीव रखे गये हैं जिनके जबडो मे तेज दाँत होते हैं। यह उपव
भी तीन परिवारो मे विभक्त है उनमें से जिन दो परिवारो के जीव हमारे यहाँ प
जाते हैं उनके नाम ये हैं —

१ मोमीतिमि-परिवार—Family Physeteridae

२ सूस-परिवार—*Family Platanistidae*

मोमीतिमि परिवार

(FAMILY PHYSETERIDAE)

इस परिवार के जीवो का सिर बडा होता है और उनके मुख में तेज दाँत रहते
हैं। इनका शरीर लगभग ५०—६० फुट लम्बा होता है लेकिन इनकी मादाएँ कद में
नर की आधी ही रहती हैं।

इस परिवार की मोमीतिमि का वर्णन आगे किया जा रहा है जो हमारे यहाँ की प्रसिद्ध तिमि है।

मोमी-तिमि

(CACHALOT)

इस तिमि को मोमी-तिमि इसलिए कहा जाता है कि इसके माथे के तेल और चर्बी से हमारी मोमबत्तियाँ बनती हैं।

मोमी-तिमि गरम समुद्रों में रहनेवाली ह्वेल है जो ठंडे समुद्रों की ओर बहुत कम जाती है। यह हमारे यहाँ अरब सागर से लेकर बंगाल की खाड़ी तक फैली हुई है।
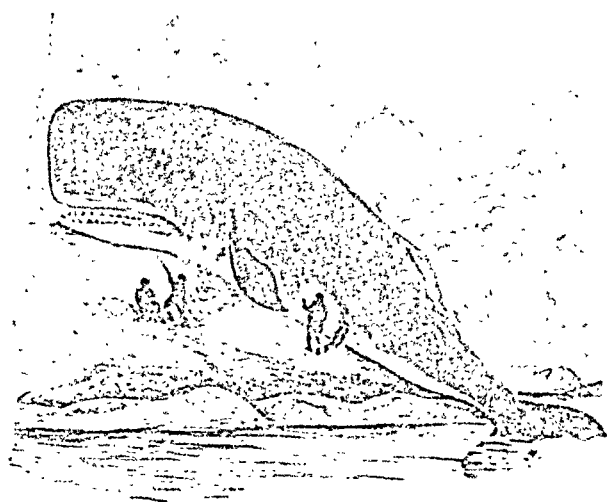
मोमी-तिमि

मोमी-तिमि नीली-तिमि से छोटी होती हैं जिनके शरीर की लम्बाई साठ फुट से ज्यादा नहीं जाती। इनकी भी मादाएँ लम्बाई में नरों से आधी रहती हैं। इनका शरीर कलछौंह रहता है जिसमें से कुछ का निचला हिस्सा सफेदी-मायल भी हो जाता है।

ये ह्वेलें झुंड बनाकर रहती हैं। इनके झुंड में १५–२० से लेकर १००–२०० तक ह्वेलें दिखाई पड़ती हैं। अकेले तो केवल बुड्ढे नर ही देखे जा सकते हैं।

ये तिमि समुद्रों में काफी दूर-दूर का चक्कर लगाती हैं और पानी में भी काफी देर तक रह लेती हैं। ये पानी में काफी गहराई तक चली जाती हैं।

सूस-परिवार

(FAMILY PLATANISTIDAE)

इस परिवार के जीव तिमि के मुकाबले बहुत छोटे होते हैं जो समुद्रों के अलावा नदियों में भी पाये जाते हैं। इनके जबड़ों में तेज दाँत होते हैं जिनकी संख्या काफी रहती है।

यहाँ केवल अपने यहाँ की प्रसिद्ध सूस का वर्णन दिया जा रहा है जो हमारे यहाँ गंगा और उसकी सहायक नदियों में पायी जाती है।

सूस

(DOLPHIN)

सूस पानी में रहनेवाला स्तनपायी-जीव है जो थोड़ी-थोड़ी देर बाद हवा में साँस लेने के लिए पानी की सतह के ऊपर अपना सिर निकालता है और गोलाई में घूम-कर सिर के बल पानी में चला जाता है। यह क्रिया आनन-फानन होती है और इसी बीच वह खुली हवा में साँस ले लेता है।

सूस
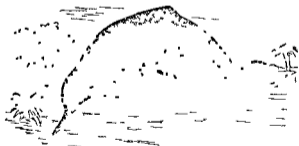
सूस सात-आठ फुट के कलछौंह जीव हैं जिनकी आकृति मछली जैसी हो गयी है। इनके गोल सिर के आगे घड़ियाल जैसा लम्बा थूथन रहता है जिसमें बहुत तेज और

काफी संख्या में रहते हैं। इनकी आँखें शक्ल से बड़ी नहीं होतीं। इनके कान के छिद्र भी सुई के छेद से बड़े नहीं होते।

इनके नर, मादा से छोटे, लेकिन उनसे गठीले होते हैं।

शफ वर्ग

(ORDER UNGULATA)

शफ वर्ग स्तनप्राणियों का सबसे बड़ा वर्ग है जिसमें सब खुरवाले जीव एकत्र किये गये हैं। ये सब शाकाहारी जीव हैं जो घास-पात और जड़ों पर अपना निर्वाह करते हैं। इन्हें न तो मांसभक्षी जीवों की तरह तेज और नोकीले कुकुरदन्त की जरूरत पड़ती है और न वानरों की तरह लम्बी उँगलियोंवाले हाथ-पाँव की। इसी लिए प्रकृति ने इनके पैरों में उँगलियों और पंजों के स्थान पर खुर या सुम बनाये हैं जिससे वे काफी तेज भाग सकते हैं।

इनके कृन्तक दाँत भी छेनी की तरह तेज धारवाले बनाये गये हैं जिससे इन्हें घास-पात चरने में तनिक भी कठिनाई न पड़े। इन प्राणियों के बहुधा कुकुरदन्त होते ही नहीं और अगर हुए भी तो वे बहुत छोटे और बेकार रहते हैं। हाँ, इनकी दाढ़ें जरूर बहुत चौड़ी होती हैं, जिनकी इन्हें बहुत ज्यादा जरूरत भी पड़ती है।

इस वर्ग में विशाल कदवाले जीवों से लेकर छोटे कदवाले जीव तक रखे गये हैं जो संसार के प्रायः सभी भागों में फैले हुए हैं।

इन जीवों की कुछ बातों में समानता होते हुए भी इस वर्ग के प्राणियों के कद और शकल-सूरत में इतना भेद रहता है कि हमें जल्द इन्हें एक वर्ग का प्राणी मानने में हिचकिचाहट-सी होती है, लेकिन ये सब खुरदार प्राणी होने के कारण ही एक वर्ग में रखे गये हैं जो शफ-वर्ग कहलाता है।

प्राणिशास्त्र के विद्वानों ने इस बड़े वर्ग को चार उपवर्गों में विभक्त किया है, लेकिन हमारे यहाँ तीन ही उपवर्ग के जीव पाये जाते हैं। जो इस प्रकार हैं—

१. गो-उपवर्ग—Sub Order Artiodactyla

२. अश्व-उपवर्ग—Sub Order Perissodactyla

३. गज-उपवर्ग—Sub Order Proboscidea

गो-उपवर्ग

(SUB ORDER ARTIODACTYLA)

गो उपवर्ग काफी बडा उपवर्ग है जिसे सुविधा के लिए विद्वानो ने चार समूहो में विभाजन किया है—

पहला समूह गो-समूह (Section Pecora) कहलाता है, जिसमें सब प्रकार के गाय-बैल, भेड-बकरी और हिरन तथा बारहसिंघे रखे गये हैं।

दूसरे समूह को पिसूरी-समूह (Section Tragulina) कहा जाता है। इसमें छोटे कदवाले हिरन या पिसूरी हैं।

तीसरे समूह का नाम उष्ट्र-समूह (Section Tylopoda) है जिसमें ऊँट और लामा रखे गये हैं, लेकिन लामा हमारे देश मे नही होते और—

चौथा समूह शूकर-समूह (Section Suina) के नाम से विख्यात है जिसमें सब प्रकार के सुअर और हिप्पोपाटेमस (Hippopotamus) हैं। हिप्पो भी हमारे देश मे नही होते और लामा की तरह इन्हें भी यहाँ हम अपने चिडियाखाना में ही देख सकते हैं। ये सब जीव खुरवाले हैं जिनके खुर बीच से फटे रहते हैं।

गो-समूह

(SECTION PECORA)

इस समूह के सभी प्राणी सच्चे रोमन्थकारी जीव हैं जो पहले जल्दी जल्दी घास वगैरह चर लेते हैं और फिर बाद में किसी निरापद स्थान पर बैठकर जुगाली करते हैं।

जुगाली करते समय इन जीवो के पेट म चरी हुई घास या पत्तियाँ छोटे छोटे गोले की शक्ल में होकर इनके मुँह तक आ जाती हैं जिन्हे ये फिर अच्छी तरह चबाकर निगल जाते हैं। जब यह दुबारा चबाया हुआ चारा इनके पेट के भीतर पहुँचता है तब कही जाकर इनकी पाचन क्रिया प्रारम्भ होती है।

जुगाली करने का यह ढग विचित्र तो है ही, लेकिन इसकी शुरुआत किस प्रकार हुई, यह भी कम रोचक नही है।

बहुत समय पहले जब पृथ्वी पर बडे-बडे जगलो में हिंस्र जीव भरे थे तो इन शाकाहारी जीवो को उनसे अपनी जान बचाने के लिए बहुत सतर्क रहना पडता था।

उस समय उन्हें इतना समय नहीं मिलता था कि वे निडर होकर घास-पात चर सकें। इसीलिए उन्होंने अपने आमाशय या उदर का ऐसा विकास किया कि वह कई हिस्सों में बँट गया। जिसका फल यह हुआ कि अपने उदर के एक खाने में ये पहले जल्दी-जल्दी घास वगैरह भर लेते हैं। फिर जब इनको अवकाश मिलता है तो उसे अपने मुँह तक लाकर और अच्छी तरह चबाकर खा लेते हैं। इसी क्रिया को हम जुगाली करना कहते हैं।

इन प्राणियों के सींग स्थायी होते हैं जो एक ठोस हड्डी के ऊपर एक खोल से चढ़े रहते हैं। ये बारहसिंघों के सींग की तरह हर साल गिरते नहीं। इनकी बनावट सीधी, टेढ़ी और चन्द्राकार जरूर होती है, लेकिन उनमें कभी शाखाएँ नहीं फूटतीं।

इन सब प्राणियों के जबड़ों में कुकुरदन्त नहीं होते। इनकी आँख के नीचे एक गड्ढा-सा रहता है जिसमें से अधिकांश से एक प्रकार का द्रव पदार्थ निकला करता है। ये सब शाकाहारी जीव हैं।

इन पशुओं के खुर बीच से फटे रहते हैं जिससे इन्हें 'द्विशफ' कहा जाता है। खुरों के बीच से फटे रहने के कारण इनकी चाल में लचक तो आ ही जाती है, साथ ही साथ इनको कीचड़ और गीली मिट्टी में चलना बहुत आसान हो जाता है। कीचड़ में पैर पड़ते ही इनके ये फटे खुर फैल जाते हैं और बीच से कीचड़ ऊपर निकल जाता है।

इनमें से कुछ के खुरों के बीच एक ग्रंथि होती है जिसमें एक प्रकार का चिकना पदार्थ निकलता रहता है जो खुरों को चिकना बनाये रहता है। ये सब तेज भागने-वाले प्राणी हैं जिनकी सूँघने और सुनने की शक्ति बहुत तेज होती है।

ये सब जीव वैसे तो चार परिवारों में बाँटे गये हैं, लेकिन हमारे यहाँ इनमें से जिन दो परिवारों के जीव पाये जाते हैं वे ये हैं—

१. गो-परिवार—Family Bovidae
२. कस्तूरा-परिवार—Family Cervidae

गो-परिवार

(FAMILY BOVIDAE)

गो-परिवार भी विस्तृत परिवार है। इसमें सब प्रकार के गाय, बैल, भैंसें, हिरन और भेंड़-बकरियाँ एकत्र की गयी हैं।

इन प्राणियों के सींग स्थायी होते हैं जो एक ठोस हड्डी के ऊपर बड़े खोल की तरह चढ़े रहते हैं। ये बारहसिंघा के सींगों की तरह हर साल गिर नहीं जाते। सीधी, टेढ़ी और घुमावदार बनावट होने पर भी उनमें कभी शाखाएँ नहीं फूटतीं।

इन सब जीवों की आँखों के नीचे एक गड्ढा-सा रहता है जिसमें से अविराम से एक प्रकार का द्रव पदार्थ निकला करता है। ये सब शाकाहारी जीव हैं जिनके मुकुरदन्त नहीं होते।

इस परिवार के प्राणियों को वैसे तो ग्यारह उप-परिवारों में बाँटा गया है, लेकिन हमारे यहाँ उनमें से केवल छः उप-परिवारों के जीव पाये जाते हैं। उन छः में से यहाँ केवल गो, अज, गुरल, मृग तथा रोझ इन्हीं पाँच उप-परिवारों का वर्णन दिया जा रहा है, क्योंकि हमारे यहाँ के प्रायः सभी प्रसिद्ध जानवर इन्हीं पाँचों उप-परिवारों में आ जाते हैं।

गो-उपपरिवार

(SUB FAMILY BOVINAE)

गो-उपपरिवार में हमारी गाय, भैंस तथा उनके निकट-सम्बन्धी गौर, गयाल और सुरागाय रखी गयी हैं। इनका वर्णन नीचे दिया जा रहा है।

गौर

(GAUR)

गौर हमारे यहाँ का प्रसिद्ध जानवर है, जिसका भारी भरकम शरीर देखने पर बहुत रोबीला जान पड़ता है। इसको किसी किसी स्थान पर बोदा भी कहा जाता है। गौर अभी तक पालतू नहीं किये जा सके हैं। इनको पकड़कर अपनी गाय और भैंसों की तरह पालतू करने की कई बार कोशिश की गयी, लेकिन पकड़े जाने पर ये जिन्दा न रह सके और थोड़े ही समय में मर गये।

हमारे देश में ये सभी घने पहाड़ी जंगलों में मिल जाते हैं, लेकिन इनके रहने के स्थान मध्यप्रदेश के घने जंगल तथा हिमालय की तराई का पूर्वी भाग ही है।

ये बड़े सुन्दर, सुडौल और कद्दावर जानवर हैं जिनके कंधे की ऊँचाई छः फुट तक पहुँच जाती है। मादा पाँच फुट से ज्यादा ऊँची नहीं होती। लम्बाई में नर लगभग नौ फुट के और मादाएँ सात फुट तक की होती हैं।

गौर का रंग वैसे तो भूरा होता है, लेकिन नर पुराने होने पर, रोझ की तरह, काले हो जाते हैं। नीचे का हिस्सा कुछ हलके रंग का रहता है और खुर से लेकर घुटनों के कुछ ऊपर तक पैर सफेद रहते हैं।
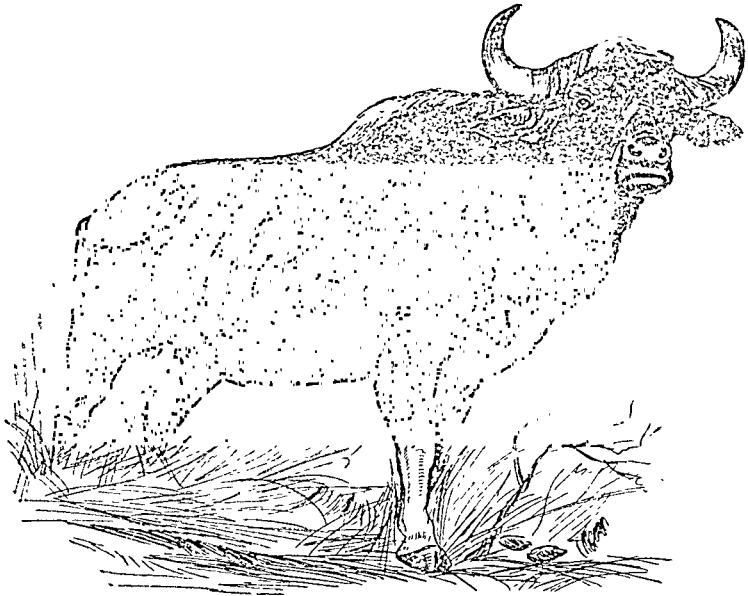
गौर

गौर का आँखों के पीछे से गुद्दी तक का हिस्सा राखी रहता है और सींगों का रंग गंदा हरा या पिलछौंह होता है जिनके सिरे काले रहते हैं।

गौर बहुत सीधा और डरपोक जानवर है जो खतरा निकट देखकर हमला करने के बजाय भागकर अपनी जान बचाना ही ज्यादा पसन्द करता है। घायल हो जाने पर जरूर इसका हमला बहुत भयंकर होता है।

गौर गरोह में रहनेवाले जानवर हैं जो पाँच से तीस तक का गोल बनाकर रहते हैं। बुड्ढे नर प्रायः अकेले ही रहते हैं। इनका मुख्य भोजन घास-पात और बाँस के नरम कल्ले हैं जिनकी तलाश में ये सुबह-शाम जंगलों में घूमते रहते हैं।

गयाल

(GAYAL)

गयाल को यही-कहीं मिथन भी कहते हैं। हमारे देश में यह आसाम तथा त्रिपुरा के पहाड़ी जंगलों में पायी जाती है।

शक्ल-सूरत और रंग-रूप में ये गौर ही जैसी होती है, लेकिन इनका कद उनसे जरूर छोटा रहता है। इनका अगला हिस्सा भी गौर की तरह रोबीला नहीं होता।

गयाल

गयाल गौर से भी सीधे जानवर हैं और इसीलिए इन्हें अपनी गायों की तरह मनुष्यों ने पालतू कर लिया है। आसाम की सीमा पर के निवासियों के लिए इनसे अधिक उपयोगी और दूसरा जानवर नहीं है। वे लोग यद्यपि इनसे खेत जोतने का काम नहीं लेते, लेकिन इनका मांस और दूध बड़े स्वाद से खाते हैं।

गयाल को ऊँट और घोड़ों की तरह ऐसा पालतू नहीं किया गया है कि जंगलों से उनका नाता ही सदा के लिए टूट गया हो बल्कि वे हाथियों की तरह थोड़ी संख्या में ही पालतू किये गये हैं और जंगलों में उनके भाई-बन्धु अब भी जंगली अवस्था में पाये जाते हैं। हाथियों की तरह लोगों को जितने गयालों की जरूरत होती है उतने पकड़ लिये जाते हैं क्योंकि इनके पकड़ने में लोगों को ज्यादा दिक्कत नहीं उठानी पड़ती।

गाय-बैल

(OXEN)

गाय-बैल के बारे में ऐसा कौन है जो कुछ न जानता हो ? ये हमारे देश के सबसे उपयोगी पशु हैं जिनकी मेहनत से हमारे यहाँ के नब्बे फीसदी लोगों का पेट भरता है।

पृथ्वी पर इनकी दो मुख्य जातियाँ पायी जाती हैं। एक तो हमारे यहाँ के कूबड़-वाले गाय-बैल, जिनके कंधे पर कूबड़ उठा रहता है और दूसरे यूरोप के बिना कूबड़वाले गाय-बैल जिनके कूबड़ नहीं होता। इनमें जरसी आदि प्रसिद्ध नस्लें हैं।
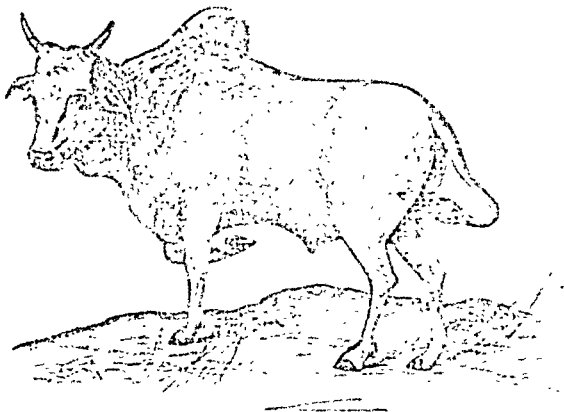
बैल

हमारे देश के इन कूबड़वाले गाय-बैलों की भी कई जातियाँ हैं जिनका संक्षिप्त वर्णन आगे दिया जा रहा है। ये सब भिन्न-भिन्न कद और भिन्न-भिन्न रंगों की होती हैं जिनमें सफेद और ललछौंह रंग प्रधान रहता है। वैसे ये काली, चितकवरी, धूसर और मकरी भी होती हैं।

इनके सींग अर्द्ध चन्द्राकार और चिकने होते हैं जो गाय और बैल दोनों में एक ही नाप के रहते हैं। दोनों के गले के नीचे की खाल लहरदार होकर लटकती रहती है जिससे इनकी सुन्दरता और भी बढ़ जाती है। देखने में तो गाय सुन्दर होती ही है, बैल भी कम सुन्दर नहीं होता। अपने गढ़े हुए सुडौल शरीर में वह बहुत ही भोला जान पड़ता है।

गाय-बैल बहुत शान्त स्वभाव के शाकाहारी पशु हैं, जिनका मुख्य भोजन घास-पात है। ये दाना और खली भी बड़े स्वाद से खाते हैं।

गाय जहाँ अपने अमृत तुल्य दूध के कारण हमारी माता के समान मानी जाती है वही बैल भी अपने बल और पौरुष के कारण हमारे आदर का पात्र बना हुआ है। इतना ही नहीं, हमारे कृषि-कार्य मे भी हर तरह से सहायक होकर यह हमारा अन्नदाता बन गया है।

गाय अक्सर एक और कभी-कभी दो बच्चे भी देती है, जो जल्द ही माँ के साथ चलने फिरने लगते है।

हमारे यहाँ गाय बैलो की निम्नलिखित जातियाँ प्रसिद्ध हैं—

१ साहीवाल

२ हरियाना

३ थारपारकर

४ बनकया

५ गगानीरी

६ सिंधी

७ खैरीगट

८ पवार

साहीवाल हमारे यहाँ की प्रसिद्ध दुधारु नस्ल है। इस जाति के पशु लम्बे और मासल होते है। इनका रग अधिकतर लल्छौंह होता है। हमारे यहाँ की दुधारु गायों में साहीवाल का विशेष महत्व है, पर इस जाति के बैल अधिक मेहनत नही कर पाते।

हरियाना जाति के पशु पजाब के निवासी हैं। इस जाति की गाएँ दुधारु होती ही है, बैल भी बहुत चुस्त और मेहनती होते है। ये सफेद या धूसर रग के होते है।

थारपारकर जाति के पशु जोधपुर, कच्छ तथा जैसलमेर के है। ये भी सफेद या धूसर रग के होते है। इस जाति की गाएँ तो बहुत दुधारु होती है, लेकिन बैल मामूली मेहनत का ही काम कर पाते है।

केनकथा जाति बुंदेलखंड की है। ये धूसर रंग के होते हैं। इनके बैल खेती के काम के लिए बहुत उपयुक्त होते हैं, लेकिन गायें अधिक दुधार नहीं होतीं।

गंगातीरी जाति के पशु गंगा और घाघरा के बीच के भाग में पाये जाते हैं। ये मझोले कद के बहुत सीधे जानवर हैं। इनका रंग प्रायः सफेद या धूसर रहता है। इनकी गायें भी दुधार होती हैं और बैल भी काफी परिश्रमी होते हैं।

सिंधी जाति के पशु वैसे तो करांची के आसपास के रहनेवाले हैं, लेकिन अब ये हमारे देश में भी काफी जगहों में फैल गये हैं। हमारे यहां की दुधार गायों में सिंधी का प्रमुख स्थान है। बैल हल्का काम ही कर पाते हैं। ये हल्के लाल रंग के होते हैं।

खैरीगढ़ जाति के पशु खीरी जिले के खैरीगढ़ परगने में मिलते हैं, लेकिन अब इनकी नस्ल चारों ओर फैल रही है। ये प्रायः सफेद होते हैं। इनकी गायें ज्यादा दूध नहीं देतीं और बैल भी हल्का ही काम कर पाते हैं।

पवार जाति के पशु बड़े मरकहे होते हैं। ये पीलीभीत तथा खीरी जिले के पश्चिमी भागों में पाये जाते हैं। इनका रंग सफेद, काला या चितकबरा रहता है। इस जाति के बैल मेहनत के काम के लिए बहुत अच्छे होते हैं, लेकिन गायें अधिक दूध नहीं देतीं।

सुरागाय

(YAK)

सुरागाय को तिब्बतवाले याक कहते हैं और अंग्रेजी में भी इसका यही नाम है। यह वैसे तो तिब्बत के ऊँचे पठार का निवासी है, लेकिन हमारे देश में भी यह उत्तरी लद्दाख के आसपास पन्द्रह से बीस हजार फुट की ऊँचाई पर पाया जाता है।

सुरागाय का कंधा ऊँचा, पीठ चौरस और पैर छोटे और गठीले होते हैं। इसकी पीठ और बगल के बाल तो छोटे ही रहते हैं, लेकिन इसके सीने के निचले और पैरों के ऊपरी हिस्से पर काफी लम्बे बाल रहते हैं।

सुरागाय का कद वैसे तो हमारे यहाँ के गाय-बैलों से छोटा ही होता है, लेकिन अपने ऊँचे कंधे और बड़े बालों के कारण यह देखने में उनसे ज्यादा रोबीला जान पड़ता है। नर छः फुट ऊँचा और लगभग सात फुट लम्बा होता है, लेकिन मादा कुछ छोटी होती है।

याक वैसे तो सीधे और डरपोक जानवर हैं, लेकिन घायल होने पर ये बड़ा भयंकर हमला करते हैं। इनका मुख्य भोजन घास-पात है। ये पानी बहुत पीते हैं और जाड़ों में बर्फ खा-खाकर अपनी प्यास बुझाया करते हैं।

याक गहरे कत्थई, भूरे या कलछौंह रंग के होते हैं जिनके थूथन के पास का कुछ हिस्सा सफेद रहता है। लेकिन नरों के पुराने हो जाने पर उनकी पीठ का कुछ हिस्सा कलछौंह हो जाता है।

सुरागाय

याक तिब्बत आदि देशों का बहुत उपयोगी जानवर है। वहाँ के लोग इनसे केवल दूध और मास ही नहीं पाते बल्कि इन पर वे बैल या भैंसे की तरह सामान भी ढोते हैं।

बच्चे देने के मामले में सुरागाय हमारी गायों से बहुत मिलती-जुलती होती है।

अरना भैंसा

(WILD BUFFALO)

अरना भैंसे हमारे पालतू भैंसों के भाई-बन्धु हैं जो अब भी जगली अवस्था में हमारे यहाँ के घने जगलों में पाये जाते हैं, लेकिन अब इन जगली भैंसों से हमारे यहाँ के पालतू भैंसों का नाता एकदम टूट गया है और वे उनसे जोड़ा नहीं बाँधते।

अरना का शरीर वहुत भारी-भरकम होता है। इसके अलावा इसके वड़े सींग इसे और भी डरावना वना देते हैं। यह लगभग सात फुट चौड़ा और ग्यारह फुट लम्वा होता है जिसके माथे पर ढाई तीन फुट लम्बे चन्द्राकार सींग रहते हैं।
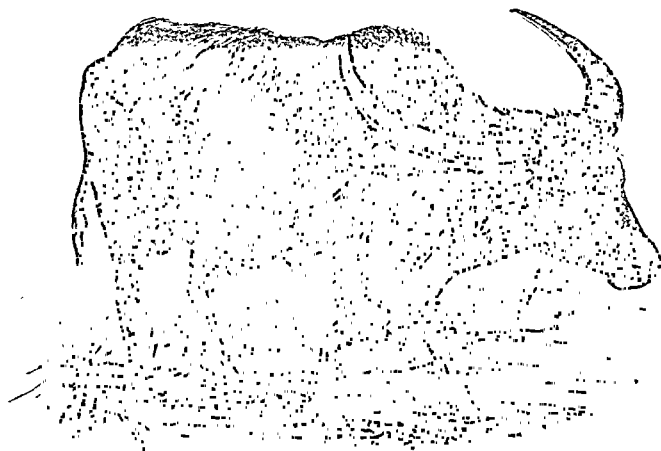
अरना भैंसा

इसका रंग गाढ़ा सिलेटी या काला रहता है, लेकिन इसके पैर कुछ दूर तक सफेद रहते हैं। इसके बदन पर बहुत छोटे और कम वाल होते हैं जो अधिक उम्र होने पर और भी कम हो जाते हैं।

अरना को न तो ज्यादा जंगल ही पसन्द है और न पहाड़ ही। यह घास के मैदानों में ही रहना अधिक पसन्द करता है। वहाँ यह ऐसे स्थानों में अपना अधिक समय बिताता है जो घास-फूस और नरकुलों से भरे हुए दलदलों के निकट होते हैं। इसका मुख्य भोजन घास-पात है।

अरना वहुत ढीठ और निडर जानवर है जो आदमियों से डरकर भाग नहीं खड़ा होता। यह वैसे तो सीधा जानवर है, लेकिन घायल हो जाने पर हाथी तक पर हमला कर वैठता है।

सुरागाय की तरह इसकी मादा भी लगभग दस महीने में एक या दो वच्चे जनती है।

अज, गुरल, मृग, तथा रोझ उपपरिवार

(SUB FAMILIES CAPRINAE, RUPICHERINAE, ANTILOPEDAE AND TRAGELAPHINAE)

इन उपवर्गों में सब प्रकार के हिरन और भेड़-बकरे रखे गये हैं जिनके सींग सियो की तरह हर साल नहीं गिर जाते। ये सींग स्थायी रहते हैं जिनका भीतरी ठोस हड्डी का रहता है और ऊपर से खोल चढ़ा रहता है। कुछ के सींग होते हैं तो कुछ के बड़े और कुछ के ऐंठे और घुमरेदार होते हैं तो कुछ के ति इन प्राणियों के नर और मादा दोनों सींगदार होते हैं, भले ही कुछ मादाओं के छोटे क्यों न होते हों।

इन सब जीवों के कुकुरदन्त नहीं होते और इनकी मादाओं के प्राय दो ही थन हैं। ये सब शाकाहारी जीव हैं जिनमें से बहुतों को मनुष्यों ने पालतू कर रखा है।

ये सब जीव अपनी तेज चाल के लिए प्रसिद्ध हैं क्योंकि इनको आक्रमणका से भागकर अपनी जान बचानी पड़ती है, इसीलिए ये दुर्गम घाटियों और पहाड़ चढ़ने में उस्ताद होते हैं।

इन उप-परिवारों में बहुत से जानवर हैं, लेकिन यहाँ अपने यहाँ पाये जाने कुछ प्रसिद्ध जगली भेंड़-बकरों तथा हरिनों का ही वर्णन दिया जा रहा है।

अज उपपरिवार

(SUB FAMILY CAPRINAE)

इस उपपरिवार में अपने यहाँ के पालतू भेड़-बकरों के अलावा साकिन, मारख और घेर तीन जगली बकरे और उरियल भरल और तीन जगली भेड़ों को रखा गया आगे उन्हीं का वर्णन दिया जा रहा है।

बकरा

(GOAT)

बकरों से हम सभी परिचित हैं। हमारे यहाँ के पालतू जानवरों में इनका प्रमु स्थान है। बकरी तो गरीब आदमियों की गाय कहलाती है और बकरे का मास हमा देश में सबसे अधिक खाया जाता है।

वैसे तो हमारे यहाँ सारे देश में देशी बकरे और बकरियाँ पायी जाती हैं, लेकिन इनकी पहाड़ी, कश्मीरी, बरबरी और जमुनापारी जातियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं।

कश्मीरी बकरियाँ जहाँ अपने मुलायम बालों के लिए मशहूर हैं, वहीं पहाड़ी जाति अपने गठे शरीर और स्वादिष्ठ मांस के लिए भी प्रसिद्ध है। बरबरी कद में छोटी-छोटी होती हैं, लेकिन इनके दो-दो बच्चे होते हैं और इनकी संख्या बहुत जल्द बढ़ जाती है। इसके विपरीत जमुनापारी कद में बड़ी होती हैं और दूध भी काफी देती हैं।
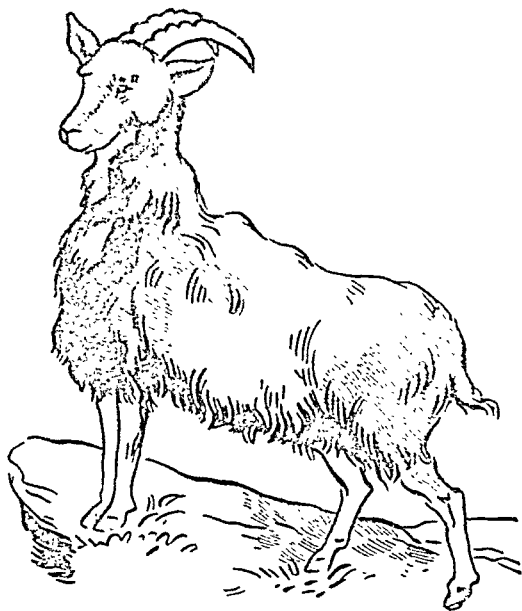
बकरा

बकरियाँ हमारे यहाँ काफी संख्या में पाली जाती हैं। इनका पालना भी कठिन नहीं होता और भेंड़ों की तरह इनमें अक्सर बीमारी भी नहीं फैलती। ये इधर-उधर घासपात चरकर अपना पेट भर लेती हैं लेकिन शौकीन पालनेवाले इन्हें दाना भी देते हैं।

इनका रंग अलग-अलग रहता है। कुछ काली होती हैं तो कुछ सफेद, और कुछ भूरी होती हैं तो कुछ खैरी, लेकिन ज्यादा ऐसी ही हैं जिन्हें चितकबरी रंग मिला है।

इनकी शकल-सूरत और सींगों की बनावट में भी काफी भेद रहता है क्योंकि ये अलग-अलग जंगली जातियों के बकरों से पालतू बनायी गयी हैं। मारखोर नाम के जंगली बकरे से निकली हुई बकरियों के सींग घुमावदार रहते हैं तो पासंग नामक जंगली बकरे से पालतू की गयी बकरियों के सींग पीछे की ओर झुके रहते हैं।

बकरों की वंशवृद्धि बहुत तेजी से चलती है क्योंकि साल में बकरियाँ एक या दो तीन बच्चे जनती हैं जो छः-सात महीने में ही जवान हो जाते हैं।

साकिन
(HIMALAYAN IBEX)

साकिन जगली बकरो में से एक प्रसिद्ध बकरा है जो हमारे देश में हिमालय के पश्चिमी भागों में पाया जाता है।

साकिन

इसका शरीर बहुत सुडौल और गठा हुआ रहता है। नर इस जाति के लम्बे सीगोवाले होते है और उनकी लम्बी दाढी रहती है। मादा कद में नर से छोटी होती है और उनके सीग भी नरो से छोटे रहते है।

साकिन के शरीर का रग गरमियो और जाडा मे बदलता रहता है। गरमियो में यह गाढे भूरे या कत्थई रग का रहता है, लेकिन जाडो में इसका शरीर पिल्छौह सफेदी में बदल जाता है।

साकिन बर्फ के आस पास रहनेवाला बकरा है जो अपना अधिक समय खडे और दुर्गम पहाडो और घाटियो में बिताता है। खडी पहाडो की कठिन चढाइयो पर यह बडी खूबी से चढ उतर लेता है। इसका मुख्य भोजन घास-पात है।

ये जगली बकरे गरोह बाँधकर रहते है और इनकी मादा मई जून में एक या दो बच्चे जनती है। इनका मास बहुत स्वादिष्ठ होता है।

मारखोर

(MARKHOR)

मारखोर भी हमारे यहाँ का प्रसिद्ध जंगली बकरा है जो हमारे देश में हिमालय के पश्चिमोत्तर प्रान्त का निवासी है। मारखोर साकिन से कुछ भारी जरूर होता है, लेकिन खड़े पहाड़ों और कठिन घाटियों में चढ़ने में इसका कोई मुकाबला नहीं कर पाता। इसके सींग साकिन के सींगों की तरह पीछे की ओर मुड़े नहीं रहते बल्कि वे सीधे, लम्बे, और ऐंठे तथा घुमावदार होते हैं।

मारखोर लगभग पांच फुट लंबे होते हैं। इनकी ऊँचाई तीन सवा-तीन फुट तक रहती है, लेकिन इनके लम्बे सींग तीन फुट से कम नहीं होते। इनके नरों की लंबी दाढ़ी रहती है और उनके बदन से एक प्रकार की तेज दुर्गंध सर्वदा निकलती रहती है।
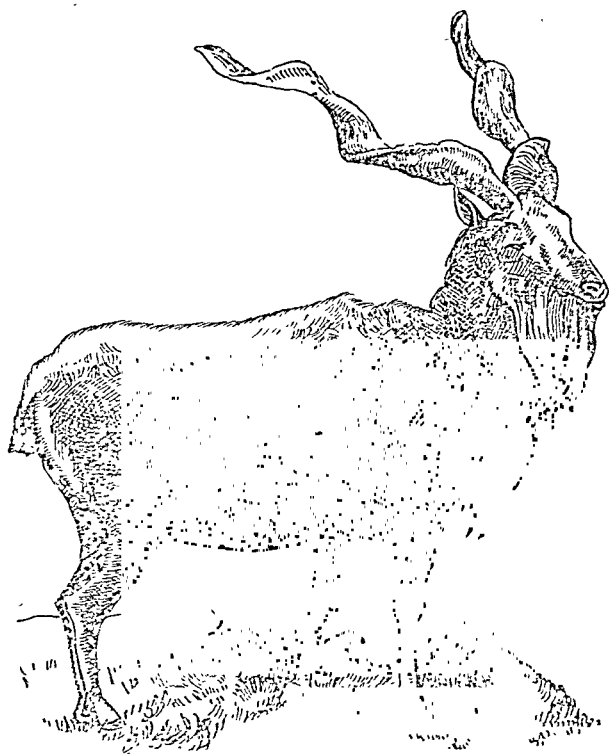
मारखोर

मारखोर का भी रंग साकिन की तरह जाड़ों और गरमियों में बदला करता है। गरमियों में यह गाढ़ा कत्थई रहता है, लेकिन जाड़ों में इसका रंग बदल कर सिलेटी हो जाता है। इसके बदन पर लम्बे बाल होते हैं जिनकी जड़ें सफेद रहती हैं।

अन्य जगली बकरो की तरह मारखोर भी झुड में रहनेवाला जानवर है। यह देखने में बहुत रोबीला जान पडता है और वजन में भी अन्य बकरो से भारी भरकम होता है।

इसकी मादा मई, जून में एक या दो बच्चे जनती है। इसका मास बहुत स्वादिष्ट होता है।

थेर

(THAR)

थेर हिमालय का जगली बकरा है जिसे हिमालय के ऊँचे और घने जगलो के सिवा और कही नही देखा जा सकता।

थेर

यह चार-पाच फुट लम्बा और तीन सवातीन फुट ऊचा बकरा है जो अपने बड़े बालो के कारण भारी और रोबीला जान पडता है। इसके सीग ज्यादा बडे न होकर दस-बारह इच के होते हैं जो पीछे की ओर मुडे रहते हैं।

थेर का ऊपरी रग गाढा भूरा या कत्थई रहता है और नीचे का हलका। पैरो का अगला हिस्सा बहुत गाढे रग का होता है जो दूर से काला जान पडता है। इनके भी नर मादाओ से बडे होते हैं, लेकिन उनके दाढी नही रहती।

इनकी और सब आदतें अन्य जंगली बकरों जैसी होती हैं और इनका भी मांस स्वादिष्ट होता है।

भेड़

(SHEEP)

बकरों की तरह भेड़ें भी हमारे पालतू जानवरों में से एक हैं, लेकिन इनका हमारे यहाँ से ज्यादा विदेशों में मान है। हमारे यहाँ भी इनकी कई जातियाँ पायी जाती हैं।

भेड़

भेड़ें, बकरियों से वैसे भी कुछ भारी होती हैं। इसके अलावा शरीर पर के घने बालों के कारण उनका शरीर और भी भारी दीख पड़ता है। इनके सींग चौड़े, तिकोने और पीछे की ओर मुड़े रहते हैं और इनके बकरों की तरह दाढ़ी नहीं होती।

भेड़ काली भी होती हैं और सफेद भी। कुछ चितकबरी भी होती हैं। इनके शरीर पर काफी बड़े बाल या ऊन रहते हैं जिन्हें साल में दो बार काटकर लोग उनसे ऊनी कपड़ा बनाते हैं। इसके अलावा इनका दूध और मांस तो हमारे लिए बहुत उपयोगी होता ही है। मादा गरमियों में एक या दो बच्चे जनती है।

न्यान

(GREAT TIBETAN SHEEP)

जिस प्रकार साकिन, मारखोर और थेर जंगली बकरे हैं उसी प्रकार न्यान हमारे यहाँ की प्रसिद्ध जंगली भेड़ है। ये ऊँचे और दुर्गम पहाड़ों पर चढ़ने में जंगली बकरों की ही तरह उस्ताद होती हैं, लेकिन इन्हें अपने रहने के लिए पहाड़ के ये खुले मैदान ज्यादा पसन्द हैं।

इनके सींग जड़ के पास काफी चौड़े होते हैं जो पीछे की ओर गोलाई से मुड़े रहते हैं। इनके नर को बकरों की तरह दाढ़ी तो होती नहीं, लेकिन इनके गले के नीचे अक्सर लम्बे बाल लटकते रहते हैं।

यान गरमियों में प न्द्रह हजार फु म नीचे नही उतरते लकिन जाडो में काफो वफ जम जान पर य बारह हजार फ तक चले आते है।

यान

यान जगली वकरा से कुछ बड होते ह । य छ मे साढ छ फुट तक लम्ब और तीन चार फ ऊचे होते ह । मादाए नरो से कुछ छोटी होती ह । य गरोह वाधकर रहते हैं।

यान के शरीर का ऊपरी रग भूरा होता है लेकिन नीच का सफदी-मायल रहता है। जाडो म इनका र कुछ हलका हो जाता है । इनक शरीर के बाल छोट कम और बहुत घन होते ह ।

यान का मास बहुत ही स्वादिष्ठ होता है। इसकी मादा गरमिया म एक या दो बच्चे देती है।

उरियल

(URIAL)

उरियल भी पहाडी भड है जो हिमालय के उत्तरी पश्चिमी ऊचे प्रान्तो म तथा पजाब की पहाडिया पर पाया जाती है। इसकी आदत वहुत कुछ यान से मिलती जलती होती है लेकिन यह कद में यान म कुछ छोटी होती है।

उरियल के शरीर का रंग गरमी और जाड़ों में वदलता रहता है। गरमियों में यह गाढ़े खैरे सिलेटी रंग का रहता है, लेकिन जाड़ों मे इसका रंग वदलकर हलका सिलेटी हो जाता है। इसके नीचे का हिस्सा, पैर और पुट्ठे सफेद रहते हैं। इसके वदन पर के वाल छोटे, कड़े और पर्याप्त घने होते हैं और इसके सींग चौड़े और गोलाई से पीछे की ओर घूमे रहते हैं। नर मादाओं से कद में वड़े होते हैं और इनके सींग भी उनके सींगों से वड़े रहते हैं।

उरियल

उरियल खड़े पहाड़ों पर चढ़ने में उस्ताद होते हैं, लेकिन वे ज्यादातर खुली घाटियों में पन्द्रह-त्रीस का गरोह बनाकर चरते हैं। इनका मांस वहुत स्वादिष्ठ होता है।

इनकी मादा मई, जून में एक या दो बच्चे जनती है।

भरल

(BLUE WILD SHEEP)

भरल भी हमारे यहाँ की प्रसिद्ध जंगली भेड़ है जो हमारे यहाँ तिव्वत से भूटान और नेपाल के आसपास पायी जाती है। गरमियों में यह पन्द्रह हजार फुट से भी अधिक ऊँचाई पर चली जाती है, लेकिन जाड़ों में हम इसे दस-वारह हजार फुट के आसपास देख सकते हैं।

भरल
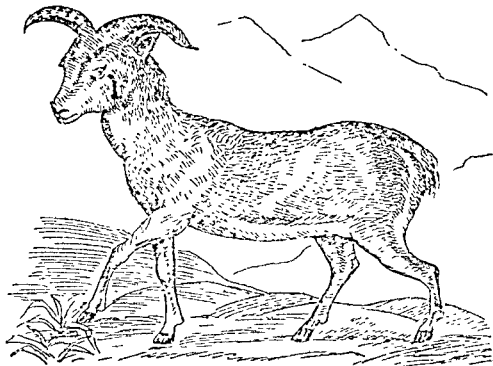
भरल का कद उरियल से कुछ बड़ा और न्यान से कुछ छोटा होता है। इसके सींग उरियल और न्याय की तरह बहुत गोलाई मे न घूम कर बाहर की ओर फैले रहते हैं। नर के सींग मादाओं मे बड़े होते हैं।

इनके बदन का ऊपरी भाग सिलेटी और निचला धुर सफेद रहता है लेकिन जाड़े में बदन के सिलेटीपन में कुछ भूरापन आ जाता है। नरो का चेहरा और दुम का आधे से ज्यादा भाग काला रहता है। इनके चारो पैरो के अगले भाग तथा पेट के दोनों बगल एक एक काली पट्टी पड़ी रहती है।

यह भी गरोह मे रहनेवाले जानवर है। इन गरोहो की तादाद कभी-कभी सौ-सौ तक की हो जाती है। इसका मांस बहुत स्वादिष्ट होता है।

भरल की मादा अन्य भेड़ बकरियो की तरह, पाँच महीने पर गरमियों में एक या दो बच्चे जनती है।

गुरल उपपरिवार

(SUB FAMILY RUPICAPRINAE)

इस उप-परिवार में गुरल के अलावा अपने यहाँ के प्रसिद्ध सेराव को रखा गया है। यहाँ इन्ही दोनो का वर्णन दिया जा रहा है।

गुरल

गुरल

(GURAL)

गुरल को पहाड़ी हिरन कहना ठीक होगा। ये पहाड़ो पर की बड़ी आबादियो के आस-पास काफी तादाद में पाये जाते हैं और प्रतिवर्ष इनका काफी संख्या में शिकार होता है। हिमालय में ये कश्मीर से भूटान तक पाये जाते हैं जहाँ तीन हजार से आठ हजार फुट की ऊँचाई के जगलो में इन्हें बड़ी आसानी से देखा जा सकता है।

गुरल की शकल बकरों-जैसी होती है। ये चार फुट लम्बे और दो ढाई फुट ऊँचे होते हैं। इनके नर और मादा के एक जैसे सींग होते हैं, लेकिन लम्बाई में नर के सींग कुछ बड़े होते हैं। ये सदा चार-छः का छोटा गिरोह बनाकर रहते हैं और इन्हें जंगलों के ऊँचे-नीचे और पथरीले भाग ही पसन्द आते हैं।

गुरल का रंग भूरापन लिये हुए सिलेटीमायल भूरा रहता है जो नीचे जाते-जाते और भी हल्का हो जाता है। पीठ पर काली धारी रहती है और गला सफेद रहता है। इसका मुख्य भोजन घास-पात है।

मादा अन्य भेड़-बकरियों की तरह पाँच-छः महीने पर एक बच्चा जनती है। गुरल का मांस बहुत स्वादिष्ट और कोमल होता है।

सेराव

(SEROW)

सेराव को बकरे और हिरन के बीच का जीव कहें तो ज्यादा ठीक होगा। यह हमारे यहाँ हिमालय के पश्चिमोत्तर प्रान्तों में छः से बारह हजार फुट की ऊँचाई पर पाया जाता है।

सेराव बहुत सीधा-सादा जानवर है इसका सिर बड़ा और गर्दन भारी होता है। इसके बाल कड़े और पतले होते हैं, जो ज्यादा लम्बे नहीं रहते। गरदन के ऊपर बड़े बालों की अयाल-सी रहती है।

सेराव

सेराव लगभग पाँच फुट लम्बा और तीन फुट ऊँचा जानवर है जिसका ऊपरी हिस्सा कलछौंह गाढ़ा सिलेटी होता है। इसका सिर और गरदन काली, बगली हिस्से, सीना और रानें कत्थई और नीचे का हिस्सा सफेद रहता है। नर और मादा दोनों सींगदार होते हैं, लेकिन नर का सींग मादा से कुछ बड़ा, लगभग १० इंच का रहता है। सेराव घने जंगलों में रहनेवाला शरमीला जानवर है, जो ऊँची-नीची पहाड़ियों के आस-पास रहता है। यह खड़ी पहाड़ियों पर चढ़ने में उस्ताद होता है।

चौसिंगा वैसे तो सीधा और डरपोक जानवर है, लेकिन घायल होने पर यह बड़ा भयंकर हमला करता है। इसका मांस सूखा और मामूली होता है।

जाड़ों में इसकी मादा एक बच्चा देती है।

मृग उपपरिवार

(SUB FAMILY ANTILOPINAE)

मृग उप-परिवार में मृग और चिकारा आते हैं। ये दोनों ही अपने यहाँ के प्रसिद्ध जीव हैं। यहाँ इन दोनों का वर्णन दिया जा रहा है।

मृग

(BLACK BUCK)

मृग अपने यहाँ का सबसे प्रसिद्ध हिरन है। यह हमारे यहाँ हिरन के नाम से प्रसिद्ध है, वैसे तो इसके कालिया और कृष्णसार आदि कई नाम हैं।

मृग हमारे यहाँ सारे देश में फैले हुए हैं जो ऊँची नीची पहाड़ियों से ज्यादा जंगलों के आस-पास के खुले मैदानों को पसन्द करते हैं। कहीं-कहीं तो ये रोझ की तरह पहाड़ी और जंगलों से दूर खुले मैदानों में रहने लगे हैं।

मृग चार फुट लम्बे और लगभग ढाई-तीन फुट ऊँचे होते हैं। मादाएँ कुछ छोटी होती हैं और उनके सींग नहीं होते। नर के सिर पर पन्द्रह-बीस इंच लम्बे सींग होते हैं जो धारीदार और सीधे होते हैं। इन सींगों के कारण नर बहुत सुन्दर लगते हैं।

मृग के शरीर का ऊपरी और पैर का बाहरी हिस्सा भूरा या बादामी होता है लेकिन नीचे का कुल हिस्सा धुर सफेद रहता है। नर ज्यों ज्यों पुराने होते जाते हैं उनका ऊपरी भूरा हिस्सा कलछौंह होता जाता है।

मृग गरोह बांधकर रहते हैं और अक्सर इनके पचीस-तीस के गरोह दिखाई पड़ते हैं जिनमें एक काला नर रहता है। ये बहुत तेज भागनेवाले जीव हैं जो भागते समय बहुत लम्बी छलांगें मारते हैं जिसे हम चौकड़ी भरना कहते हैं।

मृग बहुत ढीठ जानवर हैं। जहां इनका शिकार नहीं होता वहाँ तो ये रोझा की तरह ढीठ हो जाते हैं और हमारी खेती का बहुत नुकसान करते हैं। इनको चराई का

कोई निश्चित समय नहीं है और ये अपनी सुविधा के अनुसार दिन भर चरते रहते हैं। दिन में ये जरूर थोड़ी देर के लिए विश्राम करते हैं और रोझों की तरह प्रायः एक ही स्थान पर रोज़ विष्ठा करते हैं।

मृग

मादा प्रायः अगस्त अथवा सितंबर में एक बच्चा जनती है। इनका मांस कुछ रूखा जरूर होता है, लेकिन वह स्वादिष्ठ भी कम नहीं होता।

चिकारा

(INDIAN GAZELLE)

चिकारा को कहीं चिंकारा या कलपुंछ कहते हैं तो कहीं छिकारा या छिगार। ये मृगों से कद में छोटे जरूर होते हैं, लेकिन सुन्दरता में उनसे कम नहीं कहे जा सकते।

ये हमारे यहाँ के पूर्वी हिस्से को छोड़कर सारे देश के जंगलों में पाये जाते हैं।

इनके नर और मादा दोनो के सीग होते हैं। नर के सीग धरारीदार रहते हैं, लेकि मादा सादे और छो सीगोवाली होती है।

चिकारा

चिकारा के शरीर क ऊपरी समस्त हिस्सा औ टाँगो का बाहरी हिस्स हलके खैरे रग का होता है लेकिन नीचे का सारा भाग सफेद ही रहता है।

चिकारे मृगो की तरह बडे झुड बनाकर नही रहते। ये जोडे में या चार-छ एक साथ रहत हैं। ये बहुत तेज भागने-वाले होकर भी मृगो की तरह चौकडी भरने के शौकीन नही हैं। इसी स इन्हें खुले मैदानो में ज्यादा ऊबड-खाबड जमीन और पहाडियाँ पसन्द हैं। ये खेतो के आस-पास कम दिखाई पडते हैं और हमारी खेती का ज्यादा नुकसान भी नही करते। खतरा निकट आने पर ये एक प्रकार की तेज सिसकारी भरते हैं और अपने अगले पैरो को जमीन पर पटकते हैं।

इनका मास बहुत स्वादिष्ठ होता है।

रोझ उपपरिवार

(SUB FAMILY TRAGELAPHINAE)

इस उपपरिवार मे भी अपने यहाँ के दो प्रसिद्ध जानवर रोझ और चौसिगा रखे गये हैं। रोझ तो अब जगलो के अलावा हमारे खेतो और आबादियो के निकट रहने के आदी हो गये है, लेकिन चौसिगा जगलो में ही पाया जाता है।

यहाँ दोनो का वर्णन दिया जा रहा है।

रोझ

(BLUE BULL)

रोझ हमारे यहाँ नीलगाय के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनके नाम के साथ गाय शब्द जुट जाने से हमारे यहाँ कहीं-कहीं लोग इनको नहीं मारते। लेकिन ये वास्तव में एक प्रकार के हिरन हैं जो हमारे खेतों के आस-पास छोटे-छोटे गरोहों में घूमते दिखाई पड़ते हैं। हमारे देश में ये बंगाल और आसाम को छोड़कर करीब-करीब सारे देश में पाये जाते हैं और अपनी ढिठाई के कारण जंगलों के अलावा मैदानों और खेतों में घूमते रहते हैं। इनसे हमारी खेती को बहुत नुकसान पहुँचता है।
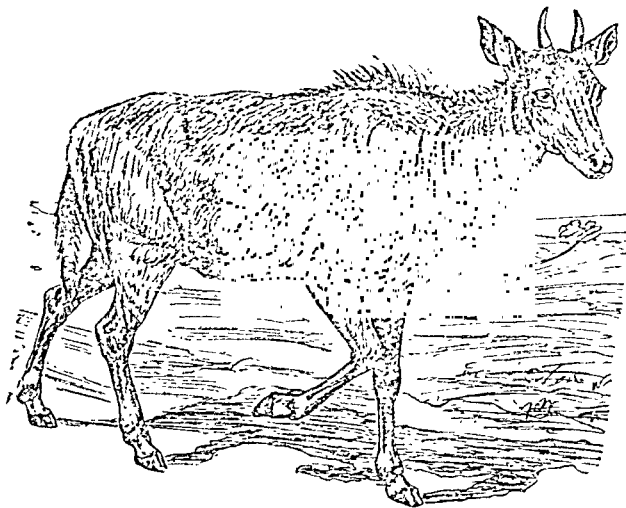
रोझ

रोझ काफी ऊँचे और भारी भरकम होते हैं जिनकी लम्बाई लगभग सात फुट और ऊँचाई पाँच फुट के करीब रहती है। नर के आठ-नौ इंच के छोटे सींग रहते हैं, लेकिन मादाएँ बिना सींग के ही होती हैं। नर जवान होने पर पिलछौंह या काले हो जाते हैं और इनके गले पर बालों का एक गुच्छा-सा निकल आता है।

रोझ के पिछले पैर अगले पैरों से कुछ छोटे होते हैं। इससे इनका अगला हिस्सा कुछ उठा-सा रहता है। इनका ऊपरी हिस्सा भूरा और नीचे का हिस्सा सफेद रहता है। इनका मुख्य भोजन घासपात है, लेकिन मैदानों में रहनेवाले रोझ ज्यादातर खेतों पर

ही हमला करते हैं। ये दिन को किसी निरापद स्थान में बैठकर आराम करते हैं और प्राय एक ही जगह नित्य विष्ठा करते हैं।

इनकी मादा आठ-नौ महीने पर एक या दो बच्चे जनती है। इनका मास बहुत मामूली और रूखा होता है।

चौसिंगा

(FOUR HORNED ANTILOPE)

चौसिंगा चार सीगोवाला हिरन है जैसा इसके नाम से स्पष्ट है। हमारे देश में यह हिमालय की तराई, मध्य प्रदेश, राजपूताना, बबई और पजाब के जगली हिस्सो में पाया जाता है।

चौसिगा

इसके नर-मादा एक ही रग के होते हैं लेकिन सीग केवल नरो के ही रहते हैं। इसके शरीर का ऊपरी हिस्सा बादामी भूरे रग का और नीचे का सफेद रहता है। पीठ पर के भूरे रग मे एक प्रकार की ललाई मिली रहती है। इसकी लम्बाई तीन साढे तीन फुट से ज्यादा नही होती और ऊँचाई मे भी यह दो सवा दो फुट का रहता है। मादा नर से कुछ छोटी होती है।

चौसिंगा तितरे-बितरे जंगलों का निवासी है जिसे घने जंगल और ऊँचे पहाड़ पसन्द नहीं आते। यह अपनी शकल-सूरत में ही नहीं, अपनी आदतों में भी हमारे यहाँ के अन्य हिरनों से निराला होता है।

चौसिंगा बहुत शरमीला हिरन है जो प्रायः जोड़े में ही दिखाई पड़ता है। यह गरोह नहीं बनाता और प्रायः पानी के आस-पास ही रहता है।

इसका मांस रूखा होने पर भी स्वादिष्ठ होता है। मादा पाँच-छः महीने पर जनवरी-फरवरी के आस-पास एक या दो बच्चे देती है।

बारहसिंघा-परिवार

(FAMILY CERVIDAE)

बारहसिंघे अपने सुन्दर और शानदार बड़े सींगों के कारण अन्य हिरनों से अलग व्यक्तित्व रखते हैं। इनका परिवार काफी बड़ा है। इनकी कई जातियाँ हमारे देश में पायी जाती हैं।

इन जीवों के प्रायः सभी नरों के लम्बे सींग होते हैं जिनमें अनेक शाखें फूटी रहती हैं। ये सींग हर साल या कई साल पर एक बार गिर जाते हैं और उनके स्थान पर नये सींग निकल आते हैं। नये सींगों की बाढ़ इतनी तेज़ी से होती है कि तीन-चार महीने के भीतर ही ये पहले जैसे हो जाते हैं। शुरू में तो ये नये सींग मुलायम रहते हैं और इनकी सतह मखमल जैसी होती है, लेकिन बाढ़ पूरी हो जाने पर यह खाल सूखकर चमड़े जैसी कड़ी हो जाती है। इस समय इनमें बड़ी खुजलाहट उठती है और तब ये पेड़ की डालों से अपने सींग रगड़कर इस खाल को छुड़ा डालते हैं।

उत्तरी गोलार्द्ध के बरफीले देश के रेनडियर नाम के बारहसिंघे को छोड़कर बाकी सब बारहसिंघों में केवल नर के ही बड़े सींग रहते हैं। मादाएँ कद में नर से कुछ छोटी होती हैं। ये जीव भारी भरकम होने पर भी बहुत तेज भागते हैं। इसी कारण इनका शरीर भी बहुत सुन्दर और गठा हुआ रहता है।

इसी परिवार में एक कस्तूरा नाम का जीव भी है जिसके सींग नहीं होते और जिसके नर की दुम के नीचे एक थैली या ग्रन्थि रहती है। इसी थैली से एक गाढ़ा पदार्थ निकलता है जिसे हम कस्तूरी या मुश्क कहते हैं।

यहाँ अपने देश के कुछ प्रसिद्ध बारहसिंघों का वर्णन दिया जा रहा है।

बारहसिंघा

(BARASINGHA)

हमारे यहाँ का प्रसिद्ध बारहसिंघा साहा कहलाता है। इसके प्रत्येक छ-छ शाखें फूटी रहती हैं। इसी लिए इसे बारहसिंघा का नाम मिला है जो ठी देश में ये हिमालय की तराई तथा मध्यप्रान्त के जंगलों में पाये जाते हैं।

बारहसिंघा

बारहसिंघा बहुत सुडौल होता है। इसके शरीर के बाल कड़े और मोटे होते जो गरदन के पास काफी बड़े हो जाते हैं। इसकी दुम छोटी होती है। यह झुंड में र वाला जानवर है जो गरमियों में अकेले ही रहना पसन्द करता है, लेकिन जाड़ों में इ बड़े-बड़े गरोह बन जाते हैं। इन्हें घने जंगलों से ज्यादा तितरे-बितरे जंगल और घास के मैदान पसन्द आते हैं जिनके बीच-बीच में पेड़ हों।

बारहसिंघा चार फुट से कुछ कम ऊँचा और लगभग छः फुट लम्बा होता है। इसके सींग भी करीब तीन फुट के हो जाते हैं जिनमें शाखें फूटी रहती हैं। गरमी और जाड़ों में इनके शरीर का रंग बदल जाता है। जाड़ों में इनका ऊपरी हिस्सा बादामी रहता है तो गरमियों में वह खैरा हो जाता है और उस पर अक्सर सफेद चित्तियाँ पड़ जाती हैं। पेट, गला और टाँगों का भीतरी हिस्सा सफेद या सफेदी मायल रहता है; दुम के नीचे का हिस्सा हमेशा सफेद रहता है। मादा का रंग नर से हलका रहता है, लेकिन बच्चे चित्तीदार रहते हैं।

बारहसिंघों के जोड़ा बाँधने का समय फरवरी से मार्च तक रहता है। इसी समय इनके गिरे हुए सींगों के स्थान पर नये और सुन्दर सींग निकल आते हैं।

इनका मुख्य भोजन घास-पात है। ये रात में चराई करके दिन में किसी निरापद स्थान पर बैठकर आराम करते हैं। इनका मांस रूखा और स्वादिष्ठ होता है।

हंगल

(KASHMIRE STAG)

हंगल कश्मीरी बारहसिंघा है। यह कश्मीर के जंगलों के सिवा और कहीं नही पाया जाता। वहाँ यह चीड़ के जंगलों में अधिक पाया जाता है और गरमियों में बारह हजार फुट की ऊँचाई तक चढ़ जाता है।

हंगल बारहसिंघों में सबसे भारी होते हैं। इनके नर सींगदार होते हैं, जिनके प्रत्येक सींग में प्रायः पाँच शाखाएँ फूटी रहती हैं। कभी-कभी छः शाखाओंवाले सींग के हंगल भी पाये जाते हैं। ऊँचाई में ये चार, सवा चार फुट और लम्बाई में सात, साढ़े सात फुट तक के हो जाते हैं। इनके सींग भी लगभग तीन फुट लम्बे होते हैं। नर की गरदन पर ऊपर तथा नीचे बड़े-बड़े बाल रहते हैं।

हंगल के बदन का रंग भूरापन लिये राखी होता है जिसमें दुम के चारों ओर का हिस्सा सफेद रहता है। बगल के हिस्से और पैर हलके रंग के होते हैं। गरमियों में हंगलों का रंग चमकीला रहता है और उसमें ललाई अधिक रहती है। बच्चे चित्तीदार होते हैं जिनकी चित्तियाँ कई साल में गायब हो जाती हैं।

हंगल भी गरमियों में अकेले या छोटे-छोटे गरोहों में हो जाते हैं, लेकिन जाड़ा आने पर ये अपना बड़ा गरोह बना लेते हैं। नर मार्च के लगभग अपने सींग गिराते

[illegible]

हंगल

हंगल का मुख्य भोजन घास-पात है। ये ऐसे घने जंगल पसन्द करते हैं जिनके पास-पड़ोस में हरी घास के मैदान और पानी के चश्मे हों। ये एक स्थान पर रहना पसन्द नहीं करते और इधर उधर चक्कर लगाते रहते हैं। इनकी मादाएँ मई के महीने में या जून के करीब बच्चे जनती हैं।

साँभर
(SAMBAR)

साँभर हमारे यहाँ के सबसे प्रसिद्ध बारहसिंघे हैं, लेकिन इनके प्रत्येक सींग में छः के बजाय तीन ही शाखाएँ रहती हैं। हमारे देश में ये प्रायः सभी पहाड़ी जंगलों में काफी बड़ी संख्या में फैले हुए हैं। ये हिमालय की ओर आठ दस हजार फुट तक की

ऊँचाई पर पाये जाते हैं, लेकिन इनके रहने के मुख्य स्थान ऊँचे-नीचे पहाड़ी जंगल हैं। इन्हें खुले हुए पहाड़ और मैदान पसन्द नहीं आते। पहाड़ी जंगलों में ये इतना भारी शरीर लेकर इस खूबी से भागते हैं कि देखकर बड़ा अचम्भा होता है।

साँभर हमारे यहाँ के बारहसिंघों में सबसे बड़े होते हैं। ये पांच फुट ऊँचे और सात-आठ फुट लम्बे होते हैं, लेकिन मादा कद में कुछ छोटी और बिना सींगों की होती है। नर के सींग तीन से चार फुट तक लम्बे होते हैं जिनमें तीन शाखाएँ फूटी रहती हैं।

साँभर

साँभर अपना ज्यादा समय जंगलों में ही बिताते हैं। इनका इतना अधिक शिकार होता है कि ये रोझों की तरह ढीठ न होकर हमेशा बहुत चौकन्ने रहते हैं। ये जंगल

के बीच के मैदानों मे अक्सर सॉझ-सवेरे चरते हुए दिखाई पड जाते है, लेकिन इनको चराई का असली समय रात ही है। ये जगल के पास-पडोस के खेतो का बहुत नुकसान करते है।

साँभर ज्यादा बडे झुड नही बनाते और अक्सर चार छ से दस-बारह के गरोह में ही रहना पसन्द करते हैं। इनका मुख्य भोजन घास-पात है लेकिन इसके अलावा ये जगली फल फूल और नरम कल्ले भी बडे मजे से खाते है। इनके जोडा बाँधने का समय अक्तूबर-नवम्बर है जब ये अपना गरोह बडा कर लेते हैं। इन्ही दिनो नर बैला की तरह बोलते हैं।

साभर के सीग मार्च के करीब गिर जाते है और अक्तूबर तक फिर नये सीग निकल आते हैं। यही समय इनके जोडा बाधने का है। कही-कही साँभर हर साल सीग नही गिराते और उनके सीग गिराने का समय हर दूसरे साल आता है।

साभर के शरीर का रग कत्थई रहता है जो नीचे की ओर हल्का हो जाता है। मादा कद मे नर से कुछ छोटी और बिना सीगोवाली होती है। यह पाँच-छ महीने पर बच्चे देती है।

अन्य बारहसिंघो की तरह इसका मास भी रूखा और स्वादिष्ठ होता है।

चीतल

(SPOTTED DEER)

चीतल जैसा इसके नाम से ही स्पष्ट है, चित्तीदार बारहसिंघा है। यह कद में छोटा होने पर भी सुन्दरता में सबसे आगे है। इसको चितरा और झांक भी कहते हैं। हमारे देश मे यह पजाब और राजपूताना को छोडकर प्राय सभी जगलो में पाया जाता है। इसे वैसे तो तराई के जगल ही पसन्द है लेकिन यह हिमालय और दक्षिण के पहाडो पर भी तीन चार हजार फुट तक की ऊँचाई पर देखा जा सकता है।

चीतल लगभग पाँच फुट लम्बा और तीन, सवा तीन फुट ऊँचा होता है। इसके नरो के करीब तीन फुट लम्बे सींग होते हैं जो तीन शाखाओवाले होते हैं। इसके शरीर का रग बादामी होता है जिस पर सफेद चित्तियाँ पडी रहती हैं। गरदन का ऊपरी हिस्सा, पेट तथा टाँगो का भीतरी भाग सफेद रहता है। सिर का रग भूरा रहता है जिस पर चित्तियाँ नहीं होती।

[illegible]

चीतल

इसके जोड़ा बांधने का समय वैसे तो सितम्बर है, लेकिन यह बीच में भी जोड़ा बांध लेता है। इसी तरह इसके सींग गिरने का भी कोई निश्चित समय नहीं है। इनकी बोली बड़ी तेज होती है। चितली छः–आठ महीने पर एक या दो बच्चे जनती है।

इसका मांस नम्रा और स्वादिष्ठ होता है।

पाढा

(HOG DEER)

पाढे को छोटा बारहसिघा कहना ठीक होगा। इसे कही-कही लगुना या खरल-गुना भी कहते है। हमारे देश मे ये हिमालय की तराई में काफी सख्या मे पाये जात है। इसके अलावा दक्षिण की ओर सोन नदी तक के ऊँचे नीचे हलके जगलो, कछारो और घास के मैदानो में भी कभी-कभी मिल जाते है।

पाढा
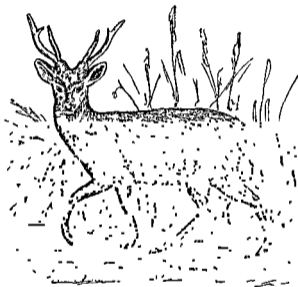
पाढा दो फुट मे ज्यादा ऊँचा और साढे तीन फुट से ज्यादा लम्बा नही होता है। मादा इससे भी छोटी होती है। नरो के सीग होते है जो लगभग एक फुट लम्बे और तीन-तीन शाखाओवाले रहते है। ये अपने सीग मार्च-अप्रैल में गिराते है।

पाढा के बदन का ऊपरी हिस्सा भूरा, हलका कत्थई या बादामी होता है। नीचे का हिस्सा हलके रग का रहता है। दुम का निचला हिस्सा सफेद रहता है। गरमियो में पाढे का रग हलका हो जाता है और दोनो बगली हिस्से पर हल्के भूरे या सफेद रग

की चित्तियाँ पड़ जाती हैं जो दूर से धारी-सी जान पड़ती हैं। बच्चे पांच-छः महीने तक चित्तीदार रहते हैं।

पाढ़े झुंड बनाकर नहीं रहते। ये अक्सर अकेले या दो-तीन एक साथ दिखाई पड़ते हैं। ये जाड़ों में जोड़ा बाँधते हैं और मादा सात-आठ महीने बाद बच्चा देती है।

इसका मांस रूखा और स्वादिष्ठ होता है।

काकड़

(BARKING DEER)

काकड़ बारहसिंघे का भाई-बन्धु है, लेकिन इसके सींगों में थोड़ा फर्क रहता है। इसके सींग बारहसिंघे के सींगों की तरह हर साल या कई साल पर गिरते जरूर हैं लेकिन पूरे सींग न गिरकर सींगों का थोड़ा-सा ऊपरी हिस्सा ही गिरता है।
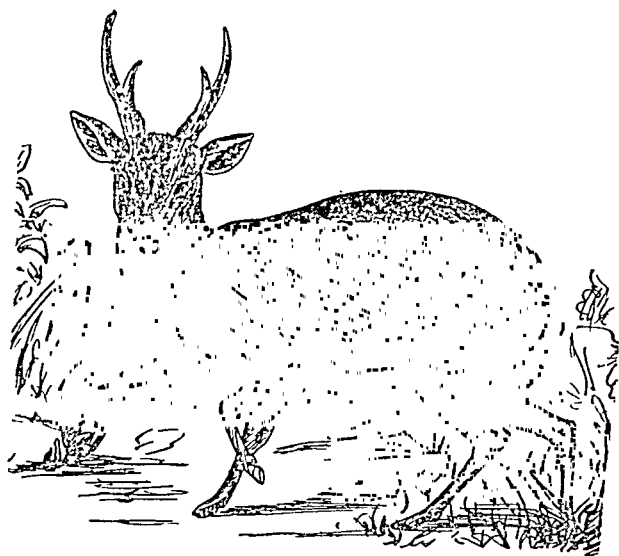
काकड़

काकड़ हमारे देश का बहुत प्रसिद्ध जानवर है जो हमारे यहाँ की सभी जंगलोंवाली पहाड़ियों पर पाया जाता है। मध्यप्रान्त और पश्चिम की ओर इसकी संख्या जरूर बहुत

कम है। इसे मैदान पसन्द नही। इसीलिए यह हिमालय पर भी पाँच छ हजार फुट तक चला जाता है।

काकड दो फुट से कुछ कम ही ऊँचा होता है और उसकी लम्बाई भी तीन फुट से ज्यादा नही होती। नर के सींग सात-आठ इंच के रहते हैं जिनमें दो शाखाएँ रहती हैं। मादा बिना सींगो की होती है। इसका रंग गाढ़ा कत्थई रहता है जो ऊपर कलछौंह और नीचे हलका हो जाता है। चेहरा और पैर हलके भूरे रंग के रहते हैं और गले का ऊपरी हिस्सा पेट और दुम का निचला हिस्सा सफेद रहता है। बच्चे चित्तीदार होते हैं।

काकड इतनी तेज आवाज करता है कि सहसा यह विश्वास ही नही होता कि इतना छोटा जानवर ऐसी तेज आवाज करेगा। इसकी आवाज सवेरे शाम तो सुनाई ही पडती है लेकिन जोडा बाँधने के समय हम उसे अक्सर सुन सकते हैं। यह गरोह नही बनाता और अक्सर अकेला या जोडा बनाकर ही रहता है। इसे मैदान से ज्यादा घने जगल पसन्द हैं, जहाँ से यह सिर्फ चराई के समय ही बाहर निकलता है। चरते समय यह जगल से दूर नही जाता और जरा-सा आहट पाते ही फिर जगल में घुस जाता है। भागते समय यह अपना सिर नीचा करके और पिछला हिस्सा उठाकर बड़े बेढगे तरीके से चलता है।

काकड का मुख्य भोजन घास-पात है लेकिन पालतू हो जाने पर यह पका हुआ गोश्त तक खा लेता है। इसके कुकुरदन्त बहुत तेज होते हैं जिनसे यह दबाव में पडने पर कभी कभी काट भी लेता है। इसकी जबान बहुत लम्बी होती है जिससे यह अपना चेहरा चाटता रहता है।

काकड के जोडा बाँधने का समय जनवरी, फरवरी है। इसकी मादा करीब पाँच महीने पर एक या दो बच्चे देती है। इसका मांस रूखा किन्तु स्वादिष्ट होता है।

कस्तूरी-मृग

(MUSK DEER)

कस्तूरी मृग बारहसिंघा परिवार का होकर भी बिना सींग का ही हिरन है। इसे इसके मुश्क या कस्तूरी के कारण ही कस्तूरी-मृग कहा जाता है। इसे कश्मीर में रोस और गढवाल में बेना या मश्कनामा कहते हैं लेकिन इसका कस्तूरी मृग नाम सब से प्रसिद्ध है।

कस्तूरी-मृग हमारा बहुत ही परिचित मृग है जो अधिकतर हिमालय के जंगलों में पाया जाता है। यह आठ हजार फुट से ऊँचे जंगलों में ही रहता है। इस मृग की ऊँचाई दो फुट से कम ही रहती है और लम्बाई में भी यह तीन फुट से ज्यादा नहीं होता। इसके वदन का रंग गाढ़ा भूरा रहता है जिस पर कहीं-कहीं निलैटी चित्तियाँ पड़ी रहती हैं। नीचे का हिस्सा हल्का रहता है और रानों का भीतरी हिस्सा सफेदी मायल रहता है। किसी-किसी के गाल के दोनों ओर एक-एक सफेद गोल चित्ता पड़ा रहता है। बच्चों के वदन पर सफेद या पिल्छौंह चित्तियाँ पड़ीं रहती हैं।
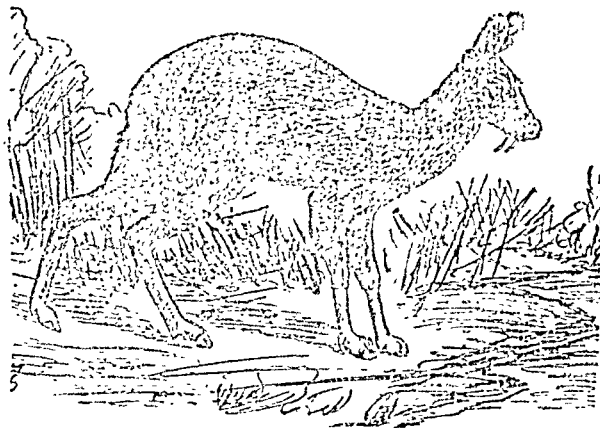
कस्तूरी-मृग

कस्तूरी-मृग के वदन के वाल अजीव वनावट के होते हैं। ये लम्बे और कड़े तो होते ही हैं, साथ ही साथ उनमें लहर-सी पड़ी रहती है और उनका निचला हिस्सा सफेद रहता है। इसकी टाँगें लम्बी होती हैं और अगली से पिछली टाँगें वड़ी रहती हैं। इसीलिए इसकी चाल खरगोश या कंगारू की तरह लगती है।

कस्तूरी-मृग अकेला रहनेवाला जानवर है जो गरोह नहीं वाँधता। यह जोड़े के साथ भी बहुत कम दिखाई पड़ता है। इसे घने, ऊँचे और ढलुवे जंगल वहुत पसन्द हैं जिन पर यह वड़ी फुर्ती से चढ़-उतर लेता है। इसकी चराई का समय सुवह-शाम है। दिन को यह जमीन में आराम करने के लिए गढ़ा-सा खोद लेता है और उसी में वैठकर सारा दिन काट देता है। इसका मुख्य भोजन घास-पात है। इसका मांस वहुत स्वादिष्ठ होता है।

कस्तूरी-मृग के जोड़ा बाँधने का समय जाड़ा है, जब नर के पेट के पास की ग्रन्थि में एक प्रकार का गाढा कलछौंह सुगन्धित पदार्थ जमा हो जाता है। यही कस्तूरी या मुश्क है जो बहुत कीमती बिकता है। मादा करीब पाँच महीने बाद एक या दो बच्चे जनती हैं।

पिसूरी-समूह

(SECTION TRAGULINA)

इस छोटे समूह में केवल एक ही वर्ग हमारे यहा पाया जाता है। इसके जीव कद में बहुत छोटे होते हैं और इनके सिर पर सीग नही होते। इनके उदर शफ वर्ग के अन्य जीवो के उदर की तरह चार खानेवाले न होकर तीन ही खानेवाले होते हैं और नर प्राणियो के कुकुरदन्त काफी बडे होते हैं।

इस समूह में केवल एक ही परिवार है जो पिसूरी-परिवार (Family Tragulidae) कहलाता है।

पिसूरी-परिवार

(FAMILY TRAGULIDAE)

इस छोटे परिवार में केवल एक छोटा जानवर है जो हमारे देश में कहीं-कहीं पाया जाता है। यह घने जगलो में रहनेवाला प्राणी है जिसका वर्णन नीचे दिया जा रहा है।

पिसूरी

(INDIAN MOUSE DEER)

पिसूरी कद में सब हिरनो से छोटा होता है और इसी से यह जल्द हमारी निगाह तले नही पडता। यह हमारे यहाँ मध्यप्रान्त के पूर्वी भाग के जगलो में तथा दक्षिण भारत के वनो मे पाया जाता है, लेकिन अपने छोटे कद, शरमीले स्वभाव तथा छिपने की आदत से यह हमे बहुत कम दिखाई पडता है। यही कारण है कि इसके स्वभाव के बारे में अभी तक ज्यादा जानकारी नही हो सकी है।

पिसूरी की ऊँचाई एक फुट से ज्यादा नही होती। लम्बाई में भी यह डेढ से दो फुट तक रहता है। इसके शरीर के बाल घने, पतले और मुलायम होते हैं। इसके बदन का ऊपरी हिस्सा भूरा रहता है जिस पर कई कतारा में घनी पीली चित्तियाँ पडी रहती

हैं। नीचे का हिस्सा सफेद रहता है और गरदन के बगली हिस्से पर भी नीचे की ओर से तीन सफेद आड़ी पटरियाँ दोनों ओर चली जाती हैं।
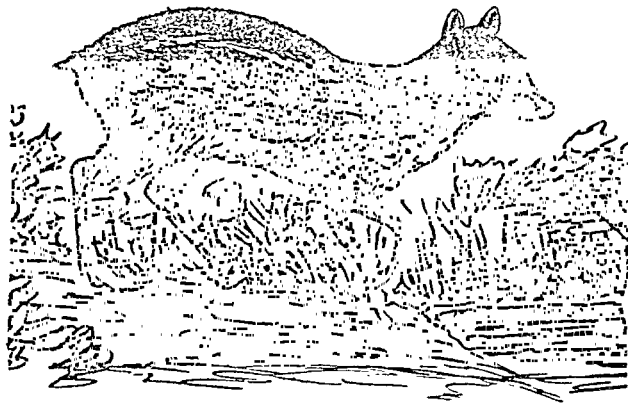
पिसूरी

पिसूरी प्रायः अकेला ही रहता है और कभी खुले मैदानों की ओर नहीं जाता। यह हमेशा जंगलों में पत्थरों और चट्टानों के आस-पास ही रहना पसन्द करता है जिससे खतरा निकट आने पर इसे छिपने में देर न लगे। दिन को यह किसी गुफा या चट्टान के नीचे घुसकर आराम करता है। इसका मुख्य भोजन घास-पात है।

पिसूरी बहुत सीधा और डरपोक जानवर है। यह जून, जुलाई में जोड़ा बाँध लेता है लेकिन जाड़े का प्रारंभ होते ही नर-मादा दोनों अलग-अलग रहने लगते हैं। मादा इसी के आस-पास दो बच्चे जनती है। इसका मांस बहुत स्वादिष्ट होता है।

उष्ट्र-समूह

(SECTION TYLOPODA)

इस समूह में वे लम्बी गरदनवाले जीव हैं जो अपने लम्बे अंगों के लिए प्रसिद्ध हैं। इसमें ऊँट और अलपका नाम के जीव एकत्र किये गये हैं जिनके सिर पर सींग नहीं होते। इनके पैर बीच से फटे रहते हैं जिनमें खुर की जगह नाखून रहते हैं।

इस समूह में एक ही परिवार है जो ऊँट-परिवार कहलाता है।

ऊँट-परिवार

(FAMILY CAMELIDAE)

ऊँट अपने परिवार का अकेला प्राणी है जो घोड़े की तरह पालतू कर लिया गया है और अब इसकी जंगली जाति संसार में कहीं भी नहीं पायी जाती। मनुष्यों के लिए यह बहुत उपयोगी जीव है जिसे रेगिस्तान में सफर करने के लिए ही प्रकृति ने मानो खास तौर पर बनाया है।

ऊँट की एक जाति एशिया में और दूसरी अफ्रीका में पायी जाती है। एशिया के ऊँट की एक किस्म और होती है जो वैक्ट्रिया के ऊँट कहलाते हैं। इनकी पीठ पर एक के बजाय दो कूबड़ या कुहाने होते हैं। ये हमारे यहाँ के ऊँटों से, जो वास्तव में अरब के ऊँट हैं, कद में बड़े होते हैं।

ऊँट

(CAMEL)

ऊँट हमारा बहुत ही परिचित पालतू जीव है। इसे रेगिस्तान का जहाज कहा जाता है जो वास्तव में सही ही है। अगर ऊँट हमारे अधीन न होते तो इन बड़े-बड़े रेगिस्तानों में आना-जाना संभव न होता। मनुष्यों के लिए ये गाय-बैल और घोड़े की तरह ही उपयोगी जानवर हैं।

ऊँट को हम सब ने देखा ही है। अत उसके विशेष परिचय की जरूरत नहीं है। यह लम्बा और ऊँचा जानवर है जो करीब आठ फुट ऊँचा और दस फुट लम्बा होता है। इसी में इसकी लम्बी गरदन भी शामिल है। इसकी टाँग काफी लम्बी होती है जिन पर इसका भारी शरीर टँगा सा रहता है। इसकी गरदन आगे की ओर काफी बढ़ी रहती है और पीठ पर एक कूबड़ सा उठा रहता है जिसे कुहाना कहते हैं। इसके बदन का रंग हलका भूरा रहता है और इसके बाल बहुत मुलायम होते हैं। नर ऊँटों का रंग कुछ गहरा रहता है और वे कद में भी मादा से बड़े होते हैं।

हमारे यहाँ जो ऊँट पाये जाते हैं वे अरब जाति के हैं। इनकी पीठ पर एक ही कुहाना रहता है। वैक्ट्रिया के या दो कुहानेवाले ऊँट यहाँ नहीं पाये जाते। वे मध्य एशिया के निवासी हैं।

घोड़े की तरह ऊँट का ऊपरी ओठ ही उसकी मुख्य स्पर्शेन्द्रिय है, जो दो हिस्सों में बँटी रहती है। इसके कूबड़ की बनावट भी कम आश्चर्यजनक नहीं होती। यह वास्तव में एक चरबी का पिण्ड है जिसमें चरबी जमा रहती है। ऊँट जब रेगिस्तान का लम्बा सफर करता है तो उसको कभी-कभी हफ्तों भोजन नहीं मिलता। उस समय उसके इसी कुहाने में जमी चरबी उसके शरीर का पोषण करती है। इसी लम्बे सफर के बाद ऊँट का कुहाना काफी छोटा हो जाता है। लम्बे सफर में इसके भोजन की समस्या को तो बहुत कुछ इसका कूबड़ सुलझा देता है, लेकिन प्यास के मामले में वह इसकी कुछ भी मदद नहीं करता। ऊँट ने इसीलिए अपने पेट में जल संग्रह करने के लिए करीब आठ सौ छोटी-छोटी थैलियों का विकास कर लिया है जिनमें वह अपने सफर के लिए काफी पानी भर लेता है।
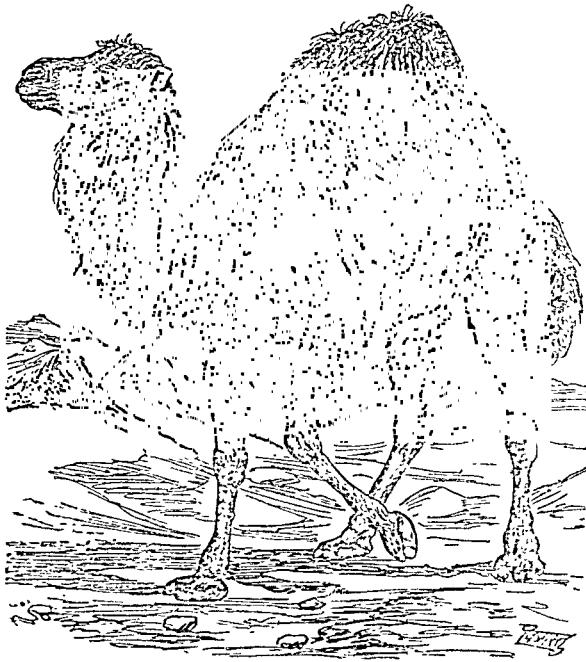
ऊँट

ऊँट की सूंघने की शक्ति बहुत तेज होती है और यह बहुत दूर से सूंघकर ही पानी का पता लगा लेता है। इसकी चाल भी अन्य जीवों से भिन्न होती है। चलते

समय भालू की तरह इसके एक ओर की दोनो टाँगे एक साथ ही उठती हैं जिससे इसकी चाल अजीब सी लगती है और इसके सवार का सारा शरीर झकझोर उठता है

रेगिस्तानवाले प्रदेश के लिए ऊँट बहुत ही उपयोगी जीव है क्योकि वहाँ के लोग इससे सवारी का ही काम नही लेते बल्कि इसका मास भी खाते हैं और दूध भी पीते हैं। यही नहीं, इसके चमडे से जूते आदि बनाये जाते हैं और इसके बाल से कम्बल तथा अन्य ऊनी कपडे भी तैयार किये जाते हैं।

शूकर-समूह

(SECTION SUINA)

शूकर-समूह मे थोडे ही जानवर हैं। सुअरो के अलावा इसमें अफ्रीका निवासी विशालकाय हिप्पापोटैमस भी है जिसे दरियाई-घोडा कहा जाता है।

इन जीवो की खाल बहुत मोटी होती है। इनमे कुछ के शरीर पर तो कडे बाल होते हैं, और कुछ का शरीर सादा ही रहता है।

इस समूह को सुअर-परिवार तथा हिप्पो-परिवार में बाँटा गया है, लेकिन चूँकि हमारे यहाँ केवल सुअर-परिवार के ही जीव पाये जाते हैं इससे यहाँ उसी परिवार का वर्णन दिया जा रहा है।

सुअर-परिवार

(FAMILY SUNIDAE)

सुअर-परिवार में सुअर ही अकेला है जैसे कोई इसके साथ रहने को राजी ही न हुआ हो। इन जीवो की खाल बहुत मोटी होती है और इनके शरीर के बाल बहुत कडे होते हैं। इनका थूथन आगे की ओर चपटा रहता है जिसमे भीतर की ओर मुलायम हड्डी का एक चक्कर-सा रहता है जो थूथन को कडा बनाये रहता है। इसी गोल और चपटे थूथन के सहारे ये बडी आसानी से जमीन खोद डालते हैं और बड़े-बड़े पत्थरो को सहज ही में उलट देते हैं।

इनके जबडे के कुकुरदन्त आगे की ओर बढे रहते है जिससे ये जडों को आसानी से काट लेते हैं। इनके ऊपर के कुकुरदन्त तो बाहर निकलकर ऊपर की ओर घूम

जाते हैं लेकिन नीचे के बड़े और सीधे ही रहते हैं। जब ये अपने जबड़ों को बन्द कर लेते हैं तो इनके ऊपर और नीचे के कुकुरदन्त आपस में रगड़ खाते हैं जिसमें उनकी नोक हमेशा तेज बनी रहती है। इनके ये दाँत इतने तेज होते हैं कि उनसे ये बड़ा भयंकर हमला करते हैं और दुश्मनों का पेट तक फाड़ डालते हैं।

इनके पैर चार हिस्सों में बँटे रहते हैं जिनमें के आगे के दोनों हिस्से बड़े और पीछे के छोटे होते हैं। पीछेवाले छोटे खुर उनकी टाँगों में पीछे की ओर लटके रहते हैं और उनसे चलने में इन्हें किसी प्रकार की सहायता नहीं मिलती।

इन जीवों की सूँघने की शक्ति बड़ी तेज होती है जिससे ये जमीन के भीतर की स्वादिष्ठ जड़ों का पता लगा लेते हैं। जड़ें और फल-फूल को ही इनका मुख्य भोजन मानना चाहिए। वैसे तो ये आलू, गन्ना, शकरकंद, अनाज के अलावा कभी-कभी कीड़े-मकोड़े और गिरगिट वगैरह भी चट कर जाते हैं।

इस परिवार के तीन मुख्य जीवों का वर्णन यहाँ दिया जा रहा है।

बनैला सुअर

(WILD BOAR)

बनैले या जंगली सुअर को बनैला, बड़ैल और बरहा भी कहते हैं। हमारे यहाँ ये सारे देश में फैले हुए हैं और इनकी काफी बड़ी संख्या हिमालय में भी बारह हजार फुट तक पायी जाती है।

जंगली सुअर शकल-सूरत में हमारे देशी सुअरों जैसे होते हैं, लेकिन इनके नरों के बड़े और नोकीले दाँत रहते हैं। ये लगभग पाँच फुट लम्बे और ढाई-तीन फुट ऊँचे होते हैं लेकिन इनका वजन तीन-चार मन से कम नहीं रहता। इनका मुँह लम्बा, थूथन चपटा और चक्के-सा रहता है। नर मादा से बड़े होते हैं और उनके निचले दाँत पाँच-छः इंच बाहर की ओर निकले रहते हैं। इन्हीं तेज दाँतों से सुअर अपनी आत्मरक्षा के समय बड़ा भयंकर हमला करते हैं और अपने से दूने-चौगुने कद के जानवरों का पेट फाड़ डालते हैं।

जंगली सुअरों का रंग देशी सुअरों की तरह कलछौंह होता है, लेकिन उनमें कभी-कभी सफेद या कत्थई रंग की झलक रहती है। इनके ऊपरी हिस्से पर गुद्दी से लेकर

सारी पीठ तक बहुत बड़ बालों का एक पंक्ति रहता है। वैसे इनके सारे बदन
किनारे किनारे बाल कम ही रहते हैं। इनके पट्ठा का रंग भूरा रहता है ज
होने पर सिलेटी माय
जाता है। बच्चे हल्के
रंग के होते हैं जिनक
पर गाढ़ा-भूरी गाढ़ा
पट्टियाँ पड़ी रहती ह

बनला सुअर

जंगली सुअर ज
के अलावा घास के मैदा
कछारों और झाड़ियो
भरे हुए नालों और ऊँ
नीची जगहों में भी र
हैं। फसल तैयार होने पर इनके गरोह अक्सर गेहूँ और गन्ने आदि के खेतों में अप
अड्डा बना लेते हैं जहाँ से निकलकर ये जड़वाली फसल का बहुत नुकसान करते ह

इन सुअरों को भी हमारे पालतू सुअरों की तरह कीचड़ में लोटना बहुत पस
है। इनका मुख्य भोजन घास पात और जड़ें है। कंदमूल के अलावा कभी-कभ
ये मरे हुए जानवरों का मांस भी खा लेते हैं। दिन में तो ये झाड़ियों में घुसे रहते
लेकिन शाम और रात को इनका आठ-दस का गरोह चराई के लिए निकल पड़ता
और रात भर चरकर सुबह फिर अपने स्थान पर लौट आता है।

जंगली सुअर बहुत तेज भागते हैं लेकिन यह तेजी थोड़ी ही दूर तक रहती है।
ये वैसे तो शान्त जीव हैं और आहट पाने पर अकारण हमला न करके भागना ही
पसन्द करते हैं लेकिन घायल हो जाने पर ये जान पर खेलकर ऐसा भयंकर हमला
करते हैं कि उसके आगे शेर के भी छक्के छूट जाते हैं। शेर ही क्यों घायल होने
पर ये हाथी पर भी हमला करने में नहीं चूकते।

इनकी मादा साल में दो बार बच्चे देती है जो संख्या में चार से छः तक होते हैं।
इनका मांस बहुत स्वादिष्ट होता है।

सानो वनैल
(PIGMY HOG)

सानो वनैल का निवास-स्थान नेपाल है। वहाँ यह तराई के जंगलों में काफी संख्या में पाया जाता है। इसके अलावा देश में यह और कहीं नहीं पाया जाता।

सानो वनैल कलछौंह भूरे रंग का सुअर है, जो कद में दो सवा दो फुट लम्बा और करीब एक फुट ऊँचा रहता है। इसका वजन आठ-नौ सेर से ज्यादा नहीं होता। बच्चों का रंग गाढ़ा भूरा रहता है, जिन पर खड़ी-खड़ी कत्थई पटरियाँ पड़ी रहती हैं। इसकी गरदन और पीठ पर कुछ दूर तक कड़े बाल होते हैं, जो सारी पीठ पर नहीं फैले रहते। इसके वदन पर के बाल भी कड़े होते हैं। यह शाकाहारी और बहुत सीधे स्वभाव का सुअर है जो ऊँची घास के बीच गरोह बाँधकर रहता है। इसके गरोह में पाँच से बीस तक सुअर रहते हैं। इसका मांस बहुत स्वादिष्ठ होता है।
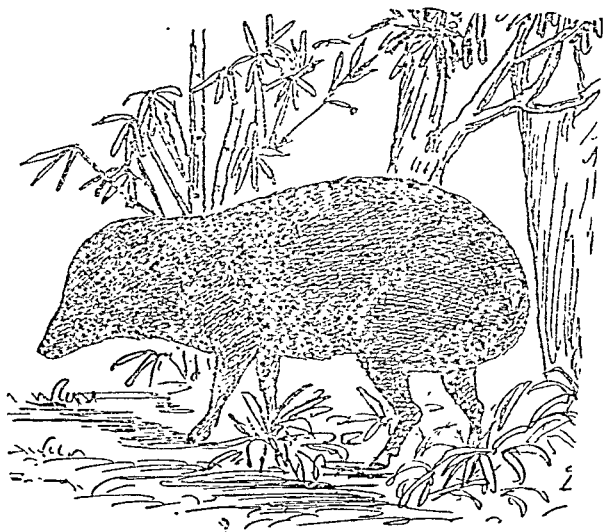
सानो वनैल

सानो वनैल प्रायः रात में ही बाहर निकलता है। इसी से हम इसके बारे में ज्यादा नहीं जान सके हैं। यह कद में भी छोटा होता है जिससे इसे छिपने में बहुत आसानी होती है। इसकी अन्य आदतें जंगली सुअरों से मिलती-जुलती हैं। नेपाली भाषा में सानो का अर्थ छोटा होता है। इसे इसी से सानो वनैल कहा जाता है।

सुअर

(PIG)

पालतू सुअर संसार के प्रायः सभी भागों में फैले हुए हैं। इनकी अनेक जातियाँ बन गयी हैं जो अपने रंग में परिवर्तन करके सफेद या चितकबरी हो गयी हैं, लेकिन हमारे देश में पालतू सुअरों की एक ही जाति पायी जाती है जो शक्ल-सूरत में ही नहीं रंग-रूप में भी जंगली सुअरों से मिलती जुलती है।

सुअर

हमारे यहाँ सुअर पालने का रिवाज बहुत कम है क्योंकि मुसलमान तो इन्हें छूते ही नहीं और हिन्दू लोग भी इन्हें बहुत कम खाते हैं। यहाँ इनका पालन केवल परिगणित जातियों तक सीमित है। इसी कारण इनकी नस्ल में उन्नति नहीं हो रही है। यहाँ के पालतू सुअर विदेशी सुअरों की तरह न तो सफेद ही होते हैं और न उनके बदन पर बाहरी सुअरों की तरह चर्बी ही लदी रहती है। ये जंगली सुअरों की तरह कलछौंह ही होते हैं लेकिन बनैलों की तरह इनके तेज और बड़े दांत नहीं होते।

पालतू सुअर बनैलों की तरह बहुत हठी और बेवकूफ होते हैं लेकिन उनकी तरह इनमें फुर्ती नहीं होती। इनका मुख्य भोजन शाक पात और कन्दमूल है लेकिन इनमें विष्ठा खाने की ऐसी गंदी आदत है कि ये बड़ी घृणा की दृष्टि से देखे जाते हैं।

इनकी मादा साल में दो बार बच्चे देती है, जिनकी संख्या चार से दस तक रहती है। इनका मांस बहुत स्वादिष्ठ होता है।

अश्व उपवर्ग

(SUB-ORDER PERISSODACLYLA)

इस छोटे उपवर्ग में थोड़े ही जीव हैं जो अपने खुर या सुम की बनावट में भेद होने के कारण अन्य खुरदार जीवों से अलग कर दिये गये हैं।

इस वर्ग को तीन परिवारों में इस प्रकार बाँटा गया है—

१. अश्व-परिवार—Family Equidae

२. टेपर-परिवार—Family Tapiridae

३. गैंडा-परिवार—Family Rhinocerotidae

हमारे देश में टेपर नहीं पाये जाते अतः यहाँ केवल अश्व-परिवार और गैंडा-परिवार का वर्णन दिया जा रहा है।

घोड़ा-परिवार

(FAMILY EQUIDAE)

घोड़ा-परिवार में घोड़े, गोरखर और गदहे के अलावा दूसरे देशों में पाये जाने-वाले क्वागा और जेबरा आदि भी शामिल किये गये हैं जिनके खुर बीच में फटे हुए नहीं होते। ये सब एक-शफ प्राणी कहे जाते हैं।

इस परिवार में हमारे यहाँ का एक और प्रसिद्ध जीव आता है जिसे खच्चर कहते हैं। खच्चर, गदहे और घोड़ी के संयोग से पैदा होता है और अपनी मजबूती के लिए संसार में प्रसिद्ध है। यह जहाँ घोड़े की तरह लम्बा और बलवान होता है वहीं गदहे की तरह बोझ ढोने में भी बेजोड़ होता है लेकिन इनमें संतान-वृद्धि की शक्ति नहीं होती। खच्चर और खच्चरी से बच्चे नहीं पैदा होते। नये खच्चर तो गदहे और घोड़ी के संयोग से ही पैदा हो सकते हैं।

ये सब जीव शाकाहारी हैं जिनके ओठ इनके लिए बहुत उपयोगी हैं। ये उनकी स्पर्शेन्द्रियों में से एक हैं जिनसे ये घास-फूस को पकड़कर अपने मुँह के भीतर खींच लेते हैं, जहाँ इनके तेज दाँत उन्हें बड़ी सफाई से कुतर लेते हैं।

इस परिवार के प्राणी अपनी तेज चाल और गठीले बदन के लिए प्रसिद्ध हैं। ये हाथी की तरह बुद्धिमान और कुत्ते की तरह स्वामिभक्त होते हैं। गदहा भी, जो

आम तौर पर वेवकूफ कहा जाता है, कम अक्लमंद नहीं होता। इन सबमें गज़ब की स्मरण-शक्ति होती है।

यहां आगे यहां पाये जानेवाले घोड़े, गदहे और गोरखर का वर्णन दिया जा रहा है।

घोड़ा

(HORSE)

घोड़े से भला ऐसा कौन है जो परिचित न होगा ? मनुष्यों का यह शायद सबसे पुराना साथी है। यही नहीं, मानव सभ्यता में इसका सबसे बड़ा हाथ रहा है और आज इस मशीन-युग में भी उसकी उपयोगिता कम नहीं हुई है।

घोड़ा

बैल की तरह घोड़ा भी बहुत सुन्दर और सुडौल जानवर है जिसके शरीर के गठन को कोई जानवर नहीं पा सकता। इसका एक एक अंग जैसे साँचे में ढाला हुआ जान पड़ता है। इसे मनुष्यों ने कब से पालतू किया, इसका तो कुछ ठीक-ठीक पता नहीं चलता, लेकिन जब से इतिहास मिलता है तब से घोड़े को हम मनुष्य के आज्ञाकारी सेवक की तरह उसके साथ मौजूद पाते हैं।

घोड़ों के विकास की कहानी बड़ी रोचक है। इन्हें अपने पूर्वजों से इस वर्तमान घोड़े की शकल में आने में लगभग चार करोड़ वर्ष लग गये। इनके पूर्वज इयोहिप्पस (Eohippus) कद में लोमड़ी के बराबर होते थे और उनके पैरों में चार चार उँगलियाँ

रहती थीं। उसके बाद वे अपना विकास करके मिसोहिप्पस (Mesohippus) बने जब उनका कद भेंड़ के बराबर हो गया। इस समय वे तीन उँगलियों के बल चलने लगे क्योंकि उनकी चौथी उँगली का लोप हो गया था। कुछ समय बीतने पर उनका फिर विकास हुआ और वे मेरिकहिप्पस (Merychippus) के रूप में परिवर्तित हुए। इस समय उनका कद गदहे के बराबर हो गया था और उनके पैरों के बीच की उँगली आगे बढ़कर सुम की शकल की हो गयी और वे एक ही उँगली पर चलने-फिरने लगे। कुछ काल बाद फिर परिवर्तन हुआ और बगल की दोनों बेकार उँगलियाँ गायब हो गयीं। अब उनके पैर में केवल एक सुम या टाप रह गया। उनका कद बढ़ गया और वे ही घोड़े के रूप में हमारे सामने हैं। अपने सुम के विकास में इस प्रकार इन्हें एक दो नहीं करोड़ों, वर्ष तक घोर संघर्ष करना पड़ा।

घोड़ों की वैसे तो अनेक नस्लें संसार में हैं लेकिन अरब का घोड़ा सबसे प्रसिद्ध माना जाता है। हमारे देश में काठियावाड़ के टाँघन प्रसिद्ध हैं जो कद में छोटे और मजबूत होते हैं।

घोड़ा शाकाहारी जीव है, जो दाना-घास वगैरह बड़े स्वाद से खाता है। इसके ओठों में गजब का स्पर्शज्ञान रहता है। हमारे यहाँ इनकी कोई विशेष जाति नहीं है, लेकिन जो घोड़े हैं उन्हें उनके रंगों के नाम से पुकारा जाता है जैसे मुश्की, सब्जी, कुम्मैद, सुरंग, नुकरा, समंद आदि।

घोड़ी ग्यारह महीने पर एक बच्चा जनती है।

गदहा

(ASS)

गदहा भी घोड़े की तरह हमारा बहुत परिचित पालतू जीव है जो घोड़े का भाई-बन्धु होकर भी हमारे देश में न जाने क्यों इतनी अनादर की दृष्टि से देखा जाता है। इसके बारेमें लोगों का ख्याल है कि यह बहुत बेवकूफ जानवर है और इसी कारण किसी को बेवकूफ कहने के लिए हम इसके नाम का उपयोग करते हैं, पर वास्तव में ऐसी बात है नहीं। गदहा अपनी जाति के पशुओं में करीब-करीब सबसे अधिक बुद्धिमान होता है। यह सीधा, परिश्रमी और सहनशील तो होता ही है, बोझ उठाने में भी अपना सानी नहीं रखता। इसके और घोड़ी के मेल से पैदा हुआ खच्चर तो बोझ

उठाने मे इससे भी आगे रहता है। बडी-बडी फौजी तोपों को खीचना खच्चर का ही काम है।

हमारे देश में ज्यादातर धोबी ही इस निरीह जीव को पालते हैं लेकिन फारस, अरब और मिस्र आदि देशों में गदहे का बडा आदर है। वहाँ इस उपयोगी पशु का आदर करना लोग जानते हैं। इसी से वहाँ इसकी कई अच्छी नस्लें तैयार कर ली गयी हैं और हमारे यहाँ के छोटे कद के गदहे से वहाँ के गदहे बड़े और मजबूत हो गये हैं।

गदहा

हमारे यहाँ का गदहा करीब तीन फुट ऊँचा और चार, साढ़े चार फुट लम्बा होता है। इसकी शकल-सूरत घोडे जैसी रहती है और इसके पैर में भी उसी की तरह सुम रहता है। इसके कान काफी लम्बे होते हैं जो आगे की ओर झुके रहते हैं। इसके बदन का ऊपरी रंग सिलेटी रहता है जो ऊपर गाढा और बगल में हलका हो जाता है। नीचे का हिस्सा और थूथन सफेद रहता है। इसके गले पर एक काली धारी पडी रहती है जैसे इसे किसी ने काले रंग का हार पहना दिया हो। यह बडी भद्दी बोली बोलता है जो सीपो सीपों-सी लगती है। इसकी समूची दुम घोडो की तरह बालो से ढकी न रह कर कुछ दूर तक नंगी ही रहती है जिसके सिरे पर बालो का एक गुच्छा रहता है।

इसका मुख्य भोजन घास-पात है। इसकी अन्य आदतें घोडो से मिलती जुलती होती हैं। इससे उन्हें फिर से दुहराना ठीक नहीं।

गदही लगभग ग्यारह महीने पर एक बच्चा जनती है।

गोरखर

(WILD ASS)

गोरखर जंगली गदहा है। यह वैसे तो मध्य एशिया का निवासी है लेकिन हमारे देश में इसकी थोड़ी-बहुत संख्या बीकानेर, गुजरात और जैसलमेर के आस-पास पायी जाती है। यह जंगली गदहा गोरखर कहलाता है और इसका कद हमारे गदहों से कुछ ऊँचा होता है। मादा नरों से कुछ छोटी होती है।
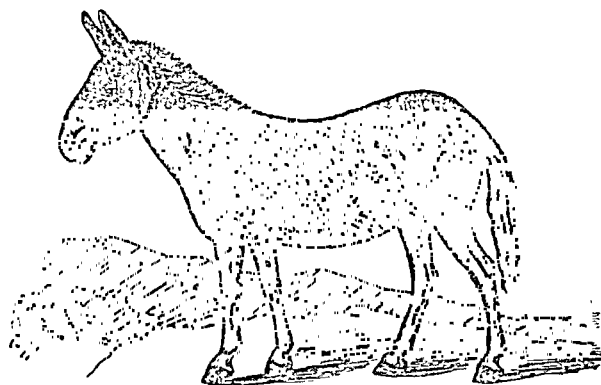
गोरखर

गोरखर का रंग गदहों की तरह सिलेटी न होकर पिलछौंह राखी रहता है जिसमें थोड़ी ललाई भी रहती है। हलका थूथन, पेट और टाँगों का भीतरी हिस्सा सफेद रहता है और अयाल की जड़ से दुम की जड़ तक एक गहरे खैरे रंग की पट्टी चली जाती है जो कंधे के पास कभी एक और कभी दो जगह, इसी रंग की धारी से कट जाती है। इसके पैर पर भी कभी-कभी इसी तरह की धारियाँ रहती हैं। इनके अयाल और दुम के बाल गाढ़े कत्थई या काले रहते हैं और खुरों या सुमों के ऊपर एक गाढ़े रंग की धारी पड़ी रहती है। कान गदहों की तरह लम्बे और आगे की ओर झुके रहते हैं।

गोरखर झुंड में रहनेवाले प्राणी हैं जो ज्यादातर रेगिस्तानों या खुले हुए ऊसरी मैदानों में फिरा करते हैं। इनका गरोह चार-पाँच से लेकर बीस-पचीस तक का होता है, लेकिन कभी-कभी इनके इससे भी बड़े गरोह दिखाई पड़ते हैं। इनका एक और

निकट सम्बन्धी जानवर क्वागा (Quaga) है जो शक्ल-सूरत में गोरखर ही जैसा होता है। उसकी गरदन पर जेवरे की तरह धारियाँ पड़ी रहती हैं लेकिन ये हमारे देश में नहीं पाये जाते।

गोरखर का मुख्य भोजन घास पात है। ये भी गदहा की तरह रेंकते हैं लेकिन इनकी आवाज गदहा से भी तेज और कर्कश होती है। ये वैसे तो बहुत शरमीले जानवर हैं लेकिन भागने मे इतने तेज होते हैं कि इनका पकड़ना आसान नहीं होता। पकड़े जाने पर आधे से ज्यादा गोरखर मर जाते हैं और जो बचते भी हैं उनको पालतू करना बहुत कठिन होता है।

बलूचिस्तान की ओर लोग इनका मांस भी खाते हैं जो काफी स्वादिष्ट होता है। इनकी मादा घोड़ी की तरह ग्यारह महीने पर एक बच्चा देती है जिसका समय जून से अगस्त तक रहता है।

गैंडा-परिवार

(FAMILY RHINOCEROTIDAE)

गैंडा परिवार में गैंडा ही अकेला एक प्राणी है जो अपने यहाँ का बहुत प्रसिद्ध जीव है। इसकी वैसे तो तीन जातियाँ हैं लेकिन हमारे यहाँ केवल एक ही जाति के गैंडे पाये जाते हैं। बाकी दो जातियाँ अफ्रीका के जंगलों मे मिलती हैं।

गैंडे का शरीर बहुत भारी और गठीला होता है। उसकी नाक के ऊपर एक खाग या सींग रहता है जो इसका अस्त्र है। यह खाग वास्तव में उसकी नाक के ऊपर के बाल हैं जो आपस में चिपककर इतने कड़े हो गये हैं कि उसके आगे हड्डी कोई चीज नहीं। यह इसी से शेर और हाथी का पेट चीर डालता है।

इसके बदन की मोटी खाल इसके बदन से लटकती सी रहती है जिसमें स्थान स्थान पर सिकुड़न पड़ी रहती है। कुछ विदेशी गैंडों के एक की जगह आगे-पीछे दो सींग रहते हैं। यहाँ तो केवल अपने यहाँ के गैंडे का हाल दिया जा रहा है।

गैंडा

(RHINOCEROS)

गैंडे हमारे देश के प्रसिद्ध जानवर हैं। हमारे यहाँ ये अब बहुत कम संख्या में रह गये हैं और इन्हें आसाम के जंगलों और नेपाल की तराई के सिवा देश के अन्य

किसी भाग में नहीं देखा जा सकता। हम इन्हें अपने चिड़ियाघरों में अवश्य देख सकते हैं लेकिन सब चिड़ियाघरों में इनको पालना आसान काम नहीं।

गैंडे का कद लगभग साढ़े दस फुट लम्बा और पाँच-छः फुट ऊँचा होता है। इसके थूथन पर करीब एक फुट लम्बा सींगनुमा खाग रहता है जो बहुत तेज होता है। यह खाग वास्तव में इसका सींग नहीं है बल्कि यह तो उसके कड़े बालों के आपस में चिपक जाने से सींगनुमा बन जाता है और बहुत कड़ा हो जाता है। ये खाग नर और मादा दोनों के होते हैं और एक बार टूट जाने पर उसके स्थान पर दूसरा खाग निकल आता है।

गैंडा

गैंडे के शरीर का रंग कलछौंह सिलेटी रहता है और इसकी मोटी खाल पर कान और दुम को छोड़कर कहीं भी बड़े बाल नहीं होते। इसकी खाल बहुत मोटी होती है जिसमें जगह-जगह शिकन-सी पड़ी रहती हैं। इसी से इसका बदन ऐसा जान पड़ता है जैसे किसी ने इसके सारे शरीर को ढालों से ढक दिया हो। इसके पैरों में तीन-तीन नाखून रहते हैं जो हाथी के नाखून से मिलते-जुलते होते हैं। इसके पैर छोटे और गठीले होते हैं और इसका सिर बड़ा और आँखें छोटी होती हैं।

गैंडे को ऊँचे पहाड़ ज्यादा पसन्द नहीं हैं। इसीलिए यह तराइयों में ऊँची घास के बीच अकेला घूमा करता है। लेकिन कभी-कभी एक ही जगह कई गैंडे दिखाई पड़ जाते हैं। इसका मुख्य भोजन घास-पात है जिसके लिए यह सुबह-शाम इधर-उधर

चक्कर लगाता रहता है। दिन मे यह पड़ा सोता रहता है और प्राय रोज एक ही जगह विष्ठा करता है।

गैंडा वैसे तो बडा शान्त और सीधा जानवर है, लेकिन घायल हो जाने पर यह बडा भयकर हमला करता है। उस समय यदि हाथी भी इसके सामने पड जाय तो यह उसकी परवाह नही करता और अपने निचले दॉतो से सुअर की तरह बडी करारी चोट करता है। यह वैसे तो शरीर से भारी भरकम होता है, लेकिन थोडी दूर तक बडी तेजी से सरपट भाग लेता है।

गैंडे की उम्र काफी होती है। यह सौ वर्ष तक जीते देखा गया है। इसकी मादा सत्रह-अठारह महीने पर एक बच्चा जनती है। इसका मास स्वादिष्ठ होता है।

गज उपवर्ग

(SUB ORDER PROBOSCIDAE)

गज उपवर्ग मे केवल हाथी ही अकेला प्राणी है जो अपनी लम्बी सूँड के कारण अन्य स्तनपायी जीवों से अलग कर दिया गया है।

इस उपवर्ग मे केवल एक ही परिवार है जो गज-परिवार कहलाता है। यहाँ उसी का वर्णन दिया जा रहा है।

गज-परिवार

(FAMILY ELEPHANTIDAE)

इस परिवार मे हाथी ही अकेला प्राणी है जिसकी दो जातियाँ हैं—एक भारतीय हाथी और दूसरा अफ्रीकन हाथी। हमारे देश मे केवल भारतीय हाथी पाये जाते हैं। यहाँ उसी का वर्णन दिया जा रहा है।

इन जीवो की विशेषता इनकी लम्बी सूँड और इनके लम्बे कृन्तक दन्त हैं जो काफी बढकर उनके मुख से कई फुट आगे निकले रहते हैं। सूँड ही हाथी का हाथ है और वही उसकी स्पर्श और घ्राण इन्द्रिय भी। इसी सूँड के सहारे वह पेड की डालो को तोडता है और खाने के लिए उसकी छाल को बडी सफाई से उधेड लेता है।

ये जानवर जगलो में रहनेवाले यूथचारी जीव हैं जिन्हें मनुष्य पकडकर पालतू कर लेते हैं। स्थल पर रहनेवाले स्तनपायी जीवो में यह सबसे भारी भरकम होता

है, फिर भी इसमें आलस जैसे छू नहीं गया है। दौड़ने में असमर्थ होने पर भी यह सौ, दो सौ गज तक इतनी तेजी से झपटता है कि तेज़ भागनेवाला आदमी तेजी से भागकर भी इससे बच नहीं सकता।

इसकी दूसरी जाति, जो अफ्रीका में पायी जाती है, शकल-सूरत में इससे कुछ भिन्न होती है। उस जाति के हाथियों के कान तो बड़े होते ही हैं, कद में भी वे भारतीय हाथियोंसे बड़े होते हैं। उनके नर-मादा दोनों के बड़े-बड़े दाँत होते हैं, लेकिन हमारे यहाँ केवल नर हाथी दँतैले होते हैं।

हाथी

(ELEPHANT)

हाथी हमारे यहाँ का सबसे बड़ा और शानदार जानवर है जिसे हमारे यहाँ शायद ही कोई ऐसा होगा जिसने न देखा हो।

हाथी उन पालतू जानवरों में से हैं जिनकी जंगली जाति अब भी जंगलों में मौजूद है और जो वहाँ से आवश्यकतानुसार पकड़कर पालतू बना लिये जाते हैं। ये घोड़े, ऊँट और गाय-बैल की तरह सबके सब ऐसे पालतू नहीं कर लिये गये हैं कि उनकी जंगली जाति का लोप हो जाय।
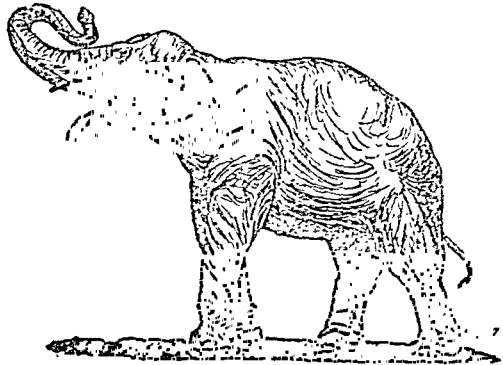
हाथी

हमारे देश में हाथी ज़्यादातर तो हिमालय की तराई के घने जंगलों में पाये जाते हैं, लेकिन इसके अलावा इनकी कुछ संख्या मध्यप्रदेश और दक्षिण भारत के घने जंगलों में भी फैली हुई है। ये पहाड़ पर अधिक ऊँचाई पर नहीं जाते और अपना ज्यादा समय तराई के घने जंगलों में ही बिताते हैं।

हाथी लगभग आठ-दस फुट ऊँचे होते हैं, लेकिन हथिनियाँ करीब आठ फुट की

ही होती है। हाथी के दुम के सिरे से सूँड के सिरे की लम्बाई उसकी ऊँचाई से तिगुनी के करीब रहती है। उनका वजन लगभग अस्सी मन होता है।

हाथी के शरीर का रंग कलछौंह सिलेटी रहता है, लेकिन उसके माथे पर, कान पर और गर्दन के ऊपरी हिस्से पर कभी-कभी प्याजी, भूरी चित्तियाँ पड़ी रहती हैं। हाथी के बदन पर बाल नहीं होते, सिर्फ दुम के सिरे पर बहुत कड़े बालों की दो कतारें रहती हैं। नर हाथी के दो बड़े-बड़े दांत आगे की ओर निकले रहते हैं, लेकिन मादा के ये दांत बहुत छोटे ही रह जाते हैं। नर के दाँतों की लम्बाई वैसे तो अलग-अलग रहती है, लेकिन बड़ा से बड़ा दांत आठ फुट तक लम्बा मिला है। इनके अगले पैरों में अक्सर पाँच चौड़े नाखून होते हैं। लेकिन पैरों में इनकी संख्या चार ही रहती है। उसकी आँखें छोटी और कान बड़े पंखे जैसे होते हैं जिसे ये मक्खियाँ उड़ाने के लिए बराबर हिलाते रहते हैं।

हाथी झुंड में रहनेवाले जीव हैं जो बड़े-बड़े गरोह बनाकर रहते हैं। इनका मुख्य भोजन घास-पात, पेड़ों की छाल तथा बांस के नरम कल्ले हैं जिनकी तलाश में ये जंगलों में इधर-उधर छिटक जाते हैं और चराई के बाद फिर इकट्ठा होकर अपना बड़ा गरोह कायम कर लेते हैं। इस गरोह की सरदारी किसी दँतैले हाथी को न मिलकर सदा किसी हथिनी को ही मिलती है जो सबका नियंत्रण करती है।

हाथी की सूँड उसका सबसे उपयोगी अंग है जिसको हम उसका हाथ कह सकते हैं। इसी सूँड से वह पेड़ की छाल उधेड़कर खाता है और इसी में पानी भरकर अपने मुँह में उँडेल लेता है। यही नहीं, छोटी-छोटी चीजों को भी वह अपनी इसी सूँड से उठा लेता है।

हाथियों को पानी बहुत पसन्द है। इसीसे गर्मियों में वे घंटों पानी में पड़े रहते हैं। तेज़ धूप में जब उन्हें पानी नहीं मिलता तो वे अपनी सूँड को मुंह में डालकर उसमें थूक भर लेते हैं और उसी को अपने बदन पर छिड़कते हैं। वे तैरने में बहुत ही उस्ताद होते हैं और खुश्की पर रहनेवाला कोई भी जानवर तैरने में उनका मुकाबला नहीं कर सकता।

हाथी वैसे तो उदार और सीधे जानवर हैं, लेकिन क्रुद्ध नर और बच्चोंवाली मादाएँ अक्सर दूसरों पर हमला कर बैठती हैं। उस समय ये अपनी सूँड को लपेट लेती हैं और अपने पैरों तथा दाँतों से बड़ा भयंकर हमला करती हैं। यदि किसी तरह दुश्मन

उनकी लपेट में आ गया तो वे उसे पैरों से रौंदकर उसकी जान ले लेती हैं। आज्ञापालन में तो हाथियों से आगे शायद ही कोई जानवर बढ़ पाया हो। एक छोटे अंकुश के सहारे इतने बड़े जानवर की गरदन पर बैठकर महावत किस तरह उसे जिधर चाहता है ले जाता है, यह सचमुच बड़े आश्चर्य की बात है।

हाथी की उम्र लगभग सौ वर्ष तक की मानी जाती है। जंगल में रहनेवाले हाथी तो और ज्यादा दिनों तक जीते हैं। पचीस वर्ष में तो ये जवान ही होते हैं।

हथिनियाँ अठारह से बीस महीने पर एक बच्चा जनती है लेकिन कभी-कभी वे दो बच्चे भी देती हैं। ये बच्चे ज्यादातर सितम्बर से नवम्बर के बीच में होते हैं जो पैदा होने के समय तीन फुट ऊँचे रहते हैं।

तीक्ष्णदन्त वर्ग

(ORDER RODENTIA)

इस वर्ग में वे सब छोटे कद के जीव एकत्र किये गये हैं जिनके दाँतों को, प्रकृति ने बहुत तेज और कड़ी चीजों तक को कुतर डालने के योग्य बनाया है। इनमें के अधिकांश जीव पृथ्वी पर रहनेवाले ह, लेकिन कुछ ऐसे भी हैं जो पेड़ों पर अपना अधिक समय व्यतीत करते हैं और कुछ ऐसे भी हैं जिन्होंने पानी में ही रहना पसन्द किया है।

इनके बारे में और कुछ जानने से पहले इनके दाँतों के बारे में कुछ जान लेना जरूरी है क्योंकि इनकी इसी विशेषता के कारण इनका अलग वर्ग बनाया गया है। इनके जबड़ों में चारों तरह के दाँत न होकर केवल दो ही तरह के होते हैं, कृन्तक दन्त और दाढ़ें। कृन्तक लम्बे और काफी मजबूत होते हैं और उनके बाहरी हिस्से पर मजबूत पालिश चढ़ी रहती है जैसी तामचीनी के बर्तनों पर होती है। इस पालिश या चिकनी तह के कारण इनके दाँत सामने की ओर से तो घिसने नहीं पाते लेकिन ऊपर और नीचे के दाँतों की रगड़ से उनका भीतरी हिस्सा घिस जाता है। ऐसा होने से उनके दाँत सदैव तेज और पैने बने रहते हैं। ये दाँत निरन्तर बढ़ते रहते हैं जिससे रगड़ खाने से दाँत का जितना हिस्सा घिसता है उतना फिर बढ़ जाता है। बस दिक्कत तभी पड़ती है जब उनका कोई दाँत टूट जाता है क्योंकि तब दूसरे जबड़े के सामनेवाला दाँत बढ़ता चला जाता है जो बढ़ते-बढ़ते यहाँ तक

वढ जाता है कि दूसरे जवडे मे छेद कर देता है और कभी-कभी इससे इन जानवरो की मौत तक हो जाती है।

इस वर्ग के प्राणी सारे ससार में फैले हुए हैं जो दौडने, तैरने, छलाँगें मारने के अलावा पेडो पर चढने में भी उस्ताद होते हैं। इनमे के अधिकाश के शरीर पर बाल होते हैं लेकिन कुछ ऐसे भी हैं जिनके शरीर पर के बाल काँटा में बदल गये हैं। इनमें प्राय सबके पैरा मे पाँच-पाँच उँगलियाँ रहती हैं जिनमें तेज नाखून होते हैं। इन जानवरों का मुख्य भोजन वैसे तो वृक्षो की छाल और जडें आदि है, लेकिन कुछ प्राणी ऐसे भी हैं जिन्हें सर्वभक्षी कहा जा सकता है। इनकी मादाएँ साल में कई बार बच्चे देती हैं।

यह वर्ग दो उपवर्गों मे विभाजित किया गया है —

१ एक दन्त उपवर्ग—Sub Order Simplicidentata

२ द्वि दन्त उपवग—Sub Order Duplicidentata

एकदन्त उपवर्ग में साही गिलहरियाँ और चूहे हैं तो द्विदन्त उपवर्ग मे सब प्रकार के खरगोश रखे गये हैं। आगे दोनों उपवर्गों का अलग-अलग वर्णन दिया जा रहा है।

एकदन्त उपवर्ग

(SUB ORDER SIMPLICIDENTATA

एकदन्त उपवर्ग के प्राणियो के मुख के ऊपरी जवडे मे आगे की ओर दाँता की एक ही जोडी रहती है। इसी एक विशेषता के कारण इन्हें एक अलग उपवर्ग में रखा गया है—

इस उपवग को विद्वानो ने इस प्रकार फिर तीन समूहो मे विभक्त किया है —

१ गिलहरी-समूह—Section Sciuromorpha

२ चूहा-समूह—Section Myomorpha

३ साही-समूह—Section Hystricomorpha

इन तीनो समूहो में सब प्रकार की गिलहरियाँ, चूहे और साहियाँ आ जाती हैं।

गिलहरी-समूह

(SECTION SCIUROMORPHA)

गिलहरी-समूह वैसे तो चार परिवारों में विभक्त है, लेकिन हमारे यहाँ जिन दो परिवारों के जीव पाये जाते हैं वे इस प्रकार हैं—

१. गिलहरी-परिवार—Family Sciuridae

२. सूरज भगत-परिवार—Family Petauristidae

पहले परिवार में हमारी परिचित गिलहरियाँ और दूसरे परिवार में उड़नेवाली गिलहरियाँ रखी गयी हैं।

गिलहरी-परिवार

(FAMILY SCIURIDAE)

गिलहरी-परिवार के जीवों से हम सब परिचित ही हैं। ये जीव अपना अधिक समय पेड़ों पर ही विताते हैं। वैसे भोजन की तलाश में हम इन्हें जमीन पर भी दौड़-धूप करते देख सकते हैं।

ये जीव बड़े फुरतीले और सफाई-पसन्द होते हैं और बिल्लियों की तरह अपना वदन चाटकर साफ करते रहते हैं। इनकी दुम लम्बी और झबरी रहती है और इनके शरीर पर के बाल भी घने, कोमल और चमकीले होते हैं।

ये अपने वच्चों के लिए सुन्दर और मुलायम घोंसला वनाते हैं और अपनी खूराक को पहले से इकट्ठा करते रहते हैं। इनका मुख्य भोजन फल-फूल, अन्न और जड़ हैं। यहाँ अपने यहाँ की तीन प्रसिद्ध गिलहरियों का वर्णन दिया जा रहा है।

जंगली गिलहरी

(LARGE INDIAN SQUIRREL)

गिलहरियों से हम सभी परिचित हैं। इनमें कुछ तो हमारे बाग-बगीचों में रहती हैं, लेकिन ज्यादा संख्या उन्हीं की है जो अपना सारा समय जंगलों में ही विताती हैं।

हमारे यहाँ की बड़ी जंगली गिलहरी को कराट या रासू कहते हैं। यह हमारे बाग-बगीचों में पायी जानेवाली छोटी धारीदार गिलहरी से शकल-सूरत में ही नहीं,

रग और कद में भी भिन्न होती है। यह अपना सारा समय घने जगलो में बिताती है इसलिए इसको जगली गिलहरी कहा जाता है।

कराट हमारे देश में मध्य भाग के सारे घने जगलो में पायी जाती है। पूरब की ओर भी यह जगली प्रान्तो में पायी जाती है। इस गिलहरी का कद लगभग ... फुट लम्बा होता है और इसके इतनी ही बडी दुम भी रहती है। इसका ऊपरी हिस्सा गाढा कत्थई या कलौंह गाढा लाल रहता है। इसके कान के सामने से माथे के ऊपर तक एक हल्के रग की पट्टी रहती है और एक कत्थई धारी गरदन के पास से बगल तक पडी रहती है। नीचे का हिस्सा हल्का बादामी या किरमौंह भूरा रहता है।

जगली गिलहरी

कराट जगलो में रहने वाली गिलहरी है जो अपना सारा समय ऊँचे पेडो पर ही बिताती है। यह जमीन पर बहुत कम उतरती है और एक डाल से दूसरी डाल पर बीस तीस फुट तक कूद जाती है।

कराट का मुख्य भोजन फल फूल बीज नरम कल्ले और कलियाँ है। इनके अलावा यह कीडे मकोडे और चिडियो के अण्डे भी बडे मजे में खाती है।

कराट अपने लिए किसी ऊँचे पेड पर टहनियो और पत्तियो का घोसला बनाती है जिसमे समय आने पर मादा तीन चार बच्चे जनती है।

रुकिया

(BROWN SQUIRREL)

रुकिया भी जंगली गिलहरी है जो हमारे देश के दक्षिणी भाग के जंगलों में पायी जाती है। इसका शरीर एक फुट से कुछ बड़ा होता है, और इसके लगभग उतनी ही बड़ी झबरी दुम रहती है।

रुकिया

इसके शरीर का ऊपरी हिस्सा कलछौंह सिलेटी होता है और दोनों बगलों के हिस्से तथा गुद्दी का कुछ हिस्सा बादामी रहता है। नीचे का रंग हलका बादामी या गंदा सफेद रहता है।

रुकिया की और सब आदतें कराट से मिलती-जुलती होती हैं और यह भी उसी की तरह अपना ज्यादा समय पेड़ों पर ही बिताती है। यह भी पेड़ों पर किसी खोथे में अपना घोंसला बनाती है और इसका भी मुख्य भोजन फल-फूल, बीज, नरम कल्ले, कीड़े-मकोड़े और अण्डे आदि हैं।

इसकी मादा तीन-चार बच्चे जनती है।

गिलहरी

(PALM SQUIRREL)

अपनी धारीदार गिलहरियों से हम सभी परिचित हैं। ये हमारे बाग-बगीचों के अलावा उनके आस-पास के मकानों में भी चूहों की तरह फिरा करती हैं।

इस गिलहरी को कहीं-कहीं गिल्ली या चिखुरा भी कहते हैं। देहातों में यह गुलरी के नाम से प्रसिद्ध है। हमारे देश में यह प्रायः सभी स्थानों में पायी जाती है।

गिलहरी

गिलहरी बहुत ही चंचल होती है जो दिन भर पेड़ों की एक डाल से दूसरी डाल पर या जमीन पर इधर उधर फिरा करती है। पेड़ों की एक डाल से दूसरी डाल पर कूदने में यह इतनी उस्ताद होती है कि इसे शायद ही कभी किसी ने गिरते देखा होगा।

यह गिलहरी कद में छः इंच के लगभग होती है और इसके इतनी ही लम्बी दुम भी रहती है। इसकी पीठ का रंग भूरा कल्छौंह या सिलेटी मायल भूरा रहता है जिस पर तीन सफेद लम्बी धारियाँ पड़ी रहती हैं। बीच की सफेद धारी बढ़कर दुम की जड़ तक पहुँच जाती है। नीचे का रंग सफेद रहता है। इसके बाल बहुत मुलायम होते हैं।

गिलहरी का मुख्य भोजन फल-फूल, गल्ला और बीज हैं, लेकिन यह कीड़े-मकोड़े और अण्डे भी खूब मजे में खाती है। अन्य गिलहरियों की तरह यह भी घोंसला बनाती है। इसका घोंसला घास-फूस, ऊन और गूदड़ आदि का बना होता है जो काफी बड़ा और सुन्दर होता है। यह किसी पेड़ के खोथे में रखा रहता है।

शिगशाम

(BLACK HILL SQUIRREL)

शिगशाम भी हमारे यहाँ की प्रसिद्ध जंगली गिलहरी है जिसे काली जंगली गिलहरी कहते हैं। यह हमारे देश में हिमालय के पूर्वी भागों में, नेपाल के आस-पास और उसके पूर्वी हिस्सों में पायी जाती है। वहाँ यह शिगशाम के नाम से प्रसिद्ध है।

शिगशाम

शिगशाम कराट से कुछ छोटी जरूर होती है लेकिन इसकी दुम कराट की दुम से लम्बी रहती है। इसके शरीर का ऊपरी भाग काला या कत्थई और चेहरे और दुम का रंग गंदा पिलछौंह रहता है। इन गिलहरियों के रंग में बहुत भेद रहता है और अलग-अलग स्थान की शिगशाम भिन्न-भिन्न रंग की होती हैं, लेकिन अपनी लम्बी दुम के कारण ये अन्य गिलहरियों से छिप नहीं पातीं।

शिगशाम प्रायः जोड़े में रहती हैं। इनकी बोली बहुत तेज और कर्कश होती है। इनका मुख्य भोजन वैसे तो शाक-पात है, लेकिन ये कीड़े-मकोड़े और अण्डे भी बड़े स्वाद से खाती हैं।

इनकी और आदतें दूसरी गिलहरियों की ही तरह होती हैं।

सूरजभगत-परिवार

(FAMILY PETAURISTIDAE)

यह परिवार छोटा ही है जिसमें उडनेवाली गिलहरियाँ हैं और जिनके बगल की खाल कुबग की तरह दोनो ओर काफी बढ गयी है। ये इसी खाल या झिल्ली को फैलाकर एक पेड से हवा में कूद पडती हैं और दूसरे पेड तक हवा में तैरती चली जाती हैं।

ये रात्रिचर जीव हैं जिनकी सब आदतें अन्य गिलहरियो की तरह होती हैं। हमारे यहा सूरजभगत नाम की उडनेवाली गिलहरी बहुत प्रसिद्ध है। यहाँ उसी का वर्णन दिया जा रहा है।

सूरजभगत

(BROWN FLYING SQUIRREL)

सूरजभगत हमारे देश की उडनेवाली गिलहरियो में से एक है। इसे कही कही उरल भी कहते हैं। यह हमारे देश में मध्यभारत से लेकर दक्षिण भारत तक के घने जगलो में पाया जाता है।

सूरजभगत का कद लगभग डेढ फुट होता है जिसके इतनी ही बडी दुम भी होती है। इसके बदन के बाल काले और सफेद होते हैं जिनके मेल से इसका रग सिलेटी जान पडता है। दुम काली या खैरी होती है और नीचे का हिस्सा सफेद रहता है। कभी-कभी इस सफेदी में कुछ राखीपन की भी मिलावट रहती है।

सूरजभगत के अगले पैर पिछले पैरो से एक प्रकार की झिल्ली से जुटे रहते हैं जिसके सहारे वह एक पड से दूसरे पेड पर हवा मे तैरकर चला जाता है। इसी से इसे कही कही 'उडन-मूस' भी कहा जाता है। यह जमीन पर बहुत कम उतरता है और उतरने पर जमीन पर उछल-उछलकर चलता है, लेकिन जब इसे एक पेड से दूसरे पेड पर जाना होता है तो यह पेड की किसी ऊँची डाल पर चढ जाता है और वहाँ से कूदकर हवा में तैरता हुआ दूसरे पेड पर पहुँच जाता है। इसकी यह उडान कभी-कभी साठ गज तक पहुँच जाती है।

सूरजभगत रात्रिचर जीव है जो दिन में पेड के किसी सूराख या खोंधे में घुसा रहता है और शाम होने पर अपने खाने की फिक्र में बाहर निकलता है। यह ज्यादातर

उड़नेवाली गिलहरी (सूरज भगत पृ० ६४०)

ऐसे ही स्थानों में रहना पसन्द करता है जहां ऊंचे-ऊंचे पेड़ हों और इसे एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर जाने में आसानी हो।

सूरज भगत

सूरज भगत का मुख्य भोजन फल-फूल और पेड़ों की छाल है। इसके अलावा यह कीड़े-मकोड़ों को भी खाता है, लेकिन इसे गल्ले से परहेज है। इसकी मादा पेड़ के खोयों में बच्चे देती है।

मूस समूह

(SECTION MYOMORPHA)

इस दूसरी श्रेणी में सब प्रकार के चूहे एकत्र किये गये हैं जिनके ज्यादा परिचय की जरूरत नहीं है।

यह श्रेणी पाँच परिवारों में बाँटी गयी है जिसमें से एक परिवार के जीव यहाँ अधिक पाये जाते हैं। यह मूस-परिवार कहलाता है।

मूस-परिवार

(FAMILY MURIDAE)

मूस-परिवार काफी बड़ा है जो कई उप-परिवारों में बाँटा गया है, लेकिन हमारे यहाँ केवल दो उप-परिवारों के जीव ही पाये जाते हैं।

१ मूस उपपरिवार—Sub Family Murinae

२ हिरनामूस उपपरिवार—Sub Family Gerbillinae

मूस उपपरिवार

(SUB FAMILY MURINAE)

मूस उपपरिवार में छोटे-बड़े सब प्रकार के चूहे एकत्र किये गये हैं। इनकी एक नहीं, अनेक जातियाँ हैं। यहाँ अपने यहाँ पाये जानेवाले प्रसिद्ध चूहों का वर्णन किया जा रहा है।

काला चूहा

(BLACK RAT)

काले चूहे सारे संसार में फैले हुए हैं। हमारे देश में भी शायद ही कोई ऐसा स्थान होगा जहाँ ये न पाये जाते हों। पहाड़ों पर ये आठ हजार फुट से ज्यादा ऊँची जगहों पर नहीं पाये जाते।

काले चूहे का ऊपरी रंग कत्थोंह भूरा या गाढ़ा सलेटी रहता है, लेकिन इनके पेट का हिस्सा सफेद रहता है। ये पाँच से आठ इंच लम्बे होते हैं और इनकी इतनी ही लम्बी दुम रहती है।

ये हमारे बहुत परिचित जीव हैं जो हमारे घरों में बिल बनाकर रहते हैं। कहीं-कहीं ये पेड़ों पर भी घोंसला बनाकर रहते हैं। इनका मुख्य भोजन बीज तो फल,

चुहिया के वदन का ऊपरी हिस्सा हल्का या गाढ़ा भूरा होता है, लेकिन नीचे का हिस्सा हलका सिलेटी रहता है। कभी-कभी नीचे का हिस्सा सफेद भी रहता है।

चुहिया बहुत तेज और चालाक होती है। यह वैसे तो सर्वभक्षी जीव है, लेकिन यह अपना पेट ज्यादातर गल्ले आदि से भरती है। यह हमारी चीजों को कुतरकर हमारा बहुत नुकसान करती है।

इसकी मादा साल में चार-पांच बार बच्चे देती है जिनकी संख्या प्रत्येक बार छ. से आठ तक रहती है।

मूस

(FIELD MOUSE)

मूस वैसे तो खेत का चूहा है और ज्यादातर खेतों और बाग-बगीचों में ही रहता है, लेकिन कभी-कभी यह खेत के पास के घरों में भी चला आता है। यह काले और भूरे चूहे से कद में कुछ छोटा होता है जिससे इसे पहचानने में ज्यादा दिक्कत नहीं होती।

मूस
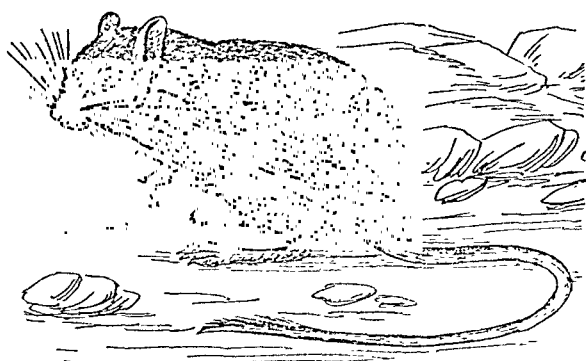
मूस वैसे तो हिन्द प्रायद्वीप का निवासी है, लेकिन थोड़ी बहुत संख्या में यह हमारे देश के अन्य स्थानों में भी पाया जाता है। हिमालय की ओर ज़रूर यह नहीं दिखाई पड़ता।

भूरा चूहा काले चूहे से कद में कुछ बड़ा होता है और उसकी दुम काले चूहे से कुछ लम्बी रहती है। उसकी पीठ का रग भूरा होता है जो ऊपर गहरा और बगल में हलका रहता है। नीचे का रग सफेद, सफेदी मायल रहता है।

भूरा चूहा बहुत ढीठ जीव है जिसे आबादी के आस-पास ही रहना पसन्द है। यह घरो में और बाहर खेतो के आस-पास बिल बनाकर रहता है और हमारे गल्ले और अन्य वस्तुओ का काफी नुकसान करता है।

यह सर्वभक्षी जीव है जिसकी मादा साल में कई बार बच्चे देती है और हर बार बच्चो की सख्या आठ से बारह तक हो जाती है।

चुहिया

(HOUSE MOUSE)

चुहिया हमारे देश में पजाब, राजपूताना तथा उत्तर प्रदेश के कुछ पश्चिमी हिस्सो को छोडकर सारे देश में फैली हुई है।
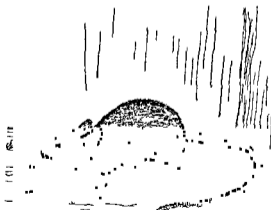
हमारे यहाँ शायद ही कोई ऐसा घर होगा जहाँ चुहियाँ न दिखाई पडती हो। घरो के अलावा ये घर के आस-पास के खेतो और बाग-बगीचो में भी चली जाती हैं, लेकिन इनके रहने की मुख्य जगह हमारे घर ही हैं।

चुहिया

चुहिया कद में चूहों से छोटी होती हैं। ये ढाई-तीन इंच लम्बी होती हैं जिनके इतनी ही लम्बी दुम रहती है। इनके शरीर पर

चुहिया के वदन का ऊपरी हिस्सा हलका या गाढ़ा भूरा होता है, लेकिन नीचे का हिस्सा हलका सिलेटी रहता है। कभी-कभी नीचे का हिस्सा सफेद भी रहता है।

चुहिया वहुत तेज और चालाक होती है। यह वैसे तो सर्वभक्षी जीव है, लेकिन यह अपना पेट ज्यादातर गल्ले आदि से भरती है। यह हमारी चीजों को कुतरकर हमारा बहुत नुकसान करती है।

इसकी मादा साल में चार-पाँच वार बच्चे देती है जिनकी संख्या प्रत्येक वार छः से आठ तक रहती है।

मूस

(FIELD MOUSE)

मूस वैसे तो खेत का चूहा है और ज्यादातर खेतों और वाग-वगीचों में ही रहता है, लेकिन कभी-कभी यह खेत के पास के घरों में भी चला आता है। यह काले और भूरे चूहे से कद में कुछ छोटा होता है जिससे इसे पहचानने में ज्यादा दिक्कत नहीं होती।

मूस
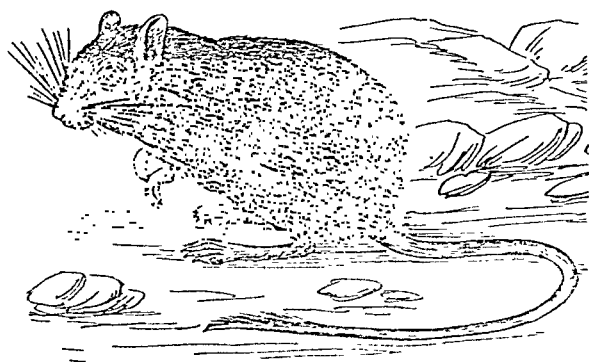
मूस वैसे तो हिन्द प्रायद्वीप का निवासी है, लेकिन थोड़ी बहुत संख्या में यह हमारे देश के अन्य स्थानों में भी पाया जाता है। हिमालय की ओर जरूर यह नहीं दिखाई पड़ता।

मूस का रंग कभी पिलछौंह राखी और कभी सिलेटी भूरा रहता है, लेकिन नीचे का हिस्सा हमेशा सफेद रहता है। इसके शरीर के बाल छोटे और घने होते हैं।

मूस का कद चूहों से कुछ छोटा और चुहियों से थोड़ा बड़ा होता है। इनकी और बाकी आदतें काले और भूरे चूहों से मिलती-जुलती हैं।

इनकी मादा भी साल में कई बार बच्चे देती है, लेकिन इन बच्चों की संख्या प्रत्येक बार तीन-चार से ज्यादा नहीं होती।

घूंस
(BANDICOOT RAT)

घूंस हमारे यहाँ का सबसे प्रसिद्ध खेत का चूहा है जो खेतों में ही बिल बनाकर रहता है। यह आबादी के पास के खेतों में रहना पसन्द करता है जहाँ से इसे खेतों और घरों में हमला करने की सुविधा रहती है।

हमारे यहाँ यह दक्षिण बंगाल और पंजाब को छोड़कर सारे देश में फैला हुआ है। इसका कद एक फुट से कुछ ज्यादा ही होता है जिसके लगभग एक फुट लम्बी दुम होती है। इसका वजन भी सेर, सवा सेर से कम नहीं होता।

घूंस

घूंस के शरीर का ऊपरी हिस्सा कलछौंह भूरा रहता है जिसमें कभी-कभी सिलेटी झलक रहती है। नीचे का हिस्सा भूरापन लिये राखी मायल रहता है। इसके बाल कुछ बड़े और कड़े होते हैं जो कहीं-कहीं दो तीन इंच लम्बे हो जाते हैं।

घूंस वैसे तो बड़ा आलसी चूहा है लेकिन मनुष्यों के लिए यही सबसे अधिक

हानिकारक माना जाता है। यह गल्ला और नाज के अलावा फल-फूल, मांस-अण्डे भी खाता है। इसकी मादा साल में कई बार आठ से दस बच्चे देती है।

हिरना मूसा उपपरिवार

(SUB FAMILY GERBILLINAE)

हिरनामूसा उपपरिवार में कई प्रकार के हिरनामूसा हैं, लेकिन हमारे देश में केवल एक प्रकार का ही हिरनामूसा पाया जाता है, जिसका वर्णन नीचे दिया जा रहा है।

हिरनामूसा

(INDIAN GERBILLE)

हिरनामूसा को यह नाम इसलिए मिला है कि यह अपनी अगली छोटी और पिछली बड़ी टाँगों के कारण हिरन की तरह छलाँगें मारता हुआ चलता है। इसकी पिछली टाँगें तो लगभग छः इंच की रहती हैं, लेकिन अगली एक इंच से बड़ी नहीं होती। यह देखने में कंगारू जैसा लगता है और उसी की तरह जब अपनी पिछली टाँगों पर खड़ा होता है तो अपनी दुम का सहारा लेता है। इसकी एक-एक छलाँग चार-पाँच गज की होती है और छलाँगें भरते समय ऐसा जान पड़ता है कि जैसे यह हवा में उड़ा जा रहा हो।
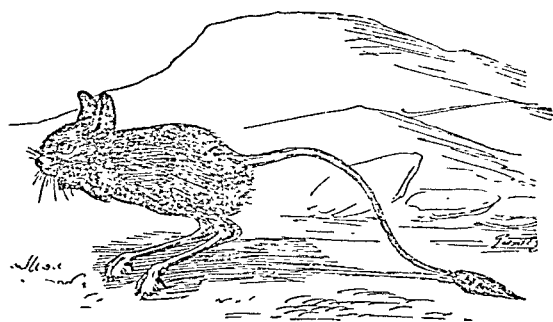
हिरनामूसा

हिरनामूसा हमारे देश में प्रायः सभी स्थानों में पाया जाता है, लेकिन एक तो संख्या में कम दूसरे रात्रिचर होने के कारण इसे हम कम देख पाते हैं। यह छः इंच का होता है जिसके लगभग सात, साढ़े सात इंच की लम्बी दुम होती है।

हिरनामूसा के बदन का रंग हलका ललछौंह भूरा होता है जिसमें कुछ राखीपन

की झलक रहती है। नीचे का हिस्सा सफेद रहता है और पीठ के निचले हिस्से के बाल कलछौंह होते हैं।

हिरनमूसा सारा दिन बिल में बिताकर रात को भोजन की तलाश में बाहर निकलता है। इसका मुख्य भोजन घास, जड़ें, बीज और अनाज है। इसकी मादा साल में कई बार आठ-दस या उससे भी अधिक बच्चे जनती है।

साही-समूह

(SECTION HYSTRICOMORPHA)

इस अन्तिम श्रेणी में सभी प्रकार की साहियाँ रखी गयी हैं जो सारे संसार में फैली हुई हैं। इस श्रेणी के जीवों की विशेषता उनके शरीर पर के काँटे हैं जो बहुत तेज और नोकीले होते हैं और जिनसे वे अपनी आत्मरक्षा का काम भी लेती हैं।

यह श्रेणी वैसे तो कई परिवारों में विभक्त है, लेकिन हमारे यहाँ केवल एक ही परिवार के जीव पाये जाते हैं जो साही-परिवार कहलाता है।

साही-परिवार

(FAMILY HYSTRICIDAE)

साही-परिवार के जीव अपने ढंग के निराले हैं। अपने शरीर पर के बड़े काँटों के कारण इन्हें पहचानना कठिन नहीं होता। इनका मुख्य भोजन फल-फूल और जड़ें हैं।

हमारे देश में एक ही जाति की साही पायी जाती है जिसका वर्णन नीचे दिया जा रहा है।

साही

(PORCUPINE)

साही हमारे देश का बहुत प्रसिद्ध जीव है जो अपने शरीर के काँटेदार कवच के कारण अन्य जीवों से सर्वथा भिन्न रहता है। यह रात्रिचर जीव है। इसी कारण इसे हम आसानी से नहीं देख पाते, लेकिन देहात में, जहाँ ये काफी संख्या में रहती हैं रात के समय लोगों की आँखों तले पड ही जाती हैं।

हमारे यहां खरगोश के कई नाम प्रचलित हैं। इन्हें कहीं खरहा कहते हैं तो कहीं चौगड़ा। विन्ध्य प्रदेश की ओर ये लमहा के नाम से प्रसिद्ध हैं। कहीं-कहीं ये ससा भी कहलाते हैं। ये अठारह-बीस इंच लम्बे जीव हैं जिनके तीन-चार इंच लम्बी दुम भी रहती है। इनका वजन दो ढाई सेर के लगभग होता है। मादा नर से कद में कुछ बड़ी होती है।

खरगोश

खरगोश के बदन का ऊपरी हिस्सा हल्का खैरा रहता है जिसमें पीठ के पास का हिस्सा स्याही मायल हो जाता है। इसका मुंह कलछौंह होता है, लेकिन सीने और टांगों पर एक प्रकार की ललाई रहती है। इनके गले का कुछ हिस्सा और अगले पैर से नीचे का सारा भाग सफेद रहता है।

खरगोश तितरे-बितरे जंगलों, झाड़ियों, घास के मैदानों, नदियों के पास के नालों या कछारों में रहना ज्यादा पसन्द करते हैं। ये बिल खोदकर नहीं रहते बल्कि किसी झाड़ी या गढ़े में खतरा आने पर छिप जाते हैं।

खरगोश का मुख्य भोजन घास या नरम पौधे हैं इसीसे ये खेतों का बहुत नुकसान करते हैं। ये वैसे बहुत निरीह और सीधे जानवर हैं जो भागने में बहुत तेज होते हैं। भागते समय ये लम्बी-लम्बी छलाँगें भरते हैं क्योंकि इनकी पिछली टाँगें अगली टाँगों से बड़ी होती हैं।

इनकी मादा हर महीने एक से दो तक बच्चे देती है जिनकी आँखें पैदा होते समय खुली रहती हैं। इनके बच्चे भी छः महीने बाद बच्चे देने लगते हैं।

रंगदुनी-परिवार

(FAMILY OCHOTANIDAE)

इस छोटे परिवार में थोड़े ही जीव हैं जो कद में खरगोश से छोटे होते हैं। ये बहुत डरपोक सीधे और बहुसंतानी जीव हैं जो खरगोशों की तरह झाड़ियों में न रहकर जमीन में बिल खोदकर रहते हैं। इनका मुख्य भोजन घास-पात है।

जान पडती है, लेकिन इसके पिछले हिस्से का मोटा चमडा जिसके साथ चर्बी की मोटी तह रहती है खाने में बहुत स्वादिष्ठ होता है।

इसकी मादा एक बार मे दो से चार तक बच्चे देती है जिनके बदन पर छोटे-छोटे मुलायम काँटे रहते हैं। ये काँटे कुछ दिनो के बाद कडे और बडे होते हैं।

द्विदन्त उपवर्ग

(SUB ORDER DUPLICIDENTATA)

इस उपवर्ग के जीवो के ऊपरी जबडे मे आगे की ओर दुहरे दाँतो की जोडी रहती है, जिसके कारण ये चूहों और गिलहरियो से अलग कर दिये गये हैं।

इनके वैसे तो कई परिवार और अनेक जातियाँ हैं जो सारे ससार में फैली हुई हैं लेकिन हमारे यहाँ इनके दो ही परिवारो के जीव पाये जाते हैं जो इस प्रकार हैं।

१ खरगोश-परिवार—Family Leporidae
२ रगदुनी-परिवार—Family Ochotanidae

खरगोश-परिवार

(FAMILY LEPORIDAE)

खरगोश परिवार काफी बडा है जिसमे सारे ससार के खरगोशो को एकत्र किया गया है। इनकी एक नहीं, अनेक जातियाँ हैं जो सारे ससार मे फैली हुई हैं। यूरोप ही मे इनकी बीसियों जातियाँ हैं। इनका शरीर मुलायम रोयों से ढँका रहता है और इनके कान बडे होते हैं।

यहा अपने यहाँ के प्रसिद्ध खरगोश का वर्णन दिया जा रहा है जो हमारे यहाँ सारे देश में फैला हुआ है।

खरगोश

(HARE)

खरगोश हमारे देश में प्राय सभी स्थानो में पाये जाते हैं, लेकिन अलग-अलग स्थानो पर रहने के कारण इनकी यहाँ कई जातियाँ हो गयी हैं, फिर भी इनकी रहन सहन, स्वभाव तथा शकल-सूरत ...जैसी ही होती है।

हमारे यहाँ खरगोश के कई भेद पाये जाते हैं। [illegible] लम्बा [illegible] चौड़ा। [illegible] भी [illegible] हैं। ये [illegible] रंग वाले जीव हैं जिनके [illegible] भी [illegible] है। इनका वजन ढाई सेर के लगभग होता है। मादा नर से कद में कुछ बड़ी होती है।

खरगोश

खरगोश के बदन का ऊपरी हिस्सा हल्का भूरा रहता है जिसमें पीठ के भाग का हिस्सा स्याही मायल हो जाता है। इनका मुँह खरखरा होता है, लेकिन नीचे और टाँगों पर एक प्रकार की ललाई रहती है। इनके गले का कुछ हिस्सा और अगले पैर से नीचे का सारा भाग सफेद रहता है।

खरगोश छितरे-बिखरे जंगलों, झाड़ियों, घास के मैदानों, नदियों के पास के नालों या कछारों में रहना ज्यादा पसन्द करते हैं। ये बिल खोदकर नहीं रहते बल्कि किसी झाड़ी या गढ़े में खतरा आने पर छिप जाते हैं।

खरगोश का मुख्य भोजन घास या नरम पौधे हैं इसीसे ये खेतों का बहुत नुक-सान करते हैं। ये वैसे बहुत निरीह और सीधे जानवर हैं जो भागने में बहुत तेज होते हैं। भागते समय ये लम्बी-लम्बी छलाँगे भरते हैं क्योंकि इनकी पिछली टाँगें अगली टाँगों से बड़ी होती हैं।

इनकी मादा हर महीने एक से दो तक बच्चे देती है जिनकी आँखें पैदा होते समय खुली रहती हैं। इनके बच्चे भी छः महीने बाद बच्चे देने लगते हैं।

रंगदुनी-परिवार

(FAMILY OCHOTANIDAE)

इस छोटे परिवार में थोड़े ही जीव हैं जो कद में खरगोश से छोटे होते हैं। ये बहुत डरपोक सीधे और बहुसंतानी जीव हैं जो खरगोशों की तरह झाड़ियों में न रहकर जमीन में बिल खोदकर रहते हैं। इनका मुख्य भोजन घास-पात है।

हमारे देश में साही ऊँचे पहाड़ों को छोड़कर प्रायः सभी स्थानों में पायी जाती है। यह ज्यादातर ऊँचे-नीचे भीटों में बिल खोदकर रहती है और इनके बिल काफी लम्बे और कई शाखाओंवाले होते हैं।

साही का कद करीब तीस इंच लम्बा होता है जो एक प्रकार के कड़े काँटों से ढँका रहता है। इसकी दुम वैसे तो चार-पाँच इंच लम्बी होती है लेकिन काँटों के साथ उसकी लम्बाई भी सात-आठ इंच तक पहुँच जाती है।
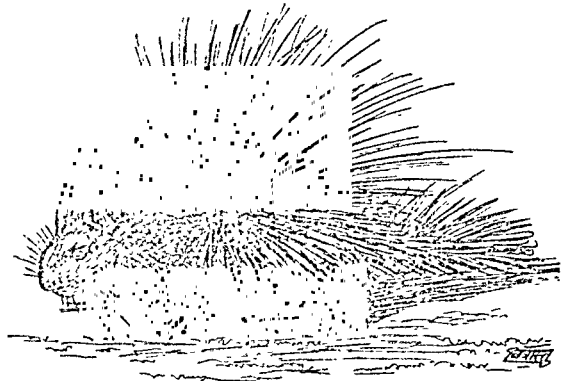
साही

साही का शरीर कलछौंह भूरे रंग का होता है जो काले और सफेद काँटों से भरा रहता है। इसके सिर पर कड़े बालों का गुच्छा सा रहता है और थूथन पर भी कड़े बाल रहते हैं। पीठ पर बड़े-बड़े काँटे रहते हैं जो पतले और लचीले होते हैं।

साही के शरीर के पिछले हिस्से के काँटों के नीचे कुछ छोटे काँटे भी रहते हैं जो मोटे, कड़े और बहुत नोकीले होते हैं। इन्हें उसी समय देखा जा सकता है जब साही अपनी रक्षा के लिए उन्हे खड़ा कर लेती है। ये काँटे काले रंग के होते हैं जिनमें कई जगह सफेद धारियाँ पड़ी रहती हैं। साही की दुम के पास के कुछ काँटे छोटे, चौड़े और खोखले होते हैं जो आतमरक्षा के समय एक तरह की आवाज करने लगते हैं।

साही बहुत सीधी और शान्त जानवर है जो किसी पर अकारण आक्रमण नहीं करती, लेकिन जब उस पर कोई हमला करता है तो वह मजबूरन अपने काँटे खड़े करके अपनी दुम उसकी ओर कर देती है। यह शाकाहारी जीव है जिसे जड़वाली चीजें बहुत पसन्द हैं। हमारे खेतों और बागों का यह बहुत नुकसान करती है और इससे आलू, शकरकंद आदि जड़वाली फसलों को बचाना मुश्किल हो जाता है।

साही का मांस मामूली होता है, जिसमें एक प्रकार की मिट्टी की-सी खसखसाहट

जान पड़ता है कि इसके पिछले हिस्से का भाग नमदा जिसके साथ पत्तों का भाग गड़ रहता है जो ठंड म बहुत लाभदायक होता है।

इसकी साधारण चाल म [illegible] पाया जाता है जिसके बदन पर छोटे-छोटे मुलायम रोएँ रहते ह। [illegible] और [illegible] होते ह।

द्विदन्त उपवर्ग

(SUB ORDER DUPLICIDENTATA)

इस उपवर्ग के जीवो के ऊपरी जबड़े म आगे की ओर दूसरे दाँतो की जोड़ी रहती है जिसके कारण ये खरहे और गिलहरियो म अलग कर दिये गये ह।

इनके वंश का कई परिवार और अनेक जातियाँ ह जो सारे संसार म फैली हुई ह लेकिन हमारे यहाँ इनके दो ही परिवारो के जीव पाये जाते ह जो इस प्रकार ह।

१ खरगोश परिवार—Family Leporidae
२ रगडुआ परिवार—Family Ochotanidae

खरगोश परिवार

(FAMILY LEPORIDAE)

खरगोश परिवार काफी बड़ा है जिसम सारे संसार के खरगोशो को एकत्र किया गया है। इनकी एक नहीं अनेक जातियाँ ह जो सारे संसार म फैली हुई ह। यूरोप ही म इनकी बीसियो जातियाँ ह। इनका शरीर मुलायम रोयो से ढका रहता है और इनके कान बड़े होते ह।

यहाँ अब यहाँ के प्रसिद्ध खरगोश का वर्णन किया जा रहा है जो हमारे यहाँ सारे देश म फैला हुआ है।

खरगोश

(HARE)

खरगोश हमारे देश म प्राय सभी स्थानो म पाये जाते ह लेकिन अलग-अलग स्थानो पर रहने के कारण इनकी यहाँ कई जातियाँ हो गयी ह फिर भी इनकी रहन सहन स्वभाव तथा शकल सूरत एक जैसी ही होती है।

हमारे यहाँ खरगोश के कई नाम प्रचलित हैं। इन्हें कहीं खरहा कहते हैं तो कहीं चौगड़ा। विन्ध्य प्रदेश की ओर ये लमहा के नाम से प्रसिद्ध हैं। कहीं-कहीं ये ससा भी कहलाते हैं। ये अठारह-बीस इंच लम्बे जीव हैं जिनके तीन-चार इंच लम्बी दुम भी रहती है। इनका वजन दो ढाई सेर के लगभग होता है। मादा नर से कद में कुछ बड़ी होती है।

खरगोश

खरगोश के बदन का ऊपरी हिस्सा हलका खैरा रहता है जिसमें पीठ के पास का हिस्सा स्याही मायल हो जाता है। इसका मुँह कलछौंह होता है, लेकिन सीने और टाँगों पर एक प्रकार की ललाई रहती है। इनके गले का कुछ हिस्सा और अगले पैर से नीचे का सारा भाग सफेद रहता है।

खरगोश तितरे-बितरे जंगलों, झाड़ियों, घास के मैदानों, नदियों के पास के नालों या कछारों में रहना ज्यादा पसन्द करते हैं। ये बिल खोदकर नहीं रहते बल्कि किसी झाड़ी या गढे में खतरा आने पर छिप जाते हैं।

खरगोश का मुख्य भोजन घास या नरम पौधे हैं इसीसे ये खेतों का बहुत नुकसान करते हैं। ये वैसे बहुत निरीह और सीधे जानवर हैं जो भागने में बहुत तेज होते हैं। भागते समय ये लम्बी-लम्बी छलाँगें भरते हैं क्योंकि इनकी पिछली टाँगें अगली टाँगों से बड़ी होती हैं।

इनकी मादा हर महीने एक से दो तक बच्चे देती है जिनकी आँखें पैदा होते समय खुली रहती हैं। इनके बच्चे भी छः महीने बाद बच्चे देने लगते हैं।

रंगदुनी-परिवार

(FAMILY OCHOTANIDAE)

इस छोटे परिवार में थोड़े ही जीव हैं जो कद में खरगोश से छोटे होते हैं। ये बहुत डरपोक सीधे और बहुसंतानी जीव हैं जो खरगोशों की तरह झाड़ियों में न रहकर जमीन में बिल खोदकर रहते हैं। इनका मुख्य भोजन घास-पात है।

हमारे यहाँ इसकी जो एक प्रसिद्ध जाति पाई जाती है यहाँ उसी का वर्णन दिया जा रहा है।

रगदुनी

(PIKA OR MOUSE HARE)

रगदुनी को पहाड़ी खरगोश कहा जाय तो अनुचित न होगा। हमारे यहाँ ये हिमालय प्रान्त में कश्मीर से लेकर पूरब तक फैले हुए हैं। हिमालय को छोड़कर इन्हें देश में और कहीं नहीं देखा जा सकता। और वहाँ भी ये १२ से १५ हजार फुट तक पाये जाते हैं।

रगदुनी

रगदुनी खरगोश के भाई-बन्धु हैं लेकिन इनके कान खरगोश की तरह लम्बे नहीं होते। दुम तो इनके होती ही नहीं। रगदुनी को कहीं-कहीं रगमूस भी कहते हैं। यह लगभग छः इंच लम्बा होता है। इसका ऊपरी हिस्सा कत्थई भूरे रंग का होता है जिसमें कभी कभी मिलेटी या वल छौंह मिलावट रहती है। नीचे का हिस्सा सफेदी मायल रहता है और पैर तथा दोनों बगली हिस्से भूरे रहते हैं।

रगदुनी गरोह बाँधकर रहनेवाले जीव हैं जो अक्सर ऐसे पथरीले मैदानों में रहते हैं जहाँ वे आसानी से बिल बना सकें या पत्थरों के बीच छिप सकें। ये ज्यादातर चीड़ के हलुए जंगलों में रहते हैं और आहट पाते ही फौरन अपने बिल में घुस जाते हैं। इनका मुख्य भोजन घास पात है।

रगदुनी की मादा एक बार में तीन चार बच्चे देती है।

मांसभक्षी वर्ग

(ORDER CARNIVORA)

मांसभक्षी-वर्ग में, जैसा कि उसके नाम से ही स्पष्ट है, सब प्रकार के मांसभक्षी जीवों को एकत्र किया गया है जिसमें बाघ, तेंदुआ, भेड़िया, सियार, लकड़बग्घे तथा कुत्ते और बिल्लियाँ हैं।

यह वर्ग शफ-वर्ग को छोड़ कर स्तनपायी-जीवों का सब से बड़ा वर्ग है जिसमें के प्राणी बहुत तेज, खूंखार आक्रमणकारी और फुरतीले होते हैं। यही नहीं, ये सब बहुत चालाक होते हैं और बुद्धिमत्ता में बंदरों के बाद फिर इन्हीं का नम्बर आता है।

मांसाहारी होने पर भी तिमि या ह्वेल को इस वर्ग से इसलिए अलग कर दिया गया है क्योंकि उसका केवल निवास ही नहीं बल्कि उसकी और बहुत-सी आदतें भी इन मांसभक्षी जीवों से भिन्न हैं। इसी प्रकार भालू आदि कुछ जीव इस वर्ग में ले लिये गये हैं जो मांस के अलावा फल-फूल और शहद आदि से भी अपना पेट भर लेते हैं।

इस वर्ग के सभी प्राणियों की उँगलियों में तेज नाखून होते हैं। इन उँगलियों की संख्या चार से कम नहीं होती। इनके पंजों की बनावट ऐसी होती है कि ये जब चाहें अपने तेज नाखून को भीतर छिपा सकते हैं। इनके पैर के तलवे गद्देदार होते हैं जिसके कारण इनके चलने में जरा भी आहट नहीं होती और ये आसानी से अपने शिकार के पास तक पहुँच जाते हैं।

इनके दाँत खास तौर पर शिकार पकड़ने के लिए ही बनाये गये हैं जो आसानी से उसे चीड़फाड़ डालते हैं। इनके आगे के दाँत तो छोटे होते हैं, लेकिन दोनों बगल के कुकुरदन्त बड़े और मजबूत होते हैं।

इन जानवरों के सूंघने और सुनने की शक्ति बहुत तेज होती है जिससे उन्हें अपने शिकार में काफी मदद मिलती है। इनमें से अधिकांश का बदन छरहरा होता है जिससे ये बहुत तेज दौड़ लेते हैं। इनकी जबान बहुत खुरखुरी होती है जिससे हड्डी पर का गोश्त हटाने में इन्हें काफी सहूलियत हो जाती है।

इस वर्ग के जीव आस्ट्रेलिया और न्यूगिनी को छोड़कर सारे संसार में फैले हुए हैं। यह वर्ग दो उपवर्गों में इस प्रकार विभाजित किया गया है :—

१. बिल्ली उपवर्ग—Sub Order Vera

२. सील उपवर्ग—Sub Order Pinnipedia

सील-उपवर्ग के जीव हमारे देश में नहीं पाये जाते, इससे हम बिल्ली उपवर्ग को ही ले रहे हैं।

बिल्ली उपवर्ग

(SUB ORDER VERA)

बिल्ली उपवर्ग काफी विस्तृत है, इसीलिए विद्वानों ने इसे तीन समूहों में इस प्रकार बाँटा है।

१ बिल्ली-समूह—Section Acluroidea

२ कुत्ता-समूह—Section Sytnoidea

३ भालू-समूह—Section Arctoidea

यहाँ इन तीनों समूहों का अलग-अलग वर्णन दिया गया है और प्रत्येक के साथ उनके प्रसिद्ध जीवों को रखा गया है।

बिल्ली-समूह

(SECTION ACLUROIDEA)

बिल्ली-समूह अन्य दोनों समूहों से बड़ा है। इसीलिए उसका विभाजन चार परिवारों में, उनकी विशेषता के अनुसार, किया गया है, लेकिन यहा उनमें से केवल तीन परिवारों का वर्णन दिया जा रहा है क्योंकि हमारे देश में इन्हीं तीनों परिवारों के जीव पाये जाते हैं। ये तीनों इस प्रकार हैं—

१ बिल्ली परिवार—Family Felidae

२ कस्तूरी-परिवार—Family Viverridae

३ लकड़बग्घा-परिवार—Family Hyaenidae

बिल्ली-परिवार

(FAMILY FELIDAE)

इस बड़े परिवार के सभी जीव पूर्णरूप से मासभक्षी हैं जिसमें सिंह से लेकर बिल्ली तक शामिल हैं। इन जीवों के कुकुरदन्त अन्य जानवरों से बड़े और नोकीले होते हैं जैसे वे मास भक्षण के लिए ही बनाये गये हों। उनमें काफी तेज धार होती है जिससे वे आसानी से मास काट सकते हैं।

ये मांसभक्षी पशु वैसे तो रात्रिचारी होते हैं, लेकिन इनमें से कुछ को दिन में भी घूमते-फिरते देखा जा सकता है। इनकी आंखों की पुतलियों में फैल कर बड़ी हो जाने की शक्ति होती है जिससे वे थोड़ी रोशनी में भी बहुत कुछ देख सकते हैं। अंधेरे में चलते समय इनको आंखों से ज्यादा अपनी मूंछों से सहायता मिलती है जिन्हें ये अंधेरे में फैलाकर चलते हैं। ये मूंछें भी इनकी स्पर्शेन्द्रियां हैं। ये जीव संसार के प्रायः सभी भागों में पाये जाते हैं। यहां इस परिवार के मुख्य-मुख्य जीवों का वर्णन दिया जा रहा है।

सिंह

(LION)

सिंह हमारे यहाँ का प्रसिद्ध राजसी पशु है जिसे हमारे देश में सदा से राज्यचिह्नों में स्थान पाने का गौरव प्राप्त है। इस समय भी हमारे स्वतन्त्र भारत के राज्यचिह्न में इसी की मूर्ति रखी गयी हैं। इसे जंगल का राजा कहना कोई अत्युक्ति नहीं।
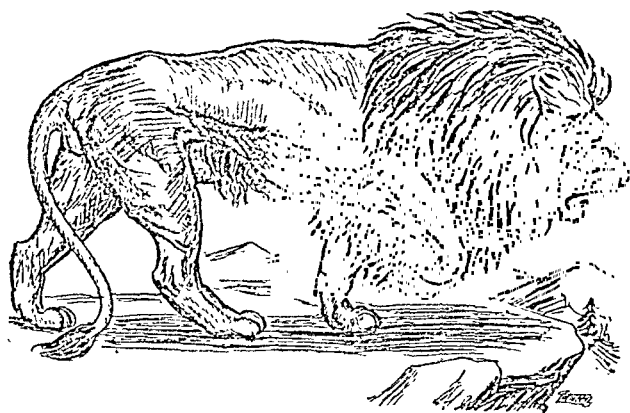
सिंह

सिंह को उसके कंधे पर के बड़े-बड़े बालों या केसर के कारण केसरी भी कहते हैं। कहीं-कहीं यह शेर-बबर भी कहलाता है। हमारे देश में सिंह अब बहुत थोड़ी संख्या में रह गये हैं। लेकिन अफ्रीका के जंगलों में ये अब भी काफी संख्या में हैं। इस देश में तो ये सिर्फ काठियावाड़ के पहाड़ी गीर जंगल में ही रह गये हैं जहाँ इनकी संख्या सौ, दो

सौ से अधिक नहीं आँकी जाती। कभी-कभी ये उदयपुर और जोधपुर के आस पास तथा आबू पहाड में भी मिल जाते हैं। लेकिन यदि सरकार द्वारा इनकी रक्षा का प्रबन्ध न किया गया तो वह दिन दूर नहीं जब ये हमारे देश से एक दम लुप्त हो जायेंगे।

सिंह बाघ की तरह घने जंगलों में रहना उतना पसन्द नहीं करते जितना घास के खुले मैदानों में। इसीलिए इनको प्रकृति ने धारीदार पोशाक न देकर भूरी पोशाक दी है जो घास के मैदानों के लिए बहुत उपयुक्त है। इनका सिर चपटा और कान छोटा है और इनकी शक्ल बिल्ली से मिलती जुलती न होकर कुत्तों से मिलती जुलती है। नर के कंधे पर लगभग एक फुट लम्बे बाल या अयाल होते हैं जिससे इनका चेहरा बहुत रोबीला और भयानक लगने लगता है। इनकी दुम के सिरे पर गाय-बैल की तरह काले बालों का गुच्छा-सा रहता है। इनका सारा शरीर सुनहला या पिलछौंह भूरा रहता है, कान के बाहरी हिस्से की जड के पास कुछ स्याही रहती है और बचपन में अयाल के बालों के सिरे भी काले रहते हैं। बच्चों के बदन पर धारियाँ-सी पडी रहती हैं जो उनके बडे होने पर गायब हो जाती हैं।

सिंह करीब छ, साढे छ फुट लम्बे होते हैं जिनके ढाई-तीन फुट लम्बी दुम रहती है। ऊँचाई में भी ये तीन, साढे तीन फुट तक के पाये गये हैं। सिंहनी सिंह से कहर कुछ छोटी होती है। सिंह बाघ से ऊँचे होकर भी उतने भारी, कद्दावर और मजबूत नहीं होते और न ये बाघ की तरह खूँखार और चालाक ही होते हैं। लेकिन इनमें साहस की कमी नहीं रहती। बाघ जहां शिकार के समय छिपने की कोशिश करता है वहीं सिंह बहादुरी से सामने आकर आक्रमण करता है।

सिंह बडा बहादुर जानवर है जो अपने से बडे जानवरों को बडी आसानी से मार गिराता है। इसकी गरज बाघ से कहीं तेज होती है जिसे हम शाम को और रात में अक्सर सुन सकते हैं। इनके दहाडने से इनके रहने का पता आसानी से लग जाता है क्योंकि ये प्राय एक नियत समय पर नित्य दहाडा करते हैं।

सिंह वैसे अलग-अलग भी रहते हैं, लेकिन जोडा बाँध लेने पर ये मादा के साथ ही दिखाई पडने हैं। अफ्रीका आदि में, जहाँ इनकी अधिक सख्या है, ये गरोह बाँधकर शिकार करते हैं। इनका मुख्य भोजन मांस है, लेकिन ये मुर्दाखोर नहीं होते और सदैव अपना ही मारा शिकार खाते हैं।

बाघ (पृ० ५९८)

सिंहनी आठ महीने पर दो-तीन बच्चे जनती है जिनकी आँखें शुरू से ही खुली रहती हैं। ये बच्चे पांच-छः महीने तक अपनी मा के साथ रहकर अपना अलग जीवन बिताने के लिए उससे अलग हो जाते हैं।

बाघ

(TIGER)

बाघ या शेर हमारे यहाँ का सबसे प्रसिद्ध जानवर है जिसे सिंहों की कमी के कारण अब जंगलों का राजा कहना ठीक ही है। इसको हमने जंगल में भले ही न देखा हो, लेकिन हममें से शायद ही कोई ऐसा होगा जिसने इसकी तस्वीर भी न देखी हो। बहुतों को तो चिड़ियाखानों में इसके दर्शन भी हो गये होंगे।
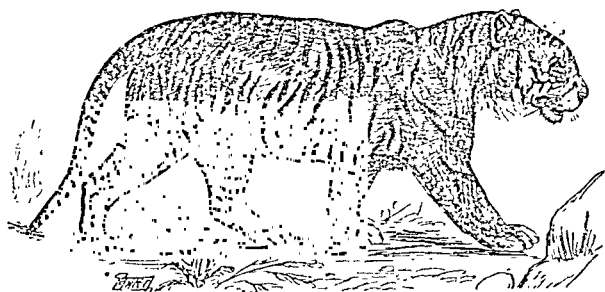
बाघ

हमारे देश के घने जंगलों में आज बाघ का ही एकछत्र राज्य है। काफी शिकार होने के कारण अब इनकी संख्या धीरे-धीरे कम जरूर होती जा रही है लेकिन सिंहों की तरह इनके एकदम लोप हो जाने का खतरा अभी निकट भविष्य में नहीं है। बंगाल, मध्यप्रदेश और बंबई के जंगलों में इनका काफी शिकार हुआ है और वहाँ ये कम भी हो गये हैं, लेकिन हिमालय की तराई के घने जंगलों में ये आज भी काफी संख्या में फैले हुए हैं। हिमालय पर ये छः-सात हजार फुट से ज्यादा ऊँचाई पर जाना नहीं पसन्द करते, लेकिन इतनी ऊँचाई तक तो इनका आतंक रहता ही है।

बाघ की औसत लम्बाई साढ़े पाँच फुट से छः फुट तक रहती है। इसके अलावा इनकी दुम भी ढाई-तीन फुट की होती है। ऊँचाई में ये सिंह से कुछ छोटे तीन, सवा तीन फुट तक होते हैं। इनकी दुम बिल्लियों की तरह सादी ही रहती है। इनके बदन का

रग बादामी रहता है जिसपर आड़ी आड़ी धारियाँ पड़ी रहती हैं। दुम भी बादामी भाती है जो काली गन्धारियों से भरा रहता है। इसके कान का बाहरी हिस्सा काला रहता है जिसपर एक सफेद निशान रहता है। नाक से कुछ नीचे की जमीन सफेद रहती है।

बाघ एक मादा से जाना पहचाना रहनेवाले जीव हैं जो कभी अकेले और कभी जोड़े में दिखाई पड़ते हैं। ये अपना दिन का सारा समय किसी घनी और सायेदार जगह में बिताकर रात में अपने शिकार के लिए बाहर निकलते हैं और सारी रात शिकार की तलाश में चक्कर लगाते रहते हैं। गरमियों में ये पानी के आस-पास ही रहते हैं लेकिन जाड़े और बरसात में सारे जंगल में फैल जाते हैं।

बाघ का मुख्य भोजन मांस है जिसके लिए ये साही, सुअर, हिरन, सांभर और गाय बैल आदि का शिकार करते हैं। भूख रहने पर ये बन्दर और मोर आदि को भी नहीं छोड़ते। ये शिकार करते समय अपने से ऊँचे जानवरों की गरदन नीचे से पकड़ कर बड़ी फुरती से उसकी पीठ की दूसरी ओर कूद जाते हैं जिससे शिकार की गरदन एंठकर टूट जाती है। यह सब इतने आनन फानन होता है कि देखते ही बनता है। छोटे मोटे जानवरों को तो ये एक थप्पड़ में ही खतम कर देते हैं। बूढ़े बाघ जब जंगली जानवरों को नहीं मार पाते तो वे आदमखोर हो जाते हैं। शेरनियाँ भी अक्सर आदमखोर देखी गयी हैं। एक बार आदमी का खून जबान पर लगने पर ये फिर आदमियों को पकड़ने लगते हैं क्योंकि आदमी से अधिक आसानी उन्हें किसी शिकार में नहीं होती।

हमारे यहाँ इनके शिकार के दो प्रसिद्ध तरीके हैं एक तो हाँके द्वारा और दूसरा मरी पर बैठकर। हाँके का शिकार मचान पर बैठकर होता है। इसमें एक ओर ऊँचे पेड़ों पर मचान बाँध दिये जाते हैं और दूसरी ओर से सैकड़ों आदमी ढोल ताशा आदि लेकर शोर मचाते हुए मचानों की ओर आते हैं। वे बीच बीच में पड़ों को ठोकते और पटाखे आदि दागते आते हैं जिससे शेर आगे-आगे चलकर मचान की ओर चला जाय। जब शेर मचान के करीब पहुँच जाता है तो उस पर शिकारी लोग गोली चलाकर उसे मार देते हैं।

मरी (Kill) के शिकार के लिए शिकारी जंगलों में बछड़े या भैंसे बाँध देते हैं। जब शेर उसे मार देता है तो दूसरे दिन उसी के पास किसी पेड़ पर मचान बाँध दिया जाता है। दूसरे दिन रात को जब शेर बचे हुए मांस को खाने के लिए उस जगह आता है तो उसे मचान पर से गोलियों का शिकार बना लिया जाता है।

इसके अलावा तराई की ओर जहाँ घास के बड़े-बड़े मैदान हैं बाघ का शिकार हाथियों से घेरकर किया जाता है और अब तो इनका शिकार रात में मोटर पर चढ़कर भी काफी होने लगा है। रात में मोटर की तेज लाइट या सर्च लाइट के सामने शेर चौंधिया कर खड़ा हो जाता है और तब उसे मोटर पर बैठे-बैठे मार लेने में ज्यादा कठिनाई नहीं रह जाती।

बाघिन लगभग चार महीने बाद दो से छः तक बच्चे देती है। उसके बच्चे देने का साल में कोई निश्चित समय नहीं है। इसी से इनके बच्चे हमको प्रायः हर समय दिखाई पड़ते हैं। बच्चे काफी बड़े होने तक अपनी माँ के साथ रहते हैं जो उन्हें शिकार खेलना सिखाती है।

तेंदुआ

(LEOPARD)

तेंदुए को शेर का भाई-बन्धु कहना ठीक होगा। कद में शेर से छोटे होते हुए भी ये चालाकी और फुर्ती में उससे आगे ही रहते हैं। हमारे देश में ये पंजाब को छोड़कर सभी घने जंगलों में पाये जाते हैं। यही नहीं, ये कभी-कभी खादड़ और ऐसे तितरे-बितरे जंगलों में भी चले आते हैं जहाँ शेर कभी नहीं आता।
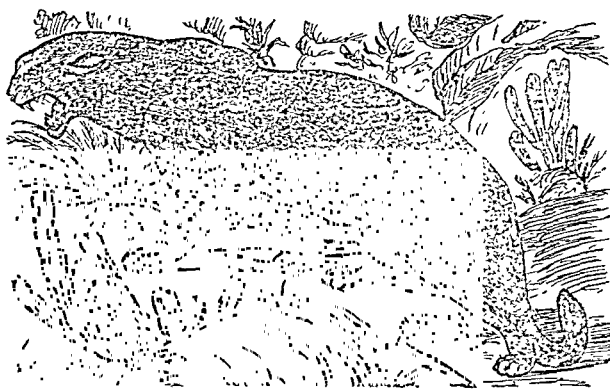
तेंदुआ

तेंदुआ हमारा बहुत ही परिचित जीव है जो चार-पाँच फुट लम्बा और करीब दो

फुट ऊँचा होता है। इसके तीन फुट लम्बी दुम होती है। इसका बदन बहुत गठीला और सुडौल होता है और इसकी शक्ल बिल्लियों-जैसी रहती है।

तेंदुए का बदन हल्का बादामी या हल्का भूरा रहता है जिसमें सुर्खी मायल सफेदी मिली रहती है। नीचे का रंग एकदम सफेद रहता है। इसका सारा बदन गोल चित्तियों या गुलों से भरा रहता है जिसमें सिर, पेट और पैर के निचले हिस्से की चित्तियाँ तो घुर वाली होती हैं, लेकिन पीठ, दुम और दोनों बगल के गुल छल्लेनुमा रहते हैं और उनके बीच का रंग पीला रहता है। इन्हीं गुलों के कारण इन्हें कहीं-कहीं गुलदार भी कहा जाता है। बच्चे भूरे रंग के होते हैं और उनके बदन पर के गुल शुरू में हल्के रंग के रहते हैं।

तेंदुआ दिन में किसी घने जंगल की खोह या सायेदार स्थान में छिपा रहता है और रात होते ही शिकार के लिए बाहर निकलता है। यह बहुत ही ताकतवर और खतरनाक जानवर है जिसमें गजब की चालाकी होती है। इसमें इतना साहस नहीं होता और यह खतरा निकट देख कर भागने या छिपने की कोशिश करता है। यह गाँव के भीतर आकर आदमियों पर हमला नहीं करता, लेकिन चोरी से मुरगियों, बत्तखों और अकेले जानवरों को उठा ले जाता है। यह वैसे तो बंदर, सुअर और हिरन आदि का शिकार करता है, लेकिन भूखा रहने पर गाँव के कुत्तों और अन्य पालतू पशु-पक्षियों को भी मारकर अपना पेट भरता है।

तेंदुआ बहुत फुर्तीला जानवर है जो काफी लम्बी छलाँगें मारता है और पेड़ों पर भी आसानी से चढ़ जाता है। यही नहीं, यह पानी में तैरने में भी शेर की तरह उस्ताद होता है। कभी-कभी यह अपने शिकार को पेड़ पर ले जाकर रख देता है और कभी कई दिनों में उसे खाता है।

इसकी मादा एक बार में दो से चार तक बच्चे देती है।

साह

(SNOW LEOPARD)

साह को हिमालय का या बर्फ का तेंदुआ कहें तो अनुचित न होगा क्योंकि यह केवल हिमालय में दस-बारह हजार फुट ऊँचे जंगलों में पाया जाता है।

यह लगभग चार फुट लम्बा जानवर है जो बहुत फुर्तीला और सुन्दर होता है। यह दो फुट ऊँचा होता है जिसकी दुम करीब तीन फुट लम्बी होती है। इसका रं

सफेदी मायल राख-जैसा होता है जिसमें कभी-कभी पीलेपन की कुछ झलक रहती है। इसके वदन पर वड़े और काले छल्लेनुमा गुल पड़े रहते हैं, जो देखने में वहुत सुन्दर लगते हैं। इसके वदन के वाल काफी वड़े होते हैं और दुम के सिरे के पास वालों का एक गुच्छा-सा रहता है; नीचे का सारा हिस्सा गंदा सफेदी मायल रहता है जिस पर पेट के पास कुछ गहरे रंग की चित्तियाँ पड़ी रहती हैं। इसके कान का वाहरी हिस्सा काला रहता है।
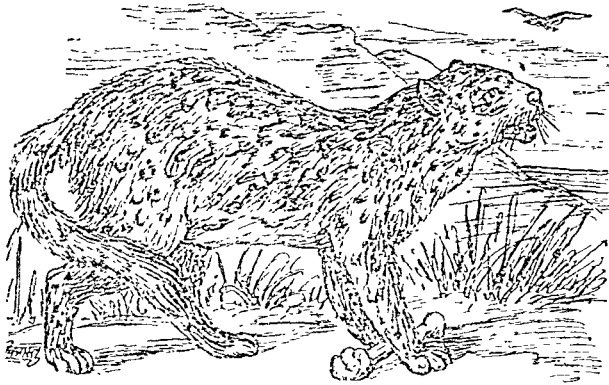
साह

साह वैसे तो मांसाहारी और हिंसक जीव है लेकिन यह आदमियों पर हमला नहीं करता। यह वर्फ के निकट रहनेवाली जंगली भेंड़-वकरियों को मारकर अपना पेट भरता है।

इसकी और सव आदतें तेंदुओं से मिलती-जुलती होती हैं। इससे उन्हें फिर से दुहराने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती।

लमचित्ता

(CLOUDED LEOPARD)

लमचित्ता भी हिमालय का निवासी है जो हिमालय के पूर्वी हिस्सों में लगभग सात हजार फुट के ऊँचे जंगलों में पाया जाता है। इसके पैर कुछ छोटे होने के कारण देखने में यह लम्वा जान पड़ता है। इसीसे शायद इसे लमचित्ता कहा जाता है। कुछ लोग इसके वदन पर के लम्वे चित्तों के कारण इसको लमछिट्टा भी कहते हैं।

लमचित्ता करीब तीन फुट लम्बा जानवर है, जो ऊँचाई में एक या सवा फुट से ज्यादा नहीं होता। इसकी दुम भी करीब ढाई, तीन फुट से ज्यादा लम्बी नहीं होती, जो बिल्लियों की तरह सादी ही रहती है। यह बहुत सुन्दर जानवर है जिसके रंग का वर्णन करना बहुत कठिन है। इसके बदन का रंग पिल्छौंह भूरा या हलका बादामी रहता है, जिसके ऊपर बहुत बड़े-बड़े काले चित्ते रहते हैं जो देखने में बहुत ही भले मालूम होते हैं जैसे पीली जमीन पर काले बादल से उठ रहे हो। इसके पैरों का भीतरी हिस्सा सफेद रहता है और बदन का निचला हिस्सा हलका हो जाता है। गरदन और दोनों गालों पर काली धारियाँ रहती हैं और गले पर एक काली पट्टी साफ चमकती रहती है। इसकी दुम काफी लम्बी और झबरी होती है, जिस पर गहरे रंग के छल्ले पड़े रहते हैं। इसका बदन भारी, गठीला और सुडौल होता है और इसके शरीर पर के रोयें बड़े न होकर छोटे ही रहते हैं।

लमचित्ता अपना अधिक समय पेड़ों पर ही बिताता है, जहाँ वह किसी झुकी डाल पर बैठा रहता है। रात को भी यह पेड़ों पर ही सोता है और पेड़ों पर ही घूम-कर चिड़ियों को पकड़ता है। चिड़ियों के अलावा यह छोटे-मोटे जानवरों का भी शिकार करता है, लेकिन बड़े जानवरों और आदमियों पर हमला करने की हिम्मत इसे नहीं पड़ती।

इसकी अन्य आदतें तेंदुए तथा साह से मिलती-जुलती होती है।

सिकमार

(MARBLED CAT)

सिकमार बिल्ली के कद का छोटा-सा जानवर है। इसलिए इसे शेर और तेंदुए की श्रेणी में न रखकर बिल्लियों की श्रेणी में ही रखना अधिक उपयुक्त होगा। यह डेढ़-दो फुट से अधिक लम्बा नहीं होता और इसके करीब सवा फुट लम्बी झबरी दुम होती है। इसके अंग घरेलू बिल्लियों से कहीं ज्यादा मजबूत होते हैं और यह ताकत और फुरती में भी उनसे आगे रहता है।

सिकमार का रंग लमचित्ते से मिलता-जुलता रहता है और दूर से देखने पर यह उसका बच्चा जान पड़ता है। इसके बदन का रंग मटमैला पिल्छौंह रहता है जिसमें भूरे रंग की मिलावट रहती है। सारे बदन पर बहुत से लम्बे लम्बे काले धब्बे रहते हैं जो देखने

में लहर-से जान पड़ते हैं। सिर और गुद्दी पर पतली-पतली धारियाँ रहती हैं जो दुम तक फैल जाती हैं। इसकी जाँघों के भीतरी हिस्से में काली चित्तियाँ रहती हैं और दुम पर काली गड़ारियाँ पड़ी रहती हैं। पेट का हिस्सा पिलछौंह सफेद रहता है। इसके बदन के बाल काफी नरम होते हैं जिसके नीचे मुलायम रोओं की एक तह भी रहती है।
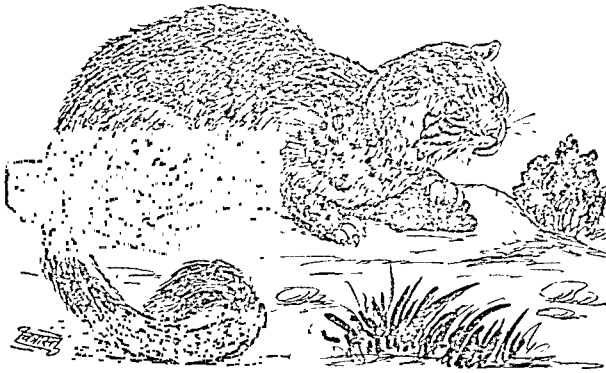
सिकमार

सिकमार बहुत शरमीला जानवर है जिसका मुख्य भोजन मांस है। यह गुस्सा होने पर खौफनाक जरूर हो जाता है, लेकिन वैसे खतरे को निकट देखकर छिपकर भागने की ही कोशिश करता है। इसकी मादा बिल्लियों की तरह कई बच्चे देती है।

बाघदशा

(FISHING CAT)

बाघदशा भी जंगली बिल्लियों में से एक है जिसे बंगाल में माछ-बिड़ाल और कहीं-कहीं बाघडाँशा बरौन या खुपियाबाघ भी कहते हैं। हमारे यहाँ ये हिमालय की तराई में काफी संख्या में पाये जाते हैं, वैसे ये बंगाल से लेकर पंजाब तक उत्तरी भारत में और मालाबार तट की ओर दक्षिण भारत में फैले हुए हैं।

बाघडाँशा करीब ढाई फुट लम्बा और सवा फुट ऊँचा जानवर है जिसके दस-ग्यारह इंच लम्बी दुम होती है। इसके बदन का रंग सिलेटी होता है जिसमें हलकी भूरी झलक रहती है। सारा बदन गहरे रंग की चित्तियों से भरा रहता है जो पीठ और गरदन पर तो अण्डाकार और सिलसिलेवार रहती हैं, लेकिन शरीर के और स्थानों पर इनकी

शक्ल गोल हो जाती है। यहाँ ये बेतरतीबी से इधर-उधर फैली रहती हैं। इसके गात का रंग सफेद रहता है जिस पर काली धारियाँ पड़ी रहती हैं। पेट का रंग मटमैला सफेद होता है जिस पर सीने के पास पाँच-छः गहरे रंग की पट्टियाँ और बाकी हिस्से में चित्तियाँ पड़ी रहती हैं। दुम पर कई छल्ले पड़े रहते हैं, लेकिन उसका सिरा काला ही रहता है।

बाघदशा

बाघदशा हमारे यहाँ की जंगली बिल्लियों में सबसे बड़ा, खूँखार और तेज होता है। यह प्रायः पानी और दलदलों के आसपास ही रहना पसन्द करता है क्योंकि इसका मुख्य भोजन घोंघे, कछुए और मछलियाँ आदि हैं। इसके अलावा यह चिड़ियों और छोटे-छोटे जानवरों का भी शिकार करता है और कभी-कभी ढीठ हो जाने पर यह आदमियों के एक-दो महीने के बच्चों को भी उठा ले जाता है। भूखा रहने पर यह भेड़-बकरियों और कुत्तों पर भी हमला कर बैठता है।

इसकी मादा अन्य बिल्लियों की तरह दो चार बच्चे जनती है।

तेंदुआबिल्ली

(LEOPARD CAT)

तेंदुआबिल्ली तेंदुए के बराबर नहीं होती, बल्कि इसका कद बाघदशा से छोटा और पालतू सफेद बिल्लियों के ही बराबर रहता है। इसे पहाड़ी स्थान बहुत पसन्द

है और यह अपना अधिक समय घने जंगलों में ही बिताती है। वहां यह ज्यादातर पेड़ों पर ही रहती है।

इसके बदन का रंग हलका भूरा होता है जिन पर काली या गाढ़ी भूरी चित्तियाँ पड़ी रहती हैं। नीचे का हिस्सा सफेद रहता है। इनकी गरदन और गुद्दी पर काली धारियाँ पड़ी रहती हैं, लेकिन दुम और पैरों पर धारियों का स्थान काली चित्तियां ले लेती हैं।

तेंदुआबिल्ली
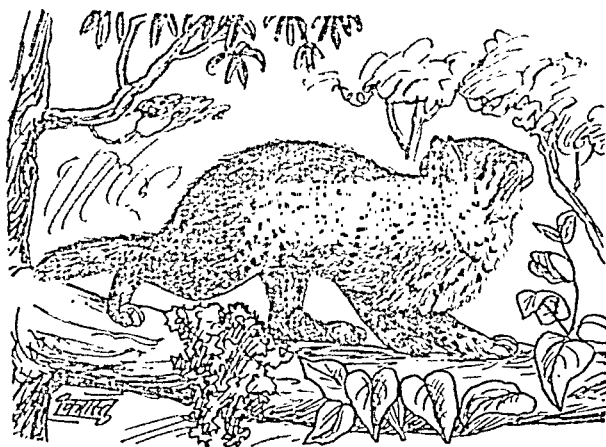
तेंदुआबिल्ली दिन में किसी खोथे या सूराख में घुसी रहती है, लेकिन रात को यह शिकार के लिए बाहर निकलती है और तब यह जंगलों के अलावा आस-पास की आबादियों में भी पहुँच जाती है। वहाँ पर यह पालतू मुर्गियों, बत्तखों और खरगोशों के लिए बहुत ही घातक सिद्ध होती है। जंगल में भी यह छोटी-मोटी चिड़ियों और जानवरों को मारकर अपना पेट भरती है।

इसकी मादा एक बार में तीन-चार बच्चे देती है जो छुटपन में भूरे रंग के रहते हैं।

वनबिलार

(JUNGLE CAT)

वनबिलार यहाँ की सबसे प्रसिद्ध जंगली बिल्ली है जो हमारे देश के प्रायः सभी घने और तितरे-बितरे जंगलों में पायी जाती है। हिमालय में भी यह सात-आठ हजार

फुट की ऊँचाई तक पहुँच जाती है और जगल के आस-पास की आबादियों में भी रात में इसका हमला होता रहता है। देश में प्राय सभी जगली स्थानों में पायी जाने के कारण लोग इसको वन-बिलार या जगली बिल्ली कहते हैं जो ठीक भी है।

वनबिलार
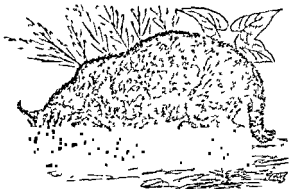
वनबिलार हमारी पालतू बिल्लियों के बराबर लगभग दो फुट लम्बा और एक फुट से कुछ ऊँचा होता है। इसकी दुम भी लगभग दस इच की रहती है। इसके शरीर का रग ललछौंह सिलेटी रहता है जिसमें कुछ भूरापन मिला रहता है। पीठ पर से दोनों बगल धुमैली खड़ी धारियाँ पड़ी रहती हैं, जो कहीं-कहीं टूटकर चित्तियों की शक्ल की हो जाती हैं। ज्यादा उम्र हो जाने पर इसके बदन की चित्तियाँ धुमैली और अस्पष्ट हो जाती हैं। इसके शरीर का निचला हिस्सा सफेद रहता है। लेकिन सीने पर कभी-कभी एक काली धारी पड़ी रहती है। कभी कभी पेट पर भी हल्के रग की चित्तियाँ पड़ी रहती हैं। इसके पैर के तल्वे ललछौंह होते हैं और दुम के निचले आधे भाग में छल्ले पड़े रहते हैं। दुम का सिरा हमेशा काला रहता है।

वनबिलार बहुत दुष्ट और ढीठ जानवर है जो रात में बस्तियों में घुसकर हमारा बहुत नुक्सान करता है। इससे पालतू पक्षी और छोटे जानवरों को बचाना कठिन हो जाता है। यदि कोई पालतू जीव खुला रह गया तो इसके पहुँचने में देर नहीं लगती। दिन में यह किसी सुनसान खँडहर घास के मैदान या जगल के किसी बिल या खोह में छिपा रहता है लेकिन रात होते ही इसका शिकार शुरू हो जाता है।

इसकी मादा साल में दो बार तीन-चार बच्चे देती है।

बिल्ली

(CAT)

बिल्ली से भला ऐसा कौन है जो परिचित न होगा। हमारे घरों में दूध दही के लिए इसका फेरा लगता रहता है। कुछ शौकीन लोग इसे कुत्ते की तरह शौक के लिए भी पालते हैं और इसी कारण इसकी अनेक जातियाँ बन गयी हैं जिनमें ईरानी (Persian) और श्यामी मुख्य हैं।

हमारे देश में बिल्लियों की किसी खास जाति का विकास नहीं हुआ है, लेकिन इन्हीं ईरानी और श्यामी की दोगली जातियाँ यहाँ फैली हुई हैं जो सफेद, भूरी, कलछौंह या चितकबरी रहती हैं। इनमें से कुछ के बाल ईरानी बिल्लियों की तरह बड़े भी रहते हैं, लेकिन ज्यादा संख्या उन्हीं की है जो छोटे बालोंवाली होती हैं।

बिल्ली

इन दोगली पालतू बिल्लियों के अलावा एक देशी बिल्ली हमारे यहाँ प्रायः सभी जगह पायी जाती है जो हमारे घरों में अक्सर दिखाई पड़ती है। इसी को हम यहाँ की घरेलू बिल्ली कह सकते हैं, यद्यपि यह हमारे घरों में रहकर भी इतनी पालतू नहीं हुई है कि हम उसे पकड़ सकें। यह हमारे घरों में जरूर रहती है और वहीं बच्चे भी देती है, लेकिन हमारा नुकसान करने के कारण हम इसे मारने की ही घात में रहते हैं और वह भी हमें देखकर दूर भागने की ताक में चौकन्नी ही रहती है।
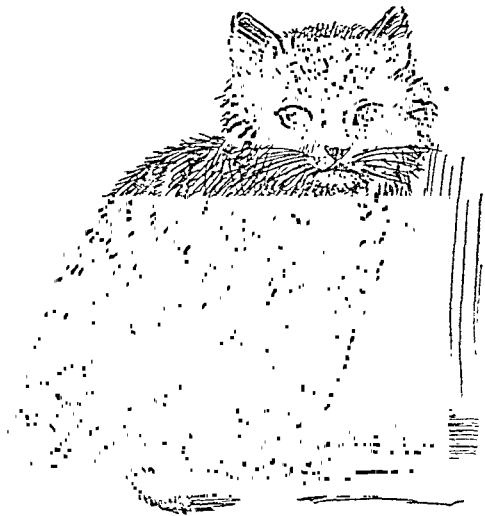
हमारे यहाँ की इस देशी बिल्ली का रंग कलछौंह सिलेटी रहता है जिसके सारे शरीर पर काली-काली चित्तियाँ, बिन्दियाँ और धारियाँ पड़ी रहती हैं। इसकी दुम भी

वाली, गडारियां से भरी रहती है और आंख के पास से गाल तक दोनों ओर एक-एक काली रेखा रहती है। यह रंग रूप में जंगली बिल्लियों से बहुत कुछ मिलती-जुलती होती है और इसका उत्पात भी उनसे कम नहीं होता।

इसे हमारे घर के दूध-दही की आदत जरूर पड़ गयी है लेकिन यह वास्तव में मांस भक्षी जीव है जो हमारे घर के छोटे पालतू जीवों और मुर्गी, कबूतर बत्तख तथा अन्य छोटी चिड़ियों पर हमला करती है। यह बड़ी चालाक होती है और चिड़िया के पिंजड़े तक में हाथ डालकर उन्हें पकड़ लेती है। इससे हमारा इतना लाभ जरूर होता है कि यह हमारे घर के चूहों की भी सफाई करती रहती है।

यह एक बार में कई बच्चे देती है जिन्हें यह थोड़े-थोड़े दिन पर एक स्थान से उठाकर दूसरे स्थान पर ले जाकर रखती है।

स्याहगोश

(CARACAL)

स्याहगोश को उसके काले कानों के कारण यह नाम मिला है। यह बिल्ली की शक्ल-सूरत का छोटा सा जानवर है जो अपने ऐंठे हुए काले कानों के कारण बड़ी आसानी से पहचाना जा सकता है।

स्याहगोश

स्याहगोश हमारे यहाँ पंजाब और मध्यप्रदेश के जंगलों में पाये जाते हैं। दक्षिण

की ओर भी ये मालावार तट को छोड़कर वहाँ के प्रायः सभी जंगलों में देखे जाते हैं। हमारे देश के इतने विस्तृत भाग में फैले रहने पर भी स्याहगोश इतनी कम संख्या में हैं कि इन्हें हम बहुत कम देख पाते हैं। इसके अलावा ये अपने रहने का स्थान भी ऐसे घने जंगलों के बीच में चुनते हैं कि वहाँ तक लोगों का पहुँचना कठिन होता है।

स्याहगोश करीब ढाई फुट लम्बा और डेढ़ फुट ऊँचा जानवर है जिसकी दुम एक फुट से कुछ कम ही रहती है। कुछ स्याहगोश हलके भूरे या बादामी रंग के होते हैं और कुछ के रंग में पीलेपन की झलक रहती है। इनके पेट का रंग पिलछौंह रहता है, लेकिन कुछ सफेद पेटवाले स्याहगोश भी पाये गये हैं। इनके पेट पर हलकी ललछौंह चित्तियाँ रहती हैं जो लिपीपुती-सी जान पड़ती हैं। टाँगों का भीतरी हिस्सा भी धुमैली चित्तियों से भरा रहता है। दुम का सिरा काला रहता है।

स्याहगोश और स्थानों की अपेक्षा मध्य भारत के जंगलों में अधिक संख्या में पाये जाते हैं। इनका मुख्य भोजन छोटे जानवर और मोर आदि पक्षी हैं। यही नहीं, ये कभी-कभी छोटे हिरनों को भी मार लेते हैं। चिड़ियों को पकड़ने में तो ये उस्ताद होते हैं। ये पेड़ों पर घूम-घूमकर चिड़ियों को तो पकड़ते ही हैं, जमीन पर भी इन्हें चिड़ियों के पकड़ने में ज्यादा दिक्कत नहीं पड़ती क्योंकि ये जमीन से पाँच-छः फुट तक कूदकर उन्हें पकड़ लेते हैं। इनकी इसी फुर्ती के कारण कुछ लोग इन्हें शिकार के लिए पालते हैं और इनसे खरगोश, लोमड़ियों के अलावा मोर, कबूतर और तीतर आदि चिड़ियों का शिकार कराते हैं।

इनकी मादा एक बार में तीन-चार बच्चे देती है।

चीता

(CHEETA)

चीता हमारे देश का ही क्यों, सारे संसार का सबसे तेज दौड़नेवाला स्तनप्राणी है, लेकिन सिंह की तरह यह भी हमारे देश से अब धीरे-धीरे लुप्त होता जा रहा है। अफ्रीका में सिंहों की तरह चीते भी काफी संख्या में पाये जाते हैं, जहाँ से शौकीन लोग इन्हें पालने के लिए मँगाते हैं और इनके द्वारा हिरन आदि का शिकार करते हैं। ये वैसे तो तेंदुए के निकट सम्बन्धी हैं और इनका रंगरूप भी उनसे मिलता-जुलता रहता है लेकिन ये अपने पतले पैर, छोटे सिर और छरहरे बदन के कारण शरीर की बनावट में तेंदुए से एकदम अलग रहते हैं।

हमारे देश मे चीता मध्य प्रदेश, दक्षिण भारत, राजपूताना और पजाब के जगलो मे ही पाया जाता है, लेकिन अब इसकी सख्या इतनी कम हो गयी है कि यह बहुत मुश्किल से हमारी निगाह तले पडता है। जिस प्रकार सिंहो के कम हो जाने से उनका स्थान बाघो ने ले लिया है उसी प्रकार चीतो की कमी से हमारे जगलों में तेंदुओ की सख्या काफी हो गयी है।

चीता

चीता लगभग साढे चार फुट लम्बा और ढाई फुट ऊँचा छरहरे बदन का जानवर है जिसके करीब ढाई फुट की लम्बी दुम होती है। इसकी टाँगें लम्बी, सिर छोटा और दुम सिरे के पास कुछ धूमी-सी रहती है। इसके शरीर का रग कभी ललछौंह बादामी और कभी भूरापन लिये पिल्छौंह रहता है जिसपर काली चित्तियाँ पडी रहती है। नीचे का रग ऊपर से बहुत हलका होता है, लेकिन काली चित्तियाँ उस पर भी उसी प्रकार रहती है। ठुड्डी और गले का रग सफेदी-मायल रहता है और वहाँ चित्तियाँ नहीं होती। दुम पर भी काले चित्ते रहते है जो जड के पास छल्ला की शक्ल के हो जाते है। दुम का सिरा हमेशा सफेद रहता है।

चीते के बदन की चित्तियाँ गुलदार के बदन के गुलो की तरह बीच मे खाली नहीं रहतीं, बल्कि वे काली और गोल बिंदिया की शक्ल की होती है। इन्ही खास चित्ता के कारण इसे चिता या चीता कहा जाता है। इसके बदन पर के बाल वैसे तो छोटे और कडे होते है, लेकिन गरदन पर के बाल लम्बे और बिखरे बिखरे-से रहते है। बच्चो के शरीर के बाल बड़े होते है जिनसे उनके बदन की चित्तियाँ ढक-सी जाती है।

चीते को अब भी लोग शिकार के लिए पालते हैं और इससे हिरन आदि का शिकार खेलते हैं। इसकी आँख पर पट्टी बाँधकर किसी बैलगाड़ी द्वारा उस स्थान पर ले जाया जाता है, जहाँ हिरनों के मिलने की आशा रहती है। वहाँ हिरनों का गरोह दिखाई पड़ने पर इसकी आँख की पट्टी खोल दी जाती है और यह उन्हें देखते ही उनके पीछे दौड़ पड़ता है। यह उनके पास पहुँचकर किसी एक को पंजा मारकर गिरा देता है और तब तक वहीं खड़ा रहता है जब तक इसका मालिक वहाँ नहीं पहुँच जाता। शिकारी हिरन के पास पहुँचकर उसकी गरदन काट देता है और चीते को उसका खून किसी बरतन में भरकर दे देता है। चीता जब खून पीने लगता है तो उसकी आँखों पर फिर पट्टी चढ़ा दी जाती है और उसको जंजीरों में बाँध लिया जाता है।

इसकी मादा तेंदुए की तरह कई बच्चे देती है। इसकी और आदतें तेंदुए से मिलती-जुलती रहती हैं।

कस्तूरी-परिवार

(FAMILY VIVERRIDAE)

इस परिवार में पहले से कम जीव हैं जो मझोले कद के और कुछ उससे भी छोटे होते हैं। इन जीवों का मुँह बिल्ली परिवार के जीवों की तरह गोल न होकर कुत्तों की तरह लम्बा होता है। इनके पैर भी छोटे होते हैं।

ये सब जीव मांसाहारी होते हैं और पेड़ों पर बड़ी आसानी से चढ़ लेते हैं।

इस परिवार के जीवों में आपस में काफी भेद होने के कारण उन्हें तीन उपपरिवारों में बाँटा गया है—

१. कस्तूरी उपपरिवार—Sub Family Viverrinae

२. मुसंग उपपरिवार—Sub Family Paradoxurinae

३. न्योला उपपरिवार—Sub Family Mungotinae

कस्तूरी उपपरिवार के प्राणियों का कद लगभग बिल्लियों के बराबर होता है। इनके शरीर पर गाढ़े चित्ते रहते हैं और दुम के नीचे एक ग्रन्थि रहती है जिसमें से एक प्रकार का गन्धपूर्ण गाढ़ा पदार्थ निकलता है।

इन प्राणियों की जीभ खुरखुरी होती है और इनके कुछ नाखून बिल्लियों की तरह भीतर की ओर घुसे रहते हैं। इनमें से क़स्तूरी हमारे यहाँ का प्रसिद्ध जीव है।

मुसग उपपरिवार में कस्तूरी से मिलते-जुलते जीव है जो पेड पर बडी आसानी से चढ लेते है। यहाँ तक कि ताड और खजूर के पेडो पर चढना भी इनके लिए मामूली बात है। इनके पैरो की उँगलियाँ आपस में एक प्रकार की झिल्ली से जुडी रहती है और इनके नाखून पजे के भीतर थोडा ही घुस सकते है। इनमें मुसग या ताड की बिल्ली हमारे यहाँ का प्रसिद्ध जीव है।

तीसरा उपपरिवार न्यौले का है जिसमें न्यौला अकेला ही जीव है। यह इस वर्ग का सबसे छोटा प्राणी है लेकिन साहस में शायद यह सबसे आगे है। अपनी खून पीने की आदत के लिए यह बहुत प्रसिद्ध है। यह अपने शिकार का गला काटकर खून ता पी ही लेता है साथ ही साथ उसका भेजा भी खा लेता है। मासखोर होते हुए यह फल वगैरह भी बडे मजे में खा लेता है।

नीचे इस परिवार के प्रसिद्ध जीवो का सक्षेप में वर्णन दिया जा रहा है।

कटास

(LARGE INDIAN CIVET)

कटास कस्तूरी का ही भाई बिरादरी है जो हमारे देश में केवल पूर्वी हिस्सा में पाया जाता है। यह नेपाल से उडीसा तक और उसके पूर्व के जगलो में पाया जाता है और रात्रिचर होने के कारण हमारी निगाह-तले बहुत कम पडता है।

कटास

इसका कद ढाई फुट से कुछ कम ही होता है जिसके लगभग डेढ फुट लम्बी मोटी दुम रहती है। इसका रग गाढा मिलटी होता है और पीठ पर के बाल काले रहते है। बदन के दोनो ओर धारियाँ और चित्तियाँ पडी रहती है लेकिन आधी से ज्यादा दुम काली ही रहती है। इसकी टाँगो की जड के पास का हिस्सा मिटेटी अथवा काली धारियों से भरा रहता है। इसके सीने पर भी चौडी काली पटरियाँ पडी रहती है।

कटास दिन भर जगल में किसी घनी झाडी में छिपा रहता है और रात होने पर

तेंदुआ (पृ० ६५१)

बाहर निकलता है। यह अक्सर अकेला ही रहकर शिकार करता है और जंगल के पास की आबादियों में भी चला जाता है। इसका मुख्य भोजन छोटे-मोटे जानवर और चिड़ियाँ हैं। इसके अलावा यह मेढक, मछली, जड़ और फल-फूल भी खाता है।

कटास तैरने में भी बहुत उस्ताद होता है और कस्तूरी की तरह इसकी दुम के नीचे भी एक गन्ध-थैली रहती है जिससे एक प्रकार का गन्धपूर्ण पदार्थ निकला करता है।

इसकी मादा एक बार में तीन से पाँच तक बच्चे देती है।

कस्तूरी

(SMALL INDIAN CIVET)

कस्तूरी लोमड़ी और बिल्ली के बीच का जानवर है जिसका मुँह लोमड़ी की तरह और शरीर बिल्लियों की तरह रहता है। यह हमारे देश में प्रायः सभी जगह पायी जाती है और इसी कारण इसे कहीं चोंबियारी, कहीं सोनहार और कहीं कस्तूरी कहते हैं। बंगाल में इसे गन्धगोकुल कहा जाता है और कहीं यह मुश्क-बिल्ली कहलाती है।
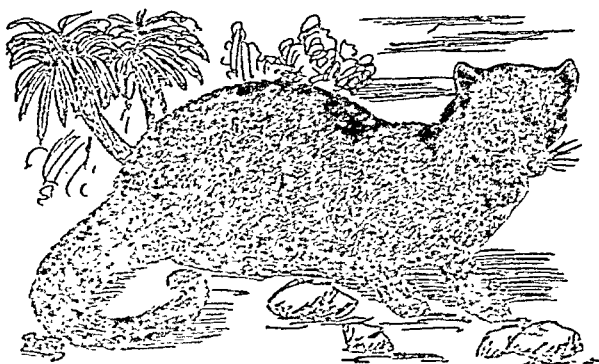
कस्तूरी

कस्तूरी को यह नाम इसलिए मिला है कि इसकी दुम के नीचे एक गन्ध-थैली रहती है जिसमें से एक प्रकार का तेज बू-वाला गाढ़ा पदार्थ निकला करता है। मुश्क बेचने-वाले अक्सर इस को कस्तूरी या मुश्क में मिलाकर बेच देते हैं।

कस्तूरी हमारे यहाँ सारे देश में फैली हुई है। रात्रिचर जीव होने के कारण यह हमारी निगाह तले बहुत कम पड़ती है लेकिन जितने भी पालतू पशु-पक्षी पाल रखे

है वह इनके उपद्रव को भली-भाँति जानता है। यह पालतू जीवो के लिए बिल्ली और लोमडियो से भी ज्यादा खतरनाक साबित हुई है।

कस्तूरी का कद लगभग दो फुट लम्बा होता है जिसके करीब डेढ फुट लम्बी दुम रहती है। इसके बदन का रग भूरापन लिये सिलेटी रहता है जिसपर काली-काली चित्तियाँ पडी रहती है। पीठ की चित्तियाँ लम्बी होकर पक्तियों का रूप धारण कर लेती है लेकिन शरीर की अन्य चित्तिया बे-सिलसिले रहती है। सारी दुम काली गडारियो से भरी रहती है लेकिन इसके पेट पर किसी किस्म की चित्तियाँ नही रहती। इसके दोनो कानो के पास से कधे तक दोनो ओर एक-एक काली लकीर रहती है और गरदन के ऊपर भी कुछ खडी धारियाँ पडी रहती है।

ये दिन भर किसी घनी झाडी या ऐसे बिलो में घुसी रहती है जो प्राय जलाशयो के आस-पास रहते है। इसके अलावा ये खँडहरो और वीरान मकानो में भी दिन में घुसी रहती है और सारा दिन ऐसे ही सुनसान स्थानो में बिताकर रात को शिकार के लिए बाहर निकलती है। इनका मुख्य भोजन छोटे-छोटे जानवर, चिडियाँ, अण्डे, मेढक, साँप और कीडे-मकोडे है। इसके अलावा ये फल फूल भी बडे स्वाद से खाती है और पालतू पशु-पक्षियो की तो ये जानी दुश्मन है।

कस्तूरी बडी आसानी से पालतू हो जाती है और अक्सर शिकारी लोग इसे स्याहगोश की तरह शिकार कराने के लिए पालते है। इसकी मादा एक बार में चार-पाँच बच्चे देती है।

मुसग

(INDIAN PALM CIVET)

मुसग को कही-कही ताड की बिल्ली भी कहते है। ये कस्तूरी की शक्ल सूरत की होती है लेकिन इनके बदन का रग उससे कुछ भिन्न रहता है। कस्तूरी की तरह ये भी हमारे देश में प्राय सभी स्थानो में फैली हुई है जो अपना ज्यादा समय पेडो पर ही बिताती है। पेडो मे भी ये ताड, खजूर और नारियल ज्यादा पसन्द करती है, जहाँ इन्हे अक्सर शाम को देखा जा सकता है।

मुसग लगभग डेढ-दो फुट लम्बी होती है जिसकी दुम भी करीब-करीब इतनी ही लम्बी हो जाती है। इसके बदन का रग भूरापन लिये सिलेटी रहता है जिस पर काली

चित्तियाँ और धारियाँ पड़ी रहती हैं। इसके पैर गहरे रंग के होते हैं और सिर के ऊपरी हिस्से से नाक के बीच तक एक गहरी धारी पड़ी रहती है।
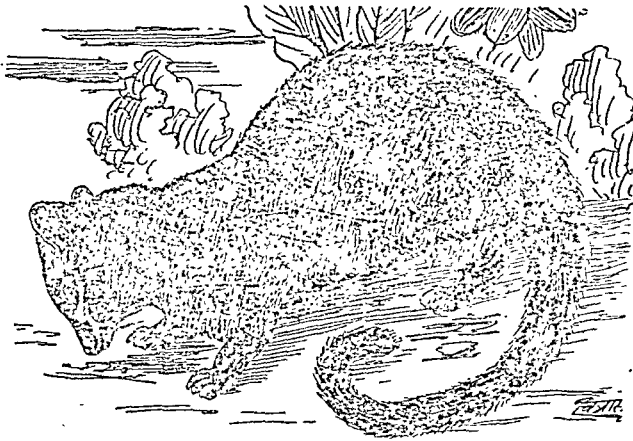
मुसंग

मुसंग से हम सभी बहुत परिचित हैं। ये प्रायः वस्तियों के आसपास की झाड़ियों और खाली मकानों में रहती हैं। ये भी रात्रिचर हैं जो दिन भर वीरान जगहों में रहकर शाम होते ही बाहर निकलती हैं। ये पेड़ों पर चढ़ने में उस्ताद होती हैं और इनसे भी वस्तियों की पालतू चिड़ियों और छोटे जानवरों को बहुत खतरा रहता है। ये छोटे जानवरों और चिड़ियों के अलावा कीड़े-मकोड़े और फल-फूल भी खाती हैं और ताड़ और खजूर के पेड़ों पर चढ़कर ताड़ी का बहुत नुकसान करती हैं।

कस्तूरी की तरह यह भी आसानी से पालतू हो जाती है और इसके भी दुम के नीचे गन्ध की थैली रहती है। इसकी आदतें बहुत कुछ कस्तूरी से मिलती-जुलती होती हैं। मुसंग की मादा एक बार में चार-पाँच बच्चे देती है।

नेवला

(MANGOOSE)

नेवला हमारा इतना परिचित जीव है कि इसे हम सबने अपने घर के आस-पास घूमते देखा होगा।

यह हमारे देश के प्राय सभी स्थानों में पाया जाता है। नेवला करीब फुट, सवा फुट लम्बा होता है जिसके इतनी ही लम्बी दुम रहती है। इसका रंग भूरा होता है जिसमें कुछ चितकबरेपन और स्याहीपन की झलक रहती है। कुछ के शरीर में एक प्रकार की ललाई भी रहती है। इसके बदन पर छोटे और खुरखुरे बाल रहते हैं जिन्हें यह हमला करते समय फुलाकर साही के कांटों की तरह खड़े कर लेता है और तब इसकी आकृति दूनी दिखाई पड़ने लगती है। इसके पंजे बहुत मज़बूत होते हैं।

नेवला

नेवले दिन और रात दोनों समय बाहर दिखाई पड़ते हैं। वैसे तो ये बिल बनाकर रहते हैं। लेकिन पेड़ों पर चढ़ने में भी ये किसी से पीछे नहीं रहते। ये बहुत अक्लमन्द और चालाक जानवर हैं जो साहस में किसी से कम नहीं होते। ये अपने से चौगुने जानवर पर हमला कर बैठते हैं और उसकी गरदन काटकर उसका खून चूस लेते हैं। इनका मुख्य भोजन वैसे तो मांस है, लेकिन ये फल भी खूब मजे से खाते हैं। इनसे कीड़े-मकोड़े, छोटे-छोटे जानवर, चिड़ियाँ और सरीसृप और उनके अण्डे बचने नहीं पाते। सांप के तो ये जानी दुश्मन हैं और उन्हें इस फुर्ती से मारते हैं कि देखकर ताज्जुब होता है। जहरीले से जहरीले सांपों की गरदन पर ये पीछे से बड़ी तेजी से झपटते हैं और उनकी गरदन काट डालते हैं। इनसे पालतू चिड़ियों को बहुत खतरा रहता है, लेकिन एक तरह से ये हमारे लिए बहुत उपयोगी भी हैं क्योंकि ये चूहों और सांपों को मारकर हमारा उपकार ही करते हैं।

लकड़बघा-परिवार

(FAMILY HYAENIDAE)

लकड़बघा अपने परिवार का अकेला प्राणी है जिसका अगला हिस्सा तो बड़ा और रोबीला होता है, लेकिन पीछे का हिस्सा पतला और कमजोर रहता है। इसके लिए एक अलग परिवार इसी कारण बनाना पड़ा है कि यह न तो बिल्ली-परिवार के

प्राणियों से मिलता है और न कस्तूरी-परिवार के प्राणियों से। इनकी खोपड़ी बड़ी और इसके दांत लम्बे और बहुत मजबूत होते हैं।

इन जीवों के पंजों में पांच की जगह चार ही उंगलियां रहती हैं और उनमें के नाखून छोटे और भोथरे होते हैं, लेकिन उनकी मजबूती में कोई अन्तर नहीं रहता। इनको देखकर ऐसा लगता है कि ये मिट्टी खोदने के लिए ही बनाये गये हैं। ये नाखून बिल्लियों की तरह पंजे के भीतर नहीं समा सकते। इनकी भी जबान काफी खुरदुरी होती है। ये मुर्दाखोर जीव हैं।

नीचे अपने यहां के प्रसिद्ध लकड़बघे का वर्णन दिया जा रहा है।

लकड़बघा

(STRIPED HYAENA)

लकड़बघा हमारे यहाँ का बहुत प्रसिद्ध और परिचित जीव है जो हमारे देश के प्रायः सभी जंगलों में पाया जाता है। जंगलों के अलावा यह हमारे यहाँ के ऊबड़-खाबड़ भीटों, नालों और कछारों के आस-पास भी बिलों में रहता है। यह मुर्दाखोर जानवर है जो प्रायः मरे हुए ढोरों और शेर आदि शिकारी जानवरों के मारे हुए शिकार से अपना पेट भरता है। इसकी हाड़ चबाने की आदत से इसे हड़हा भी कहते हैं।

लकड़बघा बहुत ही बेडौल और बदसूरत जानवर है जिसके आगे का हिस्सा तगड़ा और पीछे का कमजोर और दुबला होता है। इसके पंजों में अन्य मांसभक्षी जीवों की तरह पाँच उँगलियाँ न होकर केवल चार ही उँगलियाँ रहती हैं।

लकड़बघा करीब साढ़े तीन फुट लम्बा जानवर है जिसकी शकल-सूरत बिल्ली की तरह न होकर कुत्ते-जैसी होती है। इसकी दुम की लम्बाई भी लगभग डेढ़ फुट रहती है जिस पर काफी बाल रहते हैं। आगे का हिस्सा भारी और उठा-उठा-सा रहता है और अगले पैर भी पिछले पैरों से बड़े रहते हैं। इससे यह सामने से बड़ा रोबीला जान पड़ता है। इसकी पीठ और गरदन पर काफी बड़े बाल होते हैं और पूँछ भी काफी बड़ी होती है।

लकड़बघे का रंग पिलछौंह सिलेटी या राखी रहता है जिस पर खड़ी और आड़ी कलछौंह धारियाँ पड़ी रहती हैं। अपने शरीर के सफेद और काले रंग की मिलावट से यह करौंछे रंग का दिखाई पड़ता है।

लकड़बघा देखने में डरावना जरूर लगता है, लेकिन यह बहुत डरपोक
है। इसमें न तो तेंदुए की-सी तेजी रहती है और न शेर-सा साहस। यह प्र
जानवरों के मांस से अपना पेट भरता है, लेकिन कभी कभी बस्तियों में जा
पालतू मुर्गियों और बकरों को भी मारता है। यही नहीं, यह आदमियों के छो
को भी मौका पाकर उठा ले जाता है।
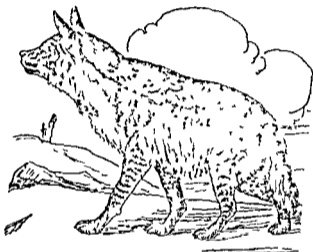
लकड़बघा

गिद्ध का जो स्थान चिड़ियों में है वही स्थान इस स्तनप्राणियों के समाज में मिला है। इसी से इसे लोग जानवरों का मेहतर कहते हैं और इस प्रकार यह जंगल की सफाई का आवश्यक काम करता रहता है।

इसकी मादा एक बार में चार-पाँच बच्चे देती है।

लकड़बघे की एक और जाति होती है जिसका बदन चित्तीदार रहता है। इस जाति के चित्तीदार लकड़बघे (Spotted Hyaena) अफ्रीका के जंगलों में पाये जाते हैं।

कुत्ता-समूह

(SECTION CYNOIDEA)

कुत्ता-समूह में केवल एक ही परिवार है जिसे कुत्ता-परिवार कहते हैं। इसमें सभी प्रकार के पालतू और जंगली कुत्तों, भेड़ियों और लोमड़ियों आदि को एकत्र किया गया है।

कुत्ता-परिवार

(FAMILY CANIDAE)

इस परिवार में, जैसा ऊपर बताया जा चुका है, कुत्ते, भेड़िये और उनके निकट सम्बन्धी जीव रखे गये हैं जिनकी टांगें, दुम और थूथन प्रायः लम्बे होते हैं।

बिल्ली-परिवार के प्राणियों की तरह ये हमेशा शिकार करके ही अपना पेट नहीं भरते बल्कि दूसरे के मारे हुए शिकार से भी अपना पेट भर लिया करते हैं। ये मांस के अलावा और चीजें भी खाते हैं। स्यार जहाँ फूट और ककड़ी तक ही मजे में खाता है वहीं कुत्ते से कुछ भी खाने से नहीं छूटता।

इन जानवरों के कुकुरदन्त बड़े और तेज होते हैं, लेकिन इनके नाखून बिल्लियों के नाखूनों की तरह भीतर नहीं समा सकते। इसी कारण ये उतने तेज न रहकर भोथरे हो जाते हैं। इनकी जीभ बिल्ली-परिवार के जानवरों के बराबर खुरखुरी नहीं होती।

ये सब यूथचारी जीव हैं जो प्रायः ग़ोल बनाकर रहते हैं। इनकी सूँघने की शक्ति काफी तेज होती है और इनके तलवे बिल्लियों की तरह मुलायम रहते हैं।

ये सब अपनी चालाकी और अक्लमंदी के लिए बहुत प्रसिद्ध हैं। लोमड़ी की मक्कारी, स्यार की चालाकी, भेड़िये का छल-कपट और कुत्ते की अक्लमंदी के बारे में हम सब जानते ही हैं।

यहाँ इस परिवार के कुछ प्रसिद्ध जीवों का वर्णन दिया जा रहा है।

कुत्ता

(DOG)

घोड़े की तरह कुत्ते भी मनुष्यों के पुराने साथी हैं जिनका मनुष्य की सभ्यता में बहुत बड़ा हाथ है। आज संसार में पालतू कुत्तों की करीब दो सौ जातियाँ पायी जाती हैं। लेकिन हमारे देश में अभी तक कोई ऐसी जाति नहीं जिसे हम अपने देश की जाति कह सकें। विदेशों में तो अलशेशियन (Alsatian), स्पैनियल (Spanial), बुलटेरियर (Bull-terrier), सेटर (Setter), फाक्सटेरियर (Fox-terrier), गोल्डेन रिट्रीवर (Golden-Retriever), ब्लडहाउण्ड (Blood-Hound) ग्रेहाउण्ड (Grey-hound), डलमेशियन (Dalmatian), डाक्सहुंड (Dachs-hund), पेकिनीज़

(Pekinese) आदि प्रसिद्ध जातियाँ है, लेकिन हमारे देश में उन्ही कुत्तो की सख्या अधिक है जो देश भर में गाँव और बस्तियो मे आवारा घूमा करते है। इनकी शक्ल-सूरत और रग अलग-अलग होते है और ये अक्सर इन्हीं विदेशी कुत्तो के दोगले बच्चे होते है जिन्हें शौकीन लोग पाले हुए हैं।

कुत्ता
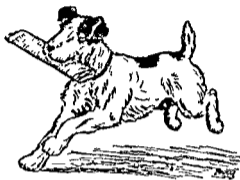
ये देशी कुत्ते किस जगली जाति से पालतू किये गये, इसका अभी ठीक-ठीक पता नही चला है। लेकिन ऐसा ख्याल किया जाता है कि हमारे यहाँ के देशी कुत्ते सोनहा नामके जगली कुत्ते से पालतू किये गये है। इन कुत्तो के कद और रग में तो फर्क रहता ही है, इनकी शक्ल-सूरत भी मुख्तलिफ होती है। इनका कद स्यारो के बराबर होता है और बदन के बाल बहुत छोटे होते है। इनमें कुछ सफेद होते है तो कुछ ललछौह, भूरे या बादामी। कुछ का रग काला होता है तो कुछ चितकबरे रहते है। ये स्यार के निकट सम्बन्धी है और एक प्रकार से उसी नस्ल के माने जाते है। इन्हे पालतू अवस्था में भी स्यारो से जोडा बाँधते देखा गया है। और आज भी सैकडो कुत्ते ऐसे मिल जायँगे जिनकी शकल-सूरत स्यारो से मिलती-जुलती होती है।

पहले तो सभी कुत्ते जगली अवस्था में थे लेकिन आज उनकी बहुत बडी सख्या पालतू होकर हमारे साथ रहने लगी है। इनका सम्बन्ध अपने पूर्वजो से लाखो वर्ष से छूट गया है, लेकिन यह बात बडे आश्चर्य की है कि यदि कुत्ते मनुष्यो से कुछ दिन के लिए अलग हो जाते है तो वे फिर जगली हो जाते है। तब उनमें और परिवर्तनो के अलावा एक परिवर्तन यह भी हो जाता है कि वे कुत्तो की तरह भूंकना भूलकर स्यार तथा भेडियो को तरह चिल्लाना शुरू कर देते है।

कुत्तो की स्वामिभक्ति, उनका प्रेम और उनकी बुद्धिमत्ता की अनेक कथाएँ है। मनुष्यो के साथ एक युग से रहते-रहते इन्होने अपना इतना विकास कर लिया है कि कभी-कभी इनके कार्यों को देखकर बहुत आश्चर्य होता है। अपने मालिक की

वफादारी में ये अपनी जान भले ही गवाँ दें, लेकिन कभी भागने का नाम नहीं लेते। प्रेम और मुहब्बत तो इनमें इस कदर होती है कि मालिक के मरने पर अक्सर देखा गया है कि पालतू कुत्तों ने खाना-पीना छोड़ दिया और मर गये।

कुत्ते संगीत के बड़े प्रेमी होते हैं। हम लोगों ने देखा होगा कि जब मन्दिरों में घण्टा, घड़ियाल बजने लगते हैं तो पास-पड़ोस के कुत्ते भी एक स्वर से बोलने लगते हैं। उनकी इस बोली को हम उनका रोना कहते हैं क्योंकि वह भूंकने से एकदम जुदा होती है, पर वास्तव में यह कुत्तों का रोना नहीं है। पशुशास्त्र के विद्वानों ने बड़ी खोज और अनुसंधान के बाद यह पता लगाया है कि कुत्तों में संगीत-प्रेम की एक अद्भुत प्रेरणा होती है और कुछ कुत्ते इसीलिए संगीत या वाद्य के अवसर पर उस स्वर में अपना स्वर मिलाने का उद्योग करते हैं। विदेशों में तो कुत्तों के बाकायदा स्कूल हैं जहाँ उन्हें शिक्षा दी जाती है। पुलिस-विभाग में इनसे काफी काम लिया जाता है और लड़ाई के मैदानों में भी ये डाकिये का काम बड़ी सफलता से करते हैं। घर की रखवाली और चौकीदारी करना तो इनका स्वाभाविक काम है और इसी के लिए मनुष्यों ने इनको अपना साथी बनाया है।

इनका मुख्य भोजन मांस है, लेकिन मनुष्यों के साथ रहते-रहते इन्होंने पका हुआ भोजन करना भी सीख लिया है। इनकी मादा एक बार में कई बच्चे जनती है जिनकी आँखें पैदा होने पर बन्द रहती हैं और उनके खुलने में दस-बारह दिन लग जाते हैं।

भेड़िया

(WOLF)

भेड़िया हमारे यहाँ का बहुत मशहूर शिकारी जानवर है जो शकल-सूरत में कुत्ते से मिलता-जुलता होता है। जर्मनी के अलशेशियन (Alsatian) जाति के कुत्ते तो शकल-सूरत में भेड़िये जैसे ही होते हैं। भेड़िये खुले मैदान में रहनेवाले जीव हैं जिन्हें घने जंगल पसन्द नहीं। हमारे यहाँ ये हिमालय की तराई से लेकर दक्षिण भारत तक फैले हुए हैं। विन्ध्य प्रदेश के पठारों पर भी ये काफी संख्या में पाये जाते हैं, लेकिन हिमालय की ओर इन्हें नहीं देखा जा सकता।

भेड़िये को कहीं-कहीं बीग या विगवा भी कहते हैं और कहीं-कहीं ये गुर्ग के नाम

से भी पुकारे जाते हैं। ये अपनी चालाकी और गोलबन्दी के लिए बहुत ही प्रसिद्ध हैं। ये छल और चोरी में बहुत ही माहिर होते हैं, और हमेशा अपने शिकार को धोखा देकर मारते हैं। इनमें बहादुरी नहीं होती लेकिन चालाकी की तरकीबें इन्हें खूब आती हैं। अगर किसी बड़े शिकार को यह अकेले या दो-चार मिलकर नहीं मार पाते तो उसे घेरकर ऐसी जगह फँसा देते हैं जहाँ पहले से कुछ भेड़िये छिपे रहते हैं। इसी तरह जब ये भेड़ या बकरियों के झुंड पर हमला करते हैं तो उनमें से कुछ तो रखवाली के कुत्तों से लड़कर उन्हें उलझाये रहते हैं और कुछ भेड़ों को उठा ले जाते हैं।

भेड़िया

भेड़िये लम्बाई में लगभग तीन फुट के और ऊँचाई में दो-ढाई फुट के होते हैं। इनकी दुम भी डेढ़ फुट की होती है जिसका रंग राखी भूरा रहता है। इनकी पीठ का रंग स्याही मायल और पेट का हिस्सा मटमैला सफेद होता है।

इनके बच्चे कलछौंह भूरे रंग के होते हैं, जिनके सीने पर एक सफेद चित्ता पड़ा रहता है जो महीने डेढ़ महीने में गायब हो जाता है।

भेड़िये वैसे तो जोड़े में रहनेवाले जीव हैं, लेकिन कभी कभी ये सात-आठ का गोल बनाकर चलते हैं। ये बहुत चालाक जानवर हैं जो भूखे रहने पर बहुत खूंखार हो जाते हैं। हमारे देश में ये अक्सर आदमियों के बच्चों को भी उठा ले जाते हैं।

भेड़ियों के बारे में यह प्रसिद्ध है कि ये कभी-कभी आदमियों के बच्चों को पालने के लिए ले जाते हैं और कुछ ऐसे बच्चे इनकी मांद में पाये भी गये हैं। लेकिन अभी इसका कुछ ठीक पता नहीं चल सका है और जो बच्चे इनकी मांद से मिले भी वे ज्यादा दिन जिन्दा नहीं रह सके और जो जिन्दा बचे भी वे आधे हैवान-से हो गये और बोलना नहीं जानते। इससे यह विषय अभी तक रहस्यपूर्ण बना हुआ है।

भेड़िया मांसाहारी जीव है जिसकी खूराक में हर किस्म के जानवरों को शामिल किया जा सकता है। वैसे ये खरगोश, लोमड़ी और भेड़-बकरी का शिकार करते हैं, लेकिन भूखे रहने पर चार-पांच भेड़िये मिलकर गाय-बैल पर भी हमला कर बैठते हैं। कभी-कभी ये आदमियों पर भी आक्रमण करते हैं और एक बार आदमखोर हो जानेपर ये शेर और चीते से भी ज्यादा खतरनाक हो जाते हैं। जिस गाँव या बस्ती के आस-पास के भेड़िये आदमखोर हो जाते हैं वहाँ के बच्चों को इनसे बहुत डर रहता है क्योंकि ये अक्सर सात-आठ फुट ऊँची दीवाल फाँदकर घर के भीतर से बच्चों को उठा ले जाते हैं।

इनकी मादा जाड़ों में पाँच-सात बच्चे जनती है जिनकी आँखें कुत्ते के पिल्लों की तरह शुरु में बंद रहती हैं।

स्यार

(JACKAL)

स्यार को गीदड़ भी कहा जाता है। ये हमारे देश में प्रायः सभी स्थानों में पाये जाते हैं। क्या जंगल, क्या मैदान कोई भी ऐसी जगह नहीं है जहाँ इनकी पहुँच न हो। देहात में इन्हें देखना मामूली बात है। ये पहाड़ी स्थानों और खुले मैदानों में तो मिलते ही हैं, लेकिन अपनी ढिठाई के कारण ये आबादी के आस-पास भी अक्सर दिखाई पड़ते हैं। हिमालय पर ये तीन-चार हजार फुट से ज्यादा ऊँचाई पर नहीं जाते।

स्यार की धूर्तता की एक नहीं, अनेक कहानियाँ हमारे यहाँ प्रचलित हैं। ये प्रायः जोड़े में दिखाई पड़ते हैं और इतने ढीठ हो गये हैं कि हम इन्हें बहुत नजदीक से देख सकते हैं। ये वैसे तो अकेले या जोड़े में रहते हैं, लेकिन कभी-कभी इन्हें गरोह में भी देखा जा सकता है। जाड़ों में शाम होते ही इनकी बोली सुन पड़ती

है। पहले एक स्यार बोलता है, फिर उसके बाद उसके साथी 'हुक्का हुआँ ! हुक्का हुआँ !' जैसी वाली बोलकर इतना शोर मचाते हैं कि जी ऊब जाता है।

स्यार

स्यार ढाई फुट से कुछ ज्यादा लम्बा होता है जिसमे इसकी एक फुट की झबरी दुम शामिल नही। इसका रग भूरापन लिये लल्छौह या कत्थई रहता है जिसमें पीठ पर कुछ स्याही रहती है । नीचे का हिस्सा बहुत हल्का या सफेदी मायल रहता है। दुम के ऊपर के बाल खैरे और सिर के काले रहते हैं।

स्यार रात्रिचर जीव है जो रात को अपने भोजन की तलाश में बाहर निकलता है लेकिन जाडा में हम इसे दिन मे भी देख सकते हैं। इसका मुख्य भोजन वैसे तो मास-मछली है लेकिन यह फल वगैरह भी बडे स्वाद से खाता हैं। तरबूज और खरबूजे के खेतो को इससे बचाना मुश्किल हो जाता है और गाँव बस्ती की पालतू चिडियो और छोटे जानवरो का भी इससे कम खतरा नही रहता है। लकडबग्घे की तरह यह भी मुर्दाखोर जानवर है जो मुर्दा जानवरो के अलावा बीमार और रोगी जीवो पर हमला करता है।

इसकी मादा एक बार मे कुत्ता की तरह कई बच्चे देती है।

सोनहा

(WILD DOG)

सोनहा हमारे यहाँ के जगली कुत्ते हैं जिन्हें कही ढोल और कही सोनाकुत्ता कहा जाता है। ये हमारे देश में तराई से दक्षिण की ओर प्राय सभी जगलो में

पाये जाते हैं, लेकिन संख्या में कम होने के कारण ये हमें बहुत कम दिखाई पड़ते हैं।

सोनहा तीन फुट से कुछ ज्यादा ही लम्बे होते हैं जिनकी एक फुट के लगभग सबरी पूंछ होती है। इनके शरीर का ऊपरी हिस्सा ललछौंह बादामी होता है जिसमें कुछ सिलेटीपन की मिलावट रहती है। इनके नीचे का हिस्सा हलके रंग का और दुम का सिरा काला रहता है।
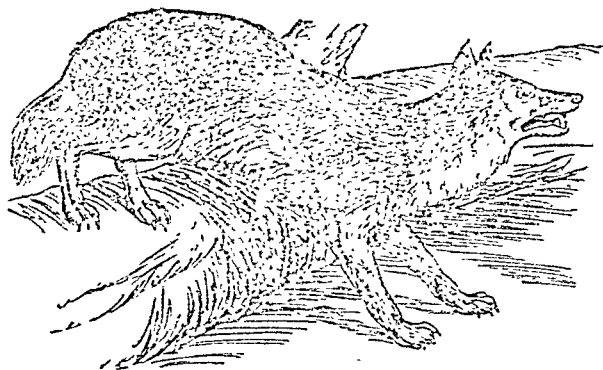
सोनहा

सोनहा झुंड में रहनेवाले जानवर हैं जिन्हें दिन, रात दोनों समय जंगलों में देखा जा सकता है। इनके गोल में बीस-पचीस सोनहे रहते हैं जो चालाकी में भेड़ियों और मक्कारी में स्यारों के कान काटते हैं। शिकार करते समय इनमें गजब का एका रहता है जिससे ये साँभर और रोझ जैसे जानवरों को घेरकर मार डालते हैं। जिस जंगल में इनका गरोह पहुँच जाता है वहाँ से हिरन वगैरह तो भाग ही जाते हैं; शेर और तेंदुओं का भी वहाँ पता नहीं चलता। इनके बारे में यह गलतफहमी फैली है कि ये अपनी दुम पर पेशाब करके शेर तक को अन्धा बना देते हैं, लेकिन इसमें सत्यता बहुत थोड़ी है। होता यह है कि किसी शिकार को घेरते समय ये आस-पास की झाड़ियों पर पेशाब कर देते हैं जो झाड़ियों से रगड़कर भागते हुए शिकार की आँखों में पड़ जाता है और वह थोड़ी देर के लिए अंधा हो जाता है, जिसका फायदा उठाकर सोनहा का गरोह उसे घेरकर मार डालता है।

इनका मुख्य भोजन मांस है, लेकिन ये स्यार की तरह फल वगैरह भी बड़े

चाव से खाते है। ये ज्यादातर शिकार मारकर ही अपना पट भरते है और सियारो की तरह मुर्दाखोर नही होते।

इनकी मादा जनवरी से मार्च के बीच में पाच छ बच्चे देती है।

लोमडी

(FOX)

लोमडी हमारे यहाँ के प्रसिद्ध जीवो म से है जो सारे पशु-समाज में सबसे चालाक मानी जाती है। इसकी चालाकी की सैकडो कहानियाँ प्रचलित है। शिकारी कुत्तो को भागते भागते कतरी काटकर चकमा देना इसके बाये हाथ का खेल है। स्यार की तरह इसको भी हम अक्सर गाव के आस-पास देखते है और इसके उत्पात स भी गाववालो को परेशान हो जाना पडता है। पालतू पशु पक्षियो की यह जानी दुश्मन है जिन्हें यह ऐसी चालाकी से चुरा ले जाती है कि हमें पता भी नही लगने पाता। इसको देहात में लोखरी कहते हैं।
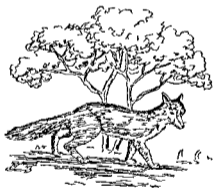
लोमडी

लोमडी की कई जातिया यहाँ पायी जाती है लेकिन इन सबम वही प्रसिद्ध है जिसका यहा वर्णन दिया जा रहा है। हमारे यहाँ यह लोमडी हिमालय की तराई स धुर दक्षिण तक फैली हुई है। इसे घन जगल पसन्द नही है इसीलिए यह ज्यादातर खुले मैदानो तितरे बितरे जगलो और खेतो म घूमती रहती है।

यह लगभग डेढ फुट लम्बी होती है जिसके करीब करीब इतनी ही बडी मोटी और झबरी दुम रहती है। इसका शरीर ललछौह सिलेटी रग का रहता है जो नीचे सफेदी मायल हो जाता है। दुम भी सिलेटी रग की होती है लेकिन उसका सिरा काला रहता है।

लोमडी को बस्ती के आस-पास रहना ज्यादा पसद है। जाडो में हमें इसकी

बोली सुनाई पड़ती है जैसे कोई आदमी जोर से हँस रहा हो। यह बिल में रहना तो पसन्द करती है, लेकिन बिल खोदने का कष्ट उठाना नहीं चाहती। इसीलिए यह अक्सर बिज्जू आदि जानवरों के बिल पर जबर्दस्ती कब्जा कर लेती है और उसको कई मुँहवाला बनाकर उसी में रहने लगती है। यह इतनी चालाक होती है कि बिल के मुँह पर किसी के पैर के निशान देखकर फिर वहाँ नहीं रहती और फौरन ही दूसरी जगह बिल की तलाश करती है। कभी-कभी यह दुश्मनों को निकट देखकर इस प्रकार दम साधकर जमीन पर पड़ जाती है कि ठोकर मारने और इधर-उधर घसीटी जाने पर भी ऐसी बनी रहती है जैसे मर गयी हो, लेकिन दुश्मनों के चले जाने पर यह उठकर चम्पत हो जाती है।

इसका मुख्य भोजन वैसे तो मांस है, लेकिन यह फल-फूल और कंदमूल भी बड़े स्वाद से खाती है। इससे चिड़ियाँ छोटे-मोटे जानवर और सरीसृप तथा कीड़े-मकोड़े कुछ भी नहीं बचने पाते।

इसकी मादा अप्रैल के आस-पास तीन-चार बच्चे देती है।

भालू-समूह

(SECTION ARCTOIDEA)

मांसभक्षी वर्ग के इस तीसरे समूह में कई परिवारों को एकत्र किया गया है जिनमें के सभी प्राणियों के पैरों में पाँच-पाँच नाखून रहते हैं।

भालू-समूह को भालू-परिवार, वाह-परिवार तथा ऊद-परिवार में बाँटा गया है जिसके जीव हमारे देश में पाये जाते हैं।

भालू-परिवार

(FAMILY URSIDAE)

इस परिवार में सब प्रकार के भालू रखे गये हैं जो मांसभक्षी होने के साथ ही साथ फल और शहद भी मजे में खा लेते हैं। इन प्राणियों का सिर गोल और थूथन लम्बा होता है। इनके पैर काफी तगड़े और नख बड़े मजबूत होते हैं, लेकिन आँखें छोटी ही रहती हैं। चलते समय ये अपने पूरे तलुवे जमीन पर रखते हैं, लेकिन इनकी चाल बड़ी बेढंगी-सी होती है जैसे कोई लुढ़क रहा हो। इसका कारण यह है कि चलते समय ये ऊँट की तरह अपने एक तरफ के दोनों पैरों को एक साथ ही उठाकर आगे रखते हैं। इनकी दुम छोटी होती है।

हमारे यहाँ तीन प्रकार के भालू पाये जाते हैं जिनका अलग-अलग वर्णन यहाँ दिया जा रहा है।

भूरा भालू

(BROWN BEAR)

भूरे भालू को इनके कथई रंग के कारण कहीं-कहीं लाल भालू भी कहते हैं और बर्फ के निकट रहने के कारण यह बर्फ का भालू भी कहलाता है। हमारे देश में यह भालू हिमालय के उन बर्फीले स्थानों में पाया जाता है जो कश्मीर से नेपाल तक फैले हुए हैं।

भूरा भालू

यह लगभग पाँच फुट लम्बा होता है लेकिन कोई-कोई भालू इससे भी बड़े पाये गये हैं। इनके शरीर का रंग भूरा रहता है जिसमें एक प्रकार की पीलेपन की मिलावट रहती है। कुछ के रंग में खैरेपन की भी झलक होती है। इनके इन मुख्तलिफ रंगों का कारण यह है कि मौसम के साथ उनमें भी तब्दीली होती रहती है। जाड़ों में जहाँ इनके बालों में ज्यादा सफेदी आ जाती है और वे काफी लम्बे हो जाते हैं वहीं गर्मियों में वे छोटे होकर गहरे रंग के हो जाते हैं। इनके बाल मोटे और मुलायम होते हैं जिनके नीचे मोटे और घने बालों की एक तह रहती है। जाड़ों में ऊपर के बाल करीब आठ इंच लम्बे हो जाते हैं, लेकिन गरमियों में इनकी लम्बाई कम हो जाती है। इनके सीने पर वी (v) की शक्ल का एक सफेद निशान रहता है जो

बच्चों में बहुत स्पष्ट दिखाई पड़ता है। मादा के बदन का रंग नर से कुछ धूमिल होता है।

भूरा भालू अन्य भालुओं की अपेक्षा सीधा होता है और मनुष्यों पर कभी हमला नहीं करता। घायल हो जाने पर भी यह अक्सर आक्रमण करने की जगह भागना ही अधिक पसन्द करता है। इसके पंजे बहुत बड़े नहीं होते इसीलिए यह पेड़ पर चढ़ने में भी अन्य भालुओं की तरह उस्ताद नहीं होता।

भूरा भालू गरमियों में काफी ऊँचाई पर चला जाता है और प्रायः उन्हीं स्थानों पर रहता है जहाँ बर्फ जमी रहती है। पतझड़ के मौसम में यह कुछ नीचे उतर आता है और गाँव के आस-पास के बाग-बगीचों में बड़ा उत्पात मचाता है। जाड़ा शुरू होने पर यह किसी गुफा में जाकर शीतशायी हो जाता है और बसन्त के आने तक वहीं पड़ा रहता है। बसन्त के आरम्भ में जब गुफा के मुँह पर की जमी बर्फ गल जाती है तो यह बाहर निकल कर अपनी खूराक की तलाश में इधर-उधर घूमने लगता है। इसका मुख्य भोजन वैसे तो घास-पात, जड़ और फल-फूल हैं, लेकिन इसे कीड़े-मकोड़े खाने में भी हिचक नहीं होती। कभी-कभी यह भेड़-बकरियों को भी मार डालता है और कुछ लोगों ने इसको दूसरों के मारे हुए शिकार को भी खाते देखा है।

यह भालू जाड़ा शुरू होने के कुछ पहले जोड़ा बाँध लेता है। लेकिन शीतशायी होने के समय दोनों अलग हो जाते हैं। इसकी मादा अप्रैल मई के करीब दो बच्चे देती है जो शुरू में चूहे से कुछ ही बड़े होते हैं। उस समय उनके बदन पर न तो बाल ही रहते हैं और न उनकी आँख ही खुली रहती है। ये बच्चे तीन साल तक अपनी मा के साथ रहकर तब उससे अलग होते हैं। मादा हर साल नये बच्चे देती है और हर साल तीन सालवाले पुराने बच्चे उससे अलग हो जाते हैं।

काला भालू

(BLACK HIMALAYAN BEAR)

काले भालू हमारे देश में दो प्रकार के होते हैं। एक तो वे जो रीछ के नाम से हमारे यहाँ प्रसिद्ध हैं और जिन्हें हम अक्सर मदारियों के साथ देखते हैं और दूसरे वे जिनका यहाँ वर्णन दिया जा रहा है।

यह काला भालू भी हिमालय का निवासी है, लेकिन भूरे भालू की तरह यह बरफ के आस-पास न रहकर घने जंगलों में रहता है। हिमालय के सारे जंगलों में ज्यादातर ये ही भालू पाये जाते हैं। जाड़ों में तो काला भालू ५,००० फुट की ऊँचाई के आस-पास रहता है, लेकिन गरमियों में यह नौ से बारह हजार फुट की ऊँचाई तक चला जाता है।

यह भालू लगभग पाँच फुट लम्बा होता है और इसके बदन के बाल मुलायम रहते हैं। यह भूरे भालू की तरह न तो लम्बा होता है और न इसके नीचे मोटे बालों की तह ही रहती है। इसके पंजे छोटे, मजबूत और टेढ़े होते हैं और कान भी भूरे भालू से कुछ बड़े रहते हैं। काला भालू धुर काले रंग का होता है। इसके सीने पर सफेद रंग का वी (v) शक्ल का चिह्न रहता है जिसके दोनों सिरे इसके कंधे तक चले जाते हैं। इसकी ठुड्ढी भी सफेद रहती है। इसकी गरदन मोटी और सिर चपटा रहता है, लेकिन इसका बदन दूसरे भालुओं से कुछ पतला और छरहरा रहता है।

काला भालू

काला भालू वैसे तो जंगलों का निवासी है, लेकिन यह आबादी के आस पास के जंगलों में रहना ज्यादा पसन्द करता है। यह भूरे भालू की तरह सीधा नहीं होता बल्कि इसमें जंगलीपन और बदमाशी की कमी नहीं रहती। यह अक्सर आदमियों पर हमला करके उन्हें अपने तेज पंजों से मार डालता है। इसकी आँख कमजोर होती है लेकिन सूंघने की शक्ति बहुत तेज होती है। यह भागने, पेड़ पर चढ़ने और तैरने में भूरे भालू से ज्यादा उस्ताद होता है।

काले भालू दिन में घने जंगल में अपनी माँद या किसी झाड़ी या खोह में पड़े रहते हैं, लेकिन रात होते ही ये अपनी खुराक के लिए बाहर निकल पड़ते हैं। ये रात

भर घूम-फिरकर सवेरा होने-होने फिर अपनी मांद में पहुँच जाते हैं। ये वैसे तो अकेले ही रहते हैं लेकिन जोड़ा बांध लेने पर नर-मादा साथ-साथ फिरा करते हैं।

इनका मुख्य भोजन फल, फूल, शहद और जड़ें हैं, लेकिन ये मांस भी बड़े स्वाद से खाते हैं। अन्य भालुओं की तरह इनको भी दीमक बहुत पसन्द है। ये भी भूरे भालू की तरह भेड़-बकरियों का शिकार करते हैं और उसी की तरह दूसरे के मारे हुए शिकार को नहीं छोड़ते।

इसकी मादा मार्च के करीब दो बच्चे देती है जो बहुत ही छोटे रहते हैं। उनकी आँखें कुछ दिनों बाद खुलती हैं और वे कई साल तक अपनी मा के साथ रहकर फिर उसका साथ छोड़ते हैं।

रीछ
(SLOTH BEAR)

रीछ हमारे यहाँ के भालुओं में सबसे प्रसिद्ध है। यह हमारे देश में प्रायः सभी घने जंगलों में पाया जाता है। इसे हम सबने अक्सर मदारियों को नचाते देखा होगा। यह धुर काले रंग का जानवर है जिसके शरीर पर बड़े-बड़े बाल होते हैं। इसके भी सीने पर बड़ा-सा 'v' शकल का सफेद चिह्न पड़ा रहता है।

रीछ की लम्बाई लगभग पाँच-छः फुट की होती है। इसकी ऊँचाई भी करीब ढाई फुट तक पहुँच जाती है। इसका थूथन नोकीला और बड़ा होता है जो सिलेटी रंग का रहता है। मादा नर से कुछ छोटी होती है।
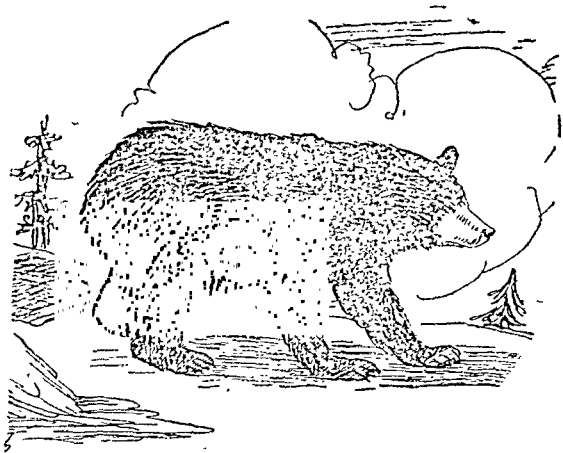
रीछ

रीछ कद में अन्य भालुओं से बड़ा नहीं होता, लेकिन शरारत में यह उनसे कहीं

अलग रहता है। पागल हो जाने पर यह इतने ज़ोर से चिल्लाता है कि सारा जंगल गूँज उठता है। यही नहीं, यह उस समय अपने पिछले पैरों पर खड़ा होकर बड़ा भयंकर हमला करता है और अगर कोई आदमी इसकी पकड़ में आ गया तो यह अपने पंजों और दाँतों से उसका मुँह और खोपड़ी नोच डालता है। बच्चोंवाली रीछनी तो अकारण ही मनुष्यों पर हमला कर बैठती है। रीछ पेड़ पर चढ़ने में बहुत उस्ताद होता है। इसकी सुनने की शक्ति कम होती है और यह देख भी कम पाता है, लेकिन सूँघने की इतनी तेज शक्ति इसे मिली है कि यह पत्तों में छिपे हुए शहद के छत्तों का बड़ी आसानी से पता लगा लेता है और ऊँचे पेड़ों पर चढ़कर भी उन्हें चट कर जाता है।

हिमालय के भालुओं की तरह रीछ शीतशायी नहीं होता। वह बारहों महीने जंगलों और पहाड़ों में फिरा करता है। दिन में यह किसी खोह में या गुफा में घुसा रहता है लेकिन रात होते ही अपने भोजन की तलाश में चक्कर लगाने लगता है। इसका मुख्य भोजन फल-फूल, शहद, दीमक और कन्दमूल है। यह महुआ, आम, कटहल और गन्ना भी बड़े स्वाद से खाता है। दक्षिण भारत की ओर यह ताड़ी पीने के लिए ऊँचे ऊँचे ताड़ और खजूर के पेड़ों तक पर चढ़ जाता है। दीमकों के लिए तो यह दिमौरों को अपने तेज पंजों से खोद डालता है और अपने लम्बे थूथन को छेद से डालकर इतनी तेज़ी से सुड़कता है कि बिल के सारे दीमक इसके पेट में पहुँच जाते हैं। यह वैसे तो कीड़े-मकोड़ों के सिवा अन्य प्रकार का मांस नहीं खाता, लेकिन भूखा रहने पर कभी कभी उसे भी खाते देखा गया है।

रीछ वैसे तो अकेले ही रहता है लेकिन जनवरी के आस-पास जोड़ा बाँध लेने पर यह अक्सर जोड़े में दिखाई पड़ता है। इसकी मादा जाड़ों में दो बच्चे जनती है जो कुत्ते के पिल्लों के बराबर होते हैं। शुरू में इनकी आँखें बन्द रहती हैं और इनके शरीर के बाल छोटे और मुलायम रहते हैं। ये बच्चे कई साल तक अपनी माँ के साथ रहते हैं।

वाह परिवार

(FAMILY PROCYONIDAE)

इस छोटे परिवार में वाह और रेकून (Racoon) आदि जीवों को एकत्र किया गया है जिनमें के अधिक जीव हमारे देश में नहीं पाये जाते। हमारे यहाँ केवल वाह पाया जाता है।

इन जीवों को पेड़ पर चढ़ने की अद्भुत शक्ति प्राप्त है और इनका अधिक समय पेड़ों पर ही बीतता है। इनकी दुम काफी लम्बी होती है।

नीचे वाह का वर्णन दिया जा रहा है।

वाह

(RED CAT BEAR OR HIMALYAN RACOON)

वाह अपने किस्म का अकेला ही जानवर है जो हमारे यहाँ हिमालय में नेपाल से आसाम तक दस बारह हजार फुट की ऊँचाई तक पाया जाता है। इस जाति के और जीव हमारे देश में नहीं हैं, लेकिन इनके भाई-बन्धु अमेरिका में अवश्य पाये जाते हैं।

वाह वैसे तो भालुओं का निकट सम्बन्धी है, लेकिन शकल-सूरत में यह भालुओं से ज्यादा बिल्लियों से मिलता है। इसकी आँखें भी बिल्ली की आँखों की तरह बड़ी-बड़ी होती हैं और कद में भी यह बिल्ली के बराबर ही होता है। इसकी लम्बाई दो फुट से ज्यादा नहीं होती और इतनी ही बड़ी इसकी दुम भी रहती है। इसके बदन का ऊपरी हिस्सा गहरा बादामी या काले रंग का होता है, लेकिन नीचे का हिस्सा काला होता है। इसके चारों पैर और दुम का सिरा भी काला रहता है और दोनों आँखों के बीच से होती हुई एक लाल पट्टी गरदन तक चली जाती है। दुम पर हलके रंग की गड़ारियाँ पड़ी रहती हैं और चेहरे, ठुड्ढी और कान के बाल सफेद रहते हैं। इसके बदन के बाल काफी लम्बे होते हैं जिनके नीचे छोटे और घने बालों की एक मोटी तह भी रहती है।

वाह

वाह वैसे तो रात्रिचर जीव है, लेकिन यह कभी-कभी सुबह और शाम को भी दिखाई पड़ जाता है। यह अपना अधिक समय पेड़ों पर ही बिताता है और नीचे कम उतरता है। मांसभक्षी वर्ग का होते हुए भी भालुओं की तरह इसे मांस बहुत कम पसन्द है और यह अपना पेट ज्यादातर फल-फूलों से भरता है। इसे बाँस के कल्ले भी बहुत पसन्द हैं। इसके अलावा यह चिड़ियों के अण्डों और बच्चों को भी बड़े मजे से खाता है।

वाह अक्सर जाड़े मे दिखाई पड़ते हैं। जोड़ा बाँधने का समय आने पर इनकी बिल्लियों-जैसी बोली बहुत तेज और कर्कश हो जाती है। उस समय नर के बदन से एक तेज बू निकला करती है। वाह की देखने और सुनने की शक्ति तेज नहीं होती। इन्हें पकड़ना ज्यादा कठिन नहीं होता और पकड़े जाने पर ये बड़ी आसानी से पालतू हो जाते हैं और मैदानों मे भी रह लेते हैं। ये दोपहर को किसी पेड़ या खोंते में घुसे रहते हैं और कभी-कभी किसी पेड़ की डाल पर ही अपना बदन समेटकर सोते रहते हैं। इनकी मादा वसन्त ऋतु मे दो बच्चे देती है जो अपनी मा के साथ तब तक रहते हैं जब तक उसके दूसरे बच्चे नहीं हो जाते।

चितराला-परिवार

(FAMILY MUSTELIDAE)

चितराला-परिवार काफी बड़ा है जिसमें कई प्रकार के जीव एकत्र किये गये हैं। ये जीव छोटे कद के होते हैं जिनका शरीर लम्बा और पैर छोटे होते हैं।

इन जीवों मे आपस में इतना भेद है कि इनको तीन उप परिवारों में बाँट दिया गया है—

१ चितराला उपपरिवार—Sub Family Mustelinae
२ बिज्जू उपपरिवार—Sub Family Melinae
३ ऊद उपपरिवार—Sub Family Lutrinae

चितराला उपपरिवार

(SUB FAMILY MUSTELINAE)

चितराला उपपरिवार के जीव कद में लम्बे और ऊँचाई में कम होते हैं। इनके नाखून काफी तेज होते हैं और इनका सारा शरीर कोमल और घने बालों से ढका

रहता है। ये रात्रिचारी जीव हैं जिनके तलवे का थोड़ा ही हिस्सा जमीन पर पड़ता है। ये वैसे तो मांसाहारी जीव हैं, लेकिन इन्हें मांस से ज्यादा अन्न ही पसन्द है।

इस उपपरिवार के दो प्राणी हमारे यहाँ काफी प्रसिद्ध हैं। उन्हीं का यहाँ वर्णन दिया जा रहा है।

चितराला

(MARTEN)

चितराला हमारे पहाड़ी प्रदेश के वहुत परिचित जीव हैं जो वहाँ चोंथियारी की तरह सारे हिमालय प्रान्त में पाये जाते हैं। हिमालय में ये आठ हजार फुट तक काफी संख्या में फैले हुए हैं और इनके उपद्रव से वहाँ के गाँववाले वहुत परेशान रहते हैं।

यह कस्तूरी की शकल का दो फुट लम्वा जानवर है। इसके इतनी ही लम्वी झवरी दुम होती है। इसकी पीठ का रंग सफेदी मायल हलका भूरा होता है और गले का ऊपरी हिस्सा एकदम सफेद रहता है। सिर से कान के नीचे तक का हिस्सा चमकीला काला या गाढ़ा रहता है। चेहरा, दुम और चारों पैर भी इसी रंग के रहते हैं। सीने का रंग पीला या नारंगी होता है और उसके वाद नीचे का कुल हिस्सा हलका भूरे रंग का रहता है। इसके वदन के वाल काफी वड़े और मुलायम होते हैं।

चितराला

चितराला रात्रिचर जीव है, लेकिन यह अक्सर दिन में भी शिकार करता दिखाई पड़ता है। कभी-कभी जाड़ों में ये पाँच सात के गरोह वनाकर झाड़ियों और मैदानों में शिकार करते दिखाई पड़ते हैं और जरा-सा आहट पाते ही पेड़ों पर चढ़ जाते हैं। इसकी वोली से इसकी उपस्थिति का पता वड़ी आसानी से चल जाता है क्योंकि इधर-उधर घूमते समय यह

खस-खस की आवाज किया करता है। पकड़े जाने पर यह बहुत आसानी से पालतू हो जाता है। इसका मुख्य भोजन छोटे-मोटे जानवर, चिड़ियाँ और अण्डे हैं। इसके अलावा यह कीड़े-मकोड़े भी मजे में खाता है। पालतू चिड़ियों और छोटे जानवरों का यह उसी तरह नुकसान करता है जैसे मैदानों में चौधियारी करती है।

इसकी मादा एक बार में कई बच्चे देती है।

कथियान्याल

(YELLOW BELLIED WEASEL)

कथियान्याल भी हिमालय का निवासी है, लेकिन यह सिर्फ नेपाल और भूटान के जंगलों में तीन हजार से आठ हजार फुट की ऊँचाई तक पाया जाता है और वहाँ भी रात्रिचर जीव होने के कारण हम इसे बहुत कम देख पाते हैं।

यह दस इंच लम्बा जानवर है जिसकी दुम चार-पाँच इंच से ज्यादा नहीं होती। इसकी शक्ल-सूरत चितराले से मिलती-जुलती है, लेकिन यह कद में उसके आधे के बराबर ही होता है। कथियान्याल कत्थई रंग का जानवर है जिसकी पीठ, चेहरा और सिर पर का ऊपरी हिस्सा तो गाढ़े कत्थई रंग का रहता है, लेकिन नीचे का कुल हिस्सा और टाँगों का भीतरी हिस्सा चटक पीले रंग का होता है। इसकी ठुड्डी और ऊपरी होंठ सफेदी मायल रहते हैं, लेकिन दुम, जो इसके कद को देखते हुए छोटी ही कही जायगी, गाढ़े कत्थई रंग की रहती है।

कथियान्याल

कथियान्याल को नेपाल में शौकीन लोग अच्छे दामों पर खरीदकर पालते हैं क्योंकि चूहे इनसे बिल्लियों से भी ज्यादा डरते हैं। इनकी ग्रन्थियों से एक प्रकार का

पीला और गाढ़ा तरल पदार्थ निकलता है, जिसकी तेज बू से चूहों को इनकी मौजूदगी का पता चल जाता है और वे घर छोड़कर भाग जाते हैं।

इनका मुख्य भोजन वैसे तो चूहे और चिड़ियाँ आदि हैं, लेकिन ये अण्डे भी बड़े मज़े से खाते हैं। नेवले की तरह ये अपने से चौगुने कदवाले शिकार पर टूट पड़ते हैं और उसकी गरदन में अपने तेज नाखून गड़ाकर तब तक उसे नहीं छोड़ते जब तक वह मर नहीं जाता।

विज्जू उपपरिवार

(SUB FAMILY MELINAE)

विज्जू उपपरिवार के प्राणी पेड़ों पर न रहकर ज्यादातर जमीन पर ही रहते हैं। इनकी चाल बहुत भद्दी होती है। इनके शरीर की बनावट गठीली होती है और कद नीचा और लम्बा रहता है। इनमें कुछ की दुम लम्बी और कुछ की छोटी होती है। इनके बाल सूखे और कड़े होते हैं और इनकी मोटी टाँगों के नख जमीन खोदने के लिए बहुत उपयुक्त होते हैं।

ये सब रात्रिचारी जीव हैं जिनमें विज्जू और भालू-सुअर हमारे यहाँ काफी प्रसिद्ध हैं। यहाँ इन्हीं दोनों का वर्णन दिया जा रहा है।

विज्जू

(RATEL)

विज्जू हमारे देश में काफी संख्या में फैले हुए हैं। ये हमारे यहाँ के पहाड़ी स्थानों में काफी संख्या में पाये जाते हैं, लेकिन उत्तर प्रदेश तथा मध्यप्रदेश के जंगलों में भी इनकी काफी संख्या है।

विज्जू

इनके शरीर का रंग बड़ा विचित्र रहता है जिसके कारण इन्हें पहचानने मे कठिनाई नहीं होती।

इनका ऊपरी हिस्सा सिलेटी रंग का होता है, लेकिन नीचे का हिस्सा और पैर काले रहते हैं। पीठ पर कुछ लम्बे और कड़े सफेद बाल रहते हैं और दुम का सिरा काला रहता है।
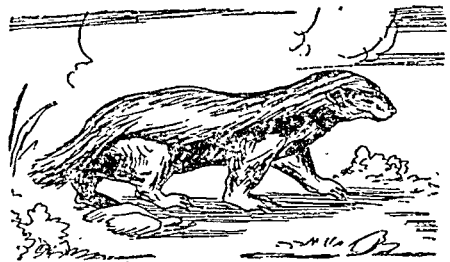
बिज्जू के बारे में लोगों का यह ख्याल है कि यह कब्रों को अपने मजबूत पंजों से खोद डालता है। इसका मुख्य भोजन कीड़े-मकोड़े, चिड़ियाँ और छोटे जानवर हैं। इसके अलावा यह शहद और फल-फूल भी बड़े स्वाद से खाता है।

बिज्जू की लम्बाई करीब ढाई फुट होती है जिसमें उसकी पाँच-छ इंच लम्बी दुम शामिल नहीं है।

इसकी मादा एक बार में कई बच्चे देती है।

भालू-सुअर

(HOG BADGER)

भालू-सुअर को कहीं-कहीं बालू-सुअर भी कहते हैं। इनका भालू-सुअर नाम इस कारण पड़ा है कि इनकी शकल भालू और सुअर से मिलती जुलती होती है और इन्हें बालू-सुअर इस कारण कहा जाता है कि ये ज्यादातर नदी के किनारे के बालू के टीलों में रहते हैं।

भालू-सुअर

भालू-सुअर हमारे यहाँ हिमालय में तो पाया ही जाता है लेकिन इसके अलावा यह मध्य-प्रदेश के जंगलों में भी कभी-कभी दिखाई पड़ जाता है। वहाँ इसे बिरिक-भालू कहा जाता है।

भालू-सुअर करीब ढाई फुट लम्बा और एक फुट ऊँचा जानवर है जिसके सात-आठ इंच लम्बी दुम रहती है। इसके वदन का रंग गंदा सिलेटी होता है, लेकिन पीठ का कुछ हिस्सा कलछौंह रहता है। इसके वदन के वाल छोटे और कड़े होते हैं जिनमें एक प्रकार की सफेद झलक रहती है। वगल और पीठ पर के कुछ वाल वड़े होते हैं जिनका रंग धुर काला रहता है। इसका सिर सफेद रहता है, लेकिन ऊपरी होंठ के दोनों किनारों से एक-एक गाढ़ी भूरी या काली पट्टी शुरू होती है जो आँखों के ऊपर से होकर कान तक चली आती है। इसी तरह की दो धुमैली पट्टियाँ इसकी ठुड्ढी से शुरू होकर इसकी आँखों के ऊपर होती हुई कान तक फैल जाती हैं। इस प्रकार इसका सिर इन पट्टियों के कारण पट्टीदार-सा जान पड़ता है। इसका सिर, गला, दुम और दोनों वगली हिस्से सफेद मायल रहते हैं। नीचे का सारा हिस्सा और चारों पैर धुमैले रहते हैं।

भाल-सुअर दिन भर पहाड़ की खोहों में या भीटों के विलों में पड़ा रहकर वहीं आराम करता रहता है और रात में अपने भोजन की तलाश में नीचे स्थानों में चक्कर लगाता रहता है। इसका मुख्य भोजन फल-फूल, कीड़े-मकोड़े और जड़ें हैं। इसके अलावा यह केंचुए और मछली भी वड़े मजे से खाता है।

भालू-सुअर की कुछ आदतें सुअर से और कुछ भालू से मिलती-जुलती रहती हैं। भालू की तरह इसकी सूँघने की शक्ति वहुत तेज होती है, और उसी की तरह यह डगमगाता हुआ चलता है। छेड़े जाने पर यह सुअर की तरह घुर-घुराता है और किसी की आहट पाने पर उन्हीं की तरह अपना थूथन ऊपर की ओर उठाकर हवा सूँघता है।

इसकी मादा एक वार में प्रायः दो वच्चे देती है।

ऊद उपपरिवार

(SUB FAMILY LUTRINAE)

तीसरा उपपरिवार ऊद का है जिसमें वह अकेला ही एक प्राणी है। यह जल और स्थल दोनों पर वड़ी आसानी से रह लेता है। इसी कारण इसको एक अलग उपपरिवार में रखना पड़ा।

ऊद पानी में मछलियों की तरह तैर लेता है लेकिन वह सूखे में विल वनाकर

रहता है। इसका कद छोटा और लम्बा होता है और इसका सिर चौड़ा और चपटा रहता है।

इसके पैर के पंजे बत्तखों की तरह आपस में जुटे रहते हैं जिससे इसे पानी में तैरने में बड़ी सहूलियत हो जाती है। इसका मुख्य भोजन मछली है।

ऊद

(OTTER)

ऊद हमारे यहाँ का बहुत मशहूर जानवर है जो खुश्की के अलावा पानी के भीतर मछलियों की तरह तैर लेता है।

ऊद को ऊद-बिलाव भी कहते हैं। इसका यह नाम इसकी बिल्ली जैसी शक्ल के कारण ही पड़ा है यद्यपि इसका और बिल्लियों का कोई सम्बन्ध नहीं है।

ऊद हमारे यहाँ सारे देश में फैला हुआ है। यह लगभग दो फुट लम्बा जानवर है जिसके करीब डेढ़ फुट लम्बी दुम रहती है। इसके बदन का ऊपरी हिस्सा भूरे रंग का होता है जिसमें कुछ कत्थई या ललछौंह झलक रहती है। इसके बड़े बालों के नीचे घने बालों की एक तह रहती है जिसका रंग सफेदी मायल रहता है। इसके शरीर के नीचे का हिस्सा दुम, गला और टाँगों का भीतरी हिस्सा सफेद रहता है।

ऊद

ऊद वैसे तो हमारी बड़ी नदियों में पाये जाते हैं, लेकिन ये हमारे यहाँ बड़ी झीलों और तालाबों में भी रह लेते हैं। ये अपने बिल पानी के निकट ही बनाते हैं जिनमें कई द्वार होते हैं। ऊद वैसे तो रात्रिचर जीव है, लेकिन इनको अक्सर दिन में भी

नदियों में गरोह वाँधकर शिकार करते देखा जा सकता है। ये सुनसान जगहों में रेत पर धूप सेंकने के लिए लेटे रहते हैं और शिकार करते समय पाँच-सात का गरोह बना लेते हैं। ये मछलियों को किनारे के पास अर्द्ध चन्द्राकार घेर लेते हैं और उन्हें इस प्रकार घेरे में करके उनसे अपना पेट भरते हैं। इनके पैरों की उँगलियाँ जलपाद होती हैं जो वत्तखों की तरह आपस में एक मजबूत झिल्ली से जुटी रहती हैं। ये उसीसे पानी के भीतर बड़ी खूबी से तैर लेते हैं। सूखे पर भी ये बड़ी तेजी से चल-फिर लेते हैं।

ऊद बहुत ही चालाक जानवर हैं जो आसानी से नहीं पकड़े जाते, लेकिन बचपन में पकड़े जाने पर ये बड़ी आसानी से पालतू हो जाते हैं और अपने मालिक के पीछे-पीछे कुत्तों की तरह चलते हैं। यही नहीं, ये अपने मालिक के लिए पानी से मछलियाँ भी पकड़ लाते हैं।

ऊद मांसाहारी जीव हैं जिनका मुख्य भोजन मछली है। ये सब प्रकार का मांस, मेंढक और केकड़े खाते हैं और पानी में रहनेवाली मछलियों को डुबकी लगाकर पकड़ लेते हैं। इनसे किसी प्रकार के अण्डे नहीं बचते।

ऊद शुरू जाड़ों में जोड़ा बाँधते हैं और उनकी मादा समय आने पर दो से पाँच बच्चे देती है। इन बच्चों की आँखें कुत्ते के बच्चों की तरह कुछ दिनों बाद खुलती हैं।

कीटभक्षी वर्ग

(ORDER INSECTIVORA)

इस वर्ग में वे सभी कीटभक्षी जीव एकत्र किये गये हैं जिनका कद छोटा और थूथन लम्बा होता है और जिनके मुँह में बहुत तेज और महीन दाँत रहते हैं। इन जीवों के शरीर पर नरम बाल रहते हैं, लेकिन कुछ के शरीर के बाल कड़े काँटों का रूप लेकर उनकी रक्षा के साधन बन गये हैं।

उनके पैर के नाखून या पंजे बहुत तेज होते हैं जिनसे वे बड़ी आसानी से जमीन में बिल खोद लेते हैं। इनमें से अधिकांश रात्रिचारी जीव हैं जिनका मुख्य भोजन कीड़े-मकोड़े हैं।

यह वर्ग निम्नलिखित दो उपवर्गों में विभाजित किया गया है।

१. कुरंग उपवर्ग—Sub Order Dermoptera

२ छछूंदर उपवर्ग—Sub Order Insectivora vera

कुबग उपवर्ग में केवल कुबग नाम का एक जीव हमारे यहाँ पाया जाता है लेकिन दूसरे छछूंदर उपवग मे सब तरह की छछूंदर और कांटा चूहा आदि कीटभक्षी जीव है। कुबग कीटभक्षी-वग का होते हुए भी शक्ल-सूरत मे अपने वर्ग के अन्य जीवो स इतना भिन्न है कि इसके लिए अलग कुबग उपवर्ग ही बनाना पडा।

कुबग उपवर्ग

(SUB ORDER DERMOPTERA)

यह उपवग बहुत छोटा है और इसमे केवल एक ही परिवार है जो कुबग परिवार कहलाता है।

इस उपवग के प्राणियो की विशेषता यह है कि ये पेडो पर रहते हैं और अपने बगल की बढी हुई झिल्ली के सहारे एक पेड से दूसरे पेड पर हवा मे तैरते चले जाते हैं।

ये जीव कद मे बिल्लियो से कुछ छोटे होते हैं और इनके पैर भी पतले और नाजुक रहते हैं। इनका सिर लमछोह और दुम पतली और लम्बी रहती है।

इन प्राणियो के गले से दोनो बगल की खाल बाहर की ओर काफी बढी रहती है जिसमे इनके चारो पैर और दुम तक का हिस्सा एक प्रकार की पतली खाल से घिरा रहता है। इसी झिल्ली या खाल को फैलाकर ये हवा मे कूद जाते हैं और उडनवाली गिलहरियो की तरह हवा मे तैरते हुए साठ सत्तर गज दूर के पेडो तक पहुँच जाते हैं।

इनके कान गोल और औसत कद के होते हैं। पैरो के तलुवे चपटे और बिना बाल के होते हैं और पजो के नाखून टेढे नुकीले और दोनो ओर से दबे रहते हैं। इस उपवग का एक ही प्राणी कुबग हमारे देश मे पाया जाता है जो इस उपवग के अकेले कुबग परिवार का जीव है।

कुबग परिवार

(FAMILY GALEOPITHECIDAE)

इस छोटे परिवार मे कुबग जाति के कुछ जीव हैं जो अपने बगल की बढी हुई खाल के सहारे एक पेड से दूसरे पेड पर बडी आसानी से हवा मे तैरते हुए चले जाते हैं।

ये सब रात्रिचारी जीव हैं जिनका मुख्य भोजन फल वगैरह है। इनके शरीर पर बहुत मुलायम रोयें होते हैं और इनका रंग पेड़ की छाल से ऐसा मिलता-जुलता रहता है कि इनके बहुत निकट चले जाने पर भी सहसा इन पर निगाह नहीं पड़ती।

इनके दांत सब जीवों से भिन्न होते हैं और नीचे के सामनेवाले दांतों की बनावट महीन कंघी जैसी होती है जिसे देखकर बहुत आश्चर्य होता है।

ये जीव सुमात्रा, मलाया, स्याम, बोर्नियो आदि देशों में ही पाये जाते हैं। हमारे देश में इनकी केवल एक जाति जो कुबंग कहलाती है आसाम के पूर्वी भागों में पायी जाती है जिसका यहाँ वर्णन दिया जा रहा है।

कुबंग
(FLYING LEMUR)

कुबंग को कँबेगो भी कहते हैं। यह उड़नेवाली गिलहरी की शकल का छोटा-सा जानवर है जो अपने दोनों बगल की झिल्ली के सहारे एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर हवा में तैरकर चला जाता है। हमारे देश में यह पूर्वी प्रान्तों के कुछ स्थानों में ही पाया जाता है। इसके अलावा देश भर में इसे और कहीं नहीं देखा जा सकता। अपने रहने के स्थान में भी यह बहुत घने जंगलों में रहता है और केवल रात में ही भोजन की तलाश में निकलता है। इसीलिए इसको हम बहुत कम देख पाते हैं।

कुबंग

कुबंग करीब सोलह इंच लम्बा होता है जिसमें उसकी नौ इंच की दुम शामिल नहीं है। इसके शरीर का ऊपरी हिस्सा गाढ़ा कत्थई रहता है जिस पर बेतरतीबी से रुपहली और सफेद चित्तियाँ पड़ी रहती हैं।

इसके पेट का रंग भूरा होता है। बच्चों के बदन पर काफी संख्या में सफेद चित्तियाँ पड़ी रहती हैं जिससे वे चितकबरे से जान पड़ते हैं।

उड़नेवाली गिल्हरियों की तरह कुबग के शरीर के दोनों ओर अगले पंजों से पिछले पंजों तक तो खाल फैली ही रहती है, साथ ही साथ उसकी गरदन के पास की बढ़ी हुई खाल भी दोनों अगले पंजों तक जुटी रहती है। इसी तरह पिछले पंजों के पीछे भी खाल बढ़कर इसकी दुम तक फैली रहती है जिससे चारों पैरों को फैला लेने पर यह पतंग की शक्ल का दिखाई पड़ने लगता है।

कुबग के बदन पर के बाल छोटे और बहुत नरम होते हैं। इसका सिर छोटा, थूथन नोकीला और पंजे बहुत मजबूत होते हैं। यह दिन भर या तो किसी डाल पर अपने चारों पैरों के सहारे लटका रहता है या पेड़ की डालों पर काहिली से इधर-उधर घूमता रहता है लेकिन रात आते ही इसमें गजब की तेजी आ जाती है। रात को यह अपनी खुराक के लिए एक पेड़ से कूदकर दूसरे पेड़ तक हवा में तैरता चला जाता है। हवा में तैरते समय यह चमगादड़ों की तरह अपने पैर नहीं हिलाता बल्कि उड़नेवाली गिल्हरियों की तरह बगल की झिल्ली के सहारे साठ-सत्तर गज तक हवा में तैर जाता है। यह अपना पैर उस समय हिलाता है, जब इसे हवा में तैरते समय अपना रुख बदलना होता है। इसकी लम्बी दुम भी इसकी उड़ान में बहुत सहायक होती है और वह बहुत कुछ पतवार का काम करती है। वैसे यह अपनी दुम से डालियों को बहुत मजबूती से पकड़ लेता है जिससे उसे पेड़ में लटकते समय बहुत सहूलियत हो जाती है।

कुबग शाकाहारी जीव है जिसका मुख्य भोजन फल-फूल है लेकिन यह कीड़े-मकोड़े भी खाता है। इसकी मादा एक बार में एक ही बच्चा देती है।

छछूंदर उपवर्ग

(SUB ORDER INSECTIVORA VERA)

छछूंदर उपवर्ग काफी बड़ा उपवर्ग है जिसमें काँटे, चूहे के अलावा सभी प्रकार की छछूंदरें एकत्र की गयी हैं। इनमें से अधिकांश जीव रात्रिचारी हैं जिनका सिर छोटा होता है। इनकी आँखें और कान भी छोटे होते हैं, लेकिन इनका थूथन पतला और नोकीला रहता है। ये अपने तेज नाखूनों से बिल खोदकर जमीन में रहते हैं।

इनकी चाल अलसायी-अलसायी-सी रहती है। इनका मुख्य भोजन कीड़े-मकोड़े हैं। ये स्वभाव से ही वहुत डरपोक होते हैं।

ये जीव हमारा कोई नुकसान नहीं करते वलिक कीड़े-मकोड़ों को नष्ट करने में हमारी सहायता ही पहुँचाते हैं। इनमें से कुछ के शरीर से एक प्रकार की तेज वू निकलती रहती है जो शत्रुओं के आक्रमण से उनकी रक्षा करती है।

यह उपवर्ग वैसे तो नौ परिवारों में विभक्त किया गया है, लेकिन यहाँ केवल दो परिवारों का वर्णन दिया जा रहा है जिनमें के जीव हमारे परिचित हैं। ये परिवार हैं छछूँदर-परिवार और काँटाचूहा-परिवार।

छछूँदर-परिवार

(FAMILY SORICIDAE)

यह परिवार वहुत वड़ा है जिसमें संसार की सभी जातियों की छछूँदरें एकत्र की गयी हैं। इनका सिर चपटा और थूथन चूहों से लम्वा रहता है। इनकी आँखें वहुत छोटी होती हैं और इनकी दृष्टि इतनी कमजोर होती है कि ये सूरज की तेज रोशनी में आँखें नहीं खोल पातीं और अँधेरे में ही रहना पसन्द करती हैं। इनका वदन मुलायम रोओं से ढका रहता है और इनके दोनों वगल एक-एक गन्ध-ग्रन्थियाँ रहती हैं जिनमें से तेज वू निकला करती है। इस वू से इनकी मौजूदगी का पता फौरन चल जाता है और इसी से दुश्मनों से इनकी रक्षा हो जाती है।

इन जीवों के पैरों में पाँच-पाँच उँगलियाँ रहती हैं जिनमें तेज नाखून रहते हैं। इन मजवूत नाखूनों से ये आनन-फानन मिट्टी खोद डालते हैं।

ये सब रात्रिचारी जीव हैं जो दिन में अपने विलों में या कूड़ा-करकट के ढेरों में छिपे रहते हैं और रात को भोजन की तलाश में वाहर निकलते हैं।

यहाँ इस परिवार की प्रसिद्ध छछूँदर का वर्णन दिया जा रहा है जो हमारे यहाँ सारे देश में फैली हुई है।

छछूँदर

(GREY MUSK SHREW)

छछूँदर की कई जातियाँ अपने यहाँ पायी जाती हैं जिनमें से कुछ पानी में रहती हैं तो कुछ खुश्की पर, लेकिन इन सवमें हमारे घरों में रहनेवाली छछूँदर सवसे प्रसिद्ध है। यहाँ उसी का वर्णन दिया जा रहा है।

यह छछूंदर हमारे यहाँ सारे देश में फैली हुई है और इसे हम अक्सर अप
में देखते हैं। रात्रिचर होने के कारण यह हमारी निगाह तले कम पड़ती है,
सकी चिक-चिक् की आवाज और बू से हम इसकी मौजूदगी का पता पा जाते

छछूंदर शकल-सूरत और शरीर की बनावट में बहुत-कुछ चूहे की तरह ह
और दूर से देखने पर हम इसे चूहा ही समझते हैं, लेकिन इसकी तेज बू से इसे पहच

छछूंदर

सरल हो जाता है। व
बद छ-सात इच से
नही होता। इसके अ
इसके तीन-चार इच क
भी रहती है। इसका
लम्बा, थूथन नोकीला
नथुने के दोनों बगल
हिस्से सूजे-सूजे से रहते

छछूंदर का र
हलके सिलेटी रग
रहता है जिसमें एक प्रक
की नीली झलक रहती

इसके बदन पर बहुत छोटे छोटे बाल रहते हैं, लेकिन जिस हिस्से पर बाल नहीं ह
व प्याजी या हलके गुलाबी रग के रहते हैं। बच्चों का रग अधिक गाढ़ा रहता है।

छछूंदर वास्तव में बहुत शरमीली होती है और ज्यादातर रात में ही बाह
निकलती है। इसे आबादी के आस-पास रहना बहुत भाता है और शायद ही को
ऐसा घर बचा होगा जहाँ यह न पहुँच गयी हो। इसका मुख्य भोजन कीड़े-मकोड़े है

छछूंदर के दोनों बगल की गन्ध-ग्रन्थियों से एक प्रकार का बदबूदार पदा
निकला करता है। जोड़ा बाँधने के समय यह द्रव पदार्थ और भी अधिक मात्रा म
निकलने लगता है। तब छछूंदरों की बू ज्यादा तेज हो जाती है। यह गाढ़ा पदार्थ इनके
डर जाने पर ही इनकी गन्ध ग्रंथियों से निकलता है और उसका उपयोग ये शत्रुओं
से बचाव के लिए करती हैं। इसी तेज बू की वजह से इन्हें इनके शत्रु नहीं पकड़ते
और ये इसी तेज बू से कीड़े मकोड़ों को आसानी से अपने काबू में कर लेती हैं।

छछूंदर की मादा एक बार में कई बच्चे जनती है जो पैदा होने के कुछ दिनों बाद आँखें खोलते हैं।

काँटाचूहा-परिवार

(FAMILY ERINACEIDAE)

यह परिवार छछूंदर-परिवार से छोटा है और इसमें के विचित्र प्राणी अपनी शकल-सूरत से अन्य जीवों से भिन्न ही रहते हैं। इनके शरीर पर मुलायम बालों की जगह छोटे-छोटे काँटे रहते हैं जिसके कारण इनका नाम काँटाचूहा पड़ा है।

इनका थूथन छछूंदर की तरह लम्बा नहीं होता और न इनके नाखून ही छछूंदरों की तरह जमीन खोदने के लिए बनाये गये हैं। हाँ, इनकी दृष्टि जरूर छछूंदरों की तरह कमजोर होती है और ये उन्हीं की तरह आलसी भी होते हैं।

इन प्राणियों की टाँगें और दुम छोटी होती हैं, लेकिन इनकी सूंघने की शक्ति बहुत तेज रहती है। ये वैसे तो काहिल से लगते हैं, लेकिन चूहे पकड़ने में बिल्लियों से भी तेज होते हैं। चूहे ही क्यों, ये साँप तक को बड़ी आसानी से काट डालते हैं।

इनकी वैसे तो कई जातियाँ हैं, लेकिन यहाँ हम अपने देश में पाये जानेवाले प्रसिद्ध काँटाचूहा का ही वर्णन दे रहे हैं।

काँटाचूहा

(HEDGE HOG)

काँटाचूहा चूहों का सम्बन्धी नहीं है, फिर भी चूहों की-सी शक्ल-सूरत के कारण इसे लोग चूहे की जाति का जीव समझने लगे और इसके बदन पर के कँटीले कवच के कारण इसे काँटाचूहा कहने लगे। इसके अलावा इसके और भी कई नाम हैं। कहीं इसे कण्डरना कहते हैं तो कहीं सोन्ह और सिंध की ओर यह जाही और तारजवा के नाम से प्रसिद्ध है।

हमारे देश में काँटाचूहे की कई जातियाँ हैं जिनमें थोड़ा ही भेद रहता है। यहाँ की प्रसिद्ध जाति, जिसका यहाँ वर्णन दिया जा रहा है, इस देश में पंजाब से उत्तर प्रदेश के पश्चिमी हिस्से तक फैली हुई है जो ज्यादातर रेतीले मैदानों में रहती है।

कांटाचूहा छ इंच का छोटा-सा जानवर है जिसके बदन की ऊपरी कलछौंह खाल छोटे-छोटे कांटों से भरी रहती है। इसके पेट और पैर का रंग कलछौंह भूरा या बरथई और मुंह का हिस्सा सिलेटी भूरा रहता है। इसकी ठुड्डी सफेद रहती है और वहां की सफेदी कभी-कभी गरदन तक फैल जाती है।

कांटाचूहे हमारे यहां इतनी कम संख्या में हैं कि इन्हें हम बहुत कम देख पाते हैं और यही कारण है कि इनके बारे में अभी तक ज्यादा नहीं जाना जा सका है। इनके बदन पर साही-जैसे छोटे-छोटे कांटे रहते हैं जिनका ज्यादा हिस्सा सफेद रहता है, लेकिन उनके सिरे की ओर का हिस्सा काला रहता है। इस काले हिस्से में भी एक सफेद छल्ला पड़ा रहता है, लेकिन कुछ कांटों की नोक काली ही रहती है।

कांटाचूहा

कांटाचूहों के लिए उनके ये कांटे बड़े काम के हैं क्योंकि दुश्मनों द्वारा आक्रमण किये जाने पर ये अपना बदन लपेटकर गेंद की तरह गोल हो जाते हैं और अपना सिर और पैर भीतर की ओर कर लेते हैं। उस समय इनके बदन के कांटे खड़े हो जाते हैं और तब उन पर हमला करने की सहसा किसी की हिम्मत नहीं पड़ती लेकिन इसकी भी तरकीब इनके दुश्मनों ने ढूंढ निकाली है। लोमड़ी और स्यार जब इन्हें गेंदनुमा लिपटे हुए पाते हैं तो वे इन्हें गेंद की तरह लुढ़काकर किसी जलाशय के पास ले जाते और वहां इन्हें पानी में डाल देते हैं। पानी में डाले जाने पर ये बेबस होकर अपना शरीर सीधा कर लेते हैं और तब इन्हें मारने में देर नहीं लगती।

कांटाचूहा कीड़े मकोड़े खानेवाला जीव है जो हर तरह के कीड़े-मकोड़ों के सिवा घोंघों का भी मारकर खा जाता है। इसे अण्डे भी बहुत पसन्द हैं और जमीन पर अण्डे देनेवाली चिड़ियों के अण्डों को इससे बहुत खतरा रहता है।

इसकी मादा एक बार में तीन-चार बच्चे देती है जो पैदा होने पर बिना कांटों के रहते हैं लेकिन धीरे धीरे इनके बदन पर कांटे निकल आते हैं और आठ नौ महीने के

बाद इनका सारा शरीर कांटों से भर जाता है। तब ये पूर्णरूप से कांटाचूहा बन जाते हैं।

करपक्ष-वर्ग

(ORDER CHIROPTERA)

इस वर्ग में सब प्रकार के छोटे और बड़े चमगादड़ एकत्र किये गये हैं जो पक्षियों की तरह हवा में उड़ लेते हैं। इनके चिड़ियों की तरह पर और डैने नहीं होते, लेकिन इनके हाथ की चारों उँगलियाँ जो बढ़कर काफी लम्बी हो गयी हैं एक प्रकार की मजबूत झिल्ली से जुड़ी रहती हैं। यह झिल्ली फैलकर इनकी टाँगों के पास जाकर मिलती है और जब ये अपना हाथ फैलाते हैं तो वह छाते की तरह तन जाती है। इसी के सहारे ये आकाश में पक्षियों से भी तेज उड़ लेते हैं।

इनके हाथ का अँगूठा झिल्ली से मुक्त रहता है जिसके सहारे ये दिन में पेड़ की डालियों को पकड़कर उलटे लटके रहते हैं।

इस वर्ग के प्राणियों की शकल-सूरत और कद में भले ही कुछ भेद हो, लेकिन हवा में उड़ने के गुण और शरीर-रचना के दृष्टिकोण से ये सब एक ही प्रकार के प्राणी हैं।

इनके वर्गीकरण में प्राणिशास्त्र-विशारदों को बहुत कठिनाई हुई। उन्होंने पहले इन्हें वानर-वर्ग में रखा, लेकिन बाद में ये मांसाहारी वर्ग में रखे गये। उसके बाद वहाँ से हटाकर इन्हें कीटभक्षी-वर्ग में रखा गया, लेकिन अन्त में विद्वानों ने इनका यह अलग ही वर्ग बनाया जो करपक्ष-वर्ग कहलाता है।

वानर-वर्ग की तरह यह वर्ग भी दो उपवर्गों में बाँट दिया गया है—

१. गादुर उपवर्ग—Sub Order Megachiroptera

२. चमगादड़ उपवर्ग—Sub Order Microchiroptera

पहले उपवर्ग में फलाहारी और दूसरे में मांसाहारी चमगादड़ हैं। फलाहारी गादुर और मांसभक्षी चमगादड़ कहलाते हैं जिनके कई परिवार और अनेक जातियाँ सारे संसार में फैली हुई हैं।

अपनी मजबूत झिल्ली के कारण चमगादड़ और गादुर आकाश में भले ही चिड़ियों की तरह उड़ लेते हों, लेकिन उनके जमीन पर चलने में यही झिल्ली बाधक

होती है और ये बडी मुश्किल से घसिट-घसिटकर जमीन पर चल पाते हैं। इतना ही नही, इसी झिल्ली के कारण एक बार जमीन पर उतर पडने पर वे फिर जल्द हवा में नही उठ पाते और उडने से पहले उन्हें कुछ दूर तक जमीन पर घसिट-घसिटकर चलना पडता है। इसी कारण ये या तो किसी पेड पर लटके रहते हैं या किसी ऊँची जगह पर बिलो या सूराखो में घुसे रहते हैं जहाँ से कूदकर उन्हे हवा मे उडने मे आसानी हो जाती है।

चमगादड रात्रिचारी जीव हैं जो रात होने पर अपने भोजन की तलाश मे बाहर निकलते हैं। इनकी आखे बहुत छोटी होती हैं जिनसे वे शायद काम भी नही लेते क्योकि उनका ज्यादा काम उनकी झिल्ली से चलता है। उनकी झिल्ली में गजब का स्पर्शज्ञान रहता है जिसके द्वारा उन्हें उडते समय आस-पास की चीजो का पता चल जाता है और वे अँधेरे में बिना किसी चीज से टकराये हवा में उडते रहते हैं।

चमगादडो की सूँघने और सुनने की शक्ति भी कम नही होती। इनकी मादा प्रतिवर्ष एक ही बच्चा देती है जो काफी समय तक अपनी पिछली टागो से मा के पेट की खाल पकडकर लटका रहता है।

गादुर उपवर्ग

(SUB ORDER MEGACHIROPTERA)

गादुर उपवर्ग में बडे कद के फलाहारी जीव हैं जिनका मुंह लोमडी की तरह लम्बा होता है। इनके दुम नही रहती और रहती भी है तो बहुत छोटी। इनके कान भी छोटे होते हैं।

ये जीव गादुर कहलाते हैं और इनका एक ही परिवार गादुर-परिवार है।

गादुर-परिवार

(FAMILY PTEROPODIDAE)

गादुर-परिवार मे बडे कद के फलाहारी गादुर हैं जो झुड मे रहते हैं। इनमें कुछ का थूथन लम्बा और कुछ का छोटा रहता है। दिन में ये किसी एक पेड पर उल्टे लटके रहते हैं और रात में इनका फलो के बाग पर भयकर हमला होता है। इनकी उडान बहुत लम्बी होती है। इस परिवार में अनेक जातियो के गादुर हैं जिनमें से एक प्रसिद्ध गादुर का वर्णन यहाँ दिया जा रहा है।

गादुर
(FRUIT BAT)

गादुर फल खानेवाले बड़े कद के चमगादड़ हैं जो हमारे देश में प्रायः सभी स्थानों में पाये जाते हैं। कहीं इनकी संख्या कम रहती है तो कहीं ज्यादा, लेकिन ऐसा शायद ही कोई स्थान होगा जहाँ ये कभी न दिखाई पड़ते हों। हमारे देश में ये पंजाब में बहुत ही कम दिखाई पड़ते हैं। राजपूताने की ओर भी इनकी संख्या बहुत कम है और हिमालय की ओर तो ये तराइयों को छोड़ ऊपर की ओर जाना पसन्द ही नहीं करते।

गादुर

गादुर वैसे तो देखने में कलछौंह या कत्थई जान पड़ते हैं, लेकिन उनका शरीर अनेक रंगों में बँटा रहता है। उनके सिर और गुद्दी का रंग ललछौंह भूरा रहता है और नथुने गाढ़े रंग के होते हैं जो कभी-कभी काले से दिखाई पड़ते हैं। गरदन का ऊपरी हिस्सा और कंधा सुनहलापन लिये पिलछौंह रहता है। इनका गला ठुड्ढी और नीचे का सारा हिस्सा पिलछौंह भूरे रंग का होता है और शरीर के दोनों ओर की झिल्ली भूरापन लिये काले रंग की रहती है। इनका शरीर वैसे तो एक फुट से ज्यादा नहीं होता, लेकिन इनकी लम्बी उँगलियों में मढ़ी हुई दोनों बगल की उड़नेवाली झिल्ली का फैलाव चार फुट तक पहुँच जाता है।

गादुर फलाहारी जीव हैं जो झुंड के झुंड दिन भर किसी पेड़ पर उलटे टँगे रहने के बाद शाम होते ही एक-एक करके उड़ना शुरू कर देते हैं और धीरे-धीरे सारा पेड़ खाली हो जाता है। रात भर इनका फलों के बागों पर हमला होता रहता है और सबेरा होते-होते ये फिर अपने उसी पुराने पेड़ पर सैकड़ों की तादाद में आकर लटक जाते हैं। फलों की तलाश में ये रात में सौ-सौ मील का चक्कर
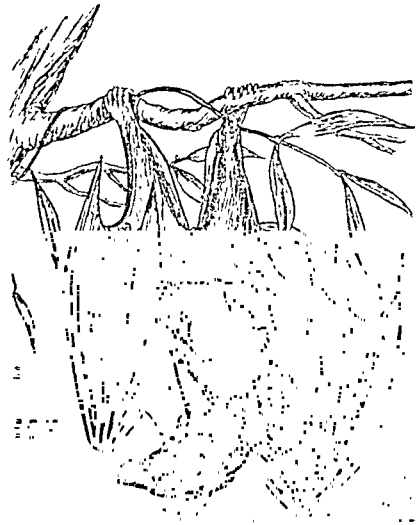
लगा डालते हैं और जिस बाग पर इनका ठीक से हमला हो जाता है उसे साफ ही समझना चाहिए।

गादुर नींबू, नारंगी और बड़े छिलकेवाले फलों को छोड़कर सभी प्रकार के फल खाते हैं। केला, अमरूद आदि मीठे और गूदेदार फल के तो ये जानी दुश्मन हैं। इसके अलावा गूलर, पीपल और पाकड़ आदि जंगली फल भी इनसे नहीं बचते। कभी-कभी तो ये खजूर और ताड़ में लटकते हुए घड़ों से ताड़ी भी पी लेते हैं।

गादुर की मादा एक बार में एक ही बच्चा जनती है। बच्चा जब तक काफी बड़ा नहीं हो जाता तब तक वह अपनी माँ के पेट पर पिछली टाँगों के सहारे उल्टा लटका रहता है।

चमगादड़ उपवर्ग

(SUB ORDER MICROCHIROPTERA)

चमगादड़ उपपरिवार गादुर उपपरिवार से कहीं बड़ा है जिसमें अनेक परिवार और जातियाँ हैं, लेकिन इसमें के सभी चमगादड़ कीटभक्षी जीव हैं जो कद में भी गादुरों से छोटे होते हैं। इनमें से कुछ लम्बी पूँछवाले होते हैं तो कुछ लम्बे कानवाले। कीड़े-मकोड़ों के अलावा इनमें से कुछ दूसरे जानवरों का खून चूसने में भी उस्ताद होते हैं।

इनके वैसे तो अनेक परिवार हैं, लेकिन यहाँ केवल (१) चमगादड़ परिवार, (२) छोटा चमगादड़ परिवार और (३) चमगिदड़ी परिवार का वर्णन दिया जा रहा है।

चमगादड़-परिवार

(FAMILY MEGADERMIDAE)

इस परिवार में कई प्रकार के चमगादड़ हैं जिनकी विशेषता उनके लम्बे कान हैं। ये कद में बहुत बड़े नहीं होते और इनकी दुम बहुत छोटी होती है। ये वैसे तो सिलेटी भूरे रंग के होते हैं, लेकिन कभी-कभी इनके रंग में पिलछौंह झलक भी आ जाती है। यहाँ इसी परिवार के एक प्रसिद्ध चमगादड़ का वर्णन दिया जा रहा है।

गादुर (पृ० ७११)

चमगादड़

(VAMPIRE BAT)

चमगादड़ों की हमारे यहाँ अनेक जातियाँ हैं, लेकिन यहाँ अपने यहाँ के प्रसिद्ध म्बकर्ण चमगादड़ का वर्णन दिया जा रहा है क्योंकि रंग-रूप में कुछ भेद होने पर भी न सबकी आदतों में ज्यादा भेद नहीं रहता।

हमारे यहाँ यह लम्बे कानवाला चमगादड़ सारे देश में फैला हुआ है। उत्तर ी ओर यह जरूर हिमालय के पहाड़ों पर नहीं जाता और इसके रहने के मुख्य थान तराइयों तक ही सीमित रहते हैं।
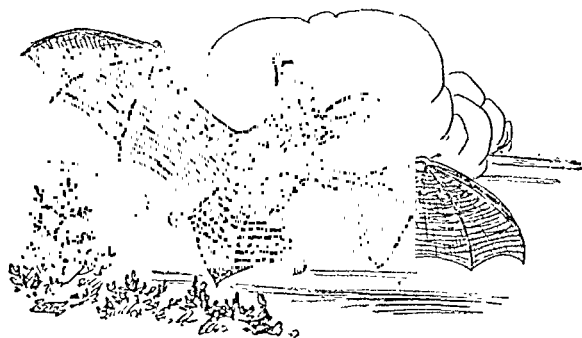
चमगादड़

यह चमगादड़ कद में तीन-चार इंच से ज्यादा बड़ा नहीं होता और इसके बगल की झिल्ली का फैलाव भी एक से डेढ़ फुट तक रहता है। इसके शरीर का ऊपरी हिस्सा गाढ़ा राखी या सिलेटी रहता है, लेकिन नीचे का रंग हलका रहता है। नीचे के हलके रंग में कभी-कभी सफेदी या पीलेपन की झलक रहती है और उड़ने की झिल्ली गाढ़े भूरे रंग की रहती है।

लम्बकर्ण चमगादड़ के बदन के बाल काफी मुलायम और लम्बे होते हैं। इनका कान काफी लम्बा होता है जिसका बाहरी हिस्सा गोलाई लिये रहता है। इनकी नाक पर पत्ती की शकल का उभार-सा रहता है। अपने लम्बे कान और उभरी-उभरी पत्तीदार नाक के कारण इसकी शकल अजीब मसखरों-सी जान पड़ती है।

ये चमगादड़ अपना दिन का समय पुरानी इमारतों, अँधेरी कोठरियों, दीवार के सूराखों और दराजों में बिताते हैं जहाँ ये हजारों की संख्या में छिपे रहते हैं, लेकिन शाम होते ही ये बाहर निकलकर अपने भोजन की तलाश में आकाश में उड़ने लगते हैं। पुरानी वीरान इमारतों में, जहाँ ये रहते हैं, काफी बदबू रहती है और इनके रहने का पता लगाने में कोई कठिनाई नहीं होती।

ये चमगादड़ मांसाहारी जीव हैं जिनका मुख्य भोजन वैसे तो रक्त है, लेकिन इसके अलावा ये कीड़े-मकोड़े, मेढक और छोटी-छोटी चिड़ियाँ भी बड़े मजे में खाते हैं। यही नहीं, ये कभी-कभी छोटे-छोटे जानवरों और चमगादड़ों को भी खा जाते हैं, अन्य मांसभक्षी जीवों की तरह ये अपने शिकार को समूचा या टुकड़े टुकड़े करके नहीं खाते बल्कि उसे पकड़कर अपने लम्बे कानों के बीच में दबा लेते हैं और उड़ते ही उड़ते उसका खून चूसकर उसे छोड़ देते हैं।

इनकी मादा एक बार में एक ही बच्चा देती है जो बड़ा होने तक अपनी मां के पेट पर उल्टा लटका रहता है।

छोटा चमगादड़-परिवार

(FAMILY RHINOLOPHIDAE)

इस परिवार में छोटे चमगादड़ों को एकत्र किया गया है जिनकी विशेषता उनकी लम्बी चुहिया जैसी दुम है। इनकी यह दुम इनकी झिल्ली से बाहर की ओर निकली रहती है। नाक के ऊपर पत्ती के शक्ल का मांस भी उभरा रहता है। ये प्राय बड़े-बड़े झुंड में पुरानी इमारतों और वीरान खंडहरों में घुसे रहते हैं। इनकी कई जातियाँ हैं, लेकिन यहाँ अपने यहाँ के एक प्रसिद्ध छोटे चमगादड़ का वर्णन दिया जा रहा है जो अपनी चुहिया-जैसी दुम के लिए संसार में मशहूर है।

छोटा चमगादड़

(MOUSE-TAILED BAT)

छोटे चमगादड़ हमारे यहाँ काफी संख्या में पाये जाते हैं और इन्हें हम अपने देश में प्राय सभी स्थानों पर देख सकते हैं। हिमालय पर जरूर ये ज्यादा ऊँचाई पर नहीं पाये जाते।

यह हमारे यहाँ का छोटा दुमदार चमगादड़ है जिसकी लम्बाई करीब तीन इंच के होती है। इसकी झिल्ली का फैलाव लगभग एक फुट रहता है और इसकी दुम भी करीब दो इंच लम्बी रहती है। इसके शरीर का ऊपरी हिस्सा कभी कत्थई रहता है तो कभी भूरा और कभी-कभी इसी भूरेपन में पीले या सिलेटीपन की झलक भी रहती है। पेट का रंग अक्सर गंदा पीला या गंदा सफेद रहता है।
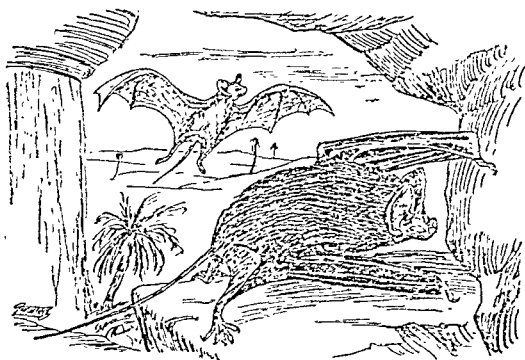
छोटा चमगादड़

इस चमगादड़ के कान बड़े नहीं होते। इसका नथुना मोटा पत्तीनुमा, सिर चौड़ा और चेहरा चपटा रहता है। इसके शरीर के बाल छोटे और मुलायम रहते हैं।

इसको जैसे जंगल पसन्द नहीं आते और यह अपना ज्यादा समय बस्तियों के आस-पास ही बिताता है। दिन में यह किसी पुरानी वीरान इमारत में या अँधेरी कोठरियों और दराजों में छिपा रहता है, लेकिन शाम होते ही यह सब चमगादड़ों से पहले बाहर निकलकर हवा में उड़ने लगता है।

इसका मुख्य भोजन वैसे तो कीड़े-मकोड़े हैं लेकिन दीमक इसे सबसे अधिक पसन्द आता है। इसकी मादा एक बार में एक ही बच्चा देती है जो अन्य चमगादड़ के बच्चों की तरह मा के पेट पर उलटा लटका रहता है।

चमगिदड़ी-परिवार

(FAMILY VESTERTILIONIDAE)

इस परिवार में और भी छोटे कद के चमगादड़ हैं जो चमगिदड़ी कहलाते हैं। इनकी पांच-छः जातियां हैं, लेकिन हमारे यहां जो चमगिदड़ी पायी जाती है वह तीन इंच से बड़ी नहीं होती। इसके छोटी-सी दुम भी होती है जो इसकी झिल्ली के

भीतर ही रह जाती है। इसके कान उतने बड़े न होकर आगे की ओर मुड़े रहते हैं। नीचे उसी का वर्णन दिया जा रहा है।

चमगिदड़ी

(NOCTULE BAT)

इस छोटे चमगादड को इसके छोटे कद के कारण लोग चमगिदडी कहने लगे हैं। हमारे देश मे यह नेपाल के आस-पास दिखाई पडती है। इसकी और भी कई जातियाँ हैं जो देश के अन्य स्थानो में फैली हुई हैं।

चमगिदडी तीन इच से ज्यादा बडी नही होती, जिसके लगभग दो इच लम्बी दुम रहती है जो इसके बदन की झिल्ली से बाहर नहीं निकलती। इसकी झिल्ली का फैलाव लगभग एक फुट का रहता है। इसके शरीर का ऊपरी हिस्सा हलका पिलछौंह भूरा रहता है और नीचे का हिस्सा हलके रग का रहता है जिसमें हलकी पीली झलक रहती है। इसका सिर चौडा और चपटा रहता है। कान छोटे, चौड़े और गोलाई लिये रहते हैं जो बहुत छोटे और मोटे होते हैं। इसके पैर मोटे और छोटे होते हैं और उडनेवाली झिल्ली पैर का कुछ हिस्सा छोड़कर शुरू होती है।
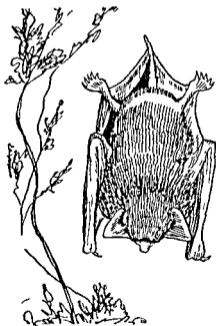
चमगिदडी

चमगिदडी दिन में अन्य चमगादडो की तरह किसी पुराने मकान के अँधेरे हिस्से मे या किसी पेड के खोये में छिपी रहती है जो शाम होते ही अपने छिपने की जगह से निकलकर हवा में काफी ऊँचाई पर उडने लगती है। इसकी

उड़ान तेज रहती है। इसे बस्तियों से ज्यादा जंगल पसन्द हैं, जहाँ यह रात भर अपने भोजन की तलाश में उड़ती रहती है। इसका मुख्य भोजन कीड़े-मकोड़े हैं।

जाड़ा प्रारम्भ होते ही चमगिदड़ी शीतशायी हो जाती है और जाड़े भर किसी निरापद स्थान में सोती रहती है। जाड़ा खतम होने पर इसकी कुम्भकर्णी नींद खतम होती है और तब यह फिर केवल दिन में ही सोना पसन्द करती है।

इसकी मादा एक बार में एक ही बच्चा देती है।

वानर वर्ग

(ORDER PRIMATES)

इस वर्ग के अन्तर्गत सभी प्रकार के वनमानुष, बन्दर, लंगूर और लजीले वानर आते हैं, लेकिन सुविधा के लिए इस वर्ग को दो उपवर्गों में विभक्त कर दिया गया है।

१. लजीला वानर उपवर्ग—Sub Order Lemuroidea
२. वानर उपवर्ग—Sub Order Anthropoidea

इनके विषय में खास-खास बातें आगे दी जायँगी। यहाँ तो पूरे वर्ग को ध्यान में रखकर ही कुछ बातें दी जा रही हैं।

वानर वर्ग के अधिकांश जीवों के शरीर पर बाल रहते हैं और उनके छोटी या बड़ी दुम होती है, लेकिन वनमानुषों के दुम नहीं रहती। उनके मुख में चारों किस्म के दाँत, कृन्तक, कुकुरदन्त, दूध की दाढ़ें और दाढ़ें (Incisors, Canines, Premolers & Molers) रहती हैं जो पहले दूध के दाँत गिर जाने पर निकलती हैं। उनकी आँख, हड्डी की परिधि के भीतर रहती है जिससे वह सुरक्षित रह सके।

उनके पेट की भीतरी बनावट सादी रहती है। कंधे की हड्डी स्पष्ट रहती है और हाथ की दोनों बड़ी हड्डियाँ रेडियस (Radius) और अलना (Ulna) कभी एक में जुटी नहीं रहतीं। उनके हाथ और पैर में प्रायः पाँच-पाँच उँगलियाँ रहती हैं जिनमें नाखून रहते हैं; अँगूठा अन्य उँगलियों से छोटा रहता है।

इन जीवों की खोपड़ी तो बड़ी होती है। साथ ही साथ उनका मस्तिष्क भी बहुत विकसित रहता है। प्रायः सभी की मादा की छाती पर दो स्तन रहते हैं जिनसे वे

अपने शिशुओं को दूध पिलाती हैं। इसी विशेषता के कारण इन जीवों को स्तनप्राणी अथवा स्तनपायी जीव कहा जाता है। इनके शिशु पैदा होने के बाद कुछ दिनों तक बड़ी असहाय अवस्था में रहते हैं और तब उन्हें अपनी माता पर ही आश्रित रहना पड़ता है।

इस वर्ग के प्राणी सारे संसार में फैले हुए हैं।

लजीला वानर उपवर्ग

(SUB ORDER LEMUROIDEA)

इस उपवर्ग मे लेमूर तथा लजीले वानर की जाति के जीव हैं जो विकास क्रम मे वानरो से पिछड़े जीव माने जाते हैं।

इनका मुख वानरो की तरह गोल न होकर कुत्तो की तरह लम्बा रहता है और कान भी बहुधा लम्बे होते हैं। किसी की दुम बड़ी और किसी की छोटी होती है और कुछ ऐसे भी है जो बिना दुम के ही होते हैं। कुछ की छातियो पर स्तन होते हैं तो कुछ के पेट पर और कुछ ऐसे हैं जिनकी छाती और पेट दोनो स्थानो पर स्तन रहते हैं। इनकी आखे आगे की ओर उभरी रहती हैं जो काफी तेज होती हैं।

इन जीवो के पैर की उँगलियो मे से दूसरी में तेज नख रहता है और इनके हाथ की अगली दोनो हड्डिया एक ही मे जुटी रहती है।

इस उपवर्ग के प्राणी अफ्रीका, भारत, स्याम, मेडागास्कर, लका, मलाया, आसाम तथा फिलीपाइन आदि देशो में पाये जाते हैं जो तीन परिवारो मे विभक्त किये गये हैं, लेकिन यहाँ केवल एक लजीला वानर परिवार का ही वर्णन दिया जा रहा है।

लजीला वानर परिवार

(FAMILY LORISINAE)

इस परिवार मे कई जातिया के जीव हैं जिनकी विशेषता उनके शरीर के मुलायम बालो की तह है। इनकी आँखे बड़ी होती हैं। कुछ की दुम छोटी होती है तो कुछ बेदुम के होते हैं। ये पेडो पर चढने में उस्ताद होते हैं। यहाँ अपने यहाँ के प्रसिद्ध लजीला वानर तथा तवाग का वर्णन दिया जा रहा है :

लजीला वानर

(SLOW LORIS)

लजीला वानर वैसे तो वानरों का भाई-बन्धु है, लेकिन इसकी शकल-सूरत में बन्दरों से इतना फर्क रहता है कि कुछ लोग इसे दूसरी जाति का प्राणी समझते हैं। यही कारण है कि कहीं-कहीं इसे शरमीली-बिल्ली भी कहा जाता है।

लजीला वानर हमारे देश में केवल आसाम में पाया जाता है। इसके सिवा यह इस देश में और कहीं नहीं मिलता। पूर्वी पाकिस्तान में जरूर यह काफी संख्या में पाया जाता है, जहां से यह बोर्नियो तक देख पड़ता है।

लजीला वानर बिल्ली से भी छोटा, परन्तु उससे अधिक गठीले बदन का जानवर है जो आकार में चौदह-पन्द्रह इंच से बड़ा नहीं होता। इसका थूथन लोमड़ी की तरह और आँखें बिल्लियों की तरह होती हैं। इसके कान तो छोटे होते ही हैं, लेकिन दुम भी इतनी छोटी होती है कि वह बालों में ही छिपी रहती है। इसके शरीर का रंग सिलेटी रहता है जिसमें कुछ ललाई मिली रहती है। नीचे का हिस्सा हलके रंग का रहता है। इसकी गुद्दी से लेकर पीठ तक का हिस्सा भूरे रंग का होता है और आँखों के चारों ओर इसी रंग का एक घेरा-सा पड़ा रहता है। आँखों के बीच में एक सफेद खड़ी धारी-सी रहती है।
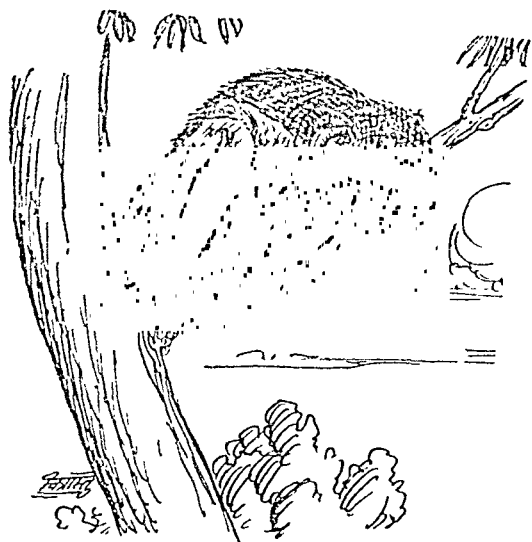
लजीला वानर

लजीला वानर घने जंगलों में रहनेवाला जानवर है जो हमेशा पेड़ों पर ही रहता है। इसे जमीन पर उतरना बिलकुल पसन्द नहीं है। अगर इसे जमीन पर रखा जाय

ता यह अजीब तरह से लहराता हुआ चलता है। यह वैसे तो सुस्त जानवर है, लेकि पेडो पर चढने के समय इसमें बहुत फुर्ती आ जाती है। दिन में यह किसी पेड़ क डाल पकडकर अपना सिर भीतर की ओर कर लेता है और गोल गेंद सा होकर सार वक्त सोने मे बिता देता है। शाम होते ही इसकी निद्रा टूटती है, तब यह इस प से उस पेड़ पर अपने भोजन के लिए चक्कर लगाने लगता है। इसका मुख्य भोज कीडे-मकोडा छोटे जानवरो और चिडियो के अलावा फल फूल भी है। केला इसे बहुत ही पसन्द है।

इसकी मादा एक बार मे एक ही बच्चा देती है।

तवागु

(SLENDER LORIS)

तवागु लजीला वानर का भाई बन्धु है जो कद मे उससे छोटा होता है। हमारे देश में यह केवल दक्षिण भारत के जगलो मे पाया जाता है। इसके अलावा यह दुन भर में और कही नही देखा जा सकता। इसे वहाँ तामिल में तो तवागु कहते है, लेकिन तेलगू में देवाग पिल्ली कहते हैं।

तवागु

तवागु का कद आठ इंच से बडा नही होता। इसकी बाहें पाच इंच की और पैर साढे पाँच के रहते हैं। इसके शरीर का ऊपरी हिस्सा सिलेटी रंग का रहता है जिसमें भूरेपन की मिलावट रहती है। नीचे का हिस्सा हल्का हो जाता है। इसके माथे पर एक सफेद निशाना-सा चिह्न रहता है जिसका नीचे का कोना नाक तक चला आता है। इसके बाल छोटे घने और मुलायम रहते हैं। कान पतले और गोलाई लिये रहते हैं।

तवांगु भी लजीला वानर की तरह दिन भर सोने के बाद रात में पेड़ों पर अपने भोजन के लिए चक्कर लगाने लगता है। सोते समय यह भी अपना सिर अपने पेट में घुसेड़कर सोता है। यह जमीन पर शायद ही कभी उतरता हो क्योंकि जमीन पर ठीक से यह भी नहीं चल पाता।

इसका भोजन फल-फूल, नरम कल्ले, कीड़े-मकोड़े, अण्डे और छोटे-मोटे पशु-पक्षी हैं।

वानर उपवर्ग

(SUB ORDER ANTHROPODEA)

इस उपवर्ग में लजीले वानरों को छोड़कर सब तरह के वनमानुष, लंगूर और बंदर रखे गये हैं जिनके मुख्य-मुख्य गुणों के बारे में ऊपर लिखा ही जा चुका है।

इस उपवर्ग को कई मुख्य परिवारों में बाँटा गया है जिनमें से वानर-परिवार (Family Cercopithecidae) तथा ऊलक-परिवार (Family Simiidae) के कुछ जीवों का वर्णन यहाँ दिया जा रहा है।

वानर-परिवार

(FAMILY CERCOPITHECIDAE)

वानर-परिवार काफी बड़ा परिवार है जिसमें सब तरह के बंदर और लंगूर रखे गये हैं। इनकी अनेक जातियाँ सारे संसार में फैली हुई हैं जिनसे हम इतने परिचित हैं कि उनके विशेष वर्णन की आवश्यकता नहीं है।

हमारे देश में भी इनकी बहुत-सी जातियाँ हैं, लेकिन यहाँ केवल अपने एक प्रसिद्ध बंदर और लंगूर का ही वर्णन दिया जा रहा है।

इन दोनों से हम सभी परिचित हैं। बंदरों के गाल में एक थैली होती है जिसमें वे फल और अनाज भर लेते हैं, लेकिन लंगूरों में इस थैली का अभाव रहता है। वैसे इन दोनों की आदतें बहुत कुछ मिलती-जुलती होती हैं।

बंदर

(MONKEY)

बंदर हमारे इतने परिचित जीव हैं कि इनके बारे में ज्यादा लिखने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती। फिर भी इनका थोड़ा-बहुत हाल देना आवश्यक है जिससे इनके स्वभाव आदि के बारे में कुछ जानकारी हो जाय।

लगूर और वदरो की शकल-सूरत में ही नही, रग में भी काफी भेद रहता है। न तो वदरा की दुम ही लगूरो की तरह लम्बी होती है और न इनका चेहरा ही उनकी तरह काला होता है। ये तो सुनहले भूरे रग के होते है जिनका ऊपरी हिस्सा गहरा और नीचे का हलका रहता है। इनके चेहरे पर और बैठक की जगह पर बाल नही होते और ये दोनो हिस्से लाल रहते है जो उनकी उम्र के साथ ही साथ चटक होते जाते है। बुड्ढे होने पर यह ललाई सारे चेहरे पर फैल जाती है।

बदर हमारे देश के उत्तरी भाग में काफी सख्या में फैले हुए है। ये वैसे तो दक्षिण भारत को छोडकर सारे देश मे पाये जाते है, लेकिन तीर्थस्थानो मे इनकी काफी बडी सख्या देखी जा सकती है। हिमालय में ये पाच छ हजार फुट स ज्यादा ऊँचाई पर बहुत कम जाते है। इनका कद लगभग बीस इच का होता है जिसमे इनकी दस-ग्यारह इच की दुम शामिल नही है।

बदर

बदर कद में लगूरो से छोटे होते है। इनका मुख्य भोजन वैसे तो फल है, लेकिन ये रोटी, मिठाई गल्ला और हर किस्म का पका हुआ खाना खा लेते है। यही नही, ये कीडे-मकोडे और अण्डे भी बडे मजे में खाते है।

बदर बहुत गुस्सैल होते है और दबाव मे पडने पर बडे जोर से काट लेते है। ये बडे उत्पाती होते है। इनके ऊधम से तो कभी-कभी जी ऊब जाता है। ये हमारे खेतो और बागो का बहुत ज्यादा नुकसान करते है।

इनके बारे मे हम लोग स्वय इतना जानते है कि उसे दुहराने की आवश्यकता नही जान पडती।

इनकी मादा या बँदरिया एक बार में एक ही बच्चा देती है जो मा के पेट से तब तक चिपका रहता है जब तक बडा नही हो जाता।

गल्ला, कीडे मकोडे और अण्डे भी खाते हैं। बस्तियों में रहनेवाले लगूर तो पका हुआ खाना और मिठाई आदि भी बडे स्वाद से खाने लगे हैं।

इनकी मादा एक बार मे एक बच्चा देती है जो बदर के बच्चे की तरह मा के पेट पर कुछ समय तक चिपका रहता है।

नील वानर

(LION TAILED MONKEY)

नील वानर दक्षिण भारत का निवासी है। इसके अलावा यह और कही नही पाया जाता। कही-कही इसे स्याह बदर भी कहते हैं। यह कद में लगभग दो फुट का होता है और इसकी करीब दस इच लम्बी दुम रहती है। मादा नर से कद में कुछ छोटी होती है।

नील वानर के कधे पर और चेहरे के चारो ओर बबर शेर की तरह घने बाल रहते हैं जिससे इसका चेहरा बहुत रोबीला जान पडता है। इसकी दुम के सिरे पर भी सिंह की दुम की तरह बालो का गुच्छा-सा रहता है।

नील वानर

नील वानर काले रग का बदर है जिसके चेहरे के चारो ओर सिल्टी रग के घने बाल होते हैं। इसके सीने का रग हल्का होता है जो बचपन में भूरा रहता है। इसके सिर पर बालो का एक गुच्छा-सा रहता है जो सफेदी मायल रहता है।

स्याह बदर गोल बनाकर रहता है जिसमें प्राय पन्द्रह मे ... । इसे घने और ऊँचे पहाड के जगल ज्यादा पसन्द हैं। यह डरावनी-सूरत ... हुए

भी बहुत सीधा और शर्मीला जानवर है जो मनुष्यों की आहट पाकर छिपना ही ज्यादा पसन्द करता है। पकड़े जाने पर वह जरूर गुस्सा दिखाता है और इसी से इसे पकड़ना आसान काम नहीं।

इसके नर की बोली मनुष्यों से मिलती-जुलती होती है जो अक्सर जंगलों में दूर से सुनाई पड़ती है। इनका भोजन भी अन्य बंदरों की तरह फल-फूल, गल्ला, अण्डे और कीड़े मकोड़े हैं।

इनकी मादा एक बार में एक बच्चा देती है।

ऊलक-परिवार

(FAMILY SIMIIDAE)

ऊलक-परिवार में हमारे यहाँ के केवल दो गिबन (Gibbon) जाति के वन-मानुप रखे गये हैं जिनमें पहला ऊलक (White browed Gibbon) तो हमारे देश का प्राणी है, लेकिन दूसरा उंकाइटम (White handed Gibbon) हमारे देश की पूर्वी सीमा पर कभी-कभी आ जाता है। इन दोनों में बहुत समता रहती है और दोनों का रंग-रूप और स्वभाव भी बहुत कुछ मिलता-जुलता रहता है।

ये वैसे तो पेड़ों पर रहनेवाले जीव हैं, लेकिन ये पृथ्वी पर भी झुककर चल लेते हैं। बंदरों की तरह न तो इनके गाल में थैली होती है और न इनके दुम ही रहती है।

इनका मस्तिष्क मनुष्यों को छोड़कर अन्य जीवों से अधिक विकसित रहता है और इनकी खोपड़ी मनुष्यों से बहुत कुछ मिलती-जुलती होती है। नर वनमानुपों के कुकुरदन्त बड़े और तेज होते हैं।

हमारे देश में बड़े वनमानुप नहीं पाये जाते। यहाँ तो सिर्फ ऊलक जाति के छोटे वनमानुप पाये जाते हैं जिनका वर्णन नीचे दिया जा रहा है।

ऊलक वनमानुष

(WHITE BROWED GIBBON)

हमारे देश में गोरिला, शिम्पैंजी और ओरांग उटांग आदि बड़े वनमानुप नहीं पाये जाते, लेकिन यहाँ गिबन (Gibbon) जाति के दो वनमानुप जरूर मिलते हैं जो छोटे वनमानुपों की श्रेणी में आते हैं। इन दोनों वनमानुपों में पहला ऊलक या

हुक्कू हमारे यहा केवल असम के जगलो में पाया जाता है लेकिन दूसरा उकाइटम (White handed Gibbon) मलाया का निवासी है जो कभी-कभी हमारे देश म असम प्रदेश के जगलो में आ जाता है। इन दोनो का कद और स्वभाव बहुत कुछ एक जैसा होता है। इसमे यहा केवल ऊल्क का वर्णन दिया जा रहा है जो हमारे देश का निवासी है। यह वनमानुष धुर काले रंग का होता है जिसकी दोनो भौंहो पर एक एक आडी सफेद धारी पडी रहती है लेकिन मलायावाले वनमानुष के दोनो हाथ थोडी दूर तक सफेद रहते हैं।

ऊलक

ऊल्क असम के जगलो का निवासी है जो घन पहाडी जगलो म ही रहना पसन्द करता है और पेड की एक डाली से झूलकर दूसरी पर आता जाता रहता है। ऊल्क गरोह म रहनेवाला जानवर है लेकिन कभी कभी इसके नर अकेले भी दिखाई पड़ते हैं। इसके झुण्ड कभी कभी सौ सौ तक के हो जाते है जो सुबह शाम इतना शोर मचाते हैं कि दूर से ही इनके रहने की जगह का पता चल जाता है। सुबह होते ही इनका बोलना शुरु हो जाता है जो नौ-दस बजे तक जारी रहता है। इसके बाद ये अपने भोजन की तलाश म लग जाते हैं और खा-पीकर शाम तक आराम करते हैं। शाम को फिर इनकी बकवा बोली से एक बार सारा जगल गूंज उठता है।

ऊल्कों का ज्यादा समय पेड़ों पर ही बीतता है, लेकिन खाने-पीने के लिए ये जमीन पर भी उतरते हैं। जमीन पर ये बन्दरों की तरह चारों पैरों से न चलकर आदमियों की तरह दोनों पैरों पर सीधे होकर चलते हैं। इस प्रकार चलते समय ये अपने चौड़े पंजे की उंगलियाँ फैलाकर अपने शरीर को साध कर चलते हैं, लेकिन इनकी यह चाल ज्यादा तेज नहीं होती और इन्हें आदमी आसानी से दौड़कर पकड़ सकता है।

ऊल्क बहुत जल्द पालतू हो जाता है, लेकिन इसकी सुबह-शाम शोर मचाने की आदत के कारण इसे पालना लोग पसन्द नहीं करते। चिड़ियाखानों में भी जहाँ ऊल्क पले रहते हैं वहाँ मीलों तक के लोग इनकी आवाज से इनकी मौजूदगी का पता पा जाते हैं।

इनका मुख्य भोजन एकदम शाकाहार नहीं है। अपनी फल-फूल की खूराक के अलावा ये छोटी-मोटी चिड़ियाँ, अण्डे और कीड़े-मकोड़े भी खाते हैं। मकड़ियाँ तो इन्हें खास तौर से पसन्द हैं। ये आदमियों की तरह चुल्लू से पानी न पीकर बंदरों की तरह झुककर पानी पीते हैं।

इनकी मादा एक बार में एक ही बच्चा देती है।